1

विषय के रूप में भूगोल का स्वरूप

प्रस्तावित पाठ का उद्देश्य विषय के स्वरूप की व्याख्या करना है। यह भूगोल के महत्व पर प्रकाश डालता है तथा एक विषय के रूप में भूगोल की प्रकृति का वर्णन करता है। यह ज्ञान को विस्तृत करने का प्रयास करता है और आधारभूत संकल्पनाओं के साथ–साथ तकनीकी शब्दों की व्याख्या करता है, जो भौगोलिक ज्ञान के घटक हैं। इसके अलावा अवधारणाओं को क्रमबद्ध व व्यवस्थित व्यवहारों में विकसित करने का प्रयास करता है और विषय की रोचकता को बढ़ाता है।

भूगोल एक प्राचीनतम भू–विज्ञान है और इसकी नींव प्रारंभिक यूनानी विद्वानों के कार्यों में दिखाई पड़ती है। भूगोल शब्द का प्रथम प्रयोग यूनानी विद्वान इरेटॉस्थनीज ने तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में किया था। Geo ''पृथ्वी'' और Graphy ''वर्णन करना'' भूगोल का शाब्दिक अर्थ है, जो पृथ्वी के धरातलीय सतहों का वर्णन करता है। दूसरे शब्दों में ''भूगोल विस्तृत पैमाने पर सभी भौतिक व मानवीय तथ्यों की अन्तर्क्रियाओं और इन अन्तर्क्रियाओं से उत्पन्न स्थलरूपों का अध्ययन करता है।'' यह बताता है कि कैसे, क्यों और कहाँ मानवीय व प्राकृतिक क्रियाकलापों का उद्भव होता है और कैसे ये क्रियाकलाप एक दूसरे से अन्तर्संबंधित हैं।

भूगोल की अध्ययन विधि परिवर्तित होती रही है। प्रारंभिक विद्वान वर्णनात्मक भूगोलवेत्ता थे। बाद में, भूगोल विश्लेषणात्मक भूगोल के रूप में विकसित हुआ। आज यह विषय न केवल वर्णन करता है, बल्कि विश्लेषण के साथ-साथ भविष्यवाणी भी करता है।

इस पाठ में आप दैनिक जीवन में भूगोल के महत्व के बारे में सीख सकेंगे। यह अध्ययन आपको अपने स्थान के बारे में बड़ी रोचकता से समझने के लिए प्रोत्साहित करेगा।

टिप्पणी

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- दैनिक जीवन में भूगोल की उपयोगिता बता सकेंगे;
- विषय के रूप में भूगोल के विकास का पता लगा सकेंगे;
- मानव–वातावरण के संबंधों और उसके एक दूसरे पर प्रभाव को समझ सकेंगे;
- भूगोल के क्रमबद्ध और प्रादेशिक उपागम की व्याख्या कर सकेंगे;
- भूगोल में विभिन्न विश्लेषणात्मक तकनीकों को समझ सकेंगे;
- भूगोल की विभिन्न शाखाओं और इसके विषयक्षेत्र को पहचान सकेंगे।

1.1 दैनिक जीवन में भूगोल

आपने अवश्य ध्यान दिया होगा कि पृथ्वी की सतह पर लगातार परिवर्तन हो रहा है। सामान्यतः प्राकृतिक तत्वों जैसे पर्वतों, नदियों, झीलों आदि में धीरे–धीरे परिवर्तन होता है जबकि सांस्कृतिक तत्वों जैसे भवनों, सड़कों, फसलों आदि में तेजी से परिवर्तन होता है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर यात्रा करते समय आप महसूस करते होंगे कि वृक्षों की संख्या व प्रकार एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में परिवर्तित हो रहे हैं। यह सब पर्यावरण, जिसमें कि हम रहते तथा उसका प्रयोग करते हैं, की लगातार अन्तर्क्रियाओं के फलस्वरूप हो रहा है। भूगोल इस प्रकार के प्रतिरूपों का अध्ययन करता है। भूगोल का एक अन्य पक्ष क्षेत्रीय विभिन्नता के कारकों या कारणों को समझने में है कि किस प्रकार सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और जनांकिकी कारक भौतिक स्थलरूप को परिवर्तित कर रहे है और मानवीय हस्तक्षेप के फलस्वरूप नवीन स्थलरूपों का निर्माण हो रहा है। उदाहरण के लिए मानव, वन या बंजर भूमि का प्रयोग मानवीय अधिवास के रूप में कर रहा है।

भूगोल को प्रायः मानचित्र निर्माण और अध्ययन की कला के रूप में जाना जाता है। मानचित्र हमें रेखाचित्रों की अपेक्षा पृथ्वी के धरातल का अधिक सही व सुस्पष्ट चित्रण प्रस्तुत करते है। पूर्व की भाँति आज भी किसी क्षेत्र का भौगोलिक विवरण रिपोर्टों, यात्रा डायरियों और गजेटियरों में उपलब्ध है। वर्तमान में मानचित्र की रचना भौगोलिक सूचना तंत्र (जी.आई.एस.) के उपकरणों द्वारा उपग्रह छायाचित्रों के प्रयोग से किया जा सकता है। कम्प्यूटर सरलता से उपग्रह छायाचित्रों की सूचनाओं को मानचित्र में परिवर्तित कर देते हैं जो विकास में हुए परिवर्तनों का दर्शाते हैं। इस प्रकार की सूचना से समाज को लाभ होता है। वर्तमान में इस प्रकार के मानचित्रकारों की बड़ी माँग है। आजकल, पृथ्वी को बेहतर ढंग से समझने के लिए भूगोलवेत्ता, अभियंता, पर्यावरण वैज्ञानिक, नगर योजनाकार, सामाजिक वैज्ञानिक तथा अन्य लोग भी भौगोलिक सूचना तंत्रों का प्रयोग सीख रहे हैं।

भूगोल न केवल इस बात की खोज करता है कि पृथ्वी पर कहाँ क्या है बल्कि यह भी कि यहाँ क्यों है? भूगोलवेत्ता क्रियाकलापों की अवस्थिति का अध्ययन करते हैं। मानचित्रों के सावधानीपूर्वक प्रयोग से प्रतिरूपों की पहचान और साथ ही इन प्रतिरूपों के बनने के कारणों का पता लगाते है। इसके बाद क्षेत्रों का वर्णन स्थलरूपों के वितरण, जनसंख्या, मकानों के प्रकार और कृषि के आधार पर किया जाता है। वे स्थानों के बीच के सम्बंधों और आवागमन की जानकारी प्राप्त करते है तथा उस क्षेत्र में होने वाली स्थानिक प्रक्रियाओं के विषय में निष्कर्ष निकालते है।

वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व खाद्य सुरक्षा, स्वास्थ्य, उर्जा के प्रभावकारी उपयोग और पर्यावरण संरक्षण जैसी समस्याओं से जूझ रहा है। समानता के मुद्दे और टिकाऊ विकास भी समान महत्व रखते है। इन सभी की प्राप्ति संसाधनों के सतत् रूप में प्रयोग द्वारा ही की जा सकती है। पर्यावरणीय प्रक्रियाओं के बारे में अधिक जानकारी तथा यह समझने में कि समस्याओं के समाधान में भूमि उपयोग योजना किस प्रकार सहायक हो सकती है, भूगोल का अध्ययन आवश्यक है।

संक्षेप में :

1. भूगोल स्थान का विज्ञान है।
2. मानचित्र भूगोलवेत्ताओं के लिए आवश्यक उपकरण है।
3. मानचित्रों को बनाने के लिए अंकीय भौगोलिक सूचना तंत्र नये उपकरण है।
4. भूगोल के अध्ययन और मानचित्रों के उपयोग से स्थानिक योजना बनाई जा सकती है।

आधारभूत संकल्पनाएँ

इतिहास के भिन्न कालों में भूगोल को विभिन्न रूपों में परिभाषित किया गया है। प्राचीन यूनानी विद्वानों ने भौगोलिक धारणाओं को दो पक्षों में रखा था। प्रथम गणितीय पक्ष, जो कि पृथ्वी की सतह पर स्थानों की अवस्थिति को केन्द्रित करता था तथा दूसरा यात्राओं और क्षेत्रीय कार्यों द्वारा भौगोलिक सूचनाओं को एकत्र करता था। इनके अनुसार, भूगोल का मुख्य उद्देश्य विश्व के विभिन्न भागों की भौतिक आकृतियों और दशाओं का वर्णन करना है। भूगोल में प्रादेशिक उपागम का उद्भव भी भूगोल की वर्णनात्मक प्रकृति पर बल देता है। हम्बोल्ट के अनुसार, भूगोल प्रकृति से सम्बंधित विज्ञान है और यह पृथ्वी पर पाये जाने वाले सभी साधनों का अध्ययन व वर्णन करता है। अन्य महत्वपूर्ण विचारकों ने भूगोल को मानव–पर्यावरण अन्तर्सम्बन्धों के रूप में परिभाषित किया है।

- भूगोल पृथ्वी तल के अध्ययन के रूप में।
- भूगोल मानव–पर्यावरण–अन्तर्सम्बन्धों के अध्ययन के रूप में।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 1.1

1. भूगोल क्या है?

_____

2. पृथ्वी–तल क्यों परिवर्तित हो रहा है?

_____

3. यूनानियों द्वारा अनुसरण की गई दो भिन्न प्रवृत्तियों कौन सी है?

(i) _____ (ii) _____

1.2 भूगोल का विकास

(अ) प्राचीन काल

आरंभिक प्रमाणों के अनुसार इस समय के विद्वान मानचित्र निर्माण और खगोलीय मापों द्वारा पृथ्वी के भौतिक तथ्यों को समझते थे। भूगोल में आरंभिक विद्वान देने का श्रेय यूनान को ही जाता है, जिसमें प्रमुख थे होमर, हेरोडोटस, थेल्स, अरस्तु और इरेटॉस्थनीज।

(ब) पूर्व-आधुनिक काल

यह काल 15 वीं सदी के मध्य से शुरू होकर 18 वीं सदी के पूर्व तक चला। यह काल आरंभिक भूगोलवेत्ताओं की खोजों और अन्वेषणों द्वारा विश्व की भौतिक व सांस्कृतिक प्रकृति के बारे में वृहत ज्ञान प्रदान करता है। 17 वीं सदी का प्रारंभिक काल नवीन वैज्ञानिक भूगोल की शुरूआत का गवाह बना। क्रिस्टोफर कोलम्बस, वास्कोडिगामा, मैगलेन और थॉमस कुक इस काल के प्रमुख अन्वेषणकर्त्ता थे। वारेनियस, कान्ट, हम्बोल्ट और रिटर इस काल के प्रमुख भूगोलवेत्ता थे। इन विद्वानों ने मानचित्रकला के विकास में योगदान दिया और नवीन स्थलों की खोज की, जिसके फलस्वरूप भूगोल एक वैज्ञानिक विषय के रूप में विकसित हुआ।

(स) आधुनिक काल

रिटर और हम्बोल्ट का उल्लेख बहुधा आधुनिक भूगोल के संस्थापक के रूप में किया जाता है। सामान्यतः 19 वीं सदी के उत्तरार्ध का काल आधुनिक भूगोल का काल माना जाता है। वस्तुतः रेट्जेल प्रथम आधुनिक भूगोलवेत्ता थे, जिनने चिरसम्मत भूगोलवेत्ताओं द्वारा स्थापित नींव पर आधुनिक भूगोल की संरचना का निर्माण किया।

(द) नवीन काल

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भूगोल का विकास बड़ी तीव्र गति से हुआ। हार्टशॉर्न जैसे

अमेरिकी और यूरोपीय भूगोलवेत्ताओं ने इस दौरान अधिकतम योगदान दिया। हार्टशॉर्न ने भूगोल को एक ऐसे विज्ञान के रूप में परिभाषित किया जो क्षेत्रीय विभिन्नताओं का अध्ययन करता है। वर्तमान भूगोलवेत्ता प्रादेशिक उपागम और क्रमबद्ध उपागम को विरोधाभासी की जगह पूरक उपागम के रूप में देखते हैं।

1.3 भूगोल का क्षेत्र

भूगोल ने आज विज्ञान का दर्जा प्राप्त कर लिया है, जो पृथ्वी तल पर उपस्थित विविध प्राकृतिक और सांस्कृतिक रूपों की व्याख्या करता है। भूगोल एक समग्र और अन्तर्सम्बंधित क्षेत्रीय अध्ययन है जो स्थानिक संरचना में भूत से भविष्य में होने वाले परिवर्तन का अध्ययन करता है। इस तरह भूगोल का क्षेत्र विविध विषयों जैसे सैन्य सेवाओं, पर्यावरण प्रबंधन, जल संसाधन, आपदा प्रबंधन, मौसम विज्ञान, नियोजन और विविध सामाजिक विज्ञानों में है। इसके अलावा भूगोलवेत्ता दैनिक जीवन से सम्बंधित घटनाओं जैसे पर्यटन, स्थान परिवर्तन, आवासों तथा स्वास्थ्य सम्बंधी क्रियाकलापों में सहायक हो सकता है।

1.4 भूगोल के अध्ययन की विधियां

आज, भूगोल ही एकमात्र ऐसा विषय है जो धरातल के स्थानिक विन्यास की गत्यात्मता को समझने के लिए सभी प्राकृतिक व मानवीय विज्ञानों को एक मंच पर लाता है। भूगोल में अध्ययन की दो मुख्य विधियाँ है :

(अ) क्रमबद्ध (ब) प्रादेशिक

(अ) क्रमबद्ध उपागम

धरातल पर स्थित विशिष्ट प्राकृतिक व मानवीय तथ्यों जो कि कुछ स्थानिक प्रतिरूप या संरचना बनाते हैं, का अध्ययन क्रमबद्ध अध्ययन कहलाता है। साधारणतः क्रमबद्ध भूगोल को चार शाखाओं में विभाजित किया जाता है:

(i) भौतिक भूगोल,

(ii) जैव भूगोल, पर्यावरण भूगोल सहित

(iii) मानव भूगोल,

(iv) भौगोलिक विधियाँ और तकनीक

(i) यह पृथ्वी के विभिन्न तंत्रों जैसे वायुमंडल (वायु), जलमंडल (जल), स्थलमंडल (पृथ्वी की ठोस चट्टान) और जैवमंडल का अध्ययन करता है, जो पृथ्वी पर जीवित जीवों के लिए आवश्यक है।

(ii) यह विभिन्न प्रकार के वनों, घासों, वनस्पतियों और वन्य जीवों के वितरण, मानव

टिप्पणी

प्रकृति सम्बंधों और जैविक पर्यावरण की गुणवत्ता और इसके मानवीय कल्याण के निहितार्थ का अध्ययन करता है।

(iii) यह किसी स्थान की संस्कृति, जनसंख्या, वहाँ के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक पक्षों की गतिशीलता का वर्णन करता है।

(iv) यह क्षेत्र अध्ययन की विधियों व तकनीकों, गुणात्मक, मात्रात्मक, मानचित्रकला विश्लेषण, भौगोलिक सूचना तंत्र और भूमंडलीय सूचना तंत्र (जी. आई. एस. और जी. पी. एस.) और सुदूर संवेदन का अध्ययन करता है।

- भूगोल का विकास चार कालों में हुआ है –
  प्राचीन काल, पूर्व–आधुनिक काल, आधुनिक काल तथा नवीन काल।
- नवीन काल में भूगोल के क्षेत्र में हार्टशॉर्न का प्रमुख योगदान है।
- भूगोल एक समग्र और अन्तर्सम्बंधित क्षेत्र का अध्ययन है जो कि विभिन्न स्तरों पर स्थानिक संरचनाओं में होने वाले परिवर्तनों के अध्ययन से जुड़ा हुआ है।

(ब) प्रादेशिक भूगोल

क्रमबद्ध भूगोल के समान, प्रादेशिक भूगोल स्थानिक छापों तथा सभी क्रमबद्ध भौगोलिक प्रक्रियाओं का प्रदेश के विभिन्न आकारों के रूप में अध्ययन की शुरूआत है। प्रदेश किसी एक कारक जैसे, उच्चावच, वर्षा, वनस्पति, प्रति व्यक्ति आय पर आधारित हो सकते हैं। वे दो या अधिक कारकों के संयोग से निर्मित बहु–प्रकार्यात्मक प्रदेश भी हो सकते हैं। प्रशासनिक इकाई जैसे राज्य, जिला, तहसील को भी प्रदेश के रूप में सम्मिलित किया जा सकता है। प्रादेशिक भूगोल की मुख्य उपशाखायें है :

(i) प्रादेशिक अध्ययन

(ii) प्रादेशिक विश्लेषण

(iii) प्रादेशिक विकास

(iv) प्रादेशिक नियोजन (क्षेत्रीय व समुदाय नियोजन)

- भूगोल में दो प्रमुख उपागम जैसे (अ) क्रमबद्ध और (ब) प्रादेशिक है।
- क्रमबद्ध भूगोल चार उपविभागों में विभाजित है
- प्रादेशिक भूगोल के भी चार उपविभाग है।

पाठगत प्रश्न 1.2

1. क्रमबद्ध भूगोल की कौन–सी चार शाखायें है?

(i) _____ (ii) _____ (iii) _____ (iv) _____

2. प्रादेशिक भूगोल की मुख्य शाखाओं के नाम बताइए।

_____

भौगोलिक चिंतन और अवधारणाएँ हमारे दिन–प्रतिदिन के निर्णयों को विविध प्रकार से प्रभावित करते है। उदाहरण के लिए नगरीय मास्टर प्लान बनाते समय या ग्रामीण विकास पर विचार करते समय भौतिक स्थलाकृतियों, जलवायु, संसाधनों की उपलब्धता तथा लोगों की आवश्यकताओं के बारे में जानना बहुत जरूरी है। नगरीय क्षेत्रों से उद्योगों को हटाने का निर्णय लेने पर औद्योगिक भूमि उपयोग के विस्तार के लिए कृषि क्षेत्रों की जरूरत होती है। इससे किसान विस्थापित हो जाएँगे तथा उनकी आय के स्रोत नष्ट हो जाएँगे। इसी प्रकार रेलमार्गों या महामार्गों के निर्माण से दोनों ओर मकान बन जाते है। ऐसे गलियारों पर कई आर्थिक क्रिया कलाप केन्द्रित हो जाते हैं। बाढ़ या भूकम्प के बाद सभी व्यक्तियों को राहत सामग्री की जरूरत होती है। लोगों की जरूरत के अनुसार राहत सामग्री के उचित वितरण के लिए उस क्षेत्र के भूगोल का ज्ञान होता आवश्यक है। राहत सामग्री का वितरण भी प्रभावित क्षेत्रों की जलवायु व

व्यवस्थित ज्ञान की प्रत्येक शाखा की कुछ विधियाँ/यंत्र और तकनीक होती है, जिन पर इसकी बुनियाद आधारित होती है। भूगोल का भी अपना एक यंत्र, तकनीक व विधियां है। इसमें ग्लोब, मानचित्र, आरेख, उच्चावच प्रतिमान और स्थानिक अन्वेषण विधियाँ है। मानचित्र विज्ञान का सम्बंध मानचित्र और आरेख तैयार करने से है, जो भौगोलिक परिघटनाओं के वितरण को दर्शाते हैं। भूगोल की मुख्य विधियाँ आगमनिक व निगमनिक है। विभिन्न सांख्यिकीय तकनीक और प्रतिमानों का प्रयोग प्रादेशिक अन्वेषण और स्थानिक वितरणों और अन्तः क्रियाओं के लिए किया जाता है।

अ. मानचित्र विज्ञान

हममें से अधिकतर मानचित्रों द्वारा आकर्षित होते है। ''मानचित्र'' विज्ञान मानचित्र व आरेख निर्माण करने का प्रयोगात्मक अध्ययन है। यह मानचित्रों और प्रतीकाक्षरों की सहायता से पृथ्वी को प्रस्तुत करता है। पारंपरिक रूप से मानचित्रों का निर्माण कलम, स्याही और कागज की सहायता से होता रहा है, परन्तु कम्प्यूटर ने मानचित्र विज्ञान में क्रांति ला दी है। जी. आई. एस. विधि के द्वारा कोई भी व्यक्ति मानचित्र व आरेख अपनी इच्छानुसार पूर्ण दक्षता से तैयार कर सकता है।

स्थानिक आँकड़े मापन और अन्य प्रकाशित स्रोतों द्वारा प्राप्त किये जाते हैं और उसे

विभिन्न उद्देश्यों के लिए प्रयोग हेतु डाटाबेस में भंडारित किया जा सकता है। स्याही और कागज द्वारा मानचित्र बनाने की परंपरा अब समाप्त होती जा रही है। इसका स्थान कम्प्यूटर निर्मित मानचित्र ले रहे है। ये मानचित्र अधिक गत्यात्मक और अंतः क्रियात्मक होते है तथा अंकीय युक्ति से इसमें परिवर्तन किये जा सकते हैं। आज अधिक व्यापारिक गुणवत्ता वाले मानचित्र कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर की सहायता से बनाये गये है। ये कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर कम्प्यूटर आधारित आंकड़ा प्रबंधन (CAD), भौगोलिक सूचना तंत्र (GIS) और भूमंडलीय स्थिति तंत्र (GPS) है।

मानचित्रकला, आरेखण तकनीक के संग्रहण से निकलकर वास्तविक विज्ञान बन गई है। एक मानचित्रकार को अवश्य समझना चाहिए कि कौन सा संकेत पृथ्वी के बारे में प्रभावशाली सूचना देता है और उन्हें ऐसे मानचित्र तैयार करने चाहिए जिनसे प्रत्येक व्यक्ति मानचित्रों के प्रयोग हेतु उत्साहित हो और वह इसका प्रयोग स्थानों को ढूँढ़ने तथा अपने दैनिक जीवन में करे। मानचित्रकारों को भूगणित के साथ–साथ आधुनिक गणित में भी पारंगत होना चाहिए ताकि वे समझ सकें कि पृथ्वी की आकृति, निरीक्षण के लिए चौरस सतह पर प्रक्षेपित मानचित्र के चिन्हों की विकृति को किस प्रकार प्रभावित करती है।

''भौगोलिक सूचना तंत्र'' पृथ्वी के विषय में सूचनाओं का भंडार है, जो कम्प्यूटर द्वारा स्वचालित व उचित रीति से पुनः प्राप्त किया जा सकता है। एक जी. आई. एस. विशेषज्ञ को भूगोल के अन्य उपविषयों के साथ–साथ कम्प्यूटर विज्ञान तथा आंकड़ा संचय तंत्र की समझ होनी चाहिए। पारंपरिक रूप में मानचित्रों का उपयोग पृथ्वी की खोज और संसाधनों के दोहन में होता रहा है। जी. आई. एस. तकनीक मानचित्र विज्ञान का विस्तार है, जिसके द्वारा पारंपरिक मानचित्रण की क्षमता और विश्लेषणात्मक शक्ति काफी बढ़ गई है। आजकल वैज्ञानिकों का समुदाय मानवीय क्रियाकलापों के फलस्वरूप पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों को जान गये है तथा जी. आई. एस. तकनीक भूमंडलीय परिवर्तनों की प्रक्रियाओं को समझने का अनिवार्य उपकरण बन गया है। विविध प्रकार के मानचित्रों और उपग्रह सूचना तंत्रों को मिलाकर प्राकृतिक तंत्रों की जटिल अन्तः क्रियाओं की पुनर्रचना की जा सकती है। इस प्रकार की सजीव कल्पना से यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि बार–बार बाढ़ से ग्रस्त होने वाले क्षेत्र का क्या होगा या किसी विशेष उद्योग के किसी क्षेत्र में स्थापित या विकसित होने से क्षेत्र में क्या परिवर्तन होंगे।

ब्रिटिश आर्डिनेन्स सर्वेक्षण के आधार पर स्थापित भारतीय सर्वेक्षण विभाग के बाद राष्ट्रीय एटलस एवं विषयक मानचित्रण संगठन (एन. ए. टी. एम. ओ.) भारत में मानचित्र निर्माण की प्रमुख संस्था है। इसके दस लाख श्रृंखला के मानचित्र बहुत प्रसिद्ध हैं। 1960 में पांडिचेरी के फ्रांसीसी संस्थान के मानचित्रण इकाई ने भूगोल के विकास में उल्लेखनीय प्रभाव डाला। इस संस्थान ने 1:1,00,000 के पैमाने पर वनस्पति और मृदा मानचित्र बनाये थे। इस संस्थान को संसाधनों के मानचित्रण के लिए खूब प्रशंसा मिली। 1995 में इस इकाई का दर्जा बढ़ाकर ज्योमेटिक्स (Geomatics) प्रयोगशाला कर दिया गया, जिसमें कम्प्यूटर मानचित्र और भौगोलिक सूचना तंत्र पर

विशेष बल दिया जाता है।

ब. भूगोल में मात्रात्मक विधियाँ

भूगोल की इन तकनीकों का सम्बंध मुख्यतः संख्यात्मक विधियों से है। स्थानिक विश्लेषण के अलावा भौगोलिक अध्ययनों में गुच्छ विश्लेषण और भेदमूलक विश्लेषण भी शामिल है। इन सांख्यिकीय तकनीकों को आप आगामी अध्यायों में पढ़ेंगे। इसके द्वारा आप क्षेत्र में होने वाले क्रियाकलापों और क्षेत्रों के बीच अन्तर्सम्बंधों को जान सकेंगे तथा प्रतिरूपों को पहचान सकेंगे।

स. प्रादेशिक विज्ञान विधि

प्रादेशिक विज्ञान आंदोलन का प्रारंभ 1950 में वाल्टर इसार्ड के नेतृत्व में हुआ। इसने पारंपरिक भूगोल की गुणात्मक प्रवृत्तियों के विपरीत भौगोलिक प्रश्नों को और अधिक मात्रात्मक और विश्लेषणात्मक आधार प्रदान किया। प्रादेशिक विज्ञान ने ज्ञान के एक ऐसे तंत्र का निर्माण किया जिसमें प्रादेशिक विकास हेतु प्रादेशिक अर्थशास्त्र, संसाधन प्रबंधन, स्थानीयकरण सिद्धांत, नगरीय तथा प्रादेशिक नियोजन, परिवहन और संचार, मानव भूगोल, जनसंख्या वितरण, भूदृश्य पारिस्थितिकी और पर्यावरणीय गुणवत्ता का

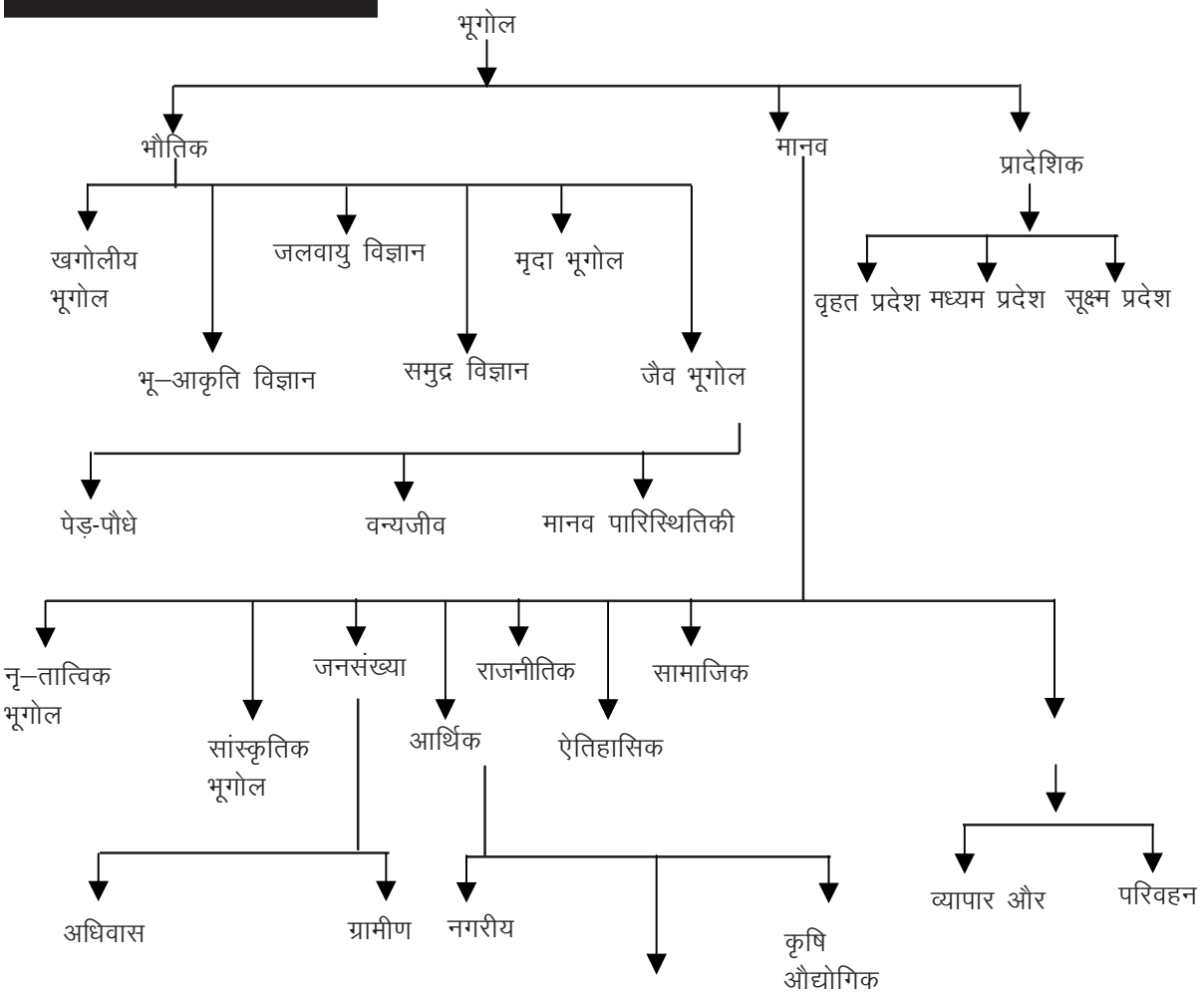

चित्र 1.1 भूगोल की शाखाएँ

टिप्पणी

धरातल की विभिन्न परिघटनाओं को अलग–अलग या सामूहिक रूप में लिया जा सकता है। इन्हें भौतिक तथा मानवीय परिघटनाओं के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। इस प्रकार भूगोल की तीन प्रमुख शाखाएँ है : भौतिक भूगोल, मानव भूगोल और प्रादेशिक भूगोल।

(अ) भौतिक भूगोल

भौतिक भूगोल, भौतिक परिघटनाओं की व्याख्या व अध्ययन करता है, साथ ही यह भूगर्भशास्त्र, मौसम विज्ञान, जन्तु विज्ञान और रसायनशास्त्र से भी जुड़ा हुआ है। 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यह विषय बहुत लोकप्रिय हुआ। इसकी कई उपशाखाएँ हैं, जो विविध भौतिक परिघटनाओं की विवेचना करती हैं।

(i) खगोलीय भूगोल : यह पार्थिव घटनाओं का अध्ययन करता है, जिसमें मुख्य रूप से पृथ्वी की सतह के साथ–साथ सूर्य, चन्द्रमा और सौरमंडल के ग्रहों को शामिल किया जाता है।

(ii) भूआकृति विज्ञान : यह पृथ्वी के स्थलरूपों का अध्ययन करता है। इसके अन्तर्गत जल, वायु और हिमानी के अपरदनात्मक, परिवहनात्मक और निक्षेपात्मक कार्यों द्वारा स्थलरूपों की उत्पत्ति व विकास शामिल है।

(iii) जलवायु विज्ञान : जलवायु विज्ञान वायुमंडलीय दशाओं और सम्बंधित जलवायविक और मौसमी परिघटनाओं का अध्ययन है। इसके अन्तर्गत वायुमंडलीय संघटन, जलवायविक प्रदेशों तथा मौसमों आदि का अध्ययन शामिल है।

(iv) समुद्र विज्ञान : यह महासागरीय तल की गहराइयों, धाराओं, प्रवाल भित्तियों और महाद्वीपीय विस्थापन आदि से सम्बंधित महासागरीय संघटकों का अध्ययन करता है।

(v) मृदा भूगोल : यह विविध मृदा निर्माण प्रक्रियाओं के साथ–साथ इसके भौतिक, रासायनिक और जैविक संघटकों, रंग और प्रकार, संरचना व वितरण और वहन क्षमता आदि का भी अध्ययन करता है।

(vi) जैव भूगोल : यह स्थान की जैविक घटनाओं के अध्ययन से सम्बंधित है, विशेष तौर पर विविध प्रकार के वनस्पतियों और वन्य जीवों के वितरणों का अध्ययन करता है। जैव भूगोल को पादप या वनस्पति भूगोल, जन्तु भूगोल और मानव पारिस्थितिकी के रूप में उपविभाजित किया जा सकता है।

(ब) मानव भूगोल

मानव भूगोल पृथ्वी की सतहों और मानव समुदायों के बीच सम्बंधों का संश्लेषित अध्ययन है। यह तीन संघटकों से निकटतम रूप में जुड़ा है: मानवीय जनसंख्या का स्थानिक विश्लेषण; मानवीय जनसंख्या और पर्यावरण के बीच के संबंधों का पारिस्थितिक

विश्लेषण और प्रादेशिक सश्लेषण, जो कि धरातल के क्षेत्रीय विभेदीकरण में पहली दोनों विषयवस्तुओं को जोड़ता है।

मानव भूगोल की कई उप–शाखायें है :

(i) मानवविज्ञान भूगोल : यह बड़े पैमाने पर स्थानिक सन्दर्भ में विविध प्रजातियों का अध्ययन करता है।

(ii) सांस्कृतिक भूगोल : यह मानवीय संस्कृतियों की उत्पत्ति, संघटकों और प्रभावों की चर्चा करता है।

(iii) आर्थिक भूगोल : यह स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय और विश्व स्तर पर आर्थिक गतिविधियों की अवस्थिति व वितरण का अध्ययन करता है। आर्थिक भूगोल का अध्ययन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता हैः संसाधन भूगोल, कृषि भूगोल, औद्योगिक व परिवहन भूगोल।

(iv) राजनीतिक भूगोल : यह स्थानिक सन्दर्भ में राजनीतिक परिघटनाओं का अध्ययन करता है। इसका मुख्य उद्देश्य राजनीतिक व प्रशासनिक प्रदेशों के उद्भव व रूपान्तरण की व्याख्या करना है।

(v) ऐतिहासिक भूगोल : भौगोलिक परिघटनाओं का स्थानिक व कालिक अध्ययन ऐतिहासिक भूगोल के अन्तर्गत किया जाता है।

(vi) सामाजिक भूगोल : यह स्थान की सामाजिक परिघटनाओं का विश्लेषण करता है। निर्धनता, स्वास्थ्य, शिक्षा, जीवनयापन सामाजिक भूगोल के कुछ मुख्य क्षेत्र हैं।

(viii) जनसंख्या भूगोल : यह जनसंख्या के विविध पक्षों जैसे जनसंख्या वितरण, घनत्व, संघटन, प्रजनन क्षमता, मर्त्यता, प्रवास आदि का अध्ययन करता है।

(viii) अधिवास भूगोल : यह ग्रामीण/नगरीय अधिवासों के आकार, वितरण, प्रकार्य, पदानुक्रम और अधिवास व्यवस्था से सम्बंधित अन्य आधारों का अध्ययन करता है।

(स) प्रादेशिक भूगोल : प्रादेशिक भूगोल के अन्तर्गत प्रदेशों का सीमांकन [redacted] विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है।

1. भूगोल की दो शाखाएँ कौन सी हैं?

   (i) _____ (ii) _____

2. भौगोलिक अध्ययन की दो तकनीकों के नाम बताइए?

   (i) _____ (ii) _____

टिप्पणी

3.

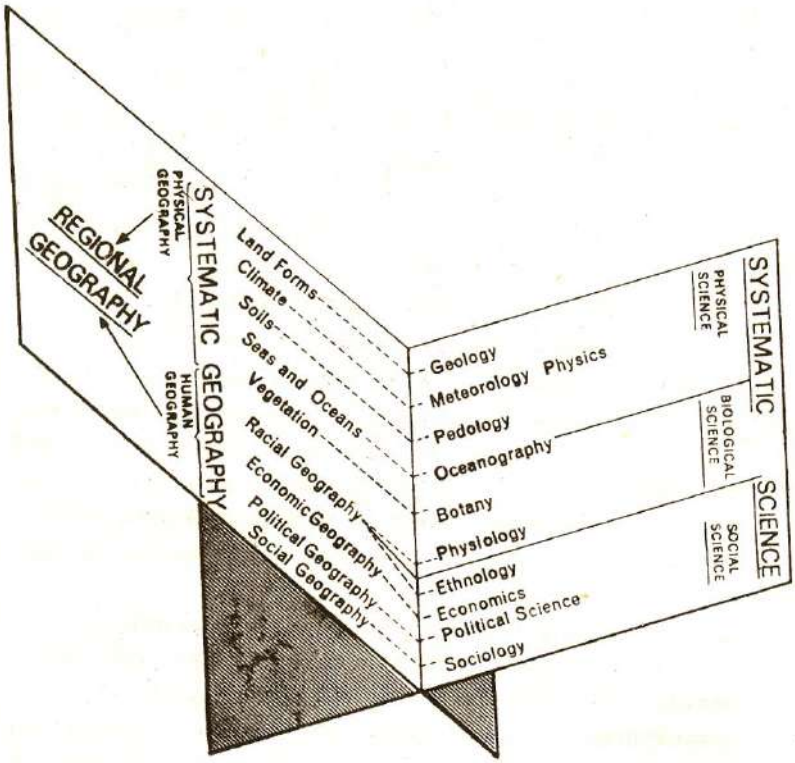
SYSTEMATIC SCIENCE
PHYSICAL SCIENCE
BIOLOGICAL SCIENCE
SOCIAL SCIENCE
Geology
Meteorology
Physics
Pedology
Oceanography
Botany
Physiology
Ethnology
Economics
Political Science
Sociology
SYSTEMATIC GEOGRAPHY
PHYSICAL GEOGRAPHY
HUMAN GEOGRAPHY
Land Forms
Climate
Soils
Seas and Oceans
Vegetation
Racial Geography
Economic Geography
Political Geography
Social Geography
REGIONAL GEOGRAPHY

[redacted]भूगोल एक अन्तर्सम्बंधित विज्ञान के रूप में (हेटनर और हार्टशॉर्न पर आधारित)

- भूगोल की तीन मुख्य शाखाएँ है : भौतिक, मानव और प्रादेशिक।
- भौतिक भूगोल में प्राकृतिक परिघटनाओं का उल्लेख होता है, जैसे कि जलवायु विज्ञान, मृदा और वनस्पति।
- मानव भूगोल भूतल और मानव समाज के सम्बंधों का वर्णन करता है।
- भूगोल एक अन्तरा–अनुशासनिक विषय है।

भूगोल का गणित, प्राकृतिक विज्ञानों और सामाजिक विज्ञानों के साथ घनिष्ठ सम्बंध है। जबकि अन्य विज्ञान विशिष्ट प्रकार की परिघटनाओं का ही वर्णन करते हैं, भूगोल विविध प्रकार की उन परिघटनाओं का भी अध्ययन करता है, जिनका अध्ययन अन्य विज्ञानों में भी शामिल होता है। इस प्रकार भूगोल ने स्वयं को अन्तर्सम्बंधित व्यवहारों के संश्लेषित अध्ययन के रूप में स्थापित किया है। चित्र 1.2 अन्तर्सम्बंधित विज्ञान के बारे में एक विचार देता है।

भूगोल स्थानों का विज्ञान है। भूगोल प्राकृतिक व सामाजिक दोनों ही विज्ञान है, जो कि मानव व पर्यावरण दोनों का ही अध्ययन करता है। यह भौतिक व सांस्कृतिक विश्व को जोड़ता है। भौतिक भूगोल पृथ्वी की व्यवस्था से उत्पन्न प्राकृतिक पर्यावरण का अध्ययन करता है। मानव भूगोल राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और जनांकिकीय प्रक्रियाओं से सम्बंधित है। यह संसाधनों के विविध प्रयोगों से भी सम्बंधित है।

प्रारंभिक भूगोल सिर्फ स्थानों का वर्णन करता था। हालाँकि यह आज भी भूगोल के अध्ययन में शामिल है परन्तु पिछले कुछ वर्षों में इसके प्रतिरूपों के वर्णन में परिवर्तन हुआ है।

[redacted]नाओं का वर्णन सामान्यतः दो उपागमों के आधार पर किया जाता है जैसे (i) प्रादेशिक और (ii) क्रमबद्ध। प्रादेशिक उपागम प्रदेशों के निर्माण व विशेषताओं की व्याख्या करता है। यह इस बात का वर्णन करने का प्रयास करता है कि कोई क्षेत्र कैसे और क्यों एक दूसरे से अलग है। प्रदेश भौतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, जनांकिकीय आदि हो सकता है।

क्रमबद्ध उपागम परिघटनाओं तथा सामान्य भौगोलिक महत्वों के द्वारा संचालित है। प्रत्येक परिघटना का अध्ययन क्षेत्रीय विभिन्नताओं व दूसरे के साथ उनके संबंधों के

टिप्पणी

आधार पर किया जाता है।

अब हम समझ सकते है कि प्राकृतिक व मानवीय परिघटनाओं के कारणों व प्रभावों के फलस्वरूप भौतिक व मानवीय स्थलरूपों का निर्माण होता है।

भूगोल की तीन मुख्य शाखायें हैः भौतिक, मानव और प्रादेशिक। भौतिक भूगोल विविध उपशाखाओं में विभाजित है, जिनके नाम इस प्रकार है : भूआकृतिविज्ञान, जलवायु विज्ञान, समुद्र विज्ञान, मृदा और जैव भूगोल। मानव भूगोल भी विविध उपशाखाओं में विभाजित है, जैसे सांस्कृतिक, जनसंख्या, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक। प्रादेशिक भूगोल भी अन्य शाखाओं में विभाजित है जैसे वृहत्, [redacted] एक दूसरे से अन्तर्सम्बंधित है।

1. निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दीजिएः
   (i) भूगोल शब्द को परिभाषित कीजिए।
   (ii) भूगोल को सभी विज्ञानों की माता क्यों कहा जाता है?
   (iii) भूगोल की दो मुख्य अध्ययन विधियाँ कौन सी है?
   (iv) भूगोल के विकास की चार अवस्थाएँ क्या है?
   (v) भौतिक व मानव भूगोल को परिभाषित कीजिए।
2. निम्नलिखित में अंतर स्थापित कीजिए
   (i) क्रमबद्ध और प्रादेशिक भूगोल
   (ii) भौतिक भूगोल और जैव भूगोल
   (iii) जनसंख्या और आर्थिक भूगोल
3. मानव भूगोल भूगोल का एक महत्वपूर्ण अंग क्यों है? उपयुक्त उदाहरणों के साथ व्याख्या कीजिए।
4. भौगोलिक अध्ययनों की तकनीकों का विश्लेषण कीजिए।

1.1

1. भूगोल मुख्यतः सभी भौतिक और मानवीय परिघटनाओं के अन्तर्सम्बंधों और इन अन्तर्सम्बधों के फलस्वरूप बनने वाले स्थलरूपों का अध्ययन है।
2. जिस पर्यावरण में हम रहते हैं, उसकी निरन्तर अन्तर्क्रियाओं और हमारे प्रयोग के तरीकों के कारण धरातल परिवर्तित हो रहा है।
3. (i) गणितीय प्रवृत्ति
   (ii) यात्रा व क्षेत्रीय कार्यों के द्वारा भौगोलिक सूचना

1.2

1. (i) भौतिक भूगोल, (ii) जैव भूगोल,
   (iii) मानव भूगोल और (iv) भौगोलिक विधि व तकनीक
2. (i) प्रादेशिक अध्ययन (ii) प्रादेशिक विश्लेषण

2

भूगर्भ और उसके पदार्थ

संभवतः पृथ्वी ही पूरे ब्रह्मांड का एक ऐसा ज्ञात ग्रह है जिस पर विकसित जीवन पाया जाता है। अन्य आकाशीय पिण्डों की भाँति पृथ्वी की आकृति भी गोलाकार है। आप यह भी जानते हैं कि स्रोतों से गर्म जल और ज्वालामुखियों से अत्यन्त गर्म लावा पृथ्वी के भीतरी भागों से निकलकर धरातल पर पहुँचता है। इससे स्पष्ट होता है कि धरातल के नीचे तापमान बहुत ऊँचा है। संसार में खनन कार्य 5 किलोमीटर से भी कम गहराई तक ही सीमित है। जैसा कि हम जानते हैं, स्थलाकृतियों का स्वरूप सदैव एक जैसा नहीं रहता। उनका रूप लगातार बदलता रहता है। बाह्य शक्तियों के एक समूह में वे शक्तियाँ सम्मलित हैं जो शैलों को कमजोर कर देती हैं, विखंडित कर देती हैं। दूसरे प्रकार की शक्तियाँ टूटी–फूटी शैलों को ऊँचे भू भागों से हटाकर नीचे के भू भागों में जमा करती रहती हैं। ये दोनों प्रक्रिया ही शैलों की टूट फूट और नई स्थलाकृतियों के निर्माण के लिए जिम्मेदार हैं। हमारे लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण मृदा का निर्माण भी एक सीमा तक इन्हीं प्रक्रियाओं द्वारा होता है। इस पाठ में हम पृथ्वी के भूगर्भ और उसके ऊपरी भाग–भूपर्पटी के पदार्थों का अध्ययन करेंगे। हम अपक्षय और उसके प्रकार, तल संतुलन की प्रक्रिया और मृदा के निर्माण तथा उसके महत्व के विषय में भी अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- पृथ्वी के आन्तरिक भाग या भूगर्भ के संबंध में प्रत्यक्ष प्रेक्षण करने की सीमाओं को समझा सकेंगे;
- भूगर्भ की विभिन्न परतों की तुलना उनकी मोटाई, तापमान, घनत्व और दबाव के संदर्भ में कर सकेंगे;
- शैल और खनिजों में अन्तर कर सकेंगे;

टिप्पणी

- रचना के आधार पर शैलों का वर्गीकरण कर सकेंगे;
- शैलों का आर्थिक महत्त्व बता सकेंगे;
- अपक्षय शब्द की व्याख्या की व्याख्या कर सकेंगे और उपयुक्त उदाहरणों द्वारा उसके प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे;
- धरातल के स्वरूप को बदलने वाली तलसंतुलन की विभिन्न प्रक्रियाओं की व्याख्या कर सकेंगे;
- निम्नीकरण और अधिवृद्धि में अन्तर कर सकेंगे;
- मृदा निर्माण और अपक्षय के बीच सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे;
- मृदा निर्माण में सहायक विभिन्न कारकों की व्याख्या कर सकेंगे।

2.1 पृथ्वी का आन्तरिक भाग या भूगर्भ

पृथ्वी के आन्तरिक भाग को प्रत्यक्ष रूप से देखना सम्भव नहीं है; क्योंकि यह बहुत बड़ा गोला है और इसके भूगर्भीय पदार्थों की बनावट गहराई बढ़ने के साथ बदलती जाती है। मनुष्य ने खनन् एवम् वेधन क्रियाओं द्वारा इसके कुछ ही किलोमीटर तक के आन्तरिक भाग को प्रत्यक्ष रूप से देखा है। गहराई के साथ तापमान में तेजी से वृद्धि के कारण अधिक गहराइयों तक खनन और वेधन कार्य करना संभव नहीं है। भूगर्भ में इतना अधिक ऊँचा तापमान है कि वह वेधन में प्रयोग किए जाने वाले किसी भी प्रकार के यंत्र को पिघला सकता है। अतः वेधन कार्य कम गहराइयों तक ही सीमित है। इसलिए पृथ्वी के गर्भ के विषय में प्रत्यक्ष जानकारी के मिलने में कई कठिनाइयाँ आती हैं। पृथ्वी के विशाल आकार और गइराई के साथ बढ़ते तापमान ने भूगर्भ की प्रत्यक्ष जानकारी की सीमाएँ निश्चित कर दी हैं।

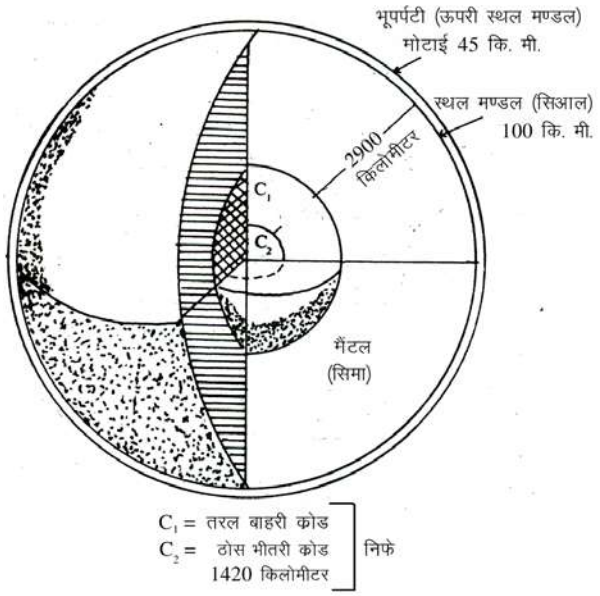

चित्र 2.1 पृथ्वी के आन्तरिक भागों की संकेन्द्रीय परतें

2.2 भूगर्भ की संरचना

पृथ्वी की आन्तरिक परतों का वर्गीकरण और उनकी मोटाइयों को चित्र संख्या 2.1 में दर्शाया गया है। पृथ्वी की सबसे अधिक गहराई वाली परत को **क्रोड** कहते हैं। यह सबसे अधिक घनत्व वाली परत है। इसका घनत्व 11.0 से भी अधिक है। यह लोहा और निकिल धातुओं से बनी है। इसीलिये क्रोड़ को **निफे** (निकिल+फेरम, लोहा) कहते हैं। क्रोड को पुनः दो परतों में बाँट सकते हैं। इसकी भीतरी परत ठोस है जिसे चित्र सी2 से दिखाया गया है। दूसरी परत अर्द्ध तरल है जिसे चित्र सी1 से दिखाया गया है। जो परत क्रोड को घेरे हुए है, उसे **मैंटल** कहते हैं। यह परत मुख्यतः सिलीका और मैगनीशियम से बनी है। इसलिए इस परत को **सीमा** (सिलीका+मैगनीशियम) भी कहते हैं। इसका घनत्व 3.1 से 5.1 तक है। मैंटल पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत से घिरा है। इसे **स्थलमण्डल** कहते हैं, जिसका घनत्व 2.75 से 2.90 है। स्थलमण्डल के प्रमुख निर्माणकारी तत्व सिलीका (सि) एल्यूमीनियम (एल) हैं। इसलिए इस परत की **स्याल** (सिलीका+एल्यूमीनियम) भी कहते हैं। स्थलमण्डल के ऊपरी भाग को **भूपर्पटी** कहते हैं।

- पृथ्वी के आन्तरिक भाग की तीन प्रमुख संकेन्द्रीय परते हैं – क्रोड, मैंटल और स्थलमंडल।
- क्रोड सबसे आन्तरिक परत है। यह पृथ्वी की सबसे अधिक घनत्व वाली परत है। इसका निर्माण निकिल और लौह तत्वों से हुआ है।
- क्रोड और स्थलमण्डल के बीच की परत मैंटल है। इसके प्रमुख निर्माणकारी तत्व सिलीका और मैगनीशियम हैं।
- स्थलमण्डल पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत है, जिसमें सिलीका और एल्यूमिनियम तत्वों की अधिकता है।

पाठगत प्रश्न 2.1

1. पृथ्वी के भूगर्भ की प्रत्यक्ष जानकारी में कौन सा कारक प्रमुख रूप से बाधक है?

   _____

2. भूगर्भ की तीन परतों के नाम बताइए –

   (क) _____ (ख) _____ (ग)_____

3. पृथ्वी की सबसे आन्तरिक परत का नाम बताइये।

   _____

4. क्रोड का घनत्व कितना है?

   _____

टिप्पणी

5. भूपर्पटी पृथ्वी की किस परत में शामिल है?

_____

6. पृथ्वी की सबसे पतली परत कौन–सी है?

_____

2.3 भूगर्भ का तापमान, दबाव तथा घनत्व

(i) तापमान : गहरी खानों और गहरे कूपों से जानकारी मिलती है कि पृथ्वी के भीतर गहराई बढ़ने के साथ तापमान बढ़ता है। यह बात ज्वालामुखी के उद्‌गारों में पृथ्वी के अन्दर से निकले अत्यन्त गर्म लावा से भी सिद्ध होती है कि भूगर्भ की ओर तापमान बढ़ता जाता है। विभिन्न प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि भूगर्भ में ध्धरातल से केन्द्र की ओर तापमान बढ़ने की दर एक समान नहीं है। कहीं पर यह तेज है और कहीं पर धीमी। प्रारम्भ में तापमान बढ़ने की औसत दर प्रत्येक 32 मीटर की गइराई पर 1^0 सेल्सियस है। तापमान की इस स्थिर वृद्धि के आधार पर 10 किलोमीटर की गहराई में तापमान धरातल की अपेक्षा 300^0 से. अधिक होना चाहिये और 40 किलोमीटर की गहराई में इसे 1200^0 से. होना चाहिये। तापमान की इस वृद्धि दर के अनुसार भूगर्भ के सभी पदार्थ पिघली हुई अवस्था में होने चाहिये। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। चट्‌टानें जितनी अधिक गहराई में होंगी उनके पिघलने का तापमान–बिन्दु उतना ही ऊँचा होगा। इसका कारण यह है कि भूगर्भ में नीचे दबी शैलों पर ऊपर की शैलों का इतना अधिक दाब होता है जिससे उनके पिघलने का तापमान–बिन्दु धरातल की तुलना में बहुत अधिक हो जाता है। उदाहरण के लिये बैसाल्टी लावा शैल धरातल पर 1250^0 से. पर पिघलती है परन्तु वही शैल भूगर्भ में 32 किलोमीटर की गहराई पर 1400^0 से. तापमान पर पिघलेगी। भूकम्प की तरंगों के व्यवहार से भी यह बात सिद्ध होती है। उनसे इस बात की भी पुष्टि होती है कि भूगर्भ में तापमान के बदलने के साथ पदार्थों की संरचना में भी परिवर्तन आता है। भूगर्भ के ऊपरी 100 किलोमीटर में तापमान के बढ़ने की दर 12^0 से. प्रति किलोमीटर है, अगले 300 किलोमीटर में यह वृद्धि–दर 20^0 से. प्रति किलोमीटर है और इसके बाद यह वृद्धि–दर केवल 10^0 से. प्रति किलोमीटर रह जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि धरातल के नीचे तापमान के बढ़ने की दर पृथ्वी के केन्द्र की ओर घटती जाती है। इस गणना के अनुसार पृथ्वी के केन्द्र का तापमान लगभग 4000^0 से 5000^0से. के बीच है। भूगर्भ में इतना ऊँचा तापमान उच्च दाब के फलस्वरूप हुई रासायनिक प्रक्रियाओं और रेडियोधर्मी तत्वों के विखंडन के कारण ही संभव है।

(ii) दबाव – भूगर्भ में ऊपरी परतों के बहुत अधिक भार के कारण पृथ्वी के सतह से केन्द्र की ओर जाने पर दबाव भी निरन्तर बढ़ता जाता है। पृथ्वी के केन्द्र पर अत्यधिक दबाव है। यह दबाव समुद्र तल पर वायुमंडल के दाब से 30–40 लाख

गुना अधिक है। केन्द्र पर उच्च तापमान होने के कारण यहां पाये जाने वाले पदार्थों को द्रव रूप में होना स्वाभाविक है, परन्तु इस ऊपरी भारी दबाव के कारण यह द्रव रूप ठोस का आचरण करता है। सम्भवतः इसका स्वरूप प्लास्टिक नुमा है।

(iii) घनत्व – पृथ्वी के केन्द्र की ओर निरन्तर दबाव के बढ़ने और भारी पदार्थों के होने के कारण उसकी परतों का घनत्व भी बढ़ता जाता है। अतः सबसे गहरे भागों में अत्यधिक घनत्व वाले पदार्थों का होना स्वाभाविक है। इस बारे में अनुच्छेद 2.2 में पहले ही चर्चा की जा चुकी है।

पाठगत प्रश्न 2.2

1. पृथ्वी के केन्द्र का तापमान कितना है?

_____

2. पृथ्वी के केन्द्र का दाब कितना है?

_____

3. पृथ्वी के केन्द्र की ओर जाने पर घनत्व क्यों बढ़ता जाता है?

_____

2.4 भूपर्पटी के पदार्थ

स्थलमंडल का सबसे ऊपर भाग भूपर्पटी कहलाता है। यह पृथ्वी का सबसे महत्वपूर्ण भाग है; क्योंकि इसकी ऊपरी सतह पर मानव रहते हैं। जिन पदार्थों से भूपर्पटी बनी है, उन्हें शैल कहते हैं। शैलें विभिन्न प्रकार की होती हैं। शैलें ग्रेनाइट की तरह कठोर, चीका मिट्टी की तरह मुलायम अथवा बजरी के समान बिखरी होती है। शैलें विभिन्न रंग, भार और कठोरता लिए होती है। शैलें खनिजों से बनी हैं। वे एक या एक से अधिक खनिजों का मिश्रण हैं। दूसरी ओर खनिज एक या एक से अधिक तत्वों के निश्चित अनुपात में मिलने से बने हैं। खनिजों में एक निश्चित रासायनिक संगठन होता है। भूपर्पटी 2000 से भी अधिक खनिजों से बनी है, परन्तु इनमें से केवल 6 खनिजों की अधिकता है। इन्हीं का पृथ्वी की ऊपरी परत के निर्माण में विशेष योग है। इन 6 खनिजों के नाम – फेल्सपार, क्वार्ट्ज, पाइराक्सीन, एम्फीबोल, अभ्रक और ओलीबीन हैं।

ग्रेनाइट एक कठोर शैल है। इसके निर्माणकारी खनिज क्वार्टज, फेल्सपार और अभ्रक हैं। इन खनिजों के अनुपात में भिन्नता होने से ग्रेनाइट के रंग और उसकी कठोरता में अन्तर आ जाता है। जिन खनिजों में धात्विक अंश होता है, उन्हें **धात्विक खनिज**

टिप्पणी

कहते हैं। हैमेटाइट एक प्रमुख लौह–अयस्क है। यह धात्विक खनिज है। अयस्क धात्विक खनिज होते हैं, जिनसे धातुओं का निकालना लाभकारी होता है। शैलों का निर्माण खनिजों से हुआ है। इनका मानव जीवन में बहुत अधिक महत्व है।

2.5 शैलों के प्रकार

शैलें अपने गुण, कणों के आकार और उनके बनने की प्रक्रिया के आधार पर विभिन्न प्रकार की होती हैं। निर्माण क्रिया की दृष्टि से शैलों के तीन वर्ग हैं :– (क) आग्नेय, (ख) अवसादी और (ग) रूपान्तरित।

(क) आग्नेय शैल

''इंगनियस'' अंग्रेजी भाषा का शब्द है। यह लैटिन भाषा के ''इंग्निस'' शब्द से बना है। ''इंग्निस'' शब्द का अर्थ अग्नि से है। इससे इन शैलों की उत्पत्ति स्पष्ट होती है अर्थात वह शैल जिनकी उत्पत्ति अग्नि से हुई है, उन्हें आग्नेय शैल कहते हैं। आग्नेय शैलें अति तप्त चट्टानी तरल पदार्थ, जिसे मैग्मा कहते हैं, के ठण्डे होकर जमने से बनती हैं। भूगर्भ में मैग्मा के बनने की निश्चित गहराई की हमें जानकारी नहीं है। यह सम्भवतः विभिन्न गहराइयों पर बनता है जो 40 किलोमीटर से अधिक नहीं होती। शैलों के पिघलने से आयतन में वृद्धि होती हैं, जिसके कारण भूपर्पटी टूटती है या उसमें दरारें पड़ती हैं। इन खुले छिद्रों या मुखों के सहारे ऊपर से पड़ने वाले दबाव में कमी आती है। इससे मैग्मा बाहर निकलता है। अगर ऐसा न हो तो ऊपर से पड़ने वाला अत्यधिक दाब मैग्मा को बाहर जाने नहीं देगा।

जब मैग्मा धरातल पर निकलता है तो उसे लावा कहते हैं। पिघला हुआ मैग्मा, भूगर्भ में या पृथ्वी की सतह पर जब ठंडा होकर ठोस रूप धारण करता है तो आग्नेय शैलों का निर्माण होता है। पृथ्वी की प्रारम्भिक भूपर्पटी आग्नेय शैलों से बनी है, अतः अन्य सभी शैलों का निर्माण आग्नेय शैलों से ही हुआ है। इसी कारण आग्नेय शैलों को **जनक** या मूल शैल भी कहते हैं। भूगर्भ के सबसे ऊपरी 16 किलोमीटर की मोटाई में आग्नेय शैलों का भाग लगभग 95 प्रतिशत है। आग्नेय शैलें सामान्यतया कठोर, भारी, विशालकाय और रबेदार होती हैं। निर्माण–स्थल के आधार पर आग्नेय शैलों को दो वर्गों में बाँटा गया है। बाह्य या बहिर्भेदी (ज्वालामुखी) और (ii) आन्तरिक या अन्तर्भेदी आग्नेय शैल।

(i) **बाह्य आग्नेय शैलें** धरातल पर लावा के ठण्डा होकर जमने से बनी है। इन शैलों की रचना में लावा बहुत जल्दी ठण्डा हो जाता है। लावा के जल्दी ठण्डा होने से इनमें छोटे आकार के रवे बनते हैं। इन्हें ज्वालामुखी शैल भी कहते हैं। गेब्रो और बैसाल्ट बाह्य आग्नेय शैलों के सामान्य उदाहरण हैं। ये शैलें ज्वालामुखी क्षेत्रों में पाई जाती हैं। भारत के दक्कन पठार की ''रेगुर'' अथवा काली मिट्टी लावा से बनी है।

(ii) **आन्तरिक आग्नेय शैलों** की रचना मैग्मा के धरातल के नीचे जमने से होती है। धरातल के नीचे मैग्मा धीरे–धीरे ठण्डा होता है। अतः इन शैलों में बड़ आकार के

रवे बनते हैं। अधिक गहराई में पाई जाने वाली आन्तरिक शैलों को **पातालीय** आग्नेय शैल कहते हैं। ग्रेनाइट और डोलाराइट आन्तरिक आग्नेय शैलों के सामान्य उदाहरण हैं। दक्कन पठार और हिमालय क्षेत्र में ग्रेनाइट शैलों के विस्तृत भूखण्ड देखे जा सकते हैं। आन्तरिक आग्नेय शैलों की आकृति कई प्रकार की होती है।

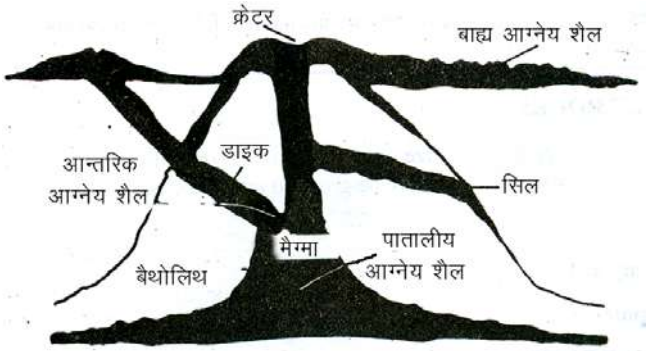

चित्र 2.2 आग्नेय शैल

चित्र 2.2 से स्पष्ट होता है कि भूपर्पटी में मैग्मा के ठण्डा होने पर विभिन्न आकृतियों में आग्नेय शैल बनती है। ये आकृतियाँ शैलों में प्राप्त स्थान तथा मैग्मा के दवाब पर निर्भर करती है। बैथोलिथ, सिल और डाइक, इसके उदाहरण हैं। बैथोलिथ बड़े आन्तरिक आग्नेय चट्टानी पिंड हैं। इनका आकार कुछ सौ किलोमीटर से हजारों किलोमीटर तक होता है। यह विश्व के बड़े पर्वत–समूहों के स्थूल क्रोड हैं। लाखों वर्षों के अपरदन के कारण कभी–कभी उनकी असमान गुम्बदनुमा छत धरातल पर दिखाई देने लगती है।

पूर्ववर्ती शैलों के बीच मैग्मा के समानान्तर तहों के रूप में जमने के स्वरूप को सिल कहते हैं। डाइक शैलों के बीच मैग्मा का लम्बवत जमाव है। इनकी लम्बाई कुछ एक मीटर से लेकर कई किलोमीटर तथा चौड़ाई कुछ एक सेन्टीमीटर से लेकर सैंकड़ों मीटर तक हो सकती है।

रासायनिक गुणों के आधार पर आग्नेय शैलों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है – अम्लीय और क्षारीय शैल। ये क्रमशः अम्लीय और क्षारीय लावा के जमने से बनती है।

अम्लीय आग्नेय शैलों में सिलीका की मात्रा 65 प्रतिशत होती है। इनका रंग बहुत हल्का होता है। ये कठोर और मजबूत शैल है। ग्रेनाइट इसी प्रकार की शैल का उदाहरण है।

क्षारीय आग्नेय शैलों में सिलीका की मात्रा अम्लीय शैलों से कम पाई जाती है। इनमें सिलीका की मात्रा 55 प्रतिशत से कम होती है। ऐसी शैलों में लोहा और मैगनीशियम की अधिकता है। इनका रंग गहरा और काला होता है। इन पर ऋतु अपक्षय का बहुत प्रभाव पड़ता है। गैब्रो, बैसाल्ट तथा डोलेराइट क्षारीय शैलों के उदाहरण हैं।

- आग्नेय शैल तप्त द्रवित पदार्थ मैग्मा अथवा लावा के ठण्डा होकर जमने से बनी है।
- बाह्य आग्नेय शैल धरातल पर लावा के ठण्डा होकर जमने से बनी है। बैसाल्ट और गैब्रो इसके उदाहरण हैं।
- आन्तरिक आग्नेय शैल धरातल के नीचे मैग्मा के जमने से बनी है। ग्रेनाइट इसका उदाहरण है।

पाठगत प्रश्न 2.3

1. खनिज की परिभाषा लिखिये।

   _____

2. भूपर्पटी में पाये जाने वाले प्रमुख तीन खनिजों के नाम बताइए।

   (क) _____ (ख) _____ (ग) _____

3. निम्नलिखित प्रत्येक के लिए एक–एक शब्द दीजिए:

   (1) अधिक गहराई में प्राप्त आन्तरिक आग्नेय शैल।

   _____

   (2) पृथ्वी के धरातल पर पहुँचने वाला गर्म तप्त तरल पदार्थ।

   _____

4. डाइक और सिल की रचना कैसे होती है?

   (1) डाइकः _____

   (2) सिलः _____

5. सही उत्तर पर ठीक (√) का निशान लगाइए:–

   (i) आग्नेय शैलों की रचना–

   (क) शीतलन से (ख) तापन से (ग) शीतलन और तापन में से किसी से भी नहीं।

   (ii) निम्नलिखित में से कौन सी आन्तरिक आग्नेय शैल का उदाहरण है?

   (क) ग्रेनाइट (ख) बैसाल्ट (ग) गैब्रो

   (iii) प्राथमिक शैलों का परिणाम है –

   (क) अवसादीकरण (ख) ठोसीकरण (ग) रूपान्तरण (घ) सम्पीड़न

(ख) अवसादी शैलें

इन शैलों की रचना अवसादों के निरन्तर जमाव से होती है। ये अवसाद किसी भी पूर्ववर्ती शैल – आग्नेय, रूपान्तरित या अवसादी शैलों का अपरदित मलवा हो सकता है। अवसादों का जमाव परतों के रूप में होता है। इसलिए इन शैलों को परतदार शैल भी कहते हैं। इन शैलों की मोटाई कुछ मि. मी. से लेकर कई मीटर तक होती है। इन शैलों की परतों के बीच में जीवाश्म भी मिलते हैं। जीवाश्म प्रागैतिहासिक काल के पशु और पौधों के अवशेष हैं। ये अवशेष अवसादी शैलों की परतों में दबकर भार पड़ने के कारण ठोस रूप धारण कर लेते हैं। धरातल पर अधिकतर अवसादी शैलों का विस्तार मिलता है, परन्तु ये शैलें कम गइराई तक ही मिलती हैं।

शैलों से पहले अनेकों कण टूटते हैं और फिर उन टूटे कणों को परिवहन के कारक बहता–जल, समुद्री लहरें, हिमानी, पवन आदि एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं। जब परिवहन के कारकों में इन कणों को ढोने की शक्ति में कमी आती है तो वे समुद्र, झील या नदी के शांत जल में अथवा अन्यत्र उपयुक्त स्थानों पर जमा हो जाते हैं। ढोकर लाये गये शैलों के कणों के किसी स्थान पर जमा होने की प्रक्रिया को **अवसादन** या **निक्षेपण** कहते हैं। अवसादी शैलों का नाम अवसाद ढोने वाले कारकों और उनके जमाव स्थल के संदर्भ में रखा जाता है। जैसे नदी–नदीकृत शैल, झील–सरोवरी शैल, समुद्र–समुद्रकृत शैल, मरुस्थल–पवनकृत शैल, हिमानी–हिमानीकृत शैल, आदि।

अवसाद प्रायः बारीक कणों से निर्मित मुलायम परत होती हैं। प्रारम्भ में ये बालू मिट्टी के रूप में होते हैं। कालान्तर में यही पदार्थ भारी दवाब के कारण संयुक्त रूप धारण कर ठोस बन जाते हैं और अवसादी शैलों का निर्माण करते हैं। प्रारम्भ में अवसादी शैलों का जमाव क्षैतिज रूप में होता है। बाद में चलकर भूपर्पटी में हुई हलचलों के कारण झुकाव पैदा हो जाते हैं। बलुआ पत्थर, शैल, चूना पत्थर और डोलोमाइट अवसादी शैलें हैं।

परिवहन के विभिन्न कारक जैसे बहता जल, पवन या हिमानी अवसादों को अलग–अलग आकारों में छाँटते रहते हैं। विभिन्न आकार के अवसाद अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर एक दूसरे से जुड़ जाते हैं। कांगलोमरेट इस प्रकार की अवसादी शैल का उदाहरण है। इस प्रकार की प्रक्रिया से बनी शैलों को भौतिक अवसादी शैल कहते हैं। पेड़–पौधों अथवा जानवरों से प्राप्त जैवीय पदार्थों के एकीकरण से बनी अवसादी शैलें जैविक मूल की शैल होती है। कोयला और चूना पत्थर जैविक मूल की अवसादी शैलें हैं।

अवसादों की रचना रासायनिक प्रक्रिया से भी संभव है। जल अपनी घुलन क्रिया के द्वारा शैलों से बहुत सारे रासायनिक तत्व ग्रहण कर अवसाद के रूप में जमा करता रहता है। यही अवसाद कालान्तर में शैल बन जाता हैं। सेंधा नमक, जिप्सम, शोरा आदि सब इसी प्रकार की शैलें है।

टिप्पणी

संसार के विशालकाय बलित पर्वतों जैसे हिमालय, एण्डीज आदि की रचना शैलों से हुई है। संसार के सभी जलोढ़ निक्षेप भी अवसादों के एकीकृत रूप हैं। अतः सभी नदी द्रोणियों विशेषकर उनके मैदान तथा डेल्टा अवसादों के जमाव से बने हैं। इनमें सिंधु–गंगा का मैदान और गंगा–ब्रह्मपुत्र का डेल्टा सबसे उत्तम उदाहरण है।

- अवसादी शैलों की रचना अवसादों के एक के ऊपर एक जमा होने के परिणाम स्वरूप होती है। इन शैलों में परतें होती हैं। अतः इन्हें परतदार भी कहते हैं।
- जीवाश्म प्रागैतिहासिक काल के पेड़–पौधों अथवा पशुओं के अवशेष हैं, जो अवसादी शैलों की परतों के बीच में दबकर ठोस रूप धारण कर चुके हैं।

(ग) रूपांतरित या कायांतरित शैल

पर्वतीय प्रदेशों में अधिकांश शैलों में परिवर्तन के प्रमाण मिलते हैं। ये सभी शैलें कालान्तर में रूपान्तरित हो जाती हैं। अवसादी अथवा आग्नेय शैलों पर अत्याधिक ताप से या दाब पड़ने के कारण रूपान्तरित शैलें बनती हैं। उच्च ताप और उच्च दाब, पूर्ववर्ती शैलों के रंग, कठोरता, गठन तथा खनिज संघटन में परिवर्तन कर देते हैं। जहाँ शैलें गर्म–द्रवित मैग्मा के संपर्क में आती हैं, वहाँ उनकी रचना में परिवर्तन आ जाता है। इस परिवर्तन की प्रक्रिया को रूपान्तरण और कायांतरण कहते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा बनी शैल को रूपांतरित शैल कहते हैं।

भूपर्पटी में मौजूद अत्यधिक ऊष्मा के प्रभाव से अवसादी और आग्नेय शैलों के खनिजों में जब रवों का पुनर्निर्माण अथवा रूप में परिवर्तन होता है तो उसे तापीय रूपान्तरण अथवा संस्पर्शीय रूपान्तरण कहते हैं। जब द्रवित मैग्मा अथवा लावा शैलों के संपर्क में आता है तो शैलों के मूल रूप में परिवर्तन ला देता हैं। इसी प्रकार भारी दबाव के कारण शैलों में परिवर्तन होता है। दबाव के कारण हुए परिवर्तन को गतिक या प्रादेशिक रूपान्तरण कहते हैं। स्लेट, नीस–शीस्ट, संगमरमर और हीरा रूपान्तरित शैलों के उदाहरण हैं। रूपान्तरित शैल अपनी मूल शैलों से अधिक कठोर और मजबूत होती हैं। तालिका 2.1 में रूपान्तरित शैल और उनकी मूल शैलों के उदाहरण दिए हुए हैं। इस तालिका का ध्यान से अध्ययन करिए।

तालिका 2.1 मूलशैल तथा इसकी रूपांतरित शैल

शैल का नाम	शैल के प्रकार	बनने वाली रूपान्तरित शैल
चूना पत्थर	अवसादी शैल	संगमरमर
डोलोमाइट	अवसादी शैल	संगमरमर
बलुआ पत्थर	अवसादी शैल	क्वार्टजाइट
शेल	अवसादी शैल	स्लेट

स्लेट	रूपान्तरित शैल	फाइलिट
कोयला	अवसादी शैल	हीरा
ग्रेनाइट	आग्नेय शैल	नीस
फाइलिट	रूपान्तरित शैल	शिस्ट

संसार में विभिन्न प्रकार की रूपान्तरित शैलें पाई जाती हैं। भारत में संगमरमर राजस्थान, बिहार और मध्य प्रदेश में मिलता है। हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा और कुमायूँ क्षेत्र में विभिन्न रंगों की स्लेट मिलती है।

- रूपान्तरित शैल की रचना अवसादी, आग्नेय या पूर्ववर्ती रूपान्तरित शैलों पर भारी ताप और दाब के प्रभाव के कारण होती है।
- तापीय रूपान्तरण वह प्रक्रिया है, जिसमें भारी ताप के कारण शैलों में परिवर्तन होता है।
- गतिक रूपान्तरण शैलों का वह बदला स्वरूप है जो पृथ्वी की हलचलों के समय भारी दवाब के कारण होता है।

2.6 शैलों का आर्थिक महत्व

मनुष्य पृथ्वी तल पर विविध क्रियाकलाप लम्बे समय से कर रहा है। समय और तकनीकी विकास के साथ वह शैलों और खनिजों का विविध उपयोग करता रहा है। वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान जैसे–जैसे बढ़ता गया वैसे–वैसे ही मनुष्य की सुख–सुविधाओं के लिए शैलों और खनिजों की उपयोगिता बढ़ती गई। शैलों के महत्व के संबंध में संक्षिप्त जानकारी नीचे दी गई है।

(1) **मृदा** शैलों से प्राप्त होती है। मृदा से मानव के लिये भोजन मिलता है, इसके साथ ही विभिन्न कृषि उत्पादों से उद्योग–धंधों के लिए कच्चा माल भी प्राप्त होता है।

(2) **भवन निर्माणकारी सामग्री** शैलों से प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से प्राप्त होती है। शैलें ही सभी प्रकार के भवनों की सामग्री का एकमात्र स्रोत है। ग्रेनाइट, नीस, बलुआ पत्थर, संगमरमर और स्लेट आदि का मकान बनाने में भारी मात्रा में उपयोग होता है। ताजमहल सफेद संगमरमर से बना है। दिल्ली और आगरा का लाल किला लाल बलुआ पत्थर से बने हैं। भारत और विदेशों में भी स्लेट का उपयोग छतों के निर्माण में किया जाता है।

(3) **खनिजों के स्रोत** खनिज आधुनिक सभ्यता की आधारशिला हैं। धात्विक खनिजों में मूल्यवान सोना, प्लॉटीनम, चांदी, तांबा से लेकर एल्यूमीनियम और लोहा मिलता है। ये धात्विक खनिज विभिन्न प्रकार की शैलों में पाये जाते हैं।

(4) **कच्चामाल** कई शैलों और खनिजों का उपयोग विभिन्न प्रकार के उद्योगों के

टिप्पणी

लिए कच्चे माल के रूप में होता है। सीमेंट उद्योग तथा चूना भट्टियों में कई प्रकार की शैलों और खनिजों का उपयोग तैयार माल प्राप्त करने के लिए किया जा रहा है। ग्रेफाइट का उपयोग सुरमा और पेंसिल निर्माण उद्योग में किया जाता है।

(5) **मूल्यवान पत्थर** विभिन्न प्रकार की रूपान्तरित अथवा आग्नेय शैलों से प्राप्त होते हैं। हीरा बहुत ही मूल्यवान पत्थर है। उसका उपयोग जवाहरात बनाने में होता है। ये एक रूपान्तरित शैल है। इसी प्रकार दूसरे मूल्यवान पत्थर पन्ना, नीलम आदि भी विभिन्न प्रकार के शैलों से प्राप्त होते हैं।

(6) **ईंधन** कोयला, पैट्रोलियम और प्राकृतिक गैस महत्वपूर्ण खनिज ईंधन हैं। परमाणु ऊर्जा भी ईंधन के रूप में हमें विभिन्न प्रकार की शैलों से मिलती है।

(7) **उवर्रक** भी शैलों से प्राप्त किये जाते हैं। फास्फेट उर्वरक फास्फेराइट नामक खनिज से मिलता है। संसार के कुछ भागों में फास्फेराइट खनिज अधिक मात्रा में पाया जाता है।

- शैल और खनिज आर्थिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। ये सभी प्रकार की धातुओं, मूल्यवान पत्थर, उद्योगों के लिए माल और ईंधन के स्रोत हैं।

पाठगत प्रश्न 2.4

1. शैल क्या हैं?

_____

2. शैलों का वर्गीकरण कीजिए।

_____

3. निम्नलिखित प्रत्येक के लिए एक–एक पारिभाषिक शब्द दीजिए–

   (i) अत्यधिक दाब के कारण रूपान्तरित शैलों के बनने की प्रक्रिया

   _____

   (ii) वह शैल जिसमें परतें होती हैं।

   _____

   (iii) अवसादी और अग्नेय शैल पर ताप और दबाव के प्रभाव से बनने वाले शैल

   _____

   (iv) झील में अवसादों के जमाव से बनी अवसादी शैल

   _____

4. सही उत्तर पर ठीक (√) का निशान लगाइएः–

   (i) संगमरमर है–

   (क) अवसादी शैल (ख) आग्नेय शैल (ग) रूपान्तरित शैल (घ) पातालीय शैल

   (ii) अवसादी शैल का उदाहरण है–

   (क) ग्रेनाइट (ख) संगमरमर (ग) बलूआ पत्थर (घ) बैसाल्ट

2.7 अपक्षय क्या है?

धरातलीय शैलों का विघटन मुख्य रूप से मौसम के तत्वों के प्रभाव का ही परिणाम है। तापमान, वर्षा, पाला, कोहरा और बर्फ मौसम के प्रमुख तत्व हैं। धरातल की शैलें जैसे ही मौसम के तत्वों के संपर्क में आती हैं, वैसे ही उनका अपक्षय प्रारम्भ हो जाता है। अपक्षय एक स्थानीय प्रक्रिया है। इसमें शैलों का विघटन और अपघटन मूल स्थान पर ही होता है। विघटन तापमान में परिवर्तन और पाले के प्रभाव से होता है। इस प्रक्रिया में शैलें टुकड़ों में बिखर जाती हैं। अपघटन की प्रक्रिया में शैलों के अंदर रासायनिक परिवर्तन होते हैं। शैलों में विभिन्न प्रकार के खनिजों के कण एक दूसरे के साथ दृढ़ता से गुंधे होते हैं। लेकिन पानी में घुलकर कुछ खनिज कण अलग हो जाते हैं। कुछ खनिजों का स्वरूप बदल जाता है। प्रकृति में विघटन और अपघटन की प्रक्रियाएँ साथ–साथ चलती रहती हैं। अपक्षय पेड़ पौधों की जड़ों और कुछ जीव जन्तुओं के बिल बनाने के कारण भी होता है। हमें यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि अपक्षयित पदार्थ अपने मूल स्थान पर ही पड़े रहते हैं। अपक्षय की प्रक्रिया में पदार्थों का परिवहन या स्थानांतरण शामिल नहीं होता। यह बात अलग है कि गुरुत्वाकर्षण के कारण अपक्षियत पदार्थ ऊपर से नीचे की ओर खिसक जाते हैं।

2.8 अपक्षय के प्रकार

1. भौतिक अपक्षय
2. रासायनिक अपक्षय
3. जैविक अपक्षय

भौतिक अपक्षय

जब शैलें अपने संघटन में बिना किसी रासायनिक परिवर्तन के छोटे–छोटे टुकड़ों में टूट जाती हैं तो इसे **भौतिक अपक्षय** कहते हैं। भौतिक अपक्षय अधिकतर शुष्क और ठंडी जलवायु वाले क्षेत्रों में होता है। भौतिक अपक्षय विभिन्न प्रकार के क्षेत्रों में अलग–अलग ढंग से होता है। इनके कुछ उदाहरण निम्न है :–

(क) पिंड-विच्छेदन

हम सभी जानते हैं कि गर्मी के कारण शैलें फैलती हैं और सर्दी के कारण सिकुड़ती हैं। गर्म मरुस्थलीय प्रदेशों में दिन में तापमान बहुत ऊँचा हो जाता है। इसके विपरीत रातें बहुत ठंडी होती हैं। दैनिक ताप परिसर के अधिक होने के कारण शैलें बार–बार फैलती और सिकुडती रहती हैं। इससे उनकी दरारें और जोड़ चौड़े होते जाते हैं। अन्ततः शैलें छोटे–छोटे टुकड़ों में टूट जाती हैं। इस प्रक्रिया को **पिंड विच्छेदन** कहते हैं।

चित्र 2.3 पिंड विच्छेदन

(ख) अपशल्कन

शैलें सामान्यतः ताप की कुचालक होती हैं। अधिक गर्मी के कारण शैलो की बाहरी परतें जल्दी से फैल जाती हैं। लेकिन भीतरी परतें गर्मी से लगभग अप्रभावित रहती हैं। बार-बार फैलने और सिकुड़ने से शैलों की बाहरी परतें शैल के मुख्य भाग से अलग हो जाती हैं। इस प्रक्रिया में शैलों की परतें, प्याज के छिलकों की तरह ही उतरती चली जाती हैं। इसे अपशल्कन की प्रक्रिया कहते हैं। बिहार के सिंहभूम जिले में डोलेराइट शैलों के गोलाकार पिंडों का निर्माण इसी प्रक्रिया के द्वारा हुआ है। महाबलीपुरम में ग्रेनाइट के गुंबद विशेष रूप से कृष्ण की लडडू तथा जबलपुर के पास मदनमहल की पहाड़ियों के ग्रेनाइट के गुंबद, अपशल्कन के अच्छे उदाहरण हैं।

चित्र 2.4 शैल की परतों का उतरना

(ग) तुषारी अपक्षय

बहुत ठंडे पर्वतीय प्रदेशों में शैलों की दरारों और जोड़ों में भरा जल बार–बार जमता और पिघलता है। इससे शैलें टुकड़े–टुकड़े हो जाती हैं। ऐसा इसलिए होता है कि जब पानी बर्फ के रूप में जम जाता है तो उसका आयतन दस प्रतिशत बढ़ जाता है। ठंडे प्रदेशों में इस प्रक्रिया के द्वारा शैलें छोटे–छोटे टुकड़ों और कणों में बिखर जाती हैं। इसे **तुषारी अपक्षय** कहते हैं।

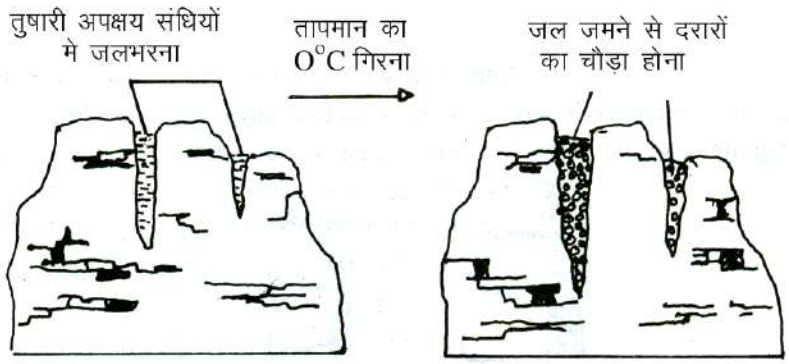

चित्र 2.5 तुषारी अपक्षय

- संघटन में रासायनिक परिवर्तन के बिना शैलों का छोटे–छोटे टुकड़ों में टूटना भौतिक अपक्षय कहलाता है।
- शैलों के जल्दी–जल्दी फैलने और सिकुड़ने से उनमें जोड़ और दरारें पड़ जाती हैं। परिणामतः वे छोटे–छोटे पिंडों में टूट जाती हैं। यह प्रक्रिया **पिंड विच्छेदन** कहलाती है।
- अपक्षय की वह प्रक्रिया जिसमें तापमान की भिन्नता के कारण शैलों की बाहरी परतें प्याज के छिलकों की तरह उतर जाती हैं, अपशल्कन कहलाती हैं।
- बहुत ठंडे प्रदेशों में दरारों और जोड़ों में भरे जल के जमने से उनका टूटना तुषारी अपक्षय कहलाता है।

पाठगत प्रश्न 2.5

1. अपक्षय के तीन प्रकारों के नाम बताइए:

   (क) _____ (ख) _____ (ग) _____

टिप्पणी

2. भौतिक अपक्षय किन क्षेत्रों में अधिक होता है?

_____

3. प्रत्येक कथन के लिए पारिभाषिक शब्द लिखिए।

(क) शैलों की परतों का प्याज के छिलकों की तरह उतरना

_____

(ख) शैलों की दरारों और जोड़ों में भरे जल के बारी–बारी से जमने और पिघलने से उनका चौड़ा होना और शैलों का टूटना।

_____

(ग) रासायनिक संघटन में बिना किसी परिवर्तन के शैलों का टूटना।

_____

रासायनिक अपक्षय

रासायनिक क्रिया द्वारा नए यौगिकों के बनने या नए तत्वों के निर्माण के कारण शैलों में होने वाले परिवर्तन को **रासायनिक अपक्षय** कहते हैं। जल, ऑक्सीजन और कार्बन–डाइऑक्साइड रासायनिक अपक्षय के प्रमुख कारक हैं। उच्च तापमान और अधिक आर्द्रता वाले क्षेत्रों में रासायनिक अपक्षय अधिक तीव्रता से होता है।

- रासायनिक प्रक्रिया द्वारा जल और वायुमंडलीय गैसों की मदद से शैलों के अपघटन को **रासायनिक अपक्षय** कहते हैं।

रासायनिक अपक्षय में मुख्य रूप से चार प्रक्रियाएँ होती हैं।

(क) ऑक्सीकरण

इस प्रक्रिया में वायुमंडलीय आक्सीजन की शैलों पर होने वाली प्रतिक्रिया से आक्साइड के बनने को **आक्सीकरण** कहते हैं। इस प्रक्रिया का सबसे अधिक प्रभाव लौह खनिजों पर देखा जाता है। आर्द्र वायु में विद्यमान आक्सीजन शैलों के लौह कणों को सबसे अधिक प्रभावित करती है। इससे लोहे के पीले या लाल आक्साइड बन जाते हैं। इसे लोहे पर जंग लगना कहते हैं। कालान्तर में यह 'जंग' शैलों को पूरी तरह से अपघटित कर देता है।

(ख) कार्बोनेटीकरण

इस प्रक्रिया से विभिन्न प्रकार के कार्बोनेट बनते हैं। इनमें से कुछ पानी में घुलनशील होते हैं। उदाहरण के लिए जब कार्बन–डाइ–आक्साइड युक्त वर्षा का जल चूने की प्रवेश्य (भेद्य) शैलों से होकर गुजरता है, तो शैलों के जोड़ कार्बोनिक अम्ल की क्रिया

से चौड़े हो जाते हैं। धीरे–धीरे इन जोड़ों की चौड़ाई बढ़ती जाती है। और चूना पानी में घुलकर बह जाता है। शैलों के इस प्रकार के अपघटन को कार्बोनेटीकरण कहते हैं।

(ग) जलयोजन

इस प्रक्रिया से शैलों के खनिजों में जल अवशोषित हो जाता है। जल के अवशोषण से शैलों का आयतन बढ़ जाता है तथा उनके कणों की आकृति बदल जाती है। उदाहरण के लिए जलयोजन के द्वारा फेल्सपार नाम के खनिज केओलिन मृदा में बदल जाते हैं। जबलपुर के निकट विंध्याचल की पहाड़ियों पर केओलिन मृदा का निर्माण इसी प्रक्रिया द्वारा हुआ है।

(घ) घोलन

इस प्रक्रिया में कुछ खनिज पानी में घुल जाते हैं। वे पानी में घुलकर बह जाते हैं। सेंधा नमक और जिप्सम इसी प्रक्रिया द्वारा बहा लिया जाता है।

- रासायनिक अपक्षय में आक्सीकरण, कार्बोनेटीकरण, जलयोजन और घोलन की प्रक्रियाएँ शामिल हैं।

पाठगत प्रश्न 2.6

1. किन प्रदेशों में रासायनिक अपक्षय अधिक प्रभावशाली होता है?

   _____

2. किस प्रक्रिया में जिप्सम पानी में घुल जाता है?

   _____

3. रासायनिक अपक्षय की किस क्रिया के द्वारा लोहे पर 'जंग' लगता है।

   _____

4. चूने की शैलों के प्रदेशों में प्रमुख रूप से किस प्रकार की रासायनिक प्रक्रिया होती है?

   _____

जैविक अपक्षय

जैविक अपक्षय वनस्पति, जीव जन्तुओं और मनुष्यों के द्वारा होता है।

(क) वनस्पति

पेड़–पौधों के द्वारा शेलों में भौतिक और रासायनिक दोनों ही प्रकार का अपक्षय होता है। पेड़–पौधों की जड़ें शैलों के जोड़ों में धुस जाती हैं। समय के साथ जड़ें लंबी और मोटी होती जाती हैं। इस तरह शैलों के जोड़ों पर उनका दबाव निरंतर बढ़ता जाता है और अन्ततः वे टूटकर छोटे–छोटे टुकड़ों में बिखर जाती हैं।

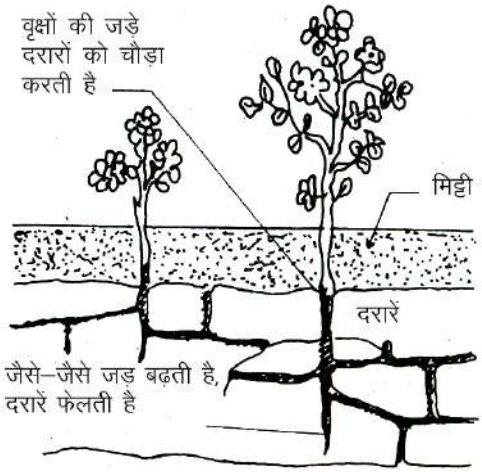

चित्र 2.6 शैलों पर वनस्पति का प्रभाव

(ख) जीवजन्तु

बिल बनाकर रहने वाले जीव जैसे, केंचुए, चूहे, खरगोश, दीमक और चीटियाँ शैलों को तोड़ते–फोड़ते हैं। विघटित शैलें आसानी से अपरदित हो जाती हैं और पवनें इन्हें उड़ाकर ले जाती हैं। जानवरों के खुरों से मिट्टी उखड़ जाती है। इससे मृदा अपरदन में तेजी आ जाती हैं। केंचुओं और दीमक का कार्य विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। वैज्ञानिकों के अनुसार एक एकड़ भूमि में डेढ़ लाख केंचुए हो सकते हैं। ये एक वर्ष में 10–15 टन शैलों को उपजाऊ मृदा में बदल कर धरातल पर ला सकते हैं।

(ग) मनुष्य

विभिन्न प्रकार की शैलों के अपक्षय में मनुष्य का बहुत बड़ा हाथ होता है। कृषि, भवन, और सड़क निर्माण जैसी अनेक क्रियाओं के द्वारा मनुष्य शैलों की काफी तोड़–फोड़ करता है। मनुष्य की खनन क्रिया के द्वारा शैलें कमजोर होकर ढीली पड़ जाती हैं और अन्ततः टूट–फूट जाती हैं।

- पेड़े–पौधे, जीवजन्तु और मनुष्य जैसे जैविक कारक भौतिक और रासायनिक दोनों ही प्रकार का अपक्षय करते हैं।

पाठगत प्रश्न 2.7

1. अपक्षय द्वारा कौन सा महत्वपूर्ण पदार्थ बनता है?

   _____

2. मृदा में ह्यूमस कहाँ से आता है?

   _____

3. मनुष्य की ऐसी दो क्रियाएँ बताइए, जिनसे अपक्षय होता है।

   (i)_____ (ii)_____

2.9 अपक्षय और मृदा

अपक्षय की प्रक्रियाओं के विषय में पढ़कर हम यह जान गए हैं कि इनके द्वारा विभिन्न प्रकार की स्थलाकृतियों का निर्माण होता है। मृदा निर्माण में अपक्षय की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। मृदा कृषि का आधार है। कृषि से सारे संसार को भोजन मिलता है।

भौतिक अपक्षय धरातलीय शैलों को विघटित करके, उन्हें बारीक चूर्ण में बदल देता है। जल इन छोटे–छोटे शैल कणों को परतों के रूप में बिछा देता है। जैविक अपक्षय से ह्यूमस बनता है। यह जैव पदार्थ पेड़–पौधों और जीवजन्तुओं के क्रिया–कलापों से बनता है, जो मृदा के निर्माण में सहायता करता है। अपक्षय की भिन्न–भिन्न प्रक्रियाओं के द्वारा भिन्न–भिन्न रंगों और गुणों वाली मृदाओं का निर्माण होता है।

- शैलों के विघटन के अलावा अपक्षय का मृदा के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान है।

2.10 तल संतुलन

बाह्य शक्तियाँ भूमि को समतल बनाने के लिए निरंतर कार्य कर रही हैं। ये शक्तियाँ अपरदन और निक्षेपण के बीच एक संतुलन की अवस्था स्थापित करने का प्रयत्न करती रहती हैं। उपर्युक्त शक्तियों की इस प्रक्रिया को **तल संतुलन** की प्रक्रिया कहते हैं। नदियाँ, हिमानियाँ, पवनें, समुद्री लहरें तथा भूमिगत जल, तल संतुलन के कारक हैं। ये कारक निरंतर अपक्षय, अपरदन और निक्षेपण करने में लगे रहते हैं। धरातल के ऊँचे भागों को घिसकर नीचा करने का काम अपरदन के द्वारा होता है। तल संतुलन के बाह्यकारक अपरदित पदार्थों को ले जाकर गड्ढों या नीचे स्थानों में भरते रहते हैं।

टिप्पणी

धरातल के किसी भाग को हम तभी लक्षण विहीन मैदान कहेंगे, जब बाह्य शक्तियाँ वहाँ अपरदन और निक्षेपण कार्य करना बंद कर दें। लेकिन ऐसे भाग कभी स्थायी नहीं होते; क्योंकि बाह्य और आंतरिक दोनों ही प्रकार की शक्तियाँ कभी भी एक दूसरे के कार्य को पूरा नहीं होने देती।

हम पढ़ चुके हैं कि आंतरिक शक्तियाँ धरातल पर प्रमुख स्थलाकृतियों का निर्माण करती हैं। तथा बाह्य शक्तियाँ उन्हें समतल करने में लगी रहती हैं। तल संतुलन के कार्य को दो भागों में बाँटा जा सकता है।

(क) निम्नीकरण

अपरदन की प्रक्रिया के द्वारा शैलों को घिसकर, खुरचकर या काटकर उनको मूल स्थानों से हटा दिया जाता है। इससे ऊँचे स्थान धीरे–धीरे नीचे होते जाते हैं। इस प्रक्रिया को निम्नीकरण कहते हैं। **निम्नीकरण** में सबसे पहले तो अपक्षय का कार्य आता है जिसमें घिसे हुए और खुरचे हुए शैल पदार्थ गुरुत्वाकर्षण शक्ति से नीचे की ओर खिसक जाते हैं। दूसरे, इसमें अपरदन का कार्य भी पूरा करते है। इस प्रक्रिया में तल संतुलन का कोई कारक शैल पदार्थों को मूल स्थान से हटाकर ले जाता है। शैल पदार्थों के परिवहन की गति की वृद्धि के साथ–साथ अपरदन और परिवहन की क्षमता भी बढ़ती–जाती है।

(ख) अधिवृद्धि

निचले क्षेत्रों या गड्ढों में अपरदित पदार्थों के जमा होने को **निक्षेपण** कहते हैं। निक्षेपण तब शुरू होता है, जब तल संतुलन के कारकों की शक्ति घट जाती है या उनके मार्ग में कोई अवरोध आ जाता है। परिणामस्वरूप अपरदित पदार्थ गड्ढों में जमा हो जाते हैं। इससे नई स्थलाकृतियों का निर्माण होता है तथा पहले से विद्यमान स्थालाकृतियों का स्वरूप बदल जाता है।

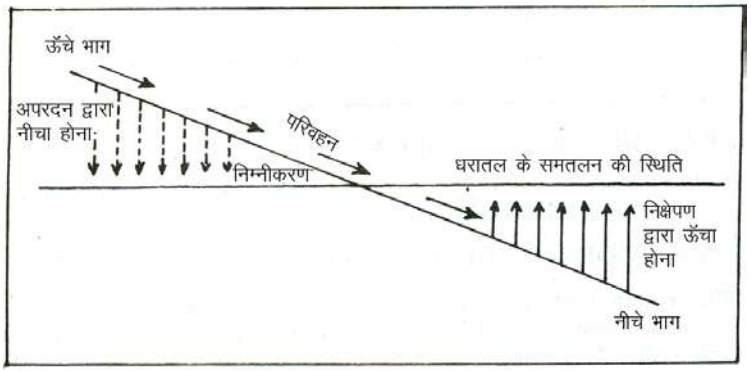

चित्र 2.7 तल संतुलन की प्रक्रिया

ऊपर के चित्र को ध्यान से देखिए। इसमें तल संतुलन की पूरी प्रक्रिया समझाई गई है। इसी चित्र में इस प्रक्रिया के दोनों अंगों – निम्नीकरण और अधिवृद्धि को भी समझाया गया है। इस चित्र में दिखाया गया है कि अपक्षय और अपरदन ऊँचे भागों को निरंतर

नीचे कर रहें हैं। परिवहन की प्रक्रिया के द्वारा अपरदित पदार्थों को मूल स्थानों से हटाकर नीचे क्षेत्रों में जमा किया जा रहा है। निचले क्षेत्रों का तल अपरदित पदार्थों के निक्षेपण से ऊँचा उठा रहा है। अन्ततः एक भाग का तल चौरस या लगभग चौरस हो जाता है। तल संतुलन की प्रक्रिया किसी अकेले कारक के द्वारा पूरी नहीं होती है। यह अलग बात है कि किसी क्षेत्र में या किसी समय तल संतुलन का कोई एक कारक अधिक क्रियाशील हो सकता है।

- धरातल के चौरस होने को **तल संतुलन** कहते हैं। इसमें निम्नीकरण और अधिवृद्धि दोनों ही प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं।
- अपरदन के द्वारा धरातल के घिसने को **निम्नीकरण** कहते हैं तथा गड्ढों को भरकर ऊँचा करने की प्रक्रिया को **अधिवृद्धि** कहते हैं।

पाठगत प्रश्न 2.8

1. कौन सी प्रक्रिया धरातल को समतल या चौरस करती है?

   _____

2. तल संतुलन की दो प्रक्रियाएँ कौन सी हैं?

   (क)_____(ख)_____

3. निक्षेपण द्वारा गढडों को भरकर ऊँचा करने वाली प्रक्रिया के लिए किस पारिभाषिक शब्द का प्रयोग किया जाता है।

   _____

4. निम्नीकरण किसे कहते हैं?

   _____

2.11 मृदा और इसका निर्माण

मृदा, जैव तथा अजैव पदार्थों की एक परिवर्तनशील और विकासशील पतली परत है, जो भूपृष्ठ को ढके हुए है। यह वानस्पतिक आवरण को बनाए रखने में मदद देती है। इसमें विभिन्न परतें होती हैं, जो मूल शैल में भौतिक, रासायनिक और जैविक अपक्षय की प्रक्रियाओं द्वारा बनती हैं।

मृदा निर्माण के कारक

मृदा निर्माण को नियन्त्रित करने वाले पाँच कारकों में मूल शैल, उच्चावच, समय, जलवायु तथा जैविक तत्व शामिल हैं। पहले तीन कारकों को निष्क्रिय कारक तथा अन्तिम दो कारकों को क्रियाशील कारक कहते हैं। आधारी शैल तथा तलवायु मृदा निर्माण के दो महत्वपूर्ण कारक हैं, क्योंकि ये अन्य कारकों को प्रभावित करते हैं।

टिप्पणी

(क) मूल शैलः– मृदा अपने नीचे स्थित विभिन्न खनिजों से युक्त शैल या मूल शैल ७ पदार्थों से निर्मित होती है। मूल शैल छोटे–छोटे टुकड़ों में टूट जाती है, तथा भौतिक, रासायनिक और जैविक प्रक्रियाओं द्वारा अपघटित हो जाती है। इससे मृदा के अजैव खनिज कणों का निर्माण होता है। मूल शैल मृदा निर्माण में लगने वाले समय, उसके रासायनिक संघटन, रंग, गठन, बनावट खनिज अंश तथा उर्वरता को भी प्रभावित करती है।

(ख) उच्चावच :– किसी क्षेत्र की स्थलाकृति मूल शैल पदार्थों के अपरदन की मात्रा तथा वहां बहने वाले जल की गति को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार मृदा निर्माण में सहायक प्रक्रियाएँ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में उच्चावच से प्रभावित होती हैं। तीव्र ढाल वाले क्षेत्रों में जल तेजी से बहता है। इसके विपरीत मन्द ढालों पर जल की गति धीमी होती है। इसलिए तीव्र ढालों वाले क्षेत्रों की भूमि में पानी का रिसाव कम होता है, जिससे मृदा निर्माण की प्रक्रिया धीमी हो जाती है। तीव्र ढालों पर अपरदन अधिक तेजी से होता है। इससे मृदा निर्माण में बाधा पड़ती है। यही कारण है कि पर्वतीय क्षेत्रों में पतली परत वाली कम उपजाऊ मृदा का निर्माणा होता है। मैदानी क्षेत्रों में पूर्ण विकसित उपजाऊ मृदा का निर्माण होता है।

(ग) समय :– मृदा का निर्माण बहुत धीरे–धीरे होता है। पूर्ण रूप से विकसित मृदा का निर्माण तभी होता है; जब भौतिक, रासायनिक और जैविक प्रक्रियाएँ बहुत लंबे समय तक कार्य करती हैं।

(घ) जलवायुः- मृदा निर्माण की प्रक्रिया में जलवायु सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारक है। जलवायु न केवल समय की लंबी अवधि में मूल शैल पदार्थों के कारण मृदा में उत्पन्न अन्तरों को कम करती है; अपितु मृदा में होने वाली जैविक प्रक्रियाओं को भी प्रभावित करती है। इस कारण एक प्रकार की जलवायु वाले प्रदेशों में दो विभिन्न प्रकार के मूल शैल पदार्थों के द्वारा एक ही प्रकार की मृदा का निर्माण होता है।

उदाहरण के लिए राजस्थान की शुष्क मरुस्थलीय जलवायु में बलुआ पत्थर और ग्रेनाइट से एक ही प्रकार की बलुई मृदा का निर्माण हुआ है। इसके विपरीत दो भिन्न जलवायु प्रदेशों में एक ही प्रकार के मूल शैल पदार्थों से दो भिन्न प्रकार की मृदाओं का विकास होता है। उदाहरण के लिए रवेदार ग्रेनाइट शैल पदार्थों से मानसूनी जलवायु प्रदेशों में जहाँ लेटेराइट मृदा का निर्माण हुआ है, वहीं उपार्द्र प्रदेशों में लेटेराइट से भिन्न मृदाओं का निर्माण हुआ है।

किसी प्रदेश में अपक्षय की प्रक्रिया, इसके प्रभाव तथा वनस्पति और जीवों के प्रकार का सीधा संबंध ऋतुओं के अनुसार बदलते तापमान तथा इसके वितरण और वर्षण के साथ है। इस प्रकार जलवायु मृदा निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

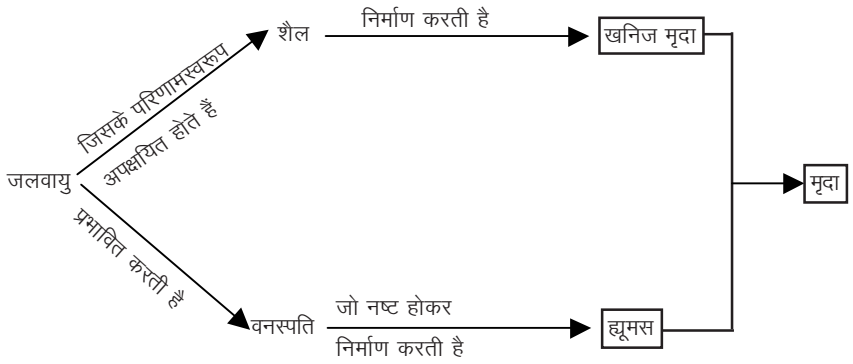

चित्र 2.8 मृदा निर्माण के कारक

(ङ) वनस्पति तथा जीवः– मूल शैल पदार्थों पर विकसित मृदा की गुणवत्ता में वहाँ के पेड़–पौधे तथा जीवजन्तुओं की सक्रिय भूमिका होती हैं। मृत पेड़–पौधों तथा जीवजन्तुओं से मृदा का जैविक अंश बनता है। अपघटन व जैविक प्रक्रियाओं के सहयोग से जैव पदार्थ ह्यूमस के रूप में बदल जाते हैं। ह्यूमस से ही मृदा उपजाऊ बनती है। इसके द्वारा मृदा की जल धारण करने की क्षमता में वृद्धि होती है। मृदा इसी जैविक पदार्थ के द्वारा वनस्पति का पोषण करती है। इसके बदले में वनस्पति का आवरण मृदा की ऊपरी उपजाऊ परत की अपरदन से रक्षा करती है। वनस्पति का आवरण वर्षा के जल को बहने से रोकता है और उसे मृदा की निचली परतों में रिसने के लिए मजबूर करता है। इस आवरण से मृदा की नमी का वाष्पीकरण भी कम होता है। इस प्रकार उपजाऊ और विकसित मृदा बनने में सहायता मिलती है।

- जलवायु तथा वनस्पति व जीवजन्तु मृदा निर्माण के **क्रियाशील कारक** हैं।
- मूल शैल पदार्थ, उच्चावच और समय मृदा निर्माण के **निष्क्रिय कारक** हैं।

मृदा की संस्तर स्थितियाँ

एक मृदा की परत जो कमोवेश धरातल के समानन्तर होती है तथा जिसमें मृदा के विशिष्ट गुण होते हैं उसे मृदा की संस्तर स्थिति कहते हैं। मृदा संस्तर मृदा में मृदा की सुस्पष्ट परतें होती हैं जो भौतिक और रासायनिक संघटन, जैविक पदार्थ और संरचना में एक दूसरे से भिन्न होती हैं। मृदा संस्तरों को दर्शाने वाली परिच्छेदका को मृदा परिच्छेदिका क

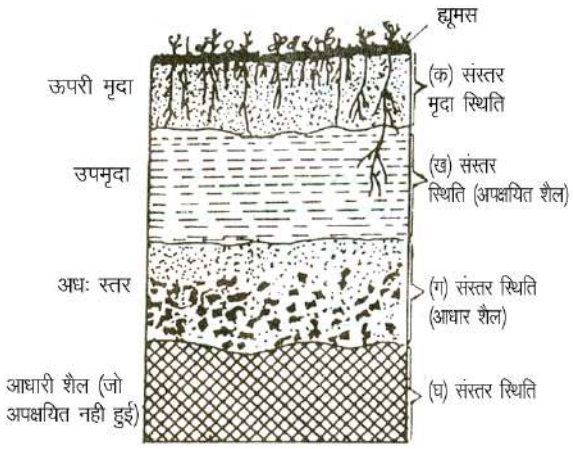

चित्र 2.9 मृदा की संस्तर स्थितियाँ और आधार शैल

टिप्पणी

आइए मुख्य मृदा संस्तरों और उनकी विशेषताओं का संक्षेप में पुनरीक्षण करें। चार मुख्य मृदासंस्तर क, ख, ग, और घ महत्वपूर्ण हैं। परत या संस्तर स्थिति 'क' मृदा की ऊपरी परत होती है। इसे ऊपरी मृदा कहते हैं। इसमें ह्यूमस की मात्रा अधिक होती है। इसीलिए इसका रंग काला होता है। परत या संस्तर स्थिति (ख) ऊपरी मृदा के नीचे होती है। इसे **उप-मृदा** कहते हैं। वास्तव में यह निक्षालन क्रिया की पेटी (जोन) होती है। ये दो परतें या संस्तर स्थितियाँ मृदा का मुख्य भाग हैं। परत या संस्तर स्थिति 'ग' वास्तव में मूल शैल का अपक्षयित भाग है। इस परत का रंग उप–मृदा की अपेक्षा कुछ अधिक काला होता है, क्योंकि इस में मृदा के घुले हुए पदार्थ जमा हो जाते हैं। मृदा के ये घुले हुए पदार्थ वास्तव में ह्यूमस या खनिजों के बहुत ही महीन कण होते हैं। परत या संस्तर स्थिति 'घ' वह मूल शैल है जिसका अपक्षय नहीं हुआ है। यह मृदा परिच्छेदिका की सबसे नीचे की परत होती है।

- **मृदा परिच्छेदिका** मृदा की विभिन्न परतों के विन्यास को कहते हैं। ये परतें भौतिक रासायनिक और जैविक तत्वों के आधार पर एक दूसरे से भिन्न होती हैं।

पाठगत प्रश्न 2.9

1. मृदा निर्माण के दो क्रियाशील कारकों के नाम बताइये।

   (क)_____ (ख)_____

2. मृदा निर्माण के तीन निष्क्रिय कारकों के नाम बताइये।

   (क)_____ (ख)_____ (ग)_____

3. नीचे दिये गए शब्दों में से उचित शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

   (जैव पदार्थ, अजैव खनिज कण, जैविक क्रियाएँ)

   (क) मूल शैल पदार्थों से मृदा को _____ मिलते हैं।

   (ख) किसी प्रदेश की जलवायु मृदा की _____ को प्रभावित करती है।

4. निम्नलिखित प्रत्येक के लिए भौगोलिक शब्द बताइये।

   (क) ठोस, द्रव तथा गैसीय तत्वों से बनी भूपृष्ठ की गतिशील ऊपरीपरत

   _____

   (ख) मृदा की विभिन्न परतों का ऊर्ध्वाधर विन्यास

   _____

(ग) ह्यूमस से युक्त मृदा की परत

_____

(घ) मृदा की वह संस्तर स्थिति जिसमें मृदा के घुले हुए पदार्थ (कोलाइड्स) जमा होते हैं।

_____

2.12 मृदा अपरदन

प्राकृतिक कारकों (जल, पवन आदि) द्वारा मृदा के पुनः स्थापन से अधिक दर से मृदा के निष्कासन को मृदा अपरदन कहते हैं।

मृदा अपरदन के प्रकार

मृदा अपरदन मुख्य रूप से चार प्रकार का होता है– पवन अपरदन, परतदार अपरदन, नदिका अपरदन तथा अवनालिका अपरदन।

(i) **पवन अपरदन** - पवन बहुत बड़ी मात्रा में बालू और मृदा के महीन कणों को मरूस्थलीय प्रदेशों से उड़ाकर निकटवर्ती खेती वाली भूमियों पर बिछाते रहते हैं। इस प्रकार ये इन भूमियों की उर्वरता को नष्ट करते हैं। इस प्रकार के अपरदन को **पवन अपरदन** कहते हैं। इस प्रकार का अपरदन संसार के मरूस्थलों तथा उनके निकटवर्ती प्रदेशों में हो रहा है। भारत में थार मरूस्थल एक लाख वर्ग किलोमीटर से भी अधिक क्षेत्र को घेरे हुए है। थार मरूस्थल का विस्तार राजस्थान, गुजरात, हरियाणा और पंजाब में है। ये पवन अपरदन से अत्याधिक प्रभावित हैं।

(ii) **परतदार अपरदन** - जल जब एक परत के रूप में बहता है तो मृदा की पतली परतों को अपने साथ बहा ले जाता है। इस प्रकार के अपरदन को **परतदार अपरदन** कहते हैं। इस प्रकार का अपरदन सामान्यतः नदी घाटियों तथा बाढ़ से प्रभावित क्षेत्रों में होता है। इस प्रकार के अपरदन से लंबे समय में मृदा की ऊपरी परत हट जाती है और मृदा अनुपजाऊ हो जाती है।

(iii) **नदिका अपरदन** - धरातलीय पदार्थ सामान्यतः मृदा का बहते हुए जल के द्वारा निष्कासन नदिका अपरदन कहलाता है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत बहुत सी छुद्र सरिताएँ वर्षा ऋतु में बन जाती है तथा इनकी गहराई केवल कुछ सेंटीमीटर होती है। ये अपरदन भी करती है। इसे ही नदिका अपरदन के नाम से जानते हैं।

(iv) **अवनालिका अपरदन** - जल ढाल की ओर जब नालियों में बहता है तो वह मृदा कणों को उखाड़ कर बहा ले जाता हैं इससे अवनालिकाएँ बन जाती हैं। ये

टिप्पणी

धीरे–धीरे गहरी और चौड़ी होकर विस्तृत क्षेत्रों में फैल जाती है। इस प्रकार के अपरदन को **अवनालिका अपरदन** कहते हैं। इस प्रकार से अपरदित भूमि को **उत्खात भूमि** कहते हैं। हमारे देश की दो नदियों यमुना और चंबल ने उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में अवनालिका अपरदन के द्वारा काफी बड़े क्षेत्र को उत्खात भूमि में बदल दिया है।

अंतिम दो प्रकार का अपरदन कई कारकों से प्रभावित होता है। ये कारक हैं – जल प्रवाह की मात्रा और गति, मृदा की अपरदित होने की क्षमता, ढाल का स्वरूप, मृदा का गठन व बनावट, वर्षण का स्वरूप तथा वनस्पति का आवरण। पवन–अपरदन में पवनों या आंधियों की गति और बारंबारता तथा वनस्पति आवरण मुख्य कारक हैं। सागर की लहरें उन तटवर्ती क्षेत्रों में अपरदन करती हैं जो चूने के पत्थर जैसी कमजोर शैलों से बने होते हैं। इस प्रकार का अपरदन केरल के तट पर काफी बड़े पैमाने पर हुआ है। पर्वतीय क्षेत्रों तथा नदी द्रोणियों में, नदी द्वारा मार्ग बदलने तथा हिमपात से मृदा का बहुत अधिक अपरदन हुआ है।

- प्राकृतिक शक्तियों या मानव–क्रियाओं से मृदा के आवरण के हटने को मृदा अपरदन कहते हैं।
- मृदा अपरदन चार प्रकार का होता है – पवन अपरदन, परतदार अपरदन नदिका अपरदन तथा अवनालिका अपरदन।
- मृदा अपरदन को प्रभावित करने वाले कारक हैं – जल प्रवाह की मात्रा तथा गति, ढाल का स्वरूप, मृदाओं का गठन और बनावट तथा पवनों की बारंबारता और गति।

2.13 मृदा संरक्षण

मृदा एक बहुत ही महत्वपूर्ण संसाधन है। यह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विभिन्न प्रकार के जीवों का भरण–पोषण करती है। इसके अतिरिक्त, मृदा निर्माण एक बहुत ही धीमी प्रक्रिया है। मृदा अपरदन की प्रक्रिया ने प्रकृति के इस अनूठे उपहार को केवल नष्ट ही नहीं किया है; अपितु अनेक प्रकार की समस्याएँ भी पैदा कर दी है। मृदा अपरदन से बाढ़ें आती हैं। इन बाढ़ों से सड़कों व रेलमार्गों, पुलों, जल विद्युत परियोजनाओं, जलापूति और पम्पिंग केन्द्रों को काफी हानि पहुँचती है।

मृदा संरक्षण से तात्पर्य उन विधियों से है, जो मृदा को अपने स्थान से हटने से रोकते हैं। संसार के विभिन्न क्षेत्रों में मृदा अपरदन को रोकने के लिए भिन्न–भिन्न विधियाँ अपनाई गई हैं। इन विधियों का विवरण नीचे दिया गया है।

(क) वन संरक्षण : वनों के वृक्षों की अंधाधुंध कटाई मृदा अपरदन का प्रमुख कारण है। वृक्षों की जड़ें मृदा पदार्थों को बांधे रखती हैं। यही कारण है कि सरकारों ने वनों को 'सुरक्षित' घोषित कर दिया है तथा इन वनों में वृक्षों की कटाई पर रोक लगा दी हैं मृदा

संरक्षण की यह विधि सभी प्रकार के भू–भागों के लिए उपयुक्त है। वनों को वर्षा लाने वाले 'दूत' कहा जाता है। इनसे मृदा निर्माण की प्रक्रिया तेज हो जाती है।

(ख) वृक्षारोपण : नदी घाटियों, बंजर भूमियों तथा पहाड़ी ढालों पर वृक्ष लगाना मृदा संरक्षण की दूसरी विधि है। इससे इन प्रदेशों में मृदा का अपरदन कम हो जाता हैं। मरूस्थलीय सीमान्त क्षेत्रों में पवन–अपरदन को नियंत्रित करने के लिए वृक्षारोपण एक प्रभावी उपाय है। मरूस्थलीय क्षेत्रों के सीमावर्ती भागों में वृक्ष लगाकर रेगिस्तानी रेत को खेतों में जमने से रोका जा सकता है। इस तरह मरूस्थलीय क्षेत्रों की वृद्धि पर अंकुश लगता है। हमारे देश में, थार मरूस्थल के विस्तार को रोकने के लिए राजस्थान, हरियाणा, गुजरात तथा पंजाब में बड़े पैमाने पर वृक्ष लगाए जा रहे हैं।

(ग) बाढ़ नियंत्रण : वर्षा ऋतु में नदियों में जल की मात्रा बढ़ जाती है। इससे मृदा के अपरदन में वृद्धि होती है। बाढ़ नियंत्रण के लिए नदियों पर बांध बनाए गए हैं। इनसे मृदा का अपरदन रोकने में मदद मिलती है। नदियों के जल को नहरों द्वारा सूखाग्रस्त क्षेत्रों की ओर मोड़कर तथा जल संरक्षण की अन्य सुनियोजित विधियों द्वारा भी बाढ़ों को रोका जा सकता है।

(घ) नियोजित चराई : अत्यधिक चराई से पहाड़ी ढालों की मृदा ढीली हो जाती है और जल इन ढीली मृदा को आसानी से बहा ले जाता है। इन क्षेत्रों में नियोजित चराई से वनस्पति के आवरण को बचाया जा सकता है। इस प्रकार इन क्षेत्रों के मृदा अपरदन को कम किया जा सकता है।

(च) बंध बनाना : अवनालिका अपरदन से प्रभावित भूमि में बंध या अवरोध बनाकर मृदा अपरदन को रोका जा रहा हैं। यह विधि न केवल मृदा का अपरदन रोकती हे, अपितु इससे मृदा की उवर्रता बनाए रखने, जल संसाधनों के संरक्षण तथा भूमि को समतल करने में भी सहायता मिलती है।

(छ) सीढ़ीदार खेत बनाना : पर्वतीय ढालों पर मृदा के संरक्षण के लिए सीढ़ीदार खेत बनाना एक अन्य विधि है। सीढ़ीदार खेत बनाने से तात्पर्य पर्वतीय प्रदेशों में ढलान के आर–पार समतल चबूतरे बनाने से है। इस विधि से इन क्षेत्रों में मृदा का अपरदन रूक जाता है। साथ ही जल संसाधनों का समुचित उपयोग भी होता है। इस प्रकार इन खेतों में फसलें उगाई जा सकती है।

(ज) समोच्चरेखीय जुताई : मृदा संरक्षण की यह विधि तरंगित भूमि वाले प्रदेशों के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है। भूमि को समान ऊँचाइयों पर जोतने से हल के कूंड या नालियां ढाल के आर–पार बन जाती हैं। इससे मृदा के अपरदन की गति में कमी आ जाती है। यह विधि मृदा उर्वरता और आर्द्रता बनाए रखने के लिए भी प्रयोग में लाई जाती है।

(झ) कृषि की पट्टीदार विधि अपनाना : मृदा संरक्षण को यह विधि मरूस्थलीय और अर्द्धमरूस्थलीय प्रदेशों के तरंगित मैदानों के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है। इस

विधि में खेतों को पट्टियों में बांट दिया जाता है। एक पट्टी में एक साल खेती की जाती है जबकि दूसरी पट्टी बिना जोते बोए खाली पड़ी रहती है। छोड़ी गई पट्टी की वनस्पति का आवरण मृदा अपरदन को रोकता है तथा उर्वरता को बनाए रखता है। अगले वर्ष इस प्रक्रिया को उलट दिया जाता है।

(त्र) शस्यावर्तन : शस्यावर्तन से तात्पर्य मृदा की उर्वरता को बनाए रखने के लिए चुने हुए खेत में विभिन्न फसलों को बारी–बारी बोने से है। इस प्रकार शस्यावर्तन के द्वारा ऐसे खेतों की उर्वरता भी बनी रहती है, जिनमें लगातार कोई न कोई फसल खड़ी रहती है। यह विधि उन क्षेत्रों के लिए उपर्युक्त है, जहाँ जनसंख्या के दबाव के कारण खेती के लिए भूमि कम रह गई है। यह विधि संसार के अधिकतर देशों में अपनाई जाती है।

(ट) भूमि उद्धार : जल द्वारा बनी उत्खात भूमियों को समतल करके भी मृदा अपरदन को रोका जा सकता है। मृदा संरक्षण की यह विधि नदी घाटियों और पहाड़ी प्रदेशों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। हमारे देश में चंबल और यमुना नदियों के उत्खात भूमियों वाले विस्तृत क्षेत्रों को इस विधि द्वारा समतल किया गया है।

- मृदा संरक्षण की विधियाँ हैं – वनों की रक्षा, वृक्षारोपण, बंध बनाना, भूमि उद्धार, बाढ़ नियंत्रण, अत्यधिक चराई पर रोक, पट्टीदार व सीढ़ीदार कृषि, समोच्चरेखीय जुताई तथा शस्यार्वतन।

पाठगत प्रश्न 2.10

1. कोष्ठकों में दिए गए शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

   (क) मृदा आवरण के पूरी तरह हटा दिए जाने को _____ कहते हैं। (अवनालिका अपरदन, पवन अपरदन, परतदार अपरदन)

   (ख) _____मरूस्थलीय सीमान्त भूमियों में मृदा संरक्षण की सर्वोत्तम विधि हैं। (पट्टीदार खेती, वृक्षारोपण, बंध बनाना)

   (ग) परतदार अपरदन मुख्य रूप से _____ द्वारा होता है। (बाढ़, वर्षा, वनों के विनाश)

2. निम्न में से प्रत्येक के लिए एक पारिभाषिक शब्द बताइये :–

   (क) प्रकृति या मानव क्रियाओं द्वारा मृदा पदार्थ का हटाना _____।

   (ख) जलधाराओं द्वारा मृदा को हटाना _____।

   (ग) वृक्ष रहति भूमियों में वृक्षों को लगाना _____।

(घ) आँधियों द्वारा मृदा का हटाना _____।

(ङ) समान ऊँचाईयों पर भूमि की जुताई _____।

आपने क्या सीखा

पृथ्वी एक विशाल गोलाकार ठोस पिण्ड हैं। भूगर्भ को प्रत्यक्ष रूप से कुछ ही किलोमीटर की गहराई तक देखा जा सकता है। पृथ्वी के धरातल से केन्द्र की ओर जाने पर तापमान, दबाव तथा घनत्व बढ़ते जाते हैं। भूगर्भ को तीन परतों में बांटा गया है– स्थलमंडल, मैंटल और क्रोड। स्थलमंडल के ऊपरी भाग को भूपर्पटी कहते हैं। भूपर्पटी का निर्माण जिन पदार्थों से हुआ है, उन्हें शैल कहते हैं। शैल एक या एक से अधिक खनिजों का मिश्रण है। खनिज विभिन्न तत्वों से बने हैं। उनका एक निश्चित रासायनिक संघटन है। निर्माण क्रिया के आधार पर शैलों को तीन वर्गों में बांटा गया है – आग्नेय, अवसादी और रूपांतरित। आग्नेय शैल द्रवित लावा अथवा मैग्मा के जमने से बनी हैं। ग्रेनाइट, बैसाल्ट और ग्रैबो आग्नेय शैल के उदाहरण हैं। जब द्रवित पदार्थ धरातल के नीचे गहराइयों में जमता है तो उसे आंतरिक आग्नेय शैल और धरातल के ऊपर जमने वाले स्वरूप को बाह्य आग्नेय शैल कहते हैं। शैल, चूना–पत्थर अवसादी शैल हैं। रूपांतरित शैल पूर्ववर्ती शैलों के रूपांतरण से बनी है। शैलों का मानव जीवन में बहुत उपयोग है। इससे मूल्यवान वस्तुएँ, पत्थर तथा भवन निर्माणकारी पदार्थ, ईंधन आदि मिलते हैं।

धरातल पर स्थल के विभिन्न स्वरूपों में निरंतर परिवर्तन होता रहता है। इनमें बाह्य शक्तियाँ दिन–रात, ऊँचे–नीचे भागों को समतल करने का प्रयत्न करती रहती है।

अपक्षय द्वारा शैलों में विभिन्न प्रकार का परिवर्तन होता रहता हैं। मौसम के तत्वों – जैसे तापमान, जल, पाला आदि के द्वारा शैलें कमजोर हो जाती हैं। उनमें दरारें तथा रंध्र बढ़ते जाते हें, जिससे बड़े–बड़े शैल खंड छोटी गुटिकाओं और कणों के रूप में विघटित होती है। इसे भौतिक अपक्षय कहते हैं। इस प्रकार का अपरदन मरूस्थलों, शुष्क उष्ण जलवायु वाले प्रदेशों और ठंडे प्रदेशों में बहुत अधिक होता है। गैसों और जल की क्रियाओं के परिणामस्वरूप शैल खनिजों में रासायनिक परिवर्तन होता है। रासायनिक परिवर्तन आक्सीकरण,कार्बोनेटीकरण, जल योजन और घोलन की क्रियाओं से होता है। इसे रासायनिक अपक्षय कहते हैं। इस प्रकार का अपक्षय उष्ण तथा आर्द्र जलवायु प्रदेशों में अधिक होता है। वनस्पति, जीव–जंतु, कीड़े–मकोड़े और मनुष्य जैविक अपक्षय के कारक हैं। इनके द्वारा रासायनिक और भौतिक अपक्षय भी होता है।

मृदा मानव के लिए एक उपयोग प्राकृतिक संसाधन है। वह मृदा से अपना भोजन, वस्त्र और अन्य उपयोग वस्तुएं प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्राप्त करता है। मृदा ढीले अजैव

टिप्पणी

तथा अपघटित जैव पदार्थों की पतली परत हैं, जो भूपृष्ठ को ढके हुए हैं। मृदा के निर्माण में विभिन्न कारकों का योगदान होता है। ये कारक हैं – मूल शैल पदार्थ, जलवायु, उच्चावच, समय तथा वनस्पति। पूर्ण रूप से विकसित मिट्टियों में मृदा परिच्छेदिका का विकास होता है। इसमें चार परत या संस्तर स्थितियाँ होती हैं। प्रत्येक परत की विशेषताएँ भिन्न होती हैं।

मृदा अपरदन एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, जिसमें मृदा आवरण का विनाश तथा कटाव शामिल है। बहता जल, पवनें, समुद्री लहरें तथा हिमानियाँ अपरदन के प्रमुख कारक हैं। मृदा अपरदन के कई प्रकार हैं, जैसे पवन अपरदन, परतदार अपरदन तथा अवनालिका अपरदन। मृदा आवरण का हटाया जाना पानी की मात्रा व गति, ढाल के स्वरूप, मृदा के गठन व बनावट, पवनों की आवृति तथा वर्षण के स्वरूप पर निर्भर करता है। मानव भी अपने कुकृत्यों के द्वारा प्राकृतिक शक्तियों को सहयोग देकर, मृदा अपरदन की समस्या में वृद्धि कर रहा है। मृदा संरक्षण से तात्पर्य उन विधियों से है, जिनके द्वारा मृदा अपरदन रोका जा सकता है। इन विधियों में वनों की रक्षा, वृक्षारोपण, समोच्चरेखीय जुताई, सीढ़ीदार व पट्टीदार कृषि, बंध बनाना तथा बाढ़ नियंत्रण आदि शामिल हैं।

पाठांत प्रश्न

1. भूगर्भ के संबंध में जानकारी के लिए प्रत्यक्ष विधियों की सीमाएं क्या हैं ?
2. भूगर्भ को प्रदर्शित करने वाला आरेख बनाइए, जिसमें प्रत्येक परत का घनत्व और उसकी गहराई अंकित कीजिए।
3. उदाहरण सहित शैल और खनिजों में अंतर स्पष्ट कीजिए।
4. रचना के आधार पर शैलों का वर्गीकरण कीजिए। उपयुक्त उदाहरण के साथ उत्तर दीजिए।
5. शैल और खनिजों का आर्थिक महत्व क्या है ? संक्षेप में वर्णन कीजिए।
6. रूपांतरित और अवसादी शैलों की निर्माण–क्रिया की तुलना कीजिए।
7. अपक्षय किसे कहते हैं? अपक्षय के विभिन्न प्रकारों के नाम लिखिए।
8. रासायनिक अपक्षय कैसे होता है?
9. निम्नलिखित जोड़ों में अंतर बताइये;

   (क) विघटन तथा अपघटन

   (ख) निम्नीकरण तथा अधिवृद्धि;

   (ग) आक्सीकरण तथा घोलन क्रिया।

10. तल–संतुलन की प्रक्रिया को समझाइये।
11. मनुष्य अपक्षय का महत्वपूर्ण कारक कैसे है ?
12. अपक्षय की निम्नलिखित प्रक्रियाओं को सामान्य आरेख बनाकर समझाइये :
    (क) पिण्ड विघटन;
    (ख) तुषारी अपक्षय;
    (ग) वृक्षों की जड़ों द्वारा अपक्षय।
13. मृदा परिच्छेदिका का संक्षिप्त विवरण लिखिए तथा उपयुक्त आरेख भी बनाइये।
14. मृदा के निर्माण में सहायक विभिन्न कारकों की विवेचना कीजिए।
15. मृदा अपरदन किसे कहते हैं? मृदा अपरदन के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कीजिए। मृदा के संरक्षण में प्रयोग की जाने वाली विभिन्न विधियों का विवरण दीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

2.1

1. गहराई बढ़ने के साथ तापमान में तेजी से वृद्धि।
2. (क) स्थलमण्डल (ख) मैंटल (ग) क्रोड़
3. क्रोड़ या निफे
4. 11.0 से भी अधिक (5) स्थलमंडल (6) स्थलमंडल

2.2

1. 2000^0 डिग्री सें.
2. समुद्र जल पर वायुमंडलीय दाब की तुलना में 30–40 लाख गुणा अधिक
3. ऊपर की परतों के अत्यधिक दबाव और भारी पदार्थों की उपस्थिति के कारण

2.3

1. खनिज एक प्राकृतिक रूप से प्राप्त अजैविक तत्व हैं जिसके कुछ भौतिक गुण और निश्चित रासायनिक संघटन होता हैं
2. फाल्सपार, क्वार्ट्ज, पाइराक्सीन, एम्फीबोल, अभ्रक और ओलोवीन में से कोई तीन
3. (1) पातालीय आग्नेय शैल (2) लावा

टिप्पणी

4. (क) जब मैग्मा भूपर्पटी की दरारों या छिद्रों में लंबवत जमता है तो उसे डाइक कहते हैं। (ख) जब ये शैलों की समानांतर क्षैतिज परतों के बीच जमता है तो इसे सिल कहते हैं।

5. (क) शीतलन, (ख) बैसाल्ट, (ग) ठोसीकरण

2.4

1. जिन पदार्थों से भूपर्पटी बनी है उन्हें शैल कहते हैं।
2. आग्नेय, अवसादी एवं कायांतरित शैल
3. (i) गतिक रूपांतरण (ii) अवसादी परतदार शैलें (iii) रूपांतरित शैलें

   (iv) सरोवरी शैल।
4. (ग) रूपांतरित शैल, (ग) बालू–पत्थर

2.5

1. (क) भौतिक अपक्षय (ख) रासायनिक अपक्षय (ग) जैविक अपक्षय।
2. शुष्क तथा अत्यधिक ठंडे प्रदेशों में।
3. (क) अपशल्कन (ख) तुषारी अपक्षय ऽ(ग) भौतिक अपक्षय

2.6

1. उष्ण और आर्द्र प्रदेशों में
2. घोलन
3. आक्सीकरण
4. कार्बोनेटीकरण

2.7

1. मृदा 2. जैव पदार्थों पर जीवाणुओं की क्रिया के द्वारा 3. (i) कृषि, (ii) भवन या सड़क निर्माण

2.8

1. तल संतुलन
2. (क) निम्नीकरण या ऊँचे भागों को नीचा करना।

   (ख) अधिवृद्धि या नीचे भागों का भरना।
3. अधिवृद्धि
4. पदार्थों के अपरदन से ऊँचे भागों को नीचा करना

2.9

1. (क) जलवायु (ख) वनस्पति व जीव जन्तु।
2. (क) मूल शैल (ख) उच्चावच या स्थलाकृति (ग) समय
3. (क) अजैव खनिज कण (ख) जैविक क्रियाओं
4. (क) मृदा (ख) मृदा परिच्छेदिका (ग) मृदा की ऊपरी परत
   (घ) अपक्षयित मूल शैल की पेटी।

2.10

1. (क) परतदार अपरदन (ख) वृक्षारोपण (ग) बाढ़ों
2. (क) मृदा अपरदन (ख) अवनालिका अपरदन
   (ग) वृक्षारोपण (घ) पवन अपरदन (ड.) समोच्चरेखीय जुताई।

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. पृथ्वी की सतह से भूगर्भ में जाने पर तापमान का तेजी से बढ़ना, तापमान की अधिकता के कारण खनन कार्य कुछ ही किलोमीटर तक सीमित होना और अधिक गहराई तक खोदने पर वेधन यंत्रों का पिघल जाना।
2. चित्र 2.1 देखकर आरेख बनाइए।
3. अनुच्छेद 2.4 देखिये।
4. अनुच्छेद 2.5 देखिये।
5. अनुच्छेद 2.6 देखिये।
6. अवसादी शैलों की रचना ऋतु, अपक्षरण, अपरदन तथा पुरानी शैलों के अवसादों के जमाव से होती है जो दबाव, रासायनिक परिवर्तनों अथवा जैविक पदार्थों के दबाव से कठोर बन जाती है। दूसरी ओर रूपांतरित शैलों की रचना दबाव और मैग्मा के उच्च तापमान के कारण होती है। जब मैग्मा अवसादी अथवा आग्नेय शैलों के सम्पर्क में आता है तो शैलों का रूपांतरण हो जाता है।
7. अपक्षय वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा शैलें अपने ही स्थान पर विघटित और अपघटित होती हैं। अनुच्छेद 2.7 देखिए।
8. अनुच्छेद 2.8 देखिए।
9. (क) शैलों के विघटन से तात्पर्य है – तापमान या तुषारी क्रियाओं के प्रभाव से

टिप्पणी

शैलों का भौतिक विखंडन या टूटना–फूटना। अपघटन से तात्पर्य रासायनिक परिवर्तन से है। इसमें शैलों के खनिज छोटे–छोटे कणों में टूट जाते हैं या पानी में घुल जाते हैं।

(ख) अनुच्छेद 2.10 देखिए।

(ग) अनुच्छेद 2.8 देखिए।

10. अनुच्छेद 2.10 देखिए।

11. अनुच्छेद 2.8 देखिए।

12. चित्र संख्या 2.3, 2.5 और 2.6 देखिए।

13. अनुच्छेद 2.11 देखिए।

14. अनुच्छेद 2.11 देखिए।

15. अनुच्छेद 2.12 तथा 2.13 देखिए।

3

पृथ्वी का गतिशील धरातल

पिछले पाठ में हमने पढ़ा कि पृथ्वी का आंतरिक भाग बहुत गर्म है। भूकम्प और ज्वालामुखी कुछ संकरी पट्टियों के सहारे केन्द्रित हैं। भूपृष्ठ की शैलों के प्रकार और घनत्व परिवर्तनशील हैं। धरातलीय लक्षणों की विशेषता उनका गतिशील होना है। उनकी यह गतिशीलता दो शक्तियों – आंतरिक एवं बाह्य का परिणाम है। आंतरिक शक्तियाँ वे हैं जो धरातल के नीचे से उत्पन्न होती हैं। इस शक्ति के परिणामस्वरूप एक क्षेत्र या तो ऊपर उठ जाता है या नीचे धस जाता है। ये शक्तियाँ धरातल को अनियमित अथवा ऊबड़–खाबड़ बनाने का प्रयत्न करती हैं। जबकि बाह्य शक्तियाँ धरातल के ऊपर क्रियाशील रहती हैं। ये शक्तियाँ अनाच्छदन की प्रक्रिया द्वारा धरातल की अनियमितता को समाप्त करके उसे समतल बनाने का प्रयत्न करती हैं। अनाच्छादन की प्रक्रिया के विषय में हम अगले पाठों में अध्ययन करेंगे। आइए इस पाठ में हम पृथ्वी की आंतरिक शक्तियों का अध्ययन करें।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- भूसंतुलन की परिभाषा बता सकेंगे;
- पृथ्वी के धरातल पर उच्चावच के लक्षणों की विविधता का वर्णन कर सकेंगे;
- विभिन्न प्रयोगों द्वारा भूसंतुलन सामंजस्य की व्याख्या कर सकेंगे;
- एयरी और प्रैट के विचारों और उनके विचारों की भिन्नता को समझा सकेंगे;
- महाद्वीपीय विस्थापन की अवधारणा की व्याख्या कर सकेंगे;
- महाद्वीपीय विस्थापन के प्रमाणों को गिना सकेंगे;
- प्लेट विवर्तनिकी की अवधारणा की व्याख्या कर सकेंगे;
- विश्व मानचित्र पर विभिन्न प्लेटों को पहचान कर उनकी अवस्थिति दिखा सकेंगे;

टिप्पणी

- प्लेट संचलन के रचनातंत्र को स्पष्ट कर सकेंगे;
- विभिन्न प्लेट सीमाओं और उनसे सम्बन्धित लक्षणों को पहचान सकेंगे;
- पृथ्वी पर जल और स्थल के वितरण की व्याख्या कर सकेंगे; और
- प्लेट सीमाओं और भूकम्प एवं ज्वालामुखी के मध्य सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे।

3.1 भूसंतुलन की अवधारणा

आइसोस्टेसी (भूसंतुलन) शब्द ग्रीक भाषा के 'आइसोस्टेसियॉज' से लिया गया है, जिसका अर्थ है संतुलन की स्थिति। आप जानते हैं और आपने ऐसा देखा भी होगा कि पर्वतों के बहुत से शिखर होते हैं और उनकी ऊँचाई भी अधिक होती है। इसी तरह से पठार का ऊपरी भाग सपाट होता है और मैदान समतल होते हैं। पठारों की ऊँचाई सामान्य जबकि मैदानों की बहुत कम होती है, इसके विपरीत समुद्र तलों और खाइयों की गहराई बहुत अधिक होती है। इन उच्चावचों की ऊँचाई में बहुत अन्तर होता है। आप यह भी जानते हैं कि पृथ्वी अपनी धुरी पर परिभ्रमण कर रही है और उसने अपने विविध भूलक्षणों में सन्तुलन बना रखा है। अतः हमारी पृथ्वी को समस्थिति की अवस्था में माना जाता है।

उदाहरण – मान लीजिए आप अपने दोनों हाथों में भिन्न–भिन्न ऊँचाईयों (जैसे 5 और 15 इंच की) वाले लंबवत टुकड़े सीधे पकड़े हुए एक निश्चित दिशा में जा रहे हैं। क्या आपको अपने शरीर और उन दो टुकड़ों के साथ सामंजस्य बिठाने में कोई कठिनाई होती है? निश्चित रूप से लम्बे टुकड़ों की अपेक्षा छोटे टुकड़ें के साथ सन्तुलन बनाए रखना आसान होगा। ऐसा गुरूत्व केन्द्र के कारण होता है। लम्बे टुकड़े की तुलना में छोटे टुकड़े के साथ गुरूत्व केन्द्र आपके हाथ के अधिक पास होगा। इस प्रकार से छोटे धरातलीय लक्षण जैसे मैदान ऊँचे पर्वतों की तुलना में अधिक स्थिर होंगे।

(क) भू सन्तुलन : एअरी के विचार

भू वैज्ञानिक एअरी ने विभिन्न स्तम्भों जैस पर्वत पठार और मैदान आदि के घनत्व को एक जैसा माना है। अतः उसने विभिन्न मोटाइयों के साथ एक समान घनत्व के विचार को सुझाया। हम जानते हैं कि पृथ्वी की ऊपरी परत हल्के पदार्थों से बनी है। इस परत में सिलिका और एल्मुनियम भारी मात्रा में पाए जाते हैं, इसलिए इसे 'सियाल' के नाम से जाना जाता है। यह नीचे की परत से कम घनत्व वाला है। एअरी ने माना कि सियाल से बनी भूपर्पटी सिमा (सिलिका और मैग्नेशियम, नीचे की अधिक धनत्व वाली परत) की परत के ऊपर तैर रही है। भूपर्पटी की परत का घनत्व एक समान है जबकि इसके विभिन्न स्तम्भों की ऊँचाई अलग–अलग है। इसलिए ये स्तम्भ अपनी ऊँचाई के अनुपात में दुर्बलता मण्डल में धंसे हुए हैं। इसी कारणवश इनकी जड़ें विकसित हो गई है अथवा नीचे गहराई में सिमा विस्थापित हो गया है।

इस अवधारणा को सिद्ध करने के लिए, एअरी ने विभिन्न आकारों के लकड़ी के टुकड़े

लिए और उन्हें पानी में डुबो दिया। (चित्र 3.1 (क)) सभी टुकड़े एक जैसे घनत्व के हैं। ये अपने आकार के अनुपात में भिन्न–भिन्न गहराई तक पानी में डूबते हैं। इसी प्रकार से पृथ्वी के धरातल पर अधिक ऊँचाई वाले भूलक्षण उसी अनुपात में अधिक गहराई तक धंसे होते हैं जबकि कम ऊँचाई वाले लक्षणों की जड़ें छोटी होती हैं। यह अधिक गहराई तक धंसी हुई जड़ें ही हैं, जो अधिक ऊँचाई वाले भूभागों को स्थिर रखे हुए हैं। उनका विचार था कि, भू–भाग एक नाव की तरह (मैग्मा वाले दुर्बलता मण्डल) अधः स्तर पर तैर रहे है। इस अवधारणा के अनुसार माउँट एवरेस्ट की जड़ समुद्र स्तर से 70, 784 मीटर नीचे होनी चाहिए (8848 × 8 = 70,784)। एअरी की इसी बात को लेकर आलोचना हुई है कि, जड़ का इतनी गहराई पर रहना संभव नहीं है, क्योंकि इतनी गहराई पर विद्यमान उच्च तापमान जड़ के पदार्थों को पिघला देगा।

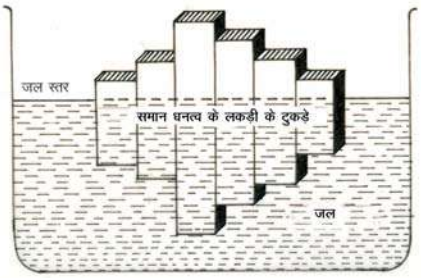

चित्र 3.1 (क) एअरी के भूसंतुलन के विचार का चित्र

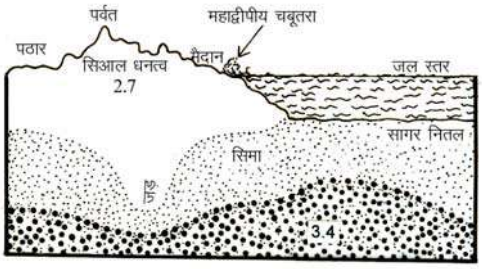

चित्र 3.1 (ख) भूसंतुलन की स्थिति (ए. होम्स व डी.एल. होम्स पर आधारित)

(ख) भू-सन्तुलन : प्रैट के विचार

प्रैट ने विभिन्न ऊँचाईयों के भूभागों को भिन्न–भिन्न घनत्व का माना है। ऊँचे भूभागों का घनत्व कम है, जबकि कम ऊँचाई वाले भूभागों का अधिक। दूसरे शब्दों में ऊँचाई और घनत्व में विपरीत सम्बन्ध है। अगर कोई ऊँचा स्तम्भ है तो उसका घनत्व कम होगा और अगर कोई स्तम्भ छोटा है तो उसका घनत्व अधिक होगा। इसको सही मानते हुए उन्होंने स्वीकार किया कि, विभिन्न ऊँचाईयों के सभी स्तम्भों की क्षतिपूर्ति अधः स्तर की एक निश्चित गहराई पर हो जाती है। इस प्रकार से एक सीमारेखा खींच दी जाती है, जिसके ऊपर विभिन्न ऊँचाईयों का समान दवाब पड़ता है। अतः उसने

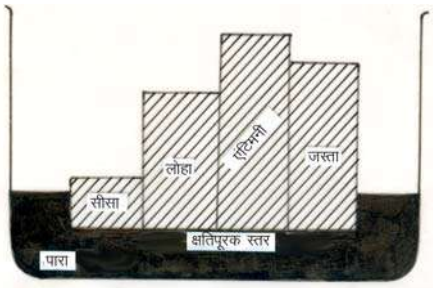

चित्र 3.2 (क) भूसंतुलन पर प्रैट के विचार का प्रयोग

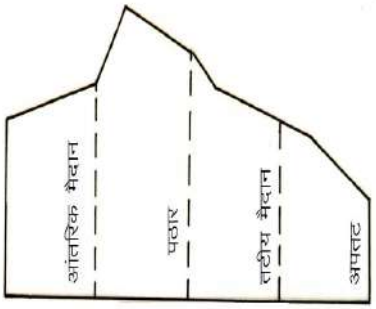

चित्र 3.2 (ख) स्थलमण्डलीय टुकड़ों की क्षतिपूर्ति का चित्र

एअरी के आधार या जड़ अवधारणा को खारिज कर दिया और क्षतिपूरक स्तर की अवधारणा को स्वीकार किया। उसने अपनी अवधारणा को सिद्ध करने के लिए समान भार वाली भिन्न–भिन्न घनत्व की कुछ धातु की छड़ें ली और उन्हें पारे में डाल दिया। (चित्र 3.2)। इस प्रकार से, इन छड़ों के द्वारा उन्होंने एक रेखा बना दी, जिसे उन्होंने क्षतिपूरक स्तर माना।

एअरी और प्रैट के विचारों में अन्तर

एअरी और प्रैट के विचारों की भिन्नता को एक सारणी के रूप में रखकर अधिक स्पष्ट किया जा सकता है।

एअरी के विचार	प्रैट के विचार
1. भूपर्पटी के पदार्थों में एक समान घनत्व।	भूपर्पटी के पदार्थों के घनत्व में भिन्नता।
2. भिन्न–भिन्न गहराई, जिस तक जड़ पहुँचती है।	एक समान गहराई, जिस तक भूपर्पटी का पदार्थ पहुँचता है।
3. पर्वतों के नीचे गहरी जड़ और मैदानों के नीचे छोटी जड़। (चित्र 3.1)	किसी प्रकार की जड़ नहीं परन्तु क्षतिपूरक स्तर का होना। (चित्र 3.2)

(ग) भूमंडलीय भू-संतुलन सामंजस्य

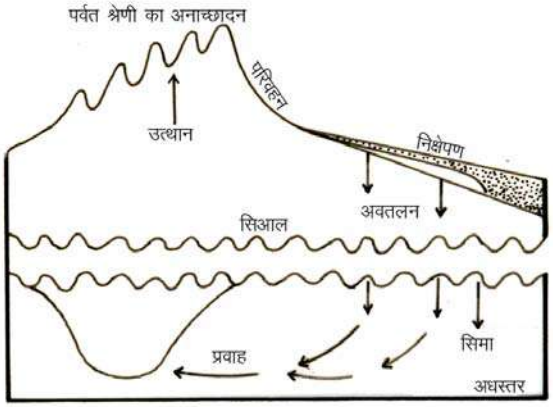

चित्र 3.3 भूमंडलीय संतुलन के सामंजस्य का रचना तंत्र

यह बिल्कुल स्पष्ट है कि, पृथ्वी पर पूर्ण भूसंतुलन नहीं है। पृथ्वी अस्थिर है। आन्तरिक शक्तियाँ अक्सर भूपर्पटी के संतुलन को भंग कर देती हैं। एक निश्चित पेटी में नियमित भूकम्प और ज्वालामुखी उद्भेदन असंतुलन को दर्शाते हैं, इसलिए लगातार एक प्रकार के सामंजस्य की आवश्यकता बनी रहती है। आंतरिक शक्तियाँ और उनके विवर्तनिक प्रभाव धरातल पर असंतुलन के कारण हैं परन्तु प्रकृति हमेशा समस्थितिक सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करती है। वाह्य शक्तियाँ पृथ्वी के धरातल पर आए अन्तरों

को दूर करने का प्रयत्न करती हैं और इस प्रक्रिया में वे ऊँचे भूभागों से पदार्थों को खुरचकर बहुत दूर ले जाकर निचले भागों में निक्षेपित कर देती हैं। इस प्रक्रिया में निक्षेपण के स्थान पर धंसाव द्वारा नीचे के पदार्थों के प्रवाह के कारण एवं खुरचने के स्थान पर अनाच्छादन के अनुपात में उत्थान द्वारा भूमंडलीय संतुलन बना रहता है। (चित्र 3.3)

पाठगत प्रश्न 3.1

रिक्त स्थान भरिए :

1. भूमंडलीय संतुलन का अर्थ है _____।
2. एअरी ने विभिन्न स्तम्भों के घनत्व को _____ माना।
3. प्रैट ने विभिन्न ऊँचाईयों के भू भागों को उनके _____ के सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न माना।
4. एअरी के अनुसार पर्वतों के नीचे _____ जड़ है, जबकि मैदानों के नीचे _____।
5. प्रैट ने जड़ अवधारणा को _____ बल्कि क्षतिपूरक _____ को माना।
6. आंतरिक शक्तियाँ अक्सर भूपर्पटी के संतुलन को _____ देती हैं।
7. एक निश्चित पेटी में नियमित भूकम्प और ज्वालामुखी उद्भेदन _____को दर्शाते है इसलिए लगातार एक _____ की आवश्यकता होती है।

3.2 महाद्वीपीय विस्थापन

अल्फ्रेड वेगनर के अनुसार 28 करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी का समस्त भूभाग एक साथ जुड़ा हुआ था। इस सुविशाल महाद्वीप को उन्होंने **पैंजिया** नाम दिया। इस अकेले महाद्वीप के चारों ओर एक विराट महासागर था, जिसका नाम **पैंथालासा था**। 28 से 15 करोड़ वर्ष पूर्व यह अक्षांशीय रूप से उत्तरी तथा दक्षिणी भागों में टूट गया जिन्हें क्रमशः लॉरेसिया (अंगारालैंड) तथा गोंडवानालैंड के रूप में जाना गया। दोनों एक दूसरे से अलग हटते गए तथा इनके बीच पैंथालासा द्वारा पानी भरने से एक उथला समुद्र पैदा हो गया, जिसे टैथीज सागर के नाम से जाना गया। बाद में लॉरेसिया और गोंडवानालैंड एक दूसरे से अलग हटते गए और अंतः इन्होंने एक दूसरे से दूर हटकर पृथ्वी पर भूभाग और जल के वर्तमान रूप को धारण कर लिया। (चित्र 3.4)

टिप्पणी

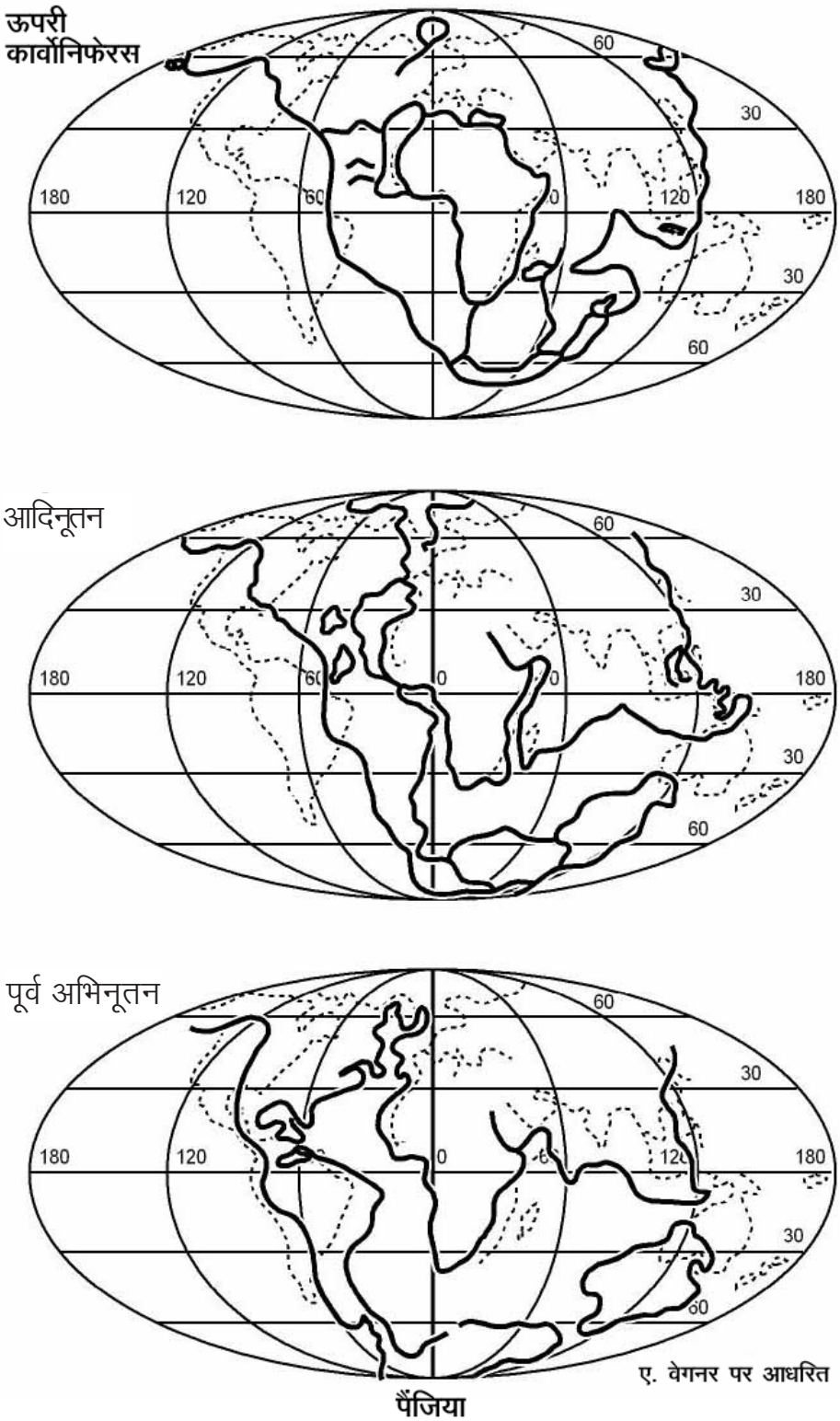

चित्र 3.4 पैंजिया

विस्थापन के प्रमाण

वेगनर ने भूगर्भीय भूतकाल में भूभाग के एक होने के पक्ष में कई प्रमाण दिए। ये प्रमाण ऐसे हैं जिन्हें आज भी नकारा नहीं जा सकता है।

(क) जिग-सॉ-फिट – दक्षिणी अमेरिका का पूर्वी तट अफ्रीका के पश्चिमी तट के समान है, जो समुद्र में कुछ गहराई तक जाकर इस के अनुरूप हो जाता है। कुछ सीमा तक तटीय क्षेत्र और महासागरीय निमग्न तट समुद्री लहरों द्वारा बदल दिए गए हैं।

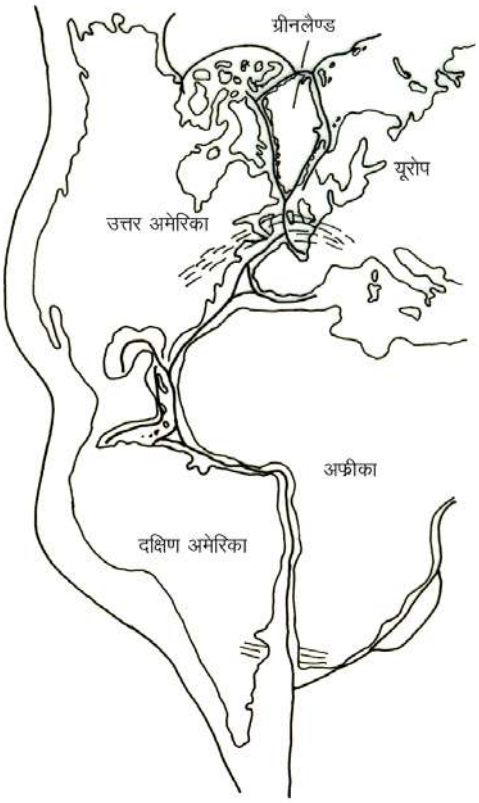

चित्र 3.5 महाद्वीपीय विस्थापन का वैगनर का मानचित्र
(अटलांटिक महासागर के सीमावर्ती महाद्वीपों का एक दूसरे के अनुरूप होना)

(ख) भूगर्भीय समानताएँ :- दक्षिणी अमेरिका और अफ्रीका में दक्षिणी अटलांटिक तट के पर्वत तंत्रों के दोनों महाद्वीपों में विस्तार की समानता है।

(ग) कोयला और वनस्पति सम्बन्धी प्रमाण - दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका, भारत और आस्ट्रेलिया में कोयले और वनस्पति का वितरण यह सिद्ध करता है कि, भूवैज्ञानिक काल में ये एक साथ जुड़े हुए थे। इन भूभागों पर कार्बोनीफेरस काल में उच्च स्तरीय हिमनदीय निक्षेप एक दूसरे से मेल खाते हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि ये एक समय एक साथ थे। आज ये विभिन्न जलवायविक क्षेत्रों में है।

टिप्पणी

वेगनर द्वारा दिए गए उक्त प्रमाणों के अतिरिक्त अन्य प्रमाण (जिनका बाद में पता चला) भी महाद्वीपीय विस्थापन को प्रमाणित करते हैं।

(घ) पुराचुम्बकत्व के प्रमाण – पुराचुम्बकत्व विभिन्न युगों में, ध्रुव की दिशा का अध्ययन है। चुम्बक से प्रभावित होने वाले खनिज जैसे हेमेटाइट, पाइरोटाइट, मेग्नेटाइट आदि पृथ्वी के चुम्बकीय ध्रुव की सीध में होते हैं और उस समय मैग्मा के घनीभवन में दर्ज हो जाते हैं। यह पता चला है कि, इसमें समय–समय पर परिवर्तन हुए और ध्रुवों की स्थिति बदलती रही, किंतु यह परिवर्तन संपूर्ण पृथ्वी के लिए संभव नहीं था। अतः यह भूखण्डों में परिवर्तन है न कि संपूर्ण पृथ्वी में, जो कि सिद्ध करता है कि, महाद्वीप अपनी स्थिति बदलते रहे हैं।

(ङ) समुद्री अधःस्तल का विस्तारण – मध्य अटलांटिक कटक के सहारे मैग्मा समुद्र की सतह पर आकर ठोस हो जाता है। इससे एक नए क्षेत्र का निर्माण होता है और यह प्रक्रिया लाखों वर्षों से चल रही है। यह महाद्वीपीय खंडों का विचलन कर रहा है जिससे अटलांटिक महासागर का आकार बढ़ रहा है, इसको ही समुद्री अधःस्तल का विस्तारण कहते हैं। यह महाद्वीपों के विस्थापन का अनूठा उदाहरण है। समुद्री अधःस्तल के विस्तारण और पुराचुम्बकत्व के अध्ययन द्वारा महाद्वीपीय विस्थापन के स्पष्टीकरण को ही सामान्य रूप से प्लेट विवर्तनिकी के रूप में जाना जाता है।

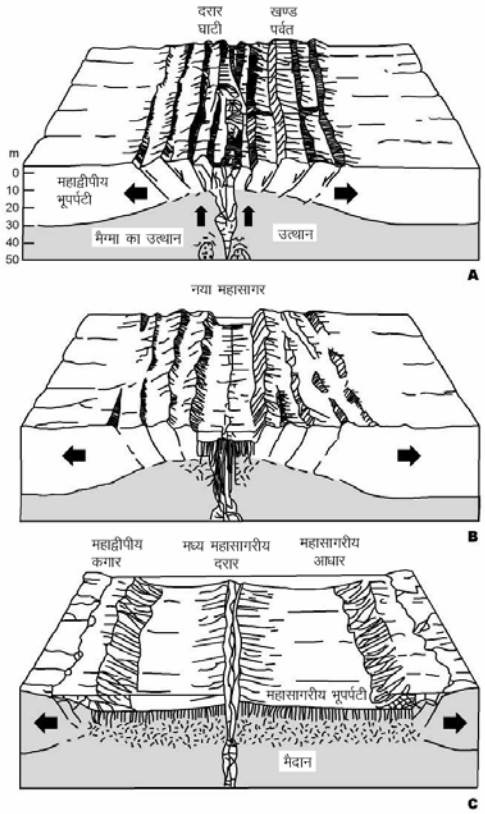

चित्र 3.6 महाद्वीपीय दरारों की अवस्थाएँ और नए अधःस्तलों का बनना

पाठगत प्रश्न 3.2

1. रिक्त स्थान भरिए :

   (क) अल्फ्रेड वेगनर ने इस सुविशाल महाद्वीप को _____ नाम दिया था।

   (ख) विराट महासागर _____ के नाम से जाना जाता था।

   (ग) पैंजिया दो भागों में टूट गया। उत्तर में _____ था और दक्षिण में _____ था।

   (घ) उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका _____ की ओर विस्थापित हो गए।

   (ड़) _____ और _____ के बीच टेथीज सागर बन गया, जिसमें _____ का पानी भर गया।

2. वेगनर द्वारा दिए गए महाद्वीपीय विस्थापन के तीन प्रमाण बताइए।

   (क) _____

   (ख) _____

   (ग) _____

3. महाद्वीपीय विस्थापन के उन दो प्रमाणों को बताइए जिन्हें वेगनर ने नहीं बताया था।

   (क) _____

   (ख) _____

3.3 प्लेट विवर्तनिकी

पृथ्वी की बाह्य ठोस और कठोर परत को भू–पृष्ठ कहा जाता है। इसकी मोटाई सब जगह एक समान नहीं है। यह महासागरों के नीचे कहीं केवल 5 किलोमीटर मोटी है परन्तु कुछ पर्वतों के नीचे इसकी मोटाई 70 किलोमीटर तक है। भू पृष्ठ के नीचे सघन शैलें पाई जाती हैं, जिन्हें मेंटल कहते हैं। मेंटल का ऊपरी भाग धरातल से औसतन 100 किलोमीटर की गहराई तक ठोस है। यह ठोस मेंटल तथा ऊपरी भू–पृष्ठ मिलकर तुलनात्मक रूप से एक कठोर खंड का निर्माण करते हैं जिसे स्थलमंडल कहा जाता है। मेंटल 100 से 250 किलोमीटर की गहराई के बीच आंशिक रूप से पिघला हुआ है। इस क्षेत्र को दुर्बलता मण्डल कहते हैं। इसे मोहो असंतति भी कहते हैं, यह भू–कम्पविज्ञानी मोहोरविक का संक्षिप्त नाम है, जिसने इसे खोजा था। इन सब बातों को आप पिछले पाठ में पढ़ चुके हैं।

स्थलमंडल कई खंडों में विभाजित है। इन खंडों को ही प्लेट कहते हैं। ये प्लेट दुर्बलता मण्डल के ऊपर तैर रहे हैं। सात मुख्य प्लेट हैं। (चित्र 3.7)

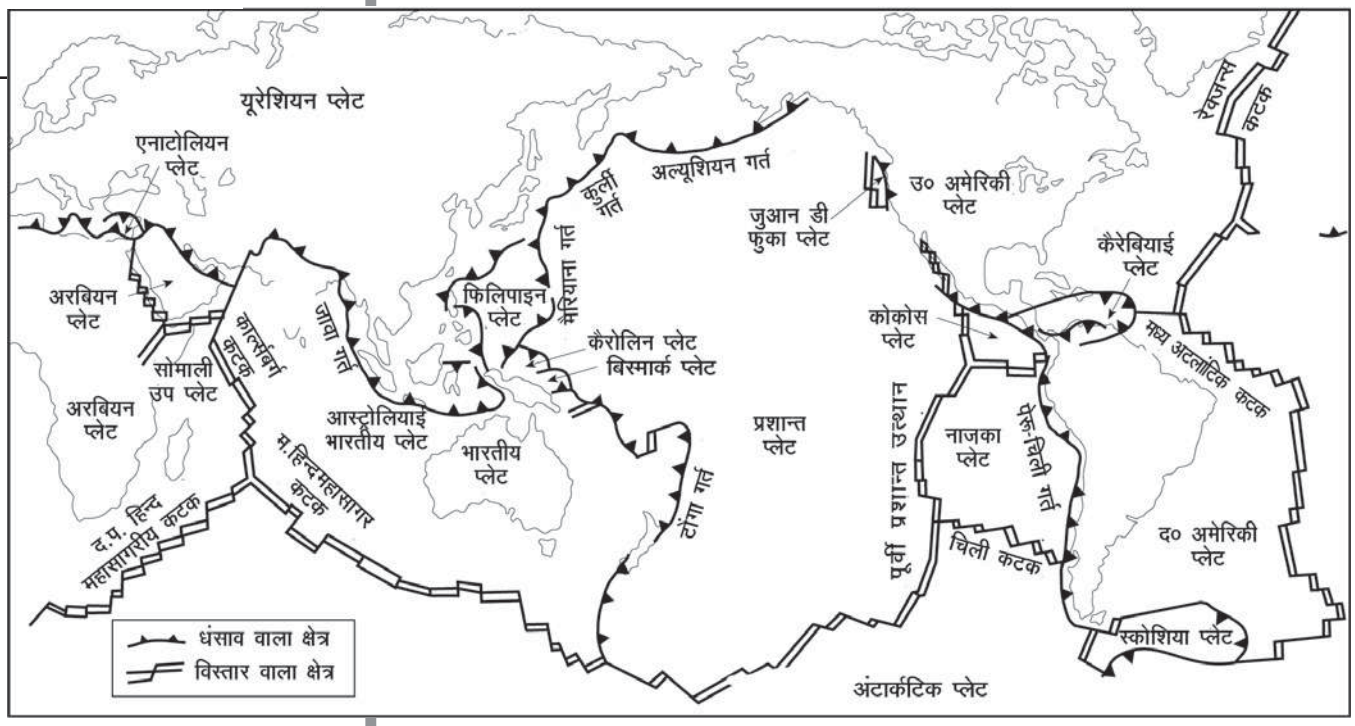

चित्र 3.7 प्लेट विवर्तन, उनके विस्तार के क्षेत्र एवं धंसाव सीमाएँ

1. यूरेशियाई प्लेट
2. अफ्रीकी प्लेट
3. भारत–आस्ट्रेलियाई प्लेट
4. प्रशान्त प्लेट
5. उत्तर अमेरिकी प्लेट
6. दक्षिण अमेरिकी प्लेट
7. अंटार्कटिक प्लेट

इन मुख्य प्लेटों के अतिरिक्त कुछ छोटे–छोटे प्लेट हैं, जिनकी संख्या लगभग 20 है। इनमें से कुछ मुख्य प्लेट इस प्रकार हैं –

अरबी प्लेट, फिलीपीनी प्लेट, कोकोस प्लेट, नाजका प्लेट, कैरिबियन प्लेट, स्कोशिया प्लेट।

मुख्य और छोटे (गौण) प्लेट सम्पूर्ण पृथ्वी के धरातल का निर्माण करते हैं।

प्लेट विवर्तनिकी पृथ्वी पर भूमि और जल के वितरण को समझने का एक तरीका है।

विवर्तनिकी, प्लेटों का एक प्रकार से संचलन है। इस संचलन से आंतरिक शक्तियों को समझाया गया है, जो कि भूपृष्ठ के वितरण, पर्वत श्रृंखलाओं के निर्माण और भूकम्प तथा ज्वालामुखी के वितरण के लिए उत्तरदायी हैं।

प्लेट संचलन का रचनातंत्र

एक ब्रिटिश भूवैज्ञानिक आर्थर होम्स ने सन् 1928–1929 में बताया कि स्थलमंडल के नीचे संवहनीय धाराएँ विद्यमान हैं। इन संवहनीय धाराओं का केन्द्र तो ज्ञात नहीं है, परन्तु यह माना जाता है कि, धरातल के नीचे इसकी गहराई लगभग 100 से 250 किलोमीटर है। ये धाराएँ रेडियोधर्मी खनिजों के विखंडन से उत्पन्न ऊर्जा द्वारा संचालित होती हैं। रेडियोधर्मी खनिजों के एकीकरण और विखंडन से जो ऊष्मा उत्पन्न होती है वह आस पास की शैलों को पिघला देती है। इस तरह से संवहनीय धाराएँ चलनी प्रारंभ हो जाती हैं। इन धाराओं को अपसरण और अभिसरण क्रियाओं के साथ क्रमशः आरोही और अवरोही क्रमों में वर्गीकृत किया गया है।

ऊपर उठती हुई संवहनीय धाराओं द्वारा गर्म और चिपचिपा पदार्थ ऊपर की ओर उठने लगता है। धरातल के नीचे लगभग 100 किलोमीटर की गहराई पर पहुँचने के बाद ये धाराएँ मुड़ जाती हैं, जिससे ऊपर की परत फट जाती है। पिघला हुआ पदार्थ टूटे हुए भाग में धंस जाता है और इस प्रकार से एक नए धरातल का जन्म होता है और एक भारी प्लेट विपरीत दिशा में खिसकने लगती है। यह मध्य महासागरीय कटक के नीचे होता है। दूसरी ओर दो जोड़ी अवरोही उष्मीय संवहनीय धाराएँ दो प्लेटों को आपस में जोड़ती हैं, यह आरोही सीमा बनाती है, जहाँ धंसाव की क्रिया होती है। संवहनीय धाराओं के कारण स्थलमंडल की प्लेट लगातार चलायमान रहती हैं।

प्लेट सीमाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय संरचनात्मक लक्षण हैं। सीमाएँ अत्यन्त सुस्पष्ट और सरलता से पहचानी जाने वाली हैं। ये नवीन पर्वत तंत्रों, महासागरीय कटकों और गर्तों से सम्बन्धित हैं। प्लेट लगातार खिसक रहे हैं और इनके खिसकने की दिशा सापेक्षिक है। प्लेटों के खिसकने की दिशा के आधार पर आसानी से तीन प्रकार की प्लेट सीमाओं की पहचान की जा सकती है। (चित्र 3.8)

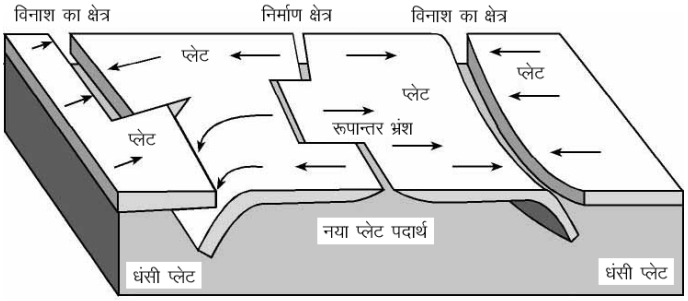

चित्र 3.8 प्लेट सीमाओं के प्रकार

टिप्पणी

1. अपसरण सीमाएँ
2. अभिसरण सीमाएँ
3. रूपान्तर भ्रंश सीमा

संवहनी धाराएँ रेडियोधर्मी पदार्थों से उत्पन्न होती हैं। ये धाराएँ भूपृष्ठ की परत तक पहुँचते ही मुड़ जाती हैं। अपसरित धाराएँ भूपृष्ठ के मिलन क्षेत्र में खिंचाव पैदा करती हैं, जिससे ये टूट जाती हैं। चुम्बकीय पदार्थ इस टूटे हुए भाग में घुसकर ठोस हो जाता है। यह लगातार चलने वाली प्रक्रिया खंडों को विपरीत दिशा में धकेलकर एक नए क्षेत्र का निर्माण करती है, जिसे 'निर्माण क्षेत्र' कहते हैं।

अभिसरण सीमाओं पर नजदीक की दो प्लेटें एक दूसरे के बहुत पास आ जाती हैं और टकरा जाती हैं। जब दोनों खंड महाद्वीपीय प्रकार के होते हैं, तो पर्वतों का निर्माण होता है। जब एक खंड महाद्वीप तथा दूसरा महासागरीय होता है, तब भी इनकी सीमाओं के पास पर्वतों का निर्माण होता है। इसमें महाद्वीपीय प्लेट, महासागरीय प्लेट के ऊपर चढ़ जाती है। जब दोनों खंड महासागरीय होते हैं, तो दोनों टूट कर धंस जाते हैं और नीचे प्रवेश कर जाते हैं, जिससे गर्तों का निर्माण होता है। इस प्रकार की सीमाओं पर भूकम्प और ज्वालामुखी उद्‌भेदन प्रमुख हैं। इन तीनों ही अवस्थाओं में, धरातलीय क्षेत्र कम हो जाता है। इसलिए इसे 'विनाश का क्षेत्र' भी कहते हैं।

रूपान्तर भ्रंश सीमा वह होती है, जहाँ एक–दूसरे के पास स्थित प्लेट एक दूसरे से रगड़ते हुए विपरीत दिशाओं में खिसक जाते हैं। इनके खिसकने की दिशा एक दूसरे के साथ–साथ या विपरीत हो सकती है, परन्तु ये एक दूसरे के समान्तर खिसकते हैं। इसलिए यहाँ न तो नये क्षेत्र का निर्माण होता है और न ही भूपर्पटी नष्ट होती है। इसलिए इसे 'परिरक्षित क्षेत्र' कहते हैं।

प्लेट स्थाई लक्षण नहीं होते, वरन इनका आकार और आकृति बदलती रहती है। प्लेट विभाजित या पास के प्लेट से जुड़ सकती हैं। लगभग सभी विवर्तनिक हलचलें प्लेटों की सीमाओं पर होती हैं। प्लेट विवर्तनिक सिद्धान्त से पहले वेगनर द्वारा प्रतिपादित महाद्वीपीय विस्थापन के सिद्धान्त की आलोचना विशेषरूप से उस ऊर्जा या शक्ति के लिए हुई थी जो महाद्वीपों को विस्थापित करती है। वास्तव में इस सिद्धान्त को स्पष्ट प्रमाणों के होते हुए भी अस्वीकार कर दिया गया था। लेकिन समुद्री सतह के पदार्थों और पुराचुम्बकत्व में किए गए अन्वेषणों ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया और 1960 में प्लेट विवर्तनिकी सिद्धान्त ने प्लेट संचलन के रचनातंत्र की समस्या को सुलझा दिया।

प्लेट विवर्तनिकी बनाम भूकम्प और ज्वालामुखी

पृथ्वी पर भूकम्प और ज्वालामुखी का वितरण (चित्र 3.9) यह स्पष्ट कर देता है कि ये प्लेटों की सीमाओं से घनिष्टता से जुड़े हुए हैं। प्लेटों की सीमाएँ वे क्षेत्र हैं जहाँ हर प्रकार की विवर्तनिक क्रियाएँ होती हैं। प्लेटों के खिसकने से मुक्त हुई ऊर्जा भूकम्प और ज्वालामुखी के रूप में यहाँ अभिव्यक्त होती है।

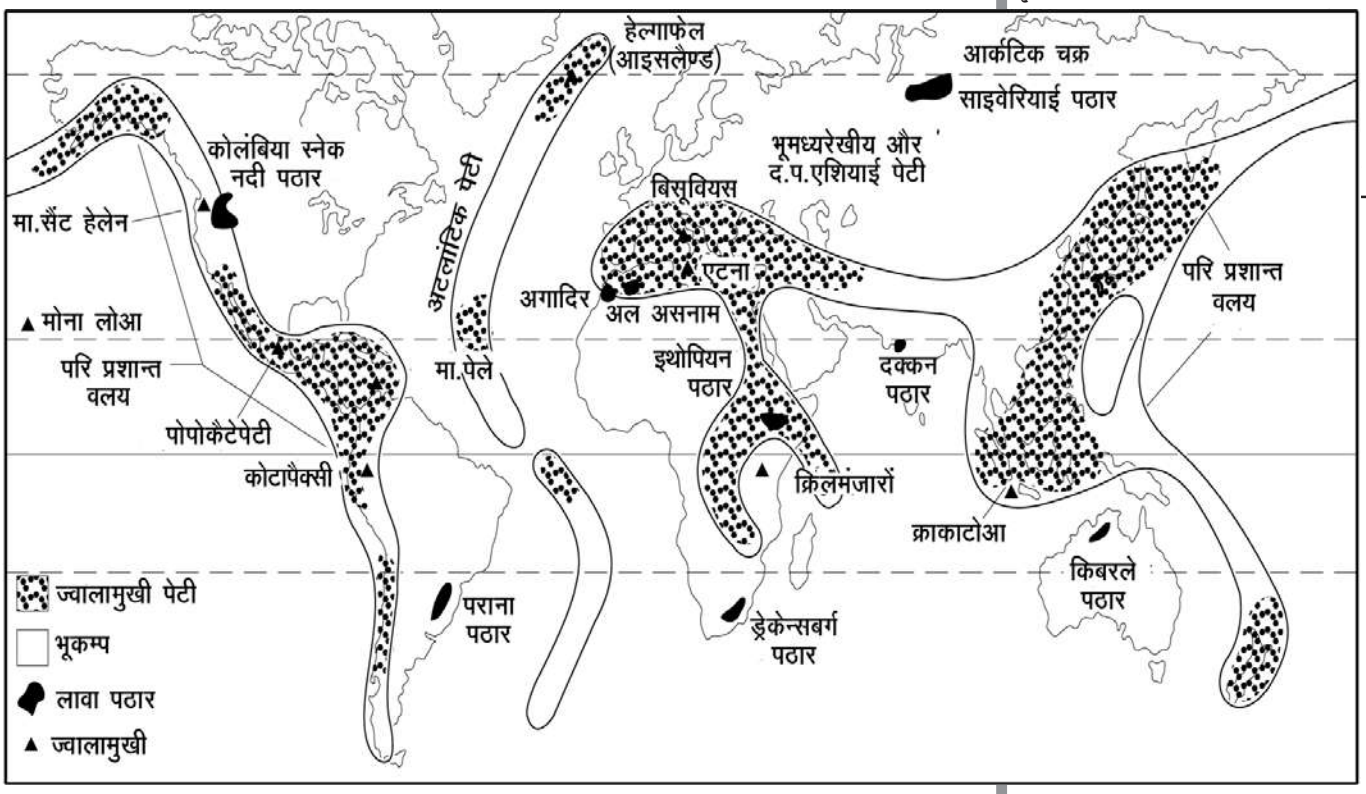

चित्र 3.9 संसार की प्रमुख भूकम्प और ज्वालामुखी पेटियाँ

पाठगत प्रश्न 3.3

1. रिक्त स्थान भरिए –

   (क) पृथ्वी की सबसे ऊपर की _____ परत _____ कहलाती है।

   (ख) भूपर्पटी और मेंटल की _____ तक औसत गहराई _____ है।

   (ग) स्थलमंडल में _____ और _____ सम्मिलित है।

   (घ) विवर्तनिकी एक प्रकार की _____ स्थलमंडलीय प्लेट है।

   (ड़) संवहनीय धाराओं की अवधारणा का प्रतिपादन सबसे पहले सन् _____ में _____ ने किया था।

   (च) संवहनीय धाराओं को _____ और _____ में वर्गीकृत किया जाता है। वे हैं क्रमशः _____ और _____।

   (छ) पट्टों की सीमाएँ _____ और _____ से सम्बन्धित हैं।

2. सात प्रमुख प्लेटों के नाम लिखिए –

   (i) _____ (ii) _____

(iii) _____ (iv) _____

(v) _____ (vi) _____

(vii) _____

3. कुछ कम महत्वपूर्ण छोटी प्लेटों के नाम लिखिए –

(i) _____ (ii) _____

(iii) _____ (iv) _____

(v) _____ (vi) _____

(vii) _____

4. प्लेटों की सीमाओं के विभिन्न प्रकार बताइए –

(i) _____

(iii) _____

(iii) _____

आपने क्या सीखा

पृथ्वी का धरातल गतिशील है। यह गतिशीलता धरातल के नीचे क्रियाशील शक्तियों (आंतरिक शक्तियाँ) तथा धरातलीय/वायुमण्डलीय शक्तियों (बाह्य शक्तियों) के कारण है। यह पृथ्वी पर हो रहा है जबकि पृथ्वी घूर्णन और परिक्रमण कर रही है। धरातल असमतल है। अतः एक प्रकार का गतिशील साम्य हमेशा बना रहता है, जिसे भूमंडलीय संतुलन कहा जाता है। बहुत से विद्वानों के विचारों के बाद एअरी और प्रैट के विचार अधिक स्पष्ट हैं। एअरी ने सभी शैलों के समान घनत्व के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उन्होंने कहा कि सभी स्तंभों के अनुसार उनकी जड़ें होंगी। विशाल और ऊँचे पर्वतों की जड़ें भी नीचे बहुत बड़ी होंगी, जबकि पठार और मैदान जैसे निचले भागों की जड़ें छोटी होंगी। प्रैट ने माना कि पृथ्वी पर पाई जाने वाली विभिन्न शैलों का घनत्व अलग–अलग होगा। एक निश्चित गइराई पर विभिन्न ऊँचाई और भार वाले स्तंभों की क्षतिपूर्ति हो जायेगी। अतः अधिक ऊँचाई वाली राशि का घनत्व कम होगा, जबकि कम ऊँचाई वाली राशि का घनत्व अधिक होगा। अतः दोनों ही भूमंडलीय संतुलन की समस्या का समाधान कर रहे हैं; लेकिन विभिन्न परिप्रेक्ष्य में।

पृथ्वी पर भूमि और जल का वितरण स्थाई नहीं है। यह बदल गया है, बदल रहा है और भविष्य में भी बदलेगा। यह परिवर्तित स्थिति वेगनर द्वारा प्रतिपादित महाद्वीपीय विस्थापन में अपरिष्कृत रूप में कही गई, परन्तु जिस रचनातंत्र की उन्होंने व्याख्या की, वह

वैज्ञानिक नहीं था। अतः इस सिद्धान्त को शक्तिशाली साक्ष्यों के होते हुए भी अस्वीकार कर दिया गया।

होम्स द्वारा प्रतिपादित संवहनीय धाराओं और प्लेट विवर्तनिक सिद्धान्त ने पृथ्वी के धरातल को समझने के लिए एक नई दृष्टि प्रदान की। पुराचुम्बकत्व और महासागरीय विस्तारण के अध्ययन ने प्लेट विवर्तनिक सिद्धान्त का समर्थन किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी का धरातल सैंकड़ों टूटे हुए खंडों, जो कि बहुत विशाल और भारी है, से बना है। इन खंड़ों को ही प्लेट कहा गया है। ये सात बड़ी और सात छोटे आकार की प्लेट हैं। संवहनीय धाराओं के सिद्धान्त अनुसार इनमें संचलन तीन संभावित रूपों में होता है। प्रथम, दो पास की प्लेट एक दूसरे से दूर खिसक रही हों (अपसरण) और जहाँ एक नए क्षेत्र का निर्माण हो रहा है। द्वितीय, जब दो प्लेट आपस में मिल रही हों (अभिसरण) और धंसाव हो जिससे एक क्षेत्र नष्ट हो रहा हो। तृतीय, जब दो प्लेट एक दूसरे के पास से खिसक रहे हों (रूपान्तर भ्रंश), जहाँ पर दोनों के सीमांत परिरक्षित हो रहे हों। इन विभिन्न विवर्तनिक क्रियाओं के कारण भूकम्प और ज्वालामुखी प्लेट सीमाओं से सम्बन्धित हैं।

पाठांत प्रश्न

1. भूसंतुलन क्या है?
2. एअरी के अनुसार भूसंतुलन की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।
3. प्रैट द्वारा प्रतिपादित पृथ्वी के भूसंतुलन की व्याख्या कीजिए।
4. एअरी और प्रैट के विचारों में अन्तर बताइए।
5. वैश्विक स्तर पर भूमंडलीय संतुलन की चर्चा कीजिए।
6. महाद्वीपीय विस्थापन के प्रमाणों की चर्चा कीजिए।
7. प्लेट क्या हैं? प्लेट संचलन के रचनातंत्र की व्याख्या कीजिए।
8. प्लेट सीमान्तों पर होने वाली क्रियाओं की चर्चा कीजिए।
9. भूकम्प और ज्वालामुखी के वितरण का प्लेट सीमाओं के संदर्भ में वर्णन कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

3.1 1. संतुलन की स्थिति

2. एक समान

3. घनत्व

टिप्पणी

4. गहरी, कम गहरी
5. नहीं, स्तर
6. बिगाड़
7. असंतुलन, सामंजस्य

3.2 1. (क) पैंजिया, (ख) पैंथालासा, (ग) लॉरेसिया (अंगारालैंड), गोंडवानालैंड, (घ) पश्चिम, (ड़) अंगारालैंड, गोंडवानालैंड, पैंथालासा

2. (क) जिग–सॉ–फिट (ख) भूगर्भीय समानताएँ (ग) कोयले की समानताएँ
3. (क) पुराचुम्बकत्व के प्रमाण (ख) समुद्री अधःस्तल का विस्तारण

3.3

1. (क) ठोस और कठोर, प्लेट (ख) 100 किमी., ठोस (ग) ऊपरी ठोस मेंटल, भूपर्पटी (घ) संचलन (ङ) आर्थर होम्स, 1928–1929 (च) ऊपर उठता, गिरता, आरोही अवरोही (छ) नए बने पर्वत तंत्र, महासागरीय कटक, गर्त
2. (क) यूरेशियाई प्लेट (ख) अफ्रीकी प्लेट (ग) भारतीय–आस्ट्रेलियाई प्लेट (घ) प्रशान्त प्लेट (ड़) उत्तर अमेरिकी प्लेट (च) द. अमेरिकी प्लेट (घ) अंटार्कटिक प्लेट
3. (क) अरबी प्लेट (ख) फिलीपीनी प्लेट (ग) कोकोस प्लेट (घ) नाजका प्लेट (ङ) कैरीबियाई प्लेट (च) स्कोशिया प्लेट
4. (क) अपसरण सीमाएँ

   (ख) अभिसरण सीमाएँ

   (ग) रूपान्तर भ्रंश सीमा

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. कृपया पैरा 3.1 देखिए
2. कृपया पैरा 3.1 का (क) देखिए
3. कृपया पैरा 3.1 का (ख) देखिए
4. कृपया पैरा 3.1 का (ग) देखिए
5. कृपया पैरा 3.2 देखिए
6. कृपया पैरा 3.1 का 'विस्थापन के प्रमाण' देखिए
7. कृपया पैरा 3.3 देखिए
8. कृपया पैरा 3.3 देखिए
9. कृपया पैरा 3.3 देखिए

4

पृथ्वी के आंतरिक बलों के परिणामस्वरूप भूआकृतियों का विकास

पृथ्वी अस्थिर है। इसका धरातल असमतल है। पृथ्वी का असमतल धरातल, हमारा वासस्थल है। पृथ्वी पर विविध प्रकार की भू आकृतियाँ – पर्वत, पठार, पहाड़ियाँ, मैदान, कटक तथा उत्खात भूमियाँ दिखाई देती हैं। हमें भू पृष्ठ पर झुके हुए, मुड़े तथा टूटे हुए शैल संस्तर भी देखने को मिलते हैं, जो अपने मूल रूप में समानांतर रूपों में बिछे थे। विभिन्न प्रकार की शैलों, उनके बनने की प्रक्रिया व विशेषताओं के बारे में आप पढ़ चुके हैं। शैलों का भू आकृतियों के आकार से गहरा संबंध है। लेकिन पृथ्वी के स्वरूप की समस्त आकृतियाँ इसकी आंतरिक व वाह्य शक्तियों की सतत प्रक्रिया का परिणाम है। इस पाठ में हम पृथ्वी की आंतरिक शक्तियों के विषय में अध्ययन करेंगे और देखेंगे कि पृथ्वी के धरातल पर वे क्या परिवर्तन करती हैं।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- आंतरिक बलों तथा उनके द्वारा निर्मित भू आकृतियों को स्पष्ट कर सकेंगे;
- मंद एवं आकस्मिक हलचलों में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे;
- ऊर्ध्वाधर एवं समानांतर हलचलों में अंतर बता सकेंगे;
- वलन तथा भ्रंशन में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे;
- ज्वालामुखी प्रक्रिया के होने के कारण बता सकेंगें;
- विभिन्न प्रकार के ज्वालामुखियों का वर्णन कर सकेंगे;
- संसार के रेखा मानचित्र में प्रमुख ज्वालामुखियों तथा भूकम्प प्रभावित क्षेत्रों की स्थिति दिखा सकेंगे;
- भूकम्प के कारणों व उनके प्रभाव को स्पष्ट कर सकेंगे।

टिप्पणी

4.1 आंतरिक बल

पृथ्वी पर भू आकृतियों की विविधता उसके धरातल के अंदर और बाहर साथ–साथ कार्य करने वाली दो प्रकार की शक्तियों का अंतिम परिणाम है। भूपृष्ठ के अंदर पैदा होने वाली इन शक्तियों को आंतरिक या अन्तर्जात बल कहते हैं। इन बलों की ऊर्जा के स्रोत पृथ्वी की आंतरिक गर्मी तथा पृथ्वी के धरातल पर बाह्य बलों द्वारा शैल पदार्थों का स्थानांतरण है।

4.2 पृथ्वी की हलचलें

सामान्यता हम लोगों को यह कहते हुए सुनते हैं कि पृथ्वी ''शैल की तरह ठोस'' तथा स्थिर है; लेकिन यह सत्य नहीं है। न तो पृथ्वी स्थिर है और न ही शैल जिनमें पृथ्वी की बाह्य परत बनी है, इतनी ठोस है। पृथ्वी की उत्पति से लेकर आज तक महाद्वीपों और महासागरों के स्थलीय व जलीय भागों के वितरण में भारी परिवर्तन होते रहे हैं। पृथ्वी पर असंख्य भू हलचलें हुई हैं, जिनके परिणामस्वरूप इसके धरातल पर भारी परिवर्तन हुए हैं। मुंबई पोताश्रय में वनीय भाग का धंसना, महावलीपुरम् मंदिर का समुद्री जल में होना तथा कच्छ के रन की भूमि के स्तर में हुए परिवर्तन भारत में घटने वाली इन हलचलों के कुछ उदाहरण हैं।

पृथ्वी के आंतरिक भागों में क्रियाशील इन बलों के परिणामस्वरूप इनकी बाह्य परत में हलचलें पैदा होती हैं। इन हलचलों को पृथ्वी की हलचलें कहते हैं। चूंकि ये हलचलें पृथ्वी की बाह्य परत की वास्तविक बनावट में हुए परिवर्तनों से संबंधित होती हैं या पैदा होती हैं, अतः इन्हें विवर्तनिक हलचलें भी कहते हैं। टैक्टोनिक शब्द ग्रीक भाषा के टैक्टोन शब्द से बना है जिसका अर्थ है बनाने वाला। यह शब्द अपने में पूर्ण सार्थक है; क्योंकि पृथ्वी की ये हलचलें वास्तव में निर्माणकारी हैं। इनके द्वारा ही पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार की भू आकृतियों का निर्माण हुआ है।

चित्र 4.1 (क) तथा 4.1 (ख) से स्पष्ट है कि भारत का स्वरूप 6 करोड़ वर्ष पूर्व पूरी तरह भिन्न था। आज जहाँ हिमालय पर्वत श्रेणियां एवं गंगा–सिंधु का मैदान है वहां ''टैथीस'' नामक सागर था। टैथीस सागर निकटवर्ती स्थल प्रदेशों से बहने वाली नदियों द्वारा लाये गये पदार्थों के क्रमिक निक्षेपण से भर गया। बाद में टैथीस सागर के तल में बनी अवसादी शैलों से हुए क्रमिक उत्थान से उत्तर में हिमालय तथा उसके दक्षिण में गंगा–सिंधु मैदान का निर्माण हुआ।

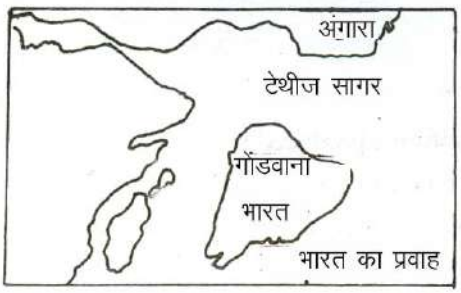

चित्र 4.1(क) 6 करोड़ वर्ष पूर्व का भारत का

चित्र 4.2 (ख) वर्तमान मानचित्र

भारत के मालवा पठार व दक्कन ट्रेप, उत्तरी अमेरिका में कोलम्बिया तथा स्नेक नदी के पठार, आस्ट्रेलिया में किम्बरले पठार, दक्षिण अमेरिका में पराना तथा पेंटागोनिया पठारों का निर्माण भी विभिन्न भूगर्भिक कालों में पृथ्वी के आंतरिक भागों से निकले पिघले लावा के ठोस होने के परिणामस्वरूप हुआ है। इन उदाहरणों से यह पूरी तरह स्पष्ट है कि हमारी पृथ्वी का धरातल कभी भी ऐसा नहीं रहा जैसा कि वह आज है और न ही यह भविष्य में ऐसा रहेगा।

- वे हलचलें जो पृथ्वी के आंतरिक या अन्तर्जात बलों द्वारा पैदा होकर भूपर्पटी को प्रभावित करती है, पृथ्वी की **हलचलें** कहलाती हैं।
- पृथ्वी की हलचलों को विवर्तनिक हलचलें भी कहते हैं; क्योंकि वे पृथ्वी के धरातल पर क्रमिक परिवर्तनों द्वारा भौतिक लक्षणों का निर्माण करती हैं।

4.3 पृथ्वी की हलचलों का वर्गीकरण

पृथ्वी की हलचलों को समय के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया जाता है। (क) मन्द हलचलें तथा (ख) आकस्मिक हलचलें।

(क) **मन्द हलचलें** - भूपर्पटी पर कुछ परिवर्तन इतने क्रमिक और मंद होते हैं कि उनमें परिवर्तन सैंकड़ों या हजारों वर्षों के बाद देखने को मिलता है। ऐसी हलचलें जिनका समय मानव जीवन से भी अधिक लंबा होता है, **मंद हलचलें** कहलाती हैं। ये हलचलें भूपर्पटी पर ऊर्ध्वाधर अथवा क्षैतिज रूप में होती है। ऊर्ध्वाधर हलचलें भूपर्पटी में धंसाव या उभार पैदा करती हैं। भारत के काठियावाड़ तट पर उठे हुए समुद्री तटों में पाये गये समुद्री जीवों के अवशेषों से यह स्पष्ट होता है कि यह तट कभी समुद्री जल के नीचे था। इसी प्रकार के उठे हुए समुद्री तट भारत के पूर्वी तट के साथ उड़ीसा, आंध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु में भी पाये जाते हैं। ये तट समुद्री जल स्तर से 15 से 30 मीटर तक ऊपर उठा दिये गये हैं। दूसरी ओर भूपृष्ठ के धंसाव के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जैसे सुन्दर वन के डेल्टा में पीट व लिगनाइट संस्तरों की उपस्थिति, तमिलनाडु के तिरुनलवेली में तथा मुंबई द्वीप के पूर्वी तट पर वनों का समुद्र में डूब जाना।

(ख) **आकस्मिक हलचलें** - मन्द हलचलों के विपरीत कुछ हलचलें ऐसी होती है जो भूपर्पटी में शीघ्र परिवर्तन ला देती हैं। ज्वालामुखी तथा भूकम्प ऐसी हलचलों के उदाहरण हैं। इन दो घटनाओं द्वारा परिवर्तन इतने आकस्मिक होते हैं कि नदियों के मार्ग बदल जाते हैं तथा लावा के बहने एवं जमने से पर्वत, उठे भू भाग व पठारों का निर्माण कुछ ही दिनों में हो जाता है। इन हलचलों के परिणामस्वरूप पर्वतीय क्षेत्रों में भूस्खलन हो जाते हैं।

- **आकस्मिक हलचलें** भूपर्पटी में तत्काल परिवर्तन लाती हैं।
- ज्वालामुखी तथा भूकम्प आकस्मिक हलचलों के परिणाम हैं।

टिप्पणी

- वे हलचलें जो धीमी गति से क्रमिक परिवर्तन लम्बे समय में लाते हैं, उन्हें **मन्द हलचलें** कहते हैं।
- भूपर्पटी में उभार, धंसाव व जल में डूबने की क्रियायें मंद हलचलों के कारण होती हैं।

पाठगत प्रश्न 4.1

1. आंतरिक बलों के लिए भौगोलिक शब्द दीजिए।

_____

2. पृथ्वी की हलचल किसे कहते हैं ?

_____

4.4 ऊर्ध्वाधर तथा क्षैतिज हलचलें

मंद हलचलों को पृथ्वी के धरातल के किसी भाग के ऊपर उठने या धंसने के आधार पर पुनः ऊर्ध्वाधर तथा क्षैतिज हलचलों में विभाजित किया जा सकता है।

(क) **ऊर्ध्वाधर हलचलें :** ऊर्ध्वाधर हलचलें धरातल को पृथ्वी के केन्द्र से उत्पन्न होती है और इसके धरातल को प्रभावित करती हैं। इसलिए इन गतियों के कारण बड़े पैमाने पर धरातल के भूभाग ऊपर उठ जाते हैं अथवा नीचे धंस जाते हैं। ये गतियाँ प्रायः इतनी मंद और विस्तृत होती हैं कि पृथ्वी के क्षैतिज शैल संस्तरों के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता। ये गतियाँ मुख्य रूप से महाद्वीपों तथा पठारों के निर्माण से संबंधित होती हैं, अतः इन्हें **महाद्वीप निर्माणकारी** अथवा **पठार निर्माणकारी** हलचलें भी कहते हैं। पिछले पाठ में आप शैलों के बारे में पढ़ चुके हैं कि अवसादी शैल महासागरों व समुद्रों में लाये गये पदार्थों के जमाव से निर्मित होते हैं। ये शैलें महाद्वीपों पर विस्तृत रूप में पायी जाती हैं। इस तथ्य से यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि इन शैलों के ऊपर उठने से महाद्वीपों का निर्माण हुआ है। ऊपर के वर्णन के विपरीत, ऐसे असंख्य उदाहरण दिये जा सकते है जिनमें भवन, नदी घाटियाँ तथा शहर समुद्रों में भूमि के धसने से डूब गये हैं। भूमध्यसागर के क्रेट द्वीप में बने प्राचीन भवन तथा भारत के सौराष्ट्र का प्रसिद्ध प्राचीन नगर द्वारिका समुद्र में डूबे इस प्रकार के कुछ उदाहरण हैं। ये परिवर्तन पृथ्वी के धरातल के नीचे धसने की गति को पूर्णतः स्पष्ट करते हैं।

- बड़े पैमाने पर धरातल के ऊपर उठाने या धंसने से महाद्वीपों, पठारों तथा महासागरों का निर्माण होता है।
- ऊर्ध्वाधर हलचलों को महाद्वीप निर्माणकारी हलचलें भी कहते हैं।

(ख) **क्षैतिज हलचलें** - कभी–कभी आंतरिक बल भूपर्पटी पर एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर अथवा दोनों दिशाओं से प्रभाव डालते हैं। इस कारण भूपृष्ठ के क्षैतिज शैलों संस्तरों में अत्याधिक परिवर्तन आ जाता हैं इन बलों के कारण पूर्व स्थापित शैल संस्तरों में दबाव व खिंचाव पैदा होता है। ऐसा इसलिए भी होता है क्योंकि ये बल गोलाकार पृथ्वी के संस्तरों में क्षैतिज अथवा स्पर्श रेखा की दिशा में प्रभावी होते हैं। अतः इनको क्षैतिज हलचलों के नाम से जाना जाता है।

इन्हें हम दो भागों में बॉट सकते हैं :

(i) सम्पीड़न बल

(ii) तनाव बल

(i) सम्पीड़न बल वे हैं जो शैल संस्तरों को एक कठोर तल की दिशा में खिसकाते हैं अथवा दोनों दिशाओं से दबाव डालते हैं। उनकी क्रिया को समझने के लिए आप एक कपड़े का टुकड़ा लें और उसे मेज पर फैला लें। इस कपड़े को अपने दोनों हाथों से उसके बीच की ओर दबाव डालें तो कपड़े पर ऊपर नीचे मोड़ पड़ जायेंगे। शैल संस्तर भी कपड़े की भांति मुड़ जाते हैं। इस प्रकार सम्पीड़न बल शैल संस्तरों में मोड़ डाल देते हैं जिनके परिणाम स्वरूप वलित पर्वतों का निर्माण होता है जिनमें अवसादी शैलें लहरों की भांति मुड़ जाती हैं। इस प्रकार शैलों के मुड़ने की प्रकिया को **वलन** कहते हैं। ऊपर की ओर उठे हुए मोड़ को **अपनति** तथा नीचे की ओर पड़े हुए मोड़ को **अभिनति** कहते हैं। (चित्र 4.2)

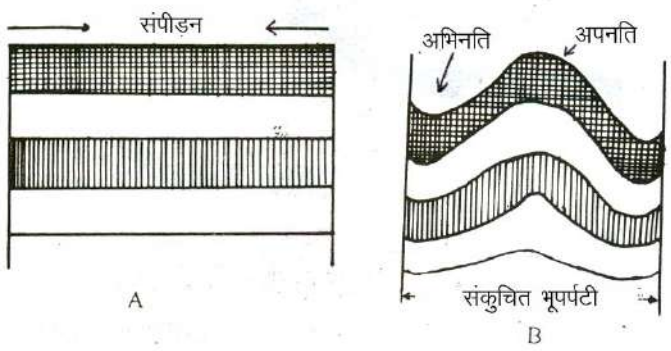

चित्र 4.2 वलन से पूर्व तथा वलन के बाद भूपर्पटी

जब वलन विस्तृत पैमाने पर होता है तो यह पर्वत निर्माणकारी प्रक्रिया से संबंधित होता है। संसार की अधिकांश महान पर्वतमालाओं जैसे हिमालय, रॉकीज, एन्डीज, आल्प्स तथा इसी प्रकार की अन्य पर्वतमालाओं का निर्माण सम्पीडन बलों की विस्तृत पैमाने पर हुई प्रक्रियाओं का ही परिणाम है। इन गतियों को **पर्वत निर्माणकारी हलचलें** भी कहते हैं।

- क्षैतिज हलचलें सम्पीड़न तथा तनाव बलों से उत्पन्न होती है।
- सम्पीड़न द्वारा शैल संस्तरों में मोड़ पड़ने को **वलन** कहते हैं।

टिप्पणी

- ऊपर की ओर उठे हुए मोड़ को **अपनति** तथा नीचे की ओर पड़े हुए मोड़ को **अभिनति** कहते हैं।
- बड़े पैमाने पर होने वाली वलन प्रक्रिया के परिणामस्वरूप वलित पर्वत बनते हैं। इन्हें सामान्यतया **पर्वत** निर्माणकारी हलचलें कहते हैं।

(ii) तनाव बल तब पैदा होते हैं जब शक्तियां दो विपरीत दिशाओं में धरातल के समानांतर कार्य करती हैं अर्थात जब शक्तियाँ किसी दिये गये बिन्दु या तल के दोनों ओर कार्य करती हैं तो तनाव पैदा होता है। जब तनाव बल अधिक तीव्र होते हैं तो शैल संस्तरों (परतों) में दरार पड़ जाती है या वे टूट जाती हें। फलस्वरूप दरारें या भ्रंश पैदा हो जाते हैं। जब दो दरारों के बीच के शैल ऊपर अथवा नीचे की ओर विस्थापित हो जाते हैं तो इसे **भ्रंशन** कहते हैं। जिस रेखा के साथ टूटे हुए शैल संस्तर विस्थापित होते हैं, अथवा खिसकते हैं उसे **भ्रंश-रेखा** कहते हैं। (चित्र 4.3)

– तनाव बलों के कारण **भ्रंश** बनते हैं।
– जिस रेखा के साथ टूटे शैल संस्तर खिसकते हैं, उसे **भ्रंश रेखा** कहते हैं।

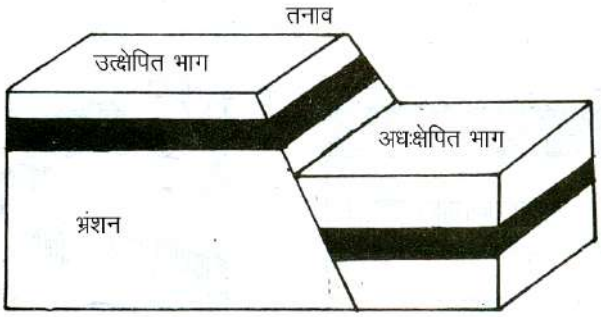

चित्र 4.3 भ्रंश

सम्पीड़न की शक्तियों के कारण तनाव की शक्तियाँ सक्रिय होती है। इस प्रकार भ्रंशों का निर्माण मोड़ों के बनने की प्रक्रिया के साथ होता है। इस का तात्पर्य यह है कि वलन की प्रक्रिया से शैलों की परतों में भ्रंश निर्मित होते हैं या वे टूटती है।

भ्रंशन की प्रक्रिया के कारण दरार घाटियों तथा खण्ड पर्वतों का निर्माण होता है। जब दो लगभग समानांतर दरारों के बीच स्थित शैल संस्तर नीचे की ओर खिसक जाते हैं तो दरार घाटी का निर्माण होता है। (चित्र 4.4) संसार की प्रमुख दरार घाटियों में स्काटलैण्ड की मध्यवर्ती घाटी, राइन नदी घाटी, नील की घाटी, मृतसागर बेसिन तथा पूर्वी अफ्रीका की महान दरार घाटी जिसमें इस क्षेत्र की कुछ झीलें शामिल है, गणना की है। कुछ भूगोलवेत्ता नर्मदा तथा तापी घाटियों को भी दरार घाटियाँ मानते हैं। दामोदर नदी घाटी के कोयला निक्षेप प्रारंभिक रूप में एक अभिनति, जो एक दरार घाटी से मिलती जुलती हैं, में जमा हुए बताये जाते हैं।

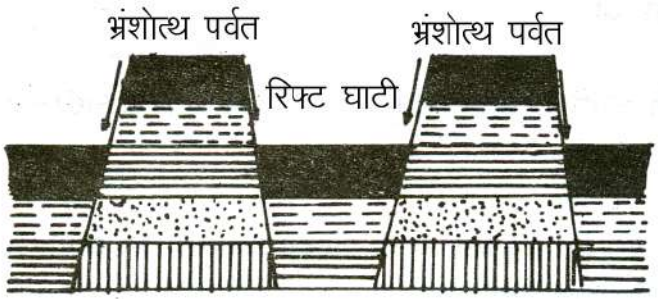

चित्र 4.4 दरार घाटी तथा खण्ड पर्वत

दरार घाटी भ्रंश रेखाओं के सहारे बनी दो समानांतर दीवारों के बीच धंसा हुआ भू–भाग होती है। इस प्रकार की घाटी को **ग्रैबन** भी कहते हैं। दरार घाटी का निर्माण दो दरारों के बीच वाले स्थल खंडों के ऊपर उठने से भी हो सकता है, इन पर उठे हुए खण्डों को **हार्स्ट या खण्ड पर्वत** कहते हैं। राइन नदी के दोनों किनारों के साथ फैले वासजेज तथा ब्लेक फारेस्ट पर्वत तथा फिलिस्तीन व जार्डन के पठार, खण्ड पर्वतों के प्रसिद्ध उदाहरण हैं।

कगार (चित्र 4.3) दरार घाटियों तथा खण्ड पर्वतों के विशिष्ट लक्षण हैं। वे एक दिशा में फैले हुए तीव्र या खड़े किनारे वाले ढाल होते हैं। अरब सागर की ओर के पश्चिमी घाट के कगार विंध्यांचल के कगार तथा नर्मदा नदी की भ्रंशन का ही परिणाम है।

- भ्रंशन के कारण दरारघाटी, खण्ड पर्वत तथा कगारों का निर्माण होता है।
- भ्रंश रेखा के सहारे बनी दो समानांतर दीवारों के बीच धंसे भाग को **दरार घाटी** कहते हैं।
- खड़े व तीव ढाल वाले ऊपर उठे हुए भूभाग को **खण्ड पर्वत** कहते हैं।
- ककगार भ्रंश के साथ बना तीव्र व लंबा ढाल है।

पाठगत प्रश्न 4.2

(1) सम्पीड़न बलों द्वारा पैदा हुए भू हलचलों के नाम बताइये।

_____

(2) पर्वत निर्माण करने वाली गतियों को भौगोलिक नाम दीजिये।

_____

क्या आपने कभी सक्रिय ज्वालामुखी देखा है ? अगर आपने नहीं भी देखा है तो इसे आपने तस्वीरों में या लावा उगलते हुए ज्वालामुखी को फिल्मों में देखा होगा। यहाँ हम भू आकृतियों के उदाहरण के रूप में इन शंक्वाकार आकृतियों का अध्ययन करेंगे।

टिप्पणी

4.5 ज्वालामुखी

ज्वालामुखी भूपर्पटी में वह छिद्र या द्वार होता है जिनके द्वारा शैल पदार्थ, शैल के टुकड़े, राख, जलवाष्प तथा अन्य गर्म गैसें धीरे–धीरे अथवा तेजी से उद्‌गार के समय निकलते हैं। ये पदार्थ पृथ्वी के आंतरिक गर्म भागों से भूपृष्ठ पर फैंके जाते हैं। इस प्रकार के छिद्र या भू पृष्ठ पृथ्वी के उन भागों में पाये जाते हैं, जहाँ शैल संस्तर अपेक्षाकृत कमजोर होते हैं।

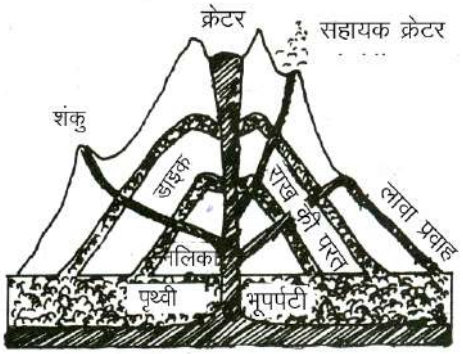

चित्र 4.5 ज्वालामुखी शंकु

आपको आश्चर्य हो रहा होगा कि ये उद्‌गार होते क्यों हैं। वास्तव में ज्वालामुखी इस तथ्य के प्रमाण हैं कि पृथ्वी के आंतरिक भागों में अत्याधिक गर्मी व दबाव विद्यमान है। पृथ्वी की बाह्य ठोस परत के नीचे पिघले शैल पदार्थ जिन्हें मैग्मा कहते हैं, अत्याधिक दबाव में होते हैं। जब यह मैग्मा छिद्र या दरार द्वारा मैग्मा चेम्बर से बाहर धरातल पर जमा हो जाता है, तब इसे लावा कहते हैं। (चित्र 4.5) मैग्मा तथा गैसें जो भूपर्पटी के नीच जमा है, वे बाहर आने का प्रयास करती है जब ये अपने दाव से भूपर्पटी में कोई कमजोर रेखा या छिद्र बनाने में सफल हो जाती है। तो ये गैसें, पिघले शैल पदार्थ, शैल के ठोस टुकड़े व राख आदि के साथ तेजी से धरातल पर फैल जाते हैं। जब ठोस व पिघले शैल तथा गैसे पृथ्वी के आंतरिक भागों से निकलकर धरातल पर आती हैं तो यह प्रक्रिया **ज्वालामुखी प्रक्रिया** कहलाती है।

- ज्वालामुखी भूपर्पटी में वह छिद्र होता है, जिससे पिघले शैल पदार्थ मन्द अथवा तीव्र गति से बाहर निकलते हैं। पदार्थों के बाहर निकलने की गति उद्‌गार की तीव्रता पर निर्भर करती है।
- ज्वालामुखी उद्‌गार का मुख्य कारण मैग्मा और गर्म गैसों द्वारा भूपर्पटी पर डाला गया अत्याधिक दबाव है।
- वह प्रक्रिया जिसके द्वारा ठोस, पिघले शैल व गैसें पृथ्वी के आंतरिक भागों से मुक्त होकर उसके धरातल पर आती हैं, **ज्वालामुखी प्रक्रिया** कहते हैं।

ज्वालामुखी पदार्थ छिद्र या द्वार के बाहर होकर प्रायः शंकु का आकार ग्रहण करते हैं। शंकु के ऊपर कीप के आकार का एक गड्ढा होता है जिसे **क्रेटर** कहते हैं। (चित्र 4.5)

(क) ज्वालामुखी के प्रकार : ज्वालामुखी प्रक्रिया के आधार पर ज्वालामुखी को वर्गीकृत किया जाता है। उद्गार की बारम्बारता, ज्वालामुखी पदार्थों के बाहर निकल कर पृथ्वी के धरातल पर आने के ढंग तथा उद्गार की प्रकृति अथवा तरलता वर्गीकरणके प्रमुख आधार हैं।

उद्गार की बारम्बारता के आधार पर ज्वालामुखी तीन प्रकार के होते हैं (i) सक्रिय ज्वालामुखी, (ii) प्रसुप्त ज्वालामुखी तथा (iii) विलुप्त ज्वालामुखी।

वे ज्वालामुखी जिनमें समय–समय पर उद्गार होते रहते हैं अथवा वर्तमान में उदगार हो रहे हैं, उन्हें **सक्रिय ज्वालामुखी** कहते हैं। इस प्रकार के प्रमुख ज्वालामुखी–भूमध्य सागर में स्ट्राँमबोली, इंडोनेशिया में क्राकाटोआ, फिलीपाइन्स में मेयोन, हवाई द्वीप समूह में मोना लोआ तथा भारत में बैरन द्वीप हैं।

प्रसुप्त ज्वालामुखी वे हैं जिनमें वर्तमान काल में उद्गार नहीं हुए हैं। वास्तव में उन्हें सोये हुए ज्वालामुखी कहा जा सकता है। इटली का विसुवियस तथा दक्षिण अमेरिका का कोटोपेक्सी प्रमुख प्रसुप्त ज्वालामुखी हैं।

इन दो प्रकार के ज्वालामुखी के विपरीत कुछ ऐसे ज्वालामुखी हैं जिनमें ऐतिहासिक काल में उद्गार नहीं हुए। इन्हें विलुप्त ज्वालामुखी कहते हैं। म्यांमार (बर्मा) का माऊंट पोपा तथा तंजानिया का किलीमंजारो प्रमुख विलुप्त ज्वालामुखी हैं। किसी भी ज्वालामुखी को प्रसुप्त या विलुप्त ज्वालामुखी प्रकार में बांटना आसान नहीं हैं। उदाहरण के लिए विसुवियस तथा क्राकाटोआ हजारों वर्षों तक विलुप्त रहने के बाद उनमें अचानक उद्गार होने लगे और सक्रिय ज्वालामुखी हो गये।

- उद्गार की बारम्बारता के आधार पर ज्वालामुखी तीन प्रकार के हें – सक्रिय, प्रसुप्त तथा विलुप्त।
- **सक्रिय ज्वालामुखी** वे हैं जिनमें वर्तमान में या हाल वर्षों में उद्गार हो रहे हैं या हुए हैं।
- **प्रसुप्त ज्वालामुखी** वे हैं जिनमें मानव इतिहास काल में कम से कम एक बार उद्गार हुआ है और जो वर्तमान में सक्रिय नहीं है।
- **विलुप्त ज्वालामुखी** वे हैं जिनमें लंबे मानव इतिहास काल में उद्गार नहीं हुए हैं।

उद्गार की रीति के आधार पर ज्वालामुखी दो प्रकार के होते हैं, (i) केन्द्रीय उद्भेदन ज्वालामुखी तथा (ii) दरारी उदभेदन ज्वालामुखी।

जब किसी ज्वालामुखी में उद्भेदन एक छिद्र या द्वार से होता है तब उसे केन्द्रीय उद्भेदन ज्वालामुखी कहते हैं। इस प्रकार के ज्वालामुखी विभिन्न प्रकार के गुम्बदाकार

टिप्पणी

अथवा शंक्वाकार पहाड़ियों का निर्माण करते हैं। इन पहाड़ियों का आकार ज्वालामुखी से निकलने वाले पदार्थों की प्रकृति पर निर्भर करता है। संसार के अधिकांश ज्वालामुखी इस प्रकार के हैं। इस प्रकार के ज्वालामुखी उद्भेदन की एक अन्य विशेषता यह है कि पिघले हुए शैलों व गैसों के यकायक छिद्र या द्वार से निकलने के कारण उद्गार अत्याधिक विस्फोटक होता हैं, विसुवियस तथा फ्यूजीयामा इस वर्ग के प्रमुख ज्वालामुखी हैं।

कभी–कभी, भूकम्पों या भ्रशंन से भूपृष्ठ पर गहरी और लंबी दरारें पड़ जाती हैं। मैग्मा इन दरारों से धीरे–धीरे बाहर की ओर निकलने लगता है। इस प्रकार के उद्भेदन को दरारी उद्भेदन कहते हैं इस प्रकार के ज्वालामुखी उद्गारों से लावा की मोटी–मोटी पर्तें जमा हो जाती हैं और इससे लावा पठार तथा लावा शील्ड का भी निर्माण होता है। भारत में दक्कन का पठार इस प्रकार के उद्गार का एक उदाहरण है।

- केंद्रीय प्रकार के ज्वालामुखी में छिद्र या द्वार से उद्गार होते हैं तथा इस प्रकार के उद्भेदन के कारण एक **शंक्वाकार पहाड़ी** का निर्माण होता है।
- दरारी प्रकार के ज्वालामुखी में उद्भेदन एक दरार से होते हैं तथा इस प्रकार के उद्गारों से **पठारों व शील्डों** का निर्माण होता है।

लावा की तरला के आधार पर ज्वालामुखी दो प्रकार के होते हैं (i) क्षारीय लावा के ज्वालामुखी तथा, (ii) अम्लीय लावा के ज्वालामुखी।

क्षारीय लावा में धात्विक खनिजों का अनुपात अधिक होता है तथा उनका पिघलन बिंदु नीचा होता है। अतः क्षारीय लावा अधिक तरल होता है। इस प्रकारके ज्वालामुखी उदगारों में लावा दूर–दूर तक शीघ्र तथा तेजी से फैल जाता है। इससे लावा की पतली परतें विस्तृत क्षेत्र में जमा हो जाती है। इस प्रकार के उद्गारों से शील्डों तथा लावा गुम्बदों का निर्माण होता है। प्रशांत महासागर में हवाई द्वीप समूह में स्थित शील्ड ज्वालामुखी इस प्रकार का ज्वालामुखी है।

क्षारीय लावा के विपरीत अम्लीय लावा में सिलिका की मात्रा अधिक होती है तथा इसका पिघलन बिंदु अपेक्षाकृत ऊँचा होता है। अतः यह अत्यधिक गाढ़ा होता है तथा शीघ्र ही जम जाता है। यही कारण है कि अम्लीय लावा ज्वालामुखी सामान्यतया ऊँची भू–आकृतियों का निर्माण करते हैं। इन भू–आकृतियों के ढाल तीव्र होते हैं। अम्लीय लावा शंकु के ढाल क्षारीय लावा शील्डों से अधिक तीव्र होते हैं। (चित्र 4.6)

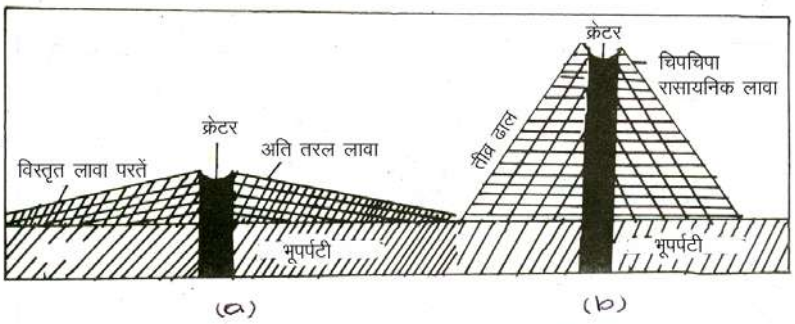

चित्र 4.6 (क) क्षारीय लावा शील्ड (ख) अम्लीय लावा शंकु

- क्षारीय लावा अधिक तरल होता है अतः शीघ्रता से दूर–दूर तक फैल जाता है। इसके कारण शील्डों का निर्माण होता हैं
- अम्लीय लावा अत्यधिक गाढ़ा होता है। इस प्रकार के उद्‌गार से तीव्र ढाल वाले शंकु निर्मित होते हैं।

(ख) ज्वालामुखियों का वितरण : संसार में लगभग 500 ज्वालामुखी हैं। इनमें से अधिकांश तीन निश्चित पेटियों में पाये जाते हैं। ये तीन पेटियाँ हैं – प्रशांत महासागरीय पेटी, मध्यवर्ती पेटी तथा अफ्रीकी दरारघाटी पेटी। इस प्रकार, ज्वालामुखी उन क्षेत्रों में मुख्य रूप में पाये जाते हैं जहाँ अत्यधिक वलन व भ्रंशन पाये जाते हैं। वे तटीय पर्वतीय श्रेणियों के साथ, द्वीपों तथा महासागरों के आंतरिक भागों में पाये जाते हैं। महाद्वीपों के आंतरिक भाग इनकी क्रिया से सामान्यतया अछूते रहे हैं। अधिकांश सक्रिय ज्वालामुखी प्रशांत महासागरीय क्षेत्र में स्थित हैं। लगभग 83 सक्रिय ज्वालामुखी भूमध्य सागरीय क्षेत्र में पाये जाते हैं। (चित्र 4.7)

प्रशांत महासागरीय पेटी में सबसे अधिक ज्वालामुखी संकेंद्रित हैं। इसलिए इसे प्रशांत अग्नि वलय कहते हैं। यह वलय दक्षिणी अमेरिका में एण्डीज पर्वत श्रेणी के साथ से प्रारंभ होकर अलास्का तक तथा अल्यूशियन द्वीप समूह से जापान, फिलीपाइन्स, इंडोनेशिया से न्यूजीलैंड तक फैली हुई है।

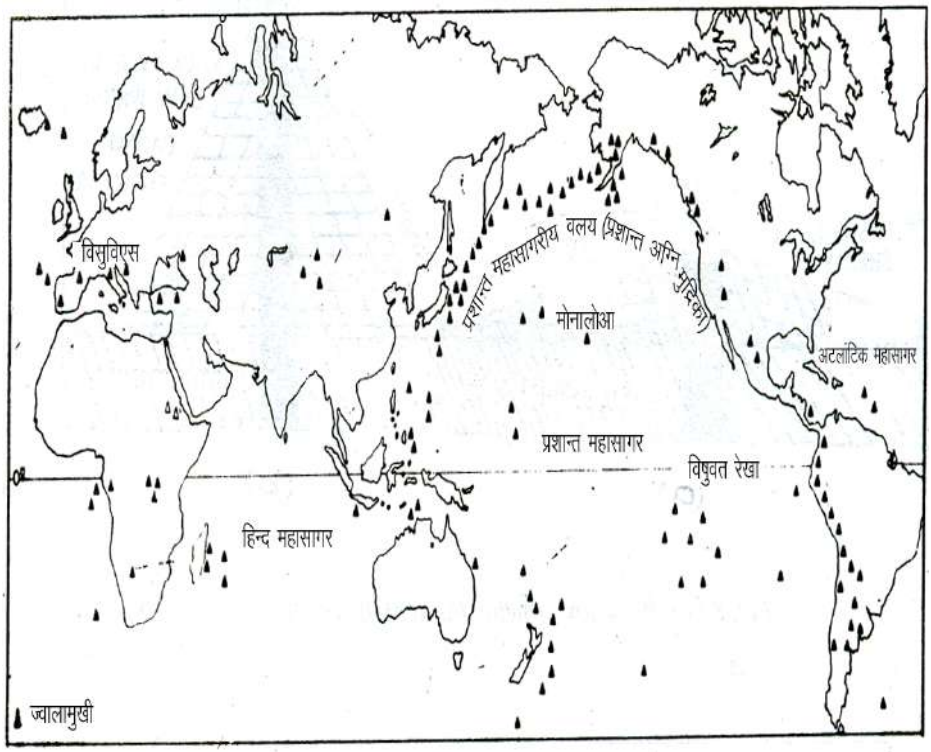

चित्र 4.7 ज्वालामुखी - विश्व वितरण

संसार की मध्यवर्ती पेटी का ज्वालामुखी की संख्या के अनुसार दूसरा स्थान है। यह यूरोप में आल्प्स पर्वत से प्रारंभ होकर टर्की तथा हिमाचल पर्वत प्रदेश से होती हुई प्रशांत

टिप्पणी

महासागरीय पेटी से मिल जाती है। अफ्रीकी दरारघाटी प्रदेश का तीसरा स्थान है। इस पेटी के अधिकांश ज्वालामुखी विलुप्त प्रकार के हैं। केवल माउन्ट केमरून ज्वालामुखी जो पश्चिमी मध्य अफ्रीका में स्थित हैं, सक्रिय ज्वालामुखी है।

- संसार में लगभग 500 ज्वालामुखी हैं। वे तीन निश्चित पेटियों – प्रशांत महासागर को घेरनेवाली पेटी, मध्यवर्ती पर्वतीय पेटी तथा पूर्वी–अफ्रीकी दरार घाटी में स्थित हैं।
- अधिकांश सक्रिय ज्वालामुखी प्रशांत महासागरीय पेटी में स्थित है। इसे प्रशांत अग्नि वलय कहते हैं।

पाठगत प्रश्न 4.3

1. निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिये –

   (i) उस प्रक्रिया का नाम बताइए जिसमें मैग्मा पृथ्वी के गर्भ से बाहर निकलता है।

   _____

   (ii) उद्‌गार की बारम्बारता के आधार पर तीन प्रकार के ज्वालामुखियों के नाम बताइए।

   (क) _____ (ख) _____ (ग) _____

   (iii) उद्‌गार की प्रकृति के आधार पर दो प्रकार के ज्वालामुखियों के नाम बताइए।

   (क) _____ (ख) _____

   (iv) तरलता के आधार पर लावा के दो प्रकार बताइए।

   (क) _____ (ख) _____

4.7 भूकम्प

आपने शायद दूरदर्शन के समाचारों में भूकम्प से होने वाले विनाश के विषय में सुना होगा। भूपृष्ठ के हिलने या कांपने को **भूकम्प** कहते हैं। ये हल्के से कम्पन से लेकर भवनों को तेज हिलाकर रख देने वाले होते हैं। भूकम्प लहरों की गति की ऊर्जा का एक रूप है जो पृथ्वी की धरातलीय परत से संप्रेषित होती है।

सभी भूकम्प समान तीव्रता वाले नहीं होते। इनमें से कुछ भूकम्प बहुत भयंकर होते हैं, कुछ हल्के होते हैं तथा शेष कुछ का तो पता ही नहीं चल पाता। भयंकर या अधिक

तीव्रता वाले भूकम्प गिने चुने होते हैं। यद्यपि हमारी पृथ्वी पर प्रतिदिन भूकम्प आते रहते हैं लेकिन उनकी बारम्बारता में स्थान–स्थान पर बहुत अन्तर पाया जाता हैं। सारे संसार में फैला भूकम्पमापी केंद्रों का जाल प्रतिदिन दर्जनों भूकम्पों को आलेखित करता है, लेकिन भयंकर भूकम्प कुछ ही क्षेत्रों में आते हैं। भूकम्प मापने वाले यंत्र को **भूकम्प मापी (सीस्मोग्राफ) यंत्र** कहते हैं। 'सीस्मोस' ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है भूकम्प।

- आंतरिक बलों द्वारा हुए भूपृष्ठ के कम्पन को **भूकम्प** कहते हैं।
- भूकम्पमापी एक यंत्र है जो भूपृष्ठ के कम्पन को आलेखित करता है।

भूपृष्ठ में स्थित वह बिंदु जहां से भूकम्प प्रारंभ होता है उसे भूकम्प केंद्र कहते हैं। सामान्यता यह केंद्र भूपृष्ठ मं 60 किलोमीटर की गहराई के आसपास स्थित होता है।

भूकम्प केंद्र के ठीक ऊपर पृथ्वी के धरातल पर जो स्थान होता है, उसे **अधिकेंद्र** कहते हैं। भूकम्प का प्रभाव उसके उद्‌गम बिंदु से तरंगों द्वारा ले जाया जाता है। ये भूकम्पीय तरंगें भूकम्प केंद्र से पैदा होकर सभी दिशाओं की ओर चलती है। लेकिन उनकी तीव्रता अधिकेन्द्र पर सबसे अधिक होती है। यही कारण है कि अधिकेन्द्र के चारों ओर फैले क्षेत्र पर विनाश सर्वाधिक होता है। कम्पन की तीव्रता अधिकेंद्र के चारों ओर दूर जाने पर क्रमशः कम होती जाती है। (देखें चित्र 4.8)

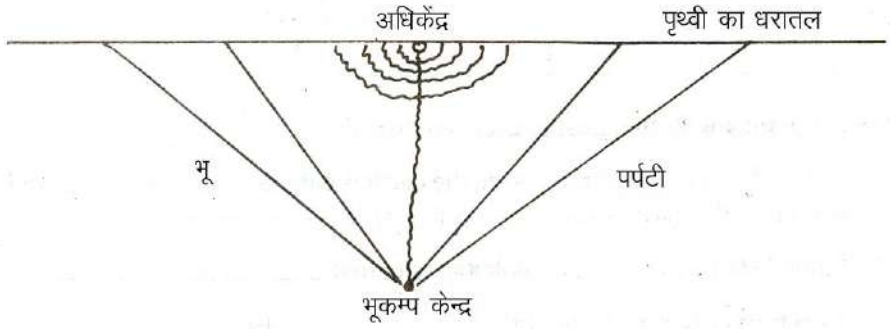

चित्र 4.8 एक भूकम्प का भूकम्प-केन्द्र तथा अधिकेंद्र

- भूकम्प पृथ्वी के धरातल का कंपन है जो हल्के से कंपन से लेकर भवनों को तेज हिलाकर रख देने वाला हो सकता है।
- भूकम्प मापने के लिए भूकम्प मापी (सिस्मोग्राफ) यंत्र का उपयोग करते हैं।
- **भूकम्प-केंद्र** भूपृष्ठ में वह बिंदु होता है, जहाँ से भूकम्प प्रारंभ होता है।
- **अधिकेंद्र** धरातल पर वह बिंदु होता है जो भूकम्प केंद्र के ठीक ऊपर होता है।

टिप्पणी

(क) भूकम्प के कारण और प्रभाव

भूकम्प आने का प्रमुख कारण वलन, भ्रंशन तथा शैल संस्तरों का खिसकना है। कैलीफोर्निया के सान फ्रांसिसको में 1906 तथा असम में 1951 में तथा बिहार में 1935 में आये भूकम्प इस प्रकार के भूकम्पों के उपयुक्त उदाहरण हैं।

भूकम्पों के आने का दूसरा प्रमुख कारण ज्वालामुखी उद्‌भेदन है। ज्वालामुखी के भयंकर उद्‌भेदन से ठोस शैलों पर अत्यधिक दबाव पड़ता है, इससे भूपृष्ठ पर कम्पन पैदा होते हैं। लेकिन इस प्रकार के भूकम्प ज्वालामुखी प्रक्रिया के क्षेत्रों तक ही सीमित रहते हैं। हवाई द्वीप समूह में मोनालोआ ज्वालामुखी के 1868 में हुए उद्‌भेदन के पूर्व छः दिन तक इस क्षेत्र में लगातार आये भूकम्प इस प्रकार के भूकम्पों के प्रमुख उदाहरण हैं।

हल्के या सीमित प्रभाव वाले भूकम्पों के आने के कारणों में भूस्खलन, जल के रिसने से खानों, सुरंगों व कन्दराओं की छतों के शैलों का टूटकर गिरना शामिल हैं। इस प्रकार के भूकम्पों से क्षति बहुत ही कम होती है।

भयंकर भूकम्प सामान्यतया अत्याधिक विनाशकारी होते हैं। इस प्रकार के भूकम्पों से भूःस्खलन, नदियों के मार्गों का रुक जाना तथा बाढ़ के आने की घटनायें घटित हो जाती हैं। कभी–कभी भूमि के धसक जाने से झीलें बन जाती हैं। भूकम्पों के आने से दरारें पड़ जाती हैं। इसके कारण नदियों के मार्ग बदल जाते हैं, जैसा कि असम के 1951 में आये भूकम्प के कारण हुआ था। भूकम्पों के कारण दरार रेखा के साथ शैल संस्तर ऊपर नीचे अथवा क्षैतिज दिशा में खिसक जाते हैं। जब इनसे आग लग जाती है या ज्वारीय तरंगें पैदा हो जाती हैं, तब ये भूकम्प अत्यधिक विनाशकारी होते हैं। इन ज्वारीय तरंगों को **सुनामी** कहते हैं। इन तरंगों से तटीय नगर बह जाते हैं। भूकम्प के आने से मकान व पुल टूट जाते हैं, जिससे हजारों व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है। यातायात, संचार तथा बिजली के तार की लाइनें टूट जाती हैं। भूकम्पों का अंतिम परिणाम हैजा जैसी महामारियाँ होती हैं।

(ख) भूकम्पों का वितरण

भूकम्प संसार के प्रत्येक भाग में आते हैं। लेकिन दो पूर्ण निश्चित पेटियों में वे अक्सर आते हैं। ये पेटियाँ हैं – प्रशांत महासागर को घेरने वाली पेटी तथा मध्यवर्ती पर्वतीय पेटी। प्रशांत महासागर को घेरने वाली पेटी में उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट, **अल्यूशियन तथा एशिया के पूर्वी तट** से लगें अन्य द्वीप समूह जैसे जापान तथा फिलीपाइन्स शामिल हैं। यह पेटी प्रशांत सागर को एक छोर से दूसरे छोर तक घेरे हुये है इसलिए इसका यह नाम पड़ गया है। इस पेटी में आने वाले भूकम्प पर्वतों तथा ज्वालामुखियों की श्रृंखला से संबंधित है। ऐसा अनुमान है कि संसार के लगभग 68 प्रतिशत भूकम्प अकेले इसी पेटी में आते है।

भूकम्प प्रभावित दूसरी पेटी आल्प्स पर्वत से प्रारंभ होकर भूमध्य सागर कॉकेशस, हिमालय प्रदेश तथा इण्डोनेशिया तक फैली हुई है। इस पेटी में संसार के लगभग 21 प्रतिशत भूकम्प आते हैं। शेष 11 प्रतिशत भूकम्प संसार के शेष भागों में आते हैं।

- संसार के अधिसंख्य भूकम्प दो पेटियों में आते हैं ये हैं – प्रशांत महासागर को घेरने वाली पेटी तथा मध्यवर्ती पर्वतीय पेटी।

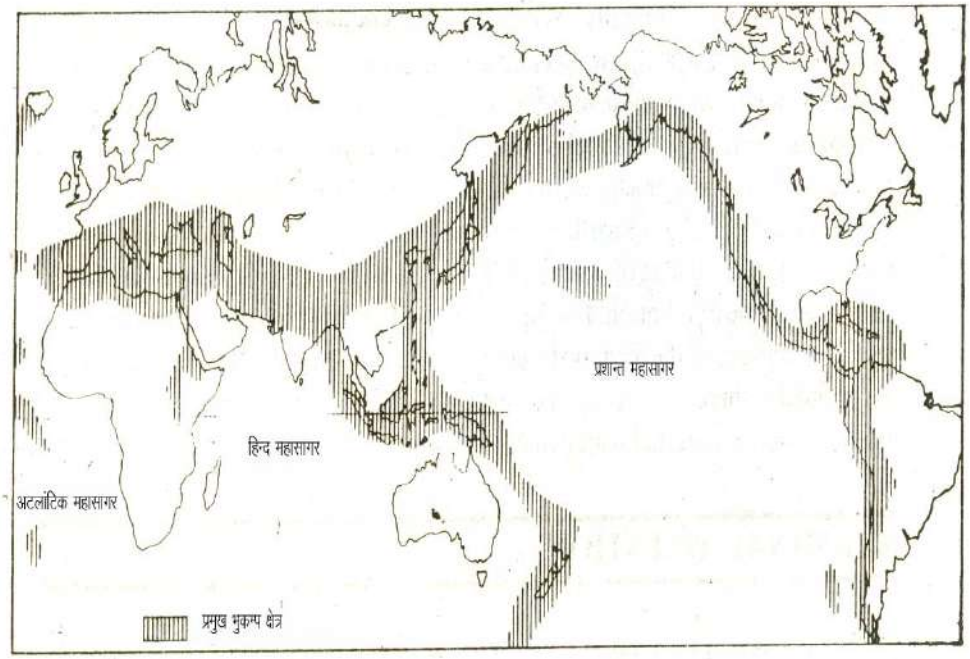

चित्र 4.9

पाठगत प्रश्न 4.4

उपयुक्त शब्दों से रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

(i) भूकम्प किसे कहते हैं ?

_____

(ii) किस यंत्र द्वारा भूकम्पों का आलेखन किया जाता है?

_____

(iii) उद्गम बिंदु क्या होता है ?

_____

(iv) सुनामी क्या है ?

_____

टिप्पणी

आपने क्या सीखा

पृथ्वी के धरातल पर पायी जाने वाली विभिन्न प्रकार की भू–आकृतियॉं उसकी आंतरिक और बाह्य बलों की निरंतर प्रक्रिया का परिणाम है। आंतरिक बल विभिन्न धरातलीय लक्षणों की ऊँचाई में असमता पैदा करने के लिए उत्तरदायी हैं। ये बल पृथ्वी के आंतरिक भागों में पैदा होते हैं। इन बलों को अन्तर्जात बल भी कहते हैं। इन बलों के कारण भूपृष्ठ में हलचल होती है जिन्हें पृथ्वी की हलचलें कहते हैं। मंद हलचलें जहां भौतिक लक्षणों में धीरे–धीरे व क्रमिक परिवर्तन लाती है वहीं आकस्मिक हलचलें यकायक व तीव्र परिवर्तन लाती हैं। आंतरिक बल पृथ्वी को दो प्रकार – त्रिज्यीय तथा क्षैतिज रूपों से प्रभावित करते हैं। जब ये त्रिज्यीय रूप में प्रभावित करते हैं तब भूपृष्ठ विपरीत, जब ये बल क्षैतिज या एक दिशा से दूसर दिशा में प्रभाव डालते हैं तब शैल संस्तरों में वलन व भ्रंशन की प्रक्रियायें होती हैं। इन्हें क्षैतिज हलचलें कहते हैं। ज्वालामुखी भूपृष्ठ के द्वार या छिद्र को कहते हैं जिससे गर्म पिघला हुआ मैग्मा, गैसें तथा राख निकलकर पृथ्वी के धरातल पर जमा होती है। ज्वालामुखी का आकार व आकृति उद्‌भेदन की बारम्बारता, लावा की तरलता तथा उद्‌भेदन के प्रकार पर निर्भर करता है। भूकम्प भूपृष्ठ के कारण पैदा होते हैं। ज्वालामुखी संसार की तीन निश्चित पेटियों में सीमित हैं। भूकम्प भी इनमें से दो पेटियों से संबंधित हैं।

पाठांत प्रश्न

1. आंतरिक बलों से क्या तात्पर्य है ? इन बलों की उत्पत्ति के कारणों की सूची बनाइये।
2. चार उदाहरण देकर सिद्ध कीजिए कि भूपृष्ठ अस्थिर हैं।
3. निम्न को आरेखों द्वारा दर्शाइए :–
   (i) दरार रेखा के सहारे विस्थापित शैल संस्तर
   (ii) शैल संस्तर की अपनति व अभिनति
4. ऊर्ध्वाधर तथा क्षैतिज हलचलों में अंतर स्पष्ट कीजिए।
5. वलन तथा भ्रंशन में अंतर बताइए।
6. ज्वालामुखी क्या है ? उदाहरण देकर विभिन्न प्रकार के ज्वालामुखियों के बारे में बताइए।
7. क्षारीय तथा अम्लीय लावा एवं उनके द्वारा निर्मित भू आकृतियों में अंतर बताइए।
8. भूकम्प क्यों आते हैं ?
9. भूकम्पों से पृथ्वी के धरातल पर पड़ने वाले प्रभावों की सूची बनाइए।

10. निम्न पारिभाषिक शब्दों की परिभाषा दीजिए :–

    (क) दरार रेखा (ख) केंद्रीय उद्‌गार

    (ग) दरारी उद्‌भेदन (घ) प्रसुप्त ज्वालामुखी

11. संसार के रेखा मानचित्र में निम्नांकित को दर्शाइये तथा उनका नाम लिखिए :–

    (क) भारत में एक सक्रिय ज्वालामुखी (ख) दक्षिणी अमेरिका में एक ज्वालामुखी पठार (ग) यूरोप में एक दरार घाटी (घ) म्यांमार में एक विलुप्त ज्वालामुखी (ड) अफ्रीका में एक विलुप्त ज्वालामुखी (ट) हवाई द्वीप समूह में एक ज्वालामुखी।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

4.1

1. अन्तर्जात बल 2. वे हलचलें जो पृथ्वी के अंतर्जात बलों द्वारा भूपृष्ठ को प्रभावित करती हैं। पृथ्वी की हलचलें कहलाती हैं।

4.2

1. क्षैतिज हलचलें 2. पर्वत निर्माणकारी हलचलें

4.3

1. (i) ज्वालामुखी प्रक्रिया (ii) (क) सक्रिय (ख) प्रसुप्त (ग) विलुप्त (iii) (क) केंद्रीय ज्वालामुखी (ख) दरारी ज्वालामुखी (i) (क) क्षारीय लावा (ख) अम्लीय लावा।

4.4

(i) भू हलचलों द्वारा पैदा किए गए भूपृष्ठ के कम्पन को भूकम्प कहते हैं।

(ii) भूकम्प मापी यंत्र

(iii) वह स्थान या बिंदु जहां से भूकम्पीय तरंगे पैदा होती हैं उसे उद्‌गम बिंदु कहते हैं।

(iv) भूकम्पों से समुद्री जल में उत्पन्न होने वाली विनाशकारी लहरों को सुनामी कहते हैं।

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. अनुच्छेद 4.1 को देखिए।
2. अनुच्छेद 4.2 को देखिए।
3. अनुच्छेद 4.1 को देखिए।

टिप्पणी

4. अनुच्छेद 4.4 को देखिए।
5. अनुच्छेद 4.4 (ख) (i) व (ii)
6. अनुच्छेद 4.5 को देखिए।
7. अनुच्छेद 4.6 को देखिए।
8. अनुच्छेद 4.6 को देखिए।
9. अनुच्छेद 4.6 'क' को देखिए।
10. (क) जिस रेखा के साथ टूटे शैल संस्तर खिसकते हैं, उसे भ्रंश रेखा कहते हैं।

    (ख) जब किसी ज्वालामुखी में किसी छिद्र या द्वार से उद्गार होता है, तो उसे केंद्रीय उद्गार कहते हैं।

    (ग) जब किसी ज्वालामुखी में किसी लंबी दरार में उद्भेदन होता है तो दरारी उद्भेदन कहते हैं।

    (घ) जिन ज्वालामुखियों में मानव इतिहास काल में उद्भेदन नहीं हुआ है, उन्हें प्रसुप्त ज्वालामुखी कहते हैं।
11. मानचित्र देखिए।

उनके बीच में अनेक टापू बन जाते हैं, नदी के इस रूप को गुंफित नदी कहते हैं।

3. **अपरदन कार्य** – महाखड्ड, 'V' आकृति की घाटी, विसर्प, कैनयन, जलप्रपात। निक्षेपण कार्य – विसर्प, बाढ़कृत मैदान, जलोढ़ पंख।

4. (क) **गोखुर झील** – नदी के मध्य मार्ग में बिसर्प बन जाते हैं। समय बीतने पर दो मोड़ों के बीच की भूमि की पट्टी धीरे–धीरे संकरी होती जाती है और एक समय ऐसा आता है, जब नदी इस संकरी पट्टी को काट कर सीधी बहने लगती है। इस प्रकार विसर्प का नदी की मुख्य धारा से संबंध टूट जाता है और विसर्प एक गोखुर झील में बदल जाता है।

   (ख) **डेल्टा** – नदी मुहाने पर त्रिभुज जैसी आकृति वाली भूमि जो, नदियों द्वारा लाए गए अवसादों के 'निक्षेपण' से बनती है। इसमें होकर अनेक वितरिका नदियाँ बहती हैं।

5. तल संतुलन के कारकों में नदी सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। नदी मार्ग के तीन भाग हैं। यह अपने मार्ग के तीनों ही भागों में तल संतुलन का कार्य करती रहती है।

   ऊपरी मार्ग – महाखड्ड, जलप्रपात, और केनयन का निर्माण।

   मध्य मार्ग – विसर्प और जलोढ़ पंखों का निर्माण।

   निचला मार्ग – विसर्प, बाढकृत मैदान, गुंफित नदी, गोखुर झील, डेल्टा, और ज्वार नद मुख का निर्माण।

6. (क) भूमिगत जल – वर्षा के जल का वह भाग जो भूमि के अंदर रिसकर एकत्र हो जाता है, भूमिगत जल कहलाता है।

   (ख) चूने की शैलों से बने प्रदेशों में अनेक घोलरंध्र और विलय रंध्र पाए जाते हैं। नदियाँ इन रंध्रों में प्रवेश कर जाती हैं और सतही प्रवाह भूमिगत हो जाता है। इस प्रकार चूने की शैलों से बने प्रदेशों में नदियाँ भूमिगत हो जाती हैं।

   (ग) जिन प्रदेशों में घोलरंध्र तथा विलयरंध्र अधिक संख्या में पाए जाते हैं, वहाँ सड़कें तथा रेलवे मार्ग बनाना कठिन होता है, क्योंकि ऐसे प्रदेशों में भूमि की सतह नीचे को धंस जाती है।

   (घ) स्थायी भूमिगत जल स्तरः यह धरातल के नीचे जल का वह तल है, जिससे नीचे भूमिगत जल स्तर कभी नहीं जाता। यह भूमिगत जलस्तर ऋतु परिवर्तन से भी अप्रभावित रहता है। इस गहराई तक खोदे गए कुएँ कभी नहीं सूखते।

   अस्थायी भूमिगत जलस्तर : कुछ प्रदेशों में भूमिगत जल स्तर स्थायी नहीं होता

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

6.1

1. हिमानी 2. हिमक्षेत्र 3. हिमरेखा 4. (क) महाद्वीपीय हिमानी (ख) घाटी हिमानी।

6.2

1. (क) 'U' आकृति की घाटी (ख) लटकती घाटी (ग) हिमजगह्वर
2. हिमोढ़
3. (क) अपरदन (ख) परिवहन (ग) निक्षेपण

6.3

1. मरूस्थलीय तथा अर्द्ध मरूस्थलीय क्षेत्र
2. (क) अपरदन (ख) परिवहन (ग) निक्षेपण
3. (क) छत्रक शैल तथा (ख) पवन द्वारा अपरदित बेसिन
4. (क) बालू के टीले (ख) बारखन या अनुदैर्ध्य टीले (ग) लोयस।
5. उत्तरी चीन में।

6.4

1. (क) अपरदन कार्य
   (ख) अपघर्षण, संनिघर्षण, जल चालित क्रिया और घोलन क्रिया
   (ग) अपरदन कार्य
2. (i) समुद्री भृग (ii) समुद्री गुफाएँ (iii) समुद्री मेहराब (iv) समुद्री स्तंभ (कोई तीन)
3. (i) तट रेखा की प्रकृति (ii) तरंगों की शक्ति।
4. निक्षेपण कार्य
5. (i) अपरदन द्वारा बने – समुद्री स्तंभ, भृगु, गुफाएँ, मेहराब
   (ii) निक्षेपण द्वारा बने – रोधिका, पुलिन और भूजिह्वा

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. (i) हिम रेखा एक काल्पनिक रेखा होती है, जिसके ऊपर स्थाई रूप से बर्फ जमी रहती है।
   (ii) देखिए अनुच्छेद 6.3 का (क) और उस पृष्ठ पर चित्र 6.4
2. (क) (i) महाद्वीपीय हिमानी : हिम और बर्फ से ढका विस्तृत क्षेत्र।
   (ii) घाटी हिमानी : ये घाटी हिमानियाँ तब बनती हैं, जब पर्वतीय ढालों से हिम और बर्फ, पहले से विद्यमान घाटी में खिसकने लगती है। हिम और बर्फ की इस खिसकती राशि को घाटी हिमानी कहते हैं।

7

प्रमुख स्थलरूप और उनका आर्थिक महत्त्व

आपने पिछले पाठ में पढ़ा है कि धरातल पर दिखाई देने वाले विविध स्थलरूपों का निर्माण पृथ्वी के आन्तरिक एवं बाह्य बलों के पारस्परिक प्रभाव के कारण होता है। इन बलों द्वारा मुलायम शैलें आसानी से काटी–छाँटी जाती है; जबकि अपेक्षाकृत कठोर शैलों पर इनका प्रभाव कम पड़ता है। अतः किसी क्षेत्र के स्थलरूपों के निर्माण में शैलों की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पृथ्वी के आन्तरिक बल धरातल को निरन्तर ऊपर उठाने में लगे रहते हैं; जबकि बाह्य बल, जिनके बारे में आप अगले पाठ में पढ़ेंगे, उन उठे हुये भागों को काट–छाँट कर समतल बनाने में निरन्तर कार्यशील रहते हैं। इस प्रकार बाह्य बलों अर्थात तल संतुलन के कारकों के लगातार क्रियाशील रहने के कारण विविध प्रकार के स्थलरूप बनते रहते हैं। धरातल पर पाये जाने वाले तीन प्रमुख स्थलरूप पर्वत, पठार और मैदान हैं। इस पाठ में हम पृथ्वी के प्रमुख स्थलरूपों और उनके आर्थिक महत्व के बारे में अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- धरातल पर पाये जाने वाले तीन प्रमुख स्थलरूपों में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे;
- विभिन्न स्थलरूपों के बनने की प्रक्रिया को सचित्र समझा सकेंगे;
- निर्माण क्रिया के आधार पर पर्वतों का वर्गीकरण कर सकेंगे;
- मानव के लिए पर्वतों की उपयोगिता बता सकेंगें;
- विभिन्न प्रकार के पठारों की सूची बना सकेंगे और उनके आर्थिक महत्व का वर्णन कर सकेंगे;

टिप्पणी

- मैदानों के प्रमुख प्रकारों को बता सकेंगे और मैदानों के मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव को समझा सकेंगे;
- संसार के रेखा मानचित्र पर प्रमुख पर्वतों, पठारों और मैदानों को दर्शा सकेंगे।

7.1 पर्वत

धरातल पर विद्यमान तीन विस्तृत स्थलरूप पर्वत, पठार और मैदान हैं जो भूपर्पटी के विरूपण का परिणाम हैं। इनमें से पर्वत सबसे रहस्यमयी रचना है। पर्वतों द्वारा पृथ्वी की सम्पूर्ण सतह का 27 प्रतिशत भाग घिरा हुआ है। पर्वत पृथ्वी की सतह के ऊपर उठे हुये वे भाग हैं, जो आसपास की भूमि से बहुत ऊँचे हैं। परन्तु धरातल के सभी ऊपर उठे हुये भाग पर्वत नहीं कहलाते। किसी भी स्थलरूप को पहचानने के लिये ऊँचाई और ढाल दोनों को सम्मिलित किया जाता है। इस नाते तिब्बत की ऊपर उठी हुई भूमि पर्वत नहीं कहलाती यद्यपि उसकी ऊँचाई समुद्र तल से 4500 मीटर है।

यह ध्यान रखने योग्य बात है कि एक पर्वत श्रेणी के बनने में लाखों वर्ष लगते हैं। इस लम्बी अवधि में आन्तरिक बल भूमि को ऊपर उठाने में व्यस्त रहते हैं तो इसके विपरीत बाह्य बल इस ऊपर उठी भूमि को काटने–छाँटने या अपरदित करने में जुटे रहते हैं। माउन्ट एवरेस्ट जैसे ऊँचे एक पर्वत शिखर का निर्माण तब ही हो पाता है जब आन्तरिक बलों का पर्वत निर्माणकारी या जमीन को ऊपर उठाने वाला कार्य बाह्य बलों के अपरदन कार्य की अपेक्षा अधिक द्रुत गति से होता है। अतः पर्वत धरातल के ऊपर उठे हुए वे भू–भाग हैं, जिनके ढाल तीव्र होते हैं और समुद्र तल से लगभग 1000 मीटर से अधिक ऊँचे होते हैं। पर्वतों की समुद्र की सतह से सामान्य ऊँचाई हजार मीटर से अधिक मानी जाती है। स्थानीय उच्चावच लक्षणों में पर्वत ही एक ऐसा स्थलरूप है, जिसके उच्चतम और निम्नतम भागों के बीच सर्वाधिक अन्तर होता है।

- पृथ्वी के धरातल के ऊँचे उठे हुए भाग जिनका शिखर हजार मीटर से अधिक ऊँचा हो और ढाल तीव्र हो, तथा जिनके बनने में लाखों वर्ष लगे हों, पर्वत कहलाते हैं।

7.2 पर्वतों का वर्गीकरण

निर्माण क्रिया के आधार पर पर्वतों को निम्न चार भागों में वर्गीकृत किया जाता है:

(क) वलित पर्वत, (ख) खंड पर्वत, (ग) ज्वालामुखी पर्वत और (घ) अवशिष्ट पर्वत

(क) **वलित पर्वत :** हम पिछले पाठ में पढ़ चुके हैं कि पृथ्वी की आन्तरिक हलचलों के कारण परतदार शैलों में वलन पड़ते हैं। वलित परतदार शैलों के ऊपर उठने के परिणामस्वरूप बनी पर्वत श्रेणियों को वलित पर्वत कहते हैं। वलित परतदार शैलों पर लाखों वर्षों तक आन्तरिक क्षैतिज संपीडन–बल लगे रहते हैं तो वे मुड़

जाती हैं और उनमें उद्वलन तथा नतवलन पड़ जाते हैं। कालान्तर में ये अपनतियों और अभिनतियों के रूप में विकसित हो जाते हैं। इस प्रकार की हलचलें समय–समय पर होती रहती हैं और जब वलित शैलें बहुत ऊँचाई प्राप्त कर लेती हैं तो वलित पर्वतों का जन्म होता है।

- संपीडन–बलों के परिणाम स्वरूप बनी वलित परतदार शैलों के ऊपर उठने से वलित पर्वत बनते हैं।

एशिया के हिमालय, यूरोप के आल्प्स, उत्तर अमरीका के रॉकी और दक्षिण अमरीका के एंडीज संसार के प्रमुख वलित पर्वत हैं (चित्र 7.1)। इन पर्वतों का निर्माण अत्यन्त आधुनिक पर्वत निर्माणकारी युग में हुआ है, अतः ये सभी नवीन वलित पर्वतों के नाम से जाने जाते हैं। इनमें से कुछ पर्वत श्रेणियाँ जैसे हिमालय पर्वत अब भी ऊपर उठ रहे हैं।

चित्र 7.1 संसार के प्रमुख वलित पर्वत

(ख) **खंड पर्वतः** खंड पर्वत का निर्माण भी पृथ्वी की आन्तरिक हलचलों के कारण होता है। जब परतदार शैलों पर तनाव–बल लगते हैं तो उनमें दरार या भ्रंश पड़ जाते हैं। जब लगभग दो समान्तर भ्रंशों के बीच की भूमि आसपास की भूमि की तुलना में काफी ऊपर उठ जाती है तो उस ऊपर उठी भूमि को **खंड पर्वत** या **भ्रंशोत्थ** पर्वत या **भ्रंश-खंड** पर्वत कहते हैं। खंड पर्वत का निर्माण उस परिस्थिति में भी होता है, जब दोनों भ्रंशों के बाहर की भूमि नीचे बैठ जाती है और भ्रंशों के बीच की भूमि उठी रह जाती है। खंड पर्वत को होर्स्ट भी कहते हैं (चित्र 7.2)। खण्ड पर्वत में शैलों की परतें वलित अथवा समतल में से कोई भी हो सकती हैं।

फ्राँस के वासजेज, जर्मनी के ब्लैक फारेस्ट और उत्तरी अमरीका के सियेरानेवादा, खंड पर्वतों के विशिष्ट उदाहरण हैं।

टिप्पणी

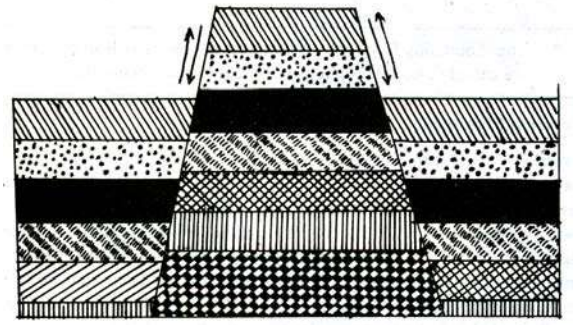

चित्र 7.2 खंड पर्वत

- पर्वत जिनका निर्माण दो भ्रंशों के बीच की भूमि के ऊपर उठने अथवा भ्रंशों के बाहर की भूमि के बैठने के कारण होता है, इन्हें **खंड** अथवा **भ्रंश-खंड** पर्वत कहते हैं।

(ग) **ज्वालामुखी पर्वतः** हमने पिछले पाठ में पढ़ा है कि पृथ्वी का आन्तरिक भाग या भूगर्भ बहुत गर्म है। भूगर्भ के गहरे भागों में अत्याधिक तापमान के कारण ठोस शैलें द्रव–मैग्मा में बदल जाती हैं। जब यह पिघला शैल–पदार्थ ज्वालामुखी के उद्‌गार में भूगर्भ से धरातल पर आता है तो वह मुख के चारों ओर इकट्‌ठा हो जाता है और जमकर शंकु का रूप धारण कर सकता है। ज्वालामुखी के प्रत्येक उद्‌गार के साथ इस शंकु की ऊँचाई बढ़ती जाती है और इस प्रकार वह पर्वत का रूप ले लेता है। पर्वत, जो ज्वालामुखी से निकले पदार्थों के जमा होने से बने हैं उन्हें **ज्वालामुखी पर्वत** या **संग्रहित पर्वत** कहते हैं। (देखें चित्र 7.3) हवाई द्वीपों का मोनालुआ; म्यानमार (बर्मा) का माउन्ट पोपा, इटली का विसूवियस, इक्वेडोर का कोटोपैक्सी तथा जापान का फ्यूजीयामा ज्वालामुखी पर्वतों के उदाहरण हैं।

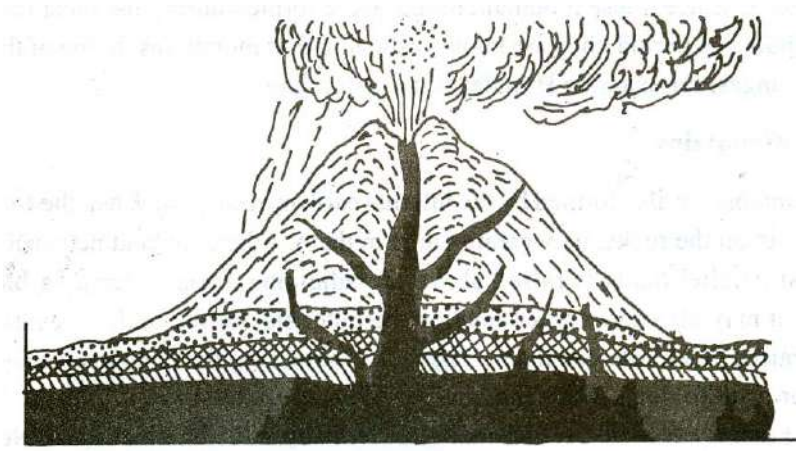

चित्र 7.3 ज्वालामुखी पर्वत

- ज्वालामुखी से निकले पदार्थों के जमाव से बने पर्वतों को ज्वालामुखी या संग्रहित पर्वत कहते हैं।

(घ) **अवशिष्ट पर्वतः** अपक्षय तथा अपरदन के विभिन्न कारक – नदियाँ, पवन, हिमानी आदि धरातल पर निरन्तर कार्य करते रहते हैं। वे भूपर्पटी की ऊपरी सतह को कमजोर करने के साथ उसे काटते–छाँटते रहते हैं। जैसे ही धरातल पर किसी–पर्वत श्रेणी का उद्‌भव होता है तो क्रमण के कारक अपरदन द्वारा उसे नीचा करना शुरू कर देते हैं। अपरदन कार्य शैलों की बनावट पर बहुत निर्भर करता है। हजारों वर्षों के बाद मुलायम शैलें कट कर बह जाती हैं तथा कठोर शैलों से बने भूभाग उच्च भूखण्डों के रूप में ही खड़े रहते हैं। इन्हें ही **अवशिष्ट पर्वत** कहते हैं। (देखिए चित्र 7.4) भारत की नीलगिरि, पारसनाथ तथा राजमहल की पहाड़ियाँ अवशिष्ट पर्वतों के उदाहरण हैं

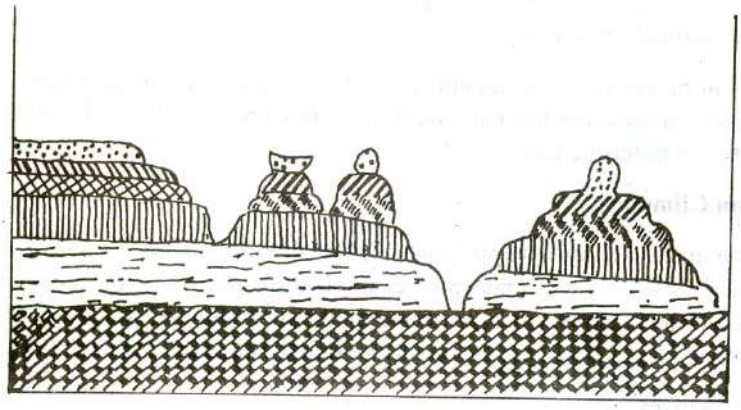

चित्र 7.4 अवशिष्ट पर्वत

- अपरदन की क्रिया का, कम प्रभाव पड़ने से कठोर शैलों के पर्वत श्रेणी के आकार में यत्रतत्र ऊँचे उठे भू–भाग अवशिष्ट पर्वत कहलाते हैं।
- निर्माण के आधार पर पर्वतों के प्रकार हैं: (1) वलित पर्वत (2) खण्ड पर्वत (3) ज्वालामुखी पर्वत (4) अवशिष्ट पर्वत।

7.3 पर्वतों का आर्थिक महत्व

पर्वत हमारे लिए निम्न प्रकार से उपयोगी हैं–

1. **संसाधनों के भण्डार** – पर्वत प्राकृतिक सम्पदा के भंडार हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका की अप्लेशियन पर्वतमाला कोयले और चूना पत्थर के लिए प्रसिद्ध है। पर्वतों पर उगने वाले कई प्रकार के वनों में हमें विभिन्न उद्योगों के लिए इमारती लकड़ी, लाख, गोंद, जड़ी बूटियाँ तथा कागज उद्योगों के लिए लकड़ी प्राप्त होती हैं। पर्वतीय ढलानों पर चाय तथा फलों की कृषि का विकास हुआ है।

टिप्पणी

2. **जल विद्युत उत्पादन** – पर्वतीय प्रदेशों में बहने वाली नदियों के जल प्रपातों द्वारा जल विद्युत उत्पन्न की जाती है। कोयले की कमी वाले पर्वतीय देशों जैसे–जापान, इटली और स्विटजरलैण्ड में जल विद्युत का बहुत महत्व है।

3. **जल के असीम भंडार** – ऊँचे हिमाच्छादित या भारी वर्षा वाले पर्वतों से निकलने वाली सदा वाहिनी नदियाँ जल के भंडार हैं। उनसे नहरें निकाल कर खेतों की सिंचाई की जाती है, जिससे विभिन्न फसलों का अधिक उत्पादन होता है।

4. **उपजाऊ मैदानों के निर्माण में सहायक** – ऊँचे पर्वतों से निकलने वाली नदियाँ कटाव द्वारा मिट्टी बहाकर निचली घाटियों में जमा करती हैं, जिससे उपजाऊ मैदानों का निर्माण होता है। उत्तरी भारत का विशाल मैदान गंगा, सतलुज और ब्रह्मपुत्र नदियों की ही देन है।

5. **राजनीतिक सीमायें** – पर्वत दो देशों के बीच राजनीतिक सीमायें बनाते हैं तथा कुछ हद तक आपसी आक्रमण से बचाते हैं। हिमालय पर्वतमाला भारत और चीन के बीच राजनीतिक सीमा बनाये हुए हैं।

6. **जलवायु पर प्रभाव** – पर्वतों पर नीचे तापमान पाये जाते हैं। पर्वत दो प्रदेशों के बीच जलवायु विभाजक का कार्य करते हैं। उदाहरण के लिये हिमालय पर्वतमाला मध्य एशिया से आने वाली अति शीत पवनों को भारत में आने से रोकती है। वह दक्षिण–पश्चिम मानसून पवनों को भी रोककर उन्हें दक्षिणी ढलानों पर वर्षा करने को बाध्य करती है।

7. **पर्यटन केन्द्र** – प्राकृतिक सौन्दर्य के केन्द्र तथा स्वास्थ्यवर्धक स्थान होने के कारण बहुत से पर्वतीय स्थल पर्यटन केन्द्रों के रूप में विकसित हो जाते हैं। ऐसे स्थानों पर पर्यटन एवं होटल व्यवसाय विकसित हो जाते हैं। भारत के शिमला, नैनीताल, मसूरी तथा श्रीनगर पर्वतीय नगरों के उदाहरण हैं। ये सारी दुनिया के सैलानियों को आकर्षित करते हैं।

पाठगत प्रश्न 7.1

1. धरातल पर पाये जाने वाले तीन प्रकार के प्रमुख स्थलरूपों के नाम बताइए–

   (क)_____ (ख)_____ (ग)_____

2. अति संक्षिप्त उत्तर दीजिए–

   (क) वलित पर्वत किस प्रकार की शैलों से बने हैं?

   (ख) वलित पर्वतों का निर्माण किस बल के द्वारा होता है?

   (ग) भारत के चार प्रमुख पर्वतीय नगरों के नाम बताइए।

   (i) _____ (ii) _____

   (iii) _____ (iv) _____

3. कोष्ठक में दिये गये रिक्त स्थान पर पर्वतों का प्रकार लिखिए–

(क) ब्लैक फॉरेस्ट (_____) (ख) नीलगिरि (_____)

(ग) फ्यूजीयामा (_____) (घ) एंडीज (_____)

7.4 पठार

पठार पृथ्वी की सतह का लगभग 18 प्रतिशत भाग घेरे हुये हैं। पठार एक बहुत विस्तृत ऊँचा भू–भाग है, जिसका सबसे ऊपर का भाग पर्वत के विपरीत लम्बा–चौड़ा और लगभग समतल होता है। पठारी क्षेत्र में बहने वाली नदियाँ पठार पर प्रायः गहरी घाटियाँ और महाखड्ड बनाती हैं। इस प्रकार पठार का मौलिक समतल रूप कटा–फटा या ऊबड़–खाबड़ हो जाता है। फिर भी पठार आसपास के क्षेत्र या समुद्र तल से काफी ऊँचा होता है। पठार की ऊँचाई समुद्रतल से 600 मीटर ऊपर मानी जाती है। परन्तु तिब्बत और बोलिविया जैसे पठार समुद्र तल से 3600 मीटर से भी अधिक ऊँचे हैं।

- पठार आस–पास की भूमि से ऊँचा उठा हुआ वह विस्तृत भू–भाग है, जिसका पृष्ठ लगभग समतल होता है जिसके किनारों का ढाल कभी–कभी बिल्कुल खड़ा होता है।

7.5 पठारों का वर्गीकरण

भौगोलिक स्थिति एवं संरचना के आधार पर पठारों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है– (क) अन्तरा पर्वतीय पठार (ख) गिरिपद पठार, (ग) महाद्वीपीय पठार।

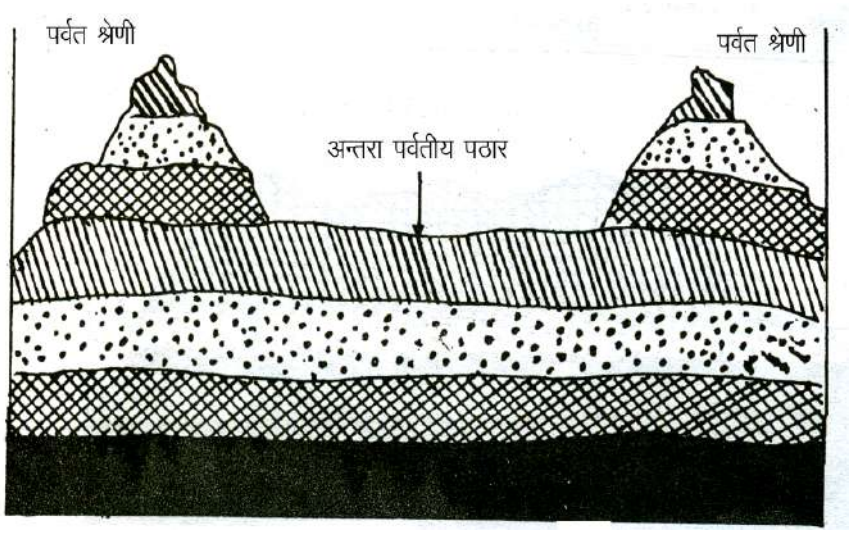

चित्र 7.5 अन्तरा पर्वतीय पठार

(क) **अन्तरा पर्वतीय पठार :** चारों ओर से ऊँची पर्वत श्रेणियों से पूरी तरह या आंशिक रूप से घिरे भू–भाग को **अन्तरा पर्वतीय पठार** कहते हैं। (देखिए चित्र 7.5)

टिप्पणी

उर्ध्वाधर हलचलें लगभग क्षैतिज संस्तरों वाली शैलों के बहुत बड़े भूभाग को समुद्रतल से हजारों मीटर ऊँचा उठा देती है। संसार के अधिकांश ऊँचे पठार इसी श्रेणी में आते हैं। इनकी औसत ऊँचाई 3000 मीटर है। तिब्बत का विस्तृत एवं 4500 मीटर ऊँचा उठार ऐसा ही एक उदाहरण है। यह वलित पर्वत जैसे हिमालय, काराकोरम, क्यूनलुन, तियनशान से दो ओर से घिरा हुआ है। कोलोरेडो दूसरा चिर परिचित उदाहरण है जो एक किलोमीटर से अधिक ऊँचा है, जिसे नदियों ने ग्रॉंड केनियन तथा अन्य महाखड्डों को काटकर बना दिया है। मेक्सिको, बोलीविया, ईरान और हंगरी इसी प्रकार के पठार के अन्य उदाहरण है।

(ख) **गिरिपद (पीडमान्ट) पठारः** पर्वत के पदों में स्थित अथवा पर्वतमाला से जुड़े हुए पठारों को जिनके दूसरी ओर मैदान या समुद्र हों, **गिरिपद पठार** कहते हैं। (देखिए चित्र 7.6)। इन पठारों का क्षेत्रफल प्रायः कम होता है। इन पठारों का निर्माण कठोर शैलों से होता है। भारत में मालवा पठार, दक्षिण अमेरिका में पैटेगोनिया का पठार जिसके एक ओर अटलांटिक महासागर है और संयुक्त राज्य अमेरिका में एप्लेशियन पर्वत और अटलांटिक तटीय मैदान के बीच एप्लेशियन पठार इसके उदाहरण हैं। ये किसी समय बहुत ऊँचे थे परन्तु अब अपरदन के बहुत से कारकों द्वारा घिस दिए गए हैं। इसी कारणवश इन्हें अपरदन के पठार भी कहा जाता है।

(ग) **महाद्वीपीय पठार :** धरातल के एक बहुत बड़े भाग के ऊपर उठने या बड़े भू–भाग पर लावा की परतों के काफी ऊँचाई तक जाने से महाद्वीपीय पठारो का निर्माण होता है। महाराष्ट्र का लावा पठार, उत्तर–पश्चिम संयुक्त राज्य अमेरिका में स्नेक नदी पठार, इस प्रकार के पठारों के उदाहरण हैं। इनको निक्षेपण के पठार भी कहते हैं। महाद्वीपीय पठार अपने आस–पास के क्षेत्रों तथा समुद्र तल से स्पष्ट ऊँचे उठे दिखते हैं। इस प्रकार के पठारों का विस्तार सबसे अधिक है। भारत का विशाल पठार, ब्राजील का पठार, अरब का पठार, स्पेन, ग्रीनलैण्ड और अंटार्कटिका के पठार, अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया के पठार महाद्वीपीय पठारों के उदाहरण हैं।

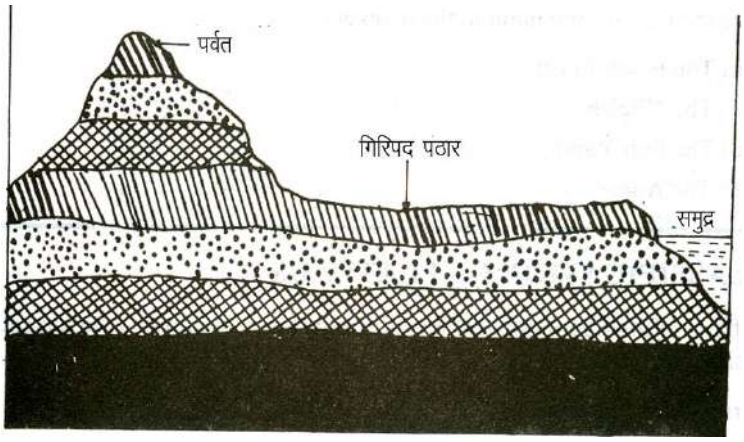

चित्र 7.7 महाद्वीपीय पठार

- चारों ओर से ऊँची श्रेणियों से घिरे पठारों को अन्तरा पर्वतीय पठार कहते है।
- धरातल के विस्तृत भू–भाग के ऊपर उठने अथवा लावा की परतों के जम जाने से बने पठार महाद्वीपीय पठार कहलाते हैं।
- पर्वत की तलहटी में स्थित पठार जिनके दूसरी ओर समुद्र या मैदान हों गिरिपद पठार कहलाते हैं।

7.6 मानव जीवन में पठारों का महत्त्व

लम्बे समय से लगातार अपरदन के कारण पठार के तल प्रायः असमतल हो गये हैं, जिसके कारण यहाँ, आवागमन के साधनों तथा जनसंख्या का पर्याप्त विकास नहीं हो पाता। फिर भी पठार मानव के लिए बहुत उपयोगी हैं। पठारों ने मानव जीवन को निम्न प्रकार से प्रभावित किया है–

1. **खनिजों के भण्डार** – विश्व के अधिकांश खनिज पठारों से ही प्राप्त होते हैं, जिन खनिजों पर हमारे उद्योग कच्चे माल के लिए निर्भर हैं। पश्चिमी आस्ट्रेलिया के पठार में सोना, अफ्रीका के पठार में ताँबा, हीरा और सोना तथा भारत के पठार में कोयला, लोहा, मैंगनीज और अभ्रक के विशाल भंडार हैं।
2. **जल विद्युत उत्पादन** – पठारों के ढालों पर नदियाँ जल प्रपात बनाती हैं, यह जल प्राप्त जल विद्युत उत्पादन के आदर्श स्थल है।
3. **ठन्डी जलवायु** – उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में पठारों के ऊँचे भाग ठण्डी जलवायु के कारण यूरोपवासियो को आकर्षित करते रहे, जहाँ रहकर उन्होंने अर्थव्यवस्था का विकास किया। उदाहरणार्थ दक्षिण और पूर्व अफ्रीका।
4. **पशु-चारण के लिए उपयोगी** - पठारी भाग पशुचारण के लिए बहुत उपयोगी हैं। ये भेड़, बकरियों के पालन के लिए बहुत उपयोगी है। भेड़, बकरियों से वस्त्रों के लिए ऊन तथा भोजन के लिए दूध और माँस की प्राप्ति होती है। लावा से बने पठार उपजाऊ हैं। अतः उन पर अन्य पठारों की अपेक्षा कृषि का अधिक विकास हुआ है।

- पठार अपने खनिज पदार्थों एवं उनके आसानी से दोहन के लिए महत्वपूर्ण हैं। जलविद्युत उत्पादन के लिए अनुकूल है। उनकी उपयुक्त जलवायु और कभी–कभी उपजाऊ मृदा पशुपालन और कृषि के लिए सहायक है।

पाठगत प्रश्न 7.2

1. अति संक्षिप्त उत्तर दीजिए–

   (क) तीन प्रकार के पठारों के नाम बताओ?

टिप्पणी

(i)_____ (ii)_____ (iii) _____

(ख) पठारों पर मिलने वाले तीन प्राकृतिक संसाधनों के नाम बताइए।

(i)_____ (ii)_____ (iii) _____

(ग) बनावट के आधार पर निम्नलिखित पठार किस–किस वर्गीकृत श्रेणी में आते हैं?

(i) पैटेगोनिया का पठार (ii) बोलिविया का पठार (iii) दक्कन का पठार

(i)_____ (ii)_____ (iii) _____

7.7 मैदान

धरातल पर पायी जाने वाली समस्त स्थलाकृतियों में मैदान सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। अति मंद ढाल वाली लगभग सपाट या लहरिया निम्न भूमि को मैदान कहते हैं। मैदान धरातल के लगभग 55 प्रतिशत भाग पर फैले हुए हैं। संसार के अधिकांश मैदान नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी से बने हैं। मैदानों की औसत ऊँचाई लगभग 200 मीटर होती है। नदियों के अलावा कुछ मैदानों का निर्माण वायु, ज्वालामुखी और हिमानी द्वारा भी होता है।

- अति मंद ढल वाली लगभग सपाट या लहरिया निम्न भूमि को मैदान कहते हैं।

7.8 मैदानों का वर्गीकरण

बनावट के आधार पर मैदानों का वर्गीकरण निम्न प्रकार है–

(क) संरचनात्मक मैदान, (ख) अपरदन द्वारा बने मैदान, (ग) निक्षेपण द्वारा बने मैदान।

(क) **संरचनात्मक मैदान :** इन मैदानों का निर्माण मुख्यतः सागरीय तल अर्थात् महाद्वीपीय निमग्न तट के उत्थान के कारण होता है। ऐसे मैदान प्रायः सभी महाद्वीपों के किनारों पर मिलते हैं। मैक्सिको की खाड़ी के सहारे फैला संयुक्त राज्य अमेरिका का दक्षिणी पूर्वी मैदान इसका उदाहरण है। भूमि के नीचे धंसने के कारण भी संरचनात्मक मैदानों का निर्माण होता है। आस्ट्रेलिया के मध्यवर्ती मैदान का निर्माण इसी प्रकार हुआ है।

(ख) **अपरदन द्वारा बने मैदान :** पृथ्वी के धरातल पर निरन्तर अपरदन की प्रक्रिया चलती रहती है, जिससे दीर्घकाल में पर्वत तथा पठार नदी, पवन और हिमानी जैसे कारकों द्वारा घिस कर मैदानों में परिणत हो जाते हैं। इस प्रकार बने मैदान पूर्णतः समतल नहीं होते। कठोर शैलों के टीले बीच–बीच में खड़े रहते हैं। उत्तरी

कनाडा एवं पश्चिमी साइबेरिया का मैदान अपरदन द्वारा बने मैदान हैं। अपरदन द्वारा बने मैदानों को समप्राय भूमि/पेनीप्लेन भी कहते हैं।

(ग) **निक्षेपण द्वारा बने मैदान :** ऐसे मैदानों का निर्माण नदी, हिमानी, पवन आदि तथा संतुलन के कारकों द्वारा ढोये अवसादों से झील या समुद्र जैसे गर्तों के भरने से होता है। जब मैदानों का निर्माण नदी द्वारा ढोये गये अवसादों के निक्षेपण से होता है तो उसे **नदीकृत या जलोढ़** मैदान कहते हैं। भारतीय उपमहाद्वीप का सिन्धु–गंगा का मैदान, उत्तरी चीन में ह्वाँगहो का मैदान, इटली में पो नदी द्वारा बना लोम्बार्डी का मैदान और बाँग्लादेश का गंगा ब्रह्मपुत्र का डेल्टाई मैदान जलोढ़ मैदानों के विशिष्ट उदाहरण हैं। जब मैदानों का निर्माण झील में अवसादों के निक्षेपण से होता है तो उसे **सरोवरी या झील मैदान** कहते हैं। कश्मीर और मणिपुर की घाटियाँ भारत में सरोवरी मैदानों के उदाहरण हैं।

जब मैदान का निर्माण हिमानी द्वारा ढोये पदार्थों के निक्षेपण से होता है तो उसे **हिमानी कृत या हिमोढ़** मैदान कहते हैं। कनाडा और उत्तरी–पश्चिमी यूरोप के मैदान हिमानी कृत मैदानों के उदाहरण हैं।

जब निक्षेपण का प्रमुख कारक पवन होती है तो **लोयस मैदान** बनते हैं। उत्तरी–पश्चिमी चीन के लोयस मैदान का निर्माण पवन द्वारा उड़ाकर लाये गए सूक्ष्म धूल कण के निक्षेपण से हुआ है।

- महाद्वीपीय निमग्न तट के उत्थान अथवा भूमि के नीचे धंसने के कारण बने मैदान संरचनात्मक मैदान कहलाते हैं।
- पर्वत और पठारों के लम्बे समय तक अपरदन से बने मैदान अपरदन जनित मैदान या समप्राय भूमि कहलाती है।
- नदी, हिमानी, पवन, आदि तल संतुलन के कारकों द्वारा ढोये पदार्थों के जमाव से बने मैदानों को निक्षेपण द्वारा बने मैदान कहते हैं।
- निक्षेपण द्वारा बने मैदानों के प्रकार हैं–जलोढ़ मैदान, सरोवरी मैदान, हिमानी कृत मैदान और लोयस मैदान।

7.9 मैदानों का आर्थिक महत्व

मैदानों ने मानव जीवन को निम्न प्रकार से प्रभावित किया है:

(1) **उपजाऊ मृदा** – मैदानों की मृदा सबसे अधिक उपजाऊ तथा गहरी होती है। समतल होने के कारण सिंचाई के साधनों का पर्याप्त विकास हुआ है। इन दोनों के कारण मैदानों में कृषि सर्वाधिक विकसित है। इसीलिये मैदानों को 'संसार का अन्न भंडार' कहा जाता है।

टिप्पणी

(2) **उद्योगों का विकास** – समतल, उपजाऊ एवं सिंचाई की सुविधाओं के कारण मैदानों में कृषि प्रधान उद्योगों का विकास हुआ है। जिससे लोगों को रोजगार मिलता है तथा राष्ट्रीय उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है। अधिक जनसंख्या के कारण कृषि तथा उद्योगों के लिए सस्ते श्रमिक मिल जाते हैं।

(3) **यातायात की सुविधा** – मैदानों का तल समतल होने के कारण यहाँ आवागमन के साधनों – रेलमार्गों, सड़को, हवाई अड्डों आदि का बनाना सुविधाजनक होता है।

(4) **सभ्यताओं के केन्द्र** – मैदान प्राचीन एवं आधुनिक सभ्यताओं के केन्द्र हैं। विश्व की प्रमुख नदी घाटी सभ्यताओं का उद्भव मैदानों में ही हुआ है। सिंधु घाटी की सभ्यता और नील घाटी सभ्यता इसके उदाहरण हैं।

(5) **नगरों की सभ्यता** – रेल, सड़क तथा नदियों द्वारा यातायात की सुविधाओं तथा कृषि और उद्योगों के विकास ने नगरों की स्थापना और विकास को प्रोत्साहित किया। मैदानों में विश्व के सबसे विकसित व्यापारिक नगर और पत्तन स्थित हैं। रोम, टोकियों, कोलकाता, यंगून (रंगून), कानपुर तथा पेरिस आदि नगर मैदानों में ही स्थित हैं।

- मैदानों का आर्थिक महत्त्व है: समतल और उपजाऊ मृदा की प्राप्ति, उद्योगों के विकास की सुविधा, आवागमन के साधनों के विस्तार की सुविधा, प्राचीन एवं आधुनिक सभ्यताओं के केन्द्र और व्यापारिक नगरों और बन्दरगाहों की स्थापना।

पाठगत प्रश्न 7.3

1. अति संक्षिप्त उत्तर दीजिये–

   (क) बनावट के आधार पर मैदान किन तीन प्रकार के होते हैं?

   (i)_____ (ii)_____ (iii)_____

   (ख) नीचे लिखे मैदान बनावट के आधार पर किस वर्ग में आते हैं?

   (i) इटली का लोम्बार्डी मैदान (ii) उत्तरी पश्चिमी चीन का विशाल मैदान (iii) उत्तरी कनाडा का मैदान।

   (i)_____ (ii)_____ (iii)_____

2. ऐसी दो सभ्यताओं के नाम लिखो जो नदी घाटी में विकसित हुई है।

   (i)_____ (ii)_____

3. सरोवरी मैदानों के कोई दो उदाहरण बताइए–

   (i)_____ (ii)_____

आपने क्या सीखा

पृथ्वी के धरातल पर पाई जाने वाली प्रमुख स्थलाकृतियाँ– पर्वत, पठार और मैदान हैं। शैलों की बनावट के अलावा इनके निर्माण में पृथ्वी के आन्तरिक तथा बाह्य बलों का भी पर्याप्त योगदान हैं। धरातल पर बने स्थलरूपों ने मानव जीवन को विभिन्न प्रकार से प्रभावित किया है। पर्वतों से निकली नदियों से उपजाऊ मैदानों का निर्माण हुआ है तथा कृषि और अन्य कार्यों के लिये जल की प्राप्ति होती है। पठारों को खनिज पदार्थों का कोष कहा गया है, जिनसे प्राप्त खनिजों पर हमारे अनेक उद्योग निर्भर हैं। इन सबके अलावा मानव निवास और जनसंख्या घनत्व भी स्थलरूपों द्वारा प्रभावित होते हैं। मैदानों में अधिक संख्या में लोग निवास करते हैं तथा जनसंख्या वृद्धि एक समस्या बन गई है। पठारों तथा पर्वतों पर धरातल के असमतल और कम उपजाऊ होने के कारण जनसंख्या का घनत्व कम पाया जाता है।

पाठांत प्रश्न

1. विश्व में पाए जाने वाले चार प्रकार के पर्वत बताइए तथा प्रत्येक प्रकार के पर्वत की संरचना का वर्णन कीजिए।

2. मानव के लिए पठार किस पकार उपयोगी हैं? वर्णन कीजिए।

3. मैदानों को ''सभ्यता का पालना'' क्यों कहा जाता है?

4. पर्वतों के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

5. निम्नलिखित में अन्तर बताइए:

   (क) अन्तरा पर्वतीय पठार और महाद्वीपीय पठार;

   (ख) खंड पर्वत और ज्वालामुखी पर्वत;

   (ग) संरचनात्मक मैदान और निक्षेपण द्वारा बने मैदान।

6. संसार के रेखामानचित्र में निम्नलिखित दर्शाइए:

   (क) रॉकी और आल्प्स पर्वत मालाएँ,

   (ख) पैटागोनिया और तिब्बत पठार,

   (ग) आस्ट्रेलिया की मध्यवर्ती निम्नभूमि और ह्वांगहो का मैदान

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

7.1

1. (क) पर्वत (ख) पठार (ग) मैदान
2. (क) अवसादी शैल/परतदार शैल

   (ख) क्षैतिज संपीडन–बल

   (ग) (i) शिमला, (ii) नैनीताल, (iii) मसूरी और (iv) श्रीनगर।
3. (क) खंड पर्वत, (ख) अवशिष्ट पर्वत,

   (ग) ज्वालामुखी पर्वत, (घ) वलित पर्वत।

7.2

1. (क) (i) अन्तरा पर्वतीय पठार, (ii) गिरिपद पठार, (iii) महाद्वीपीय पठार।

   (ख) (i) खनिज, (ii) जल एवं मृदा, (iii) घास स्थल

   (ग) (i) गिरिपद पठार, (ii) अन्तरा पर्वतीय पठार, (iii) महाद्वीपीय पठार।

7.3

1. (क) (i) संरचनात्मक, (ii) अपरदन द्वारा बने, (iii) निक्षेपण द्वारा बने।

   (ख) (i) डेल्टाई मैदान, (ii) लोयस मैदान, (iii) हिमानी कृत मैदान।
2. (i). सिंधु घाटी की सभ्यता, (ii) नील घाटी की सभ्यता
3. (i) कश्मीर की घाटी, (ii) मणिपुर की घाटी

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. अनुच्छेद 7.2 को देखिए।
2. अनुच्छेद 7.6 को देखिए।
3. अनुच्छेद 7.9 को देखिए।
4. अनुच्छेद 7.3 को देखिए।
5. विशेषता और बनावट के आधार पर अन्तर बताइए।

   (क) अनुच्छेद 7.5 का 'क' और 'ग' देखिए।

   (ख) अनुच्छेद 7.2 का 'ख' और 'ग' देखिए।

   (ग) अनुच्छेद 7.8 का 'क' और 'ग' देखिए।
6. एटलस देखिए।

8

महासागर : अंतः समुद्री उच्चावच तथा महासागरीय जल का परिसंचरण

पृथ्वी पर जीवित रहने के लिए पानी बहुत महत्त्वपूर्ण है। जीवन की सभी प्रक्रियाओं के लिए पानी की आवश्यकता होती है, जैसे कोशिका विकास, प्रोटीन निर्माण, प्रकाश संश्लेषण तथा पौधों एवं जानवरों द्वारा पौष्टिक तत्वों का विलयन। कुछ जीव ऐसे हैं जो वायु के बिना तो जीवित रह सकते हैं, परन्तु जल के बिना कोई भी जीव जीवित नहीं रह सकता। पृथ्वी पर जितना जल है, उस सारे जल को जलमंडल कहते हैं। यह जल नदियों, झीलों, कुओं, झरनों, समुद्रों और महासागरों में तरल रूप में होता है, ठोस रूप में बर्फ के रूप में होता है। गैस के रूप में जलवाष्प वायुमंडल का अंग होते हुए जलमंडल का भाग है। इस जलमंडल में महासागर सबसे बड़े जलखंड हैं। इस पाठ में हम महासागरीय बेसिन, उनका धरातलीय उच्चावच, महासागरीय जल के परिसंचरण के कारण एवं प्रभाव तथा महासागरों के महत्व के विषय में अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- संसार के मानचित्र पर विभिन्न महासागरों एवं महाद्वीपों को पहचान सकेंगे;
- समुद्री उच्चावच के विभिन्न लक्षणों में अन्तर कर सकेंगे;
- महासागरीय जल के क्षैतिज एवं उर्ध्वाधर तापमान के वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- विश्व मानचित्र पर उच्च एवं निम्न लवणता के क्षेत्रों को दिखा सकेंगे तथा समुद्री जल में तापमान एवं लवणता के वितरण में भिन्नता के कारण बता सकेंगे;

- महासागरीय गतियों जैसे तरंगे, धाराएँ तथा ज्वार–भाटे के विषय में बता सकेंगे;
- तरंगों की उत्पत्ति को समझा सकेंगे;
- ज्वार की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारकों को बता सकेंगे;
- भूमंडलीय पवनों एवं महासागरीय धाराओं के परिसंचरण के बीच सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे;
- महाद्वीपीय निमग्न तट के विशेष उल्लेख के साथ उपयुक्त उदाहरणों के द्वारा मानव के लिए महासागरों के महत्व को समझा सकेंगे।

8.1 महासागर बेसिन

सौरमंडल में हमारी पृथ्वी ही एक मात्र ग्रह है, जिस पर अत्यधिक मात्रा में जल है। इसीलिए इसे अक्सर 'जलीय ग्रह' कहा जाता है। पृथ्वी तल का लगभग 71 प्रतिशत भाग जल से घिरा हुआ है। महासागर एक विशाल और लगातार जल खण्ड है जो पृथ्वी के सभी भूखण्डों को चारों ओर से घेरे हुए है। दक्षिणी गोलार्द्ध के 4/5 तथा उत्तरी गोलार्द्ध के 3/5 भाग पर समुद्री जल है। इसमें विश्व के समूचे जल का 97.2 प्रतिशत जल है।

विश्व में चार मुख्य महासागर हैं – प्रशान्त महासागर, हिन्द महासागर, अटलांटिक महासागर तथा आर्कटिक महासागर। अन्य सभी समुद्र तथा अंतःस्थलीय समुद्र इन चारों मुख्य महासागरों के ही अंग हैं।

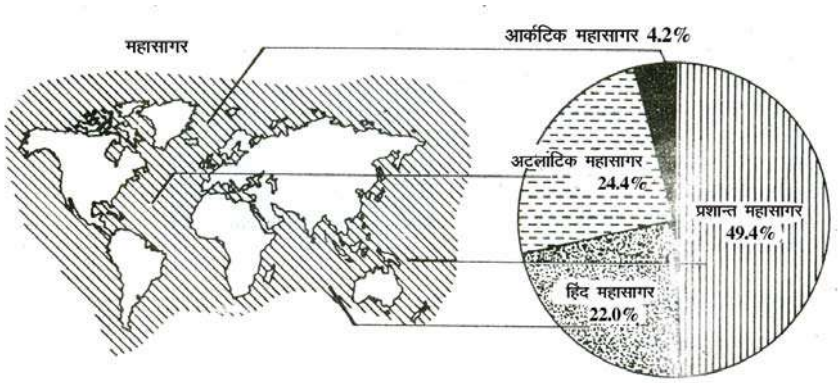

चित्र 8.1 पृथ्वी के समस्त समुद्री क्षेत्र का प्रतिशत के आधार पर महासागरों का भाग

8.2 महासागरीय बेसिन के उच्चावच

महसागरीय जल के भीतर अनेक प्रकार की भूआकृतियाँ छिपी हुई हैं जो कि महाद्वीपों की भू–आकृतियों से काफी मिलती–जुलती हैं। महासागरीय जल के नीचे पर्वत, पठार, पहाड़ियाँ, खाइयाँ और गड्ढे हैं। महासागर के अधस्तल पर पाई जाने वाली ये आकृतियाँ अंतः समुद्री उच्चावच कहलाती हैं।

महासागरों के बेसिनों को मोटे तौर पर चार भागों में बाँटा जाता है। ये हैं–

(क) महाद्वीपीय निमग्न तट;

(ख) महाद्वीपीय ढाल;

(ग) वितल मैदान;

(घ) महासागरीय गभीर।

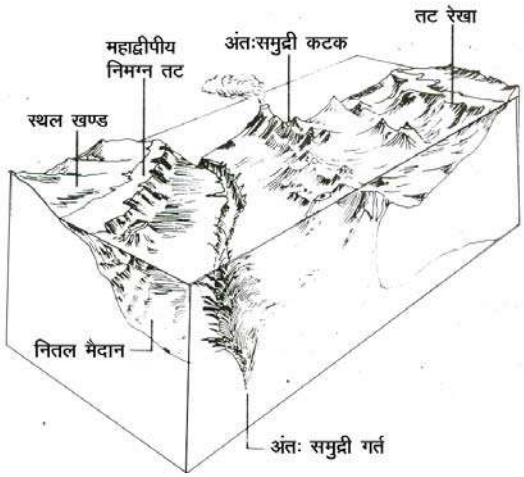

चित्र 8.2 महासागरीय बेसिन के उच्चावच

(क) महाद्वीपीय निमग्न तट

महाद्वीपों से महासागरों को अलग करने वाली कोई स्पष्ट सीमा रेखा नहीं है। वास्तव में महाद्वीप तटरेखा पर एकाएक समाप्त नहीं हो जाते। उनका तट से समुद्र की ओर धीरे–धीरे ढाल बढ़ता जाता है और वे एक ऐसे बिन्दु पर पहुँचते है जहाँ पर ढाल बहुत अधिक तीव्र हो जाता है। महाद्वीप का यह उथला जलमग्न विस्तार, महाद्वीपीय निमग्न तट कहलाता है। महाद्वीपीय निमग्न तट के जल की गहराई 120 मीटर से 370 मीटर तक होती है। महाद्वीपीय निमग्न तट की चौड़ाई में काफी भिन्नता होती है। वह कुछ किलोमीटर से लेकर सौ किलोमीटर से भी अधिक हो सकती है। इस भिन्नता को भारतीय उपमहाद्वीप के संदर्भ में भी देखा जा सकता है। भारत के पूर्वी तट का महाद्वीपीय निमग्न तट पश्चिमी तट के महाद्वीपीय निमग्न तट की अपेक्षा अधिक चौड़ा है। इसी प्रकार की भिन्नताएँ सम्पूर्ण विश्व में देखी जा सकती हैं। पश्चिमी यूरोप का महाद्वीपीय निमग्न तट 320 किलोमीटर तक फैला है। फ्लोरिडा के तट से इसकी चौड़ाई 240 किलोमीटर है। कुछ महाद्वीपों से विशेषकर जहाँ वलित पर्वत तट के समानान्तर या निकले होते हैं, ये महाद्वीपीय निमग्न तट या तो बहुत संकीर्ण होते हैं या होते ही नहीं हैं। ऐसा पूर्वी प्रशान्त महासागर में देखा जाता है।

टिप्पणी

अधिकतर महाद्वीपीय निमग्न तट स्थल के ही अंश माने जाते हैं। ये समुद्री जल स्तर के बढ़ जाने के कारण जलमग्न हो गए हैं। बहुत से विद्वान इनके निर्माण का कारण या तो लहरों से होने वाले अपरदन को मानते हैं या तटवर्ती वेदिका पर नदी के बहाव के साथ आई सामग्री के निक्षेप से स्थलखंड के विस्तार को मानते हैं। कभी कुछ तटवर्ती क्षेत्र बर्फ की पर्त से आच्छादित थे और संभवतः वे हिमानी निक्षेप के कारण विकसित हुए हों।

महाद्वीपीय निमग्न तट मनुष्य के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। सूर्य की रोशनी महाद्वीपीय निमग्न तट के छिछले जल में से होकर समुद्र तली तक पहुँचकर सूक्ष्म पौधों और जीवों की वृद्धि के लिए अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करती है। इन सूक्ष्म जीवों को प्लवक कहते हैं, ये प्लवक मछलियों का आहार हैं। महाद्वीपीय निमग्न तट मछलियों तथा खनिजों जिसमें रेत और कंकड़ पत्थर भी शामिल हैं, के स्रोत हैं। विश्व भर में प्राप्त अधिकतर खनिज तेल एवं प्राकृतिक गैस इन्हीं महाद्वीपीय निमग्न तटों से प्राप्त होती हैं। बम्बई हाई तथा गोदावरी बेसिन में खनिज तेल की नवीन खोज, खनिज तेल के लिए अपतट बेधन के उदाहरण हैं। प्रवाल भित्ति और जैव खंडज पदार्थ महाद्वीपीय निमग्न तटों पर सामान्य रूप से पाये जाते हैं।

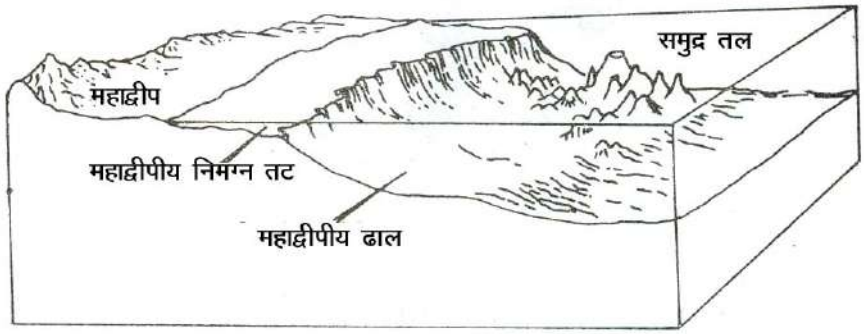

चित्र 8.3 अंतः समुद्री केनियन

महाद्वीपीय निमग्न तट की एक उल्लेखनीय विशेषता इसमें पाई जाने वाली अंतः समुद्री केनियन (महाखड्ड) हैं, जो महाद्वीपीय ढाल तक चली जाती हैं। समुद्र तल में बनी हुई ये केनियन तीव्र ढाल वाली घाटियों के समान हैं। गोदावरी नदी के मुहाने के सामने गोदावरी केनियन 502 मीटर गहरी है।

अंतः समुद्री केनियन के निर्माण का एक कारण समुद्री जल के नीचे होने वाले भूस्खलन है। महाद्वीपीय निमग्न तट पर इकट्ठा होने वाला तलछट तूफान या भूकम्प द्वारा हटा दिया जाता है। हटते हुए इन तलछटों के बल के कारण ढाल कटते रहते हैं और इसके परिणामस्वरूप अंतः समुद्री केनियन बन जाते है। महाद्वीपीय निमग्न तट साधारणतः उन राष्ट्रों की समुद्री जल सीमा बनाते हैं, जिनसे वे लगे हुए होते हैं।

- महाद्वीपीय निमग्न तट महाद्वीपों का वह जलमग्न भाग है जो तटरेखा से समुद्र की ओर धीरे–धीरे नीचा होता चला जाता है।
- अंतः समुद्री केनियन तीव्र ढाल वाली घाटियाँ हैं जिनका निर्माण महाद्वीपीय निमग्न तट पर कटाव से होता है तथा जो महाद्वीपीय ढाल की ओर चली जाती है।

(ख) महाद्वीपीय ढाल

महाद्वीपीय सीमांत का वह निरंतर ढलवा भाग जो कि महाद्वीपीय निमग्न तट से सागर की ओर वितल मैदान तक विस्तृत होता है, महाद्वीपीय ढाल के रूप में जाना जाता है। यह 2.5^0 के ढाल द्वारा वर्गीकृत किया जाता है। इसकी गहराई 180 मीटर से 360 मीटर तक होती है। कुछ स्थानों पर, जैसे फिलिपीन्स के तट के पास, महाद्वीपीय ढाल बहुत गहरा है।

महाद्वीपीय ढाल में मुख्यतः तीव्र ढाल और तट से दूरी के बढ़ जाने के कारण तलछट निक्षेप बहुत कम मिलता है। महाद्वीपीय निमग्न तट की तुलना में यहाँ समुद्री जीव भी बहुत कम मिलते हैं।

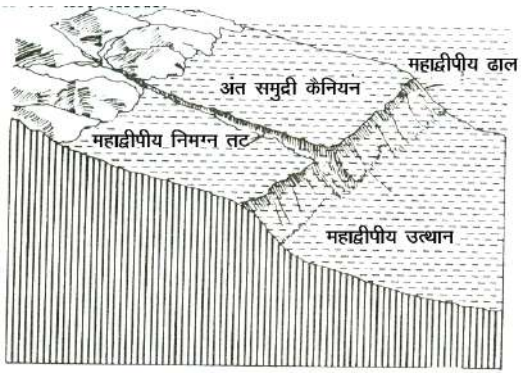

चित्र 8.4 महाद्वीपीय निमग्न तट और ढाल

महाद्वीपीय ढाल के तल के साथ–साथ तलछट के निक्षेप होते हैं। तलछट के निक्षेपों का यह क्षेत्र महाद्वीपीय उत्थान का निर्माण करता है। कुछ क्षेत्रों में यह उत्थान बहुत ही संकरा होता है, किन्तु कहीं–कहीं इसकी चौड़ाई 600 किलोमीटर तक जाती है।

- समुद्री अधस्तल का वह तीव्र ढाल वाला भाग जो वितल मैदान और महाद्वीपीय निमग्न तट के बीच है, महाद्वीपीय ढाल कहलाता है।
- महाद्वीपीय ढाल के तल के साथ–साथ जमा हुए तलछट का क्षेत्र महाद्वीपीय उत्थान कहलाता है।

(ग) वितल मैदान

वितल मैदान गहरे महासागरीय तल के अत्यन्त समतल तथा आकृति विहीन मैदान हैं। संभवतः यह विश्व के सबसे समतल क्षेत्र हैं। वितल मैदान, 300 से 600 मीटर की

टिप्पणी

गहराई पर महासागरीय तल के एक विस्तृत भाग मे फैले हुए है। यह पहले लक्षणहीन मैदान माने जाते थे, परन्तु आधुनिक यंत्रों से पता चला है कि ये भी उसी प्रकार से विषम हैं जिस प्रकार से महाद्वीपीय मैदान धरातल पर है। इनमें व्यापक रूप से समुद्री पठार, पहाड़ियाँ, गाईआट और समुद्री पर्वत हैं।

वितल मैदान का तल तलछट से भरा हुआ है। महाद्वीपों के निकटवर्ती वितल मैदान अधिकांशतः स्थल खंड से आए तलछट से भरे हुए हैं। लेकिन जिन समुद्रों में जीवों की अत्यधिक वृद्वि होती है उन पर तलछट की मोटी परत होती है और इस तलछट का निर्माण समुद्री जीवों के अस्थि–पंजरों से होता है। इन तलछटों को ऊज या सिंधुपंक कहते हैं। कुछ खुले समुद्रों में पर्याप्त मात्रा में जीव जन्तु नहीं होते इसलिए उनके अधस्तल पर ऊज नहीं बनता। इनमें जो तलछट भरा होता है, उसे लाल सिंधुपंक कहते हैं। इस **लाल सिंधुपंक** का निर्माण ज्वालामुखी के कारण होता है या पवन तथा नदियों के द्वारा लाए गए छोटे–छोटे कणों से होता है।

(i) अंतः समुद्री पर्वत श्रेणी या कटक

महाद्वीपों पर विद्यमान विशाल पर्वत पद्धति समुद्र के जल के नीचे भी विद्यमान है। इन महासागरीय पर्वतों को **अंतः समुद्री पर्वत** श्रेणी कहते है। ये रेखीय मेखला के समान हैं, जो महासागरों के मध्य स्थित हैं। अतः इन्हें **मध्य महासागरीय पर्वत** श्रेणी भी कहते हैं। सभी मध्य महासागरीय पर्वत श्रेणी एक विश्वव्यापी व्यवस्था का निर्माण करती हैं ये एक महासागर से दूसरे महासागर के साथ परस्पर जुड़ी हुई हैं। ये पर्वत श्रेणियाँ कहीं–कहीं भ्रंशों द्वारा कट जाती हैं, जहाँ प्रायः भूकंप आते हैं। महासागरीय पर्वत श्रेणियों में ज्वालामुखी आम बात हैं, जिससे कई प्रकार के समुद्री धरातलीय लक्षणों का निर्माण होता है।

मध्यवर्ती अटलांटिक पर्वत श्रेणी सबसे बड़ी और अविच्छिन्न जलमग्न पर्वत श्रेणी है जो अटलांटिक महासागर के मध्य में उत्तर से दक्षिण तक जाती है। इसकी आकृति अंग्रेजी के अक्षर 'एस' के समान है। कुछ स्थानों पर इसकी चोटियाँ जल की सतह के ऊपर आ जाती हैं और द्वीपों का निर्माण करती हैं। बहुत से द्वीपों का उद्‌गम ज्वालामुखी के कारण होता है। पूर्वी प्रशांत महासागरीय कटक और कार्लबर्ग कटक कुछ महत्वपूर्ण अंतः समुद्री पर्वत श्रेणियाँ हैं। (देखिए चित्र 8.5)

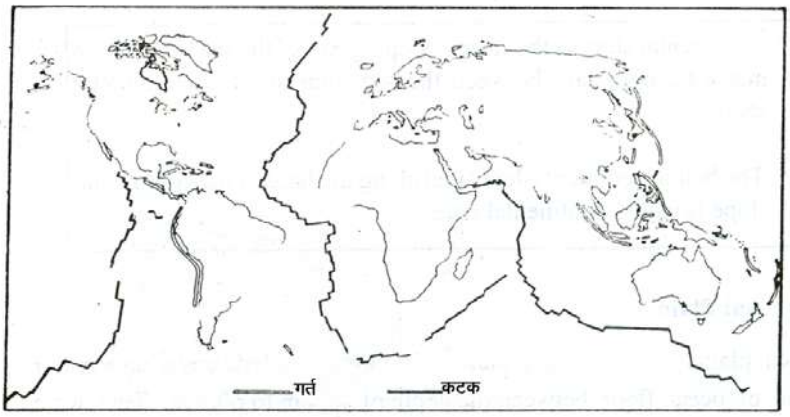

चित्र 8.5 अंतः समुद्री कटक एवं गर्तों की विश्वव्यापी व्यवस्था

(ii) समुद्री टीला और गाईऑट

समस्त समुद्री अधस्तल के ऊपर बिखरे हुए हजारों जलमग्न ज्वालामुखी हैं। इनके शीर्ष नुकीले होते हैं। इन्हें समुद्री टीला कहते हैं। कभी–कभी ये समुद्री टीले इक्के–दुक्के द्वीपों के रूप में समुद्री अधस्तल से ऊपर उठ जाते हैं। हवाई और ताहिती द्वीप ज्वालामुखी की अनावृत चोटियाँ हैं। समुद्रतल के ऊपर उठने वाले ज्वालामुखी की चोटी जब अपरदन द्वारा चौरस हो जाती है और पानी से ढक जाती है तो उसे **गाईऑट (निमग्न द्वीप)** कहते हैं।

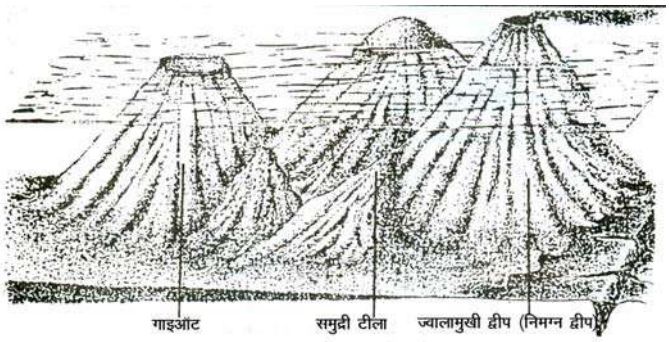

चित्र 8.6 समुद्री टीला और गाईऑट (निमग्न द्वीप)

(घ) महासागरीय गभीर

महासागरीय गभीर अधस्तल महासागर का सबसे गहरा भाग होता है। महासागरीय अधस्तल पर लम्बी, तीव्र ढाल वाली, संकरी और चौरस तल की खाइयाँ होती हैं। इन्हें सामान्यतः अंतः समुद्री गर्त कहते हैं। ये गर्त हमेशा महासागरों के बेसिनों के मध्य में नहीं होते जैसा कि सामान्यतः विश्वास किया जाता है; बल्कि उन महाद्वीपों के अत्यधिक निकट या सामानान्तर होते हैं जहाँ वलित पर्वत सीमा बनाते हैं। ये गर्त प्रायः ज्वालामुखी और भूकम्पीय हलचल वाले क्षेत्रों के निकट पाए जाते हैं। बड़े भूकम्पों और सुनामी की उत्पत्ति यहीं होती है। ये गर्त सभी प्रमुख महासागरों में पाए जाते हैं। प्रशान्त महासागर में इनकी संख्या सबसे अधिक है। प्रशान्त महासागर में स्थित मेरियाना गर्त विश्व में ज्ञात गर्तों में सबसे गहरा है। यह गर्त या खाई इतनी गहरी है कि इसमें अगर विश्व के सर्वोच्च पर्वत शिखर माऊँट एवरेस्ट को रख दें तब भी इसकी चोटी के ऊपर कुछ किलोमीटर समुद्री जल रहेगा।

- वितल मैदान विशाल लहराते हुए मैदान हैं जिनमें कई विषमताएँ मिलती है, जैसे समुद्री पठार, पहाड़ियाँ, गाईऑट और समुद्री पर्वत।
- महासागरों में लम्बी, संकरी तथा तीव्र ढाल वाली और चौरस तल की खाइयों को महासागरीय गभीर कहते हैं।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 8.1

1. रिक्त स्थान भरिए :–

(i) चार प्रमुख महासागर हैं –

(क) _____ (ख) _____

(ग) _____ (घ) _____

(ii) महासागर बेसिन के चार मुख्य उपखंड –

(क) _____ (ख) _____

(ग) _____ (घ) _____

(iii) महाद्वीप का महासागरीय जल से जलमग्न खंड कहलाता है –

_____

(iv) वितल मैदान पर निक्षेपित दो मुख्य तलछट हैं –

(क) _____ (ख) _____

(v) महासागरीय अधस्तल पर बनी लंबी, संकरी तथा तीव्र ढाल वाल खाइयाँ कहलाती हैं

_____

(vi) नुकीले शीर्ष वाला जलमग्न ज्वालामुखी कहलाता है–

_____

(vii) प्रशान्त महासागर में संसार का सबसे गहरा गर्त है–

_____

2. सही उत्तर पर (√) निशान लगाइये :–

(i) महाद्वीपीय निमग्न तट और वितल मैदान के बीच स्थित है –

(क) महाद्वीपीय ढाल (ख) वितल मैदान (ग) गर्त (घ) समुद्री टीले।

(ii) विश्व का सर्वोत्तम मत्स्य ग्रहण क्षेत्र है –

(क) महाद्वीपीय निमग्न तट (ख) वितल मैदान

(ग) अंतः समुद्री गर्त (घ) महासागरीय गभीर।

3. सही कथन पर (√) निशान लगाइये –

(i) चौरस शिखर वाला जलमग्न ज्वालामुखी समुद्री टीला कहलाता है।

(ii) प्राणहीन वस्तुओं से ऊज बनता है।

(iii) अंतः समुद्री पर्वत श्रेणी पर्वतों की अविच्छिन्न कड़ी है।

8.3 महासागरीय जल की विशेषताएँ

तापमान और लवणता महासागरीय जल के दो ऐसे गुण हैं जो विशाल जलराशियों के संचरण को प्रभावित करते हैं। अतः महासागरीय जल के परिसंचरण के अध्ययन में महासारीय जल के तापमान, लवणता तथा घनत्व का विशेष महत्व है।

(i) महासागरीय जल का तापमान

महासागरीय जल के तापमान में भी स्थलीय धरातल के समान विविधता पाई जाती है। विभिन्न अक्षांशों पर विभिन्न ऋतुओं में प्राप्त ऊर्जा की मात्रा में विविधता सूर्यातप पर निर्भर करती है। सामान्यतः विषुवत वृत्त के समीप जल सबसे अधिक गर्म रहता और इसका तापमान ध्रुवों की ओर क्रमशः घटता जाता है। उष्ण कटिबन्धीय सागरों में वार्षिक औसत तापमान लगभग 27^0 सेल्सियस या इससे कुछ अधिक होता है, लेकिन ध्रुवों की ओर यह घटता जाता है। ध्रुवों पर वार्षिक औसत तापमान लगभग -1.8^0 सेल्सियस पाया जाता है। ध्रुवों की ओर महासागरीय जल के तापमान का घटना अथवा विषुवत वृत्त की ओर इसके तापमान का बढ़ना एक समान नहीं होता; क्योंकि उष्ण कटिबन्धीय सागरों से गर्म जल उच्च अक्षांशों की ओर चला जाता है अथवा इसके विपरीत हो जाता है। इसके फलस्वरूप समुद्री जल के स्थानीय तापमान में वृद्धि या कमी हो जाती है। कभी–कभी ठण्डा निम्न स्तरीय जल ऊपर उठने से भी उष्ण और उपोष्ण कटिबन्धीय सागर के स्थानीय जल के तापमान को कम कर देता है।

सबसे अधिक तापमान स्थल से घिरे हुए उष्ण कटिबन्धीय सागरों में होता है, उदाहरण के लिए लाल सागर। आर्कटिक महासागर और अंटार्कटिक महासागर का जल इतना ठंडा होता है कि सैकड़ों मीटर की गहराई तक वह स्थाई रूप से जमा रहता है। ग्रीष्म ऋतु में बर्फ बड़े–बड़े हिस्सों में टूटकर हिमखंड़ों के रूप में आस–पास के सागरों में तैरने लगते हैं। इनके फलस्वरूप आस–पास के उन हिममुक्त सागरों के सतही जल का भी तापमान घट जाता है।

तापमान के उर्ध्वाधर वितरण में भी विविधता पाई जाती है। गहराई बढ़ने के साथ–साथ तापमान घटता जाता है। यह इसलिए होता है; क्योंकि महासागरीय जल का ऊपरी भाग अधिकतम सूर्यातप प्राप्त करता है। सूर्य की किरणें जैसे–जैसे अन्दर प्रवेश करती हैं, प्रकीर्णन, परावर्तन तथा विसरण के कारण उनकी शक्ति घटती जाती है। हालांकि तापमान की यह ह्रास दर सभी गहराइयों पर एक समान नहीं होती। लगभग 100 मीटर की गहराई तक जल का तापमान लगभग सतह के तापमान के बराबर रहता है। जबकि सतह से 1800 मीटर की गहराई पर तापमान लगभ 15^0 सेल्सियस से घटकर 2^0 सेल्सियस रह जाता है। 1800 मीटर से 4000 मीटर की गहराई पर तापमान घटकर 2^0 सेल्सियस से 1.6^0 सेल्सियस रह जाता है।

टिप्पणी

महासागरीय जल के गर्म होने की मुख्य प्रक्रियाएँ हैं –

(1) सौर विकिरण का अवशोषण,

(2) पृथ्वी के आंतरिक भाग से महासागरीय वितल द्वारा ऊष्मा का संवहन।

महासागरीय जल के ठंडे होने की मुख्य प्रक्रियाएँ हैं –

(1) समुद्री सतह से ऊष्मा का विकिरण,

(2) वाष्पीकरण।

(ii) महासागरीय जल की लवणता

लवणता महासागरीय जल का एक विशेष गुण है। जब हम लवणता की बात करते हैं तो हमारा संकेत केवल साधारण नमक या सोडियम क्लोराइड से ही नहीं होता, बल्कि दूसरे कई अन्य लवणों से भी होता है। इन लवणों में प्रमुख हैं सोडियम क्लोराइड तथा मेग्नीशियम क्लोराइड जो महासागरीय जल में क्रमशः 77.7 प्रतिशत एवं 10.9 प्रतिशत पाए जाते हैं। महासागरीय जल के स्वतंत्र परिसंचरण के कारण इसमें विभिन्न लवणों का सापेक्षिक अनुपात सभी महासागरों में और यहाँ तक कि काफी गहराई पर भी लगभग स्थिर रहता है। लेकिन महासागरीय जल की लवणता में अलग अलग सागरों में अवश्य अन्तर होता है।

अनेक रासायानिक यौगिकों के जल में घुल जाने से ही महासागरीय जल में लवणता उत्पन्न होती है। 1000 ग्राम समुद्री जल के वाष्पीकृत हो जाने के बाद बचे हुए ठोस पदार्थ का भार ग्राम में लवणता के रूप में परिभाषित किया जाता है। अगर उस ठोस पदार्थ का भार 35 ग्राम है (और यह सामान्यतः इस संख्या के निकट ही होता है।) तो लवणता को व्यक्त किया जायेगा 35‰ (35 ग्राम प्रति हजार ग्राम) अर्थात प्रति 1000 ग्राम समुद्री जल में औसत लवणता 35 ग्राम होगी। लवणता को प्रतिशत में व्यक्त न करके प्रति हजार में व्यक्त करते हैं।

बाल्टिक सागर में, जहाँ नदियों का ताजा जल सागर में गिरता है, वहाँ लवणता की मात्रा 7‰ है और यह कभी–कभी 2‰ तक गिर जाती है। लेकिन वाष्पीकरण और शुष्क जलवायु के कारण लाल सागर में लवणता 41 से 42‰ तक होती है। स्थल से घिरे हुए सागरों जैसे केस्पियन सागर और जोर्डन के मृत सागर में लवणता बहुत अधिक क्रमशः 180‰ तथा 250‰ तक होती है।

विभिन्न सागरों एवं महासागरों में लवणता में अन्तर के मुख्य कारण हैं –

(i) वाष्पीकरण की दर,

(ii) नदियों तथा हिमखंडों के फलस्वरूप ताजे जल की आपूर्ति,

(iii) महासागरीय जलों का आपस में मिलना।

पाठगत प्रश्न 8.2

(1) लवणता की परिभाषा दीजिए।

_____

_____

(2) यदि ग्रेट साल्ट झील के 1000 ग्राम जल के वाष्पीकरण के पश्चात 250 ग्राम लवण शेष बचे तो इस झील के जल की लवणता कितनी होगी?

_____

(3) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

(क) विषुवतीय प्रदेश में सागरीय सतह पर सौर विकिरण _____ होता है जबकि ध्रुवीय प्रदेश में _____ होता है।

(ख) समुद्री जल की औसत लवणता _____ है।

(ग) स्थल से घिरे हुए समुद्रों में लवणता _____ होती है।

8.4 महासागरीय जल में गति

महासागरों का जल सदा गतिशील रहता है। महासागरीय जल में मुख्यतः तीन प्रकार की गतियाँ होती हैं – तरंगे, ज्वार भाटा तथा धाराएं।

(I) तरंगे

तरंगें जल तल के ऊपर उठने व नीचे गिरने के कारण होने वाली दोलनी गति है।

वास्तव में तरंग में प्रत्येक जलकण की गति गोलाकार होती है। तरंगों की तुलना गेहूँ के लहराते हुए खेतों से की जा सकती है। जब किसी खेत में तेज पवन बहती है तो तरंगों जैसी गति उसकी सतह पर दिखाई देती है। लेकिन तरंग के चले जाने के बाद गेहूँ की बालियाँ अपनी मूल स्थिति में लौट आती हैं। ठीक वैसे ही तरंगों में भी जल कण तरंग के चले जाने के बाद अपनी मूल स्थिति में लौट आते हैं।

तरंग के दो मुख्य भाग होते हैं। तरंग के ऊपरी उठे भाग को **तरंग-श्रृंग** कहते हैं। दो तरंग–श्रृंगों के बीच के निचले भाग को **तरंग-गर्त** कहते हैं। तरंग–श्रृंग तथा तरंग–गर्त के मध्य की ऊर्ध्वाधर दूरी को **तरंग की ऊँचाई** कहते हैं। दो तरंग–श्रृंगों अथवा दो तरंग–गर्तों के बीच की क्षैतिज दूरी को **तरंग-दैर्ध्य** या तरंग की लम्बाई कहते हैं। किसी भी निश्चित स्थान पर दो लगातार श्रृंगों के गुजरने के बीच की अवधि को तरंग

टिप्पणी

का **आवर्त-काल** कहते हैं। तेज गति वाली तरंगों का आवर्त–काल छोटा होता है, जबकि धीमी गति वाली तरंगों का आवर्त–काल लम्बा होता है (चित्र 8.7)।

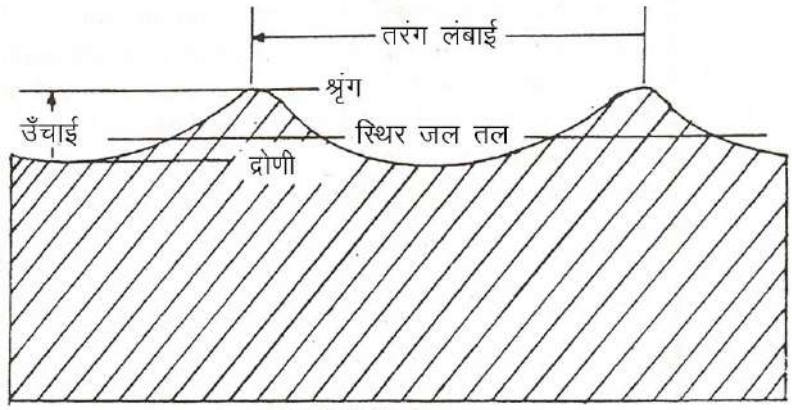

चित्र 8.7 तरंग के घटक

तरंगों के आकार और बल तीन कारकों पर निर्भर करते हैं :

(i) पवन की गति,

(ii) पवनो के बहने की अवधि,

(iii) खुले समुद्र में पवन के निर्विघ्न बहने की दूरी।

तरंगे अपरदन का एक मुख्य कारण हैं। भूकम्प, तूफान तथा ज्वालामुखी से उत्पन्न तरंगें प्रलयकारी होती हैं तथा समुद्रतटीय क्षेत्रों में बहुत विनाश करती हैं। ये तरंगें ऊर्जा के स्रोत भी है। इसलिए इस ऊर्जा का उपयोग करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

- महासागरीय जल की दोलन गति, जिसमें जल–कण गोलाकार गति में चलते हैं, को ही तरंग कहा जाता है। जल–कण तरंग–श्रृंग पर ऊपर की ओर उठते हैं, आगे बढ़ते हैं, नीचे की ओर आते हुए तरंग–गर्त में पहुँच जाते हैं। यह प्रक्रिया श्रृंखलाबद्ध होती है।

(II) ज्वार-भाटा

समस्त विश्व में समुद्र तल के साथ–साथ समुद्री जल विभिन्न स्थानों पर विभिन्न दर से ऊपर उठता है। समुद्री जल की सतह में यह परिवर्तन घंटे दर घंटे तथा दिन प्रतिदिन होता है। उठते हुए समुद्री जलस्तर के समय, धरातल की ओर बढ़ते हुए जल के प्रवाह को ज्वार या ज्वारीय बाढ़ कहते हैं। कुछ घटों के पश्चात गिरते हुए समुद्री जलस्तर के समय, ज्वारीय जल वापिस चला जाता है। यह भाटा कहलाता है। ज्वारीय बाढ़ उच्च ज्वार है तथा भाटा निम्न ज्वार है। वास्तव में ज्वार–भाटा सबसे बड़ी तरंगे हैं जो महासागरीय जल को गतिशील रखती हैं। नियमित रूप से प्रतिदिन एक निश्चित अन्तराल पर दो बार समुद्री जल ऊपर उठता है और दो बार नीचे बैठता है। महीने में

दो बार उच्च ज्वार या ज्वारीय बाढ़ औसत से ऊँचा होता है और भाटा नीचा होता है। ठीक इसी प्रकार से महीने में दो बार ज्वारीय बाढ़ औसत से नीचा होता है और भाटा नीचा होता है।

दो उच्च ज्वारों के बीच अथवा दो निम्न ज्वारों के बीच नियमित अन्तर 12 घंटे 25 मिनट का होता है – न कि ठीक 12 घंटे का। दिन (24 घंटें में) में उच्च ज्वार पिछले दिन की तुलना में 51 मिनट देर से आता है। यह इसलिए होता है; क्योंकि प्रतिदिन चन्द्रमा के निकलने और छिपने में 51 मिनट का विलम्ब हो जाता है। प्रत्येक दिन घूर्णन करती हुई पृथ्वी को उसी देशान्तर को ठीक चन्द्रमा के नीचे लाने में 24 घन्टे 50 मिनट लगते हैं। किसी तट पर ज्वार के आने का समय निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगा।

उच्च ज्वार 6.00 पूर्वाह्न

निम्न ज्वार 12.13 अपराह्न

उच्च ज्वार 06.25 अपराह्न

निम्न ज्वार 12.38 पूर्वाह्न

उच्च ज्वार 06.51 पूर्वाह्न

ज्वार के समय तथा आकार में परिवर्तन के लिए निम्न कारक उत्तरदायी हैं–

1. सूर्य, चन्द्रमा तथा पृथ्वी की एक दूसरे के संबंध में स्थिति शायद कभी भी एक सरल रेखा में होती हो।
2. पृथ्वी से सूर्य तथा चन्द्रमा की दूरी स्थिर नहीं होती।
3. हमारा ग्लोब पूरी तरह से जल से ढका हुआ नहीं है।
4. तट की आकृति ज्वार के आने में मदद या बाधा बन सकती है।

इन सबके बावजूद किसी भी तट पर ज्वार एक दूसरे के बाद बड़ी नियमितता के साथ उत्पन्न होते हैं। वे कौन सी शक्तियाँ हैं जो ज्वार–भाटा उत्पन्न करती हैं? पृथ्वी आकर्षित करती है और सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहीय समूहों से प्रभावित होती है। यह शक्ति गुरूत्वाकर्षण है। यह सूर्य, चन्द्रमा तथा पृथ्वी के बीच कार्य करती है। यह महासागरीय जल को गतिशील करके उसमें ज्वारीय धाराएँ उत्पन्न कर देती है। ज्वार–भाटा इस प्रकार गुरूत्वाकर्षण बल के प्रभाव का उदाहरण हैं।

चन्द्रमा और सूर्य दोनों अपने गुरूत्वाकर्षण बल से पृथ्वी को प्रभावित करते हैं। सूर्य चन्द्रमा से आकार में बड़ा होते हुए भी वह चन्द्रमा की तुलना में पृथ्वी से अधिक दूर है। इस कारण चन्द्रमा की गुरूत्वाकर्षण शक्ति सूर्य की तुलना में पृथ्वी पर अधिक प्रभावशाली है। जल तरल होने के कारण चलायमान है। इसलिए पृथ्वी का पानी वाला भाग जब चन्द्रमा के सामने पड़ता है तो चन्द्रमा की गुरूत्वाकर्षण शक्ति के कारण इसमें

टिप्पणी

जवारीय उभार उत्पन्न हो जाता है। ऐसा ही एक निम्न ज्वारीय उभार पृथ्वी के दूसरी ओर चन्द्रमा से दूर होता है। यह उभार काफी नीचा होता है; क्योंकि यहाँ पर चन्द्रमा का आकर्षण सबसे कम होता है।

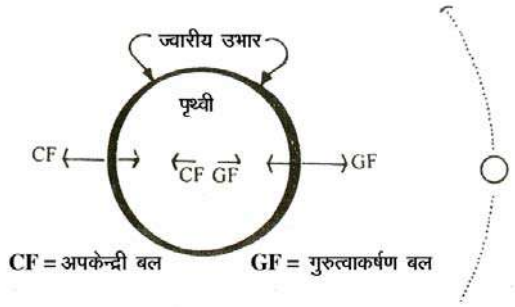

चित्र 8.8 ज्वार-भाटा का निर्माण

- किसी निश्चित स्थान पर महासागरीय जल के ऊपर उठने और नीचे उतरने को क्रमशः ज्वार–भाटा कहते हैं।
- दो उच्च ज्वारों अथवा दो निम्न ज्वारों के बीच का अन्तर ठीक 12 घंटे 25 मिनट का होता है।
- ज्वार–भाटा चन्द्रमा तथा सूर्य के पृथ्वी पर गुरूत्वाकर्षण बल द्वारा खिंचाव के कारण उत्पन्न होते हैं।

(क) वृहत् और लघु ज्वार

चन्द्रमा पृथ्वी के अधिक पास है, इसलिए यह सूर्य की अपेक्षा पृथ्वी पर दुगना गुरूत्वाकर्षण बल डालता है। अमावस्या तथा पूर्णिमा के दिन, जब सूर्य तथा चन्द्रमा एक सीधी रेखा में होते हैं, तो दोनों ही एक ही समय में तथा एक ही दिशा में अपनी गुरूत्वाकर्षण शक्ति का प्रभाव डालते हैं। इनकी संयुक्त शक्ति से जल का उतार–चढ़ाव साधारण उतार–चढ़ाव की अपेक्षा अधिक होता है। इसे **वृहत् ज्वार-भाटा** कहते हैं।

शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष की अष्ठमी के दिन सूर्य और चन्द्रमा की गुरूत्वाकर्षण शक्ति समकोण पर होती है। इस स्थिति में दोनों का खिंचाव एक ही दिशा में न होकर एक दूसरे के विरुद्ध होता है। दूसरे शब्दों में सूर्य तथा चन्द्रमा एक दूसरे की गुरूत्वाकर्षण शक्ति को कम कर देते हैं। इसके परिणामस्वरूप इन दोनों दिनों में जल का उतार–चढ़ाव साधारण उतार–चढ़ाव की अपेक्षा कम होता है। इसे लघु **ज्वार-भाटा** कहते हैं।

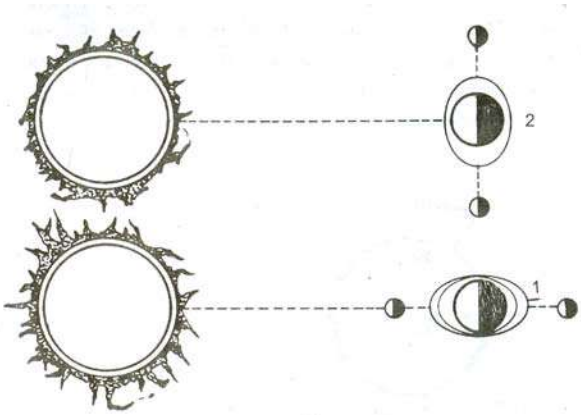

चित्र 8.9 वृहत तथा लघु ज्वार-भाटा

(ख) ज्वार-भाटा के प्रभाव

ज्वार–भाटा उत्पन्न होना एक विश्वव्यापी घटना है। ज्वार–भाटा मनुष्य के लिए ऐतिहासिक काल से बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। ज्वार–भाटा पत्तन को समुद्र से जोड़ते हैं। विश्व के कुछ प्रमुख पत्तन जैसे टेम्स नदी पर लन्दन तथा हुगली नदी पर कोलकाता समुद्र तट से दूर स्थित हैं। ज्वारीय जल इन नदियों में आकर इनमें निक्षेपित तलछट को साफ कर देता है और डेल्टा के विकास को धीमा कर देता है। यह नदियों के ऊपरी मार्ग को भी गहरा कर देता है, जिससे समुद्री जहाज सुरक्षित पत्तन तक पहुँच जाते हैं। कुछ स्थानों पर ज्वारीय बल का प्रयोग विद्युत उत्पादन के स्रोत के रूप में भी किया गया है।

- ज्वार–भाटा नदियों को नौसंचालन के योग्य बनाता है, अवसाद को बहा ले जाता है, डेल्टा निर्माण की प्रक्रिया को धीमा करता है और विद्युत उत्पादन का भी स्रोत है।

पाठगत प्रश्न 8.3

1. नीचे दिए हुए कथनों को सही विकल्प चुन कर पूरा करो–

   (i) समुद्र के जलीय धरातल पर अधिकतर तरंगों का मुख्य स्रोत _____ है।

   (क) पवन (ख) ज्वार–भाटा (ग) भूकम्प (घ) घनत्व में अन्तर

   (ii) किसी भी निश्चित स्थान पर दो लगातार तरंग–श्रृंगों के गुजरने के बीच की अवधि को तरंग की _____ कहते हैं।

   (क) ऊँचाई (ख) दैर्ध्य (ग) समय (घ) आवर्त–काल

टिप्पणी

(iii) उच्च ज्वार और निम्न ज्वार के बीच का अन्तराल लगभग _____ का होता है।

(क) 6 घंटा 13 मिनट (ख) 12 घंटे (ग) 24 घंटे
(घ) 23 घंटे 25 मिनट

2. ज्वार–भाटा की परिभाषा दीजिए –

_____

_____

3. तरंग–दैर्ध्य की परिभाषा लिखिए –

_____

_____

4. यदि कसी दिन पहला उच्च ज्वार सुबह 9 बजे आता है, तो दूसरे दिन उच्च ज्वार कितने बजे आयेगा?

_____

_____

(iii) धाराएँ

महासागरीय धारा एक सुस्पष्ट और निश्चित दिशा में काफी लंबी दूरी तक क्षैतिज रूप से बहने वाली महासागरीय जल की एक राशि को कहते हैं। ये नियमित रूप से समुद्र में बहती हैं। धारा की औसत गति 3.2 किलोमीटर से 10 किलोमीटर प्रति घंटा होती है। अधिक गति वाली महासागरीय धाराओं को **स्ट्रीम** कहते हैं तथा कम गति वाली धाराओं को **ड्रिफ्ट** कहते हैं।

महासागरीय जल धाराओं को मोटे तौर पर दो वर्गों में बाँटा जा सकता है–

1. वे जल धाराएँ जो विषुवतीय क्षेत्रों से ध्रुवों की ओर बहती हैं तथा जिनका सतही तापमान अधिक होता है, **गर्म जल धाराएं** कहलाती हैं।

2. वे जल धाराएँ जो ध्रुवीय क्षेत्र से विषुवतीय क्षेत्रों की ओर बहती हैं तथा जिनका सतही तापमान कम होता है, **ठंडी जल धाराएं** कहलाती हैं।

महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति तथा उनके परिसंचरण की प्रकृति निम्नलिखित कारकों पर निर्भर करती हैं–

(i) घनत्व में अन्तर

समुद्री जल का घनत्व हर स्थान पर अलग–अलग होता है। समुद्री जल का यह घनत्व

उसके तापमान और लवणता के औसत पर निर्भर करता है। जब जल का तापमान अधिक होता है तो उसका घनत्व कम होता है। इसलिए विषुवतीय क्षेत्र का कम घनत्व वाला जल ध्रुवों की ओर बहता है और ध्रुवीय प्रदेशों का अधिक घनत्व वाला ठंडा जल विषुवतीय क्षेत्रों की ओर बहता है। इस प्रकार से ठंडी जल धाराएँ हमेशा ध्रुवीय क्षेत्रों से विषुवतीय क्षेत्रों की ओर तथा गर्म जल धाराएँ विषुवतीय क्षेत्रों से ध्रुवीय प्रदेशों की ओर बहती है।

महासागरीय जल की लवणता में अन्तर से भी धाराएं उत्पन्न होती हैं। यदि जल में लवणता अधिक है, तो उस जल का घनत्व बढ़ जाता है तथा जल नीचे बैठ जाता है। इसलिए कम लवणता वाला जल अधिक लवणता वाले जल के ऊपर बहता है, जबकि उसके नीचे अधिक लवणता वाला जल कम घनत्व वाले जल की ओर बहता है। लवणता में अन्तर से बनने वाली जल धाराएं कम लवणता वाले अटलांटिक महासागर तथा अधिक लवणता वाले भूमध्य सागर के बीच पायी जाती है।

- जल का तापमान जितना अधिक होता है, उसका घनत्व उतना ही कम होता है।
- जल में जितनी अधिक लवणता होगी, उसका घनत्व भी उतना ही अधिक होगा।

(ii) पृथ्वी की घूर्णन गति

हम पहले एक पाठ में पढ़ चुके हैं कि पृथ्वी की घूर्णन गति उत्तरी गोलार्द्ध में हवा को दाईं ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में हवा को बांईं ओर मोड़ देती है। इसी प्रकार महासागरीय जल भी कोरिओलिस बल से प्रभावित होता है और धाराएँ फैरेल के नियम का अनुसरण करती हैं। अतः उत्तरी गोलार्द्ध में सभी महासागरीय धाराएँ दक्षिणावर्त दिशा या घड़ी की सुइयों के घूमने की दिशा में बहती हैं और दक्षिणी गोलार्द्ध में ये धाराएँ वामावर्त दिशा या घड़ी की सुइयों के घूमने की उल्टी दिशा में बहती हैं।

(iii) भूमंडलीय पवनें

भूमंडलीय पवनें जैसे व्यापारिक पवनें एवं पछुआ पवनें, महासागरीय जल को लगातार प्रवाहित करती रहती हैं। अगर हम भूमंडलीय पवनों की तुलना महासागरीय जल धाराओं से करें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि जल धाराएँ भूमंडलीय पवनों की मुख्य दिशा का अनुसरण करती हैं। निम्न अक्षांशों वाले क्षेत्रों में अर्थात व्यापारिक पवनों के क्षेत्र में जल धाराओं के प्रवाह की दिशा मानसूनी पवनों की दिशा में परिवर्तन के साथ बदल जाती है।

8.5 अटलांटिक महासागर की धाराएँ

विषुवत रेखा के उत्तर व दक्षिण दिशा में, पश्चिम की ओर प्रवाहित होने वाली दो धाराएँ हैं **उत्तर एवं दक्षिण विषुवतीय धारा**। इन दोनों विषुवतीय धाराओं के बीच पश्चिम से

टिप्पणी

पूर्व की ओर **विरूद्ध विषुवतीय धारा** बहती है। (चित्र संख्या 8.10 में देखिए) यह विरूद्ध धारा उत्तरी तथा दक्षिणी विषुवतीय धाराओं द्वारा महासागर के पूर्व में हटाए गये जल की आपूर्ति करती है।

ब्राजील के साओ रौक अन्तरीप के निकट दक्षिणी विषुवतीय धारा दो शाखाओं में बँट जाती है। इसकी उत्तरी शाखा उत्तरी विषुवतीय धारा में मिल जाती है। इस सम्मिलित धारा का कुछ भाग कैरेबियन सागर तथा मैक्सिको की खाड़ी में प्रवेश करता है तथा शेष भाग वेस्ट इंडीज द्वीप समूह के पूर्वी किनारे पर **अन्टाईल्स धारा** के रूप में बहती हुई गुजरती है। जो शाखा मेक्सिको की खाड़ी में प्रवेश करती है, वह फ्लोरिडा जलडमरूमध्य से निकलकर अन्टाईल्स की धारा में मिल जाती है। यह सम्मिलित धारा संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिणी पूर्वी तट के सहारे बहने लगती है। इसे हटेरस अन्तरीप तथा **फ्लोरिडा धारा** कहते हैं। हटेरस अन्तरीप से न्यू फाउण्डलैंड के समीप स्थित ग्रेंड बैंक तक इस धारा को **गल्फ स्ट्रीम** कहते हैं। ग्रेंड बैंक से गल्फ स्ट्रीम पछुआ पवनों और पृथ्वी की घूर्णन गति के सम्मिलित प्रभाव के कारण पूर्व की ओर मुड़ जाती है। यह अटलांटिक महासागर को पूर्व की ओर बहते हुए पार करती है। इसे **उत्तरी अटलांटिक अपवाह** कहते हैं।

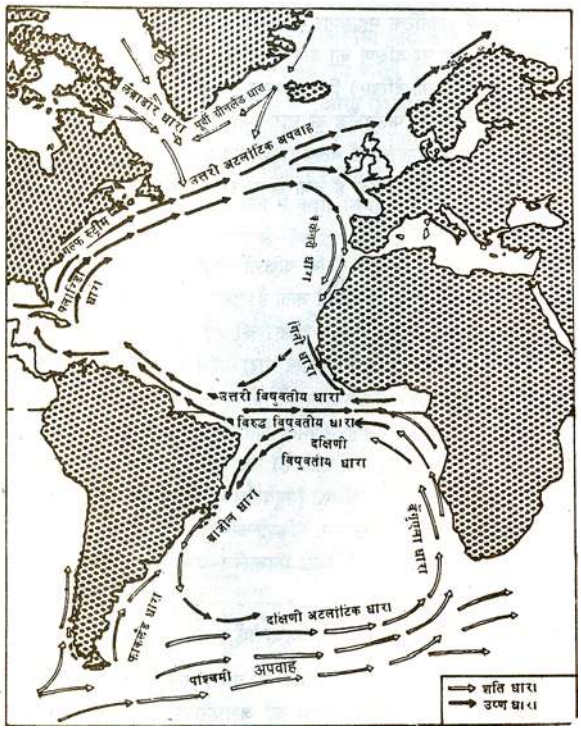

चित्र 8.10 अटलांटिक महासागर की धाराएं

उत्तरी अटलांटिक अपवाह महासागर के पूर्वी भाग में पहुँचकर दो भागों में बंट जाता है। इसकी उत्तरी शाखा उत्तरी अटलांटिक अपवाह के रूप में बहती रहती है। यह ब्रिटिश द्वीप समूह पहुँचकर वहाँ से नार्वे के तट के साथ बहते हुए यह **नार्वे धारा** के रूप में जानी

जाती है। वहाँ से यह आर्कटिक महासागर में प्रवेश कर जाती है। दक्षिणी शाखा स्पेन तथा एजोर्स द्वीप के मध्य से दक्षिण की ओर बहती है। यहाँ इसे **केनारी धारा** कहते हैं। यह एक ठंडी जलधारा है। **केनारी धारा** अंत में उत्तरी विषुवतीय धारा में मिल जाती है। उत्तरी अटलांटिक महासागर में धाराओं के चक्र के बीच में सारगेसो समुद्र का शांत क्षेत्र है जो अत्याधिक समुद्री शैवालों से भरा हुआ है। ये समुद्री शैवाल जो भूरे रंग के हैं, सरगैसम के नाम से जाने जाते हैं।

उत्तरी अटलांटिक महासागर में धाराओं के दक्षिणावर्ती परिसंचरण के अतिरिक्त दो ठंडी धारायें भी इस महासागर में बहती हैं। ये हैं – **पूर्वी ग्रीनलैंड धारा** तथा **लेब्राडोर धारा**। ये धाराएँ आर्कटिक महासागर से अटलांटिक महासागर में बहती है। **लेब्राडोर धारा** कनाडा के पूर्वी तट पर दक्षिण की ओर बहती हुई गर्म गल्फ स्ट्रीम धारा से मिलती है। (चित्र संख्या 8.10 को देखिए) भिन्न तापमान वाली इन दो धाराओं (एक ठंडी तथा दूसरी गर्म) के संगम से न्यू फाउंडलैण्ड के चारो ओर कोहरे का निर्माण होता है और इसे संसार का सबसे अधिक महत्वपूर्ण मत्स्य ग्रहण क्षेत्र बनाता है। पूर्वी ग्रीनलैंड धारा आइसलैंड और ग्रीनलैंड के बीच बहती है तथा संगम स्थल पर उत्तरी अटलांटिक अपवाह के तापमान को कम कर देती है।

हम पहले ही पढ़ चुके हैं कि दक्षिणी विषुवतीय धारा ब्राजील के साओ रोक अन्तरीप के निकट दो शाखाओं में बंट जाती है। इसकी उत्तरी शाखा उत्तरी विषुवतीय धारा से मिल जाती है और दक्षिणी शाखा दक्षिण की ओर मुड़कर दक्षिणी अमेरिका के पूर्वी तट के साथ–साथ बहती है। इसे **ब्राजील धारा** कहते हैं। लगभग 35^0 दक्षिणी अक्षांश पर ब्राजील धारा को पछुआ पवनें तथा पृथ्वी की घूर्णन गति पूर्व की ओर मोड़ देती है, जहाँ यह पश्चिमी पवन अपवाह में मिल जाती है। आशा अन्तरीप के निकट दक्षिण अटलांटिक धारा उत्तर की ओर मुड़ जाती है। यह एक ठंडी जलधारा है और इसे **बैंगुएला** धारा कहते हैं। अन्त में यह दक्षिणी विषुवतीय धारा से मिलकर धाराओं के चक्र को पूरा करती है। एक और ठंडी जल धारा दक्षिणी अमरीका के दक्षिण–पूर्वी तट के सहारे दक्षिण से उत्तर की ओर बहती है, जिसे **फाकलैंड धारा** कहते हैं।

8.6 प्रशान्त महासागर की धाराएँ

यह देखा जा सकता है कि प्रशान्त महासागर में भी धाराओं का एक वृहद् चक्रीय तंत्र पाया जाता है, जो कि उत्तरी गोलार्द्ध में दक्षिणावर्त (घड़ी की सुई की दिशा में) व दक्षिणी गोलार्द्ध में वामावर्त (घड़ी की सुई की विपरीत दिशा में) है।

प्रशान्त महासागर के विषुवतीय भाग में दो विषुवतीय धाराएँ मध्य अमेरिका के तट से महासागर के आर–पार बहती हैं। इन दोनों–उत्तरी विषुवतीय धारा तथा दक्षिणी विषुवतीय धारा के बीच पश्चिम से पूर्व की ओर एक विरूद्ध विषुवतीय धारा बहती है। उत्तरी विषुवतीय धारा उत्तर की ओर मुड़ती है और **क्यूरो-सिवो धारा** के नाम से फिलीपीन द्वीप समूह, ताईवान तथा जापान के तटों के साथ–साथ बहती है। जापान के दक्षिणी–पूर्वी तट पर यह धारा पछुआ पवनों की चपेट में आकर महासागर के

टिप्पणी

आर–पार पश्चिम से पूर्व दिशा में **उत्तरी प्रशांत धारा** के नाम से बहती है। (चित्र 8.11 देखें) उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तट पर पहुँचकर यह धारा दो शाखाओं में बंट जाती है। इसकी उत्तरी शाखा ब्रिटिश कोलंबिया तथा अलास्का के तटों के साथ वामवर्ती दिशा में बहती है तथा अलास्का धारा के नाम से जानी जाती है। इस धारा का गर्म जल शीत ऋतु में अलास्का तट को बर्फ मुक्त रखता है। उत्तरी प्रशांत महासागरीय धारा की दूसरी शाखा कैलीफोर्निया तट के साथ दक्षिण की ओर बहती है। यह ठंडी जलधारा है और इसे **कैलीफोर्निया धारा** कहते हैं। अंत में यह धारा उत्तरी विषुवतीय धारा में मिलकर अपना चक्र पूरा करती है। प्रशांत महासागर के उत्तरी भाग में दो ठंडी जल धाराएँ भी बहती है। ये हैं– **ओया शिओ धारा** और **आखोटस्क धारा।** ठंडी ओया–शिओ धारा कमचटका प्रायद्वीप के तट के साथ बहती है। दूसरी ठंडी धारा ओखोटस्क धारा है जो सखालीन के पास बहती हुई होकेडो द्वीप के निकट ओया–शिओ धारा में मिल जाती है। ओया–शिओ धारा अंत में क्यूरो–सिवो धारा में मिल जाती है और उत्तरी प्रशांत महासागरीय धारा के गर्म जल के नीचे डूब जाती है। (चित्र 8.11 देखिये)

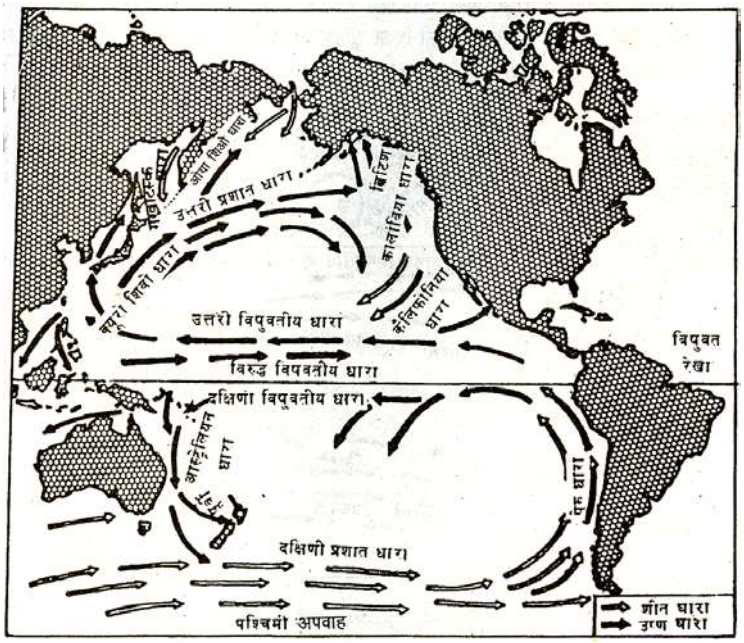

चित्र 8.11 प्रशान्त महासागर की धाराएँ

दक्षिणी प्रशांत महासागर में दक्षिणी विषुवतीय धारा पूर्व से पश्चिम की ओर बहती है और **पूर्वी आस्ट्रेलियाई धारा** के नाम से दक्षिण की ओर मुड़ जाती हैं। आगे चलकर यह तस्मानिया के निकट ठंडी दक्षिणी प्रशांत महासागरीय धारा में मिल जाती है जो पश्चिम से पूर्व की ओर बहती है। दक्षिण अमेरिका के दक्षिण–पश्चिम तट पर पहुँचकर यह उत्तर की ओर मुड़ जाती है। इसे **पेरू धारा** कहते हैं। यह एक ठंडी जलधारा है। अन्त में यह दक्षिणी विषुवतीय धारा में मिलकर एक चक्र पूरा करती है। पेरू धारा का ठंडा जल ही चिली एवं पेरू के तटों को वर्षा विहीन बनाने के लिए कुछ हद तक उत्तरदायी है।

8.7 हिन्द महासागर धाराएँ

हिन्द महासागर की धाराओं के परिसंचरण का प्रतिरूप अटलांटिक महासागर एवं प्रशांत महासागर की धाराओं से भिन्न है। क्योंकि हिन्द महासागर उत्तर में पूर्वतः स्थल से घिरा है। इसके दक्षिणी भाग में धाराओं के परिसंचरण का सामान्य प्रतिरूप वामवर्ती है जैसा कि अन्य महासागरों में है। लेकिन इसके उत्तरी भाग में धाराएँ शीतु ऋतु एवं ग्रीष्म ऋतु में स्पष्ट रूप से अपनी दिशाएँ पूर्णतया बदल लेती हैं। ये धाराएँ पूर्णतः बदलते हुए मानसूनी मौसम के प्रभाव में हैं। इसलिए शीत ऋतु एवं ग्रीष्म ऋतु में धाराएँ उलट जाती है अर्थात उत्तरी–पूर्वी मानसून के दौरान इनकी दिशा दक्षिण–पश्चिम की ओर होती है, दक्षिण–पश्चिम मानसून के दौरान उत्तर–पूर्व की ओर तथा संक्रमण काल में अस्थिर होती है।

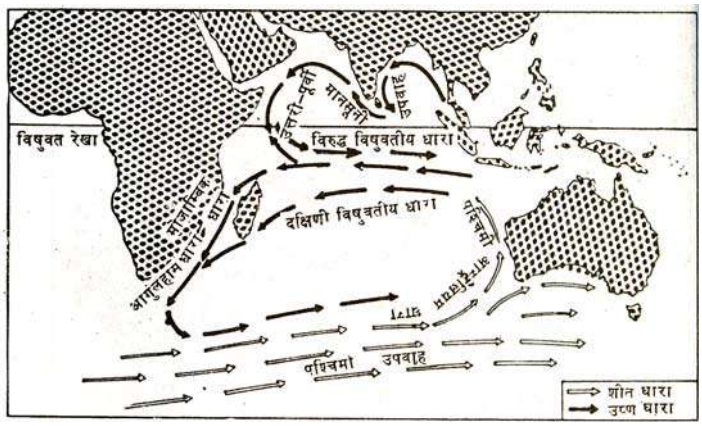

चित्र 8.12 हिन्द महासागर की धाराएँ (शीत ऋतु)

शीत ऋतु में श्रीलंका बंगाल की खाड़ी की धाराओं को अरब सागर से धाराओं को अलग कर देता है। श्रीलंका के ठीक दक्षिण में उत्तरी विषुवतीय धारा और दक्षिणी विषुवतीय धारा पश्चिम की ओर बहती है। उत्तरी विषुवतीय धारा और दक्षिणी विषुवतीय धारा के मध्य एक विरूद्ध विषुवतीय धारा पश्चिम से पूर्व की ओर बहती है। (देखिये चित्र 8.12) इस समय इसके उत्तरी भाग में बंगाल की खाड़ी और अरब सागर के जल को उत्तरी पूर्वीमानसून प्रभावित करता है तथा उन्हें वामवर्ती दिशा में प्रवाह के लिए प्रेरित करती है। इस जलधारा को **उत्तरी-पूर्वी मानसूनी अपवाह** कहते है।

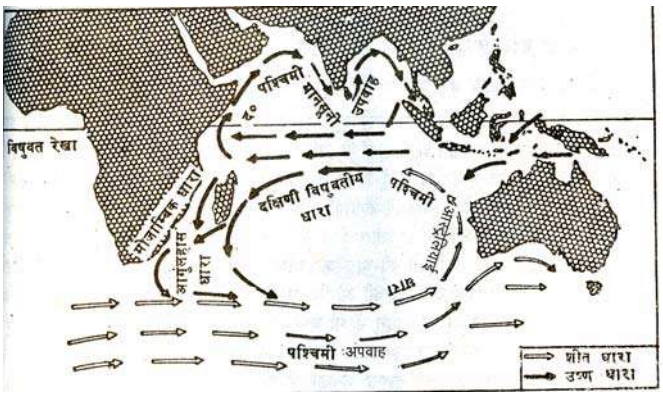

चित्र 8.13 हिन्द महासागर की धाराएँ (ग्रीष्म ऋतु)

टिप्पणी

ग्रीष्म ऋतु में वही उत्तरी भाग दक्षिणी–पश्चिमी मानसून के प्रभाव में आ जाता है। बंगाल की खाड़ी एवं अरब सागर का जल पूर्व की ओर बहने लगता है। इस समय जल का परिसंचरण दक्षिणवर्ती या घड़ी की सुइयों की अनुकूल दिशा में होता है। इस धारा को **दक्षिण-पश्चिम मानसून** अपवाह कहते हैं। सामान्यतः ग्रीष्म ऋतु की धाराएँ शीत ऋतु की धाराओं से अधिक नियमित हैं।

हिन्द महासागर के दक्षिणी भाग में विषुवतीय धारा पूर्व से पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है। अफ्रीका के मोजेंबिक तट के निकट यह धारा दक्षिण की ओर मुड़ जाती है। इस धारा का एक भाग अफ्रीका की मुख्य भूमि और मेडागास्कर द्वीप के मध्य बहता है। इसे **गर्म मोजांबिक** धारा कहते हैं। दक्षिण की ओर बढ़ने पर यह दक्षिणी विषुवतीय धारा की उस शाखा से मिल जाती है जो मेडागास्कर के तट के साथ बहती है। इस संगम के बाद इसे **अगुल्हास धारा** कहते हैं। इसके बाद यह पूर्व की ओर मुड़ जाती है और **पश्चिमी पवन अपवाह** में मिल जाती है।

पश्चिमी पवन अपवाह उच्च अक्षांशों में महासागर के आर–पार पश्चिम से पूर्व दिशा में बहता हुआ आस्ट्रेलिया के दक्षिणी तट तक पहुँचता है। इस धारा की एक शाखा उत्तर की ओर मुड़कर आस्ट्रेलिया के पश्चिम तट के साथ–साथ बहने लगती है। इसे **पश्चिमी आस्ट्रेलियाई धारा** कहते हैं। यह ठंडी जलधारा हैं। अंत में पश्चिमी आस्ट्रेलियाई धारा दक्षिणी विषुवतीय धारा से मिलकर चक्र पूरा करती है।

8.8 महासागरीय धाराओं के प्रभाव

(क) जलवायु पर प्रभाव

महासागरीय धाराएँ तापमान, दाब, वायु एवं वर्षण के वितरण को नज़दीकी से प्रभावित करती हैं, जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समाज एवं अर्थव्यवस्था, विशेषतः तटीय प्रदेशों में रहने वालों पर पड़ता है। सागरीय धाराओं के कुछ प्रमुख प्रभाव इस प्रकार हैं–

जलधाराएँ अधिक तापमान वाले क्षेत्रों से कम तापमान वाले क्षेत्रों की ओर तथा इसके विपरीत कम तापमान वाले क्षेत्रों से अधिक तापमान वाले क्षेत्रों की ओर बढ़ती हैं। जब ये धाराएँ एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर बहती हैं तो ये उन क्षेत्रों के तापमान को प्रभावित करती हैं। किसी भी जलराशि के तापमान का प्रभाव उसके ऊपर की वायु पर पड़ता है। इसी कारण विषुवतीय क्षेत्रों से उच्च अक्षांशों वाले ठंडे क्षेत्रों की ओर बहने वाली जलधाराएँ उन क्षेत्रों की वायु के तापमान को बढ़ा देती है। उदाहरणार्थ, गर्म उत्तरी अटलांटिक अपवाह जो उत्तर की ओर यूरोप के पश्चिम तट की ओर बहती है। यह ब्रिटेन और नार्वे के तट पर शीत ऋतु में भी बर्फ नहीं जमने देती। जलधाराओं का जलवायु पर प्रभाव और अधिक स्पष्ट हो जाता है, जब आप समान अक्षांशों पर स्थित ब्रिटिश द्वीप समूह की शीत ऋतु की तुलना कनाडा के उत्तरी पूर्वी तट की शीत ऋतु से करते हैं। कनाडा का उत्तरी–पूर्वी तट लेब्राडोर की ठंडी धारा के प्रभाव में आ जाता है। इसलिए यह शीत ऋतु में बर्फ से ढका रहता है।

जब ठंडी और गर्म जलधाराएँ आपस में मिलती है तो ये कोहरा उत्पन्न कर देती हैं। उदाहरण के लिए, जब गल्फ स्ट्रीम की धारा न्यूफाउंडलैंड के निकट लेब्राडोर की धारा से मिलती है तो कोहरा उत्पन्न हो जाता है। ये तूफान आने के लिए भी अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं। न्यूफाउंडलैड में हरीकेन और जापान में टाइफून आने का कारण शायद गर्म और ठंडी धाराओं का मिलन है।

(ख) समुद्री जीवन का प्रभाव

तापमान का समुद्री जीवन पर भी बहुत प्रभाव पड़ता है। ये समुद्री वनस्पति एवं जीव–जन्तुओं के प्रकार को निर्धारित करती हैं। जहाँ गर्म और ठंडी जल धाराएँ मिलती हैं, वे विश्व के अत्याधिक महत्वपूर्ण मत्स्य ग्रहण क्षेत्र हैं। धाराओं के रूप में महासागरीय जल के संचरण के कारण समुद्री जीव–जन्तु पूरे महासागर में फैल जाते हैं।

(ग) व्यापार पर प्रभाव

जलधाराओं का व्यापार पर भी प्रभाव पड़ता है। उच्च अक्षांशों में स्थित पत्तनों और बन्दरगाहों में जो गर्म, जल धाराओं के प्रभाव में होते हैं, बर्फ नहीं जमती और वहाँ पूरे वर्ष व्यापारिक गतिविधियाँ चलती रहती हैं। उदाहरण के लिए, उत्तर–पश्चिमी यूरोप के पत्तन पूरे वर्ष खुले रहते हैं, जबकि कनाडा का क्यूबैक पत्तन शीत ऋतु में बर्फ से ढक जाता है।

पाठगत प्रश्न 8.4

1. नीचे दिए गए मानचित्र को ध्यान से पढ़िए। मानचित्र में दर्शायी गई प्रत्येक जलधारा को एक अंक दिया गया है। नीचे दिए गए अंकों के सामने संबंधित जलधारा का नाम लिखिए। मानचित्र की सूची को भी उचित शब्द भरकर पूरी कीजिए।

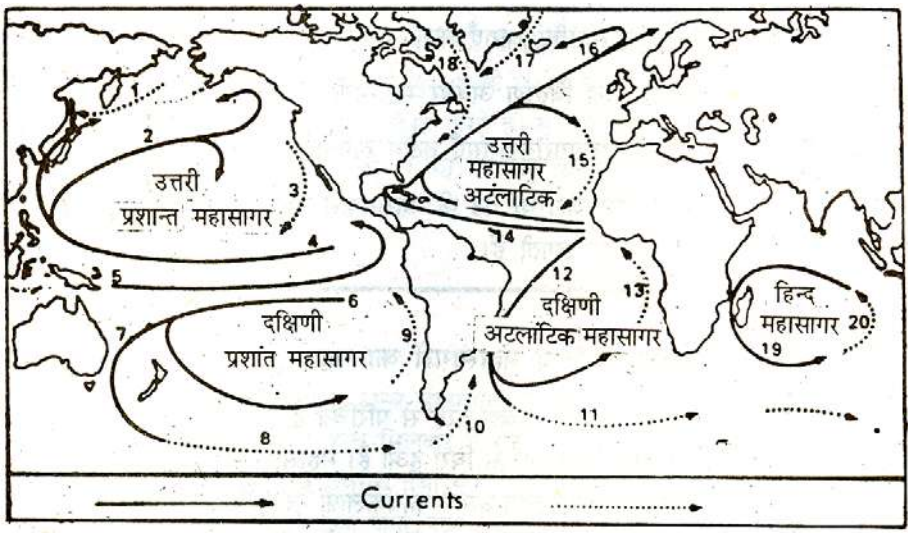

टिप्पणी

1._____ 11. _____
2._____ 12. _____
3._____ 13. _____
4._____ 14. _____
5._____ 15. _____
6._____ 16._____
7._____ 17._____
8._____ 18._____
9._____ 19._____
10._____ 20._____

2. दक्षिण–पूर्वी अफ्रीका के पूर्वी तट के साथ बहने वाली गर्म जल धारा का नाम है. _____।

(i) बेंगुएला धारा (ii) केनारी धारा

(iii) मोजाम्बिक धारा (iv) पश्चिमी पवन अपवाह

3. नीचे दिए गए कथनों में से कौनसा कथन असत्य है।

(i) महासागरीय धाराएँ कभी–कभी कोहरा उत्पन्न करती हैं।

(ii) मत्स्य वितरण अक्सर महासागरीय धाराओं से प्रभावित होता है।

(iii) महासागरीय धाराएँ तटीय तापमान को प्रभावित करती है।

(iv) गर्म जल के तट के आस–पास इकट्ठा हो जाने से महासागरीय जलधारा बहने लगती हैं।

8.9 मनुष्य के लिए महासागरों का महत्त्व

हम सभी इस तथ्य से अच्छी तरह से परिचित हैं कि पृथ्वी के धरातल का 71 प्रतिशत भाग सागर और महासागरों से घिरा हुआ है। महासागर हमारे पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण भाग हैं और ये मनुष्य तथा उसके कार्यकलापों पर पूर्ण प्रभाव डालते हैं। पाठ के इस भाग में हम मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महासागर के प्रभाव के विषय में पढ़ेंगे।

(क) महासागर जलवायु के संशोधक के रूप में

महासागरों का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है–जलवायु को संशोधित या परिवर्तित करना।

(i) महासागरों की अथाह जलराशि बहुत बड़ी मात्रा में ऊर्जा का संग्रह करती है। इसी कारण महासागरों को ''सौर ऊर्जा का बचत बैंक'' कहा जाता है। ये

अधिक सूर्यातप वाले मौसम में इस ऊर्जा को जमा कर लेते हैं और आवश्यकता वाले मौसम में उसका भुगतान करते हैं। महासागरों का विशाल गहरा जल पृथ्वी के धरातल की अपेक्षा धीरे–धीरे ऊष्मा अवशोषित करता है और धीरे–धीरे ही विकरित करता है। सूर्यातप की एक ही समान मात्रा जलीय धरातल की अपेक्षा स्थलीय धरातल को शीघ्रता से और अधिक गर्म कर देती है। जलीय और स्थलीय तापमान में अन्तर के कारण ही समुद्रतटीय क्षेत्रों और आन्तरिक स्थलीय क्षेत्रों में तापमान में अन्तर होता है।

(ii) महासागर वायुमंडल को जलवाष्प प्रदान करते हैं। ये पृथ्वी पर कुल वर्षण के लिए मूल स्रोत हैं। ये पृथ्वी पर स्वच्छ जल का भी मुख्य स्रोत हैं।

(iii) महासागरीय जल धाराएँ पृथ्वी के धरातल पर महत्वपूर्ण तापमान नियंत्रक है। जल धाराएँ निम्न अक्षांशों से उच्च अक्षांशों में ऊष्मा के विनिमय में सहायता करती हैं। इस तरह से ये विश्व में ऊर्जा के संतुलन को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं। स्थानीय स्तर पर गर्म महासागरीय धाराएँ उच्च अक्षांशों के तटवर्ती क्षेत्रों की जलवायु को मृदुल बना देती है, जबकि ठंडी धाराएँ उष्णकटिबन्धीय मरूस्थल के तटवर्ती क्षेत्रों के तापमान को कम कर देती हैं।

(iv) महासागर पृथ्वी पर वायुदाब और प्रचलित पवन तंत्र के वितरण को भी बहुत सीमा तक नियंत्रित करते हैं। महासागरीय धरातल पर उच्च दाब के छः या छः से अधिक स्थाई केन्द्र हैं। यही केन्द्र भूमंडलीय पवन तंत्र को नियंत्रित करते हैं। ये भूमंडलीय पवनें पृथ्वी के धरातल पर वर्षा की मात्रा और उसके वितरण को नियंत्रित करती हैं। पछुआ पवनें गर्म उत्तरी अटलांटिक अपवाह से आर्द्रता ग्रहण करके पश्चिमी यूरोप के तटवर्ती क्षेत्रों में वर्षा करती है।

(ख) महासागर तथा संसाधन

मानव के लिए महासागर खाद्य–पदार्थ तथा अन्य मूल्यवान वस्तुओं के लिए हमेशा से बड़े स्रोत रहे हैं। समुद्री पौधे और जीव जन्तु मिलकर एक विशाल संसाधन हैं, जिनसे मनुष्य को खाद्य सामग्री, कृषि के लिए उर्वरक तथा कई उद्योगों के लिए कच्चा माल प्राप्त होता है। मछली और अन्य समुद्री जीव जन्तु मनुष्य के भोजन का एक महत्त्वपूर्ण भाग है। मानव समाज की उन्नति तथा बढ़ती जनसंख्या के कारण मनुष्य की महासागरों पर निर्भरता बढ़ती जा रही है। पूरे संसार में आज मछली मनुष्य के भोजन के कुल जन्तु प्रोटीन का 10 प्रतिशत भाग प्रदान करती है।

(ग) महासागर और खनिज संसाधन

महासागर अनेक उपयोगी धात्विक तथा अधात्विक खनिजों के भंडार हैं। महाद्वीपीय निमग्न तट के खनिज तेल भंडार महासागरों में पाए जाने वाले सभी खनिजों से महत्वपूर्ण हैं। आज ऊर्जा के भूखे विश्व में, खनिज तेल की सबसे अधिक माँग है। खनिज तेल के विशाल भंडार उत्तरी सागर, दक्षिणी कैलीफोर्निया के तट पर, भूमध्यसागर, फारस की खाड़ी, और अरब सागर में बम्बई हाई में पाए गए हैं।

टिप्पणी

साधारण नमक (सोडियम क्लोराइड) समुद्र के जल से ही प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त मैग्नेशियम एवं ब्रोमीन बहुत समय से समुद्र के जल से प्राप्त किये जाते रहे हैं। समुद्र के जल में सभी प्रकार के धात्विक खनिज जाते हैं। लेकिन समुद्र के जल और तलछट में जिंक, ताँबा, चाँदी और सोना काफी मात्रा में पाया जाता है। ये धातुयें मुख्य रूप से महासागरीय पहाड़ी के ज्वालामुखी क्षेत्रों में पायी जाती हैं। इन खनिजों को समुद्री जल से निकालने की तकनीक अभी तक पूरी तरह से विकसित नहीं हुई है। महासागरों के अधस्तल में पाए जाने वाले मुख्य खनिज मेंगनीज़ और फॉसफोराइट हैं।

(घ) महासागर और ऊर्जा

महासागर में ऊर्जा संसाधन विभिन्न रूपों में पाए जाते हैं जैसे ज्वारीय ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा तथा महासागरीय जल के तापमान से प्राप्त ऊर्जा। 12 वीं शताब्दी में भी ज्वारीय ऊर्जा का उपयोग किया जाता था। उस समय गेहूँ पीसने के लिए ज्वारीय जल से चलने वाली चक्की का प्रयोग किया जाता था। आजकल विद्युत केन्द्रों में इस ज्वारीय शक्ति के प्रयोग करने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। किन्तु ज्वारीय शक्ति के प्रयोग में कुछ समस्याएँ भी हैं। जैसे ज्वार–भाटा का क्रम नियमित नहीं है। फिर भी रूस, फ्रांस और जापान में ज्वारीय शक्ति के कुछ केन्द्र सफलतापूर्वक कार्य कर रहे हैं।

महासागरों में भूतापीय ऊर्जा उन स्थानों से प्राप्त की जा सकती है जो सक्रिय ज्वालामुखी के क्षेत्र हैं। तटीय क्षेत्रों में विद्युत उत्पादन के लिए भूतापीय ऊर्जा का भविष्य में व्यापक उपयोग संभव है। भूतापीय ऊर्जा का विकास संयुक्त राज्य अमेरिका, मेक्सिको तथा न्यूजीलैंड में कर लिया गया है।

(ङ) महासागरीय परिवहन तथा व्यापार

कुछ वर्ष पहले तक महासागर महाद्वीपों को एक दूसरे से पृथक करने वाले अवरोध माने जाते थे; लेकिन अब ये उनके बीच परस्पर संबंध की कड़ी समझे जाते हैं। वे कम कीमत पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए प्राकृतिक मार्ग उपलब्ध कराते हैं। वे भारी वस्तुओं को लाने ले जाने में सहायता करते हैं। जल उत्प्लावक होता है और इसे कम प्रेरक शक्ति की आवश्यकता होती है। अतः महासागर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए वरदान सिद्ध हुए हैं।

पाठगत प्रश्न 8.5

1. नीचे दिए गए कथनों में से कौन सा कथन असत्य है?

   (क) महासागर वायुमंडल के ऊपरी भाग में दाब वितरण को नियंत्रित करते हैं।

   (ख) महासागर अधिक सूर्यातप वाले मौसम में सौर ऊर्जा को जमा कर लेते हैं और आवश्यकता वाले मौसम में उसका भुगतान करते हैं।

(ग) कई हजार किलोमीटर तक सौर ऊर्जा के पुनः वितरण में महासागर सहायक होते हैं।

(घ) महासागर प्राकृतिक रूप से बने महामार्ग हैं; परन्तु अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में बाधा डालते हैं।

(ङ) समुद्री जल के बारी–बारी ऊपर उठने और नीचे गिरने से प्राप्त ऊर्जा को भूतापीय ऊर्जा कहते हैं।

आपने क्या सीखा

पृथ्वी पर रहने वाले सभी जीव जल पर निर्भर हैं। पृथ्वी के धरातल का लगभग 71 प्रतिशत भाग जल से ढका है। हमारे सौर मंडल में पृथ्वी ही अकेला ऐसा ग्रह है जिस पर जल है। महासागर जल के अकेले सबसे बड़े अविच्छिन्न खण्ड हैं जो पृथ्वी के सभी भूखण्डों को चारों ओर से घेरे हुए हैं। संसार के समस्त जल का 97.2 प्रतिशत जल महासागरों में हैं। प्रमुख महासागर हैं– प्रशांत महासागर, अटलांटिक महासागर तथा हिन्द महासागर। महासागर के अधस्तल पर बहुत सी आकृतियाँ मिलती हैं, जैसे महाद्वीपीय निमग्न तट, महाद्वीपीय ढाल, वितल मैदान तथा गभीर तल।

प्रशांत महासागर सबसे बड़ा महासागर है। इसमें हजारों द्वीप हैं। इस महासागर के अतिकतर भाग में गहरी–गहरी खाइयाँ हैं। प्रशांत महासागर की मेरियाना खाई अब तक की जानकारी के अनुसार सबसे गहरी खाई है। अटलांटिक महासागर आकार में प्रशान्त महासागर का आधा है। विश्व के सबसे चौड़े महाद्वीपीय निमग्न तट जैसे डागर बैंक तथा ग्रांड बैंक यहाँ पाए जाते हैं। मध्य अटलांटिक कटक अटलांटिक महासागर की उल्लेखनीय विशेषता है। यह संसार की सबसे लंबी अविच्छिन्न कटक है। हिन्द महासागर इन दोनों महासागरों से छोटा है।

महासागरीय सतह के जल का तापमान महासागर के एक भाग से दूसरे भाग में भिन्न होता है। सामान्यतः यह विषुवत वृत्त के निकट उच्च तथा ध्रुवों के पास निम्न होता है। महासागरों के ऊर्ध्वाधर तापमान के वितरण में भी विविधता पाई जाती है। महासागरीय जल का तापमान गहराई बढ़ने के साथ घटता जाता है। लवणता को इस तरह से परिभाषित किया जाता है, यह 1000 ग्राम समुद्री जल के वाष्पीकरण के बाद बचे हुए ठोस पदार्थों की शेषांक है। इसे ग्राम प्रति हजार में व्यक्त करते हैं। अनेक रासायनिक योगिकों के जल में घुल जाने से ही यह लवणता उत्पन्न होती है। समुद्र में प्रत्येक स्थान पर लवणता एक समान नहीं है। उष्णकटिबन्धीय समुद्रों की अपेक्षा ध्रुवीय क्षेत्रों में लवणता कम होती है। महासागरीय जल सदैव गतिशील रहता है। महासागरीय जल में तीन प्रकार की गतियां होती हैं। ये हैं – तरंगे, ज्वार–भाटा एवं धाराएँ। तरंगें पवनों द्वारा उत्पन्न होती हैं। पवनों की गति गोलाकार होती है। किसी निश्चित स्थान

टिप्पणी

पर महासागरीय धरातल के बारी–बारी से ऊपर उठने और नीचे उतरने की प्रक्रिया को ज्वार–भाटा कहते हैं। ज्वार–भाटा चन्द्रमा और सूर्य की गुरूत्वाकर्षण शक्ति तथा पृथ्वी के घूर्णन से उत्पन्न अपकेन्द्रीय बल द्वारा उत्पन्न होते हैं। धाराएँ एक सुस्पष्ट और निश्चित दिशा में काफी लंबी दूरी तक क्षैतिज रूप से बहने वाली महासागरीय जल की एक राशि को कहते हैं। धाराएँ, समुद्री जल के घनत्व में अन्तर, पृथ्वी की घूर्णनगति तथा भूमण्डलीय पवनों द्वारा उत्पन्न होती हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में धाराएँ दक्षिणावर्त दिशा में बहती हैं तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में वामवर्ती दिशा में बहती हैं। हिन्द महासागर की धाराएँ मानसूनी पवनों द्वारा प्रभावित होती हैं।

महासागर मानव के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। वे जलवायु को प्रभावित करते हैं और खाद्य पदार्थों के अथाह स्रोत हैं। महासागर प्राकृतिक महामार्ग उपलब्ध कराके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सहायक हैं।

पाठांत प्रश्न

1. महासागरीय तल के प्रमुख उच्चावच लक्षणों का चित्र की सहायता से वर्णन कीजिए।
2. निम्नलिखित शब्दों में अन्तर स्पष्ट कीजिएः–
   (क) महाद्वीपीय निमग्न तट एवं महाद्वीपीय ढाल
   (ख) अंतः समुद्री गर्त एवं अंतः समुद्री कटक
3. समुद्री टीला एवं गाईऑट में चित्र की सहायता से अन्तर बताइये।
4. मानव के लिए महाद्वीपीय निमग्न तट के महत्व की व्याख्या कीजिए।
5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः–
   (क) अंतः समुद्री केनियन (खाई)
   (ख) महाद्वीपीय उत्थान
6. 'लवणता' शब्द को परिभाषित कीजिए और बताइये कि यह कैसे व्यक्त की जाती है?
7. बढ़ती हुई गहराई के साथ महासागरीय जल का तापमान क्यों घटता जाता है?
8. ज्वार–भाटा क्या है? यह कैसे उत्पन्न होते हैं?
9. चित्र की सहायता से उच्च ज्वार और निम्न ज्वार में अन्तर स्पष्ट कीजिए?
10. निम्नलिखित के क्या कारण हैं?
    (क) उच्च ज्वार प्रत्येक अमावस्या या पूर्णिमा के दिन आता है।
    (ख) निम्न अक्षांशों में स्थलखंडों का पूर्वी भाग पश्चिमी भागों की अपेक्षा गर्म होता है।
    (ग) उच्च अक्षांशों में स्थल खंडों का पूर्वी भाग पश्चिमी भाग की अपेक्षा ठंडा होता है।

11. अटलांटिक महासागर की जलधाराओं के परिसंचरण को चित्र की सहायता से वर्णन कीजिए। प्रशान्त महासागर की जलधाराओं से इसकी तुलना कीजिए।
12. 'मानव के लिए महासागरों का महत्व' विषय पर एक छोटा सा निबन्ध लिखिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

8.1

(i) (क) प्रशान्त महासागर (ख) अटलांटिक महासागर
(ग) हिन्द महासागर (घ) आर्कटिक महासागर

(ii) (क) महाद्वीपीय निमग्न तट (ख) महाद्वीपीय ढाल
(ख) वितल मैदान (घ) महासागरीय गभीर

(iii) महाद्वीपीय निमग्न तट

(iv) (क) ऊज (ख) लाल सिंधुपंक

(v) अंतः समुद्री खाइयाँ

(vi) समुद्री टीला

(vii) मेरियाना गर्त

2.

(i) (क) महाद्वीपीय ढाल

(ii) (ख) महाद्वीपीय निमग्न तट

3.

(i) गलत

(ii) गलत

(iii) सही

8.2

1. लवणता 1000 ग्राम समुद्री जल के वाष्पीकरण के पश्चात बचे ठोस पदार्थ का ग्राम में दिया गया भार है।
2. 25‰
3. (क) अधिकतम, न्यूनतम (ख) 35‰ (ग) उच्च

8.3

1. (i) पवनें (ii) आवर्त–काल (iii) 6 घंटे 13 मिनट
2. एक निश्चित स्थान पर समुद्री सतह का बारी–बारी से ऊपर उठना और नीचे गिरना।
3. दो श्रृंगों अथवा दो गर्तों के बीच की क्षैतिज दूरी।
4. 9.51 पूर्वाह्न

8.4

टिप्पणी

1. **गर्म जल धाराएँ**

1. ओखोटस्क धारा	**ठंडी जलधाराएँ**
3. कैलीफोर्निया की धारा	2. उत्तरी प्रशांत महासागरीय धारा
5. विरूद्ध विषुवतीय धारा	4. उत्तरी विषुवतीय धारा
7. पूर्वी आस्ट्रेलियाई धारा	6. दक्षिणी विषुवतीय धारा
9. पीरू धारा	8. पश्चिमी पवन अपंवाह
11. पश्चिमी पवन अपवाह	10. फाकलैंड धारा
13. बेंगुएला धारा	12. ब्राजील धारा
15. केनारी धारा	14. विरूद्ध विषुवतीय धारा
17. पूर्वी ग्रीनलैंड धारा	16. नार्वे धारा
19. अगुलहास धारा	18. लेब्राडोर धारा
2. (iii) मोजाम्बिक धारा	20. पश्चिमी आस्ट्रेलियाई धारा
3. (iv)	

8.5

(क) (घ) (ङ)

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. अनुच्छेद 8.2 देखिए
2. (क) अनुच्छेद 8.2 का (क) और (ख) देखिए
   (ख) अनुच्छेद 8.2 का (घ) और (ग) (i) देखिए
3. अनुच्छेद 8.2 (ग) (ii) देखिए
4. अनुच्छेद 8.2 (क) देखिए
5. महाद्वीपीय निमग्न तट व महाद्वीपीय ढाल देखिए
6. अनुच्छेद 8.3 (ii) देखिए
7. अनुच्छेद 8.3 (ii) देखिए
7. अनुच्छेद 8.4 (ii) देखिए
9. अनुच्छेद 8.4 (ii) (क) देखिए
10. (क) अनुच्छेद 8.4 (ii) (क) देखिए
    (ख) विषुवतीय क्षेत्रों में गर्म महासागरीय धाराएँ गर्म जल को ले जाते हुए पूर्व से पश्चिम दिशा में बहती हैं। इस प्रक्रिया में वह तटीय क्षेत्रों को गर्म कर देता है; जबकि महाद्वीपों के पश्चिमी तट ठंडी धाराओं से प्रभावित होते हैं। अपने स्पष्टीकरण के साथ उदाहरण भी दो।
    (ग) उच्च अक्षांशों में समान्यतः महाद्वीपों के पूर्वी तट ठंडी धाराओं से प्रभावित होते हैं और पश्चिमी तट गर्म धाराओं से। अपने स्पष्टीकरण के साथ उदाहरण भी दो।
11. अनुच्छेद 8.5 तथा 8.6 देखिए।
12. अनुच्छेद 8.9 देखिए।

9

वायुमण्डल : संघटन और संरचना

पृथ्वी एक अनोखा ग्रह है; क्योंकि इस ग्रह पर ही जीवन पाया जाता है। जीवन के लिए आवश्यक दशाओं में से वायु का विशेष स्थान है। वायु अनेक गैसों का मिश्रण है। वायु पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुए है। वायु के इस घेरे को ही वायुमण्डल कहते हैं। वायुमण्डल हमारी पृथ्वी का अभिन्न अंग है जो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण पृथ्वी से जुड़ा हुआ है। यह जीवन के लिए हानिकारक पराबैंगनी किरणों को रोकने तथा जीवन के लिए अनुकूल तापमान बनाए रखने में सहायक है।

पृथ्वी पर प्राणी के जीवित रहने के लिए वायु का विशेष योगदान है। इसके अभाव में किसी प्रकार के जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। वायुमण्डल विशाल कवच की तरह है। वायुमण्डल में गैसों के अतिरिक्त जलवाष्प और धूलकण भी पाए जाते हैं। इनके कारण पृथ्वी पर सभी मौसमी घटनाएं घटती हैं। इस पाठ में आप वायुमण्डल के संघटन और संरचना तथा प्रमुख गैसों की चक्रीय प्रक्रिया के बारे में पढ़ेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- वायुमण्डल के संघटन को समझा सकेंगे;
- वायुमण्डल की विभिन्न परतों की विशेषताएं बता सकेंगे;
- वायुमण्डल के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे;
- वायुमण्डल की प्रमुख गैसों – नाइट्रोजन, आक्सीजन और कार्बन–डाई–आक्साइड की चक्रीय प्रक्रिया को समझा सकेंगे;
- वायुमण्डल की प्रमुख गैसें – नाइट्रोजन, ऑक्सीजन और कार्बन–डाइ–आक्साइड की चक्रीय प्रक्रिया के महत्व का वर्णन कर सकेंगे।

टिप्पणी

9.1 वायुमण्डल का संघटन

वायुमण्डल विभिन्न प्रकार की गैसों, जलवाष्प और धूलकणों से बना है। वायुमण्डल का संघटन स्थिर नहीं है। यह समय और स्थान के अनुसार बदलता रहता है।

(क) वायुमण्डल की गैसें

जलवाष्प एवं धूलकण सहित वायुमण्डल विभिन्न प्रकार की गैसों का मिश्रण है। नाइट्रोजन और ऑक्सीजन वायुमण्डल की दो प्रमुख गैसें हैं। 99% भाग इन्हीं दो गैसों से मिलकर बना है। शेष 1% भाग में आर्गन, कार्बन–डाई–आक्साइड, हाइड्रोजन, नियॉन, हीलियम आदि गैसें पाई जाती हैं। वायुमण्डल की गैसों का विवरण सारणी संख्या 9.1 और आरेख संख्या 9.1 में दिया गया है।

सारणी 9.1 वायुमण्डल की शुष्क और शुद्ध वायु में गैसों की मात्रा

क्रमांक	*गैसें*	*मात्रा (प्रतिशत में)*	
(क) मुख्य-			
1.	नाइट्रोजन	78.1	99%
2.	आक्सीजन	20.9	
(ख) गौण-			
3.	आर्गन	0.9	0.99%
4.	कार्बन–डाई–आक्साइड	0.03	
5.	हाइड्रोजन	0.01	
6.	नियॉन	0.0018	
7.	हीलियम	0.0005	
8.	ओजोन	0.00006	
9.	अन्य		

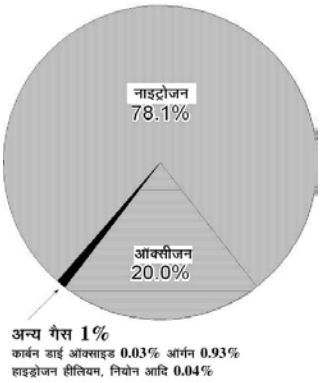

चित्र: 9.1

ओजोन गैस

वायुमण्डल में ओजोन गैस अल्प मात्रा में पाई जाती है। यह ओजोन क्षेत्र में ही सीमित है; लेकिन इसका विशेष महत्व है। यह सूर्य की पराबैंगनी किरणों को अवशोषित करके पृथ्वी पर जीव–जंतुओं की रक्षा करती है। यदि ओजोन गैस वायुमण्डल में न होती तो धरातल पर जीव–जन्तु एवं पेड़–पौधों का अस्तित्व नहीं होता।

(ख) जलवाष्प

वायुमण्डल में विद्यमान जल के गैसीय स्वरूप को जलवाष्प कहते हैं। वायुमण्डल में जलवाष्प के विद्यमान रहने के कारण ही पृथ्वी पर जीवन संभव हुआ है। जलवाष्प पृथ्वी पर होने वाले सभी प्रकार के वर्षण का स्रोत है। वायुमण्डल में इसकी अधिकतम मात्रा 4 प्रतिशत तक हो सकती है। जलवाष्प की सबसे अधिक मात्रा उष्ण–आर्द्र क्षेत्रों में पाई जाती है तथा शुष्क क्षेत्रों में यह सबसे कम मिलती है। सामान्यतः निम्न अक्षांशों से उच्च अक्षांशों की ओर इसकी मात्रा कम होती जाती है। इसी प्रकार ऊँचाई के बढ़ने के साथ इसकी मात्रा कम होती जाती है। वायुमण्डल में जलवाष्प वाष्पीकरण तथा वाष्पोत्सर्जन द्वारा पहुँचता है। वाष्पीकरण समुद्रों, नदियों, तालाबों, झीलों और वाष्पोत्सर्जन पेड़–पौधों और जीव जन्तुओं से होता है।

(ग) धूल कण

धूलकण अधिकतर वायुमण्डल के निचले स्तर में मिलते हैं। ये कण धूल, धुआँ, समुद्री लवण आदि के रूप में पाये जाते हैं। धूलकणों का वायुमण्डल में विशेष महत्व है। ये धूलकण जलवाष्प के संघनन में सहायता करते हैं। संघनन के समय जलवाष्प जलकणों के रूप में इन्हीं धूल कणों के चारों ओर संघनित हो जाती है, जिससे बादल बनते हैं और वर्षण सम्भव हो पाता है।

वायुमण्डल का महत्व

(i) ऑक्सीजन प्राणी जगत के लिए अति महत्वपूर्ण है।

(ii) कार्बन डाई–आक्साइड गैस पेड़–पौधों के लिए अधिक उपयोगी है।

(iii) वायुमण्डल में विद्यमान धूलकण वर्षण के लिए अनुकूल दशाएं पैदा करते हैं।

(iv) वायुमण्डल में जलवाष्प की मात्रा घटती–बढ़ती रहती है और प्रत्यक्ष रूप से पादप और जीव जगत को प्रभावित करती है।

(v) ओजोन सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी किरणों से सभी प्रकार के जीवन की रक्षा करती है।

पाठगत प्रश्न 9.1

(i) वायुमण्डल की दो प्रमुख गैसें कौनसी हैं?

(अ)_____ (ब)_____

(ii) जलवाष्प की सबसे अधिक मात्रा किस क्षेत्र में पाई जाती है?

_____

(iii) ओजोन गैस का मुख्य कार्य क्या है?

_____

9.2 वायुमण्डल की संरचना

वायुमण्डल पृथ्वी का अभिन्न अंग है। यह पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुए है। सामान्यतः यह धरातल से लगभग 1600 कि.मी. की ऊँचाई तक फैला है। वायुमण्डल के कुल भार की मात्रा का 97 प्रतिशत भाग लगभग 30 कि.मी. की ऊँचाई तक सीमित है। तापमान और घनत्व की विविधता के आधार पर वायुमण्डल को निम्नलिखित 5 परतों में बाँटा गया है:

(क) क्षोभमण्डल, (ख) समतापमण्डल, (ग) मध्यमण्डल, (घ) आयनमण्डल
(ड़) बहिर्मण्डल

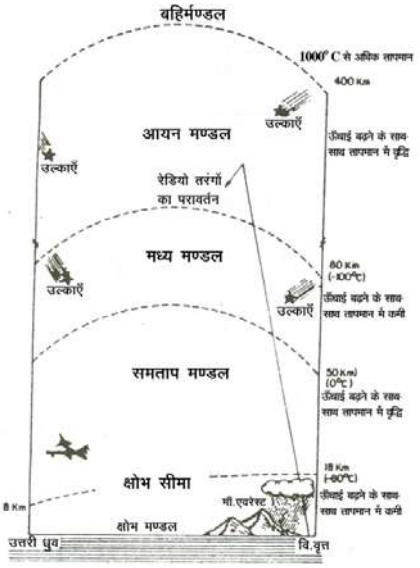

चित्र : 9.2 वायुमण्डल की संरचना

(क) क्षोभमण्डल

(i) यह वायुमण्डल की सबसे निचली परत है।

(ii) इस परत की ऊँचाई विषुवत वृत्त पर लगभग 18 कि.मी. और ध्रुवों पर इसकी ऊँचाई केवल 8 कि.मी. है। ऊँचाई की विभिन्नता का मुख्य कारण विषुवत वृत्त पर तेज संवहनीय धाराओं का चलना है, जो धरातल की ऊष्मा को अधिक ऊँचाई तक ले जाती हैं।

(iii) वायुमण्डल की यह सबसे महत्वपूर्ण परत है, क्योंकि इसी परत में सभी प्रकार के मौसमी परिवर्तन होते रहते हैं। इन परिवर्तनों के कारण पृथ्वी पर जीव–जगत की उत्पत्ति एवं विकास होता है। इस भाग में वायु कभी शान्त नहीं रहती। इसीलिए इस मण्डल को परिवर्तन मण्डल या क्षोभमण्डल भी कहते हैं।

(iv) इस मण्डल की ऊँचाई बढ़ने के साथ–साथ तापमान में कमी होती जाती है तथा प्रति 165 मीटर की ऊँचाई पर औसत 1° सेल्सियस तापमान घटता जाता है। इसे ही 'सामान्य ताप ह्रास दर' कहा जाता है।

(v) क्षोभमण्डल की ऊपरी सीमा से लगे क्षेत्र को क्षोभसीमा कहते हैं। यह एक संक्रमण क्षेत्र है। जिसमें क्षोभमण्डल और समतापमण्डल की मिली–जुली विशेषताएँ पाई जाती है।

(ख) समतापमण्डल

(i) यह क्षोभमण्डल के ऊपर की परत है।

(ii) इसकी धरातल से ऊँचाई लगभग 50 कि.मी. है। इसकी औसतन मोटाई लगभग 40 कि.मी. है।

(iii) इस परत के निचले भाग में 20 कि.मी. तक की ऊँचाई तक तापमान लगभग समान रहता है। इसके बाद ऊँचाई बढ़ने के साथ–साथ तापमान धीरे–धीरे बढ़ता जाता है। इस परत के ऊपरी भाग में ओजोन के होने के कारण ही तापमान बढ़ता है।

(iv) इस मण्डल में किसी प्रकार की मौसम की घटनाएं नहीं घटती है। यहाँ पर वायु क्षैतिजीय चलती है। इसी कारण यह परत वायुयानों की उड़ानों के लिए आदर्श मानी जाती है।

(ग) मध्यमण्डल

(i) समतापमण्डल के ऊपर वायुमण्डल की तीसरी परत का विस्तार है। इसे मध्यमण्डल कहते हैं।

(ii) इस परत की ऊँचाई धरातल से 80 कि.मी. तक है। इसकी मोटाई 30 किलोमीटर है।

(iii) इस मण्डल में तापमान पुनः कम होने लगता है। 80 कि.मी. की ऊँचाई पर तापमान 0^0 सेल्सियस से – 100^0 सेल्सियस तक नीचे चला जाता है।

(घ) आयनमण्डल

(i) यह वायुमण्डल की चौथी परत है। यह मध्यमण्डल के ऊपर स्थित है।

(ii) इस परत की ऊँचाई धरातल से 400 कि.मी. तक है। इस मण्डल की मोटाई लगभग 300 कि.मी. है।

(iii) इस मण्डल में तापमान ऊँचाई के साथ पुनः बढ़ता जाता है।

(iv) इस मण्डल में वायु में विद्युत आवेशित तरंगें प्रवाहित होती हैं और रेडियो तरंगें इसी मण्डल से परावर्तित होकर पुनः पृथ्वी पर लौट आती हैं जिससे रेडियो प्रसारण संभव होता है।

(ङ) बहिर्मण्डल

(i) आयनमण्डल के ऊपर स्थित परत वायुमण्डल की अन्तिम परत है।

(ii) इस मण्डल में गुरूत्वाकर्षण के प्रभाव की कमी के कारण गैसें अति विरल हैं। अतएव यहाँ वायु का घनत्व बहुत कम है।

- क्षोभमण्डल में ही मौसम की सभी घटनाएं घटती हैं।
- समतापमण्डल में किसी प्रकार की मौसम की घटनाएं नहीं घटित होती हैं। यह वायुयानों की उड़ानों के लिए आदर्श परत है।
- आयनमण्डल में आयन की प्रधानता है। आयन रेडियो तरंगों को पृथ्वी पर परावर्तित करके संचार व्यवस्था को संभव बनाते हैं।
- बहिर्मण्डल में वायु का घनत्व सबसे कम पाया जाता है।

पाठगत प्रश्न 9.2

1. क्षोभसीमा किसे कहते हैं?

_____

2. क्षोभमण्डल की ऊँचाई में विभिन्नता क्यों है?

_____

3. किन दो मण्डलों में तापमान ऊँचाई के साथ बढ़ता है?

_____

4. रेडियो तरंगें किस मण्डल से परावर्तित होती हैं?

_____

5. वायुमण्डल की किस परत में घनत्व सबसे कम पाया है?

_____

6. ओजोन गैस वायुमण्डल की किस परत में पाई जाती है?

_____

9.3 वायुमण्डलीय गैसों की चक्रीय प्रक्रिया

वायुमण्डल में पाई जाने वाली प्रमुख गैसों का चक्रण नीचे दिया गया है–

(क) कार्बन चक्र

(ख) ऑक्सीजन चक्र

(ग) कार्बन–डाई–आक्साईड चक्र

(क) कार्बन चक्र

1. वायुमण्डल में कार्बन तत्व कार्बन–डाई–आक्साईड गैस के रूप में विद्यमान है। समस्त जीवों के कार्बन का स्रोत वायुमण्डल है।
2. हरे पेड़–पौधे वायुमण्डल से कार्बन–डाई–आक्साईड प्राप्त करते हैं। जिसका उपयोग सूर्य प्रकाश के माध्यम से भोजन निर्माण हेतु करते हैं। जिसे प्रकाश संश्लेषण कहते हैं। इस क्रिया द्वारा पेड़–पौधे 'कार्बोहाइड्रेट' भोजन के रूप में तैयार करते हैं। इनके द्वारा निर्मित कार्बोहाइड्रेट का उपयोग जीव जन्तु अपने भोजन के लिए करते हैं।
3. पृथ्वी पर कार्बन–डाई–आक्साईड गैस जल–भण्डारों में घुल जाती है और चूने के जमाव के रूप में इकट्ठी हो जाती है। चूने के पत्थर के अपघटन के बाद कार्बन–डाई–आक्साईड वायुमण्डल में पुनः पहुँच जाती है। इस प्रक्रिया को कार्बनीकरण कहते हैं। इस प्रकार वायुमण्डल और पृथ्वी के जलभण्डारों के बीच कार्बन–डाई–आक्साईड का आदान–प्रदान होता रहता है।
4. पेड़–पौधे तथा जीव–जन्तुओं के श्वसन के द्वारा, पौधों और जीव–जन्तुओं के अपघटकों द्वारा, कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस जैसे जीवाश्म ईंधन के जलने से उत्पन्न कार्बन–डाई–आक्साईड गैस वायुमण्डल में वापस चली जाती है।

इस प्रकार वायुमण्डल से कार्बन–डाई–आक्साईड का आना और धरातल से पुनः वायुमण्डल में वापस जाने की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है और इससे कार्बन एवं जैव मण्डल के बीच सन्तुलन बना रहता है।

टिप्पणी

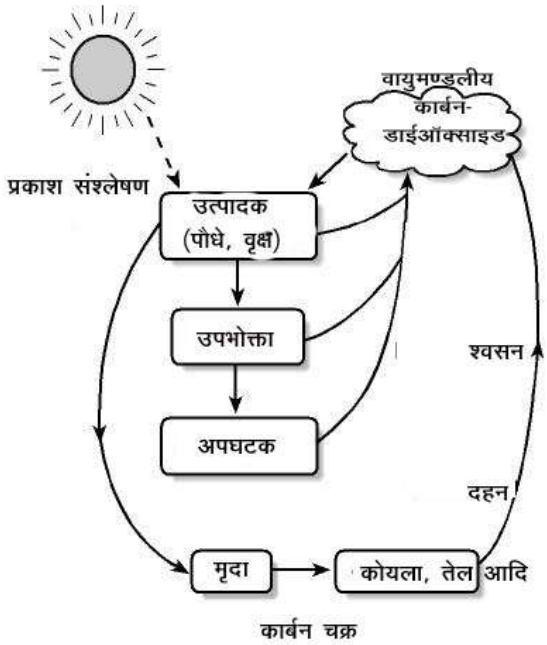

चित्र 9.3 कार्बन चक्र

(ख) ऑक्सीजन चक्र

1. ऑक्सीजन गैस वायुमण्डल में लगभग 21% है और समस्त जीव–जन्तु वायुमण्डल में उपस्थित ऑक्सीजन का उपयोग श्वसन के लिए करते हैं।

चित्र 9.4 ऑक्सीजन चक्र

2. ईंधन के रूप में लकड़ी, कोयला, पेट्रोलियम, गैस आदि के जलने के लिए ऑक्सीजन आवश्यक है और इसके जलने के बाद कार्बन-डाई-आक्साइड गैस उत्पन्न होती है।

3. वायुमण्डल में ऑक्सीजन का मुख्य स्रोत पेड़–पौधे हैं। जितने अधिक पेड़–पौधे होंगे उतनी ही अधिक ऑक्सीजन मिलेगी।

4. हरे पेड़–पौधे में प्रकाश संश्लेषण के द्वारा उत्पन्न ऑक्सीजन वायुमण्डल में वापस चली जाती है। इस प्रकार ऑक्सीजन चक्र की प्रक्रिया चलती रहती है।

(ग) नाइट्रोजन चक्र

नाइट्रोजन प्रत्येक जीवन का एक आवश्यक तत्व है। वायुमण्डल में 78% नाइट्रोजन गैस पाई जाती है। नाइट्रोजन का प्रमुख स्रोत मृदा में उपस्थित नाइट्रेट होते हैं। वायुमण्डल से नाइट्रोजन, वायुमण्डलीय तथा औद्योगिक प्रक्रियाओं द्वारा जैव घटकों में प्रवेश करती है। पौधों में से ये नाइट्रोजन यौगिक (खाद्य श्रृंखला) आहार द्वारा जन्तुओं में स्थानांतरित हो जाते हैं। वायुमण्डल की नाइट्रोजन गैस को नाइट्रोजन के यौगिक में परावर्तित करने की प्रक्रिया को नाइट्रोजन स्थिरीकरण कहते हैं। पेड़–पौधों के सूखने और जीव–जन्तुओं के मरने पर जीवाणुओं द्वारा अपघटन होता है। इससे नाइट्रोजन गैस बनती है जो फिर से वायुमण्डल में वापस चली जाती है। इस तरह नाइट्रोजन गैस की चक्रीय प्रक्रिया पूरी होती है।

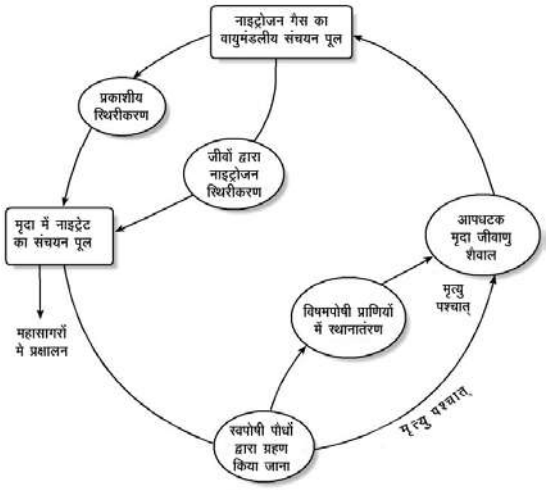

चित्र 9.5 नाइट्रोजन चक्र

- कार्बन का मुख्य स्रोत वायुमण्डल में पाई जाने वाली कार्बन डाई–आक्साइड गैस है।
- वायुमण्डल में ऑक्सीजन का मुख्य स्रोत पेड़–पौधे हैं।
- ऑक्सीजन का प्रयोग सांस लेने और ईंधन जलाने में होता है।
- नाइट्रोजन पृथ्वी पर जीवन के लिए अति आवश्यक है। पौधों में नाइट्रोजन का मुख्य स्रोत मृदा में उपस्थित नाइट्रेट होते हैं।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 9.3

(i) कार्बन का मुख्य स्रोत क्या है?

_____

(ii) ऑक्सीजन का मुख्य स्रोत क्या है?

_____

(iii) वायुमण्डल में नाइट्रोजन का अनुपात कितना हैं?

_____

आपने क्या सीखा

वायुमण्डल विभिन्न प्रकार की गैसों से बना है। ये गैसें पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुए हैं। दो प्रमुख गैसें नाइट्रोजन और ऑक्सीजन मिलकर वायुमण्डल के 99% भाग पर पायी जाती हैं। वायुमण्डल की संरचना क्षोभमण्डल, समतापमण्डल, मध्यमण्डल, आयनमण्डल और बहिर्मण्डल से मिलकर हुई है। क्षोभमण्डल में सभी प्रकार की मौसम सम्बंधी घटनाऐं घटित होती हैं, जबकि समतापमण्डल वायुयानों की उड़ानों के लिए आदर्श माना जाता है। आयनमण्डल से रेडियो तरंगे परावर्तित होकर पृथ्वी पर वापस आती है। इसके द्वारा रेडियो प्रसारण संभव होता है।

वायुमण्डल में कार्बन तत्व कार्बन–डाई–आक्साईड गैस के रूप में विद्यमान है। कार्बन का मुख्य स्रोत पेट्रोलियम, लकड़ी, कोयला और गैसे हैं। वायुमण्डल में ऑक्सीजन का मुख्य स्रोत पेड़–पौधे हैं। श्वसन और ईंधन के जलने हेतु ऑक्सीजन अति महत्वपूर्ण है। पौधों के नाइट्रोजन का प्रमुख स्रोत मृदा में उपस्थित नाइट्रेट है। पेड़-पौधों और जीव–जन्तुओं के अपघटन से नाइट्रोजन गैस बनती है और पुनः वायुमण्डल में वापस चली जाती है।

पाठान्त प्रश्न

1. वायुमण्डल किसे कहते हैं?
2. क्षोभमण्डल और समतापमण्डल में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. ओजोन गैस का महत्व बताइए।

4. नाइट्रोजन गैस की चक्रीय प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए।

5. ऑक्सीजन चक्र को आरेख की सहायता से स्पष्ट कीजिए।

(6) वायुमण्डल की संरचना का वर्णन आरेख की सहायता से कीजिए।

(7) निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए:

(i) कार्बन चक्र

(ii) वायुमण्डलीय गैसों का महत्व

(iii) जलवाष्प

(iv) धूल कण

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

9.1

(i) नाइट्रोजन और आक्सीजन

(ii) उष्णार्द्र क्षेत्र

(iii) सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी किरणों का अवशोषण।

9.2

(1) देखें अनुच्छेद 9.1 (क)

(2) देखें अनुच्छेद 9.2 (ख)

(3) देखें अनुच्छेद 9.3 (ग)

(4) आयन मण्डल

(5) बहिर्मण्डल

(6) समताप मण्डल

9.3

(i) जलावन ईंधन एवं जीवाश्म ईंधन–कोयला, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस

(ii) पेड़–पौधे

(iii) 78 प्रतिशत

टिप्पणी

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1 अनुच्छेद 9.1 देखें

2 अनुच्छेद 9.2 (क और ख) देखें

3 अनुच्छेद 9.1 (क) के अन्तर्गत ओजोन गैस देखें

4 अनुच्छेद 9.3 (ग) देखें

5 अनुच्छेद 9.3 (ख) देखें

6 अनुच्छेद 9.7 देखें

7 (i) अनुच्छेद 9.3 (क) देखें, (ii) अनुच्छेद 9.1 देखें (iii) अनुच्छेद 9.1 (ख) देखें (iv) अनुच्छेद 9.1 (ग) देखें।

10

सूर्यातप और तापमान

हमने पिछले पाठ में अध्ययन किया है कि पृथ्वी के चारों ओर फैला वायु का आवरण वायुमंडल कहलाता है। वायुमंडल विभिन्न गैसों, जलवाष्प और धूल–कणों का मिश्रण है जो पेड़–पौधों और जीव–जंतुओं के जीवन के लिए आवश्यक है। हमें अपने आप को गर्म रखने तथा बढ़ने के लिए अनुकूल तापमान भी चाहिये। क्या आपने कभी विचार किया है कि पृथ्वी की सतह पर ताप और ऊर्जा प्राप्ति का स्रोत क्या है? धरातल दिन में गर्म और रात में ठंडा क्यों हो जाता है? आइये, प्रस्तुत पाठ में इन सभी प्रश्नों और इनसे सम्बन्धित अन्य प्रश्नों के उत्तर मालुम करें।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- सूर्यताप के महत्व को समझा सकेंगे और आरेख की सहायता से किसी स्थान पर सूर्य की किरणों के आपतन कोण और उससे मिलने वाली उष्मा की तीव्रता के बीच संबंध स्थापित कर सकेंगे;
- वायुमंडल को गर्म और ठंडा करने वाली विभिन्न प्रक्रियाओं (विकरण, चालन, संवहन और अभिवहन) को स्पष्ट कर सकेंगे;
- आरेख की मदद से उष्मा बजट समझा सकेंगे;
- सूर्यातप एवं पार्थिव विकिरण में अन्तर बता सकेंगे;
- भूमंडल के गर्म होने के कारण और उसके प्रभाव को समझा सकेंगे;
- तापमान के क्षैतिज वितरण को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों की व्याख्या कर सकेंगे;
- जनवरी और जुलाई महीनों में तापमान के विश्व वितरण की प्रमुख विशेषताओं को मानचित्र की सहायता से समझा सकेंगे;
- ताप की विलोमता की दशाओं को स्पष्ट कर सकेंगे।

टिप्पणी

10.1 सूर्यातप (सौर विकिरण)

पृथ्वी पर ऊर्जा का प्रमुख स्रोत सूर्य है। यह ऊर्जा अंतरिक्ष में चारों ओर लघु तरंगों के रूप में विकरित होती रहती है। इस विकिरित ऊर्जा को सौर विकिरण कहा जाता है।

कुल सौर विकिरण का मात्र दो इकाई (1,00,00,00,000 का 0.000000002) ही धरातल पर पहुंचता है। दूसरे शब्दों में अगर हम सौर विकिरण की कुल मात्रा को एक अरब इकाई मान लें तो धरातल पर केवल 2 इकाई की उर्जा प्राप्त होती है। सौर विकिरण का यह अल्प भाग ही पृथ्वी के लिये बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि पृथ्वी पर होने वाली सारी भौतिक एवं जैविक घटनाओं के लिये ऊर्जा का एकमात्र स्रोत यही है।

लघु तरंगों के रूप में पृथ्वी की ओर आने वाले सौर विकिरण को सूर्यातप कहते हैं। पृथ्वी की सतह पर पहुँचने वाली सूर्याताप की मात्रा सूर्य से विकिरित ताप की मात्रा से बहुत ही कम होती है, क्योंकि पृथ्वी सूर्य से बहुत छोटी है और यह सूर्य से बहुत दूर है। इसके अतिरिक्त वायुमंडल में उपस्थित जलवाष्प, धूलकण, ओज़ोन तथा अन्य गैसे सूर्यातप की कुछ मात्रा को सोख लेती हैं।

- पृथ्वी की सतह पर ऊर्जा का प्रमुख स्रोत सूर्य है।
- पृथ्वी की ओर आने वाले सौर विकिरण को **सूर्यातप** कहते हैं।

(क) सूर्यातप को प्रभावित करने वाले कारक

सूर्यातप की मात्रा पृथ्वी की सतह पर सब जगह समान नहीं है। इसकी मात्रा स्थान–स्थान और समय–समय पर भिन्न होती है। ऊष्ण कटिबन्ध में मिलने वाला वार्षिक सूर्यातप सर्वाधिक होता है और ध्रुवों की ओर यह धीरे–धीरे कम होता जाता है। ग्रीष्म ऋतु में सूर्यातप अधिक होता है और शीत ऋतु में कम। धरातल पर प्राप्त सूर्यातप की मात्रा को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते हैं :

(i) सूर्य की किरणों का आपतन–कोण

(ii) दिन की अवधि

(iii) वायुमंडल की पारदर्शकता

(i) सूर्य की किरणों का आपतन कोण : पृथ्वी के गोलाकार होने के कारण सूर्य की किरणें इसके तल के साथ विभिन्न स्थानों पर अलग–अलग कोण बनाती है। पृथ्वी के किसी बिन्दु पर सूर्य की किरण और पृथ्वी के वृत्त की स्पर्श रेखा के साथ बनने वाले कोण को **आपतन-कोण** कहते हैं। आपतन कोण सूर्याताप को दो प्रकार से प्रभावित करता है। पहला, जब सूर्य की स्थिति ठीक सिर के ऊपर होती है, उस समय सूर्य की किरणें लम्बवत् पड़ती हैं। आपतन कोण बड़ा होने के कारण सूर्य की किरणें छोटे से क्षेत्र पर संघनित हो जाती हैं, जिससे वहाँ अधिक ऊष्मा (सूर्यातप) प्राप्त होती है। यदि सूर्य की किरणें तिरछी पड़ती हैं तो आपतन कोण छोटा होता है। इससे सूर्य की किरणें बड़े क्षेत्र पर फैल जाती हैं और उनसे वहाँ

कम ऊष्मा (सूर्यातप) प्राप्त होती है। दूसरे, तिरछी किरणों को सीधी किरणों (लम्बवत्–किरणों) की अपेक्षा वायुमंडल में अधिक दूरी पार करके धरातल पर आना पड़ता है। सूर्य की किरणें जितना अधिक लम्बा मार्ग पार करेंगी उतनी ही अधिक उनकी ऊष्मा वायुमंडल द्वारा सोख ली जाएगी या परावर्तित कर दी जायेगी। इसी कारण एक स्थान पर तिरछी किरणों से लम्बवत् किरणों की अपेक्षा कम सूर्यातप प्राप्त होता है। (चित्र 10.1)

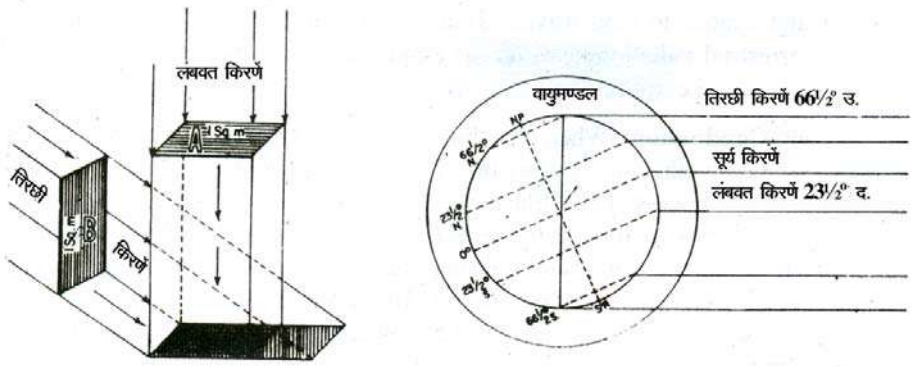

चित्र 10.1 सूर्यातप पर सूर्य की किरणों के आपतन कोण का प्रभाव

(ii) दिन की अवधि : दिन की अवधि स्थान–स्थान और ऋतुओं के अनुसार बदलती रहती है। पृथ्वी की सतह पर मिलने वाली सूर्यातप की मात्रा का दिन की अवधि से सीधा संबंध है। दिन की अवधि जितनी लम्बी होगी सूर्यातप की मात्रा उतनी ही अधिक मिलेगी। इसके विपरीत दिन की अवधि छोटी होने पर सूर्यातप कम मिलेगा।

(iii) वायुमंडल की पारदर्शकता : वायुमंडल की पारदर्शकता भी धरातल को मिलने वाली सूर्यातप की मात्रा को प्रभावित करती है। वायुमंडल की पारदर्शकता बादलों की उपस्थिति, उनकी गहनता, धूलकण तथा जलवाष्प पर निर्भर करती है; क्योंकि वे सूर्यातप को परावर्तित, अवशोषित तथा स्थानान्तरित करते हैं। घने बादल सूर्यातप को धरातल पर पहुँचने में बाधा डालते हैं; जबकि बादलों रहित साफ आकाश धरातल पर सूर्यातप पहुँचने में बाधा नहीं डालता। इसी कारण साफ आकाश की अपेक्षा बादलों से घिरे आकाश के समय सूर्यातप कम मिलता है। जलवाष्प भी सूर्यातप को अवशोषित कर धरातल पर उसकी प्राप्ति की मात्रा कम कर देती है।

- धरातल पर सूर्यातप प्राप्ति की मात्रा सूर्य की किरणों का आपतन कोण, दिन की अवधि और वायुमंडल की पारदर्शकता पर निर्भर करती है।

टिप्पणी

(ख) वायुमंडल का गर्म और ठंडा होना

वायुमंडल की ऊर्जा तथा गर्मी का एकमात्र स्रोत सूर्य है, परन्तु यह प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं करता। उदाहरणार्थ जब हम किसी पर्वत पर चढ़ते हैं या वायुमंडल में सूर्य की ओर ऊपर जाते हैं तो ऊँचाई बढ़ने के साथ–साथ तापमान बढ़ने के बजाय घटता है। इसका कारण है वायुमंडल के गर्म होने की प्रक्रिया का जटिल होना। वायुमंडल को सीधे गर्म करने वाली चार प्रक्रियाएं हैं। इनके नाम हैं :– (i) विकिरण, (ii) चालन, (iii) संवहन और (iv) अभिवहन।

(i) **विकिरण** : जब किसी ताप–स्रोत से ताप, तरंगों द्वारा किसी वस्तु तक सीधे पहुँचता है तो इस प्रक्रिया को **विकिरण** कहते हैं। विकिरण की इस प्रक्रिया में ऊष्मा आकाश में से होकर स्थानांतरित होती हैं। पृथ्वी को मिलने वाली और इससे छोड़ी जाने वाली अधिकांश ताप ऊर्जा विकिरण द्वारा ही स्थानांतरित होती हैं। विकिरण प्रक्रिया के लिये निम्नलिखित तथ्य उल्लेखनीय हैं :

(1) सभी वस्तुएं चाहे वे गर्म हों या ठंडी निरंतर ऊर्जा का विकिरण करती रहती हैं।

(2) ठंडी वस्तुओं की अपेक्षा गर्म वस्तुओं के प्रति इकाई क्षेत्रफल से अधिक ऊर्जा विकिरित होती है।

(3) वस्तु का तापमान विकिरण तरंगों की लंबाई निर्धारित करता है। तापमान और विकिरण तरंगों की लंबाई में उल्टा संबंध होता है। कोई वस्तु जितनी अधिक गर्म होगी उसकी विकिरित तरंगों की लंबाई उतनी ही छोटी होगी।

(4) सूर्यातप पृथ्वी की सतह पर लघु तरंगों के रूप में पहुँचता है और पृथ्वी द्वारा छोड़ी जाने वाली ताप ऊर्जा दीर्घ तरंगों में होती है।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि वायुमंडल लघु तरंगों के लिये पारगम्य है और दीर्घ तरंगों के लिये अपारगम्य। यही कारण है कि वायुमंडल सूर्यातप की अपेक्षा पृथ्वी द्वारा छोड़ी गई ऊष्मा या पार्थिव विकिरण से अधिक गर्म होता है।

(ii) **चालन :** जब असमान तापमान की दो वस्तुएं एक–दूसरे के सम्पर्क में आती हैं तो ताप ऊर्जा अधिक गर्म वस्तु से कम गर्म वस्तु की ओर गमन करती है और इस प्रक्रिया को **चालन** कहते हैं। चालन क्रिया द्वारा ताप ऊर्जा का प्रवाह तब तक होता रहता है जब तक दोनों वस्तुओं के तापमान एक समान नहीं हो जाते अथवा उनके बीच संपर्क टूट नहीं जाता। वायुमंडल में चालन प्रक्रिया उस क्षेत्र में काम करती है, जहाँ वायुमंडल पृथ्वी की सतह के संपर्क में आता है। मगर चालन की प्रक्रिया वायुमंडल को गर्म करने में बहुत ही कम भूमिका निभाती है; क्योंकि चालन का प्रभाव धरातल के निकटस्थ वायु पर ही पड़ता है।

(iii) **संवहन :** वायु की सामान्यतः ऊर्ध्वाधर गति के कारण ऊष्मा का स्थानांतरण **संवहन** कहलाता है। वायुमडल की निचली परतें पृथ्वी द्वारा विकिरण अथवा चालन

द्वारा गर्म हो जाती है। वायु गर्म होकर फैलती है। इसका घनत्व कम हो जाता है और वह ऊपर उठती है। गर्म वायु के लगातार ऊपर उठने के कारण वायुमंडल की निचली परतों में खाली जगह हो जाती है। इस खाली जगह को भरने के लिए ऊपर से ठंडी वायु नीचे उतरती है और इस प्रकार संवहनीय धारायें बन जाती है। संवहन धाराओं में ताप का स्थानांतरण नीचे से ऊपर की ओर होता है और इस प्रकार वायुमंडल धीरे–धीरे गर्म हो जाता है।

(iv) **अभिवहन** : पवनें एक स्थान से दूसरे स्थान तक ताप का स्थानांतरण करती हैं। यदि कोई स्थान गर्म क्षेत्रों से आने वाली पवनों के मार्ग में पड़ता है तो उसका तापमान बढ़ जाएगा। यदि वह ठंडे क्षेत्रों से आने वाली पवनों के मार्ग में पड़ता है तो उसका तापमान घट जाएगा। पवनों द्वारा ताप का क्षैतिज स्थानांतरण **अभिवहन** कहलाता है।

पाठगत प्रश्न 10.1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक या दो शब्दों में दीजिए :

   (क) सूर्य से पृथ्वी की ओर सौर ऊर्जा का प्रवाह किस प्रक्रिया द्वारा होता है ?

   _____

   (ख) पृथ्वी को सौर विकिरण का कितना भाग प्राप्त होता है ?

   _____

   (ग) उस प्रक्रिया का नाम बताइए जिसमें ऊष्मा का क्षैतिज स्थानांतरण पवनों द्वारा होता है?

   _____

   (घ) किसी स्थान पर सूर्यातप की मात्रा को प्रभावित करने वाले तीन कारकों के नाम बताइए।

   (i)_____(ii)_____(iii)_____

2. निम्नलिखित प्रत्येक में से सही विकल्प चुनिए और उस पर चिन्ह (√) लगाइये :

   (क) पृथ्वी की सतह पर सूर्यातप आता है :–

   (i) लघुतरंगों में (ii) दीर्घ तरंगों में

   (iii) दोनों तरंगों में (iv) उनमें में किसी द्वारा नहीं।

   (ख) वायुमंडल गर्म होता है –

   (i) सूर्यातप द्वारा (ii) पृथ्वी द्वारा छोड़ी गई ऊष्मा द्वारा

टिप्पणी

(iii) दोनों प्रक्रियाओं द्वारा (iv) किसी के द्वारा नहीं

(ग) सूर्यास्त के बाद भी वायुमंडल गर्म होता रहता है –

(i) सूर्यास्त द्वारा (ii) पार्थिव विकिरण द्वारा

(iii) चालन द्वारा (iv) संवहन द्वारा

10.2 ऊष्मा बजट

सौर विकिरण का वह भाग जो पृथ्वीतल पर लघु तरंगों के रूप में आता है, सूर्यातप कहलाता है। पृथ्वी भी अन्य वस्तुओं की भांति ताप ऊर्जा विकिरित करती रहती है इसे **पार्थिव विकिरण** कहते हैं। पृथ्वी की सतह का औसत वार्षिक तापमान हमेशा स्थिर रहता है। इसका प्रमुख कारण सूर्यातप और पार्थिव विकिरण के बीच संतुलन का होना है। इसी संतुलन को **ऊष्मा बजट** कहते हैं।

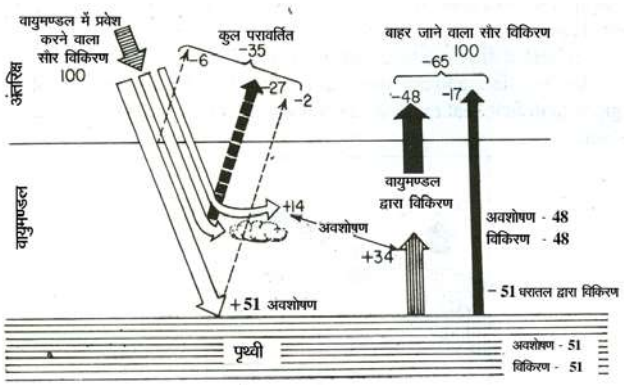

चित्र 10.2 ऊष्मा बजट (सूर्यातप और पार्थिव विकिरण के बीच संतुलन)

कल्पना करें कि वायुमंडल की ऊपरी सीमा पर सूर्यास्त की 100 इकाईयाँ प्राप्त हो रही है। इनमें से लगभग 35 इकाईयाँ पृथ्वी तल पर आने से पहले ही अंतरिक्ष में परावर्तित हो जाती हैं। इन 35 इकाइयों में से 6 इकाइयाँ वायुमंडल की ऊपरी सीमा से अंतरिक्ष को परावर्तित हो जाती हैं। 27 इकाइयाँ बादलों द्वारा और 2 इकाइयाँ धरातल के हिम और बर्फ से ढके क्षेत्रों द्वारा परावर्तित हो जाती हैं। शेष 65 (100–35) इकाइयों में से 51 इकाइयाँ सीधे पृथ्वीतल को प्राप्त होती हैं और 14 इकाइयों को वायुमंडल की विभिन्न गैंसे, जलवाष्प और धूलकण अवशोषित कर लेते हैं।

सूर्यातप द्वारा प्राप्त 51 इकाईयों को पृथ्वी भी पार्थिव विकिरण के रूप में लौटा देती है। इन 51 इकाइयों में से 34 इकाइयाँ वायुमंडल द्वारा अवशोषित की जाती हैं और शेष 17 इकाइयाँ अंतरिक्ष में विलीन हो जाती हैं।

वायुमंडल भी अवशोषित की गई 48 इकाइयों (14 सूर्यातप की और 34 पार्थिक विकिरण की) को धीरे–धीरे अंतरिक्ष में विलीन कर देता है। इस प्रकार ऊष्मा की 65

इकाइयाँ जिन्होंने वायुमंडल में प्रवेश किया था अंतरिक्ष में वापिस कर दी जाती हैं। इससे सूर्यताप और पार्थिव विकिरण के मध्य एक संतुलन बना रहता है।

- सूर्यताप और पार्थिव विकिरण के मध्य बने संतुलन को **ऊष्मा बजट** कहते हैं।

10.2 (क) अक्षांशीय ऊष्मा संतुलन

यद्यपि सम्पूर्ण पृथ्वी पर सूर्यातप और पार्थिव विकिरण के बीच संतुलन बना रहता है। परंतु यह संतुलन विभिन्न अक्षांशों के मध्य कायम नहीं रहता। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि सूर्यातप की मात्रा और पार्थिव विकरण का सीधा संबंध अक्षांशों से है। ऊष्ण कटिबंधीय प्रदेश में सूर्यातप की मात्रा पार्थिव विकरण से अधिक है। इसलिए यह अतिरिक्त ताप का क्षेत्र है। ध्रुवीय क्षेत्र में ताप–प्राप्ति ताप–ह्रास की अपेक्षा कम है। अतः यह ताप–अभाव का प्रदेश है। इस प्रकार सूर्यातप विभिन्न अक्षांशों के मध्य ऊष्मा असंतुलन पैदा करता है। धरातलीय पवनें और महासागरीय धारायें अतिरिक्त ताप–क्षेत्र से ताप–अभाव क्षेत्र की ओर ऊष्मा का स्थानांतरण करके इस असंतुलन को कुछ सीमा तक कम करती हैं। इसी को सामान्यतः **अक्षांशीय ऊष्मा संतुलन** कहते हैं।

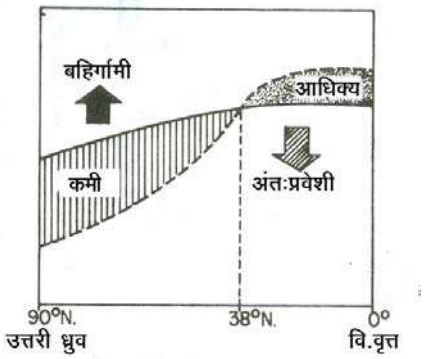

चित्र 10.3 अक्षांशीय ऊष्मा संतुलन

10.3 भूमंडलीय तापन

आज हमारी पृथ्वी के समक्ष सबसे बड़ी समस्या भूमंडलीय तापन है। वैज्ञानिक इसका संबंध वायु में ओजोन परत के घटने और कार्बन–डाइ–आक्साइड के बढ़ने से बताते हैं। आप जानते हैं कि समतापमंडल के ऊपरी भाग में ओज़ोन गैस की परत है। ओज़ोन सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी किरणों को अवशोषित कर लेती है और उन्हें पृथ्वीतल तक नहीं पहुँचने देती। वैज्ञानिकों का मत है कि ओज़ोन परत की मोटाई अब घट रही है। इस कारण वायुमंडल की गैसों का संतुलन बिगड़ रहा है और सूर्य की पराबैंगनी किरणें धरातल पर पहुंच रही है। ये धरातल के तापमान को बढ़ाने और पेड़–पौधों तथा जीव–जंतुओं को कई तरह से प्रभावित करने के लिए उत्तरदायी हैं।

गत 50 वर्षों में कोयला और पेट्रोलियम के उत्पादों को बड़ी मात्रा में जलाने के परिणाम स्वरूप वायुमंडल में कार्बन–डाई–ऑक्साइड का अनुपात धीरे–धीरे बढ़ रहा है। ऐसा

टिप्पणी

अनुमान है कि पिछले 100 वर्षों के अंतराल में कार्बन–डाइ–आक्साइड की मात्रा में 25 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। कार्बन–डाई–आक्साइड सूर्यातप को तो गुजर जाने देती है; परन्तु पार्थिव विकिरण को अवशोषित कर लेती है। वायुमंडल में कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की मात्रा बढ़ने के परिणाम स्वरूप, भूमण्डल का तापमान बढ़ रहा है। ऐसा अनुमान है कि गत 100 वर्षों में कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की मात्रा बढ़ने के कारण वायुमंडल का तापमान लगभग 0.5ºC बढ़ गया है। बड़े पैमाने पर वनों के विनाश, कूड़े–करकट का जलाना, कारखानों में दोहन क्रियाओं और ज्वालामुखी के उद्‌गारों के कारण भी वायुमंडल में कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की मात्रा बढ़ी है।

यदि ओजोन परत का ह्रास और कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि इसी प्रकार होती रही तो ऐसा समय आ सकता है, जब वायुमंडल का तापमान इस सीमा तक बढ़ जायेगा, कि इससे ध्रुवीय हिमचादर पिघल सकती है और समुद्र–तल के ऊँचा होने से तटीय भाग तथा द्वीप पानी में डूब सकते हैं। ओज़ोन परत के ह्रास और कार्बन–डाइऑक्साइड में वृद्धि के कारण सारी पृथ्वी के तापमान के बढ़ने को **भूमंडलीय तापन** कहते हैं।

- अक्षांशीय ऊष्मा संतुलन : सूर्यातप द्वारा अक्षांशों के मध्य पैदा किये ऊष्मा असंतुलन को कम करने के लिए पवनों और महासागरीय धाराओं द्वारा निम्न अक्षांशों से उच्च अक्षांशों की ओर ऊष्मा का स्थानांतरण
- भूमंडलीय तापन : ओज़ोन परत के ह्रास और कार्बन–डाइऑक्साइड की वृद्धि के कारण सारी पृथ्वी के वायुमंडल के तापमान का बढ़ना।

पाठगत प्रश्न 10.2

1. निम्नलिखित शब्दों की परिभाषा दीजिए :

   (क) ऊष्मा बजट (ख) अक्षांशीय ऊष्मा संतुलन (ग) भूमंडलीय तापन

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए :

   (क) पृथ्वी की सतह को सूर्यातप का कितना प्रतिशत भाग प्राप्त होता है ?

   (ख) वायुमंडल की ऊपरी सीमा से सूर्यातप का कितने प्रतिशत भाग अंतरिक्ष को परावर्तित हो जाता है?

   (ग) अतिरिक्त ऊष्मा के क्षेत्र का नाम बताइए।

   (घ) ऊष्मा–अभाव का क्षेत्र कौन–सा है?

10.4 तापमान एवं उसका वितरण

ऊष्मा वह ऊर्जा है जो किसी वस्तु को गर्म करती है जबकि **तापमान** किसी वस्तु में ऊष्मा की तीव्रता की माप है। यद्यपि ऊष्मा और तापमान दो अलग–अलग पहलू हैं

परन्तु इन दोनों के बीच बहुत निकट का संबंध है। जब किसी वस्तु में ऊष्मा की वृद्धि या कमी होती है तो उस वस्तु का तापमान भी क्रमशः बढ़ या घट जाता है। इसके अतिरिक्त तापमान का अंतर ऊष्मा के प्रवाह की दिशा निर्धारित करता है। इस बात की जानकारी तापमान के वितरण का अध्ययन करके की जा सकती है।

तापमान का क्षैतिज एवं उर्ध्वाधर वितरण दोनों ही बदलते रहते हैं। अतः तापमान के वितरण का अध्ययन नीचे दिए दो रूपों में किया जाता है :

(क) तापमान का क्षैतिज वितरण

(ख) तापमान का ऊर्ध्वाधर वितरण

(क) **तापमान का क्षैतिज वितरण :** पृथ्वी की सतह पर अक्षांश और देशांतर रेखाओं के आरपार तापमान के वितरण को **तापमान का क्षैतिज वितरण** कहते हैं। इस वितरण को मानचित्र में समताप रेखाओं द्वारा दर्शाया जाता है। **समताप रेखा** मानचित्र पर खींची गई वह काल्पनिक रेखा है जो मध्य समुद्र तल पर उतारे गये समान तापमान वाली स्थानों को मिलाती है। यदि आप तापमान के वितरण को दर्शाने वाली समताप रेखाओं के मानचित्र का अध्ययन करें तो आपको ज्ञात होगा कि पृथ्वी की सतह पर तापमान का वितरण समान नहीं है। तापमान के असमान वितरण के लिये उत्तरदायी कारक हैं – (i) अक्षांश, (ii) स्थल और जल की विषमता, (iii) उच्चावच एवं ऊँचाई, (iv) महासागरीय धारायें, (v) पवनें, (vi) वनस्पति आवरण, (vii) मिट्टी की प्रकृति और (viii) भूमि का ढाल एवं अभिमुखता।

(i) **अक्षांश** : आपने सूर्यातप के अंतर्गत पहले ही पढ़ लिया है कि विषुवत वृत्त से ध्रुवों की ओर जाने पर सूर्य की किरणों का आपतन–कोण छोटा होता जाता है। आपतन कोण जितना बड़ा होगा उतना ही ऊँचा तापमान होगा। इसके विपरीत छोटे आपतन कोण के कारण तापमान नीचे होते हैं। इस सिद्धांत के आधार पर ऊष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में ऊँचे तापमान पाये जाते हैं और ध्रुवों पर वर्ष के अधिकतर भाग में तापमान हिमांक बिंदु से नीचे रहते हैं।

(ii) **स्थल और जल की विषमता :** स्थल और जल की विषमता का तापमान के वितरण पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। दिन (सूर्य के प्रकाश) में स्थल भाग जल भाग की अपेक्षा शीध्र और अधिक गर्म हो जाता है। यह रात में भी शीघ्र और अधिक ठंडा हो जाता है। अतः दिन के समय अपेक्षाकृत ऊँचे तापमान स्थल भाग पर पाये जाते हैं और रात के समय जलभाग पर। इसी प्रकार तापमान के वितरण में ऋतुओं के अनुसार भी भिन्नताएँ मिलती हैं। ग्रीष्म ऋतु में महासागरों की अपेक्षा महाद्वीपों पर ऊँचे तापमान मिलते हैं। शीत ऋतु में महाद्वीपों की अपेक्षा महासागरों पर ऊँचे तापमान पाये जाते हैं।

स्थल और जल के बीच तापमान की बहुत बड़ी विषमता होने के बावजूद भी अलग–अलग प्रकार के भूभागों के भी गर्म होने की दर अलग–अलग है। हिम से ढका ध्रुवीय भाग बहुत धीरे–धीरे गर्म होता है; क्योंकि वह सौर ऊर्जा का

टिप्पणी

अधिकतर भाग परावर्तित कर देता है। वनस्पति से ढका भूभाग भी ज्यादा गर्म नहीं हो पाता; क्योंकि सूर्यातप की अधिक मात्रा पौधों में से जल को वाष्पित करने में खर्च हो जाती है।

(iii) **उच्चावच एवं ऊँचाई :** पर्वत, पठार और मैदान जैसे उच्चावच लक्षण तापमान के वितरण को नियंत्रित करते हैं। पवनों के प्रवाह में पर्वत अवरोध का कार्य करते हैं। हिमालय पर्वतमाला शीतऋतु में मध्य एशिया से आने वाली ठंडी पवनों को रोक कर भारत के तापमान को नीचे गिरने से रोकती हें इसी कारण शीत ऋतु में कोलकत्ता (भारत) उतना ठंडा नहीं होता जितना वयांगजो (कैन्टन, चीन) यद्यपि दोनों नगर एक ही अक्षांश वृत्त पर स्थित हैं।

हम समुद्र तल से जैसे–जैसे ऊपर जाते हैं तापमान में धीरे–धीरे गिरावट का अनुभव करते हैं। तापमान औसतन प्रति 165 मीटर की ऊँचाई पर $1.^0$ सें. की दर से गिरता है। **इसे सामान्य ह्रास दर** कहते हैं। कम ऊँचाई की वायु तप्त धरातल के निकट होने और घनी होने के कारण अधिक ऊँचाई की वायु से ज्यादा गर्म होती है। यही कारण है कि ग्रीष्म ऋतु में मैदानों की अपेक्षा पर्वतीय भाग ठंडे होते हैं (चित्र 10.4)। यहाँ यह भी याद रखना चाहिए कि किसी स्थान पर ऊँचाई के साथ तापमान कम होने की दर दिन के विभिन्न समयों, ऋतु और स्थान की स्थिति के अनुसार बदलती रहती है।

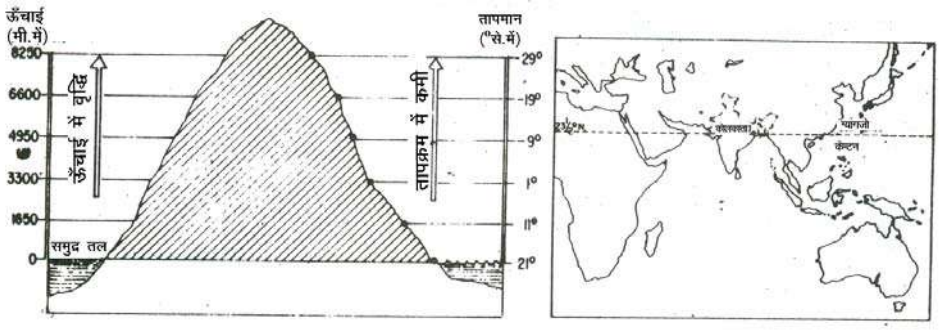

चित्र 10.4 ऊँचाई का तापमान पर प्रभाव

क्विटो और गुआयक्विल विषुवत वृत्त पर एक दूसरे के निकट स्थित इक्वेडोर (द. अमरीका) के दो नगर हैं। इन दोनों नगरों की समुद्र तल से ऊँचाई क्रमशः 2800 मीटर तथा 12 मीटर है। ऊँचाई में भिन्नता के कारण क्विटो का औसत वार्षिक तापमान 13.3 डिग्री सेल्सीयस है; जबकि गुआयाक्विल का औसत वार्षिक तापमान 25.5 डिग्री सेल्सीयस है।

(iv) **महासागर धाराएं :** महासागर धारायें गर्म और ठंडी दो प्रकार की होती हैं। गर्म धाराएं जिन तटों के साथ बहती हैं, उन्हें अपेक्षाकृत गर्म कर देती हैं और ठंडी धारायें निकटवर्ती तटों को ठंडा बना देती हैं। उत्तरी अटलांटिक ड्रिफ्ट (गर्म धारा) के कारण उत्तरी–पश्चिमी यूरोप का तट सर्दियों में जमने नहीं पाता, जबकि कनाडा का क्यूबेक तट लेब्राडोर ठण्डी धारा के कारण सर्दियों में जम जाता है। यद्यपि यह उत्तरी–पश्चिमी यूरोप के तट की अपेक्षा निम्न अक्षांशों में स्थित है।

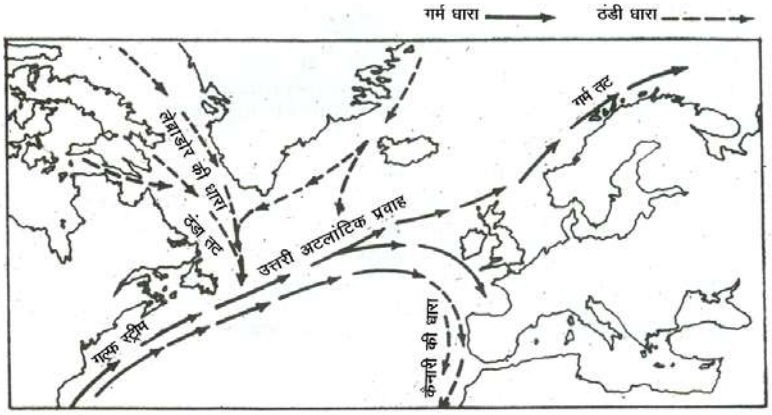

चित्र 10.5 गर्म और ठंडी महासागर धाराओं का प्रभाव

(v) **पवनें :** पवनें एक स्थान से दूसरे स्थान पर ऊष्मा का स्थानांतरण करती हैं। इसके बारे में आप अभिवहन के अंतर्गत भी पढ़ चुके हैं।

(vi) **वनस्पति आवरण :** वनस्पति आवरण सूर्य से प्राप्त ऊष्मा को सोख लेती है और पार्थिव विकिरण को रोकती है। इसके विपरीत वनस्पति विहीन मृदा सूर्य से प्राप्त ऊष्मा को शीघ्र सोख लेती है और शीघ्र ही विकिरित कर देती है। इसलिए घने वनों में तापमान में भिन्नता मरुस्थलीय प्रदेशों की अपेक्षा कम पाई जाती है। उदाहरणार्थ विषुवतीय प्रदेशों में वार्षिक ताप परिसर लगभग 5 डिग्री से. है, जबकि मरूस्थलीय प्रदेशों में यह 38 डिग्री तक बढ़ जाता है।

(vii) **मिट्टी की प्रकृति :** मिट्टी का रंग, उसकी बनावट तथा संगठन किसी स्थान के तापमान को प्रभावित करते हैं। बलुई मिट्टी की अपेक्षा काली, पीली तथा चिकनी मिट्टी अधिक ऊष्मा अवशोषित करती हैं। साथ ही बलुई मृदा, काली, पीली तथा चिकनी मृदा की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से ऊष्मा विकिरित कर देती है। यही कारण है कि काली मिट्टी के क्षेत्रों में तापमान की भिन्नता कम मिलती है; जबकि बलुई मिट्टी के क्षेत्रों में तापमान में बहुत अधिक भिन्नता मिलती है। समतल और चमकदार धरातल कम ऊष्मा ग्रहण करता है और शीघ्र विकिरित कर देता है जबकि ऊबड़–खाबड़ धरातल अधिक ऊष्मा सोखता है और इसका विकिरण धीरे–धीरे करता है।

(viii) भूमि का ढाल एवं अभिमुखता : भूमि के ढाल की दिशा और उसका कोण सूर्यातप की प्राप्ति को नियंत्रित करते हैं। सूर्य की ओर अभिमुख ढलान अधिक सूर्यातप प्राप्त करते है; जबकि सूर्य से विमुख ढाल कम ऊष्मा प्राप्त करते हैं। हिमालय के दक्षिणी ढाल, उत्तरी ढलानों की अपेक्षा अधिक गर्म हैं। यही कारण है कि अधिकांश बस्तियां और कृषि कार्य हिमालय के दक्षिणी ढलानों पर पाये जाते हैं।

- समुद्र तल पर उतारे गये समान तापमान वाले स्थानों को मिलाने वाली मानचित्र पर खींची गई रेखाओं को **समताप रेखा** कहते हैं।
- अक्षांश, स्थल और जल की विषमता, उच्चावच एवं ऊँचाई, महासागर धारायें, पवनें, वनस्पति आवरण, मिट्टी की प्रकृति एवं भूमि का ढाल तथा अभिमुखता धरातल पर तापमान के वितरण को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं।

संसार में तापमान के क्षैतिज वितरण को जनवरी और जुलाई महीने के समताप रेखा मानचित्रों द्वारा अध्ययन किया जा सकता है। इन दो महीनों में अधिकतम और न्यूनतम तापमानों की ऋतुओं के अनुसार भिन्नता उत्तरी और दक्षिणी गोलार्ध में अधिक स्पष्ट होती है।

(1) जनवरी में तापमान का क्षैतिज वितरण

जनवरी में सूर्य की किरणें मकर वृत्त के निकट लम्बवत् पड़ती हैं। अतः दक्षिणी गोलार्ध में उस समय ग्रीष्म ऋतु होती है और उत्तरी गोलार्ध में शीत ऋतु। इस समय दक्षिण गोलार्ध में महाद्वीपों के तीन क्षेत्रों में ऊँचे तापमान पाये जाते हैं। ये क्षेत्र हैं उत्तरी–पश्चिमी अर्जेन्टीना, पूर्वी–मध्य अफ्रीका और मध्यवर्ती आस्ट्रेलिया। इन क्षेत्रों को 30 डिग्री से. समताप रेखा घेरती है। उत्तरी गोलार्ध में इस समय महासागरों की अपेक्षा महाद्वीप अधिक ठंडे होते हैं। इस ऋतु में उत्तरी पूर्वी एशिया में सबसे कम तापमान पाये जाते हैं।

उत्तरी गोलार्ध में महाद्वीपों की अपेक्षा महासागरों के ऊपर की वायु गर्म होती है। इसलिए यहाँ समताप रेखायें महाद्वीपों को पार करते समय विषुवत वृत्त की ओर एवं महासागरों को पार करते समय ध्रुवों की ओर मुड़ जाती है। दक्षिणी गोलार्ध में समताप रेखाओं की स्थिति उत्तरी गोलार्ध में समताप रेखाओं की स्थिति के ठीक विपरीत होती है। वे महाद्वीपों को पार करते समय ध्रुवों की ओर मुड़ जाती है और महासागरों को पार करते समय विषुवत रेखा की ओर मुड़ जाती है।

दक्षिणी गोलार्ध में महाद्वीपों की अपेक्षा महासागरों का विस्तार अधिक है। इसलिए यहाँ समताप रेखायें नियमित तथा दूर–दूर हैं। इसके विपरीत उत्तरी गोलार्ध में समताप रेखायें, महाद्वीपों का अधिक विस्तार होने के कारण, अनियमित तथा पास–पास है। इन्हीं कारणों से दक्षिणी गोलार्ध के मध्य और उच्च अक्षांशों में भूमि और जल के बीच तापमान में अधिक विषमता नहीं मिलती जैसी कि विषमता उत्तरी गोलार्ध में मिलती है।

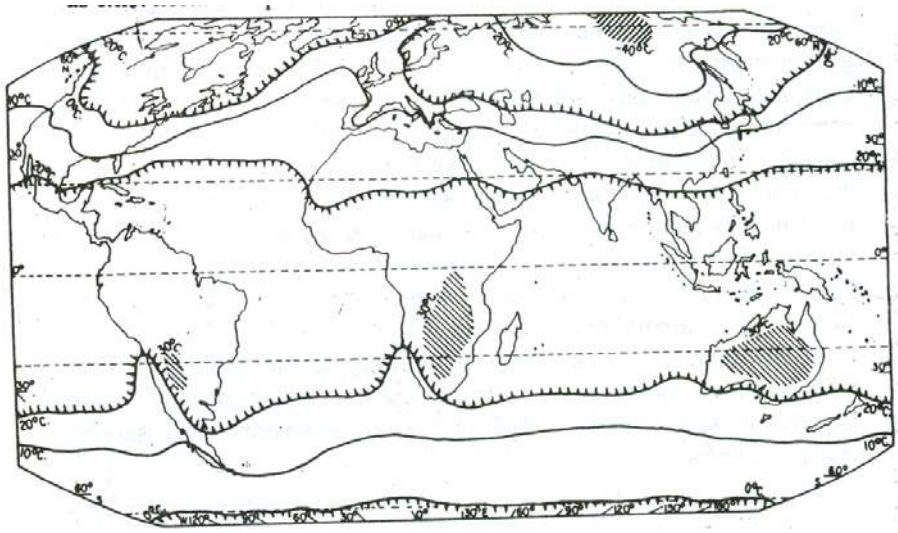

चित्र 10.6 तापमान का क्षैतिज वितरण (जनवरी)

(ii) जुलाई में तापमान का क्षैतिज वितरण

जुलाई में सूर्य की लम्वबत् किरणें कर्क वृत्त के निकट पड़ती हैं। इस कारण सम्पूर्ण उत्तरी गोलार्ध में ऊँचे तापमान पाये जाते हैं। 30 डिग्री से. की समताप रेखा 10 डिग्री और 40 डिग्री उत्तरी अक्षांशों के बीच गुजरती है। ऐसे ऊँचे तापमान के प्रमुख क्षेत्र हैं, दक्षिण–पश्चिम संयुक्त राज्य अमरीका, सहारा, अरब, ईराक, ईरान, अफगानिस्तान, भारत का मरुस्थल और चीन। लेकिन ग्रीष्म ऋतु में उत्तरी गोलार्ध के मध्यवर्ती ग्रीनलैंड में 0^0 डिग्री से. के न्यूनतम तापमान भी पाये जाते हैं।

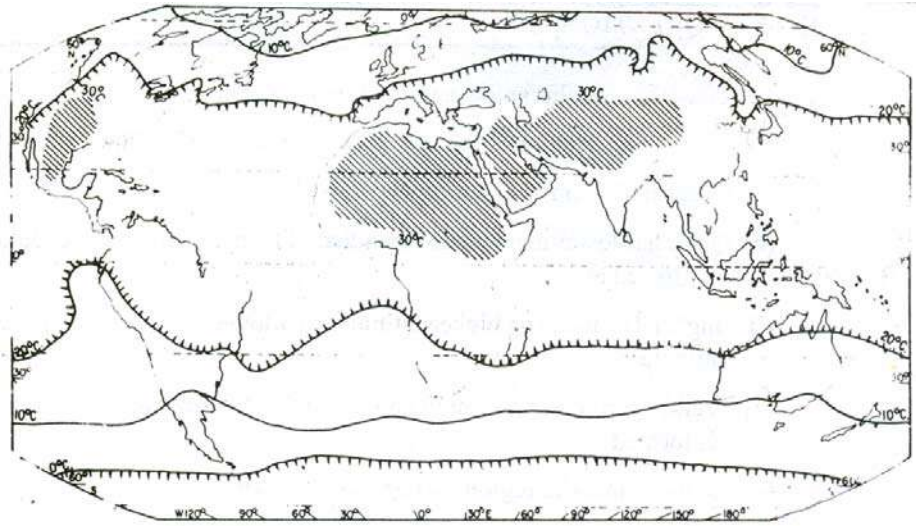

चित्र 10.7 तापमान का क्षैतिज वितरण (जुलाई)

उत्तरी गोलार्ध में ग्रीष्म ऋतु की अवधि में समताप रेखायें महासागरों को पार करते समय विषुवत वृत्त की ओर मुड़ जाती है और महाद्वीपों को पार करते समय वे ध्रुवों की ओर मुड़ती है। दक्षिणी गोलार्ध में समताप रेखाओं की स्थिति उत्तरी गोलार्ध की स्थिति से बिल्कुल विपरीत होती है। महासागरों पर समताप रेखायें दूर–दूर और महाद्वीपों पर वे पास–पास होती हैं।

जनवरी और जुलाई के समताप रेखाओं के मानचित्रों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर निम्नलिखित प्रमुख बातें स्पष्ट होती हैं :

1. सूर्य की लम्बवत् किरणों के क्षेत्र में परिवर्तन होने के कारण उच्चतम तापमान के क्षेत्रों में अक्षांशीय परिवर्तन होता है।

2. विषुवत वृत्त से ध्रुवों की ओर सूर्यातप की मात्रा घटने के कारण उच्चतम तापमान निम्न अक्षांशों में और न्यूनतम तापमान उच्च अक्षांशों में पाये जाते हैं।

3. उत्तरी गोलार्ध में समताप रेखायें स्थल भाग छोड़ते ही शीत ऋतु में तेजी से ध्रुवों की ओर मुड़ जाती हैं और ग्रीष्म ऋतु में विषुवत वृत्त की ओर। समताप रेखाओं के इस प्रकार मुड़ने का मुख्य कारण स्थल और जल के गर्म या ठंडा होने में अंतर है। महाद्वीप महासागरों की अपेक्षा ग्रीष्म ऋतु में अधिक गर्म और शीत ऋतु में अधिक ठंडे होते हैं।

   सबसे गर्म महीने और सबसे ठंडे महीने के औसत तापमानों का अंतर **वार्षिक ताप परिसर** कहलाता है। उत्तरी गोलार्ध के मध्य और उच्च अक्षांशों में महाद्वीपों के आंतरिक भागों में वार्षिक ताप परिसर बहुत अधिक है। उदाहरणार्थ साइबेरिया के वर्खोयांस्क स्थान का वार्षिक ताप परिसर 68 डिग्री से. है, जो संसार में सर्वाधिक हैं शीत ऋतु में इस स्थान का न्यूनतन तापमान – 50 डिग्री सें. है। इसलिए इसे पृथ्वी का ''शीत ध्रुव'' कहते हैं।

- वर्ष के सबसे गर्म और सबसे ठंडे महीनों के औसत तापमानों का अंतर **वार्षिक ताप परिसर** कहलाता है।

पाठगत प्रश्न 10.3

1. सही विकल्प चुन कर उस पर चिन्ह (√) लगाइए :

   (क) पार्थिव विकिरण में ऊष्मा विकिरित होती है –

   (i) पृथ्वी से, (ii) सूर्य से,

   (iii) वायुमंडल से, (iv) जलमण्डल से

   (ख) क्विटो का तापमान गुआयाक्विल की अपेक्षा नीचे है; क्योंकि क्विटो स्थित है –

(i) उच्च अक्षांश पर (ii) अधिक ऊँचाई पर

(iii) निम्न अक्षांश पर (iv) समुद्र–तल के निकट

(ग) वर्खोयांस्क का वार्षिक ताप परिसर बहुत ऊँचा है, क्योंकि यह स्थान स्थित है –

(i) विषुवतीय प्रदेश में (ii) समुद्र तट पर

(iii) एशिया के आंतरिक भाग में (iv) पर्वत पर।

2. निम्नलिखित प्रत्येक कथन के लिये एक पारिभाषित शब्द दीजिए :–

(क) पवनों द्वारा ताप का क्षैतिज स्थानांतरण।

(ख) मानचित्र पर खींची गई काल्पनिक रेखायें जो समुद्र तल पर उतारे गये समान तापमान वाले स्थानों को मिलाती है।

(ग) सबसे गर्म और सबसे ठंडे महीनों के औसत तापमानों का अंतर।

(ख) तापमान का ऊर्ध्वाधर वितरण

ऊँचाई के आधार पर तापमान के वितरण को तापमान का ऊर्ध्वाधर वितरण कहते हैं। इसका सबसे महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि ऊँचाई बढ़ने के साथ–साथ तापमान घटता जाता है। आप जानते हैं कि वायुमंडन मुख्यतया पार्थिव विकिरण से गर्म होता है। वायुमंडल की परतें जो धरातल के निकट होती हैं, पृथ्वी से सर्वाधिक ऊष्मा प्राप्त करती हैं इसलिए वे सबसे ज्यादा गर्म में होती है। लेकिन जब हम ऊपर जाते हैं तो तापमान धीरे–धीरे कम होता जाता है; क्योंकि ऊपर की परतें पृथ्वी के विकिरण द्वारा कम ऊष्मा प्राप्त करती हैं। ऊँचाई बढ़ने के साथ–साथ तापमान गिरने की दर 1 डिग्री से. प्रति 165 मीटर है। इसे तापमान की **सामान्य ह्रास दर** कहते हैं।

(ग) ताप विलोमता

शीतकालीन लंबी रात, साफ आकाश, शुष्क वायु और पवनों की अनुपस्थिति के कारण धरातल तथा वायुमंडल की निचली परतों से ऊष्मा का विकिरण बड़ी तीव्रता से होता है। परिणामस्वरूप धरातल के निकट की वायु ठंडी हो जाती है। ऊपर की परतें, जिनसे ऊष्मा इतनी शीघ्रता से विकिरित नहीं हो पाती अपेक्षाकृत गर्म रहती है। अतः तापमान की सामान्य दशा, जिसमें ऊँचाई के साथ तापमान कम होता है, उलट जाती है। दूसरे शब्दों में ऊँचाई बढ़ने के साथ तापमान भी बढ़ता है। इसी स्थिति को **ताप की विलोमता** या **तापमान व्युत्क्रमण** कहते हैं। कभी–कभी ठंडी और भारी वायु धरातल के निकट

टिप्पणी

कई दिनों तक टिकी रहती है। अतः ताप की विलोमता की दशा कई दिनों तक चलती रहती है।

ताप की विलोमता की स्थिति विशेषतया अंतरपर्वतीय घाटियों में पायी जाती है। शीत ऋतु में पर्वतीय ढलान शीघ्र विकिरण के कारण बहुत जल्दी ठंडे हो जाते हैं। इन ढलानों के निकट की वायु भी ठंडी हो जाती है और उसका घनत्व बढ़ जाता है। अतः यह वायु नीचे की ओर खिसकती है और नीचे घाटी तल पर टिक जाती है। यह ठंडी और भारी वायु घाटी की अपेक्षाकृत गर्म वायु को ऊपर की ओर धकेल देती है और इस प्रकार ताप की विलोमता की स्थिति पैदा हो जाती है। कभी–कभी घाटी में वायु का तापमान हिमांक बिंदु से भी नीचे गिर जाता है, जबकि पर्वतीय ढलानों पर तापमान अपेक्षाकृत ऊँचा होता है। यही कारण है कि जापान के सुवा बेसिन में शहतूत के वृक्ष और हिमाचल प्रदेश में सेब के बागान पर्वतों के निचले ढलानों पर इसलिए नहीं लगाये जाते कि उनकी शीत ऋतु में पाले से बचाया जा सके। यदि आप कभी पर्वतीय नगर गये हों तो आपने अवश्य देखा होगा कि लोगों के यात्री निवास और धनी लोगों के मकान पर्वतों के ऊपरी ढलानों पर बने होते हैं।

- तापमान सामान्यतया ऊँचाई के साथ–साथ घटता है।
- सामान्य ह्रास दर में प्रति 165 मीटर ऊपर जाने पर 1^0 से. तापमान गिरता है।
- एक ऐसी घटना जिसमें ऊँचाई बढ़ने के साथ–साथ थोड़े समय के लिए तापमान में स्थानीय परिस्थितियों के कारण वृद्धि होती है। ताप की विलोमता कहते हैं।

पाठगत प्रश्न 10.4

1. सही विकल्प चुनिये और उस पर चिन्ह (√) लगाइएः

(क) तापमान कम होता जाता है –

(i) ऊँचाई बढ़ने के साथ (ii) गहराई बढ़ने के साथ

(iii) भार बढ़ने के साथ (iv) ऊँचाई तथा गहराई दोनों के बढ़ने के साथ

(ख) तापमान की सामान्य ह्रास दर 1^0से. प्रति –

(i) 561 मीटर है (ii) 1000 मीटर है

(iii) 651 मीटर है (iv) 165 मीटर है।

(ग) वायुमंडल की एक ऐसी स्थिति जिसमें ऊँचाई बढ़ने के साथ तापमान भी बढ़ता है–

(i) ताप असंगति (ii) ताप विलोमता

(iii) तापमान की सामान्य ह्रास दर (iv) सूर्यातप

2. निम्नलिखित कथनों में से सही कथनों पर चिन्ह (√) लगाइये और गलत पर (x) का चिन्ह लगाइए।

(क) ठंडी वायु हल्की होती है।

(ख) ठंडी वायु अधिक घनत्व वाली होती है।

(ग) साफ आकाश, शुष्क वायु और पवनों की अनुपस्थिति के कारण पार्थिव विकिरण तेजी से होता है, जिससे ताप की विलोमता की स्थिति पैदा होती है।

(घ) ताप की विलोमता की स्थिति मैदानों में अधिक पाई जाती है।

(ड.) हिमाचल प्रदेश में सेब के बागान पर्वतों के निचले ढलानों पर नहीं लगाए जाते।

(छ) ताप की विलोमता स्थानीय एवं थोड़े समय के लिए होता है।

आपने क्या सीखा

पृथ्वी पर ऊर्जा का प्राथमिक स्रोत सूर्य है। सूर्य से ऊर्जा लघु तरंगों द्वारा धरातल पर पहुंचती है उसे सूर्यातप कहते हैं। किसी स्थान पर प्राप्त होने वाली सूर्यातप की मात्रा प्रभावित होती हैः आपतन कोण, दिन की अवधि तथा वायुमंडल की पारदर्शकता। वायुमंडल को गर्म एवं ठंडा करने में चालन, संवहन, विकिरण और अभिवहन का योगदान होता है। विकिरण की प्रधानता अन्य तीनों में रहती है। पार्थिव विकिरण वह ऊष्मा है जो पृथ्वी द्वारा लौटाई जाती है। धरातल पर सूर्यातप और पार्थिव विकिरण के बीच पाये जाने वाले संतुलन को ऊष्मा बजट कहते हैं। ओजोन परत के ह्रास होने और वायुमंडल में कार्बन–डाई–ऑक्साइड की मात्रा बढ़ने के कारण सारे संसार के तापमान बढ़ने को भूमंडलीय तापन कहा जाता है।

तापमान ऊष्मा की तीव्रता का माप होता है। तापमान के क्षैतिज वितरण को प्रभावित करने वाले कारक हैं – अक्षांश, जल और थल की विषमता, उच्चावच, महासागर धारायें, पवनें, वनस्पति आवरण, मिट्टी की प्रकृति और भूमि का ढाल तथा अभिमुखता। मानचित्र पर तापमान का क्षैतिज वितरण समताप रेखाओं द्वारा दर्शाया जाता है। समताप रेखायें मानचित्र पर खींची गयी वे काल्पनिक रेखायें हैं जो समुद्र तल पर उतारे गये समान तापमान वाले स्थानों को मिलाती हैं। तापमान ऊँचाई बढ़ने के साथ–साथ घटता है। तापमान का यह घटना 165 मीटर की ऊँचाई पर 1^0 से. है। इसे तापमान की सामान्य ह्रास दर कहते हें। जब ऊँचाई बढ़ने के साथ–साथ तापमान भी बढ़ता है तो इस स्थिति को ताप विलोमता कहा जाता है। यह सामान्यता स्थानीय और थोड़े समय के लिए होता है।

पाठांत प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य में दीजिए :
   - (क) सामान्य ह्रास दर का क्या अर्थ है ?
   - (ख) सूर्यातप क्या है ?
   - (ग) पार्थिव विकिरण का क्या अर्थ है ?
   - (घ) ऊँचाई बढ़ने के साथ तापमान किस दर से घटता है ?
2. निम्नलिखित पर 50 शब्दों में लिखिए :
   - (क) जनवरी में तापमान का संसार में वितरण
   - (ख) ऊष्मा बजट
   - (ग) जनवरी और जुलाई के समताप मानचित्रों की तुलना
   - (घ) अक्षांशीय ऊष्मासंतुलन
3. तापमान के क्षैतिज वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन करिये।
4. निम्नलिखित को संसार के रेखा मानचित्र पर दर्शाइये :
   - (क) जुलाई मास की 30 डिग्री से. समताप रेखा
   - (ख) वर्खोयांस्क
   - (ग) सहारा मरूस्थल
   - (घ) बोर्नियो द्वीप

5. विभिन्न अक्षांश वृत्तों पर प्राप्त सूर्यातप की मात्रा में अंतर क्यों पाया जाता है ?

6. ऊष्मा बजट को आरेख बनाकर स्पष्ट कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

10.1

1. (क) विकिरण (ख) दो अरबवां (ग) अभिवहन (i) आपतन(ii) दिन की अवधि, और (iii) वायुमंडल की पारदर्शकता।

2. (क) (i); (ख) (i); (ग) (ii)

10.2

1. (क) कृपया अनुच्छेद 10.2 देखें (ख) कृपया अनुच्छेद 10.2 (क) देखें (ग) कृपया अनुच्छेद 10.3 देखें

2. (क) 51% (ख) 6% (ग) ऊष्ण कटिबंध (घ) ध्रुवीय प्रदेश

10.3

1. (क) (i); (ख) (i); (ग) (iii)

2. (क) अभिवहन (ख) समताप रेखायें (ग) वार्षिक ताप परिसर

10.4

1. (क) (i); (ख) (i); (ग) (ii)

2. (क) गलत (ख) सहीं (ग) गलत (घ) गलत (ड.) सहीं (च) सही (छ) सही।

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. (क) ऊँचाई के अनुसार तापमान घटने की सामान्य ह्रास दर।

   (ख) सौर विकिरण का पृथ्वी की सतह पर पहुँचने वाला भाग।

   (ग) पृथ्वी की सतह से ऊष्मा का विकिरण

   (घ) प्रति 165 मीटर ऊचाई पर 1 डिग्री से.।

2. (क) कृपया अनुच्छेद 10.4 देखें

   (ख) कृपया अनुच्छेद 10.2 (क) देखें

टिप्पणी

(ग) कृपया अनुच्छेद 10.4 देखें

(घ) कृपया अनुच्छेद 10.2 देखें।

3. कृपया अनुच्छेद 10.4 देखें।

4. कृपया पाठ में दिये मानचित्र देखिये।

5. कृपया अनुच्छेद 10.1 (क) (i) देखिये।

6. कृपया चित्र 10.2 और अनुच्छेद 10.2 देखिये।

11

वायुमंडलीय दाब और पवनें

हम सामान्यतया यह नहीं सोचते कि वायु में बहुत भार होता है। वास्तव में वायु में भार होता है और इसलिये यह दाब डालती है। साईकिल की एक खाली ट्यूब लीजिये और उसका वजन तोलिये। अब इस ट्यूब में हवा भरिये और इसका भार मालूम करिये। आप पायेंगे कि वायु से भरी ट्यूब का वजन खाली ट्यूब के वजन से अधिक है। यदि आप इस ट्यूब में और हवा भरें तो एक स्थिति ऐसी आती है जब ट्यूब फट जायेगी। ट्यूब में वायुदाब के बढ़ जाने के कारण वह फट जाती है। इसी प्रकार हमारे चारों ओर वायु दाब डालती है। लेकिन हम इस दाब को अनुभव नहीं करते; क्योंकि जो वायु हमारे शरीर के अन्दर होती है वह भी बाहर की ओर उतना ही दाब डालती है। वायुमंडलीय दाब हमारे लिये बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसका सीधा संबंध पवनों से है और यह किसी स्थान की मौसम संबंधी दशाओं का निर्धारण करती है। प्रस्तुत पाठ में आप वायुमंडलीय दाब, उसका संसार में वितरण, पवनें और पवनों के प्रकार के बारे में अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- कारण समझा सकेंगे कि ऊँचाई बढ़ने के साथ वायुदाब कम क्यों होता है;
- बहुत ऊँचाई पर निम्न वायुदाब का दैनिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव को उदाहरण देकर समझा सकेंगे;
- समदाब रेखाओं के बीच की दूरी और वायुदाब प्रवणता में संबंध स्पष्ट कर सकेंगे;
- विषुवतीय निम्नदाब और ध्रुवीय उच्चदाब तथा तापमान के बीच संबंध स्थापित कर सकेंगे;
- उपोष्ण उच्च दाब और अधोध्रुवीय निम्नदाब के होने के कारण स्पष्ट कर सकेंगे;
- जनवरी और जुलाई के समदाब रेखीय मानचित्रों द्वारा संसार में वायुमंडलीय दाब का विवरण समझा सकेंगे;

टिप्पणी

- वायुदाब प्रवणता और पवन गति के बीच संबंध स्थापित कर सकेंगे;
- दोनों गोलार्धों में पवनों की दिशा पर पड़ने वाले कोरियालिस बल का प्रभाव स्पष्ट कर सकेंगे;
- वायुदाब पेटियों और भूमंडलीय पवनों को दर्शाने वाला आरेख बना सकेंगे;
- (क) भूमंडलीय और मानसून पवन, (ख) स्थल और समुद्र समीर, (ग) घाटी और पर्वत समीर तथा (घ) चक्रवात और प्रति चक्रवात में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे;
- प्रमुख स्थानीय पवनों की विशेषताएं बता सकेंगे।

11.1 वायुमंडलीय दाब की माप

वायुमंडल पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण उसके चारों ओर लिपटा रहता है। वायु का एक स्तम्भ जो धरातल पर अपना भार डालता है उसे **वायुदाब या वायुमंडलीय दाब** कहते हैं। वायुमंडलीय दाब को **वायुदाब मापी यंत्र (बेरोमीटर)** से मापा जाता है। आजकल वायुमंडलीय दाब को मापने के लिये सामान्यतया फोंटिंग एवं अनीरोइड बेरोमीटर का प्रयोग किया जाता है।

वायुमंडलीय दाब को प्रति इकाई क्षेत्रफल पर पड़ने वाले बल के रूप में मापा जाता है। वायुदाब के मापने की इकाई को **मिलीबार** कहते हैं। इसका छोटा रूप 'mb' या 'मिबा' है। एक मिलीबार प्रति वर्ग सेंटीमीटर क्षेत्र पर पड़ने वाले लगभग एक ग्राम बल के बराबर होता है। 1000 मिलीबार वायुदाब का भार समुद्र तल पर 1.053 किलोग्राम प्रति वर्ग सेंटीमीटर होता है। यह भार 76 सेंटीमीटर ऊँचे पारे के स्तम्भ के बराबर होता है। वायुदाब का अंतर्राष्ट्रीय मानक इकाई **''पास्कल''** है जो प्रतिवर्गमीटर एक न्यूटन बल के बराबर होती है। व्यावहारिक तौर पर वायुदाब किलोपास्कल में अभिव्यक्त किया जाता है। (एक किलोपास्कल 1000 पास्कल के बराबर होता है)।

समुद्र तल पर औसत वायुमंडलीय दाब 1013.25 मिलीबार के बराबर होता है। परन्तु किसी स्थान पर किसी समय विशेष में वायुदाब 950 मिलीबार से लेकर 1050 मिलीबार तक पाया जाता है।

- एक निश्चित स्थान एवं निश्चित समय पर वायु के एक स्तम्भ का भार वायुदाब कहलाता है।
- वायुमंडलीय दाब को वायुदाब मापी यंत्र या बेरोमीटर में मापते हैं।
- वायुमंडलीय दाब की माप की इकाई मिलीबार (किलोपास्कल) है।
- एक मिलीबार प्रति वर्ग सेंटीमीटर क्षेत्र पर पड़ने वाले लगभग एक ग्राम बल के बराबर होता है।

11.2 वायुमंडलीय दाब का वितरण

वायुमंडलीय दाब का धरातल पर वितरण सब जगह समान नहीं है। इसमें क्षैतिज एवं ऊर्ध्वाधर दोनों प्रकार के वितरण में भिन्नता मिलती है।

(क) वायुदाब का ऊर्ध्वाधर वितरण

आप जानते हैं कि वायु विभिन्न गैसों का मिश्रण है। इसे अधिकाधिक दबाकर घनीभूत किया जा सकता है। दबी हुई या घनीभूत वायु का घनत्व अधिक होता है। वायु का घनत्व जितना अधिक होगा उसका दाब भी उतना अधिक होगा। इसके विपरीत कम घनत्व वाली वायु का दाब भी कम होगा। वायु के स्तम्भ में ऊपर की वायु नीचे वाली वायु पर दाब डालती है। इस कारण नीचे की वायु ऊपर की वायु की अपेक्षा अधिक घनी अर्थात अधिक घनत्व वाली हो जाती है। इसके परिणाम स्वरूप वायुमंडल की निचली परतें अधिक घनत्व वाली हो जाती है और इसलिये वे अधिक दाब डालती हैं। इसके विपरीत वायुमंडल की ऊपरी परतें कम दबी हुई हैं। अतः उनका घनत्व कम होता है और वे कम दाब डालती हैं। वायुमंडलीय दाब का स्तम्भीय वितरण वायुदाब का ऊर्ध्वाधर वितरण कहलाता है। वायुदाब, ऊँचाई बढ़ने के साथ–साथ कम होता जाता है, लेकिन यह एक ही दर से हमेशा कम नहीं होता है। वायुमंडल के घने संघटक समुद्र तल के निकट पाये जाते हैं। एक निश्चित समय पर एक निश्चित स्थान का वायुदाब वायु तापमान, उसमें उपस्थित जलवाष्प की मात्रा और पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण बल पर निर्भर करता है। ये कारक वायुमंडल की विभिन्न ऊँचाइयों पर बदलते रहते हैं, अतः ऊँचाई बढ़ने के साथ वायुदाब में कमी आने की दर भी बदलती रहती है। सामान्यतः वायुदाब प्रत्येक 300 मीटर की ऊँचाई पर 34 मिलीबार कम हो जाता है (चित्र 11.1)। कम वायुदाब के प्रभाव का अनुभव मैदानों में रहने वाले लोगों की अपेक्षा पर्वतीय एवं पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले लोग अधिक करते हैं। ऊँचे पर्वतीय भागों में चावल के पकने में अधिक समय लगता है; क्योंकि वहाँ निम्न वायुदाब के कारण पानी का क्वथनांक (उबलने का बिन्दु) घट जाता है। वहाँ पहाड़ों पर चढ़ने वाले अन्य क्षेत्रों से आये बहुत से लोगों को सांस लेने में तकलीफ होने लगती है। कुछ लोग बेहोश हो जाते हैं और नाक से खून भी आने लगता है। निम्न वायुदाब में वायु विरल हो जाती है और उसमें ऑक्सीजन की मात्रा भी कम हो जाती है।

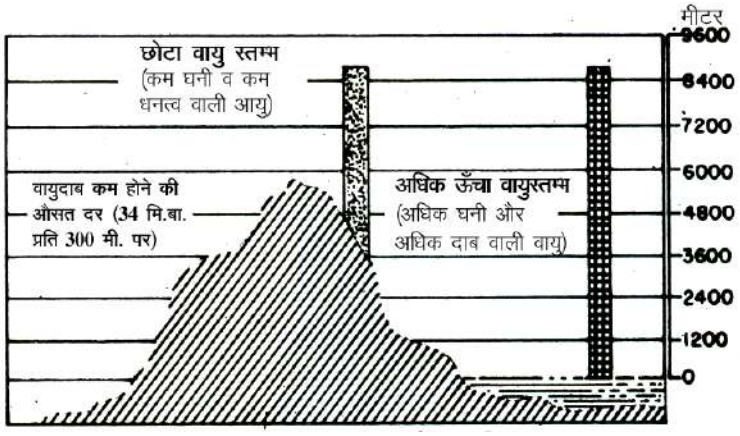

चित्र 11.1 वायुदाब का ऊर्ध्वाधार वितरण

टिप्पणी

(ख) वायुदाब का क्षैतिज वितरण

वायुमंडलीय दाब का सारे संसार में वितरण क्षैतिज वितरण कहलाता है। इसे मानचित्र में समदाब रेखाओं द्वारा दर्शाया जाता है। वे रेखा जो सभी समान वायुदाब वाले स्थानों को एक साथ जोड़ती है, **समदाब रेखा** कहलाती है। समदाब रेखाएं उच्चावच मानचित्र पर समोच्च रेखाओं जैसी होती हैं। समदाब रेखाओं के बीच की दूरी वायुदाब में आने वाले परिवर्तन की दर तथा उसकी दिशा को बताती है। वायुदाब की दर में इस परिवर्तन को वायुदाब की प्रवणता कहते हैं। वायुदाब की प्रवणता दो स्थानों के वायुदाब में भिन्नता तथा उनके बीच क्षैतिज दूरी का अनुपात होता है। समदाब रेखायें जब पास–पास होती हैं तो वे वायुदाब की तीव्र प्रवणता को बताती हैं और जब वे दूर–दूर होती है तो वायुदाब की मंद प्रवणता का बोध कराती हैं। (चित्र 11.5)

वायुदाब का क्षैतिज वितरण सारे संसार में समान नहीं है। एक ऋतु से दूसरी ऋतु में एक ही स्थान पर भी वायुदाब बदल जाता है। इसमें बदलाव एक स्थान से दूसरे स्थान पर एक छोटी दूरी के बाद भी देखा जाता है। वायुदाब के क्षैतिज वितरण में परिवर्तन के लिये उत्तरदायी प्रमुख कारक हैं– (i) वायु का तापमान, (ii) पृथ्वी का घूर्णन और (iii) वायु में उपस्थित जलवाष्प की मात्रा।

(i) **वायु का तापमान :** हम पिछले पाठ में पढ़ चुके हैं कि पृथ्वी पर तापमान का वितरण सब जगह एक समान नहीं है; क्योंकि सूर्यातप हर स्थान पर समान रूप से नहीं मिलता, साथ ही स्थल भाग और जल भाग के गर्म और ठंडा होने की दर अलग–अलग है। सामान्यतया तापमान और वायुदाब में उल्टा संबंध है। वायु का तापमान जितना अधिक होगा उतना ही उसका वायुदाब कम होगा। हर गैस का यह नियम है कि जब उसे गर्म किया जाता है तो उसका घनत्व कम हो जाता है और वह फैलती है। इस प्रक्रिया में वायु ऊपर उठती है और धरातल पर उसका दाब कम हो जाता है। विषुवतीय प्रदेशों में निम्नवायुदाब पट्टी पायी जाती है जिसे विषुवतीय निम्नवायुदाब या डोलड्रम कहा जाता है। यही कारण है कि विषुवतीय प्रदेशों में वायुदाब निम्न होता है और ध्रुवीय प्रदेशों में वायुदाब उच्च होता है। विषुवतीय प्रदेशों में निम्न वायुदाब का कारण गर्म वायु का ऊपर उठना, धरातल के निकट वायु का विरल हो जाना और थोड़े समय के लिये खाली जगह का बन जाना है। ध्रुवीय प्रदेशों में ठंडी वायु घनी होती है। अतः यह नीचे उतरती हैं जिससे वायुदाब बढ़ जाता है। इस तथ्य के आधार पर हम कह सकते हैं कि विषुवत वृत्त से ध्रुवों की ओर तापमान घटने के साथ–साथ वायुदाब में शनैःशनैः वृद्धि होनी चाहिए। परंतु विभिन्न स्थानों पर लिए गये वायुदाब के पठन यह सिद्ध करते हैं कि विषुवत वृत्त से ध्रुवों की ओर जाने पर अक्षांशों के अनुसार वायुदाब में नियमित रूप से वृद्धि नहीं होती। इसके विपरीत संसार के उपोष्ण प्रदेशों में उच्च वायुदाब के क्षेत्र और अधो ध्रुवीय प्रदेशों में निम्न वायुदाब के क्षेत्र पाये जाते हैं।

(ii) **पृथ्वी का घूर्णन :** पृथ्वी के घूर्णन से केन्द्रविमुख बल पैदा होता है। इसके परिणाम

स्वरूप वायु अपने मूल स्थान से हट जाती है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अधोध्रुवी प्रदेशों का निम्न वायुदाब और उपोष्ण प्रदेशों का उच्च वायुदाब का निर्माण मुख्यतया पृथ्वी के घूर्णन के कारण हुआ है। वायु के अभिसरण क्षेत्र (जहां विभिन्न दिशाओं से आकर वायु मिलती है) में निम्न वायुदाब पाया जाता है और वायु के अपसरण क्षेत्र (जहां से वायु विभिन्न दशाओं को जाती है) में उच्च वायुदाब पाया जाता है (चित्र 11.7)।

(iii) वायु में उपस्थित जलवाष्प की मात्रा : वायु जिसमें जलवाष्प की मात्रा अधिक होती है उसका दाब कम होता है और जिस वायु में जलवाष्प की मात्रा कम होती है उसका दाब अधिक होता है। सर्दी में महाद्वीप अपेक्षाकृत ठंड़े होते हैं तथा उच्च वायुदाब केन्द्र के रूप में विकसित होते हैं। गर्मी में ये समुद्र की तुलना में गर्म हो जाते हैं तथा यहाँ पर निम्न वायुदाब क्षेत्र कायम हो जाता है। इसके विपरीत समुद्र पर सर्दी में निम्नदाब तथा गर्मी में उच्च दाब होता है।

- वह रेखा जो सभी समान वायुदाब वाले स्थानों को एक साथ जोड़ती है, समदाब रेखा कहलाती है।
- वायुदाब की प्रवणता दो स्थानों के बीच वायुदाब की भिन्नता और उन स्थानों के बीच क्षैतिज दूरी का अनुपात होता हैं
- ऊँचाई बढ़ने के साथ वायुदाब में औसतन कमी की दर प्रति 300 मीटर ऊँचाई पर 34 मिलीबार है।

पाठगत प्रश्न 11.1

1. कोष्ठक में दिये शब्दों में से उपयुक्त शब्द द्वारा रिक्त स्थान भरिये:

   (क) वायुमंडलीय दाब मापा जाता है प्रति इकाई _____ पर पड़ने वाला बल। (क्षेत्र, मीटर)

   (ख) वायुदाब के मापने की नई इकाई का नाम _____ है। (मिलीबार, हैक्टोपास्कल)

   (ग) एक समदाब रेखा मिलाती है समान _____ वाले स्थानों को। (तापमान, वायुदाब)

   (घ) संसार में वायुदाब का वितरण _____ है। (समान, असमान)

2. वायुदाब के क्षैतिज वितरण को प्रभावित करने वाले तीन कारकों के नाम बताइये:

   (क) _____ (ख) _____ (ग) _____

टिप्पणी

3. वायुदाब को मापने में प्रयोग किये जाने वाले दो यंत्रों के नाम बताइये:

(क) _____ (ख) _____

4. समुद्रतल पर औसत वायुमंडलीय दाब कितना है?

_____

5. प्रत्येक के लिये सर्वोत्तम विकल्प चुनिये और उस पर चिन्ह (√) लगाइये।

(क) 1000 मिलीबार वायुदाब पारे के स्तम्भ के भार के बराबर होता है, जिसकी ऊँचाई है–

(i) 65 से.मी., (ii) 70 से.मी., (iii) 76 से.मी., (iv) 80 से.मी.

(ख) जिन क्षेत्रों में वायु विभिन्न दिशाओं से आकर मिलती है वहाँ विकसित होता है–

(i) उच्च दाब, (ii) निम्न दाब, (iii) दोनों उच्च और निम्न दाब, (iv) कोई दाब नहीं

(ग) कम जलवाष्प की मात्रा वाली वायु का दाब होता है–

(i) अधिक, (ii) कम, (iii) मध्यम, (iv) कुछ नहीं

11.3 वायुदाब की पेटियाँ

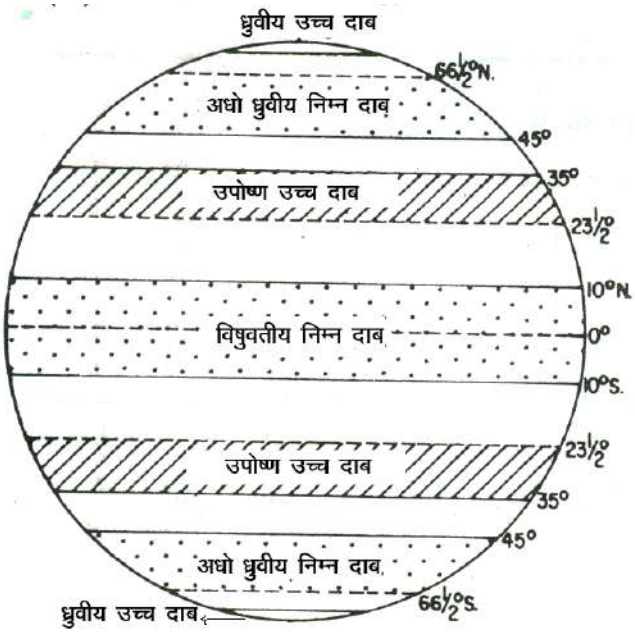

चित्र 11.2 वायुदाब की पेटियाँ

धरातल पर वायुदाब का क्षैतिज वितरण मुख्य–मुख्य अक्षांश वृत्तों के साथ पट्टियों के

रूप में पाया जाता है। इन्हीं को **वायुदाब पेटियाँ** कहा जाता है। वायुदाब का पेटियों के रूप में वितरण केवल सैद्धान्तिक नमूना है। वास्तव में वायुदाब की ऐसी पेटियाँ धरातल पर हमेशा इस प्रकार नहीं मिलती। इस बात की चर्चा हम आगे करेंगे कि वास्तविक वायुदाब की पेटियां आदर्श वायुदाब पेटियों से भिन्न क्यों हैं।

संसार में पाई जाने वाली वायुदाब की आदर्श चार पेटियाँ हैं (i) विषुवतीय निम्न वायुदाब पेटी, (ii) उपोष्ण उच्च दाब पेटी, (iii) अधोध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटी और (iv) ध्रुवीय उच्च वायुदाब पेटी (चित्र 11.2)।

(i) **विषुवतीय निम्न वायुदाब पेटी :** विषुवत वृत्त पर सूर्य की किरणें लगभग वर्षभर लम्बवत् पड़ती हैं। इस कारण विषुवतीय क्षेत्रों में वायु गर्म होकर ऊपर उठ जाती है, जिससे यहां निम्न वायुदाब का क्षेत्र बन जाता है। इस वायुदाब की पेटी का विस्तार 10^0 उत्तरी और 10^0 दक्षिणी अक्षांश के बीच है। (चित्र 11.2)। बहुत अधिक गर्मी पड़ने के कारण यहां वायु की गति संवहन धाराओं के रूप में मुख्यतया ऊर्ध्वाधर होती है और क्षैतिज गति प्रायः नहीं होती। इसीलिये इन पेटियों को पवनों के अभाव में **शान्त पेटियाँ** (डोलड्रम) भी कहा जाता है। ये पेटियाँ पवनों के अभिसरण क्षेत्र हैं; क्योंकि उपोष्ण उच्च दाब से पवनें यहां आकर मिलती हैं (चित्र 11.7)। इस पेटी को **अंतः उष्ण कटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र** (आई. टी.सी. जेड.) भी कहते हैं।

(ii) **उपोष्ण उच्चदाब पेटी :** उपोष्ण उच्च दाब पेटी का दोनों गोलार्धों में विस्तार अयन रेखाओं (कर्क और मकर वृत्त) से 35^0 अक्षाशों तक है। उत्तरी गोलार्ध में इस पेटी का नाम उत्तरी उपोष्ण उच्च दाब पेटी है और दक्षिणी गोलार्ध में इसे दक्षिणी उपोष्ण उच्च दाब पेटी कहा जाता है (चित्र 11.2)। उपोष्ण उच्च दाब पेटी के बनने का कारण यह है कि विषुवतीय क्षेत्रों से उठी गर्म वायु पृथ्वी के घूर्णन से ध्रुवों की ओर बढ़ने लगती है। उपोष्ण क्षेत्र में आकर वह ठंडी और भारी हो जाती है, जिससे वह नीचे उतर कर इकट्ठी हो जाती है। परिणाम स्वरूप यहाँ उच्च वायुदाब क्षेत्र बन जाता है। इस क्षेत्र में भी परिवर्तनशील हल्की पवनों के साथ शांत की दशायें विद्यमान रहती हैं। प्राचीन काल में घोड़ों से लदे जहाज जब इस पेटी से गुजरते थे तो यहाँ शान्त दशाओं के कारण जहाज का आगे बढ़ना कठिन होता था। अतः घोड़ों को समुद्र में फेंककर जहाज को हलका कर लिया जाता था। इसी तथ्य के कारण इस पेटी को **घोड़े का अक्षांश** (अश्व अक्षांश) भी कहा जाता है। ये पेटियाँ पवनों के अपसरण क्षेत्र भी हैं; क्योंकि यहाँ से पवनें विषुवतीय और अधोध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटियों की ओर जाती है (चित्र 11.7)।

(iii) **अधोध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटी :** अधोध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटी का उत्तरी गोलार्ध में विस्तार 45^0 उत्तर अक्षांश से आर्कटिक वृत्त तक है और दक्षिणी गोलार्ध में 45^0 दक्षिण अक्षांश से एन्टार्कटिक वृत्त तक है। उत्तरी और दक्षिणी गोलार्धों में इन्हें क्रमशः **उत्तरी अधोध्रुवीय निम्नदाब पेटी और दक्षिणी अधोध्रुवीय निम्नदाब पेटी** कहते हैं (चित्र 11.2)। इन पेटियों में ध्रुवों और उपोष्ण उच्च दाब

टिप्पणी

क्षेत्रों में पवनें आकर मिलती हैं और ऊपर उठती हैं। इन आने वाली पवनों के तापमान और आर्द्रता में बहुत अन्तर होता है। इस कारण यहाँ चक्रवात या निम्न वायुदाब की दशायें बनती हैं। निम्न वायुदाब के इस अभिसरण क्षेत्र को **ध्रुवीय वाताग्र** भी कहते हैं (चित्र 11.7)।

(iv) **ध्रुवीय उच्च वायुदाब पेटी :** ध्रुवीय क्षेत्रों में सूर्य कभी सिर के ऊपर नहीं होता। यहाँ सूर्य की किरणों का आपतन कोण न्यूनतम होता है। इस कारण यहां सबसे कम तापमान पाये जाते हैं। निम्न तापमान होने के कारण वायु सिकुड़ती है और उसका घनत्व बढ़ जाता है, जिससे यहां उच्च वायुदाब का क्षेत्र बनता है। उत्तरी गोलार्ध में इसे **उत्तर ध्रुवीय उच्च वायुदाब पेटी** और दक्षिणी गोलार्ध में दक्षिण **ध्रुवीय उच्च वायुदाब पेटी** कहा जाता है (चित्र 11.2)। इन पेटियों से पवनें अधोध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटियों की ओर चलती हैं (चित्र 11.7)।

वायुदाब पेटियों की प्रस्तुत व्यवस्था एक सामान्य तस्वीर प्रदर्शित करती है। वास्तव में वायुदाब पेटियों की यह स्थिति स्थायी नहीं है। सूर्य की आभासी गति कर्क वृत्त और मकर वृत्त की ओर होने के परिणाम स्वरूप ये पेटियाँ जुलाई में उत्तर की ओर, और जनवरी में दक्षिण की ओर खिसकती रहती हैं। **तापीय विषुवत रेखा** जो सर्वाधिक तापमान की पेटी है, वह भी विषुवत वृत्त से उत्तर और दक्षिण की ओर खिसकती रहती है। तापीय विषुवत रेखा के ग्रीष्म ऋतु में उत्तर की ओर और शीत ऋतु में दक्षिण की ओर खिसकने के परिणाम स्वरूप सभी वायुदाब पेटियाँ भी अपनी औसत स्थिति से थोड़ा उत्तर या थोड़ा दक्षिण की ओर खिसकती रहती हैं।

- उपोष्ण उच्च वायुदाब पेटी को 'घोड़े का अक्षांश' (अश्व अक्षांश) भी कहा जाता है।
- उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में वायु के नीचे उतरने और उसके इकट्ठा होने के कारण यहां उच्च वायुदाब बनता हैं।
- अधोध्रुवीय क्षेत्रों में ध्रुवीय क्षेत्रों और उपोष्ण क्षेत्रों से आने वाली पवनों के मिलने से यहाँ चक्रवातीय दशायें विकसित होती हैं।
- उच्च वायुदाब पेटियाँ शुष्क हैं और निम्न वायुदाब पेटियाँ नम।
- सूर्य की आभासी गति उत्तर और दक्षिण की ओर होने के कारण तापीय विषुवत रेखा भी उत्तर और दक्षिण की ओर खिसकती रहती है।
- तापीय विषुवत रेखा के खिसकने के कारण वायुदाब पेटियाँ भी उत्तर और दक्षिण की ओर खिसकती रहती हैं।

11.4 ऋतुओं के अनुसार वायुदाब का वितरण

धरातल पर वायुदाब का वितरण एक स्थान से दूसरे स्थान और एक ऋतु से दूसरी ऋतु में बदलता रहता है। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव मौसम और जलवायु पर पड़ता है।

इसीलिये हम वायुदाब के क्षैतिज वितरण का अध्ययन समदाब रेखी मानचित्रों द्वारा करते हैं। समदाब रेखी मानचित्र तैयार करते समय सभी स्थानों का वायुदाब समुद्र तल पर उतारा जाता है। ऐसा इसलिये किया जाता है कि वायुदाब के क्षैतिज वितरण में ऊँचाई जो वायुदाब को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण कारक है, निकाल देते हैं।

(i) जनवरी की वायुदाब दशायें : जनवरी में सूर्य के दक्षिण की ओर खिसकने के साथ, विषुवत्तीय निम्न वायुदाब की पेटी भी अपनी औसत स्थिति से कुछ दक्षिण की ओर खिसक जाती है (चित्र 11.3)। इस समय सबसे कम वायुदाब के क्षेत्र दक्षिण अमरीका, दक्षिण अफ्रीका और आस्ट्रेलिया में पाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि स्थल भाग जलीय भाग की अपेक्षा जल्दी और ज्यादा गर्म हो जाता है। उपोष्ण उच्च वायुदाब के क्षेत्र दक्षिणी गोलार्ध के महासागरों पर पाये जाते हैं। यहाँ उच्च वायु दाब की पेटी, अपेक्षाकृत अधिक गर्म महाद्वीपों के बीच आ जाने के कारण, कई छोटे–छोटे भागों में बंट जाती है। महासागरों के पूर्वी भाग जहाँ ठंडी धारायें बहती हैं, उच्च वायुदाब क्षेत्र अधिक विकसित हैं।

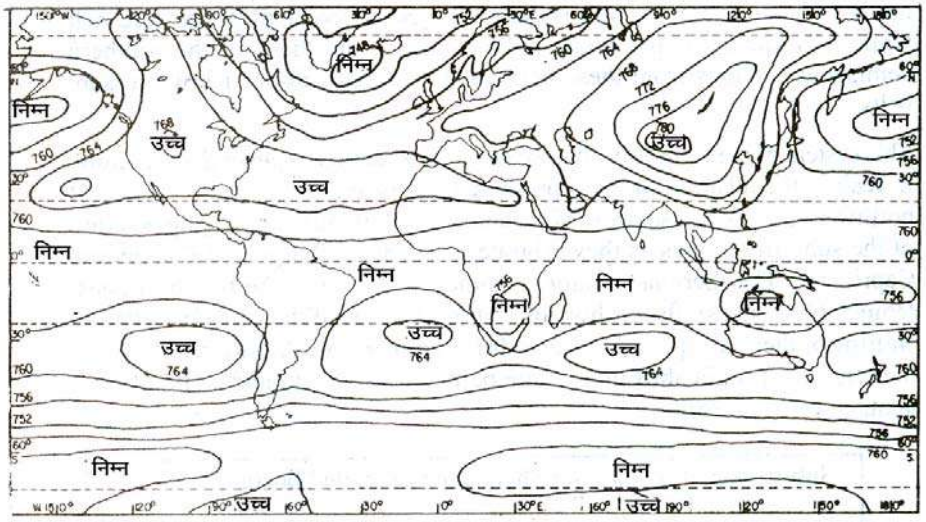

चित्र 11.3 वायुदाब का वितरण (जनवरी)

उत्तरी गोलार्ध के महाद्वीपों में उपोष्ण अक्षांशों पर उच्च वायुदाब के क्षेत्र मिलते हैं। यूरेशिया के आन्तरिक भाग में बहुत ही विकसित उच्च वायुदाब का क्षेत्र पाया जाता है। इसके बनने का प्रमुख कारण है आसपास के समुद्रों की अपेक्षा महाद्वीप का शीघ्र ठंडा हो जाना जिससे यहाँ शीत ऋतु में अति निम्न तापमान पाये जाते हैं।

दक्षिणी गोलार्ध में अधोध्रुवीय निम्न वायुदाब का क्षेत्र वास्तविक निम्न दाब की पूरी पेटी है जो पृथ्वी को घेरे हुए है। यह छोटे–छोटे टुकड़ों में नहीं बटी है; क्योंकि दक्षिणी गोलार्ध के इन अक्षांशों में महाद्वीपों का अभाव है। उत्तरी

टिप्पणी

गोलार्ध में अधोध्रुवीय निम्न वायुदाब के छोटे–छोटे दो क्षेत्र हैं। एक है उत्तरी अटलांटिक महासागर का आइसलैंड वाला निम्न वायुदाब क्षेत्र और दूसरा उत्तरी प्रशान्त महासागर का अल्यूशियन निम्न वायुदाब क्षेत्र।

(ii) जुलाई की वायुदाब दशायें : जुलाई में सूर्य के उत्तर की ओर खिसकने के साथ विषुवतीय निम्न वायुदाब की पेटी भी अपनी औसत स्थिति के कुछ उत्तर की ओर खिसक जाती है। अन्य वायुदाब पेटियाँ भी जुलाई में उत्तर की ओर थोड़ा–थोड़ा खिसक जाती हैं (चित्र 11.4)।

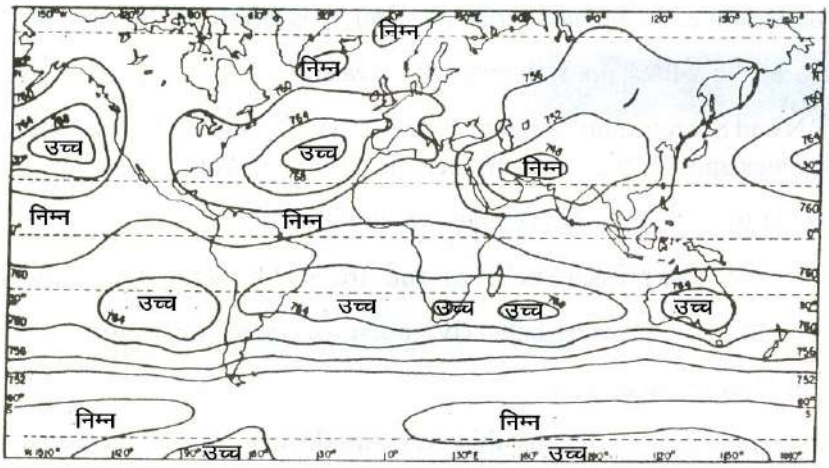

चित्र 11.4 वायुदाब का वितरण (जुलाई)

आईसलैंड निम्न वायुदाब क्षेत्र और अल्यूशियन निम्न वायुदाब क्षेत्र महासागरों पर से विलुप्त हो जाते हैं। परन्तु उन महाद्वीपों पर जहां शीत ऋतु में काफी विकसित उच्च वायुदाब क्षेत्र थे, वहां अब बहुत बड़े भूभाग पर निम्न वायुदाब क्षेत्र विकसित हो जाता है। एशिया में एक तीव्र निम्न वायुदाब का क्षेत्र पाया जाता है।

उत्तरी गोलार्ध के अटलांटिक और प्रशान्त महासागरों में उपोष्ण उच्च वायुदाब विकसित हो जाता है। दक्षिणी गोलार्ध में उपोष्ण उच्च वायुदाब का क्षेत्र लगातार है।

दक्षिणी गोलार्ध में इस समय अधोध्रुवीय निम्न वायुदाब की पेटी लगातार है परन्तु उत्तरी गोलार्ध में यह महासागरीय क्षीण निम्न वायुदाब का छोटा सा क्षेत्र है।

पाठगत प्रश्न 11.2

1. कोष्ठक में दिये शब्दों में से उपयुक्त शब्द द्वारा रिक्त स्थान भरिये–

   (क) विषुवतीय निम्न वायुदाब की पेटी _____ क्षेत्र है।

   (अभिसरण, अपसरण, घोड़े का अक्षांश)

(ख) अधोध्रुवीय निम्न वायुदाब की पेटी का संबंध _____ से है।
(अपसरण, डोलड्रम, चक्रवात)

2. निम्नलिखित को उपयुक्त वाक्यांशों से पूरा कीजिए:

(क) सर्वाधिक तापमान की पेटी का नाम है _____।

(ख) समदाब रेखा मानचित्र बनाते समय जो कारक निकाल दिया जाता है, उसका नाम है _____।

(ग) वायु का जितना अधिक घनत्व होगा उतना ही अधिक होगा, उसका _____।

(घ) वायु का जितना अधिक तापमान होगा उतना ही कम होगा, उसका _____।

3. प्रत्येक के लिये सही विकल्प पर चिन्ह (√) लगाइये–

(क) पृथ्वी के घूर्णन के कारण–

(i) वायु अपने मूल स्थान से छिटकती है।

(ii) वायु अभिसरित होती है।

(iii) दोनों छिटकती और अभिसरित होती हैं।

(iv) ऊपर में से कोई नहीं।

(ख) विषुवतीय निम्न वायुदाब की पेटी स्थित है–

(i) 45^0 उ.द. और आर्कटिक तथा एंटार्कटिक के बीच

(ii) 10^0 उ. और 10^0 द. अक्षांशों के बीच

(iii) अयन रेखाओं और 35^0 उ. और द. अक्षांशों के बीच

(iv) ऊपर में से कोई नहीं

(ग) घोड़े का अक्षांश स्थित है–

(i) विषुवतीय निम्न वायुदाब पेटी पर

(ii) उपोष्ण उच्च वायुदाब पेटी पर

(iii) अधोध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटी पर

(iv) ध्रुवीय उच्च वायुदाब क्षेत्र में

(घ) उच्च वायुदाब की पेटियाँ

(i) अस्थिर तथा शुष्क हैं

(ii) अस्थिर तथा नम हैं

(iii) ऊपर की दोनों

(iv) इनमें से कोई नहीं

11.5 पवनें

हमने अभी अध्ययन किया कि वायुदाब का वितरण सब जगह समान नहीं है। वायु, वायुदाब के वितरण की इस असमानता को संतुलित करने का प्रयास करती है। अतः वह उच्च वायुदाब के क्षेत्र से निम्न वायुदाब के क्षेत्र की ओर चलती है। वायुदाब के अन्तर के कारण क्षैतिज रूप में चलने वाली वायु को **पवन** कहते हैं। जब वायु ऊर्ध्वाधर रूप में गतिमान होती है तो उसे **वायुधारा** कहते हैं। पवनें और वायुधाराएं मिलकर वायुमंडल की परिसंचरण व्यवस्था बनाती हैं।

(i) वायुदाब प्रवणता एवं पवनें : वायुदाब की प्रवणता और पवन की गति में बहुत निकट का संबंध है। दो स्थानों के बीच वायुदाब का जितना अधिक अन्तर होगा, उतनी ही पवन की गति अधिक होगी। इसके विपरीत यदि वायुदाब की प्रवणता मन्द होगी तो पवन की गति भी कम होगी (चित्र 11.5)।

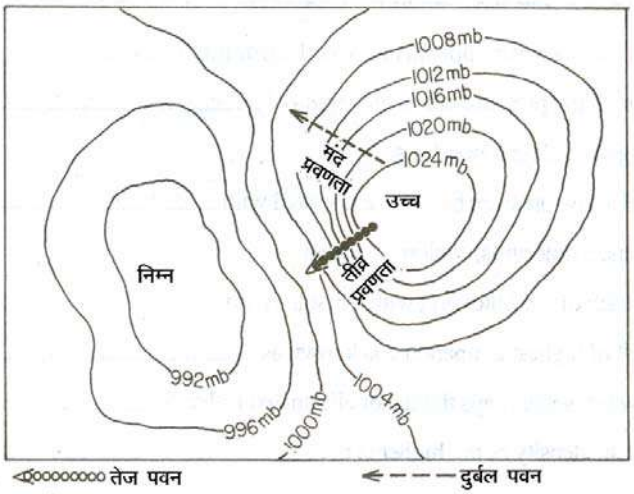

चित्र 11.5 वायुदाब प्रवणता और पवन में संबंध

(ii) कोरिओलिस प्रभाव और पवनें : वायुदाब की प्रवणता के अनुसार पवनें समदाब रेखाओं को समकोण पर नहीं काटतीं। वरन वे अपने मूल पथ से हट कर चलती हैं। पवन की दिशा में बदलाव का मुख्य कारण पृथ्वी का अपनी धुरी पर घूर्णन है। इसका प्रतिपादन ई.सन् 1844 में गैसपर्ड डी कोरिओलिस महोदय द्वारा किया गया। इसे ही कोरिओलिस प्रभाव या कोरिओलिस बल कहा जाता है। इस बल के कारण पवनें उत्तरी गोलार्ध में अपने मार्ग से दाहिनी ओर हट जाती हैं और दक्षिणी गोलार्ध में बाईं ओर (चित्र 11.6)। इसे फैरल का नियम भी कहते हैं। विषुवत वृत्त पर कोरिओलिस बल नगण्य होता है, परन्तु ध्रुवों की ओर जाने पर यह बढ़ता जाता है।

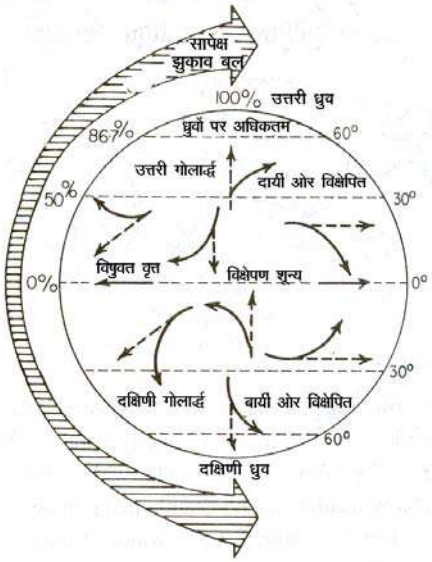

चित्र 11.6 कोरिओलिस बल के कारण पवनों का अपने मूल पथ से हटकर चलना

11.6 पवनों के प्रकार

मनुष्य कई पीढ़ियों से यह अनुभव करता आ रहा है कि संसार के कुछ क्षेत्रों में पवनें सारे वर्ष एक ही दिशा में चलती रहती हैं। इसके विपरीत कुछ क्षेत्रों में पवनों के चलने की दिशा ऋतु परिवर्तन के साथ बदल जाती है। साथ ही साथ कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं जिनमें पवनें इतनी परिवर्तनशील होती है कि उनका कोई प्रतिरूप बता पाना कठिन है। धरातल पर चलने वाली पवनों को स्थूल रूप से तीन वर्गों में रखा जाता है। ये वर्ग हैं–

(क) भूमण्डलीय या स्थाई पवनें

(ख) आवर्ती पवनें

(ग) स्थानीय पवनें।

(क) भूमण्डलीय पवनें

भूमण्डलीय या स्थाई पवनें सदैव एक ही दिशा से वर्ष भर उच्च वायुदाब पेटियों से निम्न वायुदाब पेटियों की ओर चला करती हैं। ये पवनें महाद्वीपों और महासागरों से बहुत बड़े भागों पर चलती हैं। इनके तीन उपविभाग हैं– (i) पूर्वी पवनें, (ii) पश्चिमी पवनें और (iii) ध्रुवीय पूर्वी पवनें (चित्र 11.7)।

(i) पूर्वी पवनें : पूर्वी पवनें या व्यापारिक पवनें उपोष्ण उच्च वायुदाब क्षेत्रों से विषुवतीय निम्न वायुदाब क्षेत्र की ओर चलती है। इन्हें 'ट्रेड विंड' भी कहते हैं। 'ट्रेड' जर्मन भाषा का शब्द हैं जिसका अर्थ है 'पथ'। 'ट्रेड' के चलने का अर्थ है नियमित रूप से एक ही पथ पर निरन्तर एक ही दिशा से चलना। अतः इन्हें

टिप्पणी

सन्मार्गी पवनें भी कहते हैं। उत्तरी गोलार्ध में पूर्वी या सन्मार्गी पवनें उत्तर–पूर्व दिशा से तथा दक्षिणी गोलार्ध में दक्षिण–पूर्व दिशा से चलती हैं। सन्मार्गी पवनें उष्ण कटिबंध में मुख्यतया पूर्व दिशा से चलती हैं अतः इन्हें उष्ण कटिबन्धीय पूर्वी पवनें भी कहते हैं (चित्र 11.7)।

(ii) पश्चिमी या पछुआ पवनें : पश्चिमी या पछुआ पवनें उपोष्ण उच्च वायुदाब की पेटी से अधोध्रुवीय निम्न वायुदाब की पेटी की ओर चलती हैं। कोरिओलिस बल के कारण ये पवनें उत्तरी गोलार्ध में अपने दायीं ओर को मुड़कर चलती हैं और यहाँ इनकी दिशा दक्षिण–पश्चिम होती है। दक्षिणी गोलार्ध में ये बाईं ओर मुड़कर चलती है और यहाँ इनकी दिशा उत्तर–पश्चिम होती है (चित्र 11.7)। मुख्य दिशा पश्चिम होने के कारण इन्हें पश्चिमी पवनें कहते हैं।

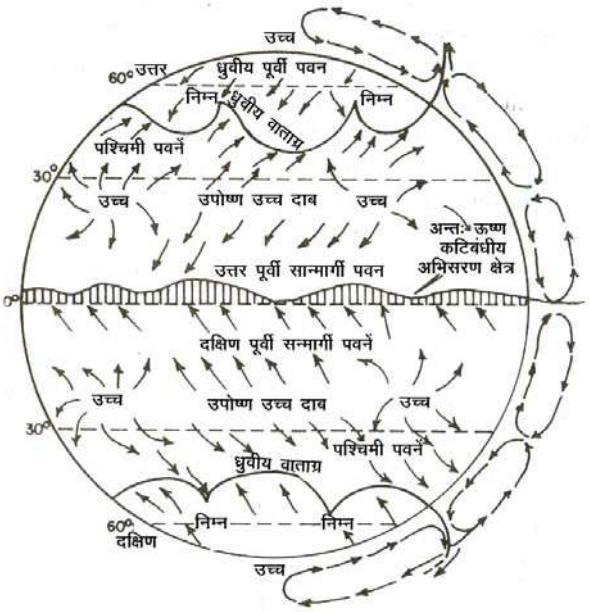

चित्र 11.7 भूमण्डलीय पवनें

(iii) ध्रुवीय पूर्वी पवनें : ये पवनें ध्रुवीय उच्च वायुदाब क्षेत्र से अधोध्रुवीय निम्न वायुदाब क्षेत्र की ओर चलती हैं। उत्तरी गोलार्ध में इनकी दिशा उत्तर–पूर्व और दक्षिण गोलार्ध में दक्षिण–पूर्व होती है।

- उत्तरी गोलार्ध में पवनें अपने मार्ग से दाहिनी ओर मुड़ जाती हैं और दक्षिणी गोलार्ध में बायी ओर। इसे फैरल का नियम कहा जाता है।

पाठगत प्रश्न 11.3

1. कोष्ठक में दिये शब्दों में से उपयुक्त शब्द द्वारा रिक्त स्थान भरिये:

   (क) _____ में अन्तर होने के कारण वायु चलती है।

   (वायुदाब, वायु, तापमान)

(ख) वायु की ऊर्ध्वाधर गति को _____ कहते हैं।
(पवन, वायुधारा)

(ग) पवनें और वायु धारायें मिलकर वायुमंडल की _____ व्यवस्था बनाती हैं। (परिसंचरण, वायुदाब)

2. भूमण्डली पवनों के नाम बताइये।

(क)_____ (ख)_____ और (ग) _____

3. फैरल का नियम क्या है?

_____

_____

4. सही विकल्प पर चिन्ह (√) लगाइये।

(क) पवनें चलती हैं उच्च वायुदाब से–

(i) निम्न वायुदाब की ओर, (ii) उच्च वायुदाब की ओर,

(iii) दोनों निम्न तथा उच्च वायुदाब की ओर, (iv) किसी ओर नहीं

(ख) पवनें अपने मूल मार्ग से मुड़ जाती हैं–

(i) कोरिओलिस बल के कारण, (ii) वायुदाब प्रवणता के कारण, (iii) अपनी गति के कारण, (iv) उच्च दाब के कारण

(ग) पवनें मुख्यतया उत्पन्न होती हैं–

(i) कोरिओलिस बल के कारण, (ii) वायुदाब में अनतर के कारण, (iii) पृथ्वी के घूर्णन के कारण, (iv) आर्द्रता में अन्तर के कारण।

(घ) कोरिओलिस बल विषुवत वृत्त पर

(i) अधिकतम है, (ii) मध्यम है, (iii) नगण्य है (iv) ऊपर के तीनों नहीं

(ख) आवर्ती पवनें

इन पवनों की दिशा ऋतु परिवर्तन के साथ बदलती रहती है। मानसून पवनें बहुत ही महत्वपूर्ण आवर्ती पवनें हैं।

मानसून पवनें : 'मानसून' शब्द की उत्पत्ति अरबी भाषा के शब्द 'मौसम' से हुई है, जिसका अर्थ है मौसम। जो पवनें ऋतु परिवर्तन के साथ अपनी दिशा उलट लेती हैं, उन्हें मानसून पवनें कहते हैं। ग्रीष्म ऋतु में मानसून पवनें समुद्र से स्थल की ओर तथा शीत ऋतु में स्थल से समुद्र की ओर चलती हैं। परम्परागत रूप से इन पवनों की व्याख्या बड़े पैमाने पर चलने वाली समुद्र–समीर और स्थल–समीर से की जाती थी। परन्तु अब यह व्याख्या अधिक उचित नहीं समझी जाती। आज के युग में मानसून

टिप्पणी

पवनों को सामान्य भूमंडलीय पवन व्यवस्था का ही संशोधित रूप माना जाता है। एशियाई मानसून, भूमंडलीय पवन व्यवस्था और स्थानीय कारकों की पारस्परिक क्रिया का परिणाम है। इसके अन्तर्गत धरातल तथा क्षोभ मण्डल दोनों में ही घटित होने वाली क्रियाएं शामिल हैं। (चित्र 11.8)

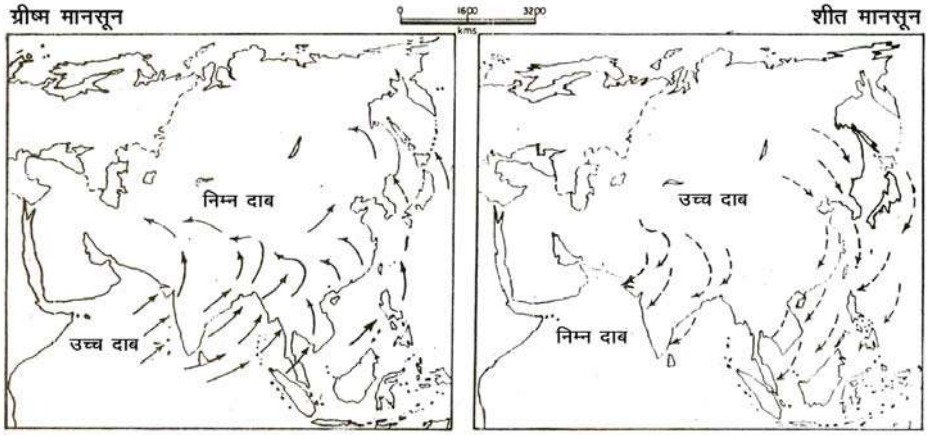

चित्र 11.8 मानसून पवनें

मानसून पवनों के प्रमुख प्रभाव क्षेत्र भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, म्यानमार (बर्मा) श्रीलंका, अरब सागर, बंगाल की खाड़ी, दक्षिण–पूर्व एशिया, उत्तरी आस्ट्रेलिया, दक्षिणी चीन और जापान हैं।

- पवनें जो ऋतु के परिवर्तन के साथ अपनी दिशा उलट लेती हैं, मानसून पवनें कहलाती हैं।

(ग) स्थानीय पवनें

अब तक हमने पृथ्वी–तल पर चलने वाली प्रमुख पवनों के बारे में अध्ययन किया है। ये पवनें पृथ्वी के प्रमुख जलवायु प्रदेशों को समझने में बहुत सहायक हैं। लेकिन हम सब जानते हैं कि कुछ पवनें ऐसी भी हैं जो स्थानीय मौसम को प्रभावित करती हैं। सामान्यतः स्थानीय पवनें छोटे क्षेत्र को प्रभावित करती हैं। ये क्षोभमण्डल के निम्नभाग तक ही सीमित रहती हैं। कुछ स्थानीय पवनों का वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

(i) समुद्र-समीर एवं स्थल-समीर : समुद्र–समीर और स्थल–समीर समुद्र तटों और झीलों के आस–पास के क्षेत्रों में चला करती हैं। स्थल भाग और जल भाग के अलग–अलग ठंडा और गर्म होने के कारण उच्च और निम्न वायुदाब बदलने के दैनिक क्रम हैं। दिन के समय स्थल भाग समुद्र या झील की अपेक्षा शीघ्र और अधिक गर्म हो जाता है। अतः स्थल भाग के ऊपर की वायु फैलती है और ऊपर

उठती है। इस कारण स्थल भाग पर स्थानीय निम्न वायुदाब विकसित हो जाता है और इसके विपरीत समुद्र या झील की सतह पर उच्च वायुदाब होता है। वायुदाबों में अन्तर होने के कारण समुद्र से स्थल की ओर वायु चलती है। इसे **समुद्र-समीर** कहते हैं। **समुद्र-समीर** दोपहर से कुछ पहले चलना आरंभ करती है और इसकी तीव्रता दोपहर और दोपहर बाद सबसे अधिक होती है। इन शीतल पवनों का तटीय भागों के मौसम पर समकारी प्रभाव पड़ता है (चित्र 11.9)।

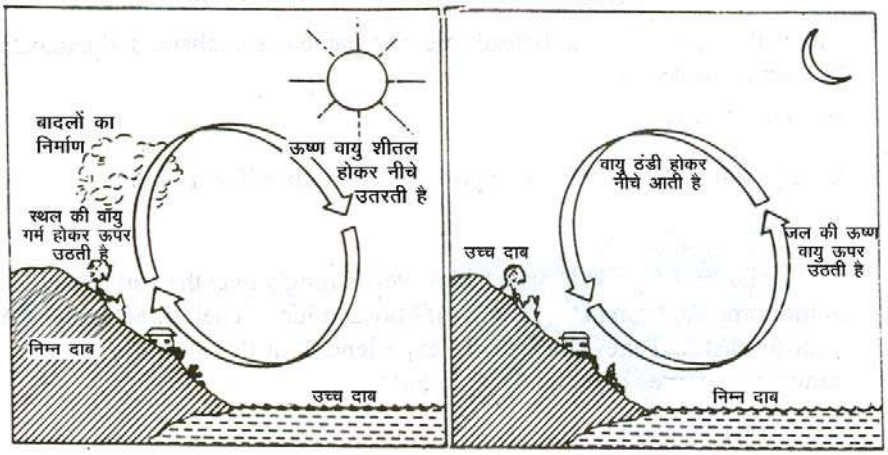

चित्र 11.9 समुद्र-समीर और स्थल-समीर

रात के समय स्थल भाग शीघ्र ठंडा हो जाता है और आसपास के जलीय भागों की अपेक्षा तापमान कम होता है। इसके परिणामस्वरूप स्थल भाग पर उच्च वायुदाब होता है और समुद्री–भाग पर अपेक्षाकृत निम्न वायुदाब, अतः पवनें स्थल–भाग से समुद्र की ओर चला करती है। ऐसी पवनों को **स्थल-समीर** कहते हैं (चित्र 11.9)।

(ii) घाटी एवं पर्वतीय समीर : पवनों की दिशा में दैनिक बदलाव होने वाले अन्य युगल पवनें घाटी एवं पर्वतीय समीर हैं। दिन के समय पर्वतीय ढाल घाटी की अपेक्षा अधिक गर्म हो जाते हैं। इससे ढालों पर वायु दाब कम और घाटी तल पर वायुदाब अधिक होता है। अतः दिन के समय घाटी तल से वायु मन्द गति से पर्वतीय ढालों की ओर चला करती है। इसे घाटी–समीर कहते हैं (चित्र 11.10)।

सूर्यास्त के बाद पर्वतीय ढालों पर तेजी से ताप का विकिरण हो जाता है। अतः पर्वतीय ढालों पर घाटी तल की अपेक्षा शीघ्रता से उच्च वायुदाब विकसित हो जाता है। अतः पर्वतीय ढालों की ठंडी और भारी वायु नीचे घाटी तल की ओर बहने लगती है। इसे **पर्वतीय-समीर** कहते हैं (चित्र 11.10)। घाटी–समीर और पर्वतीय–समीर को क्रमशः **एनाबेटिक** तथा **केटाबेटिक** समीर भी कहते हैं।

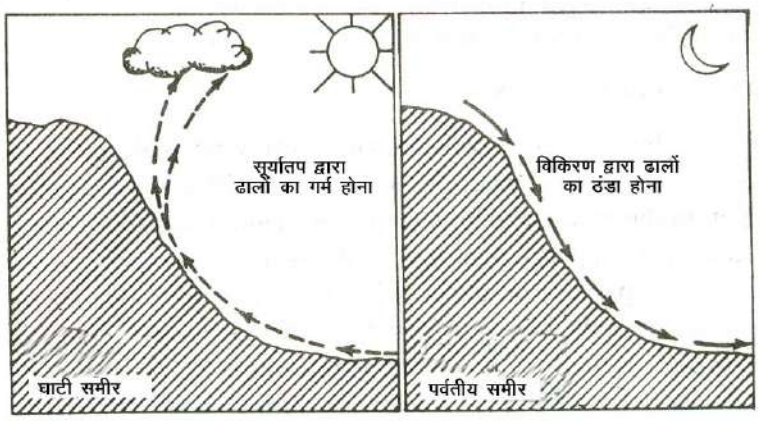

चित्र 11.10 घाटी एवं पर्वतीय समीर

(iii) गर्म पवनें : लू, फोहन और चिनूक प्रमुख गर्म प्रकार की स्थानीय पवनें हैं।

(1) **लू** : लू अति गर्म तथा शुष्क पवनें हैं जो मई तथा जून के महीनों में भारत के उत्तरी मैदानों और पाकिस्तान में चला करती हैं। इन पवनों की दिशा पश्चिम से पूर्व है ओर ये सामान्यतया दोपहर के बाद चलती हैं। इन पवनों का तापमान 45^0 सें. से 50^0 से. के बीच होता है।

(2) **फोहन :** आल्प्स पर्वत माला के पवनाविमुख (उत्तरी) ढालों पर नीचे की ओर उतरने वाले तीव्र, झोंकेदार, शुष्क और गर्म स्थानीय पवन को **फोहन** कहते हैं। स्थानीय वायुदाब प्रवणता के कारण वायु आल्प्स पर्वत के दक्षिणी ढलानों पर चढ़ती है। चढ़ते समय इन ढ़लानों पर कुछ वर्षा भी करती है। परन्तु पर्वतमाला को पार करने के बाद ये पवनें उत्तरी ढ़लानों पर गर्म पवन के रूप में नीचे उतरती हैं। इनका तापमान 15^0 से. से 20^0 से. तक होता है और ये पर्वतों पर पड़ी हिम को पिघला देती हैं। इनसे चारागाह पशुओं के चरने योग्य बन जाते हैं और अंगूरों को शीघ्र पकने में इनसे सहायता मिलती है।

(3) **चिनूक :** संयुक्त राज्य अमरीका और कनाड़ा में रॉकी पर्वतमाला के पूर्वी ढ़ालों पर नीचे उतरती गर्म पवन को **चिनूक** कहते हैं। स्थानीय भाषा में चिनूक शब्द का अर्थ है 'हिम भक्षक' क्योंकि वे हिम को समय से पूर्व पिघलाने में समर्थ हैं। अतः ये घास स्थलों को हिमरहित बना देती हैं, जिससे चारागाहों पर पर्याप्त मात्रा में घास उपलब्ध हो जाती है।

(4) **ठंडी पवनें :** ठंडी पवनें शीत ऋतु में हिमाच्छादित पर्वतों पर उत्पन्न होती हैं और ढाल के अनुरूप घाटी की ओर नीचे उतरती हैं। भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में इनके अलग–अलग नाम हैं। इनमें से प्रमुख **मिस्ट्रल** पवन हैं।

मिस्ट्रल : मिस्ट्रल पवनें आल्प्स पर्वत पर उत्पन्न होती हैं, ये फ्राँस में रोन नदी की घाटी में से होकर भूमध्य सागर की ओर चलती है। मिस्ट्रल बहुत ठंडी, शुष्क एवं तेज गति

वाली स्थानीय पवनें हैं जो अपने प्रभाव क्षेत्रों का तापमान हिमांक बिन्दु से नीचे गिरा देती हैं। इन पवनों से बचने के लिये लोग अपने बागानों के चारों ओर झाड़ियाँ लगा देते हैं। लोगों के घरों के मुख्य द्वार और खिड़कियां भी भूमध्य सागर की ओर होते हैं, जिससे इन ठंडी पवनों का प्रभाव कुछ कम हो सके।

पाठगत प्रश्न 11.4

1. निम्नलिखित प्रत्येक के लिये सही विकल्प पर चिन्ह (√) लगाइये:

   (क) फोहन पवनें हैं–

   (i) नम, (ii) ठंडी, (iii) नम और ठंडी, (iv) तीनों में से कोई नहीं

   (ख) चिनूक पवनें हैं–

   (i) फोहन पवनों के समान, (ii) मिस्ट्रल पवनो के समान,
   (iii) दोनों प्रकार की, (iv) तीनों में से कोई नहीं।

2. फोहन पवनें कहाँ से उत्पन्न होती हैं?

3. उन स्थानीय पवनों का नाम बताइये जो रॉकी पर्वतमाला के हिमाच्छादित भागों से पूर्वी ढलानों पर उतरती हैं।

4. निम्नलिखित में से प्रत्येक पवन के सामने गर्म या ठंडी लिखिये:

   (क) लू_____ (ख) मिस्ट्रल _____ (ग) चिनूक _____.

11.7 उष्ण कटिबन्धीय एवं शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात

(1) **वायु राशि :** विस्तृत क्षेत्र पर वायुमण्डल की वह स्थिति जिसमें क्षैतिज दृष्टिकोण से तापमान और आर्द्रता में एकरूपता होती है **वायु-राशि** कहलाती है। एक वायु–राशि उस समय विकासित होती है, जब वायु बहुत बड़े और लगभग एक समान स्थल भाग या महासागर तल पर बहुत लम्बे समय तक स्थिर रहती है, जिससे वह तल के तापमान या आर्द्रता को ग्रहण कर लेती है। वायु–राशियों के प्रमुख स्रोत प्रदेश समान दशाओं वाले उच्च अक्षांशों के ध्रुवीय प्रदेश या निम्न अक्षांशों के उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र होते हैं। अतः वायु–राशियाँ दो प्रकार की होती हैं– ध्रुवीय वायु–राशि और उष्ण कटिबंधीय वायु–राशि। ध्रुवीय वायु–राशि ठंडी और उष्ण कटिबंधीय वायु–राशि गर्म होती है। जब ठंडी वायु–राशि और गर्म वायु–राशि एक दूसरे की ओर बहती है तब इनके मिलन तल को **वाताग्र** कहते हैं। जब गर्म वायु–राशि ठंडी वायु–राशि के ऊपर चढ़ती है तो इससे बने वाताग्र को **गर्म वाताग्र** कहते हैं। जब ठंडी वायु–राशि अधिक गतिशील होने के साथ गर्म वायु–राशि को नीचे से काटती हुई गर्म वायु–राशि को ऊपर उठने के लिये

बाध्य करती है, तो इस स्थिति में शीत–वाताग्र बनता है। **शीत-वाताग्र** का तल गर्म वाताग्र के तल से तीव्र होता है (चित्र 12.5)। कोई वायु–राशि चाहे वह ध्रुवीय, उष्णकटिबंधीय, महासागरीय या महाद्वीपीय हो, जब वह किसी प्रदेश पर हावी हो जाती है तो वह मुख्यतया वहाँ के मौसम को नियंत्रित करती है।

(2) **चक्रवात :** एक विशिष्ट चक्रवात में समदाब रेखाओं की व्यवस्था दीर्घवृत्ताकार होती है और उनके केन्द्र में निम्न वायुदाब होता है तथा पवनें निम्न वायुदाब केन्द्र की ओर चलती हैं। उत्तरी गोलार्ध में चक्रवात के भीतर पवनें घड़ी की सुइयों के घूमने की वपरीत दिशा में चलती हैं और दक्षिणी गोलार्ध में घड़ी की सुइयों के घूमने की दिशा के अनुरूप चलती हैं (चित्र 11.11)। चक्रवात दो प्रकार के होते हैं– (क) शीतोष्ण कटिबंधीय या मध्य अक्षांशीय चक्रवात और (ख) उष्णकटिबंधीय या निम्न अक्षांशीय चक्रवात। (चित्र 11.11)

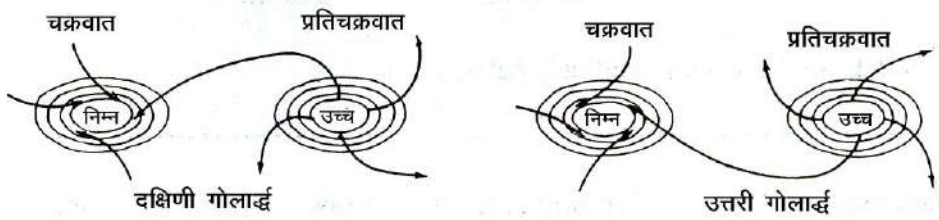

चित्र 11.11 उत्तरी व दक्षिणी गोलार्धों में चक्रवात और प्रतिचक्रवात से संबंधित वायु व्यवस्था

(क) शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात को निम्न वायुदाब के अवदाब भी कहते हैं, ये 35^0 और 65^0 उ. तथा द. अक्षाशों के बीच या मध्य अक्षांशों की पछुआ पवनों की पेटी में वाताग्रों के साथ निर्मित होते हैं। ये पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर चलते हैं और शीत ऋतु में अधिक विकसित होते हैं। इन चक्रवातों के प्रमुख क्षेत्र अटलांटिक महासागर और उत्तर–पश्चिम यूरोप हैं। शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों का विस्तार बहुत अधिक होता है। इनकी मोटाई 9 से 11 किलोमीटर तथा छोटे और बड़े व्यास क्रमशः 1040 से 1920 किलोमीटर तक होते हैं (चित्र 11.12)। ऐसे प्रत्येक चक्रवात के पीछे उच्च वायुदाब का प्रतिचक्रवात होता है। चक्रवात में बादलों से घिरा आकाश और फुहार जैसी वर्षा की मौसम दशायें कई दिनों तक रहती हैं। परन्तु प्रतिचक्रवात में मौसम शान्त, धूपवाला और शीत लहर से युक्त होता है।

(ख) उष्ण कटिबंधीय चक्रवात ऐसे क्षेत्र में बनते हैं, जहाँ उत्तर–पूर्व और दक्षिण–पूर्व सन्मार्गी पवनें मिलती हैं। इस क्षेत्र को अंतः उष्णकटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र (आई.टी.सी. जेड.) कहते हैं। उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों के प्रमुख क्षेत्रों में मैक्सिको, उत्तरी प्रशान्त महासागर का दक्षिणी–पश्चिमी भाग, उत्तरी हिन्द महासागर तथा दक्षिणी प्रशान्त महासागर सम्मिलित हैं। उष्ण कटिबंधीय चक्रवात शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात से कई बातों में भिन्न होते हैं। इनमें शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों के समान सुस्पष्ट गर्म तथा

ठंडे वाताग्र नहीं होते, क्योंकि अंतः उष्णकटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र में तापमान सब जगह लगभग एक समान होते हैं। इनमें कोई स्पष्ट पवन व्यवस्था नहीं होती और ये सामान्य तथा उथले अवदाब हैं और इनमें पवन की गति क्षीण होती है। इनके साथ या पीछे प्रति चक्रवात नहीं होते। इन चक्रवातों में समदाब रेखाओं की व्यवस्था लगभग वृत्ताकार होती है। ये बहुत बड़े विस्तार के नहीं होते और इनका व्यास 160 से 640 किलोमीटर तक होता है। फिर भी इनमें से कुछ बहुत ही प्रचंड तथा तूफानी होते हैं जो अपने प्रभाव क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर विनाश लीला करते हैं। इस प्रकार के भयानक चक्रवातों को कैरीबियन सागर में हरीकेन; चीन, जापान तथा फिलीपिन द्वीपों में टाइफून; हिन्द महासागर में चक्रवात और उत्तरी आस्ट्रेलिया में विली–विली कहते हैं (चित्र 11.12)।

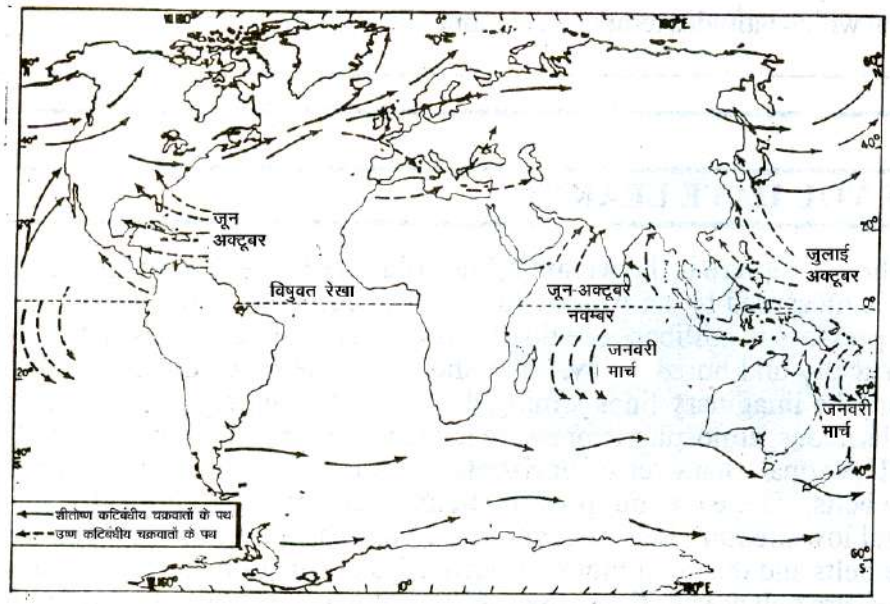

चित्र 11.12 शीतोष्ण एवं उष्णकटिबंधीय चक्रवातों के मार्ग

उष्ण कटिबंधीय चक्रवात तटीय भागों में अधिकतर विनाश करते हैं। आपने भारत के तटों पर ग्रीष्म और शरद ऋतुओं में चक्रवातों के आने के बारे में सुना होगा। इनके द्वारा इस क्षेत्र में प्रति वर्ष जन–धन की अपार हानि होती है। इन चक्रवातों में अति तीव्र वायुदाब प्रवणता के कारण बहुत तेज पवनें चलती हैं जो सीमित क्षेत्र में तूफान और बहुत भारी वर्षा के साथ विनाश लीला करती हैं। फिर भी ऐसे चक्रवातों के केन्द्र के चारों ओर लगभग 8 से 48 किलोमीटर क्षेत्र, जिसे इन तूफानी चक्रवातों की आँख कहते हैं, में मौसम शांत और वर्षा रहित होता है। यदि इस आँख को खोज लिया जाये तो आधुनिक विज्ञान की मदद से ऐसे तूफानी चक्रवातों का आगे बढ़ना रोका जा सकता है और इस प्रकार हम उनसे अपनी रक्षा कर सकते हैं।

- वायुराशि वायु की वह विस्तृत मात्रा है जिसमें तापमान, वायुदाब तथा आर्द्रता सब जगह समान होती है।
- दो वायुराशियों को अलग करने वाला तल वाताग्र कहलाता है।
- शीतोष्ण चक्रवात मध्य अक्षांशीय क्षेत्रों से विकसित होते हैं, जबकि उष्ण कटिबंधीय चक्रवात निम्न अक्षांशीय क्षेत्रों में बनते हैं।

पाठगत प्रश्न 11.5

1. कोष्ठक में से सही शब्द चुनकर रिक्त स्थान भरिये।

   (क) समान तापमान, वायुदाब तथा आर्द्रता वाली वायु की विस्तृत मात्रा _____ कहलाती है। (वायु राशि, जेट वायुधारा, पवन, वायुधारा)

   (ख) दो प्रकार की वायुराशियों के नाम हैं _____ वायुराशि और _____ वायुराशि। (शीतोष्ण कटिबंधीय, उष्ण कटिबंधीय, ध्रुवीय, विषुवतीय)

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य में दीजिये:

   (क) किन चक्रवातों द्वारा जन–धन की हानि सर्वाधिक होती है।

   _____

   (ख) शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात किन अक्षांशों में विकसित होते हैं?

   _____

आपने क्या सीखा

एक निश्चित स्थान और समय पर वायु के स्तम्भ का दाब वायुमंडलीय दाब कहलाता है। इसे वायुदाबमापी यंत्र (बैरोमीटर) से मापा जाता है। मिलीबार वायुदाब मापने की इकाई है। वायुदाब के क्षैतिज एवं ऊर्ध्वाधर दोनों प्रकार के वितरण असमान हैं। मानचित्र पर वायुदाब के वितरण को समदाब रेखाओं द्वारा दर्शाया जाता है। समदाब रेखायें काल्पनिक रेखायें हैं जो मानचित्र पर समुद्र तल पर उतारे गये समान दाब वाले स्थानों को मिलाती हैं। उच्च अक्षांशों पर वायुदाब निम्न अक्षांशों की अपेक्षा अधिक होता है। क्षैतिज वायुदाब की क्षेत्रीय व्यवस्था वायुदाब पेटियाँ कहलाती हैं। संसार की प्रमुख चार वायुदाब पेटियां हैं– विषुवतीय निम्नवायुदाब पेटी, उपोष्ण उच्च वायुदाब पेटी, अधोध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटी और ध्रुवीय उच्च वायुदाब पेटी। तापमान एवं घूर्णन के कारण

धरातल पर वायुदाब में भिन्नता पाई जाती है। वायुदाब पेटियां स्थिर नहीं हैं। वे सूर्य की आभासी गति के अनुसार ग्रीष्म ऋतु में उत्तर की ओर और शीत ऋतु में दक्षिण की ओर खिसकती रहती हैं। वायुदाब प्रवणता, दो स्थानों के बीच की दूरी और उनके बीच वायुदाब के अन्दर के अनुपात को कहते हैं। कुछ पवनें दैनिक प्रतिरूप के तौर पर हमेशा बहती है। उदाहरण के लिए स्थल समीर और समुद्र–समीर, घाटी एवं पर्वतीय समीर। वायुदाब प्रवणता और पवनगति के बीच निकट का संबंध है। कोरिओलिस बल के कारण पवनें उत्तरी गोलार्ध में मूल पथ से अपने दांईं ओर तथा दक्षिणी गोलार्ध से अपने बांईं ओर मुड़ जाती हैं। इसे फेरल का नियम भी कहते हैं। कुछ पवनें सारे वर्ष एक ही दिशा से चलती हैं तो कुछ पवनें स्थानीय कारणों से दिशा परिवर्तित कर लेती हैं। मानसून ऋतुवत पवनें हैं। स्थानीय पवनें दैनिक हैं। वायुराशियाँ समान तापमान, वायुदाब और आर्द्रता वाली वायु की विशाल मात्रा होती है। दो विभिन्न वायुराशियों के मिलन तल को वाताग्र कहते हैं। मध्य अक्षांशों में वायुराशियों और वाताग्र के कारण शीतोष्ण चक्रवात बनते हैं। निम्न अक्षांशों में उष्ण कटिबंधीय चक्रवात बनते हैं और ये तटीय भागों की जलवायु को प्रभावित करते हैं। कभी–कभी ये बहुत प्रचण्ड या तूफानी होते हैं जो जनधन को अपार हानि करते हैं।

पाठांत प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 30–30 शब्दों में दीजिये।
   - (क) वायुदाब से क्या तात्पर्य है?
   - (ख) वायुदाब किस यंत्र की मदद से मापा जाता है?
   - (ग) निम्नलिखित क्या हैं?
     - (1) मिलीबार
     - (2) समदाब रेखा
   - (घ) ऊँचाई का वायुदाब पर क्या प्रभाव पड़ता है?
2. 50–50 शब्दों में निम्नलिखित प्रत्येक जोड़े के बीच अंतर बताइये:
   - (क) वायुधारा और पवन
   - (ख) भूमंडलीय एवं आवर्ती पवनें
   - (ग) फोहन एवं मिस्ट्रल
   - (घ) एनाबेटिक और कैटाबेटिक पवनें
3. 100–100 शब्दों में निम्नलिखित के कारण बताइए:
   - (क) अधोध्रुवीय क्षेत्र में निम्न वायुदाब पाया जाता है।
   - (ख) समुद्र समीर दिन के समय चलती है।

टिप्पणी

(ग) दोनों गोलार्धों में पवनें अपनी दिशा बदलती हैं।

4. निम्नलिखित की परिभाषा दीजिये:

(क) वायुराशि (ख) वाताग्र

5. शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात क्या है? ये उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों से किस प्रकार भिन्न हैं?

6. पवनों के अपने मूल पथ से मुड़ने में कोरिओलिस बल की क्या भूमिका रहती है?

7. निम्नलिखित की व्याख्या कीजिए:

(क) घोड़ों का अक्षांश (ख) डोलड्रम

8. संसार के रेखामानचित्र में निम्नलिखित दर्शाइये:

(क) जनवरी महीने के प्रमुख निम्न दाब क्षेत्र:

(ख) जुलाई महीने में उत्तरी गोलार्ध के प्रमुख उच्च दाब क्षेत्र।

9. सही विकल्प पर चिन्ह (√) लगाइये:

(क) दक्षिण–पश्चिम मानसून होती है–

(i) स्थानीय पवनें (ii) बड़े पैमाने पर समुद्र एवं स्थल समीर

(iii) दक्षिण–पूर्व सन्मार्गी पवनों का संशोधित रूप (iv) बहुत गर्म पवनें

(ख) पवनों के उत्पन्न होने का मुख्य कारण है–

(i) कोरिओलिस प्रभाव, (ii) वायुदाब की भिन्नता

(iii) पृथ्वी का घूर्णन, (iv) आर्द्रता में अन्तर

(ग) शान्त पेटी के क्षेत्र में होता है–

(i) उच्च वायुदाब तथा तेज पवनें,

(ii) मध्यम वायुदाब

(iii) निम्न वायुदाब तथा शान्त दशाएं

(iv) उच्च वायुदाब एवं शान्त दशाएं

(घ) विषुवत वृत्त पर कोरिओलिस बल होता है–

(i) सबसे अधिक, (ii) मध्यम, (iii) बिल्कुल नहीं, (iv) सबसे कम

(ङ) भारत अपनी वर्षा का अधिकतर भाग प्राप्त करता है–

(i) उत्तर–पूर्व मानसून से, (ii) पीछे हटते दक्षिण–पश्चिम मानसून से,

(iii) दक्षिण–पश्चिमी मानसून से, (iv) शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों से

(च) मानचित्र पर वायुदाब की दशाएं प्रदर्शित की जाती हैं–

(i) समताप रेखाओं द्वारा, (ii) समदाब रेखाओं द्वारा,

(iii) समवृष्टि रेखाओं द्वारा, (iv) समलवण रेखाओं द्वारा

(छ) घोड़ों के अक्षांश स्थित हैं–

(i) उपोष्ण उच्च दाब पेटी में, (ii) विषुवतीय निम्न वायुदाब पेटी में,

(iii) अधोध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटी में,

(iv) ध्रुवीय उच्च वायुदाब पेटी में

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

11.1

1. (क) क्षेत्र, (ख) हेक्टोपास्कल, (ग) वायुदाब (घ) असमान
2. (क) वायु का तापमान, (ख) पृथ्वी का घूर्णन और
   (ग) वायु में जलवाष्प की मात्रा
3. (क) फोर्टिन बैरोमीटर (ख) एनरॉइड बैरोमीटर
4. 1013.25 मिलीबार
5. (क) 76 से.मी. (ख) निम्न वायुदाब (ग) अधिक वायुदाब

11.2

1. (क) अभिसरण, (ख) चक्रवात
2. (क) तापीय विषुवत वृत्त, (ख) ऊँचाई, (ग) वायुदाब (घ) वायुदाब/घनत्व
3. (क) (i); (ख) (ii); (ग) (ii); (घ) (iv);

11.3

1. (क) वायुदाब (ख) वायुधारा, (ग) परिसंचरण
2. (क) सन्मार्गी पवनें, (ख) पश्चिमी पवनें, (ग) ध्रुवीय पवनें
3. उत्तरी गोलार्ध में पवनें अथवा अन्य कोई गतिमान वस्तु अपने मार्ग से दाईं ओर मुड़ जाती हैं और दक्षिणी गोलार्ध में बाईं ओर, इसे फैरल का नियम कहते हैं।
4. (क) (i); (ख) (i); (ग) (ii); (घ) (iii);

11.4

1. (क) (iv); (ख) (i);
2. आल्प्स पर्वतमाला के पवनाविमुख ढालों पर
3. चिनूक
4. (क) गर्म, (ख) ठंडी, (ग) गर्म

टिप्पणी

11.5

1. (क) वायुराशि, (ख) उष्ण कटिबंधीय एवं ध्रुवीय
2. (क) उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों द्वारा

   (ख) मध्य अक्षांशों में

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. (क) एक निश्चित समय में किसी स्थान पर वायु के स्तम्भ का भार

   (ख) वायुदाब वायुदाबमापी (बैरोमीटर) यंत्र की मदद से मापा जाता है।

   (ग) (1) वायुदाब मापने की इकाई। यह एक वर्ग से.मी. क्षेत्र पर पड़ने वाले लगभग एक ग्राम बल/भार के बराबर होता है।

   (2) समान वायुदाब वाले स्थानों को जोड़ने वाली रेखा समदाब रेखा कहलाती है।

2. (क) कृपया अनुच्छेद 11.5 देखिये।

   (ख) कृपया अनुच्छेद 11.6 (क) और (ख) देखिये।

   (ग) कृपया अनुच्छेद 11.6 (ग) (iii) (2) और (iv) (1) देखिये।

   (घ) कृपया अनुच्छेद 11.6 (ग) (ii) देखिये।

3. (क) कृपया अनुच्छेद 11.3 (iii) देखिये।

   (ख) कृपया अनुच्छेद 11.6 (ग) (i) देखिये।

   (ग) कृपया अनुच्छेद 11.5 (ii) देखिये।

4. (क) कृपया अनुच्छेद 11.7 (1) देखिये।

   (ख) कृपया अनुच्छेद 11.7 (1) देखिये।

5. (घ) कृपया अनुच्छेद 11.7 (2) (क) और (ख) देखिये।

6. कृपया अनुच्छेद 11.5 (ii) देखिये।

7. (क) कृपया अनुच्छेद 11.3 (ii) देखिये।

   (ख) कृपया अनुच्छेद 11.3 (ii) देखिये।

8. कृपया चित्र 11.3 और चित्र 11.4 देखिये।

9. (क) (ii); (ख) (ii); (ग) (iii); (घ) (iii); (ड़) (iii); (च) (ii); (छ) (i)

12

आर्द्रता और वर्षण

पिछले पाठ में वायुमंडल का संघटन बताते हुए हमने यह जाना कि जलवाष्प एक छोटा घटक होने के बावजूद वायुमंडल का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अवयव है। इस पाठ में हम दिन प्रतिदिन में होने वाले मौसम संबंधी परिवर्तनों में जलवाष्प की भूमिका का अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- निरपेक्ष एवं सापेक्ष आर्द्रता में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे;
- तापमान का वायु की (क) निरपेक्ष आर्द्रता और (ख) सापेक्ष आर्द्रता के साथ संबंध स्थापित कर सकेंगे;
- सापेक्ष आर्द्रता के बढ़ने और घटने के लिये आवश्यक दशाओं के बारे में निष्कर्ष निकाल सकेंगे;
- असतृप्त और संतृप्त वायु में अन्तर बता सकेंगे;
- वाष्पीकरण को प्रभावित करने वाले कारक बता सकेंगे;
- गुप्त ताप और उसके महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे;
- संघनन के विभिन्न रूपों का वर्णन कर सकेंगे;
- वर्षण के लिये आवश्यक दशाओं की व्याख्या कर सकेंगे;
- आरेखों की मदद से वर्षण के तीन रूपों में अन्तर कर सकेंगे;
- संसार में वर्षण के वितरण की प्रमुख विशेषतायें क्षेत्रीय एवं ऋतुवत विविधताओं के संदर्भ में समझा सकेंगे;
- वर्षण के वितरण को प्रभावित करने वाले विविध कारकों की व्याख्या कर सकेंगे।

टिप्पणी

12.1 वायुमंडल में जलवाष्प

जलवाष्प, वायुमंडल का सबसे अधिक परिवर्तनशील अवयव है। वायुमंडल के एक इकाई आयतन में जलवाष्प का अनुपात शून्य से चार प्रतिशत तक होता है। वायु में जल पदार्थ के तीनों रूपों– ठोस (हिमकण), द्रव (जलबिन्दु) तथा गैस (जलवाष्प) में विद्यमान रह सकता है। जल सामान्यतया वायु में स्वाद रहित, गन्ध रहित एवं पारदर्शी गैस के रूप में रहता है। इस गैस को ही जलवाष्प कहते हैं। वायुमंडल में जलवाष्प के विद्यमान रहने के ही कारण पृथ्वी पर जीवन संभव हुआ है। आइये, पृथ्वी पर पाये जाने वाले विविध प्रकार के जीवन के लिये जलवाष्प के महत्त्व का अध्ययन करें।

(1) हमने दसवें पाठ में अध्ययन किया है कि वायुमंडल में विद्यमान जलवाष्प सूर्यातप एवं पार्थिव विकिरण के महत्वपूर्ण अंश को सोख लेती है। इस प्रकार यह पृथ्वी के तल से होने वाले ऊष्मा ऊर्जा की क्षति को रोकती है और पृथ्वी पर अनुकूल तापमान बनाये रखने में मदद देती है।

(2) वायु में विद्यमान जलवाष्प की मात्रा वाष्पीकरण की दर को प्रभावित करती है।

(3) एक इकाई आयतन की वायु में विद्यमान जलवाष्प की मात्रा उसके गुप्त ताप या उसमें संग्रह की हुई ऊर्जा का निर्धारण करती है जो वायुमंडल में परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

(4) किसी स्थान या प्रदेश की वायु में विद्यमान जलवाष्प की मात्रा वर्षण के लिए उसकी संभावित क्षमता का संकेत देती है। यदि वायु में जलवाष्प की मात्रा अधिक है तो वह अधिक मात्रा में वर्षण करने में सक्षम है। अथवा कम है तो कम मात्रा में ही वर्षण कर सकती हैं

(5) वायु में विद्यमान जलवाष्प की मात्रा फसलों पर अनुकूल प्रभाव डालती है। इसके विपरीत गर्म और शुष्क वायु फसलों को क्षति पहुँचाती है, जैसा कि उत्तरी–पश्चिमी भारत की रबी की फसल को होता है।

(6) शुष्क वायु हमारे शरीर की त्वचा को शुष्क व कड़ा बना देती है। यही कारण है कि हम लोग कड़ाके की शीत ऋतु और ग्रीष्म ऋतुओं में अपने चेहरे की त्वचा की सुरक्षा के लिए विभिन्न प्रकार की क्रीमों का उपयोग करते हैं।

- वायुमंडल में जलवाष्प विकिरण को सोखती है, वाष्पीकरण की दर को नियंत्रित करती है, गुप्त ताप को छोड़कर मौसम में परिवर्तन लाती है, वर्षण की क्षमता को निर्धारित करती है, फसलों को और हमारे शरीर की त्वचा को प्रभावित करती है। अतः जलवाष्प का महत्व बहुत अधिक है।

12.2 आर्द्रता

जल, जलवाष्प में कैसे बदल जाता है? सूर्य की ऊष्मा जल को जलवाष्प में बदलती रहती है। किसी स्थान पर किसी समय वायुमण्डल में गैस के रूप में विद्यमान इस

अदृश्य जलवाष्प को वायु की आर्द्रता कहते हैं। दूसरे शब्दों में, आर्द्रता से तात्पर्य जल की उस नमी से है जो किसी वायु में जलवाष्प की मात्रा के रूप में विद्यमान होती है। वायु में विद्यमान आर्द्रता को निम्न दो प्रकार से व्यक्त किया जाता है:

(i) निरपेक्ष आर्द्रता

(ii) सापेक्ष आर्द्रता

(i) निरपेक्ष आर्द्रता : किसी इकाई आयतन की वायु में किसी समय विशेष में विद्यमान जलवाष्प की वास्तविक मात्रा को निरपेक्ष आर्द्रता कहते हैं। इसे ग्राम प्रतिघन मीटर में व्यक्त किया जाता है। उदाहरण के लिये, यदि किसी वायु की निरपेक्ष आर्द्रता 10 ग्राम है तो इसका तात्पर्य है कि उस वायु में एक घन मीटर आयतन में 10 ग्राम आर्द्रता जलवाष्प के रूप में विद्यमान है। निरपेक्ष आर्द्रता स्थान व समय के परिवर्तन के साथ बदलती रहती है।

किसी वायु की जलवाष्प धारण करने की क्षमता पूर्णतः उसके तापमान पर निर्भर करती है। तापमान के बढ़ने के साथ वायु में जलवाष्प धारण करने की क्षमता बढ़ जाती है। उदाहरण के लिये 10^0 से. तापमान वाली कोई वायु अपने अन्दर 11.4 ग्राम जलवाष्प प्रतिघन मीटर धारण कर सकती है। यदि इस वायु का तापमान बढ़कर 21^0 से. हो जाता है तो यही वायु एक घन मीटर आयतन में 22. 2 ग्राम आर्द्रता जलवाष्प रूप में धारण कर सकती है। चित्र 12.1 में वायु तापमान तथा उसमें अधिकतम आर्द्रता धारण करने की क्षमता के संबंध को दर्शाया गया है। इस चित्र पर एक सामान्य दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि तापमान के बढ़ने के साथ वायु की आर्द्रता धारण करने की क्षमता भी बढ़ जाती है। तापमान तथा वायुदाब में परिवर्तन होने के कारण वायु के आयतन में परिवर्तन होता है, फलस्वरूप उसकी निरपेक्ष आर्द्रता भी बदल जाती है। अतः आर्द्रता मापने के लिये अधिक विश्वसनीय माप की आवश्यकता होती है।

(ii) सापेक्ष आर्द्रता : सापेक्ष आर्द्रता वायुमण्डलीय नमी का सबसे महत्वपूर्ण तथा विश्वसनीय माप है। सापेक्ष आर्द्रता किसी निश्चित आयतन की वायु में वास्तविक जलवाष्प की मात्रा तथा उसी वायु के किसी दिये गए तापमान पर अधिकतम आर्द्रता धारण करने की क्षमता का अनुपात है। इसे प्रतिशत में व्यक्त किया जाता है।

$$\text{सापेक्ष आर्द्रता} = \frac{\text{वायु में वाष्प दबाव}}{\text{संतप्त वाष्प दबाव}} \times 100$$

चित्र 12.1 से यह स्पष्ट है कि कोई वायु किसी दिए गये तापमान पर जलवाष्प की एक निश्चित अधिकतम मात्रा ही अपने अन्दर धारण कर सकती है। जब यह स्थिति आ जाती है तो हम कहते हैं कि वायु पूर्णतया संतृप्त हो गई है जिस तापमान पर वायु पूर्वत या संतृप्त हो जाता है उसे ओसांक या संतृपन बिन्दु कहते हैं। किसी वायु की सापेक्ष आर्द्रता इस बिन्दु पर शत–प्रतिशत होती है।

टिप्पणी

सापेक्ष आर्द्रता इस पाठ को भली भांति समझने के लिये एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विचार है। अतः इसे एक उदाहरण की मदद से समझें। चित्र 12.1 से यह स्पष्ट है कि 21^0 से. वाली वायु अपने अन्दर अधिकतम 22.2 ग्राम प्रति घन मीटर ही आर्द्रता रख सकती है। यदि वायु 21^0 से. तापमान पर 11.1 ग्राम आर्द्रता धारण किये हुये है। तो इस वायु की सापेक्ष आर्द्रता 11.1/22.2X100 अर्थात 50 प्रतिशत होगी। यदि यही वायु 21^0 से. पर वास्तव में 22.2 ग्राम आर्द्रता धारण किए हुए हो तो उसकी सापेक्ष आर्द्रता 22.2/22.2X100 अर्थात 100 प्रतिशत होगी। जब वायु की सापेक्ष आर्द्रता शत प्रतिशत होती है तो वायु संतृप्त हो जाती है। यदि सापेक्ष आर्द्रता 100 प्रतिशत से कम है तो वायु असंतृप्त कहलाती है।

सापेक्ष आर्द्रता उस समय बढ़ती है, जब वायु का तापमान गिर जाता है या उस वायु में अधिक नमी वाली वायु आकर मिल जाती है। सापेक्ष आर्द्रता उस समय घटती हैं जब वायु का तापमान बढ़ जाता है या उस वायु में कम नमी वाली वायु आकर मिल जाती है।

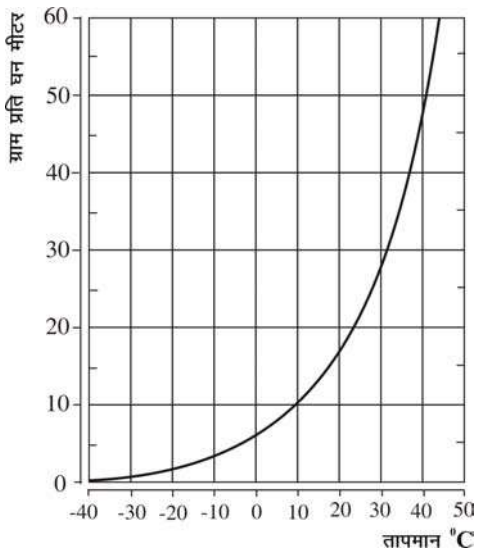

चित्र 12.1: सापेक्ष आर्द्रता

यह स्पष्ट करने के लिए कि किसी वायु में विद्यमान जलवाष्प की सापेक्ष आर्द्रता उसकी निरपेक्ष आर्द्रता की तुलना में अधिक उपयोगी माप है, इसे एक और उदाहरण लेकर स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिये एक गिलास में 250 ग्राम पानी है। लेकिन जब तक किसी को यह ज्ञात न हो कि उस गिलास में अधिकतम कितना पानी भरा जा सकता है, वह यह नहीं बता सकता कि गिलास पानी से कितना भरा है। लेकिन जब उसे यह ज्ञात होता है कि गिलास में 500 ग्राम पानी भरा जा सकता है तो वह तत्काल यह बता सकता है कि गिलास पानी से आधा भरा हुआ है। इसी प्रकार, जब कोई किसी वायु की सापेक्ष आर्द्रता मापता है तो उसे न केवल उसकी वास्तविक जलवाष्प की मात्रा ज्ञात होनी चाहिए, बल्कि यह भी जानना आवश्यक है कि उस वायु में उस तापमान पर कितने ग्राम प्रतिघन मीटर अधिकतम आर्द्रता समा सकती है।

- किसी इकाई आयतन की वायु में किसी समय विशेष में विद्यमान जलवाष्प की मात्रा या भार को निरपेक्ष आर्द्रता कहते हैं।
- किसी वायु की निरपेक्ष आर्द्रता तथा उस तापमान पर उसकी अधिकतम आर्द्रता धारण करने की क्षमता के अनुपात को सापेक्ष आर्द्रता कहते हैं। इसे प्रतिशत में व्यक्त किया जाता है। (सा.आ.=नि.आ./अधिकतम क्षमता X100)
- वह तापमान जिस पर एक दी गई वायु पूर्णतया संतृप्त हो जाती है, उसे ओसांक या संतृप्त बिन्दु कहते हैं।

पाठगत प्रश्न 12.1

1. वायुमंडल में विद्यमान जल के तीनों रूपों के नाम बताइए।

   (क) _____ (ख) _____ (ग) _____

2. निम्न में से प्रत्येक के लिये भौगोलिक नाम बताइए:

   (क) वायु में विद्यमान जलवाष्प की मात्रा _____

   (ख) प्रति आयतन इकाई वायु में विद्यमान वास्तविक आर्द्रता का भार

   _____

   (ग) वास्तविक आर्द्रता तथा उस वायु की दिये गये तापमान पर अधिकतम आर्द्रता धारण करने की क्षमता के अनुपात का प्रतिशत

   _____

   (घ) अपनी पूर्ण क्षमता तक आर्द्रता धारण करने वाली वायु कहलाती है

   _____

   (ङ) तापमान जिस पर कोई वायु संतृप्त होती है।

   _____

3. सही कथनों पर चिन्ह (√) लगाइए:

   (क) गर्म वायु ठंडी वायु की तुलना में कम आर्द्रता धारण कर सकती है।

   (ख) ठंडी वायु गर्म वायु की तुलना में कम आर्द्रता धारण कर सकती है।

   (ग) उष्ण कटिबंधीय मरूस्थलों के ऊपर की वायु सामान्यतः असंतृप्त होती है।

   (घ) तापमान बढ़ने से किसी वायु की अधिक आर्द्रता धारण करने की क्षमता घट जाती है।

टिप्पणी

(ङ) किसी वायु की सापेक्ष आर्द्रता उसके तापमान के कम होने से बढ़ती है।

(च) किसी वायु के ठंडी वायु से मिलने पर उसका तापमान कम होता है।

(छ) किसी वायु का तापमान पहाड़ी ढालों पर नीचे उतरने से कम होता है।

12.3 वाष्पीकरण

वह प्रक्रिया, जिसके द्वारा जल गैस अवस्था में परिवर्तित होता है, वाष्पीकरण कहलाती है। वाष्पीकरण की प्रक्रिया ओसांक अवस्था को छोड़कर प्रत्येक तापमान, स्थान व समय में होती है, वाष्पीकरण की दर कई कारकों पर निर्भर करती है। इनमें से प्रमुख कारक इस प्रकार हैं:–

(i) **जल की उपलब्धता :** स्थल भागों की अपेक्षा जल भागों से वाष्पीकरण अधिक होता है। यही कारण है कि वाष्पीकरण महाद्वीपों की तुलना में महासागरों पर अधिक होता है।

(ii) **तापमान :** हम जानते हैं कि गर्म वायु ठंडी वायु की तुलना में अधिक नमी धारण कर सकती है। अतः जब किसी वायु का तापमान अधिक होता है, वह अपने अन्दर कम तापमान की तुलना में अधिक नमी धारण करने की स्थिति में होती है। यही कारण है कि शीत काल की तुलना में ग्रीष्म काल में वाष्पीकरण अधिक होता है, अतः गीले कपड़े सर्दियों की तुलना में गर्मियों में जल्दी सूख जाते हैं।

(iii) **वायु की नमी :** यदि किसी वायु की सापेक्ष आर्द्रता अधिक है तो वह कम मात्रा में अतिरिक्त नमी धारण कर सकती है। इसके विपरीत यदि सापेक्ष आर्द्रता कम है तो अधिक मात्रा में अतिरिक्त नमी धारण कर सकती है। ऐसी स्थिति में वाष्पीकरण अधिक तेजी से होगा। वायु की शुष्कता भी वाष्पीकरण की दर को तेज करती है। वर्षा वाले दिनों में वायु में अधिक नमी होने के कारण गीले कपड़े देर से सूखते हैं।

(iv) **पवन :** हवा भी वाष्पीकरण की दर को प्रभावित करती है। यदि वायु शांत है, तो जलीय धरातल से लगी वायु वाष्पीकरण होते ही संतृप्त हो जाएगी। वायु के संतृप्त होने पर वाष्पीकरण रूक जाएगा। यदि वायु गतिशील है तो वह संतृप्त वायु को उस स्थान से हटा देती है उसके स्थान पर कम आर्द्रता वाली वायु आ जाती है। इससे वाष्पीकरण की प्रक्रिया फिर प्रारम्भ हो जाती है और तब तक होती रहती है जब तक संतृप्त वायु पवन द्वारा हटायी जाती रहती है।

(v) **बादलों का आवरण :** मेघाच्छादन सौर विकिरण में अवरोध डालता है और किसी स्थान की वायु के तापमान को प्रभावित करता है। इस प्रकार यह अप्रत्यक्ष रूप से वाष्पीकरण प्रक्रिया को नियंत्रित करता है।

यह रोचक तथ्य है कि एक ग्राम जल को जलवाष्प में बदलने के लिये लगभग 600 कैलोरी ऊष्मा की आवश्यकता होती है। एक ग्राम जल के तापमान को 10^0 से बढ़ाने में जो ऊष्मा ऊर्जा खर्च होती है उसे कैलोरी कहते हैं। तापमान में बिना परिवर्तन किये जब जल द्रव अवस्था से गैसीय अवस्था में बदलता है या जब वह ठोस (बर्फ) अवस्था से द्रव (जल) अवस्था में बदलता है तो इस क्रिया में जो ऊष्मा ऊर्जा खर्च होती है, उसे गुप्त ऊष्मा कहते हैं। यह एक प्रकार की छिपी हुई ऊष्मा होती है। इसका प्रभाव तापमापी पर दिखाई नहीं देता। जब जलवाष्प जल की नन्हीं–नन्हीं बूँदों या बर्फ के कणों में बदलती है तो यह गुप्त ऊष्मा वायु में छोड़ दी जाती है। वायुमंडल में छोड़े जाने वाली यह गुप्त ऊष्मा मौसम परिवर्तनों के लिये ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्रोत बनती हैं।

वाष्पोत्सर्जन एक विशिष्ट प्रक्रिया है जिसमें वनस्पतियों के पत्तों एवं उसके तनों द्वारा जल वाष्प के रूप में परिवर्तित होता है। किसी क्षेत्र से वाष्पीकरण तथा वाष्पोत्सर्जन द्वारा संयुक्त रूप से हुए जल के ह्रास को वानस्पतिक–वाष्पोत्सर्जन कहते हैं।

- जल से जलवाष्प में बदलने की प्रक्रिया को वाष्पीकरण कहते हैं।
- वाष्पीकरण की दर, जल की उपलब्धता, तापमान, वायु की शुष्कता, पवन तथा मेघाच्छादन द्वारा नियंत्रित होती है।
- तापमान में बिना परिवर्तन किये जब जल द्रव अवस्था से गैसीय अवस्था में बदलता है या जब वह ठोस (बर्फ) अवस्था से द्रव (जल) अवस्था में बदलता है तो इस क्रिया में जो ऊष्मा ऊर्जा खर्च होती है, उसे गुप्त ऊष्मा कहते हैं।

12.4 संघनन

संघनन वह प्रक्रिया है जिसमें वायुमंडलीय जलवाष्प जल या बर्फ के कणों में बदलती है। यह वाष्पीकरण के ठीक विपरीत प्रक्रिया है। जब किसी संतृप्त वायु का तापमान ओसांक से नीचे गिरता है तो वह वायु अपने अन्दर उतनी आर्द्रता धारण नहीं कर सकती जितनी वह पहले धारण किये हुये थी। अतः आर्द्रता की अतिरिक्त मात्रा, तापमान (जिस पर संघनन होता है) के अनुसार जल की सूक्ष्म बूँदों या बर्फ के कणों में बदल जाती है।

(क) संघनन की प्रक्रिया

वायु का तापमान दो स्थितियों में कम होता है। एक तो तब जब स्वतंत्र रूप से बहती वायु किसी अधिक ठंडी वस्तु के संपर्क में आती है। दूसरी स्थिति में जब वायु ऊँचाई की ओर उठती है। संघनन धुँआ, नमक तथा धूलकणों के चारों ओर होता है; क्योंकि ये कण जलवाष्प को अपने चारों ओर संघनित होने के लिए आकर्षित करते हैं। इन कणों को आर्द्रता ग्राही केन्द्रक कहते हैं। जब किसी वायु की सापेक्ष आर्द्रता अधिक होती है, तो थोड़ी सी ठंड होने पर ही तापमान ओसांक से नीचे आ जाता है। लेकिन, जब किसी वायु की सापेक्ष आर्द्रता कम होती है तथा वायु का तापमान अधिक होता है तो

टिप्पणी

उस वायु के तापमान को ओसांक से नीचे अधिक ठण्ड होने पर ही लाया जा सकता है। इस प्रकार संघनन की गति व मात्रा वायु की सापेक्ष आर्द्रता तथा उसके ठण्डा होने की दर पर निर्भर करती है।

- संघनन जलवाष्प के छोटे–छोटे जलकणों या हिमकणों में बदलने की प्रक्रिया है।
- संघनन तब होता है जब किसी वायु का तापमान ओसांक से कम होता है या नीचे गिरता है तथा यह वायु की सापेक्ष आर्द्रता तथा ठण्डे होने की दर पर निर्भर करता है।

(ख) संघनन के रूप

संघनन दो परिस्थितियों में होता हैः प्रथम, जब ओसांक हिमांक बिन्दु या 0^0 से. से कम होता है तथा दूसरी स्थिति में तब जब यह हिमांक बिन्दु से अधिक होता है। इस प्रकार, संघनन के रूपों को दो वर्गों में रखा जा सकता हैः–

(i) ओसांक के हिमांक बिन्दु से नीचे तापमान होने पर बनते हैं– पाला, हिम तथा कुछ प्रकार के बादल।

(ii) ओस, धुन्ध, कोहरा, कुहासा तथा कुछ प्रकार के बादल ओसांक के हिमांक बिन्दु से ऊँचे तापमान पर बनने वाले रूप हैं।

संघनन के रूपों को स्थान के आधार पर भी वर्गीकृत किया जा सकता है। उदाहरण के लिए धरातल पर या प्राकृतिक पदार्थों जैसे घास व पेड़–पौधों की पत्तियों पर, भूतल के पास वाली वायु में अथवा क्षोभमण्डल में कुछ ऊँचाइयों पर।

(i) ओस : जब वायुमण्डलीय नमी संघनित होकर जल बिन्दुओं के रूप में ठोस पदार्थों के ठण्डे धरातल जैसे घास, पेड़–पौधों की पत्तियों तथा पत्थरों पर जमा हो जाती है तो उसे ओस कहते हैं। ओस के रूप में संघनन तब होता है जब आकाश साफ हो, हवा न चल रही हो तथा ठण्डी रातों में वायु की सापेक्ष आर्द्रता अधिक हो। इन दशाओं में पार्थिव विकिरण अधिक तीव्रता से होता है तथा ठोस पदार्थ इतने ठण्डे हो जाते हैं कि उनके संपर्क में आने वाली वायु का तापमान ओसांक से नीचे गिर जाता है। फलस्वरूप, वायु की अतिरिक्त आर्द्रता इन पदार्थों पर जल बिन्दुओं के रूप में जमा हो जाती है। ओस तब बनती है जब ओसांक हिमांक से अधिक होता है। ओस बनने की प्रक्रिया को देखा जा सकता है। जब रेफ्रिजेरेटर में रखी पानी की बोतल से एक गिलास में पानी डालने से गिलास की ठण्डी बाहरी सतह उसके पास की वायु के तापमान को ओसांक से नीचे गिरा देती है, जिससे वायु की अतिरिक्त नमी गिलास की सतह पर छोटी–छोटी बूंदों के रूप में जमा हो जाती है।

(ii) पाला : ऊपर बताई गई परिस्थिति में जब ओसांक हिमांक बिन्दु के नीचे होता है तो अतिरिक्त नमी बर्फ के अति सूक्ष्म कणों में बदल जाती है। इसे पाला कहते हैं। इस प्रक्रिया में वायु की नमी प्रत्यक्ष रूप में बर्फ के छोटे–छोटे कणों में बदल जाती है। संघनन का यह रूप खेतों में खड़ी फसलों जैसे आलू, मटर, अरहर, चना आदि के लिये हानिकारक होता है। यह सड़क यातायात के लिये भी कठिनाई पैदा करता है।

(iii) धुंध और कोहरा : जब संघनन पृथ्वी–तल के निकट की वायु में छोटे–छोटे जल बिन्दुओं के रूप में होता है और ये जल बिन्दु वायु में तैरते रहते हैं, तो इसे धुंध कहते हैं। धुंध में दृश्यता एक किलोमीटर से अधिक और दो किलोमीटर से कम होती है। लेकिन जब दृश्यता एक किलोमीटर से कम होती है तो संघनन का यह रूप कोहरा कहलाता है।

(iv) धूम-कोहरा : धूम–कोहरा एक विशेष प्रकार का कोहरा है जो धुँआ, धूल, कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड और अन्य धुओं द्वारा प्रदूषित कर दिया जाता है। धूम–कोहरा बड़े–बड़े नगरों और औद्योगिक केन्द्रों में अक्सर पाया जाता है। इसका लोगों की आँखों तथा श्वसन क्रिया पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(v) बादल : वायुमण्डल में तैरते हुए हम जल बिन्दुओं, बर्फ के कणों अथवा विभिन्न आकार के धूल कणों के साथ दोनों के मिश्रित झुंड को बादल कहते हैं। एक बादल में 060.01 से लेकर 0.02 मि.मि. के लाखों कण होते हैं। 10 लाख कणों के बादल में इसके मात्र 10वें भाग के बराबर जल या बर्फ के कण होते हैं। बादलों को सामान्यतया उनके रूप या आकृति तथा ऊँचाई के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। इन दोनों विशेषताओं को मिलाने से बादलों को निम्न वर्गों में बाँटा जा सकता है:

निम्न मेघ : ये बादल धरातल से 2000 मीटर की ऊँचाई तक बनते हैं। स्तरीय मेघ इस परिवार का प्राथमिक मेघ हैं जो निम्न परन्तु धरातल से ऊपर कुहरे के समान पर्तों की आकृति वाला होता है। स्तरीय कपासी मेघ निम्न भूरी पर्तों वाला गोलाकार होता है। यह पक्तियों, झुंड या लहरदार रूप में व्यवस्थित होता है। वे बादल जो ऊर्ध्व रूप में विकसित होते हैं इनको दो भागों में विभाजित कर सकते हैं:– कपासी और कपासी वर्षा मेघ कपासी मेघ सघन, गुम्बदाकार एवं सपाट आधार वाले होते हैं। ये ही बढ़कर कपासी वर्षा वाले मेघ बन जाते हैं। इनका ऊर्ध्व मुखी विकास बादल के नीचे स्थित ऊर्ध्व तरंग की शक्ति एवं बादल बनते समय छोड़ी गई गुप्त उष्मा की मात्रा के ऊपर निर्भर करता है।

कपासी वर्षा मेघ से ठीक नीचे से देखने पर पूरा आकाश बादल से भरा दिखाई देता है तथा वर्षा स्तरीय (Nimbo stratus) मेघ की तरह दिखता है। निम्बस (Nimbus/Nimbo) शब्द का अर्थ उस मेघ से होता है जिससे तेज वर्षा होती है। यह लेटिन की भाषा से लिया गया है।

टिप्पणी

मध्यम मेघ– ये बादल 2000 से 6000 मीटर की ऊँचाई के मध्य बनते हैं। इस वर्ग में उच्च कपासी मेघ (Alto-cumulus) एवं उच्च स्तरी मेघ (Alto-stratus) शामिल हैं।

उच्च मेघ– इन बादलों का निर्माण 6000 मीटर से अधिक ऊँचाई पर होता है। इनमें पक्षाभ (Cirrus), पक्षाभ स्तरी (Cirro-stratus) व पक्षाभ कपासी (Cirro-cumulus) मेघ शामिल हैं। (देखें चित्र 12.2)

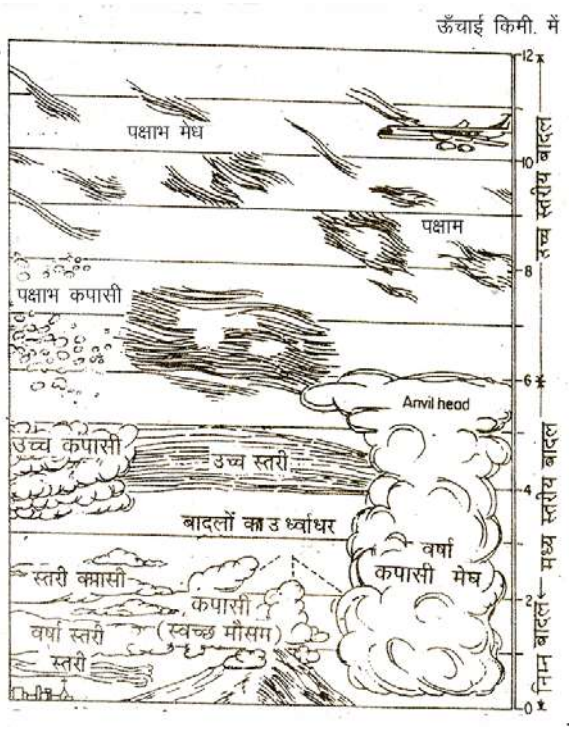

चित्र 12.2 ऊँचाई तथा आकृति के अनुसार बादलों के प्रकार

- ओस, पाला, धुंध, कोहरा, धूम–कोहरा तथा बादल संघनन के रूप हैं।
- पाला तथा कुछ प्रकार के बादल तब बनते हैं जब संघनन हिमांक से नीचे तापमान पर होता है।
- बादलों को उनकी आकृति तथा ऊँचाई के आधार पर तीन वर्गों में बाँटा जाता है।

पाठगत प्रश्न 12.2

1. वाष्पीकरण की दर को प्रभावित करने वाले पाँच कारकों की सूची बनाइयेः–

   (क) _____ (ख)_____ (ग)_____ (घ)_____ (ङ)_____

2. ठोस पदार्थों पर बनने वाले संघनन के दो रूपों के नाम बताइयेः–

   (क)_____ (ख)_____

3. विश्व के अधिकांश भागों में भूपृष्ठ के पास वाली वायु में बनने वाले संघन के दो रूपों के नाम बताइयेः

   (क)_____ (ख)_____

4. निम्न में से प्रत्येक के लिये भौगोलिक शब्द बताइयेः–

   (क) जल के जलवाष्प में बदलने की प्रक्रिया

   _____

   (ख) जलवाष्प को द्रव या ठोस अवस्था में बदलने की प्रक्रिया

   _____

   (ग) जल बिन्दुओं या हिमकणों का वायु में कुछ ऊँचाई पर झूलता हुआ समूह

   _____

   (घ) संवहन के द्वारा बने तथा ऊन की गांठों जैसी आकृति वाले बादल

   _____

   (ङ) बादल जिनसे अधिकांशतः वर्षा होती है

   _____

12.5 वर्षण

जब जल तरल (जल बिन्दुओं) या ठोस (हिमकणों) रूप में धरातल पर गिरता है तो उसे वर्षण कहते हैं। वायु में संघनन की सतत प्रक्रिया के परिणामस्वरूप जल बिन्दुओं या हिम कणों का भार अधिक व आकार बड़ा हो जाता है तथा वे वायु में तैरते हुये रूक नहीं पाते तो पृथ्वी के धरातल पर गुरुत्वाकर्षण के कारण नीचे गिरने लगते हैं।

वर्षण के रूप

पृथ्वी पर वर्षण कई रूपों में होता है जैसे जल की बूंदों, हिमलव व ठोस बर्फ या ओला तथा कभी–कभी एक साथ जल की बूदों व ओले के रूप में। वर्षण का रूप अधिकाशतः संघनन की विधि व तापमान पर निर्भर करता है। वर्षण के अनेक रूप हैंः–

(i) **फुहार तथा वर्षा :** जब समान आकार की अत्यन्त छोटी–छोटी बूदें जिनका व्यास 0.5 मि.मि. से कम होता है धरातल पर गिरती हैं तो उसे फुहार कहते हैं। जब जल की छोटी-छोटी बूदें मिलकर बड़ी बूदों के रूप में धरातल पर गिरती हैं तो उसे वर्षा कहते हैं।

टिप्पणी

(ii) हिमपात : जब संघनन हिमांक (-0^0 से.) से नीचे तापमान पर होता है तो वायुमण्डलीय आर्द्रता हिमकणों में बदल जाती है। ये छोटे–छोटे हिमकण मिलकर हिमलव बनाते हैं। जो बड़े और भारी होकर धरातल पर गिरने लगते हैं। वर्षण के इस रूप को हिमपात कहते हैं। पश्चिमी हिमालय, मध्य व उच्च अक्षांशीय प्रदेशों में शीत काल में सामान्यतया हिमपात होता है।

(iii) सहिम वर्षा : सहिम वर्षा जमी हुई वर्षा है। यह तब होती है जब वायु की ठंडी परत से गुजरती हुई पानी की बूदें जमकर ठोस होकर धरातल पर गिरती हैं। सामान्यतया यह पानी की बूंदों तथा छोटे–छोटे ठोस बर्फ के गोलियों का मिश्रित रूप है।

(iv) ओला पात : जब बर्फ का टुकड़ा या छोटा गोला (Hailstones) जिसका व्यास 5 से 50 मि.मी. तक होता है, अलग–अलग या सम्मिलित होकर विभिन्न आकारों के पिण्ड के रूप में धरातल पर गिरता है तो उसे ओला पात कहते हैं। ओला पारदर्शी एवं पारभासी बर्फ के अदल–बदलकर बने सतह का बना होता है।

- वायुमण्डलीय आर्द्रता का संघनित होकर धरातल पर गिरने को वर्षण कहते हैं।
- पानी की छोटी–छोटी तथा बड़ी–बड़ी बूंदों के रूप में होने वाले वर्षण को क्रमशः फुहार तथा वर्षा कहते हैं।
- जब वर्षण बर्फ के बड़े–बड़े गोलाकार टुकड़ों में होता है तो उसे ओला पात कहते हैं।

12.6 वर्षा के प्रकार

हम जानते हैं कि जब आर्द्रता से युक्त वायुराशि आकाश में अधिक ऊँचाइयों की ओर चढ़ती है तो ठंडी होकर उसका तापमान नीचे गिरता है। ऐसा होने पर जब वायु का तापमान ओसांक के नीचे गिर जाता है तो संघनन और वर्षण होता है। प्रकृति में किसी वायु राशि को मुख्यतः तीन प्रकार से ऊपर उठने के लिये बाध्य होना पड़ता है और प्रत्येक परिस्थिति में होने वाले वर्षण या वर्षा की अपनी–अपनी विशेषतायें होती हैं।

(क) संवहनीय वर्षा : उष्णकटिबन्ध में पृथ्वी के अत्याधिक गर्म होने से ऊर्ध्वाधर वायु धाराएँ पैदा होती है। ये वायु धारायें गर्म–आर्द्र वायु को वायुमण्डल के उच्च स्तरों तक उठा देती हैं। जब इस प्रकार की आर्द्र वायु का तापमान ओसांक से नीचे लगातार गिरता है तो बादल बनते हैं। ये बादल बिजली की चमक व गरज के साथ वर्षा करते हैं। इस प्रकार की वर्षा को संवहनीय वर्षा कहते हैं। इस प्रकार की वर्षा विषुवतीय प्रदेशों में प्रायः प्रतिदिन दोपहर के बाद होती है। (देखिए चित्र 12.3)

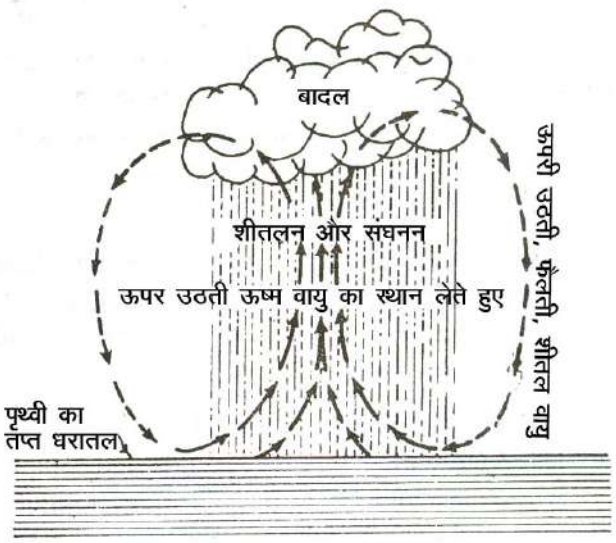

चित्र 12.3 संवहनीय वर्षा

(ख) **पर्वतकृत वर्षा :** जब गर्म आर्द्र पवनों के मार्ग में कोई पर्वत श्रेणी अवरोध उपस्थित करती है तो उन्हें बाध्य होकर ऊपर उठना पड़ता है। ऊपर उठती हुई ये आर्द्र पवनें ठंडी होने लगती हैं। जब उनका तापमान ओसांक से नीचे गिरता है तो बादल बनते हैं। इन बादलों से पवनाभिमुख ढालों के विस्तृत भागों में वर्षा होती है। इस प्रकार की वर्षा को पर्वतकृत वर्षा कहते हैं। यद्यपि जब ये पवनें पर्वतीय श्रेणी को पार कर दूसरी ओर पवनविमुख ढालों पर उतरती हैं तो गर्म हो जाती हैं और बहुत कम वर्षा करती हैं। पवनविमुख ढालों की ओर के क्षेत्रों को वृष्टि छाया क्षेत्र कहते हैं। (देखिये चित्र 12.4) भारत के मेघालय प्रदेश की खासी पहाड़ी के दक्षिणी सीमांत पर स्थित चेरापूंजी, पर्वतकृत वर्षा का एक प्रसिद्ध उदाहरण है।

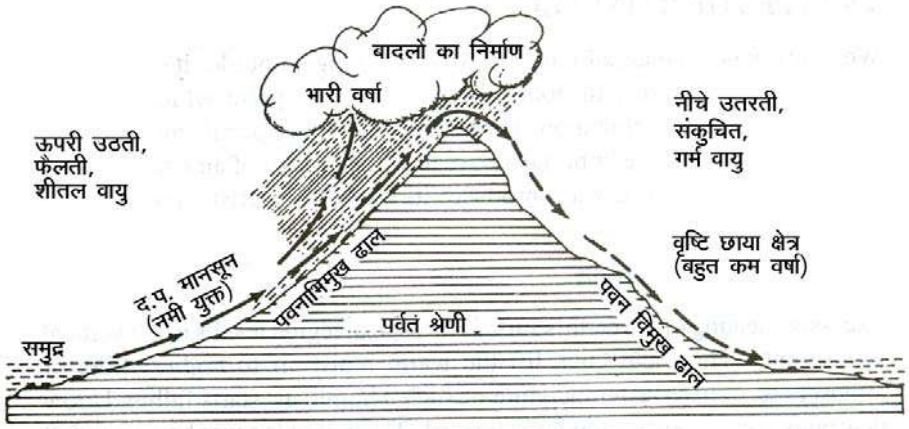

चित्र 12.4 पर्वतकृत वर्षा

टिप्पणी

(ग) **अभिसरण या चक्रवातीय वर्षा :** अभिसरण वर्षा की उत्पत्ति तब होती है जब वायु तरंग अभिसरित होकर उठती हैं। एक कटिबन्धीय क्षेत्रों में जब विपरीत विशेषताओं वाली वायु राशियाँ मिलती हैं तो उनमें लगभग उर्ध्वाधर उत्थान होता है जिससे संवहन की क्रिया होती है। यह संवहन की क्रिया बार–बार वाताग्रों के सहारे होती है। जहाँ संबंधित वायुराशियों का तापमान काफी मिला होता है। वाताग्र के सहारे भाप के मिलने से प्रायः संघनन की क्रिया होती है। जिसके फलस्वरूप वर्षा होती है। जब भिन्न घनत्व और तापमान की दो बड़ी वायु राशियां मिलती हैं तो गर्म आर्द्र वायुराशि ठंडी वायुराशि के ऊपर चढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में गर्म वायुराशि संघनित होकर बादल बनाती हैं जो विस्तृत रूप में वर्षा करते हैं। यह वर्षा बिजली की चमक और गरज के साथ होती है। इस प्रकार की वर्षा को वाताग्री वर्षा भी कहते हैं। यह वर्षा गर्म और शीत दोनों वाताग्रों से होती है (चित्र 12.5)। वाताग्री वर्षा स्थिर और पूरे दिन या कई दिनों तक होती है।

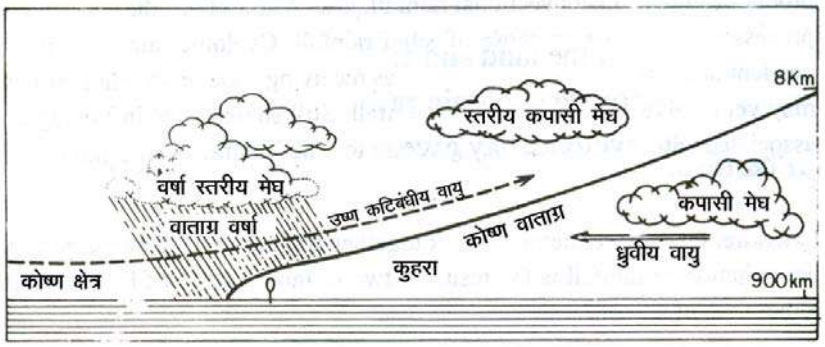

(अ) गर्म वाताग्र से सम्बद्ध वर्षा

(ब) शीत वाताग्र से सम्बद्ध वर्षा

चित्र 12.5 चक्रवातीय वर्षा

वर्षा के इन तीनों प्रकारों में आर्द्र वायुराशि का ठंडा होना बहुत जरूरी है। संवहनीय वर्षा में गर्म–आर्द्र वायु के ऊपर उठने के बाद की क्रियाएं पर्वतकृत वर्षा के समान हैं। प्रकृति में ये तीनों विधियां एक साथ कार्य करती हैं। वास्तव में पृथ्वी का ज्यादातर वर्षण या वर्षा किसी एक कारण की अपेक्षा दो या अधिक कारणों का परिणाम होता है।

- उत्पत्ति की तीन विधियों के आधार पर वर्षा को संवहनीय, पर्वतकृत तथा अभिसरण वर्षा प्रकारों में बाँटा जाता है।

पाठगत प्रश्न 12.3

1. वर्षण के विविध रूपों के नाम बताइए।

   _____

2. वर्षा के तीन प्रकारों के नाम बताइए:

   (क) _____ (ख) _____ (ग) _____

3. निम्न में से प्रत्येक के लिये भौगोलिक शब्द दीजिए:

   (क) वायुमंडलीय आर्द्रता का पृथ्वी–तल पर गिरना _____

   (ख) वर्षा की जमी हुई बूँदों और पिघली हुई हिम के जल का साथ–साथ गिरना _____

   (ग) विभिन्न विशेषताओं की दो वायुराशिओं का मिलन तल _____

   (घ) बर्फ की गोलियों के रूप में वर्षण _____

   (ङ) अत्यधिक गर्मी से ऊपर उठी हुई वायु द्वारा होने वाली वर्षा _____

4. नीचे सही तथा गलत कथन दिये गये हैं। सही कथन पर (√) और गलत कथन पर (X) लिखिये:

   (क) वर्षण एक प्रक्रिया है जिसमें जलवाष्प द्रव या ठोस अवस्था में बदलती है।

   (ख) हिमलवों के रूप में होने वाले वर्षण को हिमपात कहते हैं।

   (ग) पर्वतों के पवनविमुख ढालों पर बहुत कम वर्षा होती है।

   (घ) पर्वतकृत वर्षा वायु के अत्यधिक गर्म होकर ऊपर उठने के कारण होती है।

12.7 वर्षण का वितरण

वर्षण का प्रादेशिक वितरण संसार में असमान है। संसार में औसत वार्षिक वर्षा लगभग 97.5 से.मी. होती है। लेकिन स्थलीय भाग महासागर की अपेक्षा कम वर्षा प्राप्त करते हैं। स्थलीय भागों में वार्षिक वर्षण में काफी अन्तर देखने को मिलता है। पृथ्वी के धरातल के विभिन्न स्थानों पर भिन्न ऋतुओं में विभिन्न मात्रा में वर्षण होता है।

टिप्पणी

वर्षण के वितरण के प्रमुख लक्षणों को भूमण्डलीय दाब व पवन पेटियों, स्थल व जलीय भागों के वितरण तथा स्थलाकृतिक लक्षणों की मदद से स्पष्ट किया जा सकता है। वर्षण के प्रादेशिक व मौसमी अन्तरों के लिए उत्तरदायी कारणों से संबंधित किन्हीं निष्कर्षों पर पहुँचने से पहले, आइए सबसे पहले इसके प्रादेशिक व मौसमी वितरण के रूपों का अवलोकन करें।

(क) प्रादेशिक अन्तर

वर्षण की औसत वार्षिक मात्रा के आधार पर संसार में हम निम्न वर्षण प्रदेशों की पहचान कर सकते हैं। (देखिये चित्र 12.6)

(i) **भारी वर्षण के प्रदेश :** जिन प्रदेशों में 200 से.मी. से अधिक वार्षिक वर्षण होता है, उन्हें इस वर्ग में सम्मिलित किया जाता है। इनमें विषुवतीय, उष्ण कटिबन्ध के तटीय क्षेत्र तथा शीतोष्ण कटिबन्ध के पश्चिमी तटीय प्रदेश शामिल हैं।

(ii) **मध्यम वर्षण के प्रदेश :** जिन प्रदेशों में 100 से 200 से.मी. वार्षिक वर्षण होता है, वे इस वर्ग में आते हैं। ये प्रदेश अति वर्षण प्रदेशों के साथ लगे हुए प्रदेश हैं। उपोष्ण कटिबन्ध के पूर्वी तटीय प्रदेश तथा गर्म शीतोष्ण कटिबन्ध के तटीय प्रदेश इस वर्ग के प्रदेशों में शामिल हैं।

(iii) **कम वर्षण के प्रदेश :** इस वर्ग में वे प्रदेश आते हैं जहाँ वार्षिक वर्षण 50 से.मी. से 100 से.मी. तक होता है। ये प्रदेश उष्ण कटिबन्धों के आन्तरिक भागों तथा शीतोष्ण कटिबन्ध के पूर्वी आन्तरिक भागों में स्थित है।

(iv) **अति अल्प वर्षण के प्रदेश :** वृष्टि छाया क्षेत्रों या पर्वत श्रेणियों के पवन विमुख ढ़ालों पर, महाद्वीपों के आन्तरिक भागों, अयन वृत्तों पर स्थित महाद्वीपों के पश्चिमी सीमान्त क्षेत्रों और उच्च आक्षांशों में वार्षिक वर्षण 50 से.मी. से कम होता है। इन प्रदेशों में, उष्ण, शीतोष्ण तथा शीत कटिबन्धीय मरूस्थल भी सम्मिलित हैं।

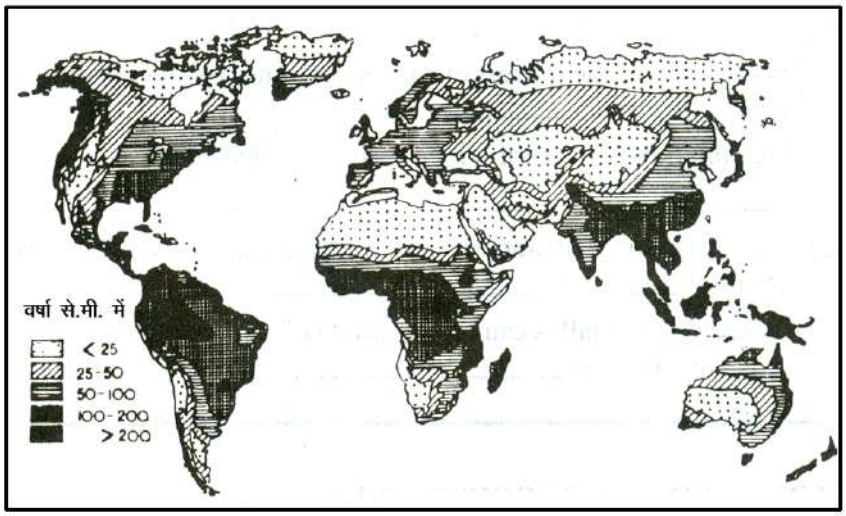

चित्र 12.6 संसार में औसत वर्षण का वितरण

आइये अब संसार के मानचित्र में औसत वर्षण के वितरण का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें (देखिये चित्र 12.6)। आप निम्न निष्कर्षों पर पहुँचेंगे।

(1) विषुवतीय प्रदेशों में सबसे अधिक वर्षण होता है जो ध्रुवों की ओर क्रमशः कम होता जाता है।

(2) समुद्र तटीय प्रदेशों में अधिक वर्षण होता है तथा महाद्वीपों के आन्तरिक भागों की ओर क्रमशः कम होता जाता है।

(3) विषुवतीय प्रदेश, उष्ण कटिबन्धीय पूर्वी तटीय क्षेत्र तथा शीतोष्ण कटिबन्धीय पश्चिमी तटीय प्रदेशों में अधिक वर्षण होता है।

(4) उच्च भूमियों के पवनाभिमुख ढालों पर भारी वर्षण होता है: जबकि पवनविमुख ढालों पर बहुत कम।

(5) गर्म धाराओं के समीपवर्ती तटीय भागों की तुलना में ठण्डी धाराओं के समीपवर्ती तटीय भाग अधिक शुष्क होते हैं।

(6) अयनवृत्तों पर स्थित महाद्वीपों के पश्चिमी सीमान्त क्षेत्रों तथा ध्रुवीय प्रदेशों में वर्षण बहुत कम होता हैं। सन्मार्गी पवनों का इन क्षेत्रों में पहुँचते–पहुँचते शुष्क हो जाना तथा ध्रुवीय पवनों का ठण्डा व शुष्क होना इसके प्रमुख कारण हैं।

(ख) ऋतुवत् अन्तर

संसार के भिन्न भागों में वर्षण के वितरण में पाये जाने वाले प्रादेशिक अन्तर औसत वार्षिक वर्षण पर आधारित है। इनसे मुख्यतः उन प्रदेशों के वर्षण के स्वरूप का सही चित्रण नहीं होता जहाँ वर्षण की मात्रा में ऋतुवत अन्तर एक सामान्य लक्षण हैं, उदाहरण के लिए मरूस्थलीय, अर्द्ध मरूस्थलीय या उपार्द्र प्रदेश। अतः संसार में वर्षण के ऋतुवत् अन्तरों का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है। इससे संबंधित तथ्य इस प्रकार हैं–

(i) विषुवतीय प्रदेशों तथा शीतोष्ण भूमियों के पश्चिमी भागों में वर्षण वर्ष भर होता है। विषुवतीय क्षेत्रों में जहाँ संवहनीय वर्षा होती है और शीतोष्ण प्रदेश में पछुआ पवनों द्वारा चक्रवातीय एवं पर्वतकृत वर्षा होती है।

(ii) संसार के लगभग दो प्रतिशत भागों में वर्षण केवल शीतकाल में होता है। इनमें संसार के भूमध्य सागरीय प्रदेश तथा भारत का कोरोमण्डल तट शामिल है। वायुदाब कटिबन्धों तथा भूमण्डलीय पवनों के ऋतु के अनुसार उत्तर–दक्षिण खिसकने से, भूमध्य सागरीय प्रदेशों में उपोष्ण उच्च दाब क्षेत्र तथा सन्मार्गी पवनों की उपस्थिति के कारण गर्मियों में वर्षा नहीं होती, क्योंकि सन्मार्गी पवनें महाद्वीपों के इन पश्चिमी भागों में पहुँचते–पहुँचते शुष्क हो जाती हैं।

(iii) संसार के शेष भागों में वर्षण केवल गर्मियों में होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि संसार के अधिकांश भागों में वर्षण में ऋतुवत अन्तर स्पष्ट रूप में अनुभव किये जाते हैं। इससे वर्षा जल का कुछ भाग बर्बाद हो जाता है। हमारे देश की भी कुछ ऐसी ही कहानी है।

टिप्पणी

वर्षण का ऋतुवत् वितरण हमें उसकी प्रभावी क्षमता को आंकने में मदद करता है। उदाहरण के लिये उच्च अक्षांशीय सीमित वर्धन काल वाले प्रदेशों में होने वाला हल्का वर्षण, निम्न अक्षांशीय प्रदेशों में भारी वर्षण की तुलना में अधिक प्रभावी होता है। इसी प्रकार, ओस, धुंध व कोहरे के रूप में होने वाला वर्षण भारत में मध्यवर्तीय भागों तथा कालाहारी मरूस्थलों में खड़ी हुई फसलों व प्राकृतिक वनस्पति पर प्रशंसनीय प्रभाव डालता है।

(ग) वर्षा के वितरण को प्रभावित करने वाले कारक

(i) नमी की आपूर्ति : किसी प्रदेश में वर्षा की मात्रा को निर्धारित करने वाला महत्वपूर्ण कारक वायुमंडल को मिलने वाली नमी की मात्रा है। ऊष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में वाष्पीकरण सर्वाधिक होता है। अतः वायुमंडल को इस क्षेत्र से सबसे ज्यादा नमी की आपूर्ति होती है। तटीय भागों में आन्तरिक भागों की अपेक्षा अधिक नमी मिलती है। ध्रुवीय प्रदेशों में वाष्पीकरण बहुत कम है, अतः वहाँ वर्षा भी कम है।

(ii) पवनों की दिशा : सन्मार्गी एवं पछुआ पवनों की पेटियों में पवन दिशा महत्वपूर्ण है। समुद्र से स्थल की ओर चलने वाली पवनें वर्षा करती हैं। स्थल से चलने वाली पवनें शुष्क होती हैं। उच्च अक्षांशों से निम्न अक्षांशों की ओर चलने वाली पवनें गर्म हो जाती हैं, अतः बहुत कम वर्षा करती हैं; जबकि निम्न अक्षांशों से उच्च अक्षांशों की ओर चलने वाली पवनें ठंडी हो जाती हैं और वर्षा करती हैं। उपोष्ण मरूस्थलों में बहुत कम वर्षा होती हैं; क्योंकि वहाँ से पवनें बाहर की ओर चलती हैं।

(iii) महासागर धारायें : गर्म धाराओं के ऊपर की वायु गर्म और आर्द्र होती है। अतः यह वर्षा करती है। इसके विपरीत ठंडी धाराओं के ऊपर की वायु ठंडी और शुष्क होती है। अतः उससे बहुत कम वर्षा होती है।

(iv) पर्वतों की उपस्थिति : आर्द्र पवनों के मार्ग में पर्वतों के आने से पवनाभिमुख ढालों पर अधिक वर्षा और पवन विमुख ढालों पर कम वर्षा होती है।

(v) वायुदाब पेटियाँ : वायुदाब पेटियों का पवन पेटियों के साथ सीधा संबंध है। निम्न वायुदाब क्षेत्र वर्षा को आकर्षित करते हैं और उच्च वायुदाब क्षेत्र वर्षा विहीन होते हैं।

- संसार के विभिन्न भागों में वर्षण के प्रादेशिक व ऋतुवत् वितरण में स्पष्ट अन्तर पाये जाते हैं।
- वर्षा के वितरण को प्रभावित करने वाले कारक हैं– नमी की आपूर्ति, पवनों की दिशा, महासागर धारायें, पर्वतों की उपस्थिति और वायुदाब पेटियाँ।

पाठगत प्रश्न 12.4

1. भारी वर्षा के प्रमुख क्षेत्रों के नाम बताइए।

_____

2. अति अल्प वर्षा के प्रमुख क्षेत्रों के नाम बताइए।

_____

3. वर्ष भर वर्षण पाने वाले प्रदेशों के नाम बताइए।

_____

4. केवल शीत ऋतु में वर्षा पाने वाले प्रदेशों के नाम बताइए।

_____

5. वर्षा के वितरण को प्रभावित करने वाले पाँच कारकों के नाम बताइये।

(क)_____ (ख)_____ (ग)_____ (घ)_____ (ङ)_____

आपने क्या सीखा

जलवाष्प वायुमण्डल का अत्यधिक परिवर्तनशील तथा महत्वपूर्ण अवयव है। यह पृथ्वी पर ऊष्मा संतुलन, वायुमण्डलीय घटनाओं तथा पेड़–पौधों व जीव–जन्तुओं के जीवनयापन के लिए उत्तरदायी है। वायुमण्डल में विद्यमान जलवाष्प को आर्द्रता कहते हैं। इसे निरपेक्ष आर्द्रता तथा सापेक्ष आर्द्रता के रूप में व्यक्त किया जाता है। इनमें से सापेक्ष आर्द्रता अधिक विश्वसनीय माप है। जलवाष्प वायुमण्डल में वाष्पीकरण की प्रक्रिया द्वारा पहुँचती है। किसी वायु का तापमान दिये गये आयतन में उसके द्वारा धारण की जाने वाली नमी की मात्रा को नियंत्रित करता है। वायु, जो अपनी पूर्ण क्षमता तक नमी धारण करती है, संतृप्त वायु कहलाती है तथा तापमान जिस पर वह संतृप्त होती है, ओसांक कहलाता है। जलवाष्प के द्रव या ठोस अवस्था में बदलने की प्रक्रिया को संघनन कहते हैं। यह प्रक्रिया तब प्रारम्भ होती है, जब किसी वायु का तापमान ओसांक के नीचे गिरता है। पृथ्वी सतह पर संघनन ओस, धुंध, कोहरा तथा उच्च स्तर पर बादलों के रूप में होता है।

वायुमण्डलीय नमी का संघनित होकर धरातल पर गिरने को वर्षण कहते हैं। वर्षण तब होता है जब संघनन सतत रूप से होता है। फुहार, वर्षा, हिमपात, हिम वर्षा तथा

टिप्पणी

ओलापात वर्षण के अनेक रूप हैं। वर्षा तीन प्रकार–संवहनीय, पर्वतकृत तथा चक्रवातीय होती है।

संसार में वर्षण के वितरण में स्पष्टतः प्रादेशिक व ऋतुवत् अन्तर पाया जाता है। कुछ प्रदेशों में भारी वर्षा होती है; जबकि कुछ में बहुत कम। कुछ प्रदेशों में वर्ष भर वर्षा होती है; जबकि दूसरे प्रदेशों में केवल सर्दियों या गर्मियों में। वर्षा के वितरण को कई कारक प्रभावित करते हैं।

पाठांत प्रश्न

1. वायुमण्डल में विद्यमान जलवाष्प के महत्व को समझाइए।
2. वाष्पीकरण क्या है? उन कारकों के बारे में बताइए जो वाष्पीकरण की दर को प्रभावित करते हैं। अपने उत्तर की पुष्टि के लिये उदाहरण दीजिये।
3. संघनन की प्रक्रिया और इसके रूपों को समझाइए।
4. वर्षण कैसे होता है? वर्षण के विभिन्न रूपों के बारे में बताइए।
5. अन्तर स्पष्ट कीजिएः–
   (क) वाष्पीकरण तथा संघनन
   (ख) निरपेक्ष आर्द्रता तथा सापेक्ष आर्द्रता
   (ग) संतृप्त वायु तथा असंतृप्त वायु
   (घ) वर्षा तथा वर्षण
   (ङ) सहिम वर्षा तथा ओलापात
   (च) संवहनीय तथा पर्वतकृत वर्षा
6. संसार में वर्षण के प्रादेशिक तथा ऋतुवत् वितरण का विस्तार से वर्णन कीजिए।
7. निम्न में से प्रत्येक के लिए कारण बताइएः–
   (क) विषुवतीय प्रदेशों में वर्ष भर वर्षण होता है।
   (ख) भूमध्य सागरीय प्रदेशों में वर्षा केवल शीतकाल में होती है।
   (ग) समुद्रतटीय क्षेत्रों से महाद्वीपों के पश्चिमी भागों की ओर वर्षा की मात्रा कम होती जाती है।
   (घ) महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में उष्णकटिबन्धीय मरूस्थल पाये जाते हैं।
   (ङ) ध्रुवों की ओर वाष्पीकरण कम होता जाता है।
8. संसार के दिये गये रेखामानचित्र में निम्न को उपयुक्त चिन्हों द्वारा दिखाइए?
   (क) 200 से.मी. से अधिक वर्षण वाले दो क्षेत्र;

(ख) निम्न अक्षांशों में अति अल्प वर्षण के दो क्षेत्र;

(ग) केवल शीतकाल में वर्षण पाने वाले दो क्षेत्र;

(घ) संसार के शीत मरूस्थल।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

12.1

1. (क) द्रव (ख) ठोस (ग) गैस
2. (क) आर्द्रता (ख) निरपेक्ष आर्द्रता (ग) सापेक्ष आर्द्रता (घ) संतृप्त वायु (ङ) ओसांक
3. (क) गलत (ख) सही (ग) सही (घ) गलत (ङ) सही (च) सही (छ) गलत

12.2

1. (अ) तापमान (ख) वायु की नमी (ग) पवन (घ) मेघाच्छान्दन (ङ) जल को उपलब्धता
2. (अ) ओस (आ) पाला
3. (अ) धुंध (आ) कोहरा
4. (क) वाष्पीकरण (ख) संघनन (ग) बादल (घ) वर्षा कपासी मेघ (ङ) वर्षा स्तरी मेघ

12.3

1. फुहार, वर्षा, हिमपात, सहिम वर्षा, तथा ओला पात
2. (क) संवहनीय (ख) पर्वतकृत (ग) चक्रवातीय
3. (क) वर्षण (ख) सहिम वर्षा (ग) वाताग्र (घ) ओला पात (ङ) संवहनीय वर्षा
4. (क) गलत (ख) सही (ग) सही (घ) गलत

12.4

1. विषुवतीय, पूर्वी उपोष्ण कटिबन्धीय तथा पश्चिमी तटीय शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेश
2. अयन वृत्तों के पश्चिमी सीमान्त तथा शीतोष्ण कटिबन्धीय आंतरिक भाग तथा ध्रुवीय प्रदेश

टिप्पणी

3. विषुवतीय प्रदेश तथा शीतोष्ण कटिबन्धीय पश्चिमी तटीय प्रदेश

4. भूमध्य सागरीय प्रदेश

5. (क) नमी की आपूर्ति, (ख) पवनों की दिशाएं, (ग) महासागर धाराएं, (घ) पर्वतों की उपस्थिति और (ङ) वायुदाब पेटियाँ

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. अनुच्छेद 12.1 के अन्तर्गत देखिए।

2. अनुच्छेद 12.3 के अन्तर्गत देखिए।

3. अनुच्छेद 12.4 के अन्तर्गत देखिए।

4. अनुच्छेद 12.5 के अन्तर्गत देखिए।

5. संबंधित शीर्षकों के अन्तर्गत देखिए।

6. अनुच्छेद 12.7 के अन्तर्गत देखिए।

7. (क) विषुवतीय प्रदेशों में वर्ष भर उच्च तापमान रहता है, जिससे वाष्पीकरण और ऊर्ध्वाधर वायु धारायें पैदा होती हैं जो भारी संवहनीय वर्षा करती हैं

   (ख) ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की सीधी किरणें कर्क रेखा पर पड़ती हैं, जिसके प्रभाव से पछुआ पवनें उत्तरी ध्रुव की तरफ खिसक जाती हैं। इस समय भूमध्य सागरीय प्रदेश (उपोष्ण कटिबंध) उच्च वायुदाब व व्यापारिक पवनों के क्षेत्र में आ जाते हैं। व्यापारिक पवनें पश्चिमी तट तक पहुँचते–पहुँचते शुष्क हो जाती हैं। इस कारण ग्रीष्म ऋतु में भूमध्य सागरीय प्रदेशों में वर्षा नहीं होती, लेकिन शीत ऋतु में भूमध्य सागरीय प्रदेश पछुआ पवनों के प्रभाव क्षेत्र में आ जाता है क्योंकि वे दक्षिण की ओर खिसक आती हैं। समुद्र से आने के कारण ये पवनें आर्द्रता से भरी होती हैं। अतः यहाँ वर्षा करती हैं। इसीलिये यह प्रदेश केवल शीत ऋतु में ही वर्षा प्राप्त करता है।

   (ग) वर्षा–पवनें तटीय क्षेत्रों पर ही अधिक वर्षा कर देती हैं, भीतरी भागों तक पहुँचते–पहुँचते शुष्क हो जाती हैं।

   (घ) उष्ण मरूस्थल महाद्वीपों के पश्चिम तटों पर इसलिए पाये जाते हैं, क्योंकि ये क्षेत्र सन्मार्गी पवनों के अन्तर्गत आते हैं। ये पूर्वी भाग पर वर्षा करती है और पश्चिमी भागों तक पहुँचते–पहुँचते सूख जाती है।

   (ङ) तापमान के कम होने के कारण वाष्पीकरण ध्रुवों की ओर जाने पर कम हो जाता है।

8. चित्र संख्या 12.6 एवं अनुच्छेद 12.7 देखिए।

13

मौसम और जलवायु

हमने पिछले पाठों में तापमान, वायुमंडलीय दाब, पवनों और वर्षण के बारे में अध्ययन किया है। मौसम के इन तत्वों का हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए मकान जिनमें हम रहते हैं, कपड़े जो हम अपनी पसन्द के पहनते हैं और विविध प्रकार का अपनी–अपनी पसन्द का भोजन ये सब मुख्यतया मौसम एवं जलवायु दशाओं द्वारा प्रभावित होते हैं। मौसम में अचानक तथा अनपेक्षित परिवर्तन हमारे दैनिक कार्यक्रमों को अस्त–व्यस्त कर सकता है। इस पाठ में हम मौसम, ऋतु और जलवायु में अन्तर तथा किसी स्थान की जलवायु को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- मौसम और जलवायु के विभिन्न अवयवों के नाम बता सकेंगे;
- मौसम, ऋतु और जलवायु में अन्तर समझा सकेगें;
- मौसम के पूर्वानुमान की आवश्यकता स्पष्ट कर सकेगें;
- किसी स्थान या प्रदेश की जलवायु को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों की व्याख्या विशिष्ट उदाहरण सहित कर सकेगें;
- कोपेन के जलवायु वर्गीकरण को बता सकेगें।

13.1 मौसम और जलवायु

(i) मौसम

तापमान, वायुदाब, पवन, आर्द्रता तथा वर्षण मौसम और जलवायु के प्रमुख तत्व हैं। ये एक दूसरे के साथ क्रिया एवं प्रतिक्रिया करते हैं। ये तत्व पवन की दिशा

टिप्पणी

एवं गति, सूर्याताप की मात्रा मेघाच्छन्नता तथा वर्षण की मात्रा, आदि वायुमंडलीय दशाओं को प्रभावित करते हैं। इन वायुमंडलीय तत्वों को ही मौसम और जलवायु के अवयव कहा जाता है। इन अवयवों का भिन्न–भिन्न स्थानों और समयों पर अलग–अलग प्रभाव होता है। यह प्रभाव एक सीमित क्षेत्र तथा छोटी अवधि के लिए हो सकता है। हम प्रायः इस प्रभाव को मौसम के रूप में व्यक्त करते हैं, जैसे धूपवाला गर्मी, सर्दी, वर्षा, तूफान, आदि का मौसम। इनमें से मौसम का प्रत्येक रूप किसी न किसी अवयव की ओर संकेत करता है, जो किसी स्थान और समय विशेष में सर्वाधिक प्रभावशाली होता है। अतः किसी स्थान का छोटी अवधि के लिये एक या एक से अधिक जलवायु अवयवों के संदर्भ में वायुमंडल की दशा, उस स्थान का मौसम कहलाता है। एक ही समय में निकट स्थित दो स्थानों पर अलग–अलग मौसम हो सकता है।

(ii) मौसम-पूर्वानुमान

आनेवाले मौसम की किसी विधि द्वारा पहले से जानकारी होना बहुत ही महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिये आप किसी दिन लम्बी पैदल यात्रा पर जाने की योजना बनाते हैं, परन्तु आपको यह मालूम नहीं कि उस दिन वर्षा होगी अथवा नहीं। आपको पहले से ज्ञात हो जाये कि उस दिन वर्षा नहीं होगी तो आप निश्चिन्त होकर अपनी योजना को कार्यरूप दे सकते हैं। इसी प्रकार किसान, नाविक, वायुयान चालक, पर्यटक और अन्य बहुत से लोग अपने–अपने हित के लिए पहले से यह जानने में रूचि लेते हैं कि आनेवाला मौसम कैसा होगा। इसलिए समाचार पत्र, मौसम का विवरण, मौसम का पूर्वानुमान और इस जानकारी को दर्शाने वाला मानचित्र रोजाना छापते हैं। मौसम उपग्रहों की मदद से अब मौसम के पूर्वानुमान की जानकारी अधिक विश्वसनीय मिल रही है। दूरदर्शन पर मौसम की दशाओं की जानकारी रोज दी जा रही है। जब कभी चक्रवात या खतरनाक मौसम के आने की सम्भावना होती है, तो रेडियो, दूरदर्शन और समाचार पत्रों द्वारा चेतावनी दी जाती है, जिससे लोग मौसम के खतरों से अपनी जान और माल की रक्षा कर सकें।

मौसम कार्यालय सारे देश में फैली अपनी अनेक बेधशालाओं द्वारा तापमान, पवन, मेघाच्छादन, वर्षा और अन्य वायुमंडलीय घटनाओं के बारे में आंकड़े एकत्र करता है। इसी प्रकार की जानकारी गहरे समुद्र में चलने वाले जलयानों से भी प्राप्त होती है। इन आंकड़ों के विश्लेषण एवं अध्ययन द्वारा अगले 48 घंटों या एक सप्ताह के मौसम के पूर्वानुमान की जानकारी दी जाती है। यह जानकारी यूनाइटेड किंगडम जैसे देश, जहाँ मौसमी परिवर्तन बहुत जल्दी–जल्दी होते हैं, के लिये अति उपयोगी हैं।

(iii) ऋतु

आप जानते हैं कि वायुमंडलीय दशाओं में विभिन्नताओं के अनुसार वर्ष को कई

ऋतुओं में बाँटा जाता है। ऋतु वर्ष की वह विशिष्ट अवधि है, जिसमें मौसम की दशायें लगभग समान रहती हैं। ऋतु के बदलने के साथ मौसम दशायें भी बदल जाती हैं। अतः ऋतु वर्ष की वह लम्बी अवधि है, जिसमें मौसम संबंधी विशिष्ट दशायें होती हैं और जो पृथ्वी के अक्ष के झुकाव और उसके द्वारा सूर्य का परिक्रमण करने के परिणाम स्वरूप बनती हैं। प्रति वर्ष ऋतुओं का एक समान चक्र दोहराया जाता है।

शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में तीन–तीन माह की अवधि की चार ऋतुएँ मानी गई हैं। इनके नाम हैं– बसन्त, ग्रीष्म, पतझड़ और शीत। हमारे देश में तीन प्रमुख ऋतुएँ–शीत, ग्रीष्म और वर्षा हैं। भारतीय मौसमविज्ञान विभाग द्वारा चार प्रमुख ऋतुएँ मानी गई हैं। इनके नाम हैं– (1) शीत ऋतु (दिसम्बर से फरवरी); ऊ(2) ग्रीष्म ऋतु (मार्च से मई); (3) आगे बढ़ते मानसून की ऋतु या वर्षा ऋतु (जून से सितम्बर) और (4) पीछे हटते मानसून की ऋतु (अक्टूबर से नवम्बर)। उत्तर भारत में परम्परागत छः ऋतुएँ मानी जाती हैं। इनके नाम हैं (1) बसन्त ऋतु (चैत्र–वैशाख या मार्च–अप्रैल); (2) ग्रीष्म ऋतु (ज्येष्ठ–आषाढ़ या मई–जून); (3) वर्षा ऋतु (श्रावण–भाद्रपद या जुलाई–अगस्त); (4) शरद् ऋतु (अश्विन–कार्तिक या सितम्बर–अक्टूबर); (5) हेमन्त ऋतु (मार्गशीष–पौष या नवम्बर–दिसम्बर) तथा (6) शिशिर ऋतु (माघ–फाल्गुन या जनवरी–फरवरी)।

विषुवत वृत्त के ऊपर सूर्य की किरणें वर्ष भर लगभग लम्बवत् पड़ती हैं। अतः विषुवतीय प्रदेशों में तापमान सारे वर्ष एक समान रहता है। इस कारण विषुवतीय प्रदेशों में कोई ऋतु नहीं होती। तटीय भागों में समुद्र का प्रभाव ऋतुओं की भिन्नता को कम कर देता है। ध्रुवीय प्रदेशों में केवल दो ऋतुएँ होती हैं–लम्बी शीत ऋतु और छोटी ग्रीष्म ऋतु।

(iv) जलवायु

किस विस्तृत क्षेत्र में वर्ष की विभिन्न ऋतुओं की औसत मौसमी दशाओं को उस क्षेत्र की जलवायु कहते हैं। औसत मौसम दशाओं की जानकारी एक बड़े क्षेत्र के अनेक वर्षों (लगभग 35 वर्ष) के एकत्र किये आंकड़ों की गणना के आधार पर की जाती है। उदाहरणार्थ राजस्थान की जलवायु गर्म और शुष्क है, केरल की उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वाली जलवायु है, ग्रीनलैंड की शीत मरुस्थली जलवायु हैं, और मध्य एशिया की जलवायु शीतोष्ण महाद्वीपीय हैं। किसी प्रदेश की जलवायु अपेक्षाकृत स्थाई होती है।

- किसी स्थान के तापमान, वायुदाब, पवन, आर्द्रता, वर्षण, धूप, मेघाच्छादन आदि के संदर्भ में थोड़े समय की वायुमंडलीय दशा को उस स्थान का मौसम कहते हैं।
- वर्ष की वह अवधि जिसमें मौसम दशायें लगभग समान होती हैं और जो

टिप्पणी

पृथ्वी के अक्ष के झुकाव और उसके द्वारा सूर्य का परिक्रमण करने के परिणाम स्वरूप बनती हैं, को ऋतु कहते हैं।

- किसी बड़े क्षेत्र के पिछले अनेक वर्षों के औसत मौसम की दशाए, जो अपेक्षाकृत स्थाई होती हैं, को उस क्षेत्र की जलवायु कहते हैं।

मौसम और जलवायु के अन्तर को निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया गया है।

मौसम	जलवायु
1. मौसम में किसी सीमित क्षेत्र की वायुमण्डलीय दशाओं की लघु अवधि (प्रायः एक दिन या एक सप्ताह) का अध्ययन किया जाता है।	1. जलवायु में, बड़े क्षेत्र की लम्बी अवधि की मौसम संबंधी दशाओं के औसत का अध्ययन किया जाता है।
2. मौसम वायुमंडलीय तत्त्वों, जैसे तापमान अथवा आर्द्रता में से किसी एक से भी प्रभावित हो सकता है।	2. जलवायु वायुमण्डल के विभिन्न तत्त्वों के संयुक्त प्रभाव की देन है।
3. मौसम अक्सर बदलता रहता है।	3. यह लगभग स्थायी है।
4. इसका प्रभाव किसी देश के छोटे से भाग में अनुभव किया जाता है।	4. जलवायु के प्रभाव को किसी महाद्वीप के विशाल क्षेत्र में देखा जा सकता है।
5. किसी स्थान पर वर्ष में विभिन्न प्रकार के मौसमों का अनुभव किया जा सकता है।	5. किसी स्थान पर एक ही प्रकार की जलवायु होती है।

पाठगत प्रश्न 13.1

निम्न में से प्रत्येक के सामने कोष्ठकों में दिए शब्दों में से उचित शब्द चुनकर रिक्त स्थान भरिए:

1. मौसम अपने अवयवों में से _____ तत्त्व/तत्त्वों की प्रधानता पर निर्भर करता है। ((क) एक, (ख) दो, (ग) तीन, (घ) एक या एक से अधिक)

2. विषुवतीय प्रदेशों में ऋतुएँ _____ हैं।
((क) प्रमुख, (ख) चार (ग) नहीं, (घ) हमेशा बदलती रहती)

3. जलवायु में मौसम की _____ अवधि की दशाओं का अध्ययन किया जाता है। ((क) एक वर्ष (ख) लम्बी (ग) अल्पकालिक (घ) अनेक वर्षों की)

4. शुष्क ऋतु में हमारे शरीर में अनावृत्त त्वचा _____ के कारण फटने लगती है। ((क) वर्षा ऋतु, (ख) उच्च आर्द्रता, (ग) ग्रीष्म ऋतु, (घ) निम्न आर्द्रता)

5. ऋतुएँ _____ के द्वारा बनती है। ((क) समुद्री धाराएँ तथा परिक्रमण (ख) वायु राशियां तथा परिभ्रमण (ग) समुद्री धाराओं और पृथ्वी का परिभ्रमण (घ) पृथ्वी का अपने पक्ष पर झुकाव तथा उसका परिक्रमण।)

6. चार ऋतुओं (प्रत्येक तीन मास अवधि) की स्पष्ट रचना _____ कटिबन्ध/प्रदेश में दिखाई देती है। ((क) शीतोष्ण कटिबन्ध (ख) उष्ण कटिबन्ध (ग) विषुवतीय प्रदेशों (घ) शीत कटिबन्ध)

13.2 जलवायु को प्रभावित करने वाले कारक

संसार के विभिन्न प्रदेशों में तापमान, आर्द्रता एवं वर्षण में अन्तर पाया जाता है। आप जानते हैं कि ये अन्तर विभिन्न जलवायु दशाओं में रहने वाले लोगों के रहन–सहन के तौर–तरीकों को प्रभावित करते हैं। विभिन्न जलवायु दशाओं को समझने से पूर्व हमारे लिये यह जरूरी है कि हम उन सभी कारकों को जानें जो किसी स्थान या प्रदेश की जलवायु को प्रभावित करते हैं।

(क) अक्षांश अथवा विषुवत वृत्त से दूरी

विषुवत वृत्त के निकटवर्ती स्थान दूरस्थ स्थानों की अपेक्षा अधिक गर्म होते हैं। इसका प्रमुख कारण विषुवत् वृत्त पर सूर्य की किरणें हमेशा लगभग लम्बवत् पड़ती हैं। शीतोष्ण और ध्रुवीय कटिबन्धों में सूर्य की किरणें तिरछी पड़ती हैं। हम पहले पढ़ चुके हैं कि किसी भी क्षेत्र में लम्बवत् किरणें तिरछी किरणों की अपेक्षा अधिक सकेन्द्रिक होती हैं। इसके अतिरिक्त तिरछी किरणों की अपेक्षा लम्बवत् किरणों को धरातल पर पहुँचने में वायुमण्डल की कम दूरी तय करनी पड़ती है। यही कारण है कि निम्न अक्षांशों में उच्च अक्षांशों की अपेक्षा तापमान ऊँचा रहता है। विषुवत् वृत्त के निकट होने के कारण मलेशिया में इंग्लैंड (विषुवत वृत्त से दूर) की अपेक्षा अधिक गर्मी पड़ती है।

(ख) समुद्र तल से ऊँचाई

हम सब जानते हैं कि पर्वतों पर मैदानों की अपेक्षा अधिक ठण्ड रहती है। शिमला अधिक ऊँचाई पर स्थित होने के कारण ही जालन्धर की अपेक्षा अधिक ठण्डा है यद्यपि दोनों नगर एक ही अक्षांश पर स्थित हैं। तापमान ऊँचाई बढ़ने के साथ घटता जाता है। प्रत्येक 165 मीटर की ऊँचाई पर औसतन 1^0 सेल्सियस तापमान कम हो जाता है। इस प्रकार ऊँचाई बढ़ने के साथ–साथ तापमान निरन्तर कम होता रहता है।

(ग) महाद्वीपीयता अथवा समुद्र से दूरी

जल बहुत देर में गर्म होता है और बहुत देर में ठंडा होता है। समुद्र तट के

टिप्पणी

निकटवर्ती स्थानों की जलवायु सम होती हैं। समुद्र के इस समकारी प्रभाव के कारण तट के निकट के स्थानों का ताप परिसर कम और आर्द्रता अधिक होती है। महाद्वीपों के आन्तरिक भाग समुद्र के इस समकारी प्रभाव से वंचित रहते हैं। अतः वहाँ ताप परिसर अधिक और आर्द्रता कम होती है। उदाहरणार्थ मुम्बई और नागपुर दोनों नगर लगभग एक ही अक्षांश पर स्थित हैं, परन्तु समुद्र के प्रभाव के कारण मुम्बई में नागपुर की अपेक्षा नीचे तापमान रहते हैं और अधिक वर्षा होती हैं

(घ) प्रचलित पवनों का स्वरूप

समुद्र की ओर से आने वाली पवनें (अभितट पवनें) नमी से युक्त होती हैं और वे अपने मार्ग में पड़ने वाले क्षेत्रों में वर्षा करती हैं। महाद्वीपों के आन्तरिक भागों से समुद्र की ओर आने वाली पवनें (अपतट पवनें) शुष्क होती हैं और वे वाष्पीकरण में सहायक होती हैं। भारत में ग्रीष्म कालीन मानसून पवनें समुद्र से आती हैं। अतः वे देश के अधिकांश क्षेत्र पर वर्षा करती हैं। इसके विपरीत शीतकालीन मानसून पवनें स्थल भाग से आने के कारण सामान्यतया शुष्क होती हैं।

(ङ) मेघाच्छादन

मेघ विहीन मरुस्थलीय भागों में दिन के समय वायु के अत्यधिक गर्म होने के कारण छाया में भी ऊँचे तापमान पाये जाते हैं। रात के समय यह गर्मी धरातल द्वारा शीघ्र विकिरित हो जाती है। अतः मरुस्थलों में दैनिक ताप परिसर अधिक होता है। इसके विपरीत बादलों से घिरे आकाश और भारी वर्षा के कारण तिरुवनन्तपुरम में ताप परिसर बहुत कम होता है।

(च) समुद्री धाराएं

समुद्री जल में तापमान और घनत्व की समानता बनाये रखने में समुद्र का जल एक स्थान से दूसरे स्थान को गतिमान रहता है। समुद्री धाराएं जल की गतियाँ हैं जो उच्च तापमान से निम्न तापमान तथा निम्न तापमान से उच्च तापमान की ओर एक निश्चित दिशा में बहती हैं। गर्म धाराएं तटवर्ती भागों के तापमान को बढ़ाकर कभी–कभी वर्षा में सहायक होती हैं; जबकि ठण्डी समुद्री धाराएं तटवर्ती भागों का तापमान कम कर, कोहरा उत्पन्न करती हैं। उत्तरी अटलांटिक महासागर में बर्जन नामक बन्दरगाह (नार्वे) गर्म उत्तरी अंध महासागरीय प्रवाह के कारण जाड़े में बर्फ के जमने से बचा रहता है, जबकि कनाडा का क्यूबैक बन्दरगाह जाड़े के महीनों में ठण्डी लैब्राडोर धारा के प्रभाव में आकर बर्फ से जम जाता है। यद्यपि क्यूबैक बन्दरगाह अपेक्षाकृत निम्न अक्षांशों में स्थित है। समुद्र की ओर से आने वाली पवन गर्म धारा के ऊपर से गुजरते समय गर्म हो जाती है और आन्तरिक भागों के तापमान को ऊँचा कर देती है। इसी प्रकार ठण्डी धाराओं के ऊपर से गुजरने वाली पवनें ठण्डी होकर आन्तरिक भागो में तापमान को कम करके, कोहरा और धुंध उत्पन्न करती हैं।

(छ) पर्वत मालाओं की स्थिति

पर्वत मालायें हवाओं के रास्ते में प्राकृतिक अवरोध का कार्य करती हैं। समुद्र की ओर से आने वाली पवनें मार्ग में पर्वतों के आने पर ऊपर चढ़ने को बाध्य होती है। ऊपर चढ़ने पर तापमान गिरने लगता है और पवनाभिमुख ढालों पर भारी वर्षा करती हैं। फिर वे पर्वतों के दूसरी दिशा में नीचे उतरती हैं, जिसे पवनाविमुख ढाल कहा जाता है। पवनाविमुख ढाल वर्षा रहित होता है तथा वृष्टि छाया प्रदेश कहा जाता है। महान हिमालय वाष्प युक्त मानसूनी पवनों को तिब्बत जाने में रूकावट पैदा करते हैं और उत्तर की ओर से आने वाली ठण्डी हवाओं को भारत में आने से रोकते हैं। इसी कारण से भारत के उत्तरी मैदानों में भारी वर्षा होती हैं जबकि तिब्बत, एक स्थायी वृष्टि छाया प्रदेश बना हुआ है।

(ज) भूमि का ढाल एवं अभिमुखता

भूमि के मन्द ढाल पर सूर्य की किरणों का संकेन्द्रण होने के कारण ऊपर की वायु का तापमान बढ़ जाता है। तीव्र ढाल पर किरणों के फैलने के कारण तापमान कम होता है। इसके साथ ही सूर्य के सम्मुख पड़ने वाले पर्वतीय ढाल विमुख ढाल वाले क्षेत्रों से अपेक्षाकृत गर्म होते हैं। हिमालय पर्वतमाला के दक्षिणी ढाल उत्तरी ढालों की अपेक्षा अधिक गर्म हैं।

(झ) मिट्टी की प्रकृति और वनस्पति आवरण

मिट्टी का गठन, संरचना एवं संघटन उसकी प्रकृति को बताते हैं। ये गुण अलग–अलग मिट्टियों में बदलते रहते हैं। पथरीली या रेतीली मिट्टी गर्मी की सुचालक होती हैं; जबकि काली चिकनी मिट्टी गर्मी को जल्दी सोख लेती है। वनस्पति विहीन मिट्टियों से विकिरण तेजी से होता है। अतः मरुस्थल दिन में गर्म और रात में ठंडे होते हैं। वन विहीन क्षेत्रों की तुलना में वनों से ढके क्षेत्रों में ताप परिसर कम होता है।

इन प्रमुख कारकों के सम्मिलित प्रभाव के कारण उच्च अक्षांशों की पश्चिमी तटीय भूमियाँ पूर्वी तटीय भूमियों की अपेक्षा शीत ऋतु में गर्म रहती हैं। उपोष्ण कटिबन्धों के निकट निम्न अक्षांशों की पूर्वी तटीय भूमियाँ पश्चिमी तटीय भूमियों की अपेक्षा ग्रीष्म ऋतु में गर्म रहती हैं। महाद्वीपों के सीमान्तों पर सामान्यतया अनुसमुद्री जलवायु पाई जाती है। महाद्वीपों के आन्तरिक भागों में महाद्वीपीय जलवायु पाई जाती है।

- किसी स्थान या क्षेत्र की जलवायु को प्रभावित करने वाले कारक हैं – अक्षांश या विषुवत वृत्त से दूरी, समुद्र तल से ऊँचाई, महाद्वीपीयता या समुद्र से दूरी, प्रचलित पवनों का स्वरूप, मेघाच्छादन, समुद्री धाराएँ, पर्वतमालाओं की स्थिति, भूमि का ढाल एवं अभिमुखता, मिट्टी की प्रकृति और वनस्पति आवरण।

पाठगत प्रश्न 13.2

निम्नलिखित कथनों में से कुछ कथन गलत हैं और कुछ सही। सही कथनों पर चिन्ह (√) लगाइये:

1. अक्षांश जितना उच्च होगा तापमान उतना कम होगा।
2. ऊँचाई बढ़ने के साथ–साथ तापमान गिरता है।
3. समुद्र तट के निकट ताप परिसर कम रहता है।
4. महाद्वीपों के आन्तरिक भागों में ताप परिसर कम रहता है।
5. ठण्डी जल धाराएँ तटीय भागों के तापमान को कम करती हैं।

13.3 जलवायु का वर्गीकरण

मौसम के प्रमुख तत्वों के विभिन्न प्रभाव तथा पृथ्वी के धरातल के विभिन्न स्वरूपों के कारण संसार के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार की जलवायु पाई जाती है। अतः जलवायु के प्रकारों की संख्या बहुत ही अधिक है। संसार के इन विविध जलवायु प्रकारों को आसानी से समझने के लिये उन्हें कुछ प्रमुख जलवायु समूहों में वर्गीकृत किया गया है और प्रत्येक जलवायु समूह में कुछ प्रमुख सामान्य विशेषतायें पाई जाती हैं।

यद्यपि वैज्ञानिकों द्वारा संसार के प्रमुख जलवायु प्रकारों के उचित अध्ययन के लिये उनके वर्गीकरण के कई प्रयास किये गये हैं। चूँकि जलवायु मौसम की विभिन्न दशाओं का सम्मिलित और सामान्य रूप होता है, अतः कोई भी वर्गीकरण आदर्श नहीं माना जाता। फिर भी, यूनानियों ने तापमान और सूर्यातप के वितरण के आधार पर संसार की जलवायु को वर्गीकृत करने का प्रथम प्रयास किया। उन्होंने संसार को पाँच अक्षांशीय ताप कटिबन्धों में बाँटा। इन ताप कटिबंधों की सीमाओं का निर्धारण पृथ्वी पर सूर्य की किरणों से बनने वाले कोण के आधार पर किया गया है। पाँच ताप कटिबंध निम्नलिखित हैं (चित्र 13.1)।

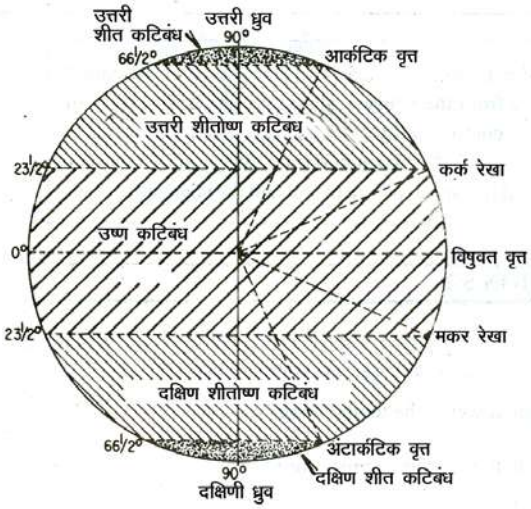

चित्र 13.1 ताप कटिबंध

(क) ताप कटिबन्ध

(i) उष्ण कटिबंध : ताप कटिबंधों में उष्ण कटिबंध सबसे अधिक विस्तृत है। यह पृथ्वी की सतह के लगभग आधे भाग को घेरे हुए है। उष्ण कटिबंध कर्क वृत्त ($23\frac{1}{2}^0$ उ.) और मकर वृत ($23\frac{1}{2}^0$ द.) के मध्य में स्थित है। इस ताप कटिबंध में वर्ष भर सूर्य की किरणें लगभग लम्बवत् पड़ती हैं (चित्र संख्या 13.1 देखें)।

उष्ण कटिबंध के विषुव कालों में अर्थात 21 मार्च और 23 सितम्बर की तिथियों को मध्यान्ह कालीन सूर्य विषुवत वृत्त पर ठीक सिर के ऊपर होता है। सूर्य 21 जून को कर्क वृत्त पर और 22 दिसम्बर को मकर वृत्त पर भी लम्बवत् होता है। विषुवत वृत्त पर दिन और रात की अवधि हमेशा बराबर रहती है, अर्थात 12 घंटे की रात और 12 घंटे का दिन। दिन या रात की अवधि विषुवत वृत्त से दूर जाने पर बढ़ती जाती है और यह कर्क या मकर वृत्तों पर बढ़कर अधिकतम 13 घंटे 47 मिनट तक की हो जाती है। विषुवत वृत्त पर ताप परिसर सबसे कम होता है और अयन वृत्तों (कर्क और मकर वृत्त) की ओर बढ़ता जाता है।

(ii) शीतोष्ण कटिबंध : शीतोष्ण कटिबंध उष्ण कटिबंध के दोनों ओर स्थित हैं। उत्तरी शीतोष्ण कटिबंध कर्क वृत्त ($23\frac{1}{2}^0$ उ.) से आर्कटिक वृत्त या उत्तर ध्रुवीय वृत्त ($66\frac{1}{2}^0$ उ.) के बीच स्थित है। दक्षिणी शीतोष्ण कटिबंध की स्थिति मकर वृत्त ($23\frac{1}{2}^0$ द.) और अन्टार्कटिक वृत्त या दक्षिण ध्रुवीय वृत्त ($66\frac{1}{2}^0$ द.) के बीच हैं (चित्र संख्या 13.1 देखें)। इस कटिबंध में सूर्य की स्थिति ठीक सिर के ऊपर कभी नहीं होती। यहाँ शीत ऋतु में रात की अवधि दिन की अवधि से लम्बी होती है और ग्रीष्म ऋतु में इसके विपरीत होती हैं ध्रुवीय वृत्तों की ओर जाने पर दिन और रात की अवधि का अन्तर बढ़ता जाता है। ध्रुवीय वृत्तों पर ग्रीष्म ऋतु में दिन की अवधि (सूर्य के प्रकाश की अवधि) 24 घंटे होती है। जब उत्तरी गोलार्ध में ग्रीष्म ऋतु होती है तो दक्षिणी गोलार्ध में शीत ऋतु होती है।

(iii) शीत कटिबंध : शीतोष्ण कटिबंध के समान ही शीत कटिबन्ध भी दोनों गोलार्धों में हैं। उत्तरी शीत कटिबंध उत्तर ध्रुवीय वृत्त ($66\frac{1}{2}^0$ उ.) और उत्तर ध्रुव (90^0 उ.) के बीच स्थित है। दक्षिणी शीत कटिबन्ध दक्षिण ध्रुवीय वृत्त ($66\frac{1}{2}^0$ द.) से दक्षिण ध्रुव (90^0 द.) तक है। शीत कटिबन्ध में सूर्य की किरणें हमेशा तिरछी पड़ती हैं और उनका आपतन कोण बहुत छोटा होता है। ध्रुवों पर ग्रीष्म ऋतु में 6 माह का दिन (सूर्य के प्रकाश की अवधि) होता है और शीत ऋतु में यहाँ 6 माह की रात होती है। यह कटिबन्ध संसार का सबसे ठंडा प्रदेश है। यहाँ धरातल पर सदैव हिम की मोटी तह जमी रहती है।

- सूर्यातप एवं तापमान के वितरण के आधार पर पृथ्वी की पाँच तप कटिबन्धों में बाँटा गया है।
- पाँच ताप कटिबंधों के नाम हैं – उष्ण कटिबंध, उत्तरी शीतोष्ण कटिबन्ध, दक्षिणी शीतोष्ण कटिबन्ध, उत्तरी शीत कटिबन्ध तथा दक्षिणी शीत कटिबन्ध।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 13.3

रिक्त स्थानों की पूर्ति उचित शब्दों द्वारा कीजिए–

(i) ताप कटिबंधों का विचार सर्वप्रथम _____ द्वारा किया गया।

(ii) _____ उष्ण कटिबंध के मध्य से गुजरता है।

(iii) _____ पर दिन–रात हमेशा बराबर होते हैं।

(iv) 21 मार्च और 23 सितम्बर को सूर्य _____ के ऊपर लम्बवत् चमकता है।

(v) _____ कटिबंध में सूर्य वर्ष भर सिर के ऊपर चमकता है।

(vi) _____ कटिबंध $23\frac{1}{2}^0$ द. और $66\frac{1}{2}^0$ द. के मध्य स्थित है।

(vii) उत्तरी शीत कटिबंध $66\frac{1}{2}^0$ उ. और _____ के मध्य स्थित है।

(viii) _____ कटिबंध में सदैव बर्फ जमी रहती है।

(ख) जलवायु के प्रकार

ताप कटिबंधों की संकल्पना सैद्धान्तिक है। यह पृथ्वी तल पर सूर्यातप के वितरण मात्र का ही वर्णन करती है। यह आप पहले ही जान चुके हैं कि सूर्य की किरणों के आपतन कोण के अतिरिक्त और भी कई कारक किसी स्थान की जलवायु को प्रभावित करते हैं। तापमान और वर्षा के संयुक्त प्रभाव और इनके वितरण को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों को ध्यान में रखते हुये आधुनिक वैज्ञानिकों ने जलवायु प्रकारों के कई वर्गीकरण किये हैं। डब्ल्यू. कोपेन (1846–1940) का जलवायु वर्गीकरण अपने विविध रूपान्तरित प्रकारों के रूप में सबसे ज्यादा प्रयुक्त एवं लोकप्रिय है।

कोपेन का वर्गीकरण तापमान, वर्षण तथा उनकी ऋतुवत् विशेषताओं पर आधारित है। इसमें उन्होंने जलवायु और प्राकृतिक वनस्पति के बीच दृश्य संबंधों को भी जोड़ा है। कोपेन ने अपने वर्गीकरण में संसार को पाँच वृहद जलवायु वर्गों और उनको भी तेरह उपवर्गों में विभाजित किया है। ये जलवायु वर्ग व जलवायु उपवर्ग इस प्रकार हैं :

जलवायु वर्ग		जलवायु प्रकार	
(A)	उष्ण कटिबंधीय जलवायु (सभी ऋतु गर्म)	Af	(1) उष्ण कटिबंधी वर्षा वन
		Aw	(2) सवाना जलवायु
		Am	(3) मानसूनी जलवायु
(B)	शुष्क जलवायु	Bw	(4) मरुस्थलीय जलवायु
		Bs	(5) स्टेपी जलवायु
(C)	नम शीतोष्ण जलवायु या मध्य अक्षांशीय नम जलवायु (शीत	Cs	(6) भूमध्यसागरीय जलवायु
		Cw	(7) चीन तुल्य जलवायु

	ऋतु कम ठंडी)	Cf	(8) पश्चिम यूरोपीय जलवायु
(D)	आर्द्र मध्य अक्षांशीय जलवायु	Dw	(9) टैगा जलवायु
	(शीत ऋतु बहुत ठंडी)	Df	(10) शीतल पूर्वी तट की जलवायु
			(11) महाद्वीपीय जलवायु
(D)	ध्रुवीय जलवायु	Et	(12) टुन्ड्रा जलवायु
		Ef	(13) हिमाच्छादित प्रदेश की जलवायु

आप इनमें से कुछ जलवायु प्रकारों की प्रमुख विशेषतायें आगे के पाठों, जो निम्न अक्षांशों, मध्य अक्षांशों और उच्च अक्षांशों में रहने वाले लागों के जीवन से संबंधित हैं, में अध्ययन करेंगे।

- डब्लू. कोपेन का जलवायु वर्गीकरण तापमान, वर्षण तथा उनकी ऋतुवत विशेषताओं पर आधारित है।
- इस वर्गीकरण के अनुसार संसार को पाँच वृहद जलवायु वर्गों और तेरह जलवायु प्रकारों में उपविभाजित किया गया है।

पाठगत प्रश्न 13.4

नीचे स्तम्भ 'क' की प्रत्येक मद का स्तम्भ 'ख' की प्रत्येक मद के साथ सही जोड़ा बनाइये:

'क' जलवायु वर्ग	**'ख' जलवायु प्रकार**
(i) उष्ण कटिबन्धीय जलवायु	(1) टुंड्रा जलवायु
(ii) शुष्क जलवायु	(2) टैगा जलवायु
(iii) नम शीतोष्ण जलवायु	(3) सवाना जलवायु
(iv) आर्द्र मध्य अक्षांशीय जलवायु (शीत ऋतु बहुत ठंडी)	(4) स्टेप्स की जलवायु
(v) ध्रुवीय जलवायु	(5) भूमध्य सागरीय जलवायु

आपने क्या सीखा

मौसम, ऋतु और जलवायु में प्रमुख अन्तर अवधि, प्रभाव क्षेत्र का विस्तार और स्थायित्व के संदर्भ में है। किसी स्थान पर मौसम उसके किसी एक या एक से अधिक अवयवों के संदर्भ में किसी समय विशेष में वायुमंडलीय दशा का बोध कराता है। यह स्थाई नहीं है। ऋतु वर्ष की वह लम्बी अवधि हैं जिसमें मौसम संबंधी विशिष्ट दशायें होती हैं। यह मुख्यतया पृथ्वी के अक्ष के झुकाव और पृथ्वी की सूर्य परिक्रमा के कारण बनती है। जलवायु एक विस्तृत क्षेत्र के गत अनेक वर्षों के मौसम का औसत होती है। किसी स्थान या प्रदेश की जलवायु को प्रभावित करने वाले कारक हैं–

टिप्पणी

विषुवत वृत्त से दूरी, समुद्रतल से ऊँचाई, समुद्र से दूरी, प्रचलित पवनें, मेघाच्छादन, समुद्री धाराएँ, पर्वतों की स्थिति, भूमि का ढाल एवं अभिमुखता, मिट्टी की प्रकृति एवं वनस्पति आवरण। यूनानियों ने तापमान और सूर्यातप के वितरण के आधार पर सर्वप्रथम पृथ्वी को उष्ण, शीतोष्ण एवं शीत कटिबन्धों में बाँटा। उष्ण कटिबन्ध सबसे गर्म, शीत कटिबंध सबसे ठंडा और शीतोष्ण कटिबन्ध इन दोनों के बीच में न ज्यादा गर्म और न ज्यादा ठंडा है। सूर्य के प्रकाश की अवधि विषुवत वृत्त से ध्रुवों की ओर बढ़ती जाती है। विषुवत वृत्त पर दिन और रात की अवधि बराबर होती है। ग्रीष्म ऋतु में दिन बड़े और रातें छोटी होती हैं तथा शीत ऋतु में रातें बड़ी तथा दिन छोटे होते हैं। जलवायु प्रकार प्रदेशों के अनुसार बने जलवायु वर्गों के आधार पर है। डब्लू. कोपेन ने संसार को पाँच जलवायु वर्गों में विभाजित किया है। ये वर्ग हैं (A) उष्ण कटिबन्धीय जलवायु (शीत ऋतु नहीं) (B) शुष्क जलवायु (C) नर्म मध्य–अक्षांशीय जलवायु (शीत ऋतु कम ठंडी) (D) आर्द्र मध्य–अक्षांशीय जलवायु (शीत ऋतु बहुत ठंडी) और (E) ध्रुवीय जलवायु। उनका यह वर्गीकरण तापमान, वर्षण और उनकी ऋतुवत् भिन्नताओं पर आधारित है। उन्होंने इन पाँच जलवायु वर्गों को 13 जलवायु प्रकारों में उपविभाजित किया है।

पाठांत प्रश्न

1. किसी स्थान की जलवायु को प्रभावित करने वाले कारकों की व्याख्या कीजिए।
2. ताप कटिबन्धों को दर्शाने वाला एक चित्र बनाइये और प्रत्येक ताप कटिबन्ध की प्रमुख विशेषताएं लिखिये।
3. मौसम और जलवायु के बीच पाँच अन्तर स्पष्ट करिये।
4. कोपेन द्वारा जलवायु के वर्गीकरण करने के तीन प्रमुख आधारों के नाम बताइये और साथ ही पाँच जलवायु वर्ग और जलवायु प्रकारों में उनके उपविभागों के नाम बताइये।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

13.1

1. (घ); 2. (ग); 3. (घ); 4. (घ); 5. (घ); 6. (क)

13.2

1. सही; 2. सही; 3. सही; 4. गलत; 5. सही

13.3

(i) यूनानियों; (ii) विषुवत वृत्त; (iii) विषुवत वृत्त;
(iv) विषुवत वृत; (v) उष्ण (vi) दक्षिणी शीतोष्ण; (vii) उत्तर ध्रुव/90^0 उ.; (viii) शीत

13.4

(i) (3); (ii) (4); (iii) (5); (iv) (2); (v) (1)

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. कृपया अनुच्छेद 13.2 देखिए।
2. कृपया अनुच्छेद 13.3 देखिए।
3. कृपया अनुच्छेद 13.1 देखिए।
4. कृपया अनुच्छेद 13.3 देखिए।

14

जैवमंडल

हम जानते हैं कि हमारी पृथ्वी ही अकेला ग्रह हैं जिसपर जीवन पाया जाता है। इसीलिए यह जीवंत ग्रह कहलाता है। इस ग्रह पर ही वायुमंडल, स्थलमंडल तथा जलमंडल है। ये सभी मंण्डल मिलकर इस ग्रह पर जीवन को संभव बनाते हैं। लेकिन क्या तुम जानते हो कि पृथ्वी के बहुत छोटे से भाग पर ही जीवन का अस्तित्व है। पृथ्वी के इस संकीर्ण क्षेत्र के पार किसी प्रकार का जीवन नहीं पाया जाता। पृथ्वी के इस संकीर्ण क्षेत्र में ऐसी क्या विशेषता है जिसने यहाँ पर जीवन को संभव बनाया है। यह इसलिए संभव हुआ है; क्योंकि यहाँ पर बहुत सी चीजों जैसे ऊर्जा, जीवित प्राणी तथा अजैव चीजों का उचित मिश्रण तथा उनके मध्य अन्योन्य क्रिया पाई जाती है। लाखों वर्षों से प्रकृति ने कुछ ऐसे नियंत्रण और संतुलन बनाए रखें हैं जिससे बिना किसी समस्या के जीवन के विभिन्न रूप विद्यमान हैं। लेकिन आज स्थिति बदल गई है। आज यह जीवन से परिपूर्ण ग्रह खतरे में हैं। यह मुख्य रूप से मानवीय हस्तक्षेप के कारण है। हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने ठीक ही कहा था।'' पृथ्वी के पास मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए सब कुछ है; परन्तु उसके लालच के लिए नहीं।'' अगर हम इस अनोखे जीवनयुक्त ग्रह को बचाना चाहते हैं तो हमें अपने लालच पर नियंत्रण रखना ही होगा तथा हमें अपनी जीवन शैली और व्यवहार के प्रतिरूप को बदलना होगा। इस पाठ में हम जैवमंडल से संबंधित इनमें से कुछ विषयों पर चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप :–

- जैवमंडल के तत्व तथा उसके स्थलमंडल, वायुमंडल और जलमंडल के सहसंबंध को बता सकेंगें;
- जैवमंडल की सीमा का अनुमान लगा सकेंगे;
- जैवमंडल की अनोखी प्रकृति के कारण बता सकंगे;

टिप्पणी

- मुख्य संकल्पनाओं जैसे पारिस्थितिकी, पारितंत्र, विश्वव्यापी तापन, ओजोन परत का घटना, क्षारीय वर्षा तथा सतत पोषणीय विकास की परिभाषा बता सकेंगे;
- पारितंत्र में पारिस्थितिक प्रक्रियाओं को बता सकेंगे;
- जलवायिक परिवर्तन के अवयवों का सामना करने के लिए विश्व एवं स्थानीय स्तर पर किए गए प्रयत्नों की विशेषता बता सकेंगे;
- सतत पोषणीय विकास की आवश्यकता तथा महत्व की व्याख्या कर सकेंगे।

14.1 जैवमंडल तथा इसकी सीमा

सीधे–सादे शब्दों में जैवमंडल पृथ्वी की वह संकरी पट्टी है जिसमें सभी प्रकार का जीवन विद्यमान है। क्या तुम जानते हो कि इस पट्टी में जीवन क्यों संभव हुआ ? यह इसलिए क्योंकि यही वह क्षेत्र है जहाँ जीवन के लिए आवश्यक तीनों वस्तुएं उचित मात्रा में मिलती है। ये तीन हैं – भूमि (स्थलमंडल), वायु (वायुमंडल) तथा जल (जलमंडल); दूसरे शब्दों में यह संकरी पट्टी वह क्षेत्र है जहाँ, स्थलमंडल, वायुमंडल तथा जलमंडल मिलते हैं (देखिए चित्र 14.1)। हमें इस संकरी पट्टी का महत्व समझना चाहिए। यह वायुमंडल में ऊर्ध्वाकार रूप से लगभग 10 कि.मी. तक विस्तृत है। यह समुद्र में, जहाँ लगभग 10.4 कि.मी. की गहराई तक और पृथ्वी की सतह से लगभग 8.2 कि.मी. की गहराई तक सर्वाधिक जीवित जीव पाए जाते हैं, विस्तृत है। जीवन के कुछ रूप विषम परिस्थितियों में भी पाए जाते हैं। शैवाल (अलगाई) और थर्मोफिलिक इस प्रकार के जीवन के दो उदाहरण हैं। शैवाल जिसे जीवन के पहले रूप में से एक माना जाता है, बर्फीले अंटार्कटिका जैसे प्रतिकूल पर्यावरण में भी जीवित रह सकता है। दूसरे छोर पर थर्मोफिलिक (ऊष्मा पसंद करने वाला) जीवाणु सामान्यतः गहरे समुद्र में ज्वालामुखी रंध्रों में रहता है, जहाँ तापमान 300 डिग्री सेल्सियस से अधिक रहता है। वास्तव में ये जीवाणु क्वथनांक (0^0से.) से कम तापमान पर जीवित नहीं रह सकते।

जब जीवन शुरू हुआ तब स्थिति ऐसी नहीं थी। लगभग 7 अरब वर्ष पहले यह समझा जाता था कि पृथ्वी केवल एक संकरी विच्छिन्न भूमि है, जो महासागरों के उथले भागों को घेरे हुए है। जीवन के रूपों की उपलब्धता के संदर्भ में क्षेत्र के विस्तार की प्रवृत्ति के अनुसार यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि कुछ हजार वर्षों बाद जैवमंडल का विस्तार ऊपरी क्षोभमंडल से आगे बढ़ सकता है। इससे पता चलता है कि जैवमंडल का समय के साथ विकास हो रहा है। अब तक हमने जैवमंडल के ऊर्ध्वाधर विस्तार की चर्चा की है। लेकिन क्षैतिज रूप से जैवमंडल पूरे ग्लोब को घेरे हुए है, हालांकि सर्वाधिक गर्म और सर्वाधिक ठंडे क्षेत्रों में जीवन संभव नहीं हो सकता है। अधिकतर जीवन एक संकरी पट्टी तक सीमित है, जो प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा सौर ऊर्जा को ग्रहण करती है, जो कई प्रकार के जैव–जीवन के लिए आवश्यक है। यह संकरा क्षेत्र समुद्र तल से लगभग 180–200 फीट नीचे उष्ण एवं उपोष्ण कटिबंधीय पर्वत श्रृंखलाओं

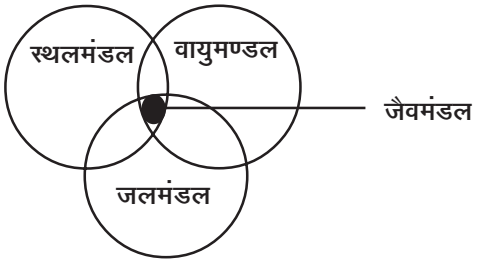

चित्र 14.1 जैवमंडल

(समुद्र तल से 6550 मीटर ऊपर) में हिम रेखा के सबसे ऊपरी भाग तक विस्तृत है। जब यह हिम रेखा के पार विस्तृत होता है तो जीवन के रूप बहुत कम हो जाते हैं।

14.2 जैवमंडल के घटक

जैवमंडल के तीन मूल घटक हैं– (अ) अजैविक घटक (ब) जैविक घटक तथा (स) ऊर्जा घटक। आइए इन तीनों घटकों की विस्तार से चर्चा करें।

(अ) अजैविक घटक

मोटे तौर पर इन घटकों में वे सभी अजैविक तत्व सम्मिलित होते हैं जो सभी जीवित जीवाणुओं के लिए आवश्यक होते हैं। ये हैं – (i) स्थलमंडल (भूपपर्टी का ठोस भाग), (ii) वायुमंडल और (iii) जलमंडल। खनिज पोषक तत्व, कुछ गैसें तथा जल जैविक जीवन के लिए तीन मूलभूत आवश्यकताएँ हैं। मृदा तथा अवसाद खनिज पोषक तत्वों के मुख्य भंडार हैं। वायुमंडल जैविक जीवन के लिए आवश्यक गैसों का भंडार है तथा महासागर तरल जल का प्रमुख भंडार है। जहाँ ये तीनों भंडार आपस में मिलते हैं, वह क्षेत्र जैविक जीवन के लिए सबसे अधिक उपजाऊ क्षेत्र होता है। मृदा की उपरी परत और महासागरों के उथले भाग जैविक जीवन को जीवित रखने के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं।

> मृदा की ऊपरी परत गैसों को आसानी से अंदर जाने और नमी को अंदर रिसने देती है; जबकि महासागरों के उथले भाग सूर्य की रोशनी को अंदर जाने देते हैं और धरातल व महासागरों की तली से विघटित गैसों और पोषक तत्वों को आपस में मिलने देते हैं।

(ब) जैविक घटक

पौधे, जीव–जंतु और सूक्ष्म जीवाणुओं सहित मानव पर्यावरण के तीन जैविक घटक हैं। एक तरीके से इन्हें तीन उप–तंत्र भी कहा जाता है।

(i) **पौधे** – जैविक घटकों में पौधे सबसे महत्वपूर्ण हैं। केवल ये ही प्राथमिक उत्पादक हैं, क्योंकि ये प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। इसीलिए इन्हें स्वपोषी कहा जाता है। पौधे न केवल सभी प्रकार के जैविक पदार्थों का उत्पादन करते हैं बल्कि जैविक पदार्थों एवं पोषक तत्वों के चक्रण एवं पुनर्चक्रण

में भी मदद करते हैं। अतः पौधे सभी जीवों के लिए भोजन और ऊर्जा के प्रमुख स्रोत हैं।

(ii) पशु–पौधे अगर प्राथमिक उत्पादक हैं तो पशु मुख्य उपभोक्ता। इसलिए पशुओं को विषम–तंत्र कहा जाता है। पशुओं के तीन प्रमुख कार्य हैं – (i) पौधों द्वारा भोजन के रूप में उपलब्ध कराये गये जैविक पदार्थ का उपयोग, (ii) भोजन को ऊर्जा में बदलना, और (iii) ऊर्जा का वृद्धि और विकास में प्रयोग करना।

(iii) सूक्ष्म जीव – इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म जीवाणु, फफूंदी इत्यादि आते हैं। इनकी संख्या असीमित है तथा इन्हें सामान्यतः अपघटक के रूप में जाना जाता है। जैसा कि इनके नाम से ही स्पष्ट है ये जीवाणु मृत पौधों और पशुओं तथा अन्य जैविक पदार्थों को अपघटित कर देते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा वे अपना भोजन प्राप्त करते हैं। अपघटन की इस प्रक्रिया द्वारा वे जटिल जैविक पदार्थों को विच्छेदित तथा पृथक कर देते हैं ताकि प्राथमिक उत्पादक अर्थात पौधे उनका दोबारा प्रयोग कर सकें।

(स) ऊर्जा – यह जैवमंडल का तीसरा तथा अति महत्वपूर्ण घटक है, जिसके बगैर इस ग्रह पर जीवन संभव नहीं हो पाता। यह इस ग्रह पर प्रत्येक प्रकार के जैविक जीवन के उत्पादन तथा पुनर्उत्पादन के लिए आवश्यक है। इस जैवमंडल में सभी जीव मशीन की भांति कार्य करने के लिए ऊर्जा का प्रयोग करते हैं तथा ऊर्जा के एक प्रकार को दूसरे में बदलते हैं। लेकिन क्या तुम्हें ऐसी ऊर्जा का स्रोत पता है जिसकी आवश्यकता जैवमंडल को चलाने के लिए होती है। सूर्य ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है जिसके बगैर हम जैवमंडल के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं कर सकते।

पाठगत प्रश्न 14.1

1. निम्नलिखित में से प्रत्येक के लिए एक शब्द दीजिए –

   (अ) संकरी पट्टी जिसमें जीवन है_____

   (ब) जैवमंडल का वह घटक जिसमें जीवन नहीं है _____

   (स) जैवमंडल का वह घटक जिसमें जीवन है _____

   (द) वे जीव जो पौधों, पशुओं तथा अन्य जैविक पदार्थों को अपघटित कर देते हैं _____

(2) रिक्त स्थान भरिए –

   (अ) _____ जैवमंडल के लिए ऊर्जा का प्राथमिक स्रोत है।

   (ब) वह जैविक घटक जो अपना भोजन मुंह से लेते हैं _____।

(स) जैवमंडल के जैविक घटकों में मुख्य रूप से _____, _____ और _____ आते हैं।

(द) जैवमंडल एक संकरी पट्टी है जहाँ _____, _____ और _____ मिलते हैं जिससे जीवन संभव हुआ है।

14.3 पारिस्थितिकी तथा पारितंत्र

पारिस्थितिकी जीवों और उनके पर्यावरण के बीच होने वाली पारस्परिक क्रियाओं का अध्ययन है। अब पारिस्थितिक विज्ञानी यह अनुभव करते हैं कि प्रकृति के दो घटक – जीव और पर्यावरण आपस में संबंधित ही नहीं हैं बल्कि ये घटक एक निश्चित तंत्र के रूप में बड़े व्यवस्थित ढंग से कार्य करते हैं। वास्तव में दोनों घटक जीव और पर्यावरण पृथक नहीं हैं। किसी एक विशेष जीव के लिए अन्य जीव उसके पर्यावरण का एक हिस्सा बन सकते है। इसी प्रकार से पर्यावरण को जीवों द्वारा बदला और प्रभावित किया

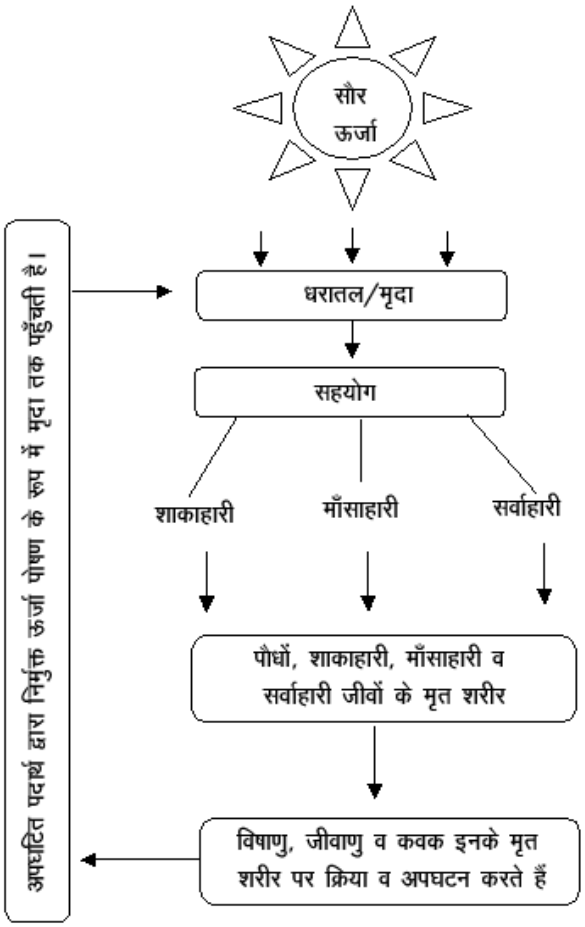

चित्र 14.2 एक पारितंत्र में ऊर्जा का प्रवाह

टिप्पणी

जा सकता है। अतः जीव और पर्यावरण एक तंत्र के परस्पर क्रिया करने वाले भाग हैं। इसीलिए इस प्रकार के तंत्र का वर्णन करने के लिए आजकल पारितंत्र शब्द का प्रयोग किया जाता है। पारिस्थितिक तंत्र का ही संक्षिप्त रूप पारितंत्र है। इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1935 में ए.जी. टॉसले द्वारा किया गया था।

एक पारितंत्र को एक ऐसे तंत्र के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें एक दूसरे पर निर्भर रहने वाले घटक नियमित रूप से परस्पर क्रिया करते हुए एक एकीकृत सम्पूर्ण का निर्माण करते हैं। दूसरे शब्दों में भूदृश्य का कोई भाग जिसमें जैविक और अजैविक घटक सम्मिलित हों, एक पारितंत्र के रूप में तभी जाना जाता है जब उसके सभी घटक एक दूसरे के साथ संघटित हों। उदाहरण के लिए एक झील या तालाब तब एक पारितंत्र है जब इसे केवल एक जल स्थान न समझकर इसे इसकी समग्रता के रूप में माना जाता है। उस विचार से तालाब सूक्ष्म पारितंत्र का प्रतिनिधित्व करता है और जैवमंडल को एक बड़े पारितंत्र के रूप में जाना जाता है। मूलरूप से यह अवधारणा दो पहलुओं के चारों ओर घूमती है।

(i) प्रथम, यह विभिन्न घटकों और उपघटकों के मध्य अंतर्संबंधों का अध्ययन करती है।

(ii) दूसरे, पारितंत्र के विभिन्न घटकों के मध्य ऊर्जा का प्रवाह जो इस बात के लिए आवश्यक निर्धारक है कि एक जैविक समुदाय कैसे कार्य करता है ?

इसलिए अगर हम एक पारितंत्र के कार्य पक्ष का अध्ययन करें तो हम इसका अध्ययन निम्नलिखित के अनुसार कर सकते हैं –

- ऊर्जा प्रवाह
- खाद्य श्रृंखला
- पोषक अथवा जैव–भूरासायनिक चक्र
- परिवर्धन एवं विकास
- नियंत्रण रचनातंत्र अथवा संतांत्रिकी (साइबर्नेटिक्स)
- समय और स्थान में विविधता प्रतिरूप

आइए प्रत्येक घटक का संक्षेप में अध्ययन करें –

(अ) पारितंत्र में ऊर्जा प्रवाह

जैसा कि हम पहले भी चर्चा कर चुके हैं, एक पारितंत्र में अन्योन्य क्रियाएँ लगातार होती रहती हैं। घटकों और उपघटकों के मध्य अन्योन्य क्रियाओं में ऊर्जा प्रवाह और खनिज पोषकों का चक्रण सम्मिलित होता है। ऊर्जा और खनिजों की गति को प्रदर्शित करने वाला एक सामान्य रेखाचित्र नीचे दिया गया है। (देखें चित्र 14.3)

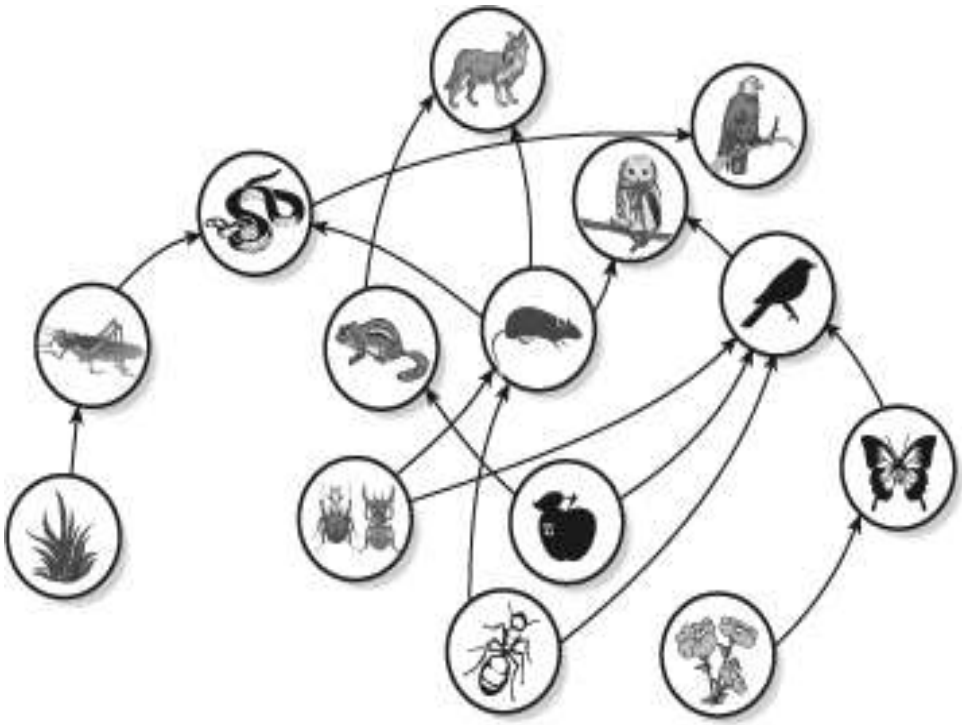

चित्र 14.3 खाद्य जाल

इस प्रक्रिया में ऊर्जा का हस्तातंरण एक स्तर से दूसरे स्तर को होता है। इसे पोषण स्तर कहते हैं। अतः पोषण स्तर वह स्तर या अवस्था होती है जिस पर खाद्य ऊर्जा एक समूह से दूसरे समूह को हस्तांतरित होती है। इसे और अच्छी तरह से समझने के लिए हमें खाद्य श्रृंखला तथा इससे संबंधित कार्यकलापों की चर्चा करनी होगी। जैवमंडल में मोटे तौर पर दो प्रकार के जीवित जीवों के समूह हैं– स्वपोषी और परपोषी। इन परपोषियों की खाने की आदत के आधार पर आगे तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। ये हैं – शाकाहारी, मांसाहारी तथा सर्वाहारी। पौधों को खाने वाले प्राणी शाकाहारी हैं तथा मांसभक्षी प्राणियों को मांसाहारी कहते हैं तथा सर्वाहारी जीव वो होते हैं जो पौधे और पशुओं दोनों को खाते हैं।

(ब) खाद्य श्रृंखला/चक्र

आइए अब यह समझें कि खाद्य श्रृंखला क्या है ? खाद्य श्रृंखला को एक पोषक स्तर के जीवों द्वारा दूसरे पोषक स्तर के जीवों को ऊर्जा के हस्तांतरण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। सूर्य ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है।

यह मृदा एवं जल में पौधों के उगने में सहायता करता है। पौधे अधिकतर शाकाहारी जीवों के भोजन के आधार हैं। इन शाकाहारी जीवों को मांसाहारी जीव अपने खाद्य पदार्थ के रूप में प्रयोग करते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ सर्वाहारी जीव है जो पौधों और पशुओं दोनों को खाते हैं। मृदा द्वारा अवशोषित सौर ऊर्जा पौधों और पशुओं के रूप में परिलक्षित होती है। इन जीवों का जीवन चक्र छोटा है और कुछ समय बाद मर जाते

टिप्पणी

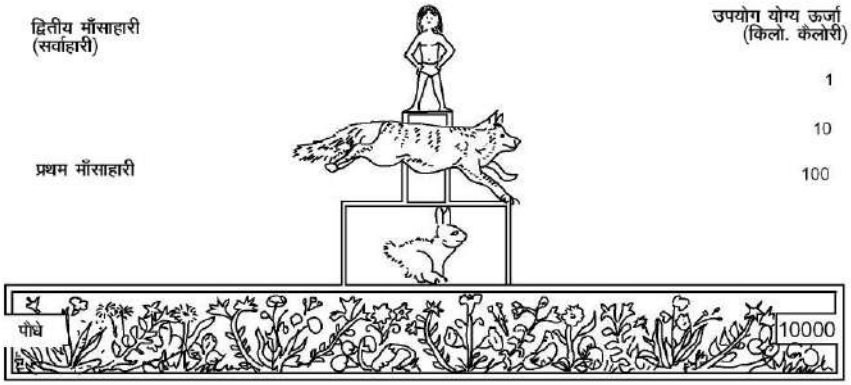

चित्र 14.4 खाद्य पिरामिड

हैं। जैसे ही ये जीव मरते हैं, दूसरे जीवों का समूह अपना कार्य शुरू कर देता है। क्योंकि ये मृत पदार्थों को खाते हैं। ये मृत पौधों और पशुओं के अपघटन में सहायता करते हैं तथा इनसे मुक्त हुई ऊर्जा मृदा द्वारा ग्रहण कर ली जाती है जो पौधों के उगने में सहायक होती है।

ऊपर वर्णित खाद्य श्रृंखला एक अत्यंत सरल खाद्य श्रृंखला है। लेकिन खाद्य श्रृंखलाएं हमेशा इतनी सरल एवं एकाकी क्रम वाली नहीं होतीं। सैंकड़ों अंतःसंबंधित एवं परस्परव्यापी खाद्य श्रृंखलाएं एक जटिल प्रतिरूप बनाती हैं। ऐसे प्रतिरूपों को खाद्य जाल कहते हैं।

आइए अब हम यह देखते हैं कि विभिन्न पोषण स्तर क्या है ? जैसे कि हमने पहले भी चर्चा की थी कि सूर्य अथवा सौर ऊर्जा सभी पौधों के लिए अपना भोजन तैयार करने का प्रमुख स्रोत है। पौधों द्वारा संग्रहित ऊर्जा पोषण स्तर के रूप में जानी जाती है। यह शाकाहारी जीवों के लिए ऊर्जा का स्रोत बन जाता है। जब शाकाहारी पशु इन पौधों को खाते हैं तो ऊर्जा का हस्तांतरण पोषण स्तर–I से पोषण स्तर–II को हो जाता है। फिर शाकाहारी जीवों द्वारा उपयोग की गई रासायनिक ऊर्जा (भोजन द्वारा) पोषण स्तर–II पर संग्रहित हो जाती है। मांसाहारी अपने भोजन के लिए अन्य पशुओं पर निर्भर रहते हैं। इन पशुओं को अपने ऊतकों को बनाने के लिए बहुत सारी ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ये अपनी ऊर्जा को पोषण स्तर–II से प्राप्त भोजन के उपभोग द्वारा प्राप्त करते हैं। खाद्य श्रृंखला के पोषण स्तर–III से रासायनिक ऊर्जा का कुछ भाग पोषण स्तर–IV के सर्वाहारिओं को हस्तांतरित हो जाता है। इसलिए खाद्य श्रृंखला में शीर्ष पर सर्वाहारी हैं जो अपनी ऊर्जा सभी तीन स्तरों से प्राप्त करते हैं। इस प्रकार से खाद्य श्रृंखला में प्रत्येक उच्च स्तर पर क्रमिक रूप से जीवों की संख्या कम होती जाती है। जब क्रमिक स्तरों के जीवों की संख्या को कागज पर अंकित किया जाता है तो यह एक पिरामिड का आकार ग्रहण कर लेता है। इसलिए इसे खाद्य पिरामिड अथवा संख्याओं का पिरामिड कहा जाता है। (देखिए चित्र 14.4)

किसी भी पोषण स्तर पर जीवों की संख्या उसके निचले स्तर पर भोजन की उपलब्धता पर निर्भर करती है। निचले स्तर पर भोजन की उपलब्धताओं में वृद्धि के परिणामस्वरूप उससे ऊंचे पोषण स्तर पर जीवों की संख्या और विविधता में वृद्धि होती है। अतः प्रकृति के महत्वपूर्ण संतुलन को बनाए रखने के लिए भोजन की उपलब्धता मुख्य कारक हैं। यह संतुलन कुछ सीमाओं के अंदर गतिशील और घटता–बढ़ता रहता है। इसलिए इस संतुलन को नियंत्रित करने के लिए प्रत्येक पारितंत्र का अपना एक रचनातंत्र होता है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि एक पारितंत्र में कुछ अंतर्निहित प्रक्रम होते है, जिनसे पोषक अथवा पदार्थ हस्तांतरित होते हैं। कभी किसी एक दिशा में तो कभी एक चक्र में।

आइए इनमें से कुछ चक्रों की चर्चा करें–

(स) प्राकृतिक/जैव-भूरसायन चक्र

जैव भूरासायनिक चक्र (जैविक, भूगर्भीय तथा रासायनिक अंतः क्रियाएँ) और कुछ नहीं वरन् केवल घुलनशील अजैविक पदार्थों (पोषकों) का संचलन और परिचालन है। ये घुलनशील अजैविक पदार्थ या पोषक मृदा और विविध जैविक घटकों की जैविक प्रावस्था द्वारा अजैविक तत्वों की वायुमंडलीय प्रावस्था से व्युत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार से अजैविक तत्वों जैसे मृदा और वायुमंडल के पक्ष में जैविक पदार्थों के परिचालन और संचलन की वापिसी होती है। अतः ये दोनों प्रणालियां एक दूसरे की पूरक हैं और चक्र को पूरा करती हैं। जैव–भूरासायनिक चक्रों का अध्ययन दो आधारों पर किया जा सकता है, उदाहरण के लिए (i) सभी तत्वों का सामूहिक चक्रण अथवा (ii) व्यक्तिगत तत्वों का चक्रण जैसे जल चक्र, कार्बन चक्र, नाइट्रोजन चक्र, फॉस्फोरस चक्र, आक्सीजन चक्र, सल्फर चक्र आदि। इन चक्रों के अतिरिक्त अवसाद चक्र और खनिज चक्र को भी विस्तृत जैव भूरसायन चक्र में सम्मिलित किया जाता है। ये प्राकृतिक अथवा जैव भूरासायनिक चक्र बड़े संतुलित ढंग से कार्य करता है जिससे जैवमंडल में स्थिरता आती है और पृथ्वी पर जीवन प्रक्रिया बनी रहती है। अगर हम इसमें बाधा पहुंचाते हैं तो इसके बहुत से नकारात्मक परिणाम होंगे जो अंततः जैवमंडल को प्रभावित करेंगे। आइए इनमें से कुछ चक्रों की संक्षेप में चर्चा करें। (इन चक्रों की इस पुस्तक के नवें अध्याय में पहले ही चर्चा की जा चुकी है। परन्तु यहाँ हमारी चर्चा जैवमंडल अथवा पर्यावरण से संबंधित है।)

1. जल चक्र

जल का यह चक्र वायु, स्थल, समुद्र, जीवित पौधों और प्राणियों के मध्य आदान–प्रदान में मदद करता है। जल चक्र सौर ऊर्जा से चलता है। महासागरों से भारी मात्रा में जल का वाष्पीकरण, बादलों का निर्माण और वर्षा हमें स्वच्छ जल की आपूर्ति एवं भंडार प्रदान करती है।

शून्य से कम तापमान पर वर्षा की बूंदें हिम रूप में बदल जाती है और तेज वायु चलने पर ये ओले का रूप धारण कर लेती हैं। जल का वर्षा, हिम तथा ओलों

टिप्पणी

के रूप में स्थल और जल खंडों पर वर्षण होता है। धरातल पर वर्षा जल मृदा में रिस जाता है और वहां धरातलीय जल के रूप में भरा रहता है। प्राकृतिक जल स्तर अथवा जल स्तर धरातल के नीचे स्थित होता है। जल स्तर मूलाधार मृत्तिका और शैल स्तर द्वारा समर्थित होता है। धरातलीय जल स्थिर नहीं रहता है, बल्कि विभिन्न दिशाओं में गतिशील रहता है। कोशिका कार्य द्वारा यह ऊपर आता है और धरातलीय मृदा में पहुँचता है जहाँ इसे पौधों की जड़ों द्वारा प्राप्त कर लिया जाता है।

2. नाइट्रोजन चक्र

नाइट्रोजन और इसके यौगिक जैवमंडल में जीवन की प्रक्रिया के लिए आवश्यक है। नाइट्रोजन का लगातार आदान–प्रदान होता रहता है। अपनी चयापचयी प्रक्रिया में पौधों और पशुओं द्वारा उत्पन्न प्रोटीन नाइट्रोजन के जैविक यौगिक है। मृदा में नाइट्रोजनी जैविक अवशेष का अधिकांश भार मृत एवं अपक्षयित पौधों और पशुओं के मलमूत्र से उत्पन्न होता है। मृदा से इन जैविक अवशेषों को सूक्ष्म जीवों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। ये जीव **डीनाइट्रीकरण** प्रक्रिया द्वारा मृदा की नाइट्रेट को नाइट्रोजन में तोड़ देते हैं; जबकि अन्य जीव नाइट्रोजन को घुलनशील नाइट्रोजन यौगिकों में बदल देते हैं।

3. कार्बन चक्र

कार्बन चक्र एक अत्यंत महत्वपूर्ण रासायनिक चक्र है। वायुमंडल में कार्बन का एक छोटा सा भंडार है। जलमंडल इसका प्रमुख भंडार है जहाँ वायुमंडल से लगभग पचास गुणा अधिक मात्रा में कार्बन है। इसका समुद्र की तली पर बाइकार्बोनेट खनिज के रूप में भंडार है। यह वायुमंडल कार्बन डाइआक्साइड के स्तर को नियंत्रित करता है। यह चक्र कार्बन डाइआक्साइड के रूप में वायुमंडल जैवमंडल और महासागरों के मध्य क्रियाशील रहता है।

14.4 पारितंत्रों के प्रकार

विभिन्न आधारों पर पारितंत्र को विविध प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है। सबसे अधिक प्रयोग किया जाने वाला और आसान वर्गीकरण का आधार आवास है। इस वर्गीकरण का मत यह है कि प्रत्येक आवास एक विशेष भौतिक पर्यावरणीय दशा को दर्शाता है। ये परिस्थितियाँ या दशाएं जैविक समूहों की प्रकृति और विशेषताओं को निर्धारित करती हैं और इसीलिए जैविक समूहों में स्थानीय विविधता पाई जाती है। इस आधार पर पारितंत्र को मोटे तौर पर दो भागों में बांटा जा सकता है – (i) स्थलीय पारितंत्र और (ii) जलीय पारितंत्र। इन पारितंत्रों को आगे बहुत से उपविभागों में विभक्त किया जाता है। हम इन दो पारितंत्रों और उनके उपविभागों की संक्षेप में चर्चा करेंगे।

(i) स्थलीय पारितंत्र

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है यह सम्पूर्ण पृथ्वी के 29 प्रतिशत भाग को घेरे हुए है। स्थलीय पारितंत्र मानव के लिए भोजन और कच्चे माल का प्रमुख स्रोत हैं। यहाँ पर पौधों और पशुओं के समूहों में जलीय पारितंत्र से अधिक विविधता है। स्थलीय जीवों में जलीय पारितंत्र की अपेक्षा सहिष्णुता की सीमा अधिक होती है लेकिन कुछ मामलों में जल स्थलीय पारितंत्र को सीमित करने का कारक बन जाता है। जहाँ तक उत्पादकता का प्रश्न है स्थानीय पारितंत्र जलीय पारितंत्र से अधिक उत्पादक है।

ऊपर दी गई चर्चा स्थलीय और जलीय पारितंत्रों के बीच तुलना है। लेकिन स्थलीय पारितंत्रों की भौतिक अवस्थाओं और जैविक समूहों पर उसकी प्रतिक्रिया में और भी विभिन्नता है। इसलिए स्थलीय पारितंत्रों को विभिन्न उपविभागों में बांटा जा सकता है। इसके प्रमुख उपविभाग हैं – (i) उच्चभूमि अथवा पर्वतीय पारितंत्र (ii) निम्नभूमि पारितंत्र (iii) मरूस्थलीय पारितंत्र। विशिष्ट प्रयोजन और उद्देश्य के आधार पर इन्हें फिर और उपविभागों में बांटा जा सकता है। जीवन के अधिकतम रूप निम्न भूमियों में पाए जाते हैं और ये ऊँचाई बढ़ने के साथ–साथ घटते जाते हैं, क्योंकि वहाँ आक्सीजन और वायुमंडलीय दाब घट जाता है।

(ii) जलीय पारितंत्र

यह पारितंत्र पृथ्वी के धरातल पर विभिन्न रूपों में उपस्थित 71 प्रतिशत जल का उल्लेख करता है। स्थलीय पारितंत्र की तरह जलीय पारितंत्र को भी विभिन्न उपविभागों में बांटा जा सकता है। परन्तु इस पारितंत्र के प्रमुख उप विभाग हैं – जलीय, ज्वारनदमुखीय और समुद्री पारितंत्र। इन पारितंत्रों को आगे और भी छोटे–छोटे उप विभागों में बांटा जा सकता है। अगर हम इन्हें विस्तार की दृष्टि से अथवा मापक की दृष्टि से देखें तो ये विस्तृत खुले समुद्र से लेकर छोटे तालाब तक में फैले हैं। जलीय पारितंत्र के विभिन्न प्रकारों के अंदर विभिन्नता मुख्य रूप से अजैविक कारकों से संबंधित है। लेकिन इन पारितंत्रों में रहने वाले जैविक समूहों में भी विभिन्नता मिलती है।

जैसे कि पहले भी चर्चा की जा चुकी है जलीय पारितंत्र की सीमा रेखा बनाने वाला कारक जल की वह गहराई है जहां तक प्रकाश प्रवेश कर सकता है। पोषकों की उपलब्धता और विघटित आक्सीजन का संकेंद्रण अन्य कारक हैं। अगर हम इन सब कारकों को ध्यान में रखें तो यह पता चलता है कि ज्वारनदमुखीय पारितंत्र जलीय पारितंत्र में सबसे अधिक उत्पादक हैं। समुद्री पारितंत्र में उथले महाद्वीपीय मग्न तट खुले समुद्र की अपेक्षा अधिक उत्पादक हैं। हालांकि खुले समुद्र क्षेत्रफल के अनुसार सबसे अधिक विस्तृत हैं। ये स्थलीय पारितंत्र में मरूस्थलों की भांति सबसे कम उत्पादक हैं।

एक अन्य पहलू जो जलीय पारितंत्र में जीवन की विविधता का निर्धारण करता है, वह है जीवों की अनुकूलनशीलता। कुछ जीव अनन्य रूप से जल में रहते हैं जैसे मछली, जबकि कुछ जीवों की प्रकृति जलथलीय है। कुछ महत्वपूर्ण जलथलीय जीव हैं मेंढक, मगरमच्छ, दरियाई घोड़ा और जलीय पक्षियों की विभिन्न प्रजातियाँ। आगे, जल में भी

कुछ जीव या तो केवल मीठे जल में रहते हैं या खारे जल में और कुछ जीव मीठे और खारे जल दोनों में रहते हैं। हिल्सा मछली अंतिम प्रकार का उदाहरण हैं। एचीनोडमर्स और कोलेन्ट्रेट्स केवल खारे पानी में रहते हैं। जबकि बहुत से प्रकार की मछलियाँ जैसे रेहू, कतला आदि केवल मीठे जल में पाई जाती है।

पाठगत प्रश्न 14.2

1. रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरिए –

   (अ) _____ वे हैं जो अपने भोजन का स्वयं निर्माण करते हैं।

   (ब) पौधे खाने वाले जीवों को _____ के रूप में जाना जाता है।

   (स) भोजन की आदत के आधार पर मनुष्य _____ श्रेणी में आते हैं।

   (द) सैंकड़ों अंतःसंबंधित और परस्परव्यापी खाद्य श्रृंखलाएं एक अत्यंत जटिल प्रतिरूप बनाती हैं जिन्हें _____कहते हैं।

   (य) _____ को सबसे बड़ा पारितंत्र माना जाता है।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर अत्यंत संक्षेप में कीजिए –

   (अ) पारिस्थितिकी को परिभाषित कीजिए।

   _____

   (ब) खाद्य श्रृंखला क्या है ?

   _____

   (स) खाद्य पिरामिड क्या है ?

   _____

   (द) जैव भूरसायन चक्र क्या है ?

   _____

14.5 भूमंडलीय जलवायविक परितर्वन

हमने जैव-भूरासायनिक चक्र के अंतर्गत पढ़ा है कि पृथ्वी का वायुमंडल और जलमंडल पिछले एक अरब वर्षों और उससे भी अधिक समय से लगभग वैसे ही संतुलित रासायनिक घटकों से बना रहा है, जैसे में हम आज रहते हैं। पृथ्वी के पास वैश्विक जलवायु को स्थिर और नियंत्रित करने के लिए एक विशेष रचनातंत्र है। ये रचनातंत्र निम्न प्रकार हैं :–

(i) पौधे और पशु वायुमंडल में कार्बन डाइ–ऑक्साइड के स्तर को संतुलित रखते हैं जो वैश्विक ताप स्थायित्व का कार्य करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि ये तत्व तापमान के संतुलन को अनुकूलतम सीमाओं में नियंत्रित किए रहते हैं।

(ii) वैश्विक जलवायु को नियंत्रित करने में जलखंड महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

हाल के वर्षों में तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या के उपभोग के लिए पृथ्वी के संसाधनों का तेजी से दोहन, हमारी अपव्ययी जीवन शैली आदि ने वायुमंडल में कार्बन स्तर को अत्याधिक बढ़ा दिया है। इसने जलवायविक परिवर्तन की प्रक्रिया को गति प्रदान कर दी है।

आइए जलवायविक परिवर्तन को प्रभावित करने वाली कुछ प्रक्रियाओं की चर्चा करें :–

(अ) हरित गृह प्रभाव और भूमंडलीय तापन

भूमंडलीय तापन का अर्थ है वायुमंडलीय तापमान का धीरे–धीरे बढ़ना जिसके परिणामस्वरूप मुख्य रूप से मानवीय कार्यकलापों द्वारा विकिरण संतुलन में परिवर्तन होना। इससे विभिन्न स्तरों जैसे स्थानीय, क्षेत्रीय तथा वैश्विक पर जलवायु में परिवर्तन आ जाता है। हाल ही में लगाए गए अनुमानों के अनुसार यह पाया गया है कि पिछले 100 वर्षों में धरातलीय वायु का तापमान लगभग 0.5^0 सें. से 0.7^0 सें. बढ़ गया है। क्या आप जानते हैं कि ऐसा क्यों हो रहा है ? यह हरित गृह प्रभाव के कारण हो रहा है। भूमंडलीय तापन को अच्छी तरह से समझने के लिए, हमें हरित गृह की कार्य पद्धति को समझ लेना चाहिए।

हरित गृह का कार्य

ठंडे देशों में हरित गृह पौधों को उगाने के लिए बनाया जाता है। यहाँ पर कुल ऊष्मा, विशेषकर सर्दियों में, पौधों को उगाने के लिए पर्याप्त नहीं होती। हरित गृह की पारदर्शी दीवारें और छत ऐसी होती है कि ये सूर्य की रोशनी को अंदर तो आने देती हैं, परन्तु दीर्घ तरंगी विकिरण को बाहर जाने से रोकती है। अतः सूर्य की रोशनी हरित गृह की मृदा और इमारत द्वारा अवशोषित कर ली जाती है। इसे फिर उस ऊष्मा के रूप में उत्सर्जित कर दिया जाता है जो शीशे में से होकर पार नहीं जा सकती। हरित गृह में ऊर्जा की मात्रा तब तक बढ़ती जाती है जब तक इसका तापमान इतना अधिक नहीं हो जाता कि शीशे से होकर इतनी ऊष्मा बाहर चली जाए जितनी ऊर्जा यह सूर्य की रोशनी के रूप में प्राप्त करता है। तदनंतर दीवारें और छत अवशोषित विकिरण को कक्ष में उत्सर्जित करती हैं। अतः दिन के दौरान अवरक्त विकिरण हरित गृह में प्रवेश करता है और वायुमंडल तथा उस स्थान को गर्म कर देता है जिस पर हरित गृह खड़ा हैं। शीशे पर विकिरण को रोकने के लिए एक पारदर्शन फिल्म चढ़ाई जाती है जिससे विकिरण का गर्म करने का प्रभाव अधिकतम हो जाता है।

इसलिए हमारी पृथ्वी एक हरित गृह बन गई है। कुछ गैसे ऐसी होती हैं जो हरित कक्ष के शीशों के फलकों का कार्य करती हैं। जिनसे सूर्य की किरणें आ तो सकती हैं परन्तु

टिप्पणी

उनके बाह्य अंतरिक्ष में बाहर निकलने को रोकती हैं और इससे वायुमंडल गर्म होता है। यह वनों के विनाश और औद्योगीकरण के कारण हो रहा है। ये गैंसे हैं – कार्बन–डाइ–आक्साइड (CO_2), मीथेन (CH_4) नाइट्रस ऑक्साइड (NO_X) और क्लोरो फ्लोरो कार्बन (CFC)। इन्हीं को हरित गृह गैसों के रूप में जाना जाता है। इन चार गैसों में से कार्बन डाइ आक्साइड लगभग 55%, क्लोरो फ्लोरो कार्बन लगभग 24%, मीथेन लगभग 15% और नाइट्रस आक्साइड लगभग 6% का योगदान वायुमंडल को गर्म करने में देती है।

क्या आप इन गैसों के स्रोत जानते हैं ? जीवाश्म ईंधन और काष्ठ ईंधन के जलाने से, मोटर गाड़ियों की लंबी कतारें तथा बहुत से कारखानों से कार्बन–डाइ–ऑक्साइड उत्सर्जित होती है। धान उगाना, पशुधन, कचरे का ढेर और कोयला खदान मीथेन गैस के प्रमुख स्रोत हैं। रेफ्रीजिरेटर और वातानुकूलन मशीनों में शीतलक के रूप में वायुविलय का प्रयोग क्लोरो फ्लोरो कार्बन गैस को वायुमडल में छोड़ता है। नाइट्रस ऑक्साइड मुख्य रूप से रासायनिक कारखानों, वननाशन और कुछ कृषि पद्धतियों से उत्सर्जित होती है।

यहाँ से शीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में हरित गृहों के बनाने से पौधों को सुरक्षा मिलती है और पारिस्थितिक सन्तुलन बना रहता है। जबकि वायुमण्डल में हरित गृह गैसों के संकेन्द्रण से पृथ्वी का जैविक तंत्र अस्त–व्यस्त हो जाता है। श्श्श

हरित गृह प्रभाव के परिणाम

1. यह अनुमान लगाया गया है कि अगर कार्बन डाइ–ऑक्साइड के स्तर के बढ़ने की वर्तमान दर यही रही तो वायुमंडलीय तापमान 21वीं शताब्दी के अंत तक 2^0 से 3^0 से. तक बढ़ जाएगा। इसके परिणामस्वरूप बहुत सी हिमानियाँ पीछे खिसक जाएगी, ध्रुवीय क्षेत्रों में बर्फीली चोटियाँ पिघल जाएँगी और बहुत बड़े पैमाने पर विश्व के अन्य भागों में बर्फ के भंडार गायब हो जाएंगे। एक अनुमान के अनुसार अगर पृथ्वी की सारी बर्फ पिघल जाए तो सभी महासागरों की सतह पर और निचले तटीय क्षेत्रों में लगभग 60 मीटर पानी बढ़ जाएगा। भूमंडलीय तापन द्वारा समुद्री जल स्तर में केवल 50 से 100 सेंटीमीटर की वृद्धि विश्व के निचले क्षेत्रों जैसे बांग्लादेश, पश्चिम बंगाल और सघन बसे हुए तटीय शहरों जैसे शंघाई और सान फ्रांसिस्को को जलमग्न कर देगी।

2. कार्बन डाइ–आक्साइड के बढ़े हुए संकेंद्रण और उष्णकटिबंधीय महासागरों के अधिक गर्म होने के कारण अधिक संख्या में चक्रवात और हरीकेन आएंगे। पर्वतों पर बर्फ के जल्दी पिघलने से मानसून के समय अधिक बाढ़ें आएंगी। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के अनुसार बढ़ता हुआ समुद्री जल स्तर लगभग तीन दशकों में तटीय शहरों जैसे मुंबई, बोस्टन, चिट्टगांव और मनीला को जलमग्न कर देगा।

3. भूमंडलीय तापमान में जरा सी भी वृद्धि खाद्यान्न उत्पादन पर प्रतिकूल असर डालेगी। अतः उत्तरी गोलार्द्ध में गेहूँ उत्पादन क्षेत्र शीतोष्ण कटिबंध के उत्तर में खिसक जाएंगे।

4. समुद्र के ऊपरी जलस्तर के गर्म होने से महासागरों की जैविक उत्पादकता भी कम हो जाएगी। उर्ध्वाधर चक्रण द्वारा समुद्र के निचले भागों से समुद्र की सतह की ओर पोषकों का परिवहन भी कम हो जाएगा।

हरित गृह प्रभाव नियंत्रण एवं उपचारी उपाय

हरित गृह प्रभाव के लगातार बढ़ते जाने को निम्नलिखित उपायों द्वारा कम किया जा सकता है –

1. कार्बन–डाइ–आक्साइड के संकेंद्रण को अत्यंत विकसित और औद्योगिक देशों जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान तथा विकासशील देशों जैसे चीन और भारत द्वारा जीवाश्म ईंधनों के उपयोग में जोरदार कटौती करके कम किया जा सकता है।
2. वैकल्पिक सफल ईंधनों का विकास करने के लिए वैज्ञानिक उपाय किए जाने चाहिए। मीथेन, पेट्रोलियम का विकल्प हो सकती है। जलविद्युत ऊर्जा का विकास एक अच्छा विकल्प है।
3. कारखानों और मोटरगाड़ियों से खतरनाक CO_2, CFC और NO_2 के उत्सर्जन पर रोक लगनी चाहिए।
4. महानगरों में मोटर गाड़ियों को चलाने के दिनों को सीमित करना भी एक अन्य विकल्प हो सकता है। सिंगापुर और मैक्सिको शहर इस प्रथा को अपना रहे हैं।
5. उष्ण कटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय देशों में जीवाश्म ईंधनों के विकल्प के रूप में सौर ऊर्जा का विकास किया जा सकता है।
6. बायोगैस संयंत्र लगाने चाहिए जो कि घरेलू उपयोग के लिए एक पारंपरिक ऊर्जा का साधन है।
7. वनरोपण में वृद्धि करके CO_2 स्तर को निश्चित रूप से कम किया जा सकता हैं, जिससे अंततः हरित गृह प्रभाव कम होगा।

(ब) ओजोन परत अवक्षय

ओजोन परत अवक्षय की समस्या पर चर्चा करने से पहले हमको ओजोन और ओजोन परत के विषय में जान लेना चाहिए। ओजोन ऑक्सीजन का एक प्रकार है, जिसमें अधिकाधिक प्रचलित दो अणुओं (O_2) की अपेक्षा तीन अणु (O_3) हैं। यह आक्सीजन अणुओं पर सौर ऊर्जा के प्रभाव द्वारा वायुमंडल के ऊपरी भाग में बनती है। जहाँ तक इसकी स्थिति का संबंध है, यह एक पतली परत के रूप में 15 से 48 कि.मी. के बीच समतापमंडल में पाई जाती है। कुल वायुमंडलीय ओजोन का लगभग 90% भाग इसी परत में पाया जाता है। वायुमंडल के कुल आयतन के 0.002 प्रतिशत से भी कम भाग पर ओजोन पाई जाती है। परन्तु जहाँ तक पृथ्वी पर जीवन का प्रश्न है, इसका कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह सूर्य के पराबैंगनी विकिरण को अवशोषित करती है। पराबैंगनी विकिरण कई तरह से जीवों का विनाशक है। यह त्वचा कैंसर तथा मोतियाबिंद पैदा कर

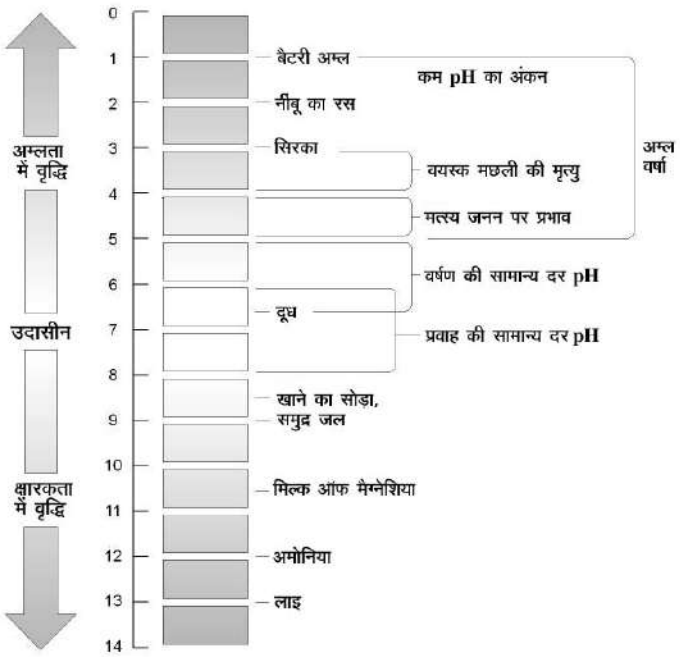

चित्र 14.5 pH का मापक

देती है। महासागरीय सतह पर सूक्ष्म जीवों को मारकर यह जलीय खाद्य श्रृंखला को बाधित कर देता है। इसके बहुत से अन्य नकारात्मक प्रभाव होते हैं जो अभी तक अज्ञात हैं।

ओजोन अवक्षय हाल ही में किए गए कुछ मानवीय क्रियाकलापों के कारण हो रहा है। कुछ रसायन समतापमंडल में पहुंचकर ओजोन के संकेन्द्रण को कम कर रहे हैं। अवक्षय मुख्य रूप से क्लोरो फ्लोरो कार्बन (CFC), हेलन्स, मिथाइल क्लोरोफोर्म और कार्बन टेट्रा क्लोराइड्स के कारण हो रहा है। ये रासायनिक पदार्थ मुख्य रूप से या तो क्लोरीन हैं या ब्रोमाइन, जो समतापमंडल तक पहुँच सकते हैं ओर ओजोन को उत्प्रेरणीय तरह से विखंडित करके आक्सीजन में बदल देते हैं। क्लोरो फ्लोरो कार्बन गंधरहित, अज्वलनशील और विषरहित है। शुरू में वैज्ञानिकों ने सोचा कि संभवतः सी. एफ.सी. का पर्यावरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसी कारणवश इसका प्रयोग प्रशीतन, वातानुकूलन, फोम और प्लास्टिक के निर्माण करने में बड़े पैमाने पर किया जाने लगा।

ओजोन परत केवल पतली ही नहीं हो रही है; बल्कि कुछ स्थानों पर यह अस्थाई रूप से गायब हो गई है। 1979 से इस परत में अंटार्कटिका के ऊपर एक छिद्र विकसित हो गया है और प्रत्येक वर्ष यह अधिक से अधिक समय तक बना रहता है। सन् 1988 में पहली बार आर्कटिक के ऊपर की ओजोन परत में एक छिद्र पाया गया तथा यह भी तब से प्रत्येक वर्ष अधिक से अधिक समय तक बना रहता है।

क्या हम इस घोर विपत्ति को रोक सकते हैं? इसके लिए व्यक्तिगत और सरकारी स्तर पर हमें कुछ कार्य करने होंगे। पिछले दो दशकों से वैश्विक स्तर पर कुछ कार्यों की शुरूआत की गई है। इनमें 1987 का मोन्ट्रीयल प्रोटोकाल और 1992 की लंदन कांफ्रेंस महत्वपूर्ण है। इन दोनों ही गोष्ठियों में यह निर्णय लिया गया कि सन् 2000 तक विकसित देश सी.एफ.सी. का उत्पादन बिल्कुल बंद कर देंगे और विकासशील देश इसका उत्पादन सन् 2010 तक बंद कर देंगे। अगर इस निर्णय के मोन्ट्रियल प्रोटोकाल पर हस्ताक्षर करने वाले भारत सहित सभी 150 देशों द्वारा ईमानदारी से पालन किया जाए और इसे कठोरता से लागू किया जाए, तब भी क्लोरो फ्लोरो कार्बन और क्लोरीन का प्रभाव अगले 100 वर्षों तक बना रहेगा। इसलिए पूरे विश्व में रेफ्रीजिरेटर और वातानुकूलन के लिए प्रशीतक के रूप में प्रयोग किए जाने वाली सी.एफ.सी के विकल्प ढूंढने में वैज्ञानिक शोध कार्यों में लगे हुए हैं।

(स) अम्लीय वर्षा

'अम्लीय वर्षा' शब्द का अर्थ है वायुमंडल से तर या सूखे अम्लीय पदार्थों का पृथ्वी के धरातल पर निक्षेप। हालांकि यह साफतौर पर वर्षा से संबंधित है, परन्तु प्रदूषण–कण पृथ्वी के धरातल पर या तो हिम, सहिम वृष्टि और ओलों के रूप में गिर सकते हैं अथवा कोहरा या गैसों के सूखे रूप में पृथ्वी के धरातल पर पहुंचते हैं। अम्लीय वर्षा के लिए उत्तरदायी मुख्य कारक सलफ्यूरिक अम्ल और नाइट्रिक अम्ल को माना जाता है। परन्तु इसके लिए मुख्य रूप से मनुष्य दोषी हैं। कारखानों द्वारा उत्सर्जित धुआं सल्फर डाइ–आक्साइड का मुख्य स्रोत है, जबकि मोटर गाड़ियों से निकला धुआ नाइट्रोजन आक्साइड का मुख्य स्रोत है। ये उत्सर्जित गैसें वायुमंडलीय आद्रर्ता के साथ मिलकर सलफ्यूरिक अम्ल और नाइट्रिक अम्ल बनाती हैं, जो देर सवेर विभिन्न रूपों में पृथ्वी के धरातल पर गिर जाता है।

अम्लता को एक pH मापक पर मापा जाता है जो हाइड्रोजन आयनों के सापेक्षिक संकेन्द्रण पर आधारित है। यह मापक 0 से 14 क्रम में बंटा होता है। इसका निचला भाग अत्याधिक अम्लीयता को दर्शाता है और ऊपर का भाग अत्याधिक क्षारीयता को दर्शाता है। (देखिए चित्र 14.5) जैसाकि पहले से बताया गया है अम्लीय वर्षा वर्षण के बहुत से प्रकारों से संबंधित होती है। अगर हम स्वच्छ और धूल रहित वायु में वर्षा को देखें तो इसका मान 5.6 से 6.0 के बीच होगा जो थोड़ा सा अम्लीय होगा। जब कभी भी और जहाँ कहीं भी pH मान 5.6 से नीचे होगा तो इससे होने वाले नुकसान देखने लायक होगा।

अम्लीय वर्षण के मानवीय स्वास्थ्य और कृषि उत्पादन पर पड़ने वाले दूरगामी प्रभावों का अभी अच्छी तरह से आकलन नहीं किया गया है। परन्तु इससे सबसे अधिक सुस्पष्ट नुकसान जलीय पारितंत्र को हो रहा है। एक नदी या झील का पारितंत्र इससे सबसे अधिक प्रभावित होता है जब इसका pH मान 5 से नीचे चला जाए। ऐसे तंत्रों में कुल जीवसमूह दो से दस गुणा कम हो जाता है, क्योंकि बहुत कम जीव अम्ल को सहन कर सकते हैं। जैव विविधता भी कम हो जाती है। अम्लीयता का सबसे अधिक असर मछलियों पर होता है। अम्लीय परिस्थितियां मछलियों की प्रजनन क्षमता को कम करती

टिप्पणी

है जिसके परिणामस्वरूप मछलियों की संख्या धीरे–धीरे कम हो जाती है। यह यूरोप और उत्तरी अमेरिका के बहुत से हिस्सों में प्रमाणित हो चुका हैं। नार्वे के 33,000 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में हजारों झीलों और सरिताओं में मछलियां समाप्त हो गई हैं। पिछली चौथाई शताब्दी में पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा की सैकड़ों झीलें जैविक मरूस्थल बन गई हैं। अम्लीय वर्षा का वनों पर सही–सही प्रभाव अभी तक अच्छी तरह नहीं समझा जा सका है। परंतु कुछ प्रमाण यह दर्शाते हैं कि ये वनों के मुरझाने का प्रमुख कारण हैं, यह प्रत्येक महाद्वीप में हो रहा है। वनों का मुरझाना (हाइबैक) एक जर्मन शब्द है जिसका अर्थ है वनों का मृत हो जाना या कम हो जाना। यहाँ तक कि भवन और स्मारक भी नष्ट हो रहे हैं; क्योंकि अम्ल का इन पर जमाव अपरदन क्रिया को बढ़ा देता है।

अम्लीय वर्षा एक खतरनाक वैश्विक समस्या है और इसका असर प्रदूषण पैदा होने के स्थान से बहुत दूर तक फैल सकता है। इसीलिए स्केंण्डीनेविया के देशों ने यूरोप में ब्रिटिश प्रदूषण के खिलाफ आपत्ति की है और कनाडा ने उत्तर अमेरिका में संयुक्त राज्य अमेरिका को दोषी माना है।

पाठगत प्रश्न 14.3

1. निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दीजिए–

   (अ) कोई दो कारक बताइए जो जैवमंडल की अपूरणीय क्षति के लिए उत्तरदायी हैं–

   (i) _____ (ii) _____

   (ब) किन्हीं दो प्रमुख हरित कक्ष गैसों के नाम लिखिए–

   (i) _____ (ii) _____

   (स) कार्बन डाइ–आक्साइड गैस का उत्पादन करने वाले विश्व में दो अग्रणी देश कौन से हैं?

   (i) _____ (ii) _____

   (द) वायुमंडल में साधारणतया ओजोन परत कहाँ पाई जाती है?

   (i) _____ (ii) _____

   (य) ओजोन परत को समाप्त करने के लिए उत्तरदायी किन्हीं दो प्रमुख रासायनिक पदार्थों का नाम लिखिए।

   (i) _____ (ii) _____

   (द) अम्लीय वर्षा के लिए उत्तरदायी दो मुख्य कारक कौन से हैं?

   (i) _____ (ii) _____

(ल) अम्लीय वर्षा के कोई दो मुख्य प्रभाव लिखिए।

(i) _____ (ii) _____

14.6 सतत् पोषणीय विकास

आज विश्व ने बहुत उन्नति की है। मानव ने तकनीकी उन्नति और ऊर्जा संसाधनों के उपयोग की सहायता से बहुत से आविष्कार और खोज की है, जिससे उसका जीवन अधिकाधिक आरामदायक हो गया है। आज हम तकनीक, खनिज पदार्थों और ऊर्जा संसाधनों के बगैर जीवन के विषय में सोच भी नहीं सकते। यह बड़े पैमाने पर लगभग हर क्षेत्र में प्रवेश कर गया है चाहे वह कृषि, उद्योग, यातायात, संचार और घरेलू हो। क्या आज हमने कभी यह सोचा है कि यह पृथ्वी पर जीवन को कैसे प्रभावित करता है? आज की स्थिति में हमारी पारिस्थितिकी भी खतरे में है। अगर हम इसी तरह से करते रहे तो अगले 100 वर्षों में अधिकतर खनिज और संसाधन समाप्त हो जाएँगे। साथ ही इसने पारिस्थितिक मंडल के चारों घटकों को भी खतरे में डाल दिया है। ये हैं जलवायविक तंत्र, जल चक्र, पोषक चक्र और जैव विविधता। दिल्ली में यमुना जल का उदाहरण लीजिए। हमने इसके जल को इस सीमा तक प्रदूषित कर दिया है कि इस जल में दिल्ली में बहुत कम जलीय जीवन पाये जाते हैं। इस जल को साफ करने बाद भी इसका उपयोग नहीं किया जा सकता।

इसने पौधों और उनके उत्पादों को भी प्रभावित किया है। तब यह प्रश्न उठता है कि ऐसे जल का क्या फायदा जिसे उपयोग नहीं किया जा सके। हालांकि यह नवीनीकरण योग्य है। यही हाल वायु, मृदा आदि का है। मानवीय लापरवाही और स्वार्थ के कारण ये प्राकृतिक संसाधन इस सीमा तक विकृत हो गए हैं कि इनका नवीनीकरण बहुत कठिन है।

यह विकास पर ही प्रश्नचिन्ह लगा देता है। क्या इसका यह अर्थ है कि विश्व समुदाय को आगे विकास पर बिल्कुल पूर्ण विराम लगा देना चाहिए। यह बिल्कुल संभव नहीं है। यह पहेली पूरे विश्व को परेशान किए हुए है। इस महत्वपूर्ण समस्या को हल करने के लिए विवेकपूर्ण प्रयत्न किए गए। संयुक्त राष्ट्र ने नार्वे के तत्कालीन प्रधानमंत्री ग्रो हरलेम ब्रुटलेंड की अध्यक्षता में एक समिति गठित की। इस कमीशन को संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण और विकास आयोग (UNCED) के रूप में जाना जाता है। इसे ब्रुटलेंड कमीशन के नाम से भी जाना जाता है।

आयोग द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट का शीर्षक था ''हमारा साझा भविष्य''। प्रारंभ में विश्व दो समूहो में विभाजित था–विकसित और विकासशील देश और इन्होंने आपस में एक दूसरे पर दोषारोपण करना शुरू कर दिया। विकसित देशों ने विकासशील देशों पर तीव्र

जनसंख्या वृद्धि, गरीबी और प्रदूषण फैलाने वाली आदिम तकनीक के लिए दोष दिया। विकासशील देशों का तर्क था कि विकसित देशों की खर्चीली जीवन शैली ने उपलब्ध संसाधनों पर अत्यधिक दवाब डाल दिया है। लेकिन काफी जोरदार चर्चाओं और तर्कों के बाद यह अनुभव किया गया कि कुछ ऐसे समान आधार होने चाहिए जिनकी भविष्य में रक्षा करने पर विश्व एकमत हो। यह अनुभव किया गया कि पारिस्थितिकी, अर्थशास्त्र और तकनीक में संतुलन होना चाहिए। इसलिए ब्रुटलेंड आयोग ने सत्त पोषणीय विकास को इस प्रकार परिभाषित किया– ''भविष्य की पीढ़ियों की अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता से बिना समझौता किए वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति।''

सतत् पोषणीय विकास के लिए अपनाई जाने वाली कार्यनीति

सतत् पोषणीय विकास को प्राप्त करने के लिए कुछ कार्य नीतियाँ नीचे दी गई हैं–

1. **आर्थिक विकास का पुनरुत्थान** – सतत् पोषणीय विकास द्वारा गरीबी को दूर करना चाहिए। गरीबी से पर्यावरण पर दवाब बढ़ता है, क्योंकि लोगों की जीवन शैली पर्यावरण का अवक्रमण कर देती है। उदाहरण के लिए ईंधन के लिए वनों का काटना अथवा अत्यधिक चराई द्वारा मरुस्थलों का बढ़ना। वे लोग असहाय हैं, क्योंकि उनके पास आजीविका के वैकल्पिक साधन नहीं है। गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले अधिकतर लोग अफ्रीका और एशिया में रहते हैं। इन लोगों को कुछ विकल्प जैसे कार्यकुशलता, प्रशिक्षण, शिक्षा आदि देने के लिए प्रयत्न किए जाने चाहिए ताकि ये अपनी आजीविका कमा सकें और गरीबी से बाहर आ सकें। अन्यथा सतत् पोषणीयता अथवा सतत् पोषणीय विकास का उद्देश्य ही समाप्त हो जाएगा। क्योंकि जब तक गरीबी रहेगी, गरीब लोग अपने जीवनयापन के लिए प्रकृति पर निर्भर बने रहेंगे।

2. **जनसंख्या का सतत् पोषणीय स्तर सुनिश्चित करना** – आज हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती जनसंख्या वृद्धि की अधिकतम दर को हल करना है, विशेषकर अफ्रीका, दक्षिण एशिया और मध्य पूर्व में। जनसंख्या विस्फोट का जीवन की गुणवत्ता, शिक्षा की उपलब्धता, स्वास्थ्य, घर, स्वच्छ पेयजल, स्वच्छता और जीवनयापन के साधनों से सीधा सम्बंध है। तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या को अतिरिक्त सुविधाएँ देने में सरकार पर बहुत बोझ पड़ता है।

3. **मनुष्य की आवश्यक आवश्यकताओं को पूरा करना** – आर्थिक विकास की वृद्धि के पुनरुत्थान के लिए यह पहली शर्त है। यह सर्वविदित है कि जब तक मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी नहीं होंगी, वह विकास प्रक्रिया में हिस्सा नहीं लेगा। मनुष्य की आवश्यक आवश्यकताओं में पर्याप्त भोजन, उचित आवास, स्वच्छ जलापूर्ति और स्वास्थ्य सेवाएँ सम्मिलित हैं। पर्याप्त और गुणवत्तायुक्त भोजन दिया

जाना चाहिए ताकि उन्हें कुपोषण से बचाया जा सके और उनके शरीर के प्रतिरक्षा तंत्र को विकसित किया जाए ताकि बीमारियों से उनका बचाव हो सके।

4. **वृद्धि की गुणवत्ता को बदलना** – विकास के दिग्विन्यास को बदलने की आवश्यकता है। जब हम वृद्धि या विकास कहते हैं तो हमारा अभिप्राय हमेशा आर्थिक विकास अथवा भौतिक विकास से होता है, परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि विकास भौतिकवादी न हो, कम ऊर्जा की खपत हो और समान रूप से वितरित करने योग्य हो। आर्थिक और सामाजिक विकास एक दूसरे को आपस में सुदृढ़ करने योग्य हो। दूसरे शब्दों में, आर्थिक विकास को अच्छे सामाजिक विकास की ओर ध्यान देना चाहिए जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता आदि। साथ ही साथ सामाजिक विकास किसी क्षेत्र, प्रदेश और देश की अर्थव्यवस्था को बढ़ा सकता है।

5. **संसाधनों के आधार को सुरक्षित रखना और बढ़ाना** – इसके लिए नैतिक और आर्थिक तर्क हैं। नैतिक तर्क यह है कि हमें अगली पीढ़ी के लिए पोषण के लिए संसाधनों का संरक्षण करना चाहिए। इसके साथ ही हमें आर्थिक तर्क को भी समझना चाहिए। आर्थिक तर्क यह है कि हम गरीब व्यक्तियों से पर्यावरण को बचाने के लिए गरीब रहने को नहीं कह सकते। दूसरी ओर विकसित देशों में उपभोक्तावाद को चुनौती देने की आवश्यकता है। कहीं न कहीं उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की प्रक्रिया को आम आदमी की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में आई असमानता को दूर करना होगा। सतत् पोषणीयता में चुनौती यह है कि हम विकास को कम किए बगैर और जीविकोपार्जन के लिए संसाधनों की उपलब्धता बनाए रखते हुए कैसे संसाधनों को संरक्षित रख सकते हैं।

6. **तकनीक का पुनः अनुकूलन और जोखिम प्रबन्धन** – ऊपर वर्णित पाँच कार्यनीतियों का आशय तकनीक के दो मुख्य तरह से पुनः अनुकूलन से है। प्रथम, नवप्रवर्तन की क्षमता को विकासशील देशों में अत्यधिक बढ़ाना। द्वितीय, विकसित देशों को तकनीक के हस्तांतरण के प्रयत्न करने चाहिए। इसलिए सभी प्रकार के तकनीकी विकास में पर्यावरणीय कारकों को ध्यान में रखना चाहिए। यह जोखिम प्रबन्धन के प्रश्न से गहराई से जुड़ा हुआ है जिसमें पर्यावरणीय प्रभाव को असरदार तरीके से कम से कम करना है।

7. **निर्णय लेने में पर्यावरण और अर्थव्यवस्था को मिलाना** – अर्थशास्त्र में पारिस्थितिकी को एक दूसरे का विरोधी नहीं मानना चाहिए बल्कि एक दूसरे से संबंधित मानना चाहिए। सतत् पोषणीय विकास के लिए अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में अर्थशास्त्र और पारिस्थितिकी का गठबंधन आवश्यक है।

पाठगत प्रश्न 14.4

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए–

   (अ) संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण और विकास आयोग (UNCED) का गठन किसकी अध्यक्षता में किया गया?

   _____

   (ब) UNCED द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट का शीर्षक क्या था?

   _____

   (स) सतत् पोषणीय विकास की परिभाषा लिखिए।

   _____

   (द) सतत् पोषणीय विकास के लिए अपनाई गई किन्हीं तीन कार्यनीतियों को लिखिए।

   1. _____

   2. _____

   3. _____

आपने क्या सीखा

शायद हमारी पृथ्वी अकेला ऐसा ग्रह है जिस पर जीवन पाया जाता है। जैवमंडल पृथ्वी का वह संकरा भाग है जहाँ पर जीवन सभी रूपों में मिलता है। इस भाग में जीवन इसलिए पाया जाता है; क्योंकि यहाँ पर भूमि, वायु तथा जल का सही मिश्रण उपलब्ध है। जैवमंडल के तीन प्रमुख घटक हैं। ये हैं– अजैविक, जैविक तथा ऊर्जा घटक। अजैविक घटक के उदाहरण हैं– मृदा, वायु, जल आदि जबकि पौधे, पशु और सूक्ष्म जीवाणु जैवमंडल के प्रमुख घटक हैं। तीसरा घटक ऊर्जा है जिसका प्रमुख स्रोत सूर्य है, जिसके बगैर जैवमंडल पर जीवन संभव नहीं है।

पारिस्थितिकी एक तरफ जीवों और उनके भौतिक वातावरण के बीच अंतः सम्बन्ध का अध्ययन करता है तथा दूसरी ओर जीवों के मध्य अंतःसंबंधों का अध्ययन करता है। पारितंत्र को एक ऐसे तंत्र के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें एक दूसरे

पर निर्भर घटक आपस में अंतःसंबंध रखे हुए एक एकीकृत पूर्णता का निर्माण करते हैं। अगर हम पारितंत्र के कार्यकलापों का अध्ययन करें तो पारितंत्र का अध्ययन ऊर्जा प्रवाह, खाद्य श्रृंखला, समय और स्थान के संदर्भ में विविधता प्रारूप, जैव–भूरसायन चक्र, विकास और प्रादुर्भाव, नियंत्रण यांत्रिकी अथवा संत्रातिकी। एक पारितंत्र में घटकों तथा उपघटकों के मध्य अंतःक्रिया होती रहती है जिसमें ऊर्जा का प्रवाह निहित होता है। खाद्य श्रृंखला ऐसा ही एक उदाहरण है जिसमें एक पोषक स्तर से दूसरे पोषक स्तर में ऊर्जा का हस्तान्तरण, क्रमिक तरह से होता है। एक खाद्य श्रृंखला में ऊपर के स्तरों पर क्रमबद्ध तरह से सदस्यों या जीवों की संख्या घटती जाती है। जब विभिन्न स्तरों की संख्या को आलेखित किया जाता है तो यह एक पिरामिड का रूप धारण कर लेता है। इसीलिए इसे खाद्य पिरामिड कहते हैं। प्रत्येक पारितंत्र में एक निश्चित निहित रचनातंत्र होता है जो संतुलन बनाए रखता है। प्राकृतिक/जैव भूरसायन चक्र ऐसा ही चक्र है। भूरसायन चक्र कुछ नहीं है केवल अवसादी और अजैविक तत्वों के विभिन्न वायुमंडलीय रूप हैं। ये इसे विभिन्न जैविक घटकों के कार्बनिक रूपों से प्राप्त होते हैं और अंततः अजैविक स्थिति में पहुँच जाते हैं। जैव भूरसायनचक्र के कुछ उदाहरण हैं– जल चक्र, कार्बन चक्र, नाइट्रोजन चक्र और फास्फोरस चक्र।

पारितंत्र को विभिन्न प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है। सबसे अधिक प्रचलित एवं आसान वर्गीकरण का आधार आवास है। इस आधार पर पारितंत्र को स्थलीय एवं जलीय पारितंत्रों में बाँटा जा सकता है। इन पारितंत्रों को फिर बहुत से उपविभागों में विभाजित किया जाता है। जैवमंडल सबसे बड़ा पारितंत्र है जो करोड़ों वर्षों से शांत रहा है। परन्तु हाल के वर्षों में मनुष्य के हानिकारक या प्रतिकूल कार्यों द्वारा इसको बहुत नुकसान पहुँचा है, इनमें से कुछ हानि अपरिवर्तनीय है। इनमें से कुछ घटनाएँ है – भूमंडलीय तापन, घटती हुई ओजोन परत, अम्लीय वर्षा, समुद्री जलस्तर में परिवर्तन आदि। आज वैश्विक स्तर पर इन समस्याओं के समाधान के लिए प्रयत्न शुरू हो चुके हैं। सार्थक परिणामों में से एक है पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र के आयोग का गठन। आयोग ने अपनी जो रिपोर्ट पेश की उसका शीर्षक था 'हमारा साझा भविष्य'। इस रिपोर्ट में संतत् पोषणीय विकास की अवधारणा को प्रतिपादित किया गया। सतत् पोषणीय विकास की परिभाषा इस प्रकार की गई ''भविष्य की पीढ़ियों की अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की योग्यता से बगैर समझौता किए हुए वर्तमान पीढ़ियों की आवश्यकताओं को पूरा करना।'' सतत् पोषणीय विकास को प्राप्त करने के लिए कुछ कार्यनीतियों में सम्मलित हैं– आर्थिक वृद्धि में संशोधन, आवश्यक मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करना, जनसंख्या के पोषणीय स्तर को

टिप्पणी

सुनिश्चित करना, वृद्धि की गुणवत्ता में सुधार करना, संसाधन आधार का संरक्षण और उसकी वृद्धि, तकनीकों का पुनः अनुकूलन और जोखिम प्रबन्धन और निर्णय लेने की प्रक्रिया में पर्यावरण और अर्थशास्त्र का समागम।

पाठान्त प्रश्न

1. जैवमंडल क्या है? जैवमंडल के विभिन्न घटकों का वर्णन उपयुक्त उदाहरणों के साथ कीजिए।
2. पारितंत्र को परिभाषित कीजिए। पारितंत्र में ऊर्जा प्रवाह की व्याख्या चित्र और उदाहरण सहित कीजिए।
3. जैव भूरसायन चक्र क्या है? जलचक्र की व्याख्या उपयुक्त चित्र द्वारा कीजिए।
4. भूमंडलीय तापन के विविध कारकों एवं परिणामों का वर्णन कीजिए।
5. सतत् पोषणीय विकास की परिभाषा लिखिए। सतत् पोषणीय विकास को प्राप्त करने के लिए उपाय सुझाइए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

14.1

1. (अ) जैवमंडल (ब) जैविक (स) अपघटक
2. (अ) सूर्य (ब) जैविक (स) पौधे, पशु और सूक्ष्म जीवाणु (द) स्थलमंडल, वायुमंडल और जलमंडल

14.2

1. (अ) स्वयंपोषी (ब) शाकाहारी (स) सर्वाहारी (द) खाद्य जाल (य) जैवमंडल
2. (अ) पारिस्थितिकी जीवाणु और उनके भौतिक वातावरण के बीच अंतःसम्बन्ध है।

   (ब) खाद्य श्रृंखला जीवाणुओं द्वारा ऊर्जा का एक पोषणीय स्तर से दूसरे पोषणीय स्तर को क्रमिक हस्तांतरण है।

   (स) जब क्रमिक स्तरों पर संख्याओं को आलेखित किया जाता है तो यह एक पिरामिड का रूप धारण कर लेता है। अतः इसे खाद्य पिरामिड कहते हैं।

(द) जैव भूरसायन चक्र घुलनशील अकार्बनिक पदार्थों की गति और चक्रण के अतिरिक्त कुछ नहीं है। ये विभिन्न जैविक घटकों को कार्बनिक क्रिया द्वारा अकार्बनिक पदार्थों के चक्र से अवसादी और वायुमंडलीय क्रिया द्वारा प्राप्त होते हैं।

14.3

1. (अ) जनसंख्या की तीव्र वृद्धि, उपभोग की चिन्ताजनक दर, अपव्यय युक्त जीवन शैली (कोई दो)

(ब) कार्बन–डाइ–ऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, और क्लोरो फ्लोरो कार्बन (CFC) (कोई दो)

(स) संयुक्त राज्य अमेरिका और रूस

(द) समतापमंडल

(य) एफसी, हेलोन, मिथायल क्लोरोफोर्म, कार्बन टेट्राक्लोराइड

(र) सलफ्यूरिक एसिड और नाइट्रिक एसिड

(ल) अम्लीय वर्षा के प्रभाव–

(i) बायोमास और झीलों एवं सरिताओं में जलीय जीवन को प्रभावित करता है।

(ii) वनों का नष्ट होना या ह्रास होना (iii) भवनों एवं स्मारकों का नष्ट होना

14.4

1. (अ) ग्रो हार्लेम ब्रुटलेंड

(ब) हमारा साझा भविष्य

(स) भविष्य की पीढ़ियों द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने की योग्यता से बिना समझौता किए वर्तमान पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति।

(द) (i) आर्थिक वृद्धि को बढ़ाना (ii) मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति (iii) जनसंख्या के पोषणीय स्तर को सुनिश्चित करना (iv) वृद्धि की गुणवत्ता में परिवर्तन (v) संसाधन आधार का संरक्षण और उसमें वृद्धि (vi) तकनीक का पुनः अनुकूलन और जोखिम प्रबन्धन (vii) निर्णय लेने में सरकार और अर्थशास्त्र का समागम

टिप्पणी

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. कृपया अनुच्छेद 14.1 और 14.2 देखिए।
2. कृपया अनुच्छेद 14.3 पारिस्थितिकी और पारितंत्र और इसका भाग (अ) पारितंत्र में ऊर्जा प्रवाह देखिए।
3. कृपया अनुच्छेद 14.3 (स) प्राकृतिक/जैव भूरासायनिक चक्र देखिए।
4. कृपया अनुच्छेद 14.5 (अ) हरित कक्ष प्रभाव और भूमंडलीय तापन देखिए।
5. कृपया अनुच्छेद 14.6 देखिए।

15

जीवोम

पिछले पाठ में आप जैवमंडल के विभिन्न रूपों में विषय में पढ़ चुके हैं। हमने इस बात की भी चर्चा की थी कि जैवमंडल के विभिन्न घटक कैसे परस्पर क्रिया करते हैं और कैसे एक–दूसरे के पूरक बनते हैं। पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार के जीवन के लिए सूर्य एक मात्र ऊर्जा का स्रोत है। परन्तु पृथ्वी के धरातल पर सौर ऊर्जा का वितरण विभिन्न कारणों से बदल जाता है। इन कारणों के विषय में आप पिछले पाठ में पढ़ चुके हैं। यही कारण है कि गर्म आर्द्र से आर्द्र ठंडे शुष्क क्षेत्रों के जैविक जीवन में बहुत अन्तर मिलता है। अतः विभिन्न भौगोलिक पर्यावरणों में पौधों और पशु जीवन का संकलन हो जाता है। इस संदर्भ में हम विविध जैविक जीवनों और उनकी पारस्परिक क्रियाओं के विषय में अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- परिस्थितिकी, पारितंत्र, ऊर्जा प्रवाह आदि शब्दों के अर्थ याद कर सकेंगे;
- जीवोम की परिभाषा बता सकेंगे;
- विभिन्न प्रकार के जीवोमों को पहचान सकेंगे;
- विश्व मानचित्र पर विभिन्न प्रकार के जीवोमों को प्रदर्शित कर सकेंगे;
- इन जीवोमों की पर्यावरणीय स्थितियों का वर्णन कर सकेंगे;
- पौधों और जानवरों के समुदायों के बीच संबंध स्थापित कर सकेंगे;
- उस क्षेत्र के जैविक जीवन के साथ मानवीय अनुक्रियाओं की विवेचना कर सकेंगें।

15.1 जीवोम का अर्थ

जीवोम शब्द जैविक घर का संक्षिप्त रूप है। जहाँ तक जीवोम की परिभाषा एवं वर्गीकरण का संबंध है, वैज्ञानिक इस संदर्भ में एक मत नहीं हैं। जीवोम को एक वृहत

प्राकृतिक पारितंत्र के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें हम पौधों और जानवरों के समुदायों के कुल संकलन का अध्ययन करते हैं। यहाँ पर सभी जीव-जन्तुओं में न्यूनतम समान विशेषताएँ होती हैं और जीवोमों के सभी क्षेत्रों में प्रायः समान पर्यावरणीय परिस्थितियाँ पाई जाती हैं। हालांकि जीवोम में पौधे और जीव प्राणी समुदाय दोनों सम्मलित होते हैं, परंतु साधारणतया एक जीवोम को वहाँ की प्रमुख वनस्पति के आधार पर जाना जाता है और उसी के आधार पर उसका नामकरण होता है। ये वनस्पतियाँ वहाँ के भूदृश्य को स्पष्टरूप से परिलक्षित करने वाली घटक हैं। बायोमास से हमारा अभिप्राय जीवोम में पाए जाने वाले सभी जीवित-जीवाणुओं – पौधे और प्राणियों के कुल भार से हैं।

जीवोम को प्रभावित करने वाले कारक

बहुत से कारक हैं जो जीवोम के आकार, स्थिति और उसकी विशेषताओं को प्रभावित करते हैं। महत्वपूर्ण कारक निम्न प्रकार हैं–

(i) दिन के प्रकाश और अंधेरे की अवधि। यह मुख्य रूप से प्रकाश संश्लेषण की अवधि के लिए उत्तरदायी हैं।

(ii) औसत तापमान तथा ताप परिसर – चरम दशाओं को जानने के लिए (दैनिक तथा वार्षिक दोनों)।

(iii) वर्धनकाल की अवधि।

(iv) वर्षण जिसके अंतर्गत वर्षण की कुल मात्रा एवं समय और तीव्रता के अनुसार इसमें परिवर्तन सम्मलित हैं।

(v) पवन प्रवाहः गति, दिशा, अवधि और अंतराल सम्मलित हैं।

(vi) मृदा प्रकार।

(vii) ढाल।

(viii) अपवाह।

(ix) अन्य पौधे और पशु जातियाँ।

15.2 जीवोम का वर्गीकरण

जीवोम के वर्गीकरण के दो प्रमुख आधार हैं। इस भाग में हम दो वर्गीकरणों की चर्चा करेंगे जो आसान और सब जगह प्रयोग किए जाते हैं। इन दो वर्गीकरणों के आधार और इनके विभिन्न प्रकारों की चर्चा नीचे की गई है।

(अ) जलवायु के आधार पर जिसमें आर्द्रता की उपलब्धता पर विशेष बल दिया गया है

इस आधार के अनुसार जीवोम का निर्धारण आर्द्रता की उपलब्ध मात्रा के अनुसार किया

जाता है। जहाँ आर्द्रता प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं वहाँ वन जीवोम की प्रधानता रहती है और जहाँ आर्द्रता कम होती है वहाँ मरुस्थलीय जीवोम की। परंतु प्रत्येक जीवोम में तापमान की दशाएँ भिन्न उच्चावचों और भिन्न अक्षाशों के मध्य भिन्न भिन्न होती हैं। परिणामस्वरूप प्रत्येक जीवोम को उप विभागों में बांटने की आवश्यकता पड़ती है। इस वर्गीकरण के अनुसार जीवोम के चार प्रमुख प्रकार हैं–

(i) वन जीवोम

(ii) सवाना जीवोम

(iii) घासभूमि जीवोम

(iv) मरुस्थल जीवोम

(ब) जलवायु एवं वनस्पति के आधार पर

इस वर्गीकरण का तर्क है कि पौधों और प्राणी जातियों के विश्व वितरण प्रतिरूप का विश्व के जलवायु प्रकारों से घनिष्ट संबंध है। अतः इस संबंध के आधार पर विश्व को विभिन्न जीवोमों में विभाजित किया गया है। जीवोमों का सबसे प्रमुख घटक वनस्पति है; क्योंकि वनस्पति और जलवायु का घनिष्ट संबंध है। इसीलिए विश्व को जलवायु के अनुसार विभिन्न जीवोमों में बांटा जाता है। पुनः इन जलवायु आधारित जीवोमों को वनस्पति के आधार पर विभिन्न उप विभागों में बाँटा गया है। नीचे दी गई सारणी संख्या 15.1 देखिए।

सारणी संख्या 15.1
जलवायु और वनस्पति के आधार पर जीवोमों का वर्गीकरण

प्रथम क्रम के जीवोम (जलवायु पर आधारित)	द्वितीय क्रम के जीवोम (वनस्पति पर आधारित)	तृतीय क्रम के जीवोम (जलवायु और वनस्पति पर आधारित)
1. उष्णकटिबन्धीय जीवोम	(i) उष्ण कटिबन्धीय वन जीवोम	(अ) सदाहरित वर्षा वन जीवोम
		(ब) अर्द्ध सदाहरित वन जीवोम
		(स) पर्णपाती वन जीवोम
		(द) अर्द्ध पर्णपाती वन जीवोम
		(य) मोननि वन जीवोम
		(र) दलदली वन जीवोम
	(ii) सवाना जीवोम	(अ) सवाना वन जीवोम
		(ब) सवाना घासभूमि जीवोम
	(iii) मरुस्थलीय जीवोम	(अ) शुष्क मरुस्थलीय जीवोम
		(ब) अर्द्ध शुष्क जीवोम
2. शीतोष्ण कटिबन्धीय	(i) बोरियल वन जीवोम (टैगा वन जीवोम)	(अ) उत्तरी अमेरिकन जीवोम
		(ब) एशियाटिक जीवोम

		(स) पर्वतीय वन जीवोम
	(iii) शीतोष्ण कटिबन्धीय पर्णपाती वन जीवोम	(अ) उत्तरी अमेरिकन जीवोम (ब) यूरोपियन जीवोम
	(iii) शीतोष्ण कटिबन्धीय घासभूमि जीवोम	(अ) सोवियत स्टैपी जीवोम (ब) उत्तरी अमेरिकन प्रेयरी जीवोम (स) पम्पा जीवोम
	(iv) भूमध्यसागरीय जीवोम	(अ) आस्ट्रेलियन घासभूमि जीवोम (ब) दक्षिणी गोलार्द्ध जीवोम
	(v) उष्ण शीतोष्ण जीवोम	
3. टुण्ड्रा जीवोम	(i) आर्कटिक टुण्ड्रा जीवोम (ii) अल्पाइन टुण्ड्रा जीवोम	

सारणी 15.1 से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि विश्व के विभिन्न भागों में बहुत से जीवोम पाए जाते हैं। विस्तृत अध्ययन के लिए तीन जीवोम अर्थात् प्रत्येक जलवायविक कटिबन्ध से एक जीवोम को चुना गया है। वे तीन जीवोम हैं–

(i) सदाहरित वर्षा वन जीवोम

(ii) शीतोष्ण कटिबन्धीय घासभूमि जीवोम

(iii) आर्कटिक टुण्ड्रा जीवोम

15.3 सदाहरित वर्षावन जीवोम

(i) भौगोलिक पृष्ठभूमि

यह जीवोम विषुवत वृत्त के दोनों ओर 10^0 अक्षांश तक विस्तृत है। इसके अंतर्गत दक्षिण अमेरिका की अमेजन बेसिन की निम्न भूमि, विषुवतीय अफ्रीका का कांगो बेसिन और दक्षिण पूर्वी एशिया के द्वीपों (सुमात्रा से न्यूगिनी तक) के क्षेत्र सम्मिलित हैं। ये क्षेत्र चित्र 15.2 में दिखाए गए हैं।

इस क्षेत्र में वर्ष भर तापमान ऊँचा रहता है तथा वार्षिक ताप परिसर 2^0 सेल्सियस तक होता है। यहाँ दैनिक ताप परिसर वार्षिक ताप परिसर की अपेक्षा अधिक होता है। इस क्षेत्र में भारी वर्षा 150 सें.मी. से 250 सें.मी. के बीच होती है। वर्षा वर्ष भर होती है। वर्षा प्रायः प्रतिदिन दोपहर के बाद होती है। अधिक तापमान के कारण अधिक मात्रा में जलवाष्प वायुमंडल में पहुँच जाता है, इसलिए यहाँ अधिक वर्षा होती है। यह क्षेत्र सम जलवायु वाला क्षेत्र समझा जाता है, क्योंकि तापमान और वर्षा दोनों ही पूरे वर्ष अधिक रहते हैं।

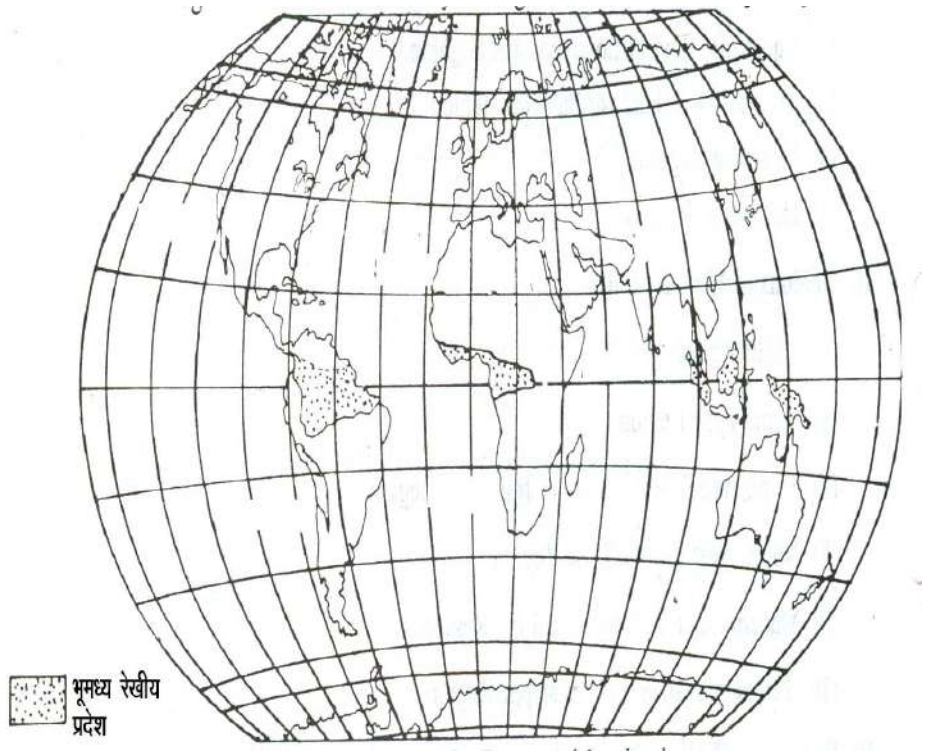

चित्र 15.1 सदाहरित वर्षावन जीवोम

(ii) प्राकृतिक वनस्पति एवं प्राणि जीवन

गर्मी और आर्द्रता के संयोजन ने इस जीवोम को अनेक प्रकार के पौधों और पशु प्रजातियों के लिए एक आदर्श पर्यावरण प्रदान किया है। पौधों की प्रजातियों की विभिन्नता इस तथ्य से पता चलती है कि एक वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में पौधों की लगभग एक हजार प्रजातियाँ मिलती हैं। अधिकतर वृक्षों के तने चिकने, उथली जड़ें एवं चौड़ी सदाबहार पत्तियाँ होती हैं। सदाहरित वर्षावनों को तीन स्तरों में बाँटा जाता है। (अ) छतरी अथवा ऊपरी स्तर जहाँ पर वृक्ष लगभग 20 से 50 मीटर तक ही ऊँचे होते हैं। इनमें अधिकतर वृक्ष कठोर लकड़ी वाले होते हैं जैसे एबोनी, महोगनी, रोज़वुड, संदलवुड, सिनकोना आदि। (ब) मध्यवर्ती भाग का द्वितीय स्तर जहाँ पर वृक्ष लगभग 10 मीटर से 20 मीटर तक ऊँचे होते हैं। इस समूह का सबसे महत्वपूर्ण वृक्ष ताड़ का वृक्ष है। ताड़ के वृक्षों के अतिरिक्त इस परत में अधिपादप और परजीवी पौधे भी पाए जाते हैं। (स) तीसरा अथवा निम्न स्तर पर वृक्षों की ऊँचाई धरातल से लगभग 10 मीटर होती है। इस वर्ग के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के पौधे पाए जाते हैं जैसे आर्किड, पर्णांण, जड़ी–बूटी, केले तथा अनन्नास आदि के पौधे। ऊँचे तथा चौड़ी पत्ती वाले घने वृक्षों के कारण सूर्य की रोशनी निम्न स्तर अर्थात धरातल तक नहीं पहुँच पाती है। इस स्तर पर प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया कम होने के कारण पौधों की प्रजातियाँ की संख्या बहुत कम है।

वनस्पति की तरह सदाहरित वर्षा वनों में असंख्य पक्षी, स्तनधारी जीव, कीट–पतंगे आदि

रहते हैं। इस जीवोम के कुछ महत्वपूर्ण प्राणी हैं – जगुआर, लैमूर, ओरांग उटान, हाथी आदि। मकाऊ तोता, शाखालंबी और टूकन इस क्षेत्र के कुछ महत्वपूर्ण पक्षी हैं। अधिकतर पक्षी चटकीले रंग के हैं। विषुवतीय क्षेत्रों के जलीय भाग प्राणि जीवन में धनी हैं। यहाँ पर कछुए, घड़ियाल, मछलियाँ, मेंढक, दरियाई घोड़ा आदि पाए जाते हैं। निचले भाग में घनी वनस्पति और अप्रवेश्य होने के कारण अधिकतर कीट पतंगे, और प्राणी वृक्षों की शाखाओं पर रहते हैं। सामान्यता ये धरातल पर नीचे नहीं आते हैं।

उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वनों में उत्पादकता विश्व के सभी प्रकार के जीवोमों से अधिक हैं। वर्षावन जीवोम विश्व के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल के केवल 13 प्रतिशत भाग पर पाए जाते हैं; परंतु ये जीवोम विश्व की कुल उत्पादकता के 40 प्रतिशत के लिए जिम्मेदार हैं।

(iii) मानवीय अनुक्रियाएँ

मानव ने विभिन्न विकासात्मक अनुक्रियाओं द्वारा जैविक रूप से धनी इस पारितंत्र को भी क्षति पहुँचानी प्रारंभ कर दी है। इन अनुक्रियाओं में विशाल बाँधों, जलाशयों, सड़कों और राजमार्गों का बनना, इमारती लकड़ी के लिए जंगलों का काटना, घास मैदानों और फसलों के लिए वनों को साफ करना तथा भूमिहीन किसानों द्वारा वनों की सफाई करके जबरदस्ती भूमि कब्जाना आदि सम्मलित हैं।

पारिस्थितिकी विज्ञानी कहते हैं कि अगर वनों का सफाया इसी दर से होता रहा तो विश्व के वर्षा वनों के सन् 2020 तक गायब हो जाने अथवा नष्ट हो जाने की संभावना है। इससे जैविक संपत्ति की अपूर्णनीय क्षति होगी। वर्षा वनों में पौधों और पशुओं की सम्पूर्ण ज्ञात प्रजातियों का 40 प्रतिशत भाग है। वर्षा वनों के सफाये से मूल्यवान प्राकृतिक संसाधनों जैसे कठोर लकड़ी के वृक्ष और वृक्ष उत्पाद जैसे कुनैन, रबड़, वनस्पतिक गोंद आदि नहीं मिल सकेंगे।

यह क्षति केवल पारिस्थिक ही नहीं बल्कि इससे बड़े पर्यावर्णीय दुष्परिणाम होंगे। सदाहरित वन भूमंडलीय मौसम प्रतिरूपों को नियंत्रित करके विविध पर्यावरणीय सेवाएँ प्रदान करते हैं। ये उष्ण कठिबन्धीय प्रदेशों में मृदा अपरदन तथा नदियों में आई बाढ़ को रोककर भी ये सेवाएँ प्रदान करते हैं। प्रमाण सिद्ध करते हैं कि उष्ण कटिबन्धीय वननाशन ने एक महत्वपूर्ण कार्बन सिंक को हटाकर हरित गृह प्रभाव और भूमंडलीय तापन को पैदा किया है।

पाठगत प्रश्न 15.1

1. एक वाक्य में उत्तर दीजिए–

   (i) उत्तरी एवं दक्षिणी गोलार्द्धों में उष्णकटिबन्धीय सदाहरित वनों का अक्षांशीय विस्तार क्या है?

(ii) उष्णकटिबन्धीय सदाहरित वनों में दिन के किस भाग के दौरान अधिकांश वर्षा होती है।

_____

(iii) उष्ण कटिबन्धीय सदाहरित वन जीवोम में पौधों की प्रजातियों को किन तीन स्तरों में क्रमबद्ध किया है?

(अ)_____ (ब)_____ (स)_____

(iv) उष्णकटिबन्धीय सदाहरित वनों में वननाशन के लिए उत्तरदायी किन्हीं तीन कारकों को बताइए।

(अ)_____ (ब)_____ (स)_____

(iv) उष्णकटिबन्धीय सदाहरति वनों में वननाशन के दो मुख्य पर्यावर्णीय दुष्परिणाम कौन से हैं?

(अ)_____ (ब)_____ (स)_____

15.4 शीतोष्ण कटिबन्धीय घासभूमि जीवोम

(i) भौगोलिक पृष्ठभूमि

शीतोष्ण कटिबन्धीय घासभूमियाँ दो विशिष्ट स्थानों पर स्थित हैं– उत्तरी गोलार्द्ध में महाद्वीपों के आंतरिक भागों में और दक्षिणी गोलार्द्ध में महाद्वीपों के सीमांत प्रदेशों में। इसलिए दक्षिणी गोलार्द्ध की शीतोष्ण कटिबन्धीय घासभूमियों की जलवायु उत्तरी गोलार्द्ध की घासभूमियों की अपेक्षा संतुलित है, क्योंकि इनके तट के समीप होने के कारण इन पर समुद्री प्रभाव अधिक है। उत्तरी गोलार्द्ध की घासभूमियों की विशेषता उनकी महाद्वीपीय जलवायु है, जहाँ पर गर्मियों में अधिक तापमान और शीत ऋतु में तापमान हिमांक बिन्दु से नीचे चला जाता है। हालांकि दक्षिणी गोलार्द्ध की घासभूमियाँ तट के साथ स्थित हैं, परन्तु ये ऊँचे तटवर्ती पर्वतों के वृष्टि छाया क्षेत्रों में स्थित हैं। इसलिए यहाँ पर वर्षा बहुत कम होती है।

ये घासभूमियाँ सभी महाद्वीपों में पाई जाती हैं, जो भिन्न–भिन्न नामों से जानी जाती हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में ये घासभूमियाँ काफी विस्तृत हैं। यूरेशिया महाद्वीप में इन्हें स्टेपी कहते हैं। ये काला सागर के तट से पूर्व की ओर चीन में मंचूरिया के मैदान तक विस्तृत हैं। उत्तरी अमेरिका में ये घासभूमियाँ काफी बड़े क्षेत्र पर फैली हुई हैं तथा इन्हें यहाँ प्रेयरी कहते हैं। ये क्षेत्र राकी पर्वत और महान झीलों के बीच विस्तृत हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में ये घासभूमियाँ उतनी विस्तृत नहीं हैं। अर्जेन्टीना और उरूग्वे में इन घासभूमियों को पम्पास कहते हैं। दक्षिण अफ्रीका में ये घासभूमियाँ ड्रेकन्सबर्ग पर्वत और कालाहारी मरुस्थल के बीच स्थित हैं तथा इन्हें यहाँ वेल्ड कहते हैं। आस्ट्रेलिया में इन घासभूमियों को डाउन्स कहते हैं तथा ये दक्षिण आस्ट्रेलिया में मरे–डार्लिंग नदियों की द्रोणी में स्थित हैं। ये सभी घासभूमियाँ शीतोष्ण कटिबन्ध में स्थित हैं, इसलिए इन्हें शीतोष्ण कटिबन्धीय घासभूमियाँ भी कहते हैं।

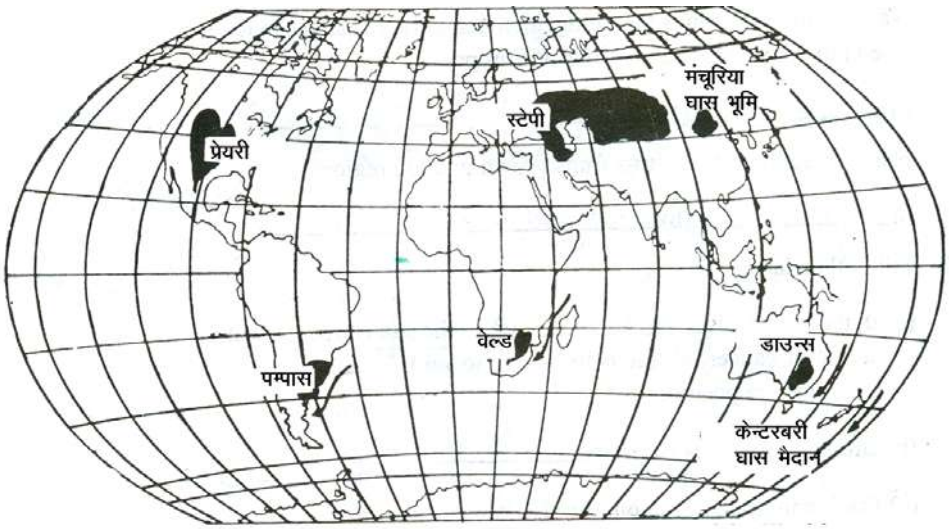

चित्र 15.2 शीतोष्ण कटिबन्धीय घासभूमि जीवोम

(ii) प्राकृतिक वनस्पति एवं प्राणि जीवन

यहाँ पर वर्षा की मात्रा इतनी कम है कि पेड़ नहीं उग सकते, परंतु वर्षा की मात्रा घास उगने के लिए पर्याप्त है। इसलिए इन प्रदेशों की प्राकृतिक वनस्पति वृक्ष रहित घासभूमियाँ हैं। वृक्ष केवल पहाड़ी ढलानों पर दिखाई देते हैं, जहाँ पर वर्षा की मात्रा अधिक है। वर्षा की मात्रा और मृदा के उपजाऊपन के अनुसार घास की ऊँचाई स्थान–स्थान पर भिन्न–भिन्न है। स्टेपी घासभूमियों की छोटी एवं पौष्टिक घास विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन प्रदेशों में घास के उगने का समय ऋतुओं के अनुसार भिन्न–भिन्न होता है। वसन्त ऋतु प्रारंभ होते ही छोटी घास हरी भरी, ताजी तथा छोटे–छोटे विभिन्न रंगों के फूलों से सुन्दर दिखायी देने लगती है। ग्रीष्म ऋतु में अधिक तापमान और अधिक वाष्पीकरण होने के कारण हरी घास बिल्कुल मुरझाकर समाप्त हो जाती है, लेकिन इस घास की जड़ें धरातल में जिन्दा रहती हैं और पूरी शीत ऋतु में निष्क्रिय पड़ी रहती हैं। जैसे ही बसन्त ऋतु प्रारंभ होती है, ये फिर हरी भरी हो जाती हैं।

ये घासभूमियाँ विभिन्न प्रकार के जीवों के प्राकृतिक आवास हैं। इनमें से प्रमुख हैं हिरण, जंगली गधे, घोड़े, भेड़िया, कंगारू, ऐमू तथा डिंमू अथवा जंगली कुत्ता।

(iii) मानवीय अनुक्रियाएँ

कोई अन्य जीवोम इतने परिवर्तनों से नहीं गुजरा जितना कि शीतोष्ण कटिबन्धीय घासभूमि जीवोम। यह सब कुछ मानवीय अनुक्रियाओं के कारण हुआ है। (i) अधिकतर घासभूमियों को कृषि भूमियों में बदल दिया गया है, जो अब विश्व के प्रसिद्ध अनाज भंडार बन गए हैं। (ii) दूसरा निर्णायक कारक जो इस अछूती भूमि को बदलने के लिए

उत्तरदायी है वह है– पशुचारण अथवा पशुपालन। आज इस तरह की अछूती घासभूमि मुश्किल से देखने को मिलती हैं। (iii) बड़े पैमाने पर जानवरों के शिकार करने के कारण कुछ जानवरों की संख्या बहुत कम हो गई है और कुछ जीव विलुप्त हो गए हैं। उदाहरण के लिए बहुत से जानवरों की प्रजातियाँ जैसे हिरण, जेबरा, शेर, तेंदुआ आदि यूरोपियन अप्रवासियों द्वारा बड़े पैमाने पर शिकार करने के कारण अफ्रीकन वेल्ड से गायब हो गए हैं। (iv) यहाँ पर प्राणी और पौधों की नई प्रजातियों के प्रारंभ करने से देसी वनस्पति का संघटन बिल्कुल परिवर्तित हो गया है। उदाहरण के लिए आस्ट्रेलिया में यूरोपियन लोगों द्वारा भेड़ पालन शुरू करने के कारण वनस्पति संघटन बदल गया है। पहले की वनस्पति यहाँ के देसी धानी प्राणियों के लिए उपयुक्त थी। इसी तरह आस्ट्रेलिया की शीतोष्ण कटिबन्धीय घासभूमियों में फलीदार वृक्षों की खेती प्रारंभ करने के कारण देसी सदाबहारी घासों की सैकड़ों प्रजातियाँ दबकर रह गई हैं।

पाठगत प्रश्न 15.2

1. कोष्ठक में दिये गए शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनकर रिक्त स्थान भरिए–

   (खाद्य भंडार, आंतरिक, निम्न, अधिक, कम)

   (अ) उत्तरी गोलार्द्ध की मध्य अक्षांशीय घासभूमियाँ महाद्वीपों के _____ भाग में स्थित हैं।

   (ब) मध्य अक्षांशी घासभूमियाँ में वार्षिक वर्षण बहुत _____ है।

   (स) उत्तरी गोलार्द्ध में घासभूमियाँ बहुत विस्तृत हैं; जबकि दक्षिणी गोलार्द्ध में घासभूमियाँ _____ विस्तृत हैं।

   (द) मध्य अक्षांशीय घासभूमियाँ संसार के _____ के रूप में जानी जाती हैं।

2. निम्नलिखित को मिलाइए–

	महाद्वीप		**घास भूमियों के नाम**
(अ)	दक्षिण अफ्रीका	(i)	प्रेयरी
(ब)	यूरेशिया	(ii)	पम्पास
(स)	उत्तरी अमेरिका	(iii)	वेल्ड
(द)	आस्ट्रेलिया	(iv)	स्टेपी
(य)	दक्षिण अमेरिका	(v)	डाउन्स

15.5 आर्कटिक टुण्ड्रा जीवोम

(i) भौगौलिक पृष्ठभूमि

यह वास्तव में एक ठंडा मरुस्थल है जिसमें वायुमंडलीय नमी नगण्य होती है और ग्रीष्म

ऋतु इतनी छोटी और ठंडी होती है कि वृक्ष अपने आपको बनाए रखने में असमर्थ होते हैं। यह जीवोम उत्तरी गोलार्द्ध के उत्तरी भागों में फैला हुआ है। इसके अंतर्गत अलास्का के कुछ भाग, कनाडा के उत्तरी भाग, ग्रीनलैंड के तटवर्ती भाग और रूस के आर्कटिक समुद्रतटीय क्षेत्र तथा उत्तरी साइबेरिया सम्मलित हैं। (देखिए चित्र 15.3)।

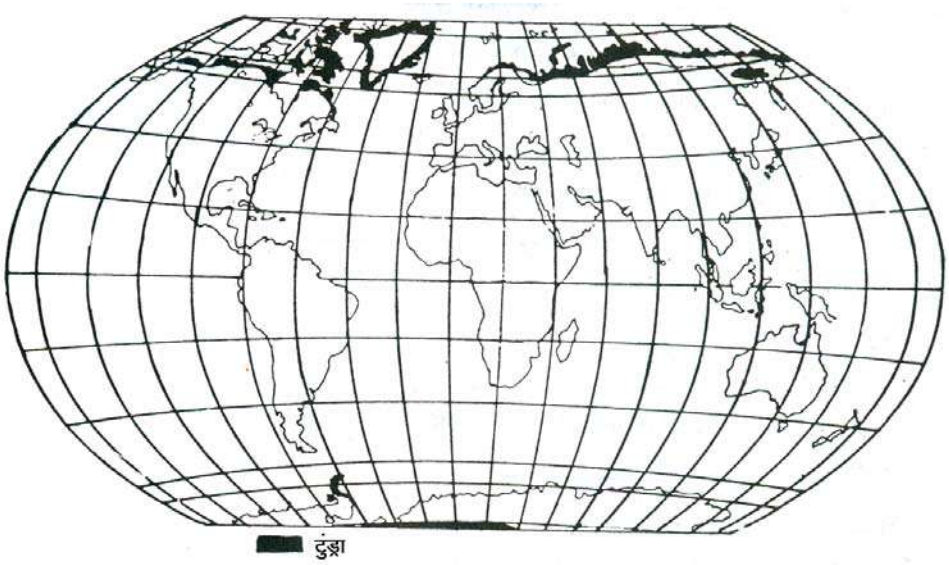

चित्र 15.3 आर्कटिक टुण्ड्रा जीवोम

(ii) प्राकृतिक वनस्पति तथा प्राणि जीवन

यहाँ के पौधों के आवरण में इनकी बहुत सी प्रजातियों का मिश्रण सम्मिलित है। इनमें से बहुत सी प्रजातियाँ बौने आकार की हैं जैसे घास, मॉस, लिचिन, फूलदार औषधीय वनस्पति और जहाँ–तहाँ फैली हुई छोटी झाड़ियाँ। ये सभी पौधे सघन रूप से धरातल को ढके रहते हैं। छोटी सी ग्रीष्म ऋतु में ये पौधे अपने वार्षिक चक्र को जल्दी से पूरा कर लेते हैं। इस छोटी सी ग्रीष्म ऋतु में धरातल अक्सर नमीयुक्त तथा जलाक्रांत होता है, क्योंकि धरातलीय अपवाह ठीक नहीं है।

इस जीवोम में पशुओं को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है– (i) आवासी (ii) अप्रवासी। आवासी जैसे टारमिगन बदलती हुई जलवायविक दशाओं के अनुरूप अपने आपको ढाल सकते हैं। इसके विपरीत अप्रवासी जीव शीत ऋतु प्रारंभ होते ही गर्म स्थानों की ओर चले जाते हैं, उदाहरण के लिए पक्षी जैसे मुदगाबी, बत्तख, हंस, गीज आदि को शरद ऋतु के प्रारंभ में ही अपने मूल स्थान को छोड़कर चले जाते हैं तथा अगले बसन्त अथवा ग्रीष्म ऋतु के प्रारंभ में लौटते हैं। मच्छर, मक्खियाँ तथा अन्य कीट पतंगे छोटी सी गर्म ऋतु में बहुत अधिक संख्या में उत्पन्न हो जाते हैं तथा अंडे देते हैं जो कठोर शीत ऋतु में भी जीवित रह सकते हैं। अन्य प्रकार के जीवों की यहाँ कमी है। स्तनधारी जीवों की कुछ प्रजातियाँ और मीठे जल की मछलियों के पाए जाने के अतिरिक्त यहाँ पर रेंगने वाले जीव अथवा उभयचर बिल्कुल नहीं पाए जाते। इनके

अतिरिक्त रेंडियर, भेड़िया, लोमड़ियाँ, कस्तूरी बैल, आर्कटिक खरगोश, सील तथा लेमिंग्स आदि जानवर भी यहाँ रहते हैं। टुण्ड्रा जीवोम में उत्पादकता बहुत कम है।

- स्वयंपोशी प्राथमिक उत्पादकों द्वारा प्रति यूनिट क्षेत्र और प्रति यूनिट समय में जमा की गई कुल ऊर्जा की मात्रा को उत्पादकता कहते हैं।

निम्न उत्पादकता के कारण हैं– (i) न्यूनतम सूर्य प्रकाश और सूर्यातप (ii) भूमि में पोषक तत्वों जैसे नाइट्रोजन और फास्फोरस की कमी अथवा बिल्कुल न होना (iii) कम विकसित मृदा (iv) मृदा में नमी की कमी (v) धरातल का स्थाई रूप से बर्फ से ढके रहना (vi) बहुत छोटा वर्धन काल।

ग्रीष्म ऋतु में बर्फ के पिघलते ही टुण्ड्रा में जीवन फिर लौट आता है, इस समय फूलों वाले पौधे मच्छरों और मक्खियों की बहुत बड़ी संख्या को आश्रय देते हैं और बदले में ये बहुत बड़ी संख्या में अप्रवासी मुर्गाबियों को भोजन प्रदान करते हैं।

(iii) मानवीय अनुक्रियाएँ

यहाँ के कठोर वातावरण में बहुत कम लोग रह पाते हैं। यूरेशियन टुण्ड्रा में सेमोयड्स, लैप्स, फिन्स तथा याकूत जनजातियाँ तथा कनाड़ा और अलास्का के एस्कीमो लोग यहाँ के मूल निवासी हैं और सदियों से चलवासी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ये जातियाँ अब स्थाई अथवा अर्द्धचलवासी जीवन व्यतीत कर रही हैं। इन्होंने नई तकनीकों को अपना लिया है। उदाहरण के लिए घातक राइफलों ने परम्परागत और पुराने हारपून का स्थान ले लिया है। अतः नवीनतम तकनीक से लैस आधुनिक एस्किमो आज टुण्ड्रा पारितंत्र को नष्ट करने के लिए उसी स्थिति में हैं जिसमें तकनीकी रूप से विकसित मानव ने अन्य जीवोमो में किया है। यूरेशियन टुण्ड्रा के सेमोयड्स तथा अन्य जातियों ने नई जीवन शैली को अपना लिया है। इनमें से कुछ स्थाई रूप से एक स्थान पर रह रहे हैं। ये रेंडियर और फरवाले अन्य जानवरों को पालते हैं और साइबेरियन टुण्ड्रा में खाद्य फसलों में मुख्यतः गेहूँ की खेती करते हैं। हाल के वर्षों में खनिजों की खोज जैसे अलास्का में सोना और खनिज तेल, लेब्राडोर में लौह अयस्क, साइबेरिया में निकिल ने खनन बस्तियों की स्थापना और यातायात के साधनों के विकास को प्रोत्साहित किया है। परन्तु खनन क्रियाओं ने यहाँ प्रदूषण तथा इस कमजोर पारितंत्र के लिए अन्य पर्यावरणीय समस्याएँ पैदा की हैं।

पाठगत प्रश्न 15.3

1. निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दीजिए–

   (अ) टुण्ड्रा प्रदेश में पाए जाने वाले किन्हीं तीन जानवरों के नाम बताइए।

   (i)_____ (ii)_____ (iii)_____

(ब) टुण्ड्रा प्रदेशों में पाए जाने वाले तीन प्रमुख खनिज पदार्थ कौन–कौन से हैं?

(i)_____ (ii)_____ (iii)_____

(स) टुण्ड्रा प्रदेश में उत्पादकता कम क्यों है? कोई दो कारण दीजिए।

(i)_____ (ii)_____ (iii)_____

(द) टुण्ड्रा प्रदेश में पाई जाने वाली किन्हीं दो जनजातियों के नाम बताइए।

(i)_____ (ii)_____

आपने क्या सीखा

जीवोम शब्द जैविक घर का संक्षिप्त रूप है। जीवोम एक वृहत प्राकृतिक पारितंत्र है जिसमें हम पौधों और प्राणियों के समूहों के कुल समुच्चय का अध्ययन करते हैं। यहाँ सभी प्रकार के जीवों में न्यूनतम साझा विशेषताएँ होती हैं और सभी जीवोमों में कमोवेश एक सी पर्यावरणीय दशाएँ होती हैं। जीवोम के आकार, स्थिति और उसकी विशेषताओं को प्रभावित करने वाले विविध कारक हैं। ये कारक हैं दिन के प्रकाश और अंधेरे की अवधि, औसत तापमान, वर्धन काल का समय, वर्षण, पवन प्रवाह, मृदा प्रकार, ढाल, अपवाह आदि। जीवोम के वर्गीकरण के दो प्रमुख आधार हैं– जलवायु का आधार जिसमें नमी या आर्द्रता की उपलब्धता पर विशेष बल दिया जाता है और जलवायु तथा वनस्पति का आधार।

प्रत्येक जलवायविक कटिबन्ध से एक–एक जीवोम को गहन अध्ययन के लिए चुना गया है। ये हैं– (i) सदाहरित वर्षावन जीवोम (ii) शीतोष्ण कटिबन्धीय घासभूमि जीवोम (iii) आर्कटिक टुण्ड्रा जीवोम। सदाहरित वर्षावन जीवोम विषुवत वृत्त के दोनों ओर 10^0 अक्षांश तक विस्तृत हैं। इस क्षेत्र में उच्च तापमान और अधिक वर्षा पूरे वर्ष होती है। तापमान और वर्षा के संयोजन ने इस जीवोम को अनेकानेक पौधों और जीवों की प्रजातियों के लिए आदर्श पर्यावरण प्रदान किया है। इस क्षेत्र में पाए जाने वाले प्रमुख वृक्ष हैं – एबोनी, महोगनी, रोजवुड, संदलवुड आदि। ये अधिकतर कठोर लकड़ी के वृक्ष हैं। पौधों के साथ बहुत प्रकार के आर्किड, फर्न, मॉस, औषधीय पौधे धरातलीय स्तर पर पाए जाते हैं। वनस्पति की तरह ही सदाहरित वर्षा वनों में अनेकानेक पक्षियों, स्तनधारी जीवों और कीट पतंगों का वास हैं। उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन जीवोम में उत्पादकता अन्य सभी जीवोमों से अधिक है। आज मानव ने विविध विकासात्मक कार्यकलापों द्वारा जैविक रूप से धनी इस पारितंत्र को भी नष्ट करना प्रारंभ कर दिया है। इसके परिणामस्वरूप बहुत सी पारिस्थितिक तथा पर्यावरणीय समस्याएँ पैदा हो गई हैं जैसे हरित गृह प्रभाव और भूमंडलीय तापन। शीतोष्ण कटिबन्धीय घासभूमियों की दो अनोखी अवस्थितियाँ हैं – उत्तरी गोलार्द्ध में महाद्वीपों के आन्तरिक भाग और दक्षिणी गोलार्द्ध में महाद्वीपो के सीमान्त प्रदेश । दोनो ही अवस्थितियों में वर्षा बहुत कम होती

है। इन घासभूमियों को विश्व के भिन्न–भिन्न भागों में भिन्न–भिन्न नामों से जाना जाता है– यूरेशिया में स्टेपी, उत्तरी अमेरिका में प्रेयरी, आस्ट्रेलिया में डाउन्स और दक्षिणी अफ्रीका में वेल्ड। इन प्रदेशों की प्राकृतिक वनस्पति वृक्ष रहित घासभूमियाँ हैं। वृक्ष केवल पर्वतीय ढलानों पर दिखाई देते हैं जहाँ वर्षा की मात्रा अधिक है। इन घासभूमियों में हिरण, जंगली गधा, घोड़े, भेड़िया, कंगारू, ऐमू और डिंगो अथवा जंगली कुत्ते पाए जाते हैं। किसी भी जीवोम में इतने परिवर्तन नहीं हुए जितने कि शीतोष्ण कटिबन्धीय घासभूमि जीवोम में। ये मानव के विभिन्न कार्यकलापों के कारण हुआ है। आर्कटिक टुण्ड्रा आवश्यक रूप से एक ठंडा मरुस्थल है, जिसमें वायुमंडलीय नमी न के बराबर है। यहाँ ग्रीष्म ऋतु छोटी और ठंडी होती है। यह जीवोम उत्तरी गोलार्द्ध के उत्तरी सीमा के साथ–साथ विस्तृत है। पौधों और प्राणियों की प्रजातियाँ यहाँ कम हैं। यहाँ का धरातल बहुत सी प्रजातियों के मिश्रण से भरा हुआ है। यहाँ की बहुत सी वनस्पति प्रजातियाँ बौने आकार की हैं जैसे घास, मॉस, लिचेन, फूलों वाली जड़ी बूटी और छितरी हुई छोटी झाड़ियाँ। इस जीवोम के जानवरों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– (i) आवासी और (ii) अप्रवासी। रेंडियर, भेड़िया, लोमड़ी, कस्तूरी बैल, आर्कटिक खरगोश, सील और लेमिंग्स यहाँ के प्रमुख जीव हैं। कठोर पर्यावरण के कारण यहाँ की जनसंख्या कम है। यूरेशिया में सेमोयड्स, लैप्स, फिन्स और याकूत जनजातियाँ, कनाडा और अलास्का के ऐस्कीमो यहाँ के मूल निवासी हैं और सदियों से चलवासी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इन्होंने शिकार करके टुण्ड्रा के जीवों को नष्ट किया है। अब इनमें से बहुत सी जनजातियाँ स्थाई जीवन व्यतीत करती हैं। हाल के वर्षों में खनिज पदार्थों की खोज से खनन बस्तियों के विकास को प्रोत्साहन मिला है। लेकिन खनन क्रियाओं ने प्रदूषण और यहाँ के कमजोर पारितंत्र के लिए पर्यावरणीय समस्याएँ खड़ी कर दी हैं।

पाठांत प्रश्न

1. जीवोम क्या है? जलवायु और वनस्पति के आधार पर जीवोम के वर्गीकरण का वर्णन कीजिए।
2. सदाहरित वर्षावन जीवोम की अवस्थिति, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति तथा प्राणि जीवन की व्याख्या कीजिए।
3. जीवोम के आकार, अवस्थिति और विशेषताओं को प्रभावित करने वाले विविध कारकों का वर्णन कीजिए।
4. ''कोई अन्य जीवोम इतने परिवर्तनों से नहीं गुजरा जितना कि शीतोंष्ण कटिबन्धीय घासभूमि जीवोम''। उपयुक्त तर्कों द्वारा इस कथन की पुष्टि कीजिए।
5. टुण्ड्रा प्रदेश में पौधों और जानवरों के जीवन पर जलवायु के प्रभाव की विवेचना कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

15.1

1. (i) 10^0 उत्तर और दक्षिण

   (ii) दोपहर

   (iii) प्रथम 20–50 मीटर की ऊँचाई वाले (i) द्वितीय – 10 से 20 मीटर (iii) तृतीय स्तर धरातल से 10 मीटर

   (iv) (अ) बड़े बाँध और जलाशयों का निर्माण (ब) सड़कों और राजपथों का निर्माण (स) इमारती लकड़ी का काटना (द) चारागाह और फसलों के लिए वनों की कटाई (य) भूमिहीन किसानों द्वारा वनों का सफाया एवं अतिक्रमण।

   (v) (अ) हरित गृह प्रभाव (ब) भूमंडलीय तापन

15.2

1. (अ) आंतरिक (ब) निम्न (c) अधिक, कम (द) खाद्य भंडार
2. (अ) iii (ब) iv (स) i (द) v (य) ii

15.3

(अ) रेंडयर, भेड़िया, लोमड़ी, कस्तूरी बैल, आर्कटिक खरगोश, सील, लैमिंग्स (कोई तीन)

(ब) सोना, लौह अयस्क और खनिज तेल

(स) (i) न्यूनतम सूर्य प्रकाश और सूर्यातप (ii) पोषकों की कमी

(iii) कम विकसित मृदा (iv) मृदा में नमी की कमी

(v) स्थाई रूप से धरातल पर बर्फ का जमना और

(vi) बहुत छोटा वर्धनकाल (कोई तीन)

(द) सेमोयड्स, लैप्स, फिन्स, याकूत, एस्कीमो (कोई दो)

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. अनुच्छेद 15.1 और 15.2 देखिए
2. अनुच्छेद 15.3 देखिए
3. अनुच्छेद 15.1 देखिए
4. अनुच्छेद 15.4 (iii) देखिए
5. अनुच्छेद 15.5 देखिए

16

भारत - भौतिक स्वरूप

ऐतिहासिक दृष्टि से भारत एक प्राचीन देश है। प्राचीन काल में इसे भारत वर्ष के नाम से पुकारा जाता था। भारत तीनों ओर से समुद्रों द्वारा घिरा हुआ है तथा उत्तर में यह एक विशाल पर्वत माला द्वारा शेष एशिया से अलग है। अतः इसका स्वतन्त्र अस्तित्व है। इसीलिए इसे भारतीय उपमहाद्वीप कहा जाता है। आकार की दृष्टि से भारत संसार का सातवां बड़ा देश है। आकार की विशालता के कारण इसके भौतिक स्वरूप में अनेक प्रकार की विविधताएं पाई जाती हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि इसके मुख्य भौतिक स्वरूपों की जानकारी प्राप्त की जाय। विद्यार्थियों के लिए यह जरूरी है कि वे भारत के भूगोल के मुख्य पक्षों को जानें। प्रमुख बाह्य उच्चावच, पर्वत श्रृंखला, पठार, मैदान, अपवाह तन्त्र, हिमानी, ज्वालामुखी इत्यादि की जानकारी प्राप्त करना भी अति आवश्यक है।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आप :–

- अक्षांश और देशान्तरों के संदर्भ में भारत की स्थिति बता सकेंगे;
- मानचित्र एवं ग्लोब की मदद से पड़ोसी देशों, महाद्वीपों, गोलार्धों और हिन्द महासागर के संदर्भ में भारत की स्थिति के महत्त्व का वर्णन कर सकेंगे तथा अन्य देशों से भारत के क्षेत्रफल की तुलना कर सकेंगे;
- प्रमुख भू–आकृतिक विभागों की विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे;
- भारत के प्रमुख भौतिक लक्षणों और नदियों को रेखा मानचित्र में दिखा सकेंगे;
- हिमालय की नदियों की प्रायद्वीपीय भारत की नदियों से तुलना कर सकेंगें;
- निष्कर्ष निकाल सकेंगे की भारत की समृद्ध तथा विविध संस्कृति इसके विविध भौतिक लक्षणों का ही परिणाम है;
- व्याख्या कर सकेंगे कि भारत के विभिन्न भू–आकृतिक विभाग आर्थिक दृष्टि से किस प्रकार एक दूसरे के पूरक हैं।

टिप्पणी

16.1 भारत की स्थिति, विस्तार एवं सीमाएँ

दक्षिण एशिया के एक बहुत बड़े भू–भाग के उत्तर–पश्चिम, उत्तर और उत्तर पूर्व में ऊँचे–ऊँचे नवीन वलित पर्वत हैं। इसके दक्षिण–पश्चिम में अरब सागर, दक्षिण-पूर्व में बंगाल की खाड़ी तथा दक्षिण में हिन्द महासागर हैं। दक्षिण एशिया के इस भाग को भारतीय उपमहाद्वीप के नाम से भी जाना जाता है। इस उपमहाद्वीप में भारत, पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश और भूटान देश हैं। संकीर्ण पाक जलसन्धि के द्वारा अलग द्वीपीय देश श्री लंका भी इसी का अंग है। इस उपमहाद्वीप के तीन चौथाई क्षेत्र में भारत का विस्तार है, जिसकी सीमाएँ उपमहाद्वीप के अन्य सभी देशों को छूती हैं। अन्य पाँच देशों सहित भारत एक स्पष्ट भौगोलिक इकाई है। उपमहाद्वीप के सभी देश सांस्कृतिक दृष्टि से भी एक दूसरे के निकट हैं। प्राचीनकाल में हमारा देश आर्यावर्त के नाम से जाना जाता था। बाद में इसे भारत, हिन्दुस्तान और 'इण्डिया' कहने लगे। हिन्द महासागर का नाम हमारे देश के नाम पर ही रखा गया है। यही एक मात्र ऐसा महासागर है जिसका नाम किसी देश के नाम पर रखा गया है। संविधान में हमारे देश के दो ही नाम स्वीकृत हैं—भारत या इण्डिया। भारत पूरी तरह से उत्तरी गोलार्ध में स्थित है। भारत की मुख्य भूमि $8^0 4'$ और $37^0 6'$ उत्तरी अक्षाशों तथा $68^0 7'$ व $97^0 25'$ पूर्वी देशान्तरों के बीच फैली है। इस प्रकार भारत का अक्षांशीय तथा देशान्तरीय विस्तार लगभग 29 अंशों में है। लेकिन धरातल पर वास्तविक दूरी उत्तर से दक्षिण 3214 कि.मी. तथा पूर्व से पश्चिम तक 2933 कि.मी. हैं। अक्षांशीय और देशान्तरीय विस्तार समान होने पर भी वास्तविक दूरी में इतना बड़ा अन्तर क्यों है? ऐसा इसलिए है कि विषुवत वृत्त पर दो क्रमिक देशान्तरो के बीच की दूरी घटती जाती है और ध्रुवों पर यह शून्य हो जाती है। ऐसा इसलिए है कि सभी देशान्तर रेखाएँ उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों पर एक बिन्दु में मिल जाती है। इसके विपरीत किसी भी देशान्तर रेखा पर दो क्रमिक अक्षांश वृत्तों के बीच उत्तर से दक्षिण की दूरी सदैव एक समान अर्थात 111 कि. मी. ही रहती है। निम्नलिखित सारिणी से यह बात भली भांति स्पष्ट हो जाती है।

अक्षांश	0	10	20	30	40	50	60	70	80	90
दूरी कि.मी.	111	109.6	104.6	96.4	85.4	71.7	55.8	38.2	19.4	0

ग्लोब पर दृष्टि डालते ही आप इस बात को सहज ही समझ लेंगे।

भारत की मुख्य भूमि का उत्तरी छोर जम्मू–कश्मीर राज्य में है तथा तमिलनाडु में कन्याकुमारी इसका दक्षिणी छोर है। लेकिन देश का दक्षिणतम छोर अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में है। इसे इन्दिरा पाइंट कहते हैं। यह $6^0 30'$ उ. अक्षांश पर स्थित है। भारत का पश्चिमी सिरा गुजरात में तथा पूर्वी सिरा अरूणाचल प्रदेश में है।

आइये देखें कि इतने बड़े अक्षांशीय विस्तार का भारतवासियों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है। देश के उत्तरी भाग विषुवत वृत्त से काफी दूर हैं। अतः इन भागों में सूर्य की किरणें अधिक तिरछी पड़ती है। फलस्वरूप यहाँ सूर्यातप कम मिलता है। अतः दक्षिणी

भागों के विपरीत ये भाग ठंडे हैं। अधिक अक्षांशीय विस्तार का प्रभाव दिन और रात की अवधि पर भी पड़ता है। विषुवत वृत्त के निकट स्थित भारतीय क्षेत्रों में दिन और रात की अवधि में लगभग 45 मिनट का अन्तर होता है। भारत के उत्तरी भागों में दिन और रात की अवधि में यह अन्तर क्रमशः बढ़ता ही जाता है। उत्तरी भाग में यह अंतर 5 घंटे तक का हो जाता है।

कर्क वृत्त भारत के लगभग बीच से होकर गुजरता है। इस प्रकार कर्क वृत्त के दक्षिण का भाग उष्ण कटिबंध में स्थित है और कर्क वृत्त के उत्तर का शेष आधा भाग शीतोष्ण कटिबंध में आता है।

पृथ्वी अपनी धुरी पर 24 घंटों में एक चक्कर लगाती है। पृथ्वी के पश्चिम से पूर्व की दिशा में घूमने के कारण सूर्य सबसे पहले पूर्व में उदय होता है तथा पश्चिम में बाद में उदय होता है। पृथ्वी 360^0 के अपने देशान्तरीय विस्तार को 15^0 प्रति घंटे की गति से 24 घंटों में पूरा करती है। भारत का देशान्तीय विस्तार लगभग 29^0 का है। अतः भारत के पूर्वी और पश्चिमी छोरों के वास्तविक समय में लगभग दो घंटे का अन्तर रहता है। इस प्रकार जब भारत के पूर्वी छोर पर सूर्योदय होता है तब पश्चिम छोर अंधकार में डूबा होता है। समय के अन्तर की इस गड़बड़ी को दूर करने के लिए अन्य देशों की तरह भारत ने भी एक मानक मध्याह्न रेखा का चुनाव किया है। मानक मध्याह्न रेखा पर जो स्थानीय समय होता है, उस समय को देश का मानक समय माना जाता है। भारत की मानक मध्याह्न रेखा 82^0 30' पूर्वी देशान्तर है। इस का स्थानीय समय ही सारे भारत का मानक समय माना गया है। मध्याह्न रेखा का चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि वह देश के लगभग मध्य से गुजरे तथा 7^0 30' से पूरी–पूरी विभाजित हो जाए। 82^0 30' देशान्तर रेखा इन दोनों ही कसौटियों पर खरी उतरती है।

भारत का उत्तरी मध्य भाग चौड़ा है, जबकि इसका दक्षिणी भाग हिन्द महासागर की ओर संकीर्ण होता गया है। इस प्रकार हिन्द महासागर भारतीय प्रायद्वीप के कारण दो भागों में विभाजित हो गया है। उत्तरी हिन्द महासागर का पश्चिमी भाग अरब सागर के नाम से तथा पूर्वी भाग बंगाल की खाड़ी के नाम से जाना जाता है। द्वीप समूहों सहित भारत की तट रेखा की कुल लंबाई 7516.6 कि.मी. है। पाक जल–सन्धि भारत की मुख्य भूमि को श्रीलंका से पृथक करती है।

16.2 आकार

संसार के कुल भू–क्षेत्रफल का 2.42 प्रतिशत भाग भारत में है जबकि इसे संसार की कुल जनसंख्या के लगभग 16 प्रतिशत भाग का भरण–पोषण करना पड़ता है। भारत की जनसंख्या वाले पाठ में आप इसके विषय में और अधिक विस्तार से अध्ययन करेंगें। भारत की भू–सीमा 15200 कि.मी. लंबी है। पाकिस्तान, अफगानिस्तान, चीन, नेपाल, म्याँमार, और बांग्लादेश से हमारे देश की सीमाएँ मिलती हैं। भूटान, पूर्वी

टिप्पणी

हिमालय की गोद में बसा छोटा सा देश है। इसकी प्रतिरक्षा का दायित्व भारत पर है। पाकिस्तान और बांग्लादेश से लगने वाली हमारी अधिकतर सीमा मानव निर्मित है। प्राकृतिक सीमा के निर्धारण के लिए यहाँ न कोई पर्वत हैं और न कोई नदी। यदि आप भारत की संपूर्ण भू सीमा पर दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि यह कहीं तो अत्यन्त गर्म, शुष्क और निर्जन मरुभूमि से गुजरती है, तो कहीं लहलहाते खेतों से और कहीं कल–कल करती नदियों से। यही भू सीमा एक ओर हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियों से गुजरती है तो दूसरी ओर वनाच्छादित पर्वत श्रृँखलाओं से होकर जाती है। विविध प्रकार की भूमियों से गुजरने वाली ऐसी विस्तृत भू–सीमा की सुरक्षा का कार्य अत्यंत कठिन है। इसीलिए सीमा पर पहरेदारी करने वाले भारतीय सिपाही को अत्यन्त प्रतिकूल दशाओं का सामना करना पड़ता है। सेना का एक ही जवान कभी अत्यन्त बर्फीले प्रदेशों का प्रहरी बनता है, तो कहीं तपती दोपहरी में तपते रेत पर पहरा देता है। कभी उसी जवान की नियुक्ति उत्तर पूर्व की दलदली और कछारी भूमि पर या सघन वर्षावनों से आच्छादित भूमि पर होती है। इतनी लंबी और विविध प्रकार की कठिनाईयों से परिपूर्ण भूमि से गुजरने वाली भू–सीमा पर राष्ट्र को प्रतिदिन करोड़ों रुपये खर्च करने पड़ते हैं।

- एशिया, अफ्रीका और ओशीनिया महाद्वीपों के बीच विस्तृत हिन्द महासागर के शीर्ष पर भारत की स्थिति बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसी कारण प्रशान्त महासागर और अटलांटिक महासागरों से होकर शेष महाद्वीपों से संपर्क रखना आसान है।
- उप महाद्वीप में स्थित सभी देशों में से केवल भारत के साथ ही उपमहाद्वीप के देशों की भू–सीमाएँ मिलती हैं।
- क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत संसार का सातवाँ सबसे बड़ा देश है, लेकिन जनसंख्या की दृष्टि से चीन के बाद इसका दूसरा स्थान है।
- भारत के पूर्वी छोर तथा पश्चिमी छोर के स्थानीय समयों में दो घंटे का अन्तर रहता है। 82^0 30' पूर्वी देशान्तर को भारत की मानक मध्याह्न रेखा मानकर समय के इस अन्तर को एक सीमा तक कम कर लिया गया है।

पाठगत प्रश्न 16.1

1. भारत की भू–सीमा से लगे पड़ोसी देशों के नाम बताइए।

_____

2. भारत किन अक्षांशों और देशान्तरों के बीच स्थित है?

_____

3. भारत का दक्षिणतम छोर कौन सा है? सही विकल्प चुनिए—

   (क) कन्याकुमारी, (ख) रामेश्वरम्, (ग) इंदिरा पाइंट, (घ) कावरत्ती।

4. भारत की मानक मध्याह्न रेखा कौन सी है? सही विकल्प चुनिए—

   (क) 68^0 7' पू. (ख) 97^0 25' पू. (ग) 82^0 30' पू. (घ) 80^0 पू.

5. भारत के पश्चिमी तथा पूर्वी छोरों के स्थानीय समय में लगभग कितने घंटे का अन्तर पड़ता हैं?

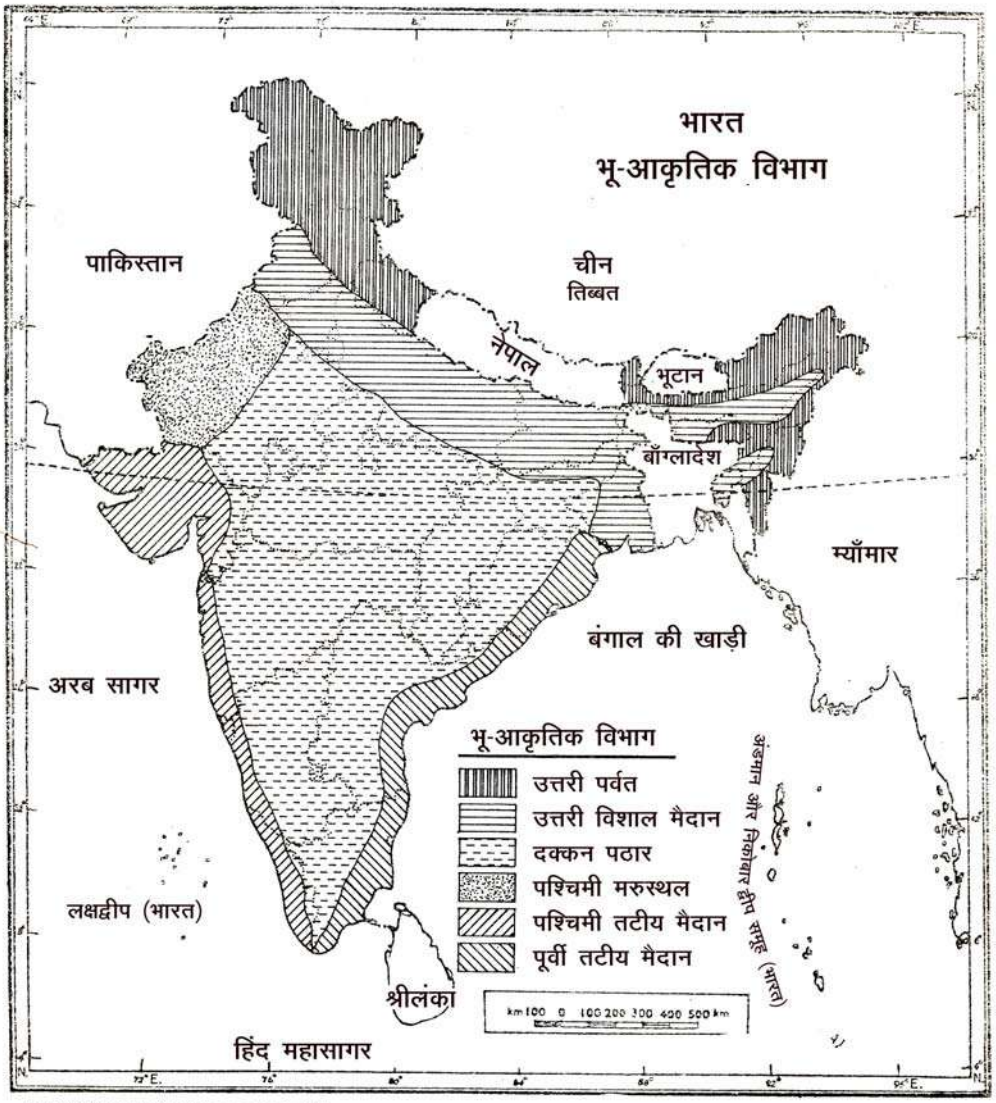

Based upon Survey of India outline map printed in 1979

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act 1971, but has yet to be verified.

© Government of India copyright, 1979

चित्र 16.1 भारत के भौतिक विभाग

टिप्पणी

16.3 भारत के भू-आकृतिक विभाग

भारत भौतिक विविधताओं का देश है। यहाँ लगभग सभी प्रकार की स्थलाकृतियाँ पाई जाती हैं। एक मोटे अनुमान के अनुसार भारत के कुल क्षेत्रफल के 29.3 प्रतिशत भाग पर पर्वत, 27.7 प्रतिशत भाग पर पठार तथा 43 प्रतिशत भाग पर मैदान फैले हुए हैं।

भू–आकृतिक दृष्टि से भारत को चार विभागों में बाँटा जा सकता है–

1. उत्तरी विशाल पर्वत, 2. उत्तरी विशाल मैदान, 3. विशाल पठार, 4. तटवर्ती मैदान और द्वीप समूह।

आइये इन भू–आकृतिक विभागों के विषय में कुछ अधिक विस्तार से जानें।

16.4 उत्तरी विशाल पर्वत

भारत की उत्तर सीमा पर स्थित कश्मीर की उत्तरी पर्वत श्रृंखलाएँ तथा पठार, खास हिमालय पर्वत और अरूणाचल प्रदेश, नागालैंड, असम, मणिपुर, मिजोरम, त्रिपुरा और मेघालय की पहाड़ियाँ सम्मिलित हैं। इन सभी को तीन वर्गों में रखा जा सकता है।

(i) हिमालय पर्वत (ii) हिमालय पार की पर्वत श्रेणियाँ (iii) पूर्वाचल या पूर्वी पहाड़ियाँ।

(i) हिमालय पर्वत

हिमालय संसार की सबसे ऊँची पर्वत श्रृंखला है। यह पर्वत भारत की उत्तरी सीमा पर पश्चिम से पूर्व की ओर एक चाप की आकृति में 2500 किलोमीटर की दूरी में फैला है। जम्मू–कश्मीर में सिंधु नदी के महाखड्ड से लेकर अरुणाचल प्रदेश में ब्रह्मपुत्र के महाखड्ड तक हिमालय का विस्तार है। इसकी चौड़ाई पूर्व में 150 किलोमीटर से लेकर पश्चिम में 400 किलोमीटर तक है। हिमालय लगभग 5 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है। इसकी तीन प्रमुख पर्वत श्रेणियाँ हैं। इन पर्वत श्रेणियों के बीच–बीच में गहरी घाटियाँ और विस्तृत पठार है। हिमालय के ढाल भारत की ओर तीव्र तथा तिब्बत की ओर मंद हैं।

हिमालय पर्वत पश्चिम बंगाल के मैदानी भाग से एकदम ऊपर उठे हुए दिखाई पड़ते हैं। यही कारण है कि इसके दो सर्वोच्च शिखर, एवरेस्ट (नेपाल में) और काँचनजुंगा, मैदानी भाग से ज्यादा दूरी पर नहीं है। इसके विपरीत हिमालय का पश्चिमी भाग मैदानी क्षेत्र से धीरे–धीरे ऊपर उठा है। इसी कारण यहाँ ऊँची चोटियों और मैदानों के बीच कई श्रेणियाँ मिलती हैं। इसीलिए इस भाग की ऊँची चोटियाँ जैसे नंगा पर्वत, नंदा देवी, बद्रीनाथ आदि मैदानी भाग से काफी दूर हैं।

हिमालय में तीन समान्तर पर्वत श्रेणियाँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। ये पर्वत श्रेणियाँ है–(क) हिमाद्रि, (ख) हिमाचल, (ग) शिवालिक।

टिप्पणी

(क) हिमाद्रि (सर्वोच्च हिमालय)—यह हिमालय की सबसे उत्तरी तथा सबसे ऊँची पर्वत श्रृंखला है। हिमालय की यही एक पर्वत श्रेणी ऐसी है, जो पश्चिम से पूर्व तक अपनी निरन्तरता बनाए रखती है। इस श्रेणी की क्रोड ग्रेनाइट शैलों से बनी है, जिसके आस–पास कायान्तरित और अवसादी शैलें भी मिलती हैं। इस श्रेणी के पश्चिमी छोर पर नंगापर्वत शिखर (8126 मी.) तथा पूर्वी छोर पर नामचावरवा शिखर (7756 मी.) है। इस पर्वत श्रेणी की समुद्र तल से औसत ऊँचाई लगभग 6100 मी. है। इस क्षेत्र में 100 से अधिक पर्वत शिखर 6100 मी. से अधिक ऊँचे हैं। संसार की सबसे ऊँची पर्वत चोटी एवरेस्ट (8848 मी.) इसी पर्वत श्रेणी में स्थित है। काँचनजुँगा (8598 मी.) मकालू, धौलागिरि तथा अन्नपूर्णा आदि हिमाद्रि की अन्य चोटियाँ है जिनकी ऊँचाई आठ हजार मीटर से अधिक है। काँचनजुँगा भारत में हिमालय का सर्वोच्च शिखर है।

हिमाद्रि पर्वत श्रेणी वर्ष भर हिमाच्छादित रहती है। इस हिमाच्छादित पर्वत श्रेणी में छोटी–बड़ी अनेक हिमानियाँ है। इन हिमानियों का बर्फ पिघल–पिघल कर उत्तर भारत की नदियों में बहता है जिससे वे सदानीरा बनी रहती हैं। गंगोत्री और यमुनोत्री ऐसी ही हिमानियाँ हैं।

हिमाद्रि पर्वत श्रेणी को जोजीला, शिपकीला, नीति, नाथूला आदि दर्रों से होकर पार किया जा सकता है।

(ख) हिमाचल (लघु) हिमालय—यह पर्वत श्रेणी हिमाद्रि के दक्षिण में स्थित है। यह पर्वत श्रेणी 60 से 80 किलोमीटर तक चौड़ी तथा 1000 से 4500 मीटर तक ऊँची है। इसके कुछ शिखर 5000 मीटर से भी अधिक ऊँचे हैं। यह श्रेणी बहुत ही ऊबड़–खाबड़ है। इसमें संपीडन के द्वारा बड़े पैमाने पर शैलों का कायान्तरण हुआ है। अतः इस श्रेणी की रचना कायान्तरित शैलों द्वारा हुई है। इस श्रेणी के पूर्वी भाग के मन्द ढाल घने वनों से ढके हैं। अन्यत्र इस श्रेणी के दक्षिणाभिमुख ढाल बहुत ही तीव्र और वनस्पति विहीन हैं। उत्तराभिमुख ढालों पर सघन वनस्पति पाई जाती है।

कश्मीर में इस श्रेणी को **पीर पंजाल** तथा हिमाचल प्रदेश में **धौलाधार** के स्थानीय नामों से जाना जाता है। कश्मीर की सुरम्य घाटी, पीर पंजाल और हिमाद्रि श्रेणी के बीच विस्तृत है। हिमाचल पर्वत श्रेणी में ही कांगड़ा और कुल्लू की प्रसिद्ध घाटियाँ है।

हिमाचल पर्वत श्रेणियों पर ही प्रमुख पर्वतीय नगर बसे हैं। शिमला, नैनीताल, मसूरी, अल्मोड़ा और दार्जिलिंग ऐसे ही कुछ प्रसिद्ध पर्वतीय नगर हैं। नैनीताल के आस–पास अनेक सुंदर झीलें हैं।

(ग) शिवालिक (बाह्य हिमालय)—हिमालय की सबसे दक्षिण की श्रेणी शिवालिक के नाम से विख्यात है। हिमालय की हिमाद्रि और हिमाचल पर्वत श्रेणियाँ शिवालिक से पहले बन चुकी थीं। हिमाद्रि और हिमाचल श्रेणियों से निकलने वाली नदियां कंकड़–पत्थर, बालू और मिट्टी भारी मात्रा में बहाकर लाती थीं और इन्हें तेजी से सिकुड़ते टेथिस सागर में जमा कर देती थी। कालांतर में हुई हलचलों से कंकड–पत्थर और बालू के

टिप्पणी

अवसादों में मोड़ पड़ गए और इस प्रकार शिवालिक श्रेणी का निर्माण हुआ। ये सबसे कम संघटित श्रेणियाँ हैं। हिमाद्रि और हिमाचल पर्वत श्रेणियों की तुलना में शिवालिक श्रेणियां कम ऊँची हैं। इनकी औसत ऊँचाई 600 मीटर है। हिमाचल और शिवालिक श्रेणियों के बीच फैली चौरस घाटियों को 'दून' के नाम से जाना जाता है। देहरादून की घाटी इसका उदाहरण है।

(ii) हिमालय पार की पर्वत श्रेणियाँ

जम्मू–कश्मीर राज्य में हिमाद्रि के उत्तर में कुछ पर्वत श्रेणियां फैली हैं। इनमें जास्कर पर्वत श्रेणी हिमाद्रि के समानान्तर विस्तृत है। जास्कर के उत्तर में लद्दाख पर्वत श्रेणी है। इन दोनों पर्वत श्रेणियों के बीच सिन्धु नदी दक्षिण–पूर्व से उत्तर–पश्चिम की ओर बहती है। अनेक विद्वान जास्कर और लद्दाख श्रेणियों को वृहत हिमालय के ही अंग मानते हैं और उन्हें कश्मीर हिमालय में सम्मिलित करते हैं। लद्दाख पर्वत श्रेणी के उत्तर में कराकोरम पर्वत श्रेणी है। संस्कृत साहित्य में काराकोरम का नाम कृष्णगिरि है। इस पर्वत श्रेणी का एक पर्वत शिखर के^{2} (8611 मी.) एवरेस्ट शिखर के बाद संसार का दूसरा सबसे ऊँचा शिखर है।

जम्मू–कश्मीर राज्य के ऊत्तर–पूर्वी भाग में लद्दाख का पठार है। यह पठार हमारे देश का बहुत ऊँचा, शुष्क, और दुर्गम क्षेत्र है।

(iii) पूर्वाचल

ब्रह्मपुत्र महाखड्ड के पार भारत के उत्तर–पूर्वी राज्यों में फैली पहाड़ियों का सम्मिलित नाम पूर्वाचल है। इन पहाड़ियों की औसत ऊँचाई समुद्रतल से 500 से 3000 मी. तक है। ये पहाड़ियाँ दक्षिणी–अरूणाचल प्रदेश, नागालैंड, मिजोरम, मेघालय और त्रिपुरा में स्थित हैं। मिश्मी, पटकाई बुम, नागा, मणिपुर और मिजो (लुशाई) तथा त्रिपुरा इस क्षेत्र की प्रमुख पहाड़ियाँ हैं। मेघालय का पठार उत्तर–पूर्वी पहाड़ियों का ही एक भाग है। इस पठार में गारो, खासी और जयन्तिया पहाड़ियाँ हैं। सरंचनात्मक दृष्टि से यह प्रायद्वीपीय भारत का ही भाग माना जाता है।

- हिमाद्रि, हिमाचल और शिवालिक हिमालय की तीन प्रमुख पर्वत श्रेणियाँ हैं।
- जास्कर, लद्दाख तथा काराकोरम तथा इनके पूर्वी विस्तार के रूप में फैले तिब्बत, कैलाश हिमालय पार की पर्वत श्रेणियाँ हैं।
- मिश्मी, पटकाई बुम, नागा, मणिपुर, मिजो, त्रिपुरा आदि पूर्वाचल की पहाड़ियाँ हैं।

पाठगत प्रश्न 16.2

1. संसार का सर्वोच्च पर्वत शिखर कौन सा है? सही विकल्प चुनिए—

   (क) के^{2} (ख) काँचनजुंगा (ग) एवरेस्ट (घ) नामचाबरवा

2. भारत का सर्वोच्च शिखर कौन सा है? सही विकल्प चुनिए—

   (क) अन्नपूर्णा (ख) नंगा पर्वत (ग) के^{2} (घ) नन्दा देवी

3. हिमालय की तीन समान्तर पर्वत श्रेणियों के नाम लिखिए—

   (क) _____ (ख) _____ (ग) _____

4. संस्कृत साहित्य में किस पर्वत का नाम कृष्णगिरि है?

5. जम्मू–कश्मीर राज्य में स्थित तथा तिब्बत में अपने पूर्वी विस्तार सहित हिमालय पार की प्रमुख पर्वत श्रेणी का नाम लिखिए—

   _____

16.5 उत्तरी विशाल मैदान

यह मैदान हिमालय के दक्षिण में तथा भारतीय विशाल पठार के उत्तर में पश्चिम से पूर्व तक विस्तृत है। यह मैदान पश्चिम में राजस्थान के शुष्क और अर्ध शुष्क भागों से लेकर पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी तक फैला है। इस मैदान का क्षेत्रफल 7 लाख वर्ग किलोमीटर से अधिक है। यह मैदान बहुत उपजाऊ है। देश की कुल जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग इसी मैदान के असंख्य गाँवों और अनेक बड़े नगरों में रहता है।

यह मैदान उत्तर में हिमालय और दक्षिण में भारतीय विशाल पठार से बहाकर लाई गई मिट्टी से बना है। लाखों वर्षों से प्रति वर्ष पर्वतीय क्षेत्रों से मिट्टी ला कर इस मैदान में जमा करती रहती हैं। अतः इस मैदान में मिट्टी की परतें बहुत गहराई तक पाई जाती हैं। कहीं–कहीं तो इनकी गहराई 2000 से 3000 मीटर तक है।

यह मैदान एकदम सपाट और समतल है। समुद्र तल से इसकी औसत ऊँचाई लगभग 200 मीटर है। समुद्र की ओर मंद ढाल होने के कारण इस मैदान में नदियाँ बहुत ही धीमी गति से बहती हैं। वाराणसी से गंगा के मुहाने तक ढाल केवल 10 से.मी. प्रति किलोमीटर है। अंबाला के आस–पास की भूमि अपेक्षाकृत ऊँची हैं। अतः यह भाग पूर्व में गंगा और पश्चिम में सतलुज नदी–घाटियों के बीच जल विभाजक का काम करता है। इस जल विभाजक के पूर्व की ओर की नदियाँ बंगाल की खाड़ी में तथा पश्चिम की ओर की नदियाँ अरब सागर में मिलती हैं।

टिप्पणी

मैदान के अपेक्षाकृत ऊँचे भाग को '**बाँगर**' कहते हैं। इस भाग में नदियों की बाढ़ का पानी कभी नहीं पहुँचता। इसके विपरीत '**खादर**' मैदान का अपेक्षाकृत नीचा भाग है, जहाँ बाढ़ का पानी हर साल पहुँचता रहता है। पंजाब में खादर को '**बेट**' कहते हैं।

पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में शिवालिक पर्वत श्रेणी के साथ–साथ 10-15 कि. मी. चौड़ी मैदानी पट्टी को '**भाबर**' कहते हैं। यह पट्टी कंकरीली बलुई मिट्टी से बनी है। ग्रीष्म ऋतु में छोटे–छोटे नदी–नाले इस पट्टी में भूमिगत हो जाते हैं और इस पट्टी को पार करके इनका जल धरातल पर पुनः आ जाता है। यह जल भाबर के साथ–साथ फैली 15-30 कि.मी. चौड़ी '**तराई**' नाम की पट्टी में जमा हो जाता है। इससे यहाँ दलदली क्षेत्र बन गया है। तराई का अधिकांश क्षेत्र कृषि योग्य बना लिया गया है।

उत्तरी विशाल मैदान को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(i) पश्चिमी मैदान (ii) उत्तरी मध्य मैदान (iii) पूर्वी मैदान (iv) ब्रह्मपुत्र का मैदान।

(i) पश्चिमी मैदानः में राजस्थान का मरुस्थल तथा अरावली पर्वत श्रेणी का पश्चिमी बांगर क्षेत्र सम्मिलित हैं। मरुस्थल का कुछ भाग चट्टानी तथा कुछ भाग रेतीला है। प्राचीन काल में यहाँ सरस्वती और दृषद्वती नाम की सदानीरा नदियाँ बहती थीं। उत्तरी मैदान के इस भाग में बीकानेर का उपजाऊ क्षेत्र भी है। पश्चिमी मैदान से लूनी नदी कच्छ के रन में जाकर विलीन हो जाती हैं। सांभर नाम की खारे पानी की प्रसिद्ध झील इस क्षेत्र में है।

(ii) उत्तरी मध्य मैदानः पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में फैला है। इस मैदान का पंजाब और हरियाणा में फैला भाग, सतलुज, रावी, और व्यास नदियों के द्वारा लाई गई मिट्टी से बना है। यह भाग बहुत उपजाऊ है। इस मैदान का उत्तर प्रदेश में फैला भाग गंगा, यमुना, रामगंगा, गोमती, घाघरा, गंडक नदियों के द्वारा बहाकर लाई गई मिट्टी से बना है। मैदान का यह भाग भी बहुत उपजाऊ है और भारतीय सभ्यता और संस्कृति का पालना रहा है।

(iii) पूर्वी मैदानः गंगा की मध्य और निचली घाटी में फैला है। इस मैदान का विस्तार बिहार और पश्चिम बंगाल के राज्यों में है। बिहार राज्य में गंगा नदी इस मैदान के बीच से होकर बहती है। उत्तर की ओर से घाघरा, गंडक और कोसी तथा दक्षिण की ओर से सोन इसी मैदान में गंगा में मिलती हैं। पश्चिम बंगाल राज्य में जो मैदानी भाग है, उसका विस्तार हिमालय के पाद प्रदेश से लेकर बंगाल की खाड़ी तक है। यहां यह मैदान कुछ अधिक चौड़ा हो गया है। इसका दक्षिणी भाग डेल्टा क्षेत्र है। इस डेल्टा क्षेत्र में गंगा अनेक वितरिकाओं में बंट जाती है। हुगली गंगा की वितरिका का सबसे अच्छा उदाहरण है। यह मैदानी भाग भी बहुत उपजाऊ है।

(iv) ब्रह्मपुत्र का मैदानः भारतीय विशाल मैदान का उत्तर पूर्वी भाग असम में विस्तृत है। यह मैदान ब्रह्मपुत्र और उसकी सहायक नदियों द्वारा बहाकर लाई गई मिट्टी से

बना है। ब्रह्मपुत्र में अक्सर ही भयंकर बाढ़े आती हैं। बाढ़ के समय विशाल जलराशि दूर–दूर तक फैल जाती है। बाढ़ के बाद नदी अपनी धारा बदल देती है। इससे नदी की धारा में अनेक द्वीप बन गए हैं। ब्रह्मपुत्र की धारा में बना माजुली (1250 वर्ग कि.मी.) द्वीप संसार का सबसे बड़ा नदी द्वीप है। यह मैदानी भाग भी बहुत उपजाऊ है। यह मैदानी भाग तीन ओर से पहाड़ियों से घिरा है। गंगा और ब्रह्मपुत्र तथा उनकी सहायक नदियों के द्वारा संयुक्त रूप से बनाए गए मैदान और डेल्टा प्रदेश में बांगलादेश स्थित हैं।

- उत्तरी विशाल मैदान हिमालय और भारतीय पठार से बहाकर लाई गई मिट्टी से बना हैं।
- यह मैदान एकदम सपाट और समतल है। इसमें ढाल नाम मात्र का ही है।
- मैदान दो प्रकार का है – बांगर और खादर
- उत्तरी विशाल मैदान के चार भाग हैं – पश्चिमी मैदान, उत्तरी मध्य मैदान, पूर्वी मैदान और ब्रह्मपुत्र का मैदान।

पाठगत प्रश्न 16.3

1. उत्तरी विशाल मैदान में मिट्टी की परतें अधिक से अधिक कितनी गहराई तक पाई जाती हैं?

   _____

2. बांगर किसे कहते हैं?

   _____

3. भाबर क्षेत्र किन तीन राज्यों में विस्तृत है?

   (क) _____ (ख) _____ (ग) _____

4. पश्चिमी मैदान में प्राचीन काल में कौन सी दो सदानीरा नदियां बहती थीं?

   (क) _____ (ख) _____

5. उत्तरी मध्य मैदान में बहने वाली चार नदियों के नाम बताओ।

   (क) _____ (ख) _____

   (ग) _____ (घ) _____

टिप्पणी

16.6 भारत विशाल पठार

उत्तरी विशाल मैदान के दक्षिण में भारतीय विशाल पठार फैला है। यह हमारे देश का सबसे बड़ा भौतिक विभाग है। इसका क्षेत्रफल लगभग 16 लाख वर्ग किलोमीटर है। अर्थात् देश का लगभग आधा भाग पठारी प्रदेश है। यह प्राचीन चट्टानों से बना पठारी प्रदेश है। इस प्रदेश में छोटे बड़े अनेक पठार, पर्वत श्रृखलाएं और नदी घाटियां हैं। भारतीय विशाल पठार की उत्तर–पश्चिमी सीमा पर अरावली पहाड़ियां हैं। बुंदेलखंड का पठार, कैमूर तथा राजमहल की पहाड़ियां, इसकी उत्तरी तथा उत्तर–पूर्वी सीमा निर्धारित करती हैं। पश्चिमी घाट, सह्याद्रि तथा पूर्वी घाट, विशाल पठार की क्रमशः पश्चिमी और पूर्वी सीमाएं बनाते हैं। इस पठार का अधिकांश धरातल 400 मीटर से अधिक ऊँचा है। इस पठार का सबसे ऊँचा स्थान अनाईमुदी शिखर (2695 मी.) है। इस पठार का सामान्य ढाल पश्चिम से पूर्व की ओर है।

विशाल पठार अत्यन्त प्राचीन भूखंड है। यह भाग प्राचीन गोंडवानालैंड का हिस्सा रहा है। यह भाग प्राचीन काल से सदैव समुद्रतल से ऊपर रहा है। इसी से इसका बड़े पैमाने पर अनाच्छादन हुआ है। इसके पर्वत अवशिष्ट प्रकार के प्रर्वत हैं। ये पर्वत बहुत कठोर शैलों के बने हैं। इन पर अनाच्छादन की शक्तियों का प्रभाव कम पड़ा है—जबकि इनके आस पास की भूमि की शैल अपरदित होकर बह गई है। प्राचीन होने के कारण विशाल पठार की नदियों ने अपना आधार तल लगभग प्राप्त कर लिया है। वे चौड़ी तथा उथली घाटियों में बहती हैं। भारतीय विशाल पठार की विशेष रूप से इसके दक्षिणी भाग की रचना कायान्तरित और आग्नेय शैलों से हुई है। नर्मदा नदी ने इस विशाल पठार को दो भागों में विभाजित कर दिया है। नर्मदा नदी के उत्तरी भाग को मध्यवर्ती उच्च भूमि कहते हैं, तथा दक्षिणी भाग को प्रायद्वीपीय पठार कहते हैं। इस भाग का अधिक प्रचलित नाम दक्कन का पठार है।

(i) मध्यवर्ती उच्चभूमि नर्मदा नदी के उत्तर तथा उत्तरी विशाल मैदान के दक्षिण में फैली है। इसके पश्चिमी भाग में अरावली है। अरावली गुजरात से राजस्थान होकर दिल्ली तक उत्तर–पूर्वी दिशा में 700 कि.मी. की दूरी में फैली हैं। दिल्ली के निकट इनकी समुद्रतल से ऊँचाई 400 मीटर तथा दक्षिण में 1500 मीटर तक है। गुरु शिखर (1722 मी.) अरावली का सर्वोच्च शिखर है। गुजरात और राजस्थान की सीमा पर स्थित माउण्ट आबू एक सुन्दर पर्वतीय नगर है। अरावली के पूर्व की भूमि बहुत ऊबड़–खाबड़ है। मध्यवर्ती उच्च भूमि का एक भाग मालवा के पठार के नाम से जाना जाता हैं, यह भाग अरावली के दक्षिण पूर्व तथा विध्यांचल श्रेणी के उत्तर में विस्तृत है। चंबल और बेतवा नदियाँ इस क्षेत्र का जल बहाकर यमुना में ले जाती हैं।

मध्यवर्ती भूमि का वह भाग, जो मालवा पठार के पूर्व में फैला हुआ है, बुंदेलखण्ड के पठार के नाम से विख्यात है। बुंदेलखण्ड के पूर्व में बघेलखण्ड का पठार तथा इसके और पूर्व में छोटानागपुर का पठार है। मध्यवर्ती भूमि के दक्षिणतम भाग में विंध्याचल और उत्तर पूर्व में महादेव, कैमूर तथा मैकाल की पहाड़ियां हैं। नर्मदा घाटी की ओर विध्यांचल श्रेणी

के एकदम खड़े कगार हैं। इससे इसी बात की पुष्टि होती है कि नर्मदा एक भ्रंश या रिफ्ट घाटी में बहती है। इस श्रेणी में दर्रे बहुत कम हैं। अतः प्राचीन काल में यह काफी समय तक उत्तर और दक्षिण भारत के बीच अवरोध बना रहा।

विध्यांचल और सतपुड़ा के मध्य नर्मदा घाटी है। इसी घाटी में नर्मदा नदी पूर्व से पश्चिम की ओर बहती हुई, अरब सागर में मिल जाती है। विंध्याचल और सतपुड़ा श्रेणियों के बीच के भू–भाग के नीचे की ओर धंसने से इस घाटी का निर्माण हुआ है।

(ii) प्रायद्वीपीय पठार (दक्कन का पठार) यह भारतीय विशाल पठार का सबसे बड़ा भू–आकृतिक विभाग है। इस पठार की आकृति त्रिभुज के समान है। इसकी एक भुजा कन्याकुमारी से राजमहल पहाड़ियों को जोड़ने वाली रेखा है, जो पूर्वी घाट से होकर गुजरती है। दूसरी भुजा सतपुड़ा श्रेणी, महादेव पहाड़ियाँ, मैकाल श्रेणी और राजमहल की पहाड़ियाँ हैं। तीसरी भुजा सह्याद्रि श्रेणी (पश्चिमी घाट) है। प्रायद्वीपीय पठार का कुल क्षेत्रफल लगभग 7 लाख वर्ग किलोमीटर है तथा ऊँचाई 500 मी. से 1000 मी. तक है। प्रायद्वीपीय पठार के पश्चिम में सह्याद्रि श्रेणी है। अरब सागर के तट के साथ फैले खड़े ढाल वाले सह्याद्रि विस्मयकारी हैं। पश्चिम में स्थित होने के कारण इसका एक नाम पश्चिमी घाट भी है। घाट शब्द का एक अर्थ पहाड़ है। अतः इसका यह नाम भी सार्थक ही है। सह्याद्रि की औसत ऊँचाई उत्तर से दक्षिण की ओर बढ़ती जाती है। केरल में स्थित अनाईमुदी शिखर (2695 मी.) दक्षिण भारत का सर्वोच्च पर्वत शिखर है। अनाईमुदी; अनामलाई श्रेणी, कार्डेमम पहाड़ियों और पलनी पहाड़ियों का मिलन बिन्दु है। पलनी पहाड़ियों में कोडैकानल एक सुरम्य पर्वतीय नगर है।

पूर्वी घाट प्रायद्वीपीय पठार के पूर्वी भाग में फैले हैं। इन्हें पूर्वाद्रि श्रेणी के नाम से भी जाना जाता है। यह श्रेणी तमिलनाडु और कर्नाटक की सीमा पर स्थित नीलगिरि पर सह्याद्रि (पश्चिमी घाट) से मिल जाती है। नीलगिरि में उदगमंडलम (ऊटी) नगर दक्षिण भारत का प्रसिद्ध पर्वतीय नगर है। यह नगर तमिलनाडु में स्थित है। स्वतंत्रता से पूर्व यह मद्रास प्रेसीडेंसी के गवर्नर का ग्रीष्मकालीन निवास स्थान हुआ करता था। सह्याद्रि श्रेणी की भांति यह अविच्छिन्न (निरंतर) नहीं है। महानदी, गोदावरी, कृष्णा, पेन्नार और कावेरी नदियों ने इसे कई स्थानों पर खण्डित किया है।

सह्याद्रि और पूर्वाद्रि (पूर्वी घाट) के बीच के पठारी भाग को कई स्थानीय नामों से जाना जाता है। आंध्र प्रदेश में फैला तेलंगाना का पठार प्रायद्वीपीय पठार का ही एक भाग है। प्रायद्वीपीय पठार के उत्तर–पूर्वी भाग को बघेल खंड और छोटा नागपुर के पठार के नाम से जाना जाता है। छोटा नागपुर के पठार में बहने वाली दामोदर नदी की घाटी में हमारे देश की प्रसिद्ध कोयला पट्टी है। यहाँ और भी बहुत से खनिज पाए जाते हैं।

टिप्पणी

- विशाल पठार की आकृति त्रिभुज के समान है।
- इसके दो प्रमुख विभाग हैं—मध्यवर्ती उच्च भूमि तथा प्रायद्वीपीय पठार।
- अरावली, विंध्याचल, सह्याद्रि, पूर्वाद्रि, अनामलाई, कार्डेमम, पलनी, महादेव, मैकाल और सतपुड़ा विशाल पठार की प्रमुख पहाड़ियाँ हैं।
- चंबल, नर्मदा, तापी, महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी प्रमुख पठारी नदियाँ हैं।

पाठगत प्रश्न 16.4

1. दक्षिण भारत का सर्वोच्च शिखर कौन सा है? सही विकल्प चुनिए—

   (क) दोदा बेटा (ख) अनाईमुदी (ग) महाबलेश्वर (घ) गुरू शिखर

2. कौन सी नदी भ्रंश घाटी से होकर बहती है? सही विकल्प चुनिए—

   (क) नर्मदा, (ख) चंबल, (ग) गोदावरी, (घ) पेन्नार

3. मालवा के पठार में बहने वाली नदियों के नाम लिखिए।

   (क) _____ (ख) _____

4. पर्वतीय नगर कोडैकानल किन पहाड़ियों में स्थित है?

   _____

5. अरावली की पहाड़ियों में बसे पर्वतीय नगर का क्या नाम है?

   _____

16.7 तटीय मैदान

हमारे देश का विशाल पठार चारों ओर से घिरा हुआ है। उत्तर में उत्तरी विशाल मैदान तथा दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में तटीय मैदान हैं।

पूर्वी तटीय मैदान उत्तर में गंगा नदी के मुहाने से ले कर कन्याकुमारी तक बंगाल की खाड़ी के तट के साथ–साथ फैला है। पश्चिमी तटीय मैदान की तुलना में यह अधिक चौड़ा है। इस मैदान में महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी नदियों के डेल्टा सम्मिलित हैं। इस मैदान में चिल्का और पुलीकट दो बड़े–बड़े अनूप (लैगून) हैं। ये झीलें बंगाल की खाड़ी के थोड़े से जलीय भाग के बालू–भित्ति के द्वारा घिर जाने से बनी हैं। चिल्का महानदी डेल्टा के दक्षिण में हैं। यह 75 किलोमीटर लम्बी है। पुलीकट झील चेन्नई नगर के उत्तर में है। गोदावरी और कृष्णा नदियों के डेल्टाओं के मध्य में कोल्लेरू झील है। पूर्वी तटीय मैदान बहुत उपजाऊ है। इसमें धान की फसल बहुत अच्छी होती है।

पश्चिमी तटीय मैदान उत्तर में कच्छ के तट से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक अरब सागर के साथ–साथ फैला है। गुजरात के मैदान को छोड़कर यह मैदान पूर्वी तटीय मैदान से कम चौड़ा है। दक्षिणी गुजरात से लेकर मुंबई तक पश्चिमी तटीय मैदान अपेक्षाकृत चौड़ा है और दक्षिण की ओर संकरा होता गया है। गुजरात, कच्छ के रन तथा काठियावाड़ के मैदानों में कहीं–कहीं चट्टानी टीले और छोटी पहाड़ियां दिखाई पड़ती हैं। गुजरात का मैदान काली मिट्टी से बना है। उत्तर में दमण से लेकर दक्षिण में गोवा तक लगभग 500 कि.मी. का तटीय भाग कोंकण कहलाता है। यह कटा–फटा है। इसमें कई छोटी–छोटी नदियां बहती हैं। यहां कई प्राकृतिक पोताश्रय हैं। गोवा से मंगलोर तक के तट को कर्नाटक तट कहते हैं। मंगलौर से कन्याकुमारी तक के तट को मलाबार तट कहते हैं। यहां तटीय मैदान कुछ चौड़ा है। मलाबार तट में अनेक लंबे और सकरे अनूप हैं। 80 कि.मी. से भी अधिक लंबा वेम्बनाड ऐसा ही एक अनूप है। इसी पर कोच्चि बन्दरगाह बसा है।

16.8 भारतीय द्वीप

भारत में छोटे–छोटे द्वीप समूह भी हैं। एक द्वीप समूह बंगाल की खाड़ी में म्यांमार के तट से कुछ दूरी पर है। यह अपेक्षाकृत बड़ा है। इसका नाम अंडमान और निकोबार द्वीप समूह है। दूसरे का नाम लक्षद्वीप है। यह द्वीप समूह केरल तट से कुछ दूरी पर अरब सागर में स्थित है।

अंडमान द्वीपों में (i) उत्तरी (ii) मध्य (iii) दक्षिणी तथा (iv) लघु अंडमान द्वीप सम्मिलित है। पोर्टब्लेअर नगर इस संपूर्ण संघ राज्य क्षेत्र की राजधानी है। यह दक्षिण अंडमान में स्थित है। दस अंश जलमार्ग इस द्वीप समूह को निकोबार द्वीप समूह से अलग करता है। निकोबार द्वीप समूह की स्थिति अंडमान द्वीप समूह के दक्षिण में है। इस द्वीप समूह में कार निकोबार, लघु निकोबार तथा वृहत् निकोबार द्वीप सम्मिलित हैं। भारत संघ का दक्षिणतम छोर वृहत् निकोबार द्वीप में है। श्रीमती इन्दिरा गांधी के नाम पर इसका नाम इन्दिरा पाइण्ट रखा गया है। ये द्वीप समूह समुद्री जल में डूबी पर्वत श्रृंखला के जैसा प्रतीत होता है। अंडमान का बैरन द्वीप भारत का अकेला जागृत ज्वालामुखी है। सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के कारण इन द्वीपों में वायु सेना और नौसेना के अड्डे हैं। सात देशों–बांग्लादेश, म्यांमार, थाईलैण्ड, मलेशिया, सिंगापुर, इण्डोनेशिया और श्रीलंका के सम्मुख इस द्वीप समूह की स्थिति है।

लक्षद्वीप समूह केरल तट के पश्चिम में अरब सागर में स्थित है। ये सभी प्रवाल द्वीप हैं। इनका निर्माण प्रवाल जैसे अत्यन्त सूक्ष्म जीवों के चूने से बने कवचों के लगातार जमाव से हुआ है। ये सभी द्वीप बहुत छोटे हैं। इनमें सबसे बड़े द्वीप मिनीकाय का क्षेत्रफल 4.5 वर्ग कि.मी. है। कवारत्ती इस द्वीप समूह की राजधानी है।

टिप्पणी

- अरब सागर तट के साथ–साथ पश्चिमी तटीय मैदान फैला है।
- पूर्वी तटीय मैदान बंगाल की खाड़ी के तट के साथ विस्तृत है।
- पूर्वी तटीय मैदान, पश्चिमी तटीय मैदान की तुलना में अधिक चौड़ा है।
- लक्षद्वीप समूह अरब सागर में तथा अंडमान निकोबार द्वीप समूह बंगाल की खाड़ी में स्थित हैं। इनकी स्थिति सामरिक दृष्टिकोण से बहुत ही महत्वपूर्ण है।

पाठगत प्रश्न 16.5

1. पूर्वी और पश्चिमी तटीय मैदानों में से कौन–सा अधिक चौड़ा है?

   _____

2. पूर्वी तटीय मैदान के दो अनूपों के नाम लिखो।

   (क) _____ (ख) _____

3. गोदावरी और कृष्णा नदियों के डेल्टाओं के मध्य कौन–सी झील है?

   _____

4. कोंकण तट का विस्तार कहां से कहां तक है?

   _____

5. भारत का कौन सा द्वीप समूह प्रवाल जीवों द्वारा बना है? सही विकल्प चुनिए–

   (क) अंडमान, (ख) निकोबार, (ग) लक्षद्वीप, (घ) बैरन

   _____

16.9 अपवाह तंत्र

अपवाह तंत्र से तात्पर्य किसी क्षेत्र की जल प्रवाह प्रणाली से है अर्थात् किसी क्षेत्र के जल को कौन–सी नदियां बहाकर ले जाती हैं। नदी अपना जल किस दिशा में बहाकर समुद्र में मिलाती है, यह कई कारकों पर निर्भर करता है जैसे–भूतल का ढाल, भौतिक संरचना, जल प्रवाह की मात्रा तथा जल का वेग। भारत में भूमि के जल को बहाकर ले जाने वाली छोटी–बड़ी अनेक नदियां हैं। भारत के अपवाह तंत्र को दो भागों में विभाजित करके उसका अध्ययन किया जा सकता है–उत्तरी भारत का अपवाह तंत्र तथा दक्षिणी भारत का अपवाह तंत्र।

उत्तरी भारत के अपवाह तंत्र में हिमालय का बड़ा महत्व है; क्योंकि उत्तर भारत की नदियों का उद्गम हिमालय और उसके पार से है। ये नदियां दक्षिण भारत की नदियों से भिन्न हैं, क्योंकि ये तेज गति से अपनी घाटियों को गहरा कर रही हैं। अपरदन से प्राप्त मिट्टी आदि को बहाकर ले जाती हैं और मैदानी भाग में जल प्रवाह की गति मंद पड़ने पर मैदानों और समुद्रों में जमा कर देती हैं। उत्तरी विशाल मैदान का निर्माण इन्हीं नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी से हुआ है। हिमालय से निकलने वाली कुछ नदियां हिमालय से भी पहले विद्यमान थीं। जैसे–जैसे हिमालय की पर्वत श्रेणियां ऊपर उठती गईं, ये नदियां अपनी घाटियों को गहरा और गहरा काटती रहीं। इसके परिणामस्वरूप इन नदियों ने हिमालय की श्रेणियों में बहुत गहरी घाटियां या महाखड्ड बना लिए हैं। बुंजी (जम्मू–कश्मीर) के पास सिंधु नदी का महाखड्ड 5200 मीटर गहरा है। सतलुज और ब्रह्मपुत्र नदियों ने भी ऐसे ही महाखड्ड बनाए हैं।

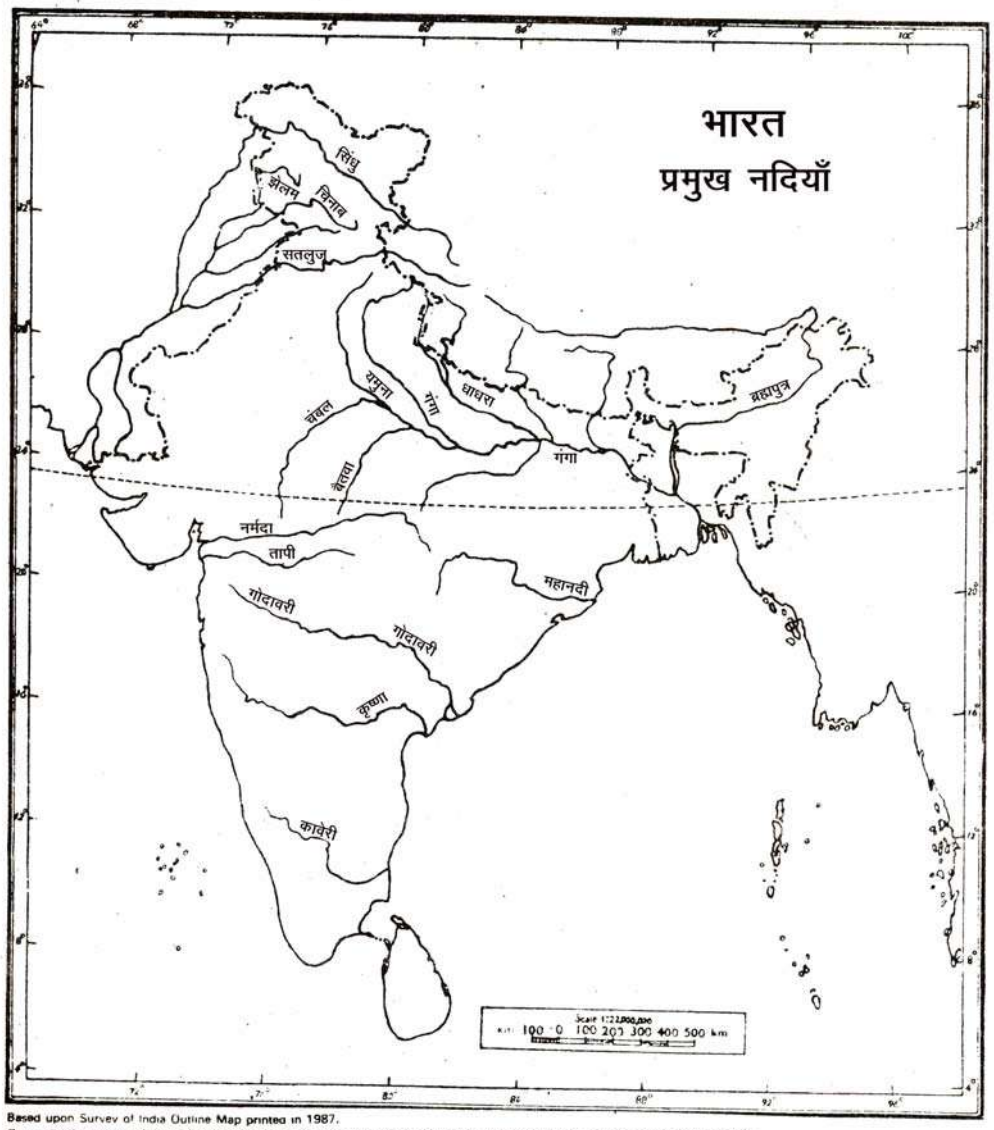

Based upon Survey of India Outline Map printed in 1987.
The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.
Responsibility for correctness of internal details shown on the map rests with the publisher.
© Government of India copyright. 1987.

चित्र 16.2 भारत का अपवाह तंत्र

टिप्पणी

उत्तरी भारत के अपवाह तंत्र के तीन भाग हैं–सिंधु, गंगा तथा ब्रह्मपुत्र का अपवाह तंत्र। सिंधु, झेलम, चिनाब, रावी, व्यास और सतलुज सिंधु नदी तंत्र की प्रमुख नदियां हैं। गंगा नदी तंत्र में रामगंगा, घाघरा, गोमती, गंडक, कोसी, अपनी दक्षिणी सहायक नदियों सहित यमुना, सोन और दामोदर नदियों का प्रमुख स्थान है। ब्रह्मपुत्र नदी तंत्र में दिबांग, लोहित, तिस्ता, और मेघना प्रमुख नदियां हैं। दिबांग और लोहित अरूणाचल प्रदेश में, तिस्ता सिक्किम, प. बंगाल में और मेघना बांग्लादेश के उत्तर पूर्व में बहती है।

दक्षिण भारत का अपवाह तंत्र–दक्षिण भारत एक बहुत ही पुराना भू–भाग है। इसीलिए इसकी नदियां वृद्धावस्था में हैं। इस क्षेत्र की सभी नदियां अपने आधार तल पर पहुंच गई हैं और अपनी घाटी को लंबवत् काटने की उनकी क्षमता लगभग समाप्त हो गई है। अब तो ये नदियां धीरे–धीरे अपने किनारों को काट रही है, जिससे इनकी घाटियां चौड़ी होती जा रही हैं, इसी के परिणामस्वरूप इनके निचले भागों में बाढ़ का पानी बहुत बड़े क्षेत्र में भर जाता है। ऐसा विश्वास है कि हिमालय के निर्माण के समय झटके लगने के कारण दक्षिण भारत का ढाल पूर्व की ओर हो गया था। नर्मदा और तापी को छोड़कर शेष सभी बड़ी नदियां पूर्व की ओर बहती हैं। नर्मदा और तापी नदियां भ्रंश घाटियों से होकर गुजरती हैं। महानदी, गोदावरी, कृष्णा, पेन्नार, पालार, कावेरी और वेगाई दक्षिणी भारत के अपवाह तंत्र की प्रमुख नदियां हैं।

दक्षिणी प्रायद्वीप के उत्तरी भाग का ढाल उत्तर की ओर है। अतः विंध्याचल–पर्वत से निकलकर कुछ नदियां उत्तर की ओर बहती हुई यमुना और गंगा में मिल जाती हैं। इनमें चंबल, सिन्ध, बेतवा, केन और सोन नदियां मुख्य हैं।

हिमालयी और प्रायद्वीपीय भारत की नदियों में अन्तर–जो नदियां हिमालय से निकलती हैं, उनमें से अधिकतर सदानीरा हैं। उनमें वर्षभर जल बना रहता है, क्योंकि शुष्क ऋतु में हिमाद्रि में फैली हिमानियों का जल पिघल–पिघल कर नदियों में बहता रहता है। परिणामस्वरूप सूखे के समय भी उनमें जल का प्रवाह बना रहता है। इसके विपरीत प्रायद्वीपीय भारत की नदियों में जल कम ज्यादा होता रहता है। वर्षा ऋतु में खूब पानी होता है, जबकि लंबी शुष्क ऋतु में बहुत कम पानी रहता है। कहीं–कहीं तो वे सूख भी जाती है।

16.10 भू-आकृतिक विभागों की विविधता तथा पारस्परिक पूरकता

भारत में विविध प्रकार की स्थलाकृतियाँ और उच्चावच के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। उत्तर में फैले इसके नवीन वलित पर्वतों के भौतिक लक्षण बड़े तीखे और सुस्पष्ट हैं। इनमें ऊंचे–ऊंचे पर्वतीय दर्रे और विप्रपाती (खड़े ढाल वाली) गहरी नदी घाटियां सम्मिलित हैं। यदि एक ओर तीव्र ढाल है, तो दूसरी ओर मन्द ढाल हैं। यदि कुछ भाग

सघन वनों से विहीन है तो दूसरे भाग विविध वनस्पति से आच्छादित है। यहां उष्णकटिबंधीय वर्षावनों से लेकर पर्वतीय घास भूमियां तक पाई जाती हैं। उनका अपने विस्तृत हिमक्षेत्रों, हिमानियों, निलंबी घाटियों सहित मनोरम जल प्रपातों तथा श्रीनगर की डल झील जैसी हिमानीकृत झीलों पर गर्व होना सर्वथा उचित है। युवावस्था वाली हिमालयी नदियां अपने मार्गों में उछलती, कूदती, कलकल करती, जल प्रपातों, क्षिप्रिकाओं और सोपानी जल प्रपातों का निर्माण करती तीव्र वेग से बहना पसन्द करती हैं। इनके गहरे महाखड्ड निश्चय ही विस्मयकारी हैं। ये एक ओर क्रमिक रूप से ऊपर उठती पर्वत श्रेणियों और दूसरी ओर हिमालय के उस पार की सिन्धु, सतलुज और ब्रह्मपुत्र जैसी घाटियों को निरन्तर गहरा और गहरा काटने वाली नदियों के बीच सन्तुलन स्थापित करती हैं। संसार के गिने–चुने देशों को भी प्रकृति ने ऐसे भव्य तथा मदोन्मत्त सौन्दर्य से युक्त युवा वलित पर्वतों पर गर्व करने का लेश मात्र भी अवसर नहीं दिया है।

भारतीय उपमहाद्वीप और शेष एशिया के मध्य भौतिक बाधा बनकर संसार की इन सर्वोच्च और सबसे अधिक लंबी पर्वत श्रृंखलाओं ने भारतीय उपमहाद्वीप में एक अनूठी संस्कृति को विकसित होने का अवसर दिया है। जलवायु विभाजक के रूप में इस की भूमिका और भी अधिक प्रभावशाली है। यह भू–आकृतिक विभाग हिम और जल के भंडार के रूप में कार्य करता है। इससे सैकड़ों सदानीरा नदियां निकलती है। ये नदियां संसार के सबसे बड़े और सबसे उपजाऊ मैदानों में से एक में होकर बहती है और उसे सींचती हैं। वास्तव में ये मैदान पर्वतों और उनसे निकलने वाली नदियों के द्वारा दिया गया उपहार हैं। यह जलविद्युत, जलावन, इमारती लकड़ी, विविध वनोत्पाद और औषधीय जड़ी–बूटियों का भंडार है। इन के साथ–साथ यहां कुछ विचित्र वन्य जीव भी पाए जाते हैं। इसीलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि यहां गमियों और सर्दियों दोनों ही ऋतुओं में देश–विदेश से आने वाले पर्यटकों का तांता लगा रहता है।

उत्तरी मैदान विस्तार की दृष्टि से संसार में बेजोड़ हैं। इस समतल और सपाट मैदान का जल निकास अति उत्तम है। धरातलीय और भौमजल के द्वारा यहां काफी सिंचाई की जाती है। सर्पिल नदियां, चाप झीलें, गुंफित नदी धाराएं तथा वितरिकाओं का जाल इस अत्यन्त समतल और सपाट मैदान की एकरूपता को भंग कर देती हैं। एक समय ऐसा था जब यह पूरा मैदान, वनाच्छादित था, लेकिन आज पूरे मैदान पर खेतों में फसलें लहलहाती है। इसके डेल्टा के निचले भागों में ज्वारीय या मैन्ग्रोव वनों की पट्टियां है। इस जल–बहुल और उपजाऊ मृदा वाले मैदान में साल दर साल विविध प्रकार की फसलें उगाई जाती है। इन्ही से संसार की जनसंख्या के एक बहुत

टिप्पणी

बड़े भाग का भरण–पोषण होता है। भारी संख्या में गोजातीय पशुओं का पालन भी इसी मैदान की कृपा का फल है। वे संसार के खाद्यान्नों के सबसे बड़े भंडारों में से एक है। यहां अनेक प्रकार की दालें, अनाज, तिलहन, फल और सब्जियां उगाई जाती हैं। इन के अतिरिक्त कपास, जूट और गन्ना जैसी औद्योगिक या नकदी फसलें भी खूब पैदा की जाती है।

प्रायद्वीपीय भारत का भूखंड उत्तरी पर्वतों और मैदानों के बिल्कुल ही विपरीत है। यहां सामान्य ऊंचाई की पहाड़ियां पाई जाती हैं तथा यहां का धरातल अत्यधिक अपरदित और अनाच्छादित है। यह संसार के सबसे प्राचीन भू–भागों में से एक है। इसकी गोलाकृति पहाड़ियों और सपाट चोटियों वाले कटकों का सौन्दर्य अद्‌भुत है। विविध कायान्तरित तथा प्राचीन ग्रेनाइट शैलों के द्वारा यहां पहाड़ियों, पठारों और शल्कित शैलों का निर्माण हुआ है। इनके अलावा पश्चिमी भारत के दक्खन के लावा प्रदेश में विशेष प्रकार की सपाट चोटियों वाली पहाड़ियां और सोपानी संरचनाएं पाई जाती हैं। अरब सागर के तट के साथ–साथ मीलों दूर तक अविच्छिन रूप से इनके प्रवण ढालों वाले दीवार जैसे कगार पाए जाते हैं। इनके सौन्दर्य का वर्णन देखने के बाद ही किया जा सकता है। यह भू–आकृतिक विभाग ज्वार–बाजरे तथा कपास, गन्ना, कहवा, मूंगफली जैसी विविध औद्योगिक फसलों के लिए विख्यात है। खनिजों के भंडार के रूप में इसका बड़ा भारी महत्त्व है। यहां लौह खनिज और कोयला तथा परमाणु या रेडियो धर्मी खनिज ईधन विशिष्ट महत्त्व रखते है। यहा ंजलविधुत के भी विशाल संसाधन हैं। इस प्रकार ये कृषि–आधारित तथा खनिज–आधारित दोनों की प्रकार के उद्योगों के लिए सुदृढ़ आधार प्रदान करते हैं।

हमारी तट रेखा कहीं सपाट है तो कहीं कटी–फटी है। कटी–फटी तट रेखा पर मुंबई और मर्मगांव जैसे विस्तृत प्राकृतिक पोताश्रय मिलते हैं। तटीय पट्टियों के साथ गहरे तथा उथले जल वाली मछलियों के पकड़ने के लिए आदर्श दशाएं विद्यमान है। पूर्वी तटीय मैदानों में बड़े उपजाऊ डेल्टा है, जो सचमुच धान के कटोरे बन गए है। यदि यह तट उन्मज्जन का उदाहरण है तो इसके विपरीत पश्चिमी तट का प्रमुख भाग निमज्जित तट का उदाहरण है। कृषि की उपजों में चावल, नारियल, रबड़ तंबाकू और मसाले प्रमुख हैं। यहां अपतट तेल और प्राकृतिक गैस के क्षेत्रों का भी पता चला है। यदि लक्षद्वीप प्रवाल निर्मित है तो अंडमान और निकोबार द्वीप समूह पर्वत श्रृंखलाओं की उन्मज्जित चोटियां है। मुख्य भूमि की सुरक्षा के लिए इन द्वीपों का विशेष सामरिक महत्व है। इनके तटों को पखारने वाले समुद्रों के पार सात देश हैं। ये देश

है—बांग्लादेश, म्यांमार, थाईलैण्ड मलयेशिया, सिगांपुर, इण्डोनेशिया और श्रीलंका। ये द्वीप मत्स्याखेट, वनों और पर्यटन के लिए प्रसिद्ध हैं।

इस प्रकार उच्चावच के बड़े और छोटे लक्षणों ने तथा स्थलाकृतियों ने हमारी संस्कृति को संपन्न बनाने में योगदान दिया है। इन्होंने ही कृषि की क्षमताओं को बढ़ाया है, जिससे यहां लगभग सभी प्रकार की फसलें पैदा की जा सकती है। इन्होंने ही आधुनिक उद्योगों को सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। इस प्रकार सभी भू–आकृतिक विभाग पूरी तरह से अन्योन्याश्रित है।

पाठगत प्रश्न 16.6

1. अपवाह तंत्र को प्रभावित करने वाले कोई दो कारक बताइये।

   (क) _____ (ख) _____

2. प्रत्येक कथन के बाद कोष्ठक में दिये गये शब्दों में से उचित शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

   (1) भारत भूमि का जल बहकर _____ और _____ में जाता है। (हिंद महासागर, बंगाल की खाड़ी, फारस की खाड़ी, अरब सागर)

   (2) दक्षिण भारत में पूर्व से पश्चिम की ओर बहने वाली नदियां _____ और _____ हैं। (महानदी, कावेरी, नर्मदा, तापी)

3. भारतीय विशाल पठार की उत्तर की ओर बहने वाली तीन नदियों के नाम लिखिए।

   (क) _____ (ख) _____ (ग) _____

4. बुंजी के पास सिंधु नदी का महाखड्ड कितना गहरा है?

   _____

टिप्पणी

आपने क्या सीखा

उत्तर में गगनचुंबी पर्वतों से धिरा तथा दक्षिण में समुद्रों और महासागरों से परिवेष्टित भारतीय उपमहाद्वीप में विशिष्ट संस्कृति के विकास के विषय में स्पष्टीकरण भी इसी में मिल जाता है। उपमहाद्वीप में भारत का ही वर्चस्व है क्योंकि इसकी कुल जनसंख्या का तीन–चौथाई भाग भारत में निवास करता है। इसके अतिरिक्त उपमहाद्वीप के प्रत्येक सदस्य देश के साथ इसकी साझी सीमाएं हैं।

हिन्द महासागर के शीर्ष पर स्थित होने के कारण यह एशिया, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया महाद्वीपों के साथ व्यापार बढ़ाने के लिए बहुत अच्छी स्थिति में है। स्वेज नहर के निर्माण के पश्चात् यूरोप और उत्तर अमेरीका के साथ संपर्क करना बहुत आसान हो गया है। फारस की खाड़ी के निकटवर्ती तेल–संपन्न देशों से भारत अपेक्षाकृत कम दूरी पर स्थित है।

अक्षांशीय विस्तार के अधिक होने के कारण भारत के उत्तरी और दक्षिणी भागों की जलवायु में भारी अन्तर हो गया है। इसके पूर्वी और पश्चिमी छोरों के बीच समय में दो घंटे का अन्तर होने में देशान्तरीय विस्तार का अधिक होना ही मुख्य कारक है। 80° $30'$ पूर्वी देशान्तर को प्रधान मध्याह्न रेखा स्वीकार करके समय के इस अन्तर को काफी कम कर दिया गया है। इसका स्थानीय समय ही पूरे देश का मानक समय स्वीकार कर लिया गया है। क्षेत्रफल की दृष्टि से संसार में भारत का सातवां स्थान है, लेकिन जनसंख्या की दृष्टि से भारत चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। इसका अर्थ यह हुआ कि हमारे स्थलीय तथा जलीय संसाधनों पर जनसंख्या का बड़ा भारी दबाव है।

भारत के भू–आकृतिक विभाग बड़े स्पष्ट है तथा उनमें बहुत अन्तर पाया जाता है। वास्तव में इनमें से प्रत्येक को अपने प्रकार के आदर्श उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इनमें चाहे पर्वत हो, या पठार हो या मैदान हो। ये भले ही विविधता को बढ़ाने वाले हो, लेकिन ये आर्थिक दृष्टि से एक दूसरे के पूरक हैं। ये इन सभी वृहत् प्रदेशों को अन्योन्याश्रित बना देते है। इससे सारा देश एक आर्थिक और राजनीतिक सत्ता बन गया है। इससे देश के छोटे–बड़े सभी भागों को लाभ मिलता है।

पाठान्त प्रश्न

1. हिमाद्रि पर्वत श्रेणी का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कीजिए।

टिप्पणी

क– स्थिति, ख– उनकी औसत ऊँचाई तथा लंबाई, ग– प्रमुख शिखर, घ– प्रमुख हिमानियां, ङ– प्रमुख दर्रे जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश तथा सिक्किम से एक–एक नाम बताइए।

2. निम्नलिखित में अन्तर बताइए–

   क– पूर्वी तटीय मैदान तथा पश्चिमी तटीय मैदान।

   ख– पश्चिमी घाट तथा पूर्वी घाट।

   ग– हिमालयी व प्रायद्वीपीय भारत की नदियां।

3. विशाल पठार के दो प्रमुख भू–आकृतिक विभागों में से मध्यवर्ती उच्च भूमि का निम्नलिखित शीर्षकों के आधार पर वर्णन कीजिए–

   क– अरावली पहाड़ियां ख– मालवा का पठार ग– विंध्याचल पर्वत श्रेणी।

4. उत्तरी विशाल मैदान के एक उप–भू–आकृतिक विभाग, उत्तरी मैदान का वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों के आधार पर कीजिए–

   क– स्थिति एवं विस्तार ख– प्रमुख नदियां

5. निम्नलिखित पारिभाषिक शब्दों को स्पष्ट कीजिए–

   क– भारत की मानक मध्याह्न रेखा ख– भ्रंश घाटी ग– अपवाहतंत्र

6. भारत के दो रेखा मानचित्रों में निम्नलिखित की स्थिति दिखाइए–

   क– हिमालय, काराकोरम, जास्कर पर्वत श्रेणी, लद्दाख पर्वत श्रेणी, मिजो पहाड़ियाँ, सह्याद्रि, सतपुड़ा, विंध्याचल।

   ख– सतलुज, गंगा, ब्रह्मपुत्र, यमुना, चंबल, महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, नर्मदा, तापी नदियाँ।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

16.1

1. पाकिस्तान, अफगानिस्तान, चीन, नेपाल, म्यांमार, बांग्लादेश तथा भूटान।

टिप्पणी

2. 8°4′ तथा 37°6′ उत्तरी अक्षांश एवं 68°7′ तथा 97°25′ पूर्वी देशांतर।

3. (ग)

4. 82°30′ पूर्वी देशांतर

5. लगभग दो घंटे

16.2

1. (ग)

2. (ग)

3. हिमार्द्रि, हिमाचल, शिवालिक

4. कराकोरम

5. कराकोरम

16.3

1. 200 से 300 मीटर

2. अपेक्षाकृत मैदान का ऊँचा भाग

3. (क) पंजाब, (ख) हरियाणा (ग) उत्तर प्रदेश

4. (क) सरस्वती (ख) दृषद्वती

5. यमुना, गंगा, गोमती, घागरा, गंडक, रामगंगा (कोई चार)

16.4

1. (ख)

2. (क)

3. चम्बल, बेतवा, पार्वती, काली, सिंध (कोई दो)

4. पलनी पहाड़ी

5. माउंट आबू (गुरु शिखर)

टिप्पणी

16.5

1. पूर्वी तटीय मैदान
2. (क) चिल्का (ख) पुलिकट
3. कोलेरु
4. दमण (उत्तर) तथा गोवा (दक्षिण)
5. (ग)

16.6

1. भूमि का ढाल, भूगर्भिक संरचना, जल की मात्रा, जल की गति (कोई दो)
2. (i) अरब सागर, बंगाल की खाड़ी

   (ii) नर्मदा, तापी
3. चम्बल, पार्वती, सिंध, बेतवा, केन, सोन (कोई तीन)
4. 5200 मीटर

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. अनुच्छेद 16.4 के हिमाद्रि का वर्णन देखिए।
2. **क. पूर्वी तटीय मैदान** — **पश्चिमी तटीय मैदान**

1. बंगाल की खाड़ी के तट के साथ–साथ विस्तार है।	अरब सागर के तट के साथ–साथ विस्तार है।
2. अपेक्षाकृत चौड़ा है।	अपेक्षाकृत संकीर्ण है।
3. यहां पर डेल्टा का विकास हुआ है।	नदियां डेल्टा का निर्माण नहीं करती हैं।

ख. पश्चिमी घाट (सह्याद्रि) — **पूर्वी घाट**

1. अविच्छिन (निरंतर) है।	विच्छिन्न हैं, नदियों ने अनेक स्थानों पर काट दिया है।

टिप्पणी

2.	अधिक ऊंचे हैं।	कम ऊंचे है।
3.	सुरम्य पर्वतीय नगर है।	पर्वतीय नगर नहीं है।
ग.	**हिमालय की नदियां**	**प्रायद्वीपीय भारत की नदियां**
1.	सदानीरा हैं।	सदानीरा नहीं हैं।
2.	हिमानियों से उद्गम।	झरनों से उद्गम।

3. देखिए 16.6 में मध्यवर्ती उच्च भूमि का विवरण।

4. **मानक मध्याह्न रेखा** 82°30′–मानक मध्याह्न रेखा पर जो स्थानीय समय होता है, उस समय को सारे देश का मानक समय माना जाता है।

5. **भ्रंश घाटी**–विवर्तनिक हलचलों से धरातल के किसी भाग के नीचे धंस जाने से जो घाटी बनती है, भ्रंश घाटी कहलाती है।

   अपवाह तंत्र से तात्पर्य किसी क्षेत्र की जल प्रवाह प्रणाली से है, अर्थात् किस क्षेत्र के जल को कौन सी नदियां बहाकर ले जाती हैं।

6. देखिए पाठ के अन्त में दिये गये भारत के भौतिक और नदी मानचित्र।

17

भारत की जलवायु

पिछले पाठ में हमने अपने देश की आकृति, आकार और उसके अक्षांशीय विस्तार की जानकारी प्राप्त की। हमने देखा कि उसके भूआकृतिक विभागों में न केवल विविधता है; अपितु उनमें विभिन्नता भी है। इनमें से प्रत्येक कारक का भारत की जलवायु दशाओं जैसे तापमान, वायुमण्डलीय दाब, पवन तंत्र तथा वर्षण पर प्रभाव पड़ा है।

इस पाठ में हम भारत की जलवायु में प्रादेशिक विभिन्नताओं का अध्ययन करेंगे। जलवायु दशाओं के क्षेत्रीय व मौसमी स्वरूप को प्रभावित करने वाले कारकों के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे। हम, भारत में ऋतुचक्र का भी अध्ययन करेंगे। हमारे देश की जलवायु ''मानसूनी जलवायु'' कहलाती है। अतः हम मानसून की संकल्पना और उसकी विशेषताओं का भी अध्ययन करेंगे। चूंकि हमारे देश में जलवायु संबंधी विभिन्नतायें तापमान की अपेक्षा वर्षा पर अधिक निर्भर करती हैं अतः हम वर्षा के वितरण का भी संक्षेप में अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- भारत में पायी जाने वाली क्षेत्रीय व मौसमी विभिन्नताओं की उपयुक्त उदाहरणों द्वारा व्याख्या कर सकेंगे;
- भारत के विभिन्न भागों की जलवायु को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों के नाम बता सकेंगे;
- मानसून की अवधारणा तथा उसकी उत्पत्ति को स्पष्ट कर सकेंगे;
- मानसून की विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे;
- विभिन्न ऋतुओं की जलवायु दशाओं के बारे में बता सकेंगे।

टिप्पणी

17.1 भारत में जलवायु संबंधी विभिन्नतायें

आपने भारत की आकृति, आकार, स्थिति तथा अक्षांशीय विस्तार का अध्ययन किया है। साथ ही आपने भारत के तीव्र भिन्नता वाले भू–आकृतिक लक्षणों का भी अध्ययन किया है। इससे जलवायु दशाओं में प्रादेशिक विविधतायें पैदा हो गयी हैं। तापमान, वर्षा तथा विभिन्न ऋतुओं के प्रारम्भ व उनकी अवधि के संबंध में दक्षिणी भारत की जलवायु दशायें उत्तरी भारत की जलवायु दशाओं से काफी भिन्न हैं।

आइये, इन जलवायु संबंधी विभिन्नताओं को करीब से देखें। जून के महीने में उत्तर पश्चिमी मैदानों में 45° से. तापमान महसूस किया जाता है; जबकि राजस्थान के मरूस्थलीय भागों में दिन का तापमान 55° से. तक हो जाता है। वहीं, कश्मीर में गुलमर्ग तथा पहलगांव में ये मुश्किल से 20° से. तक ही पाया जाता है। इसी प्रकार, दिसम्बर के महीने में, कारगिल या द्रास (जम्मू और कश्मीर) में रहने वाले लोग चुभन भरी ठण्ड का अनुभव करते हैं, क्योंकि यहां रात के तापमान–40° से. तक गिर जाता है, जबकि थिरूवनन्तपुरम के निवासी 27° से. तापमान का आनन्द उठाते हैं। (तालिका 17.1)

तटीय क्षेत्रों से देश के आंतरिक भागों की ओर जाने पर ताप परिसर में क्रमिक वृद्धि होती है। फलस्वरूप, कोंकण तथा मालाबार तटों के साथ रहने वाले लोग ऋतुओं में स्पष्ट परिवर्तन का उस रूप में अनुभव नहीं करते, जिस रूप में भारत के उत्तर–पश्चिमी भागों में रहने वाले लोग अनुभव करते हैं क्योंकि यहां न तो अत्यधिक ठण्ड पड़ती है और न ही अत्यधिक गर्मी।

वर्षा के वितरण में भी उतनी ही अधिक विभिन्नतायें दिखाई पड़ती हैं। मेघालय में स्थित चेरापूंजी में वार्षिक वर्षा लगभग 1080 से.मी. होती है जबकि राजस्थान के मरुस्थल में स्थित जैसलमेर में वार्षिक वर्षा केवल 20 से.मी. ही होती है। उत्तर–पूर्वी भाग तथा उड़ीसा और प. बंगाल के तटीय मैदानों में जुलाई व अगस्त के महीनों में भारी वर्षा होती है जबकि तमिलनाडु के कोरोमण्डल तट पर इन महीनों में बहुत कम वर्षा होती है। (तालिका 17.1)

टिप्पणी

तालिका 17.1 भारत के प्रमुख केन्द्रों का औसत मासिक तापमान व वर्षा
ता.=तापमान (° सेल्सियस में); और व.=वर्षा (मि.मी. में)

केन्द्र	ता./व.	ज.	फ.	मा.	अ.	म.	जू.	जु.	अ.	सि.	अ.	न.	दि.
लेह	ता.	-8	-7	-1	9	10	14	17	17	12	6	0	-6
	व.	10	8	8	5	5	5	13	13	8	5	0	5
शिलोंग	ता.	10	11	16	19	19	21	21	21	20	17	13	10
	व.	14	29	56	146	295	476	359	343	302	188	36	10
कोलकाता	ता.	20	22	27	30	30	30	29	29	29	28	24	20
	व.	12	28	34	51	134	290	331	334	253	129	27	4
दिल्ली	ता.	14	17	23	29	34	35	31	30	29	21	20	15
	व.	21	24	13	10	10	68	186	170	125	14	2	9
जोधपुर	ता.	17	19	25	30	34	34	31	29	29	27	22	18
	व.	5	6	3	3	10	31	108	131	57	3	2	2
मुम्बई	ता.	24	24	24	28	30	29	27	27	27	28	27	25
	व.	4	2	2	2	18	465	613	329	286	65	18	2
महाबलेश्वर	ता.	19	20	23	25	24	19	18	18	18	20	20	19
	व.	5	4	5	25	27	440	2546	1764	686	154	47	5
पुणे	ता.	21	23	26	29	30	28	25	25	25	26	23	21
	व.	3	1	2	14	27	107	169	97	130	76	31	4
नागपुर	ता.	22	24	28	33	35	32	28	27	28	27	23	21
	व.	11	23	17	16	21	222	376	286	185	55	20	10
बैंगलोर	ता.	22	23	26	27	27	25	23	23	23	23	19	20
	व.	9	7	11	45	107	71	111	137	164	53	61	13
चैन्नई	ता.	25	26	28	31	33	33	31	31	30	28	26	25
	व.	4	13	13	18	38	45	87	113	119	306	350	135
थिरुवन–	ता.	27	27	28	29	29	27	26	26	27	27	27	27
न्तपुरम	व.	23	21	39	106	208	356	223	146	138	273	206	75

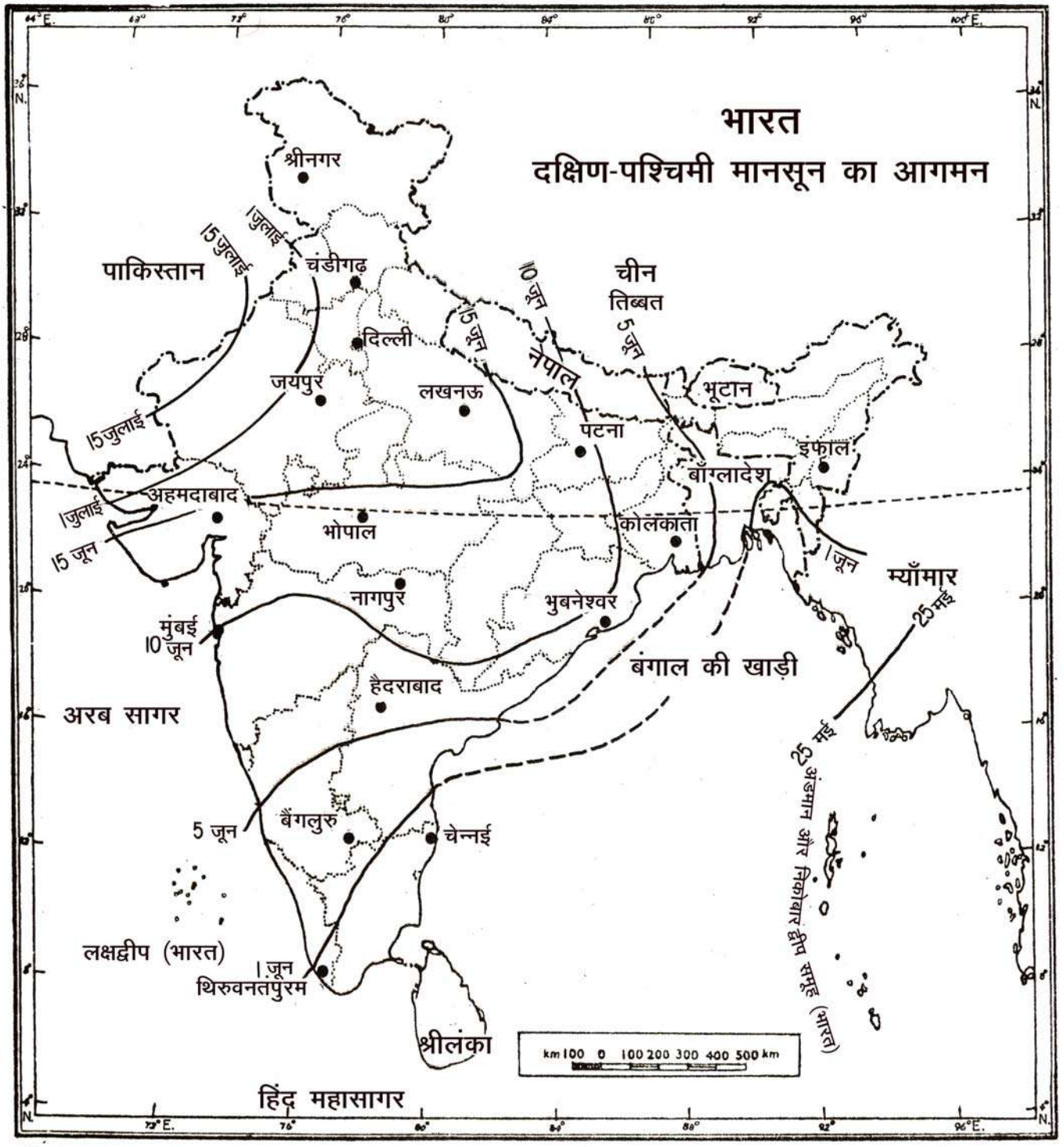

Based upon Survey of India outline map printed in 1979.

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act. 1971, but has yet to be verified.

© Government of India copyright, 1979.

चित्र 17.1 भारत के विभिन्न भागों में दक्षिण पश्चिम मानसून के प्रारम्भ की तिथियाँ

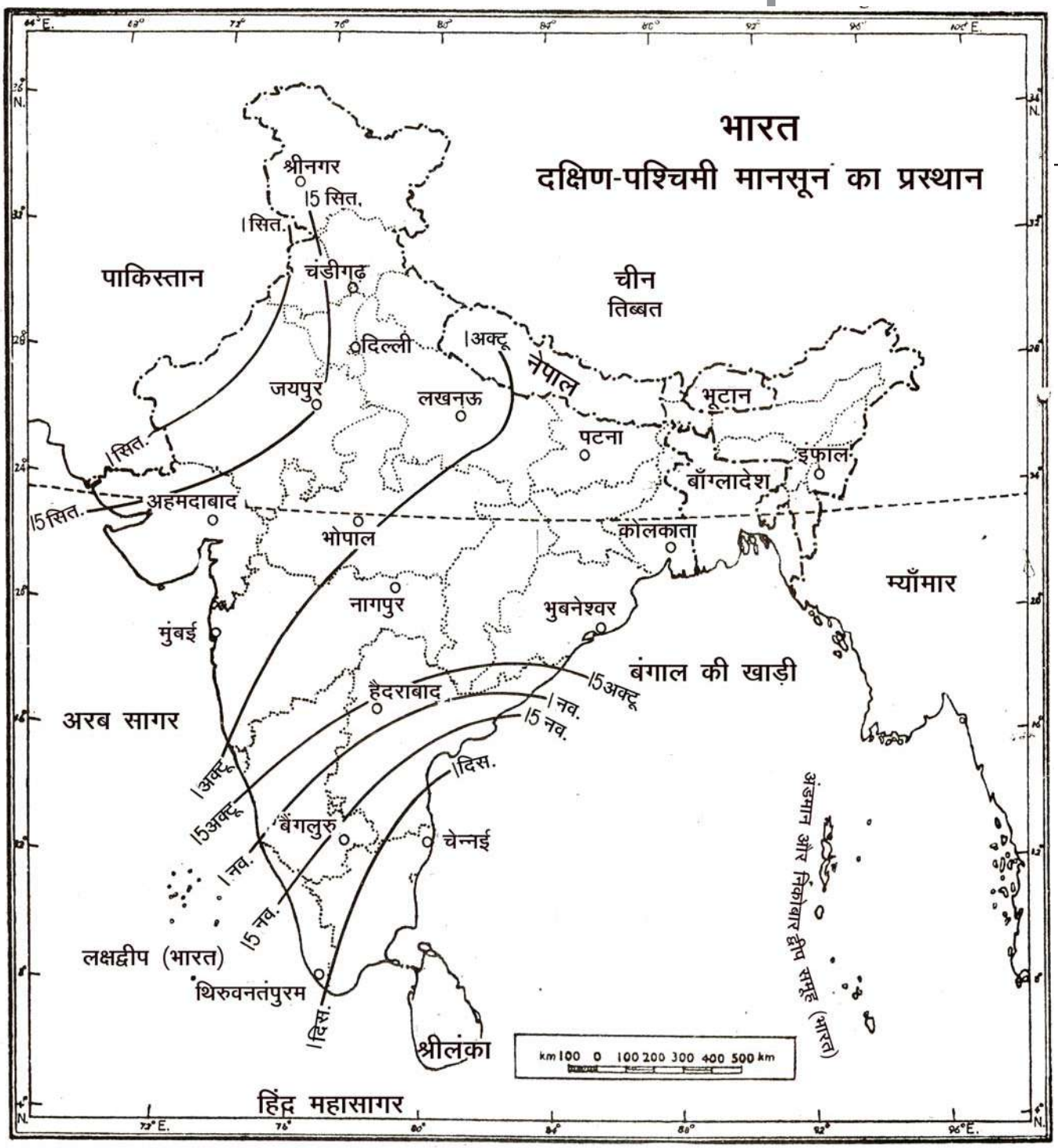

Based upon Survey of India outline map printed in 1979.

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act. 1971, but has yet to be verified.

© Government of India copyright, 1979

चित्र 17.2 भारत के विभिन्न भागों में दक्षिण पश्चिम मानसून के समाप्त होने की तिथियाँ

टिप्पणी

चित्र 17.1 तथा 17.2 जो दक्षिण पश्चिम मानसून की क्रमशः आगमन और पीछे हटने की तिथियों को दिखाते हैं, को ध्यान से देखिये। इससे आपको यह समझने में मदद मिलेगी कि भारत के विभिन्न भागों में वर्षा ऋतु की अवधि भिन्न है। आप इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि उत्तर–पश्चिमी भारत में वर्षा ऋतु की अवधि सबसे छोटी है तथा उत्तर–पूर्वी भारत में यह सबसे लम्बी है।

- देश की आकृति, आकार, स्थिति, अक्षांशीय विस्तार तथा उसके भिन्न भू–लक्षणों के कारण भारत के विभिन्न भागों में भिन्न जलवायु दशायें पायी जाती हैं।
- जलवायु की विविधता तापमान, वर्षा की मात्रा, विभिन्न ऋतुओं के प्रारम्भ होने व उनकी अवधि में परिलक्षित होती है।

पाठगत प्रश्न 17.1

1. भारत के उन दो स्थानों के नाम बताइये जिनमें से एक का तापमान सबसे अधिक और दूसरे का तापमान सबसे कम है।

   (क) _____ (ख) _____

2. तालिका 17.1 का अध्ययन कीजिये तथा नीचे दिये प्रश्नों के उत्तर दीजिये–

   (i) उस केन्द्र का नाम बताइये जहां की जलवायु सबसे अधिक सम है।

   _____

   (ii) किस केन्द्र का ताप–परिसर सबसे अधिक है?

   _____

   (iii) किस केन्द्र का तापमान सबसे अधिक है–

   (क) फरवरी में _____ (ख) अप्रैल में _____

   (ख) जून में _____ (ग) अगस्त में _____

   (iv) भारत में सर्वाधिक वर्षा वाले चार महीनों के नाम बताइए–

   (क) _____ (ख) _____

   (ग) _____ (घ) _____

   (v) भारत में सबसे कम वर्षा वाले एक स्थान का नाम बताइए।

   _____

टिप्पणी

17.2 भारत की जलवायु को प्रभावित करने वाले कारक

भारत की जलवायु को प्रभावित करने वाले कारक नीचे दिये गये हैं।

(क) स्थिति एवं अक्षांशीय विस्तार

भारत मोटे तौर पर 6° उ. से 30° उत्तर अक्षांशों के मध्य स्थित है। कर्क वृत्त देश के मध्य से होकर जाता है। विषुवत् वृत्त के पास होने के कारण दक्षिणी भागों में वर्ष भर उच्च तापमान पाये जाते हैं। दूसरी ओर उत्तरी भाग गर्म शीतोष्ण पेटी में स्थित है। अतः यहां खासकर शीतकाल में निम्न तापमान पाये जाते हैं।

(ख) समुद्र से दूरी

प्रायद्वीपीय भारत अरब सागर, हिन्द महासागर तथा बंगाल की खाड़ी से घिरा हुआ है। अतः भारत के तटीय प्रदेशों की जलवायु सम या अनुसमुद्री है। इसके विपरीत जो प्रदेश देश के आंतरिक भागों में स्थित हैं, वे समुद्री प्रभाव से अछूते हैं। फलस्वरूप उन प्रदेशों की जलवायु अति विषम या महाद्वीपीय है।

(ग) उत्तर पर्वतीय श्रेणियाँ

हिमालय व उसके साथ की श्रेणियाँ जो उत्तर–पश्चिम में कश्मीर से लेकर उत्तर–पूर्व में अरुणाचल प्रदेश तक फैली हुई हैं, भारत को शेष एशिया से अलग करती हैं। ये श्रेणियाँ शीतकाल में मध्य एशिया से आने वाली अत्यधिक ठन्डी व शुष्क पवनों से भारत की रक्षा करती हैं। साथ ही वर्षादायिनी दक्षिण पश्चिमी मानसून पवनों के सामने एक प्रभावी अवरोध बनती हैं, ताकि वे भारत की उत्तरी सीमाओं को पार न कर सकें। इस प्रकार, ये श्रेणियाँ भारतीय उपमहाद्वीप तथा मध्य एशिया के बीच एक जलवायु विभाजक का कार्य करती हैं।

(घ) स्थलाकृति

देश के विभिन्न भागों में स्थलाकृतिक लक्षण वहां के तापमान, वायुमण्डलीय दाब, पवनों की दिशा तथा वर्षा की मात्रा को प्रभावित करते हैं। पिछले पाठ में दिये गये स्थलाकृतिक लक्षणों को दिखाने वाले मानचित्र का अध्ययन कीजिये तथा स्थलाकृति, तापमान, पवनों की दिशा तथा वर्षा की मात्रा में विद्यमान पारस्परिक संबंधों को इस पाठ में दिये गये जलवायु मानचित्रों की मदद से स्वयं ज्ञात कीजिये। इससे आपको यह समझने में मदद मिलेगी कि पश्चिमी घाट के पूर्व में स्थित कर्नाटक व तमिलनाडु के आंतरिक भागों की तुलना में पश्चिमी तटीय मैदानों में वर्षा अधिक क्यों होती है। आप यह भी समझ जायेंगे कि दक्षिण पश्चिमी मानसून की बंगाल की खाड़ी की शाखा दो भागों में विभक्त क्यों होती है। इसकी एक शाखा गंगा घाटी के साथ–साथ पश्चिम की ओर बढ़ती है तथा दूसरी ब्रह्मपुत्र घाटी के साथ–साथ पूर्व की ओर चली जाती है। अपने

टिप्पणी

एटलस में मेघालय पठार के दक्षिणी किनारे पर स्थित कीप के आकार की चेरापूंजी घाटी तथा उसके पास मौसिमराम की स्थिति ज्ञात कीजिये। इससे आपको यह समझने का सूत्र प्राप्त होगा कि मौसिमराम संसार का सर्वाधिक वर्षा वाला स्थान क्यों है।

(ङ) मानसून पवनें

भारत में पवनों की दिशा के पूर्णतया उलटने से, ऋतुओं में अचानक परिवर्तन हो जाता है और कठोर ग्रीष्मकाल अचानक उत्सुकता से प्रतीक्षित वर्षा ऋतु में बदल जाता है। इस प्रकार दिशा बदलने वाली पवनों को मानसून पवनें कहते हैं। 'मानसून' शब्द अरबी भाषा के 'मौसिम' शब्द से बना है जिसका अर्थ है 'ऋतु'। इन पवनों का भारतीय जलवायु पर इतना अधिक प्रभाव पड़ता है कि उसे मानसूनी प्रकार की जलवायु कहा जाता है। मानूसन को ग्रीष्मकालीन और शीतकालीन मानसून के रूप में वर्णित किया जा सकता है।

(i) उत्तर-पूर्वी मानसून एवं उसका प्रभावः—शीतकाल में, मौसमी दशायें सामान्यतया उपमहाद्वीप के उत्तर पश्चिमी भाग में विकसित उच्चदाब क्षेत्र के द्वारा प्रभावित होती हैं। परिणामस्वरूप इस प्रदेश से ठण्डी शुष्क पवनें दक्षिण के प्रायद्वीपीय भारत को घेरे हुये जलीय भागों पर फैले निम्न दाब क्षेत्रों की ओर चलने लगती है। चूंकि ये पवनें ठण्डी व शुष्क होती हैं अतः वर्षा नहीं करतीं तथा इन पवनों के प्रभाव से मौसमी दशायें ठण्डी व शुष्क रहती हैं। उत्तर–पूर्वी मानसून पवनें बंगाल की खाड़ी से गुजरते हुये आर्द्रता ग्रहण कर लेती हैं और कारोमण्डल तट पर वर्षा करती हैं। वास्तव में ये पवनें स्थायी या भू–मण्डलीय पवनें हैं, जिन्हें उत्तर पूर्वी व्यापारिक पवनें कहते हैं। भारत में मूलतः ये स्थलीय पवनें हैं।

(ii) दक्षिण-पश्चिमी मानसून एवं उसका प्रभावः—ग्रीष्मकाल में, भारत का उत्तर–पश्चिमी भाग ऊँचे तापमानों के कारण अत्यधिक गर्म हो जाता है। इस समय सूर्य की स्थिति उत्तरी गोलार्द्ध में होती है। इसके परिणामस्वरूप न केवल उत्तर–पश्चिमी भारत में बल्कि प्रायद्वीप को घेरने वाले जलीय भागों में भी वायुमण्डलीय दशायें एकदम उलट जाती हैं। फलतः उत्तर पूर्वी व्यापारिक पवनों का स्थान दक्षिण पश्चिमी मानसून पवनें ले लेती हैं। चूंकि ये पवनें गर्म समुद्र के ऊपर से बहने के कारण आर्द्र हो जाती हैं अतः आर्द्रता से लदी हुई ये पवनें भारत के अधिकांश भागों में दूर–दूर तक भारी वर्षा करती हैं। इन दक्षिण पश्चिमी मानूसन पवनों को वर्षा ऋतु के नाम से जाना जाता है। इसकी अवधि जून से सितम्बर तक की होती है।

(च) ऊपरी वायु परिसंचरण

भारत में मानूसन के अचानक आगमन का एक अन्य कारण भारतीय भू–भाग के ऊपर वायु परिसंचरण में होने वाला परिवर्तन भी है। ऊपरी वायुतंत्र में बहने वाली जेट वायु धारायें भारतीय जलवायु को निम्न प्रकार से प्रभावित करती हैं।

(i) पश्चिमी जेट वायुधारा तथा उसका प्रभावः—शीतकाल में, समुद्र तल से लगभग 8 कि.मी. की ऊँचाई पर पश्चिमी जेट वायुधारा अधिक तीव्र गति से समशीतोष्ण कटिबन्ध के ऊपर चलती है। यह जेट वायुधारा हिमालय की श्रेणियों द्वारा दो भागों में विभाजित हो जाती है। इस जेट वायुधारा की उत्तरी शाखा इस अवरोध के उत्तरी सिरे के सहारे चलती है। दक्षिणी शाखा हिमालय श्रेणियों के दक्षिण में 25° उत्तर अक्षांश के ऊपर पूर्व की ओर चलती है। मौसम विज्ञानियों का ऐसा विश्वास है कि यह शाखा भारत की शीत कालीन मौसमी दशाओं को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह जेट वायुधारा भूमध्य सागरीय प्रदेशों से पश्चिमी विक्षोभों को भारतीय उपमहाद्वीप में लाने के लिये उत्तरदायी हैं। उत्तर पश्चिमी मैदानों में होने वाली शीतकालीन वर्षा व ओलावृष्टि तथा पहाड़ी प्रदेशों में कभी—कभी होने वाला भारी हिमपात इन्हीं विक्षोभों का परिणाम है। तत्पश्चात् सम्पूर्ण उत्तरी मैदान में शीत लहरें चलती हैं।

(ii) पूर्वी जेट वायुधारा व उसका प्रभावः—ग्रीष्मकाल में, सूर्य के उत्तरी गोलार्द्ध में लम्बवत होने के कारण ऊपरी वायु परिसंचरण में उलटफेर हो जाता है। पश्चिमी जेट वायुधारा के स्थान पर पूर्वी जेट वायुधारा चलने लगती है। तिब्बत के पठार के गर्म होने के कारण पश्चिमी जेट उत्तर की ओर खिसक जाती है। इसके परिणामस्वरूप दक्षिणी भाग में पूर्वी ठण्डी जेट वायुधारा विकसित हो जाती है। यह 15° उत्तरी अक्षांश के आसपास प्रायद्वीपीय भारत के ऊपर चलती है। यह दक्षिण पश्चिम मानसून पवनों के अचानक आने में मदद करती हैं।

(छ) पश्चिमी विक्षोभ तथा उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात

पश्चिमी विक्षोभ भारतीय उपमहाद्वीप में पश्चिमी जेट प्रवाह के साथ भूमध्य सागरीय प्रदेश से आते हैं। यह देश के उत्तरी मैदानी भागों व पश्चिमी हिमालय प्रदेश की शीतकालीन मौसमी दशाओं को प्रभावित करते हैं। ये शीतकाल में थोड़ी वर्षा लाते है। यह थोड़ी सी वर्षा भी उत्तरी मैदान में गेहूं की खेती के लिए बहुत ही लाभकारी होती है।

उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात बंगाल की खाड़ी में पैदा होते हैं। इन चक्रवातों की तीव्रता तथा दिशा पूर्वी तटीय भागों की मौसमी दशाओं को अक्टूबर, नवम्बर और दिसम्बर में प्रभावित करते हैं।

(ज) एल-नीनो प्रभाव

भारत में मौसमी दशायें एल—नीनो से भी प्रभावित होती हैं। यह संसार के उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में विस्तृत बाढ़ों और सूखों के लिये उत्तरदायी है। एल—नीनो एक संकरी गर्म समुद्री जलधारा है जो कभी—कभी दक्षिणी अमेरिका के पेरू तट से कुछ दूरी पर दिसम्बर के महीने में दिखाई देती है। पेरू ठण्डी धारा जो सामान्यतया इस तट के सहारे बहती है, के स्थान पर यह अस्थायी धारा के रूप में बहने लगती है।

टिप्पणी

कभी–कभी अधिक तीव्र होने पर यह समुद्र के ऊपरी जल के तापमान को 10° से. तक बढ़ा देती है। उष्ण कटिबन्धीय प्रशांत महासागरीय जल के गर्म होने से भूमण्डलीय दाब व पवन तंत्रों के साथ–साथ हिन्द महासागर में मानसून पवनें भी प्रभावित होती हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि 1987 में भारत में भयंकर सूखा एल–नीनो का ही परिणाम था।

(झ) दक्षिणी दोलन तथा उसका प्रभाव

दक्षिणी दोलन मौसम विज्ञान से संबंधित वायुदाब में होने वाले परिवर्तन का प्रतिरूप है। यह हिन्द व प्रशान्त महासागरों के मध्य प्रायः देखा जाता है। ऐसा देखा गया है कि जब वायुदाब हिन्द महासागर में अधिक होता है तो प्रशान्त महासागर पर यह कम होता है अथवा इन दोनों महासागरों पर वायु दाब की स्थिति इसके उलट होती है। जब वायुदाब प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र पर अधिक होता है तथा हिन्द महासागर पर निम्न या कम होता है तो भारत में दक्षिण–पश्चिमी मानसून अधिक कमजोर होता है। इसके विपरीत परिस्थिति में मानसून के ताकतवर होने के आसार अधिक होते हैं।

- भारत की जलवायु को प्रभावित करने वाले कारक हैं–स्थिति तथा अक्षांशीय विस्तार, समुद्र से दूरी, उत्तरी पर्वत श्रेणियां, स्थालाकृति, मानसून पवनें, ऊपरी वायु परिसंचरण, पश्चिमी विक्षोभ व उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात, एल–नीनो का निर्माण तथा दक्षिणी दोलन।

पाठगत प्रश्न 17.2

1. उस पर्वत श्रेणी का नाम बताइये जो सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप के लिये जल विभाजक का कार्य करती है?

   _____

2. मुम्बई की जलवायु दिल्ली की तुलना में सम क्यों है?

   _____

3. पश्चिमी विक्षोभों को भारत में लाने वाली जेट वायुधारा का नाम बताइये।

   _____

4. उत्तरी–पूर्वी मानसून भारत के अधिकांश भागों में वर्षा क्यों नहीं करते हैं?

   _____

5. दक्षिण पश्चिम मानसून की उत्पत्ति से पूर्व भारत में पवनों की दिशा क्यों पलट जाती है।

   _____

टिप्पणी

17.3 मानसून की अवधारणा एवं क्रियाविधि

मानूसन से तात्पर्य उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों के ऐसे पवनों के तंत्र से है जिसमें ग्रीष्म और शीत ऋतुओं में पवनें अपनी दिशा पूर्णतया पलट लेती हैं। शीतऋतु में ये पवनें स्थल से समुद्र की ओर तथा ग्रीष्म ऋतु में समुद्र से स्थल की ओर चलती हैं। इसलिये, मानसून पवनों के प्रभाव प्रदेशों में अधिकांश वर्षा ग्रीष्म ऋतु में होती है; जबकि शीत ऋतु सामान्यतया शुष्क होती है।

- मानसून से तात्पर्य उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों के ऐसे पवनों के तंत्र से है जिसमें ग्रीष्म और शीत ऋतुओं में पवनें अपनी दिशा पूर्णतया पलट लेती हैं।

परम्परागत विचारधारा के अनुसार, स्थल व समुद्र जल के गर्म होने की प्रवृति में अंतर के कारण मानसून का जन्म होता है। ग्रीष्मकाल में स्थल पर ऊंचे तापमान के कारण महाद्वीपों पर निम्न दाब का क्षेत्र बन जाता है और पवनें निकटवर्ती महासागरों से स्थल की ओर चलने लगती हैं। ये पवनें समुद्री भागों में पैदा होती हैं, अतः ग्रीष्म काल में पर्याप्त वर्षा करती हैं। दूसरी ओर, शीत काल में महाद्वीप निकटवर्ती महासागरों की तुलना में अधिक ठण्डे हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप महाद्वीपों पर उच्चदाब क्षेत्र बन जाता है। इसलिये शीत काल में पवनें स्थल से समुद्र की ओर चलती हैं। चूंकि ये पवनें महाद्वीपों की विशेषताएं लिए हुई होती हैं, अतः शुष्क होती है और वर्षा नहीं करती। मानसून के इस परम्परागत सिद्धांत की जर्मन मौसमविज्ञानी फ्लोन ने आलोचना की है। उसके विचार से भूमण्डलीय स्तर पर पवनों की दिशा में आमूल परिवर्तन के लिए मात्र स्थलीय व समुद्री भागों के भिन्न प्रकार से गर्म होना काफी नहीं है। उसने मानसून की उत्पत्ति को सूर्य की सीधी किरणों के खिसकने के प्रभाव से वायुदाब व पवन पेटियों के मौसम के अनुसार खिसकने के आधार पर स्पष्ट किया है।

इस सिद्धांत के अनुसार, जब सूर्य की किरणें ग्रीष्म ऋतु में उत्तर की ओर कर्क वृत्त पर लम्बवत् पड़ती हैं, तब अन्तःउष्णकटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र (आई.टी.सी.जैड.) भी उत्तर की ओर स्थानान्तरित हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप भारत के उत्तरी पश्चिमी भागों में एक निम्न दाब क्षेत्र बन जाता है। यह निम्न दाब इस प्रदेश के उच्च तापमानों के कारण और अधिक गहन हो जाता है। यह निम्न दाब क्षेत्र हिन्द महासागर से वायु को दक्षिण–पश्चिम मानसून के रूप में भारतीय भू–भाग की ओर खींचता है। शीत ऋतु में आई.टी.सी. जैड. दक्षिण की ओर स्थानान्तरित हो जाता है और भारत के उत्तरी भागों पर उच्च दाब विकसित हो जाता है। यह उच्च दाब, उपोष्ण उच्च दाब पेटी के विषुवत वृत्त की ओर खिसकने से और अधिक गहन हो जाता है। उत्तरी भारत के इस उच्च दाब के कारण पवनें उत्तर–पूर्वी मानसूनों के रूप में चलने लगती हैं जिसकी दिशा उत्तर–पूर्व से दक्षिण पश्चिम की ओर होती है।

इससे भी अधिक नवीन अवलोकनों के अनुसार, भारतीय मानूसन की उत्पत्ति स्थल व समुद्री भागों के भिन्न रूप से गर्म होने तथा दाब व पवन पेटियों के मौसमी स्थानान्तरण

के अलावा अन्य अनेक कारकों से प्रकाशित होती है। इसमें से सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारक उपोष्ण कटिबन्धीय पश्चिमी तथा उष्ण कटिबन्धीय पूर्वी जेट वायुधाराएं हैं। उपोष्ण कटिबंधीय पश्चिमी जेट वायुधारा शीतकाल में भारत के ऊपर चलती है। इससे उत्तरी भारत में उच्च दाब क्षेत्र का निर्माण होता है। इस प्रकार यह उत्तर–पूर्वी मानसून पवनों को अधिक शक्तिशाली बनाने में मदद करती है। यह जेट वायुधारा ग्रीष्म ऋतु में भारत से दूर उत्तर की ओर खिसक जाती है तथा इस ऋतु में उष्ण कटिबन्धीय पूर्वी जेट वायुधारा का विकास हो जाता है। इस जेट वायुधारा का आगमन भारत में दक्षिण पश्चिमी मानसून के प्रारम्भ होने के साथ–साथ ही होता है।

- परम्परागत मत के अनुसार, स्थल व जलीय भागों के भिन्न प्रकार से गरम होने के कारण मानसून की उत्पत्ति होती है।
- जर्मन मौसमविज्ञानी के अनुसार मानसून की उत्पत्ति का प्रमुख कारण वायु दाब व पवन पेटियों का खिसकना है।
- आधुनिक वैज्ञानिकों का मत है कि भारतीय मानूसन पवनों की उत्पत्ति के लिये अनेक कारक उत्तरदायी है, इनमें सबसे महत्वपूर्ण जेट वायुधारा है।

पाठगत प्रश्न 17.3

1. मानसून की परिभाषा बताइए।

   _____

2. फ्लोन के अनुसार मानसून की उत्पत्ति का मुख्य कारण क्या है?

   _____

3. भारत में मानसून पवनों की उत्पत्ति को स्पष्ट करने वाले तीन सिद्धान्तों की सूची बनाइये।

   (क) _____

   (ख) _____

   (ग) _____

17.4 भारत में ऋतु चक्र

अब तक आप यह जान चुके हैं कि पवनों की दिशा में पूर्ण परिवर्तन, मानसून पवनों का

टिप्पणी

सबसे अधिक महत्वपूर्ण लक्षण है। ये परिवर्तनशील मानसून पवनें वर्ष के दौरान ऋतु परिवर्तन के लिये उत्तरदायी हैं। इसलिये, विस्तार से यह जानना अधिक महत्वपूर्ण है कि सम्पूर्ण भारत में विभिन्न ऋतुओं में मौसमी दशायें कैसी रहती हैं।

भारत में जलवायु के अनुसार वर्ष को निम्न चार ऋतुओं में बांटा जाता है :

(क) शीत ऋतु– दिसम्बर से फरवरी

(ख) ग्रीष्म ऋतु– मार्च से मई दक्षिणी भारत में तथा मार्च से जून उत्तरी भारत में

(ग) आगे बढ़ते दक्षिण पश्चिम मानसून की ऋतु– जून से सितम्बर

(घ) पीछे हटते दक्षिण पश्चिम मानसून की ऋतु– अक्टूबर और नवम्बर

(क) शीत ऋतु

उत्तरी भारत में यह ऋतु प्रायः नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में प्रारम्भ हो जाती है। देश के अधिकतर भागों में जनवरी व फरवरी सबसे अधिक ठन्डे महीने होते हैं, क्योंकि सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध में मकर वृत पर लम्बवत् चमकता है। इन महीनों में उत्तर के मैदानों व पर्वतीय प्रदेशों में दैनिक औसत तापमान 21° से. से कम रहते हैं। कभी–कभी रात का तापमान हिमांक से नीचे चला जाता है, इससे पाला पड़ता है। पाले से विस्तृत प्रदेशों में खड़ी फसलों का नुकसान होता है। उत्तर से दक्षिण की ओर जाने पर तापमान में क्रमिक वृद्धि होती है (चित्र 17.3)। निम्न तापमान के कारण उच्च वायुदाब क्षेत्र विकसित हो जाता है। इस उच्चदाब के कारण उत्तरी–पूर्वी अपतट (स्थलीय) पवनें चलती हैं। उत्तरी मैदानों में उच्चावच के कारण इन पवनों की दिशा पछुआ होती है। ये स्थलीय पवनें ठन्डी व शुष्क होती हैं। अतः शीत ऋतु में देश के अधिकांश भागों में वर्षा नहीं करती। यद्यपि, यही पवनें बंगाल की खाड़ी से आर्द्रता ग्रहण करके जब कारोमण्डल तट पर पहुंचती है तो वर्षा करती हैं।

इस ऋतु का एक अन्य लक्षण अवदावों का एक के बाद एक आगमन है। इन अवदावों को 'पश्चिमी विक्षोभ' कहते हैं, क्योंकि ये भूमध्य सागरीय प्रदेश में विकसित होते हैं। ये अवदाब पश्चिमी जेट वायुधारा के साथ चलते हैं। ईराक व पाकिस्तान के ऊपर से होते हुये एक लम्बी दूरी तय करके भारत में ये मध्य दिसम्बर के आस–पास पहुंचते हैं। इनके आने से तापमान में वृद्धि होती है तथा उत्तरी मैदानों में हल्की वर्षा होती है। इनके कारण पश्चिमी हिमालय तथा इसके साथ लगी श्रेणियों में विस्तृत हिमपात होता है। कभी–कभी इनसे होने वाली ओला वृष्टि से उत्तर पश्चिमी मैदानों में खड़ी रबी की फसलों को काफी क्षति पहुंचती है। इन अवदावों से होने वाली हल्की वर्षा खड़ी फसलों विशेषकर असिंचित क्षेत्रों में गेहूं की फसल के लिये अत्यधिक महत्व की होती है। इन अवदावों के गुजर जाने के बाद शीत लहरें आती है जिनसे तापमान काफी नीचे गिर जाता है।

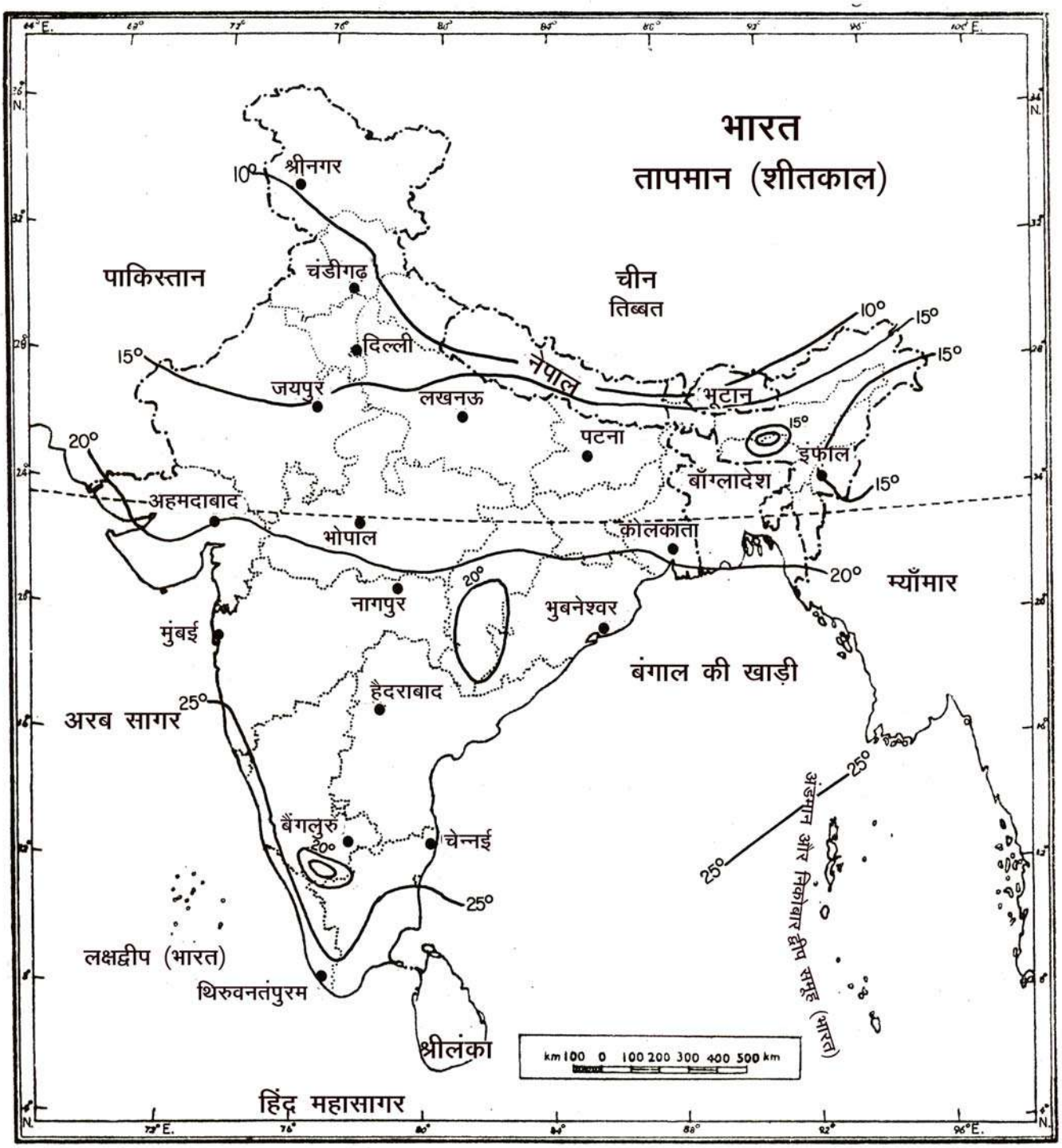

Based upon Survey of India outline map printed in 1979

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act. 1971, but has yet to be verified.

© Government of India copyright, 1979

चित्र 17.3 भारत : तापमान (शीतकाल)

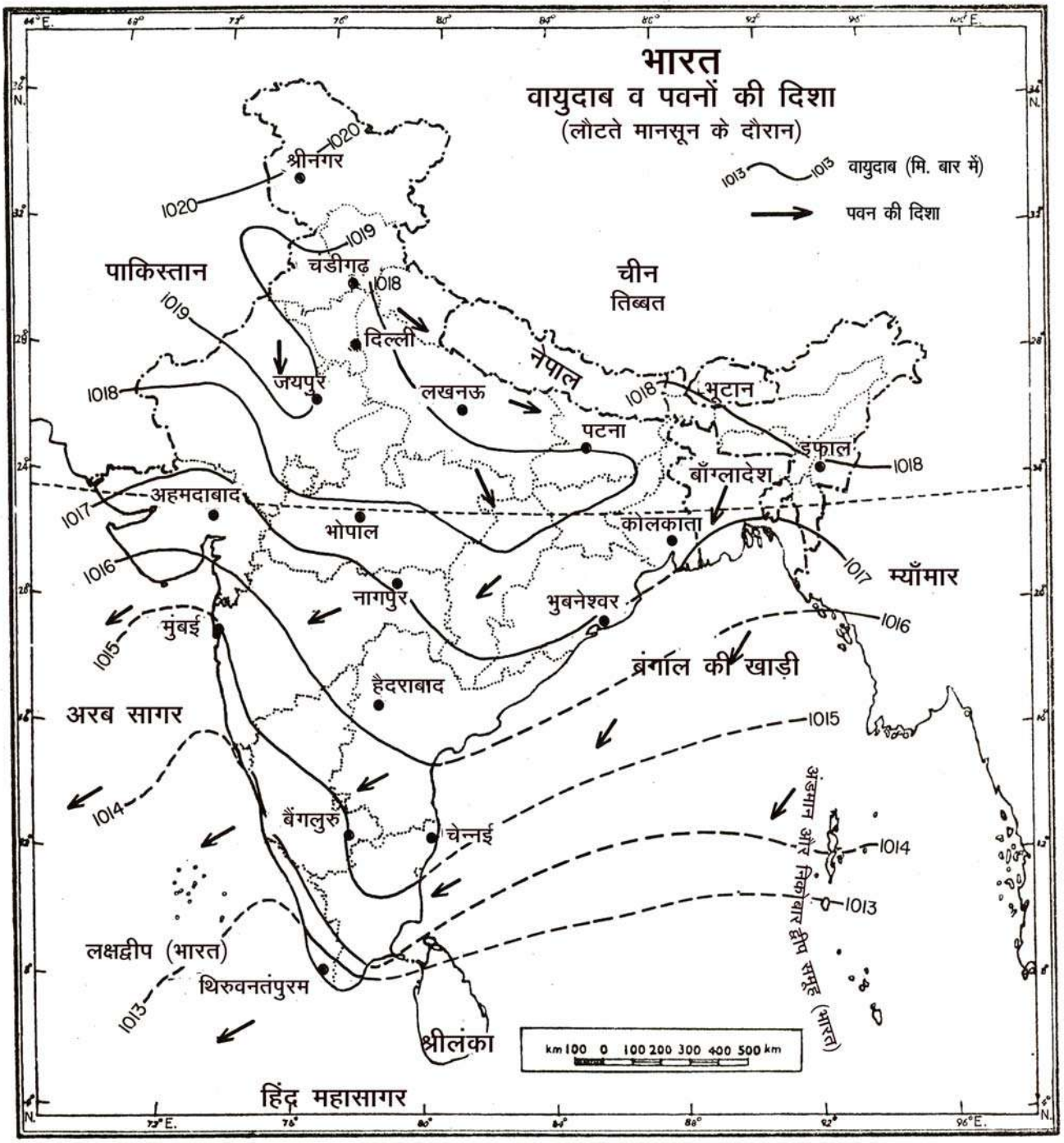

Based upon Survey of India outline map printed in 1979.

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971, but has yet to be verified.

© Government of India copyright, 1979.

चित्र 17.4 भारत : वायु दाब व पवनों की दिशा

टिप्पणी

प्रायद्वीपीय भारत में शीत ऋतु इतनी स्पष्ट नहीं होती। इस भाग में जनवरी माह के औसत मासिक तापमान 20 से. से अधिक रहते हैं। इसके अलावा, तटीय मैदानों में कोई भी ऋतु परिवर्तन नहीं होता जैसा कि तिरूवनन्तपुरम के जनवरी के औसत मासिक तापमान 27 से. से स्पष्ट है। लेकिन चेन्नई में दिसम्बर व जनवरी के प्रारम्भ में औसत मासिक तापमान, 25° से. रहता है, क्योंकि उत्तर पूर्वी मानसून पवनों से यहां इस समय वर्षा होती है जो तापमान की गिरावट में सहायक होती है। (तालिका 17.1)

शीत ऋतु की महत्वपूर्ण विशेषतायें है :

- शीत ऋतु में उत्तर में निम्न तापमान तथा दक्षिण भारत की ओर तापमान में क्रमिक वृद्धि।
- इस ऋतु में ठंडी शुष्क उत्तरी–पूर्वी मानसून पवनें चलती हैं। देश के अधिकांश भागों में शुष्क मौसमी दशायें पाई जाती हैं। परन्तु कारोमण्डल तट पर वर्षा होती है।
- शीत ऋतु में पश्चिमी विक्षोभों से उत्तरी मैदानों में हल्की वर्षा होती है तथा हिमालय की श्रेणियों पर हिमपात होता है।

(ख) ग्रीष्म ऋतु

सूर्य के उत्तरायण होने पर उत्तर के मैदानों में तापमान बढ़ने लगता है। इसके परिणामस्वरूप बसंत ऋतु का आगमन होता है जो शीघ्र ही ग्रीष्म ऋतु का रूप ले लेती है। ग्रीष्म ऋतु जून के अन्त तक रहती है। इस ऋतु में तापमान उत्तर की ओर बढ़ता है तथा उत्तर के मैदानों के अधिकांश भागों में कई माह में लगभग 45° से. हो जाता है। दोपहर के बाद धूल भरी आंधियों और लू का चलना ग्रीष्म ऋतु के विशिष्ट लक्षण हैं। लू गर्म और शुष्क पवनें हैं। ये मई व जून के महीनों में उत्तरी मैदानों में चलती हैं। लू लगने से प्रति वर्ष सैकड़ों लोग मर जाते हैं। देश के कुछ उत्तरी पश्चिमी भागों में दिन का तापमान कभी–कभी 45° से भी अधिक हो जाता है।

इस ऋतु में पवनों की दिशा परिवर्तनशील होती है। सम्पूर्ण देश में मौसमी दशायें सामान्यतया गर्म व शुष्क होती हैं। हालांकि धूलभरी आंधियों के कारण उत्तरी मैदानों में बूंदाबांदी हो जाती है। केरल, पश्चिम बंगाल और असम में हल्की वर्षा होती है। केरल में मानसून से पूर्व की इस वर्षा को 'आम्र वृष्टि' के नाम से जाना जाता है। पश्चिम बंगाल और असम में इसे 'काल वैसाखी' कहते हैं। कभी–कभी पवनों की तीव्र गति के कारण इनसे धन–जन की अधिक हानि होती है।

- ग्रीष्म ऋतु के विशिष्ट लक्षण हैं–गर्म व शुष्क मौसम, 'लू' (एक गर्म शुष्क पवन) का उत्तरी मैदानों में चलना, कभी–कभी बूंदाबांदी, दोपहर बाद धूल भरी आंधियां तथा केरल में आम्र वृष्टि, पं. बंगाल व असम में काल वैसाखी के रूप में हल्की वर्षा।

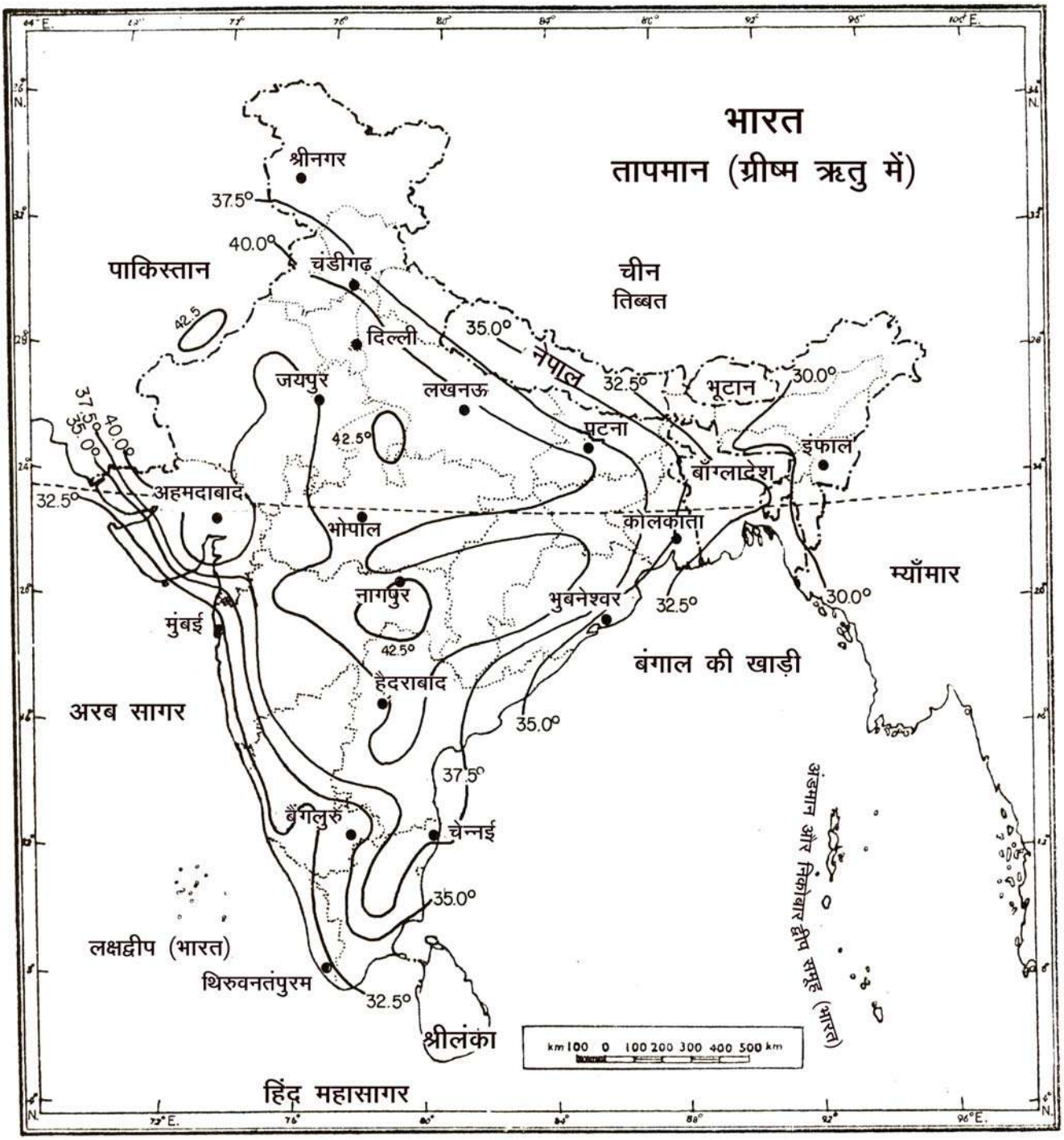

Based upon Survey of India outline map printed in 1979.

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971, but has yet to be verified.

© Government of India copyright, 1979

चित्र 17.5 तापमान (ग्रीष्म ऋतु में)

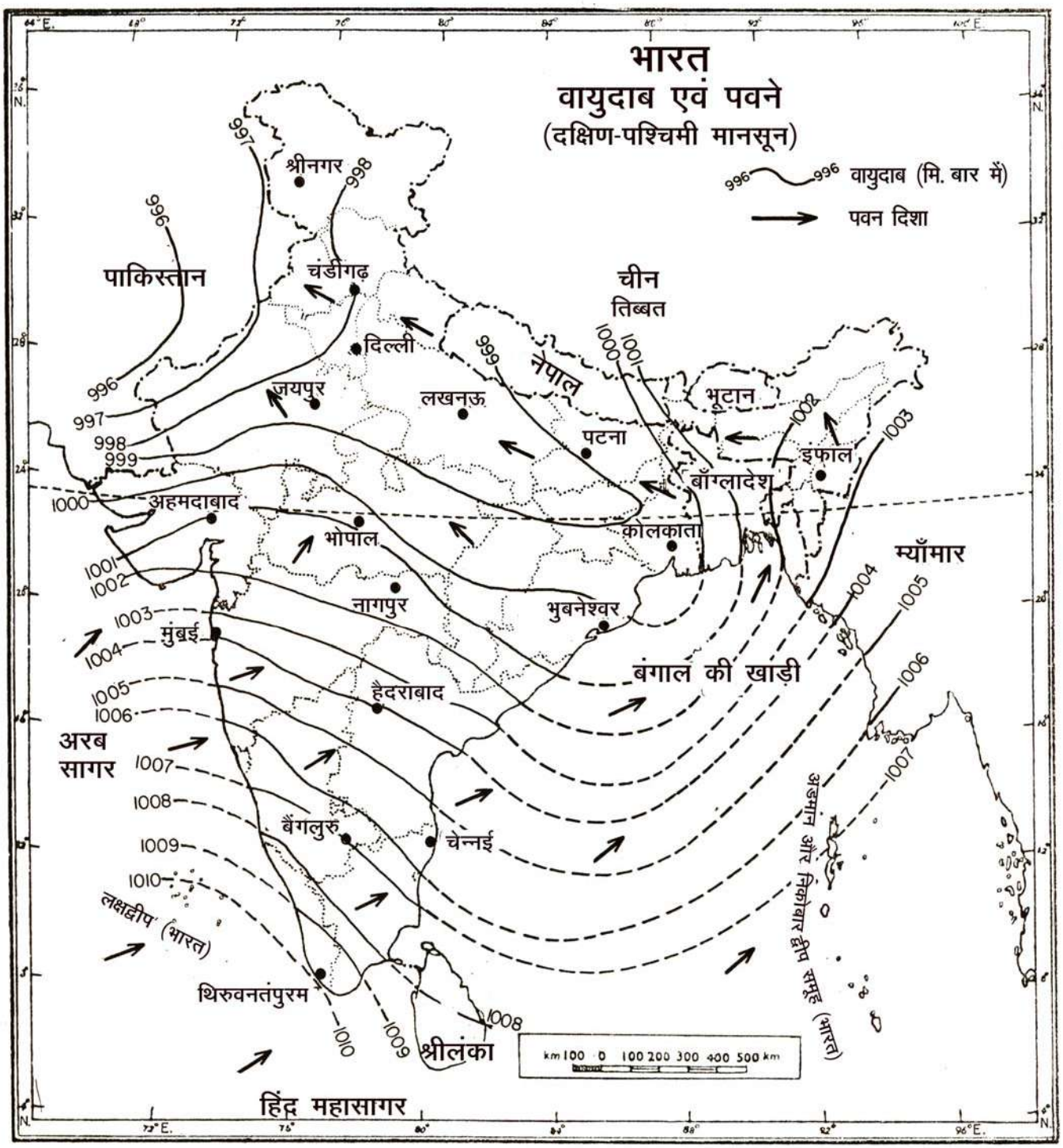

Based upon Survey of India outline map printed in 1979

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act 1971, but has yet to be verified.

© Government of India copyright, 1979

चित्र 17.6 भारत : वायुदाब एवं पवनें (दक्षिण पश्चिमी मानसून)

टिप्पणी

(ग) आगे बढ़ते दक्षिण पश्चिम मानसून की ऋतु

भारत के अधिकांश भागों में वर्षा इस ऋतु में होती है। यह दक्षिण पश्चिम मानसून जो केरल तट पर जून के पहले सप्ताह में पहुंचता है, के आगमन से प्रारम्भ होती है। ये पवनें भारत के अधिकांश भागों में मध्य जुलाई तक पहुंच जाती है। यह ऋतु सितम्बर माह तक रहती है। आर्द्रता से लदी इन गर्म पवनों से मौसमी दशाएं पूर्णतः बदल जाती है। इन पवनों के आने से अचानक वर्षा होने लगती है, जिससे तापमान काफी कम हो जाता है। तापमान में यह गिरावट 5° से 10° से. तक होती है। अचानक होने वाली इस वर्षा को 'मानसून का टूटना या फटना' कहते हैं। इन पवनों के आगमन में एक या दो सप्ताह की देरी हो सकती है। यह उत्तरी मैदानों तथा हिन्द महासागर पर वायु दाब की दशाओं पर निर्भर करता है। भारत की प्रायद्वीपीय आकृति इन दक्षिण–पश्चिमी मानूसनों को दो शाखाओं में विभाजित करती है–अरब सागर की शाखा तथा बंगाल की खाड़ी की शाखा।

1. दक्षिण पश्चिम मानसून की अरब सागर की शाखा भारत के पश्चिमी घाट से अवरोध पाकर पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढलानों पर भारी वर्षा करती है। पश्चिमी घाट को पार करने के बाद ये पवनें पूर्वी ढलानों पर कम वर्षा करती हैं; क्योंकि उतरते हुये, उनके तापमान में वृद्धि होने लगती है। इसलिये इस क्षेत्र को 'वृष्टिछाया क्षेत्र' कहते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि महाराष्ट्र, कर्नाटक के आन्तरिक भागों व तेलंगाना में इन पवनों से कम वर्षा क्यों होती है। दक्षिण पश्चिम मानसून पवनें सौराष्ट्र व कच्छ के तट से आगे बढ़ती हुई राजस्थान के ऊपर से गुजरती है और आगे चल कर खाड़ी की बंगाल की शाखा से मिल जाती है। ये पवनें इन राज्यों व पश्चिमी हिमालय प्रदेश में दूर–दूर तक वर्षा करती हैं।

2. बंगाल की खाड़ी की शाखा पूर्वी हिमालय श्रेणियों से अवरोध पाकर दो उपशाखाओं में विभाजित हो जाती है। एक शाखा पूर्व व उत्तर पूर्व दिशा की ओर बढ़ती है तथा यह ब्रह्मपुत्र घाटी व भारत की उत्तर पूर्वी पहाड़ियों में भारी वर्षा करती हैं। दूसरी शाखा उत्तर पश्चिम की ओर गंगा घाटी व हिमालय की श्रेणियों के साथ–साथ आगे बढ़ती हुई दूर–दराज के क्षेत्र में पश्चिम की ओर भारी वर्षा करती है। इस प्रदेश में वर्षा की मात्रा पूर्व से पश्चिम की ओर क्रमशः कम होती जाती है; क्योंकि इन पवनों की आर्द्रता में क्रमिक कमी आती रहती है।

3. दक्षिण पश्चिम मानसून की विशेषतायें:–

   (i) ये पवनें भारतीय तट पर सामान्यतया जून के पहले सप्ताह में पहुंचती हैं, लेकिन उनके आगमन और वापस लौटने का समय निश्चित नहीं है।

   (ii) वर्षा काल में सूखे के दौर भी आते हैं। इन सूखे के दौरों से कभी–कभी फसलें नष्ट हो जाती हैं।

   (iii) कभी–कभी ये पवनें कुछ प्रदेशों के ऊपर से गुजर जाती है और वर्षा नहीं करती।

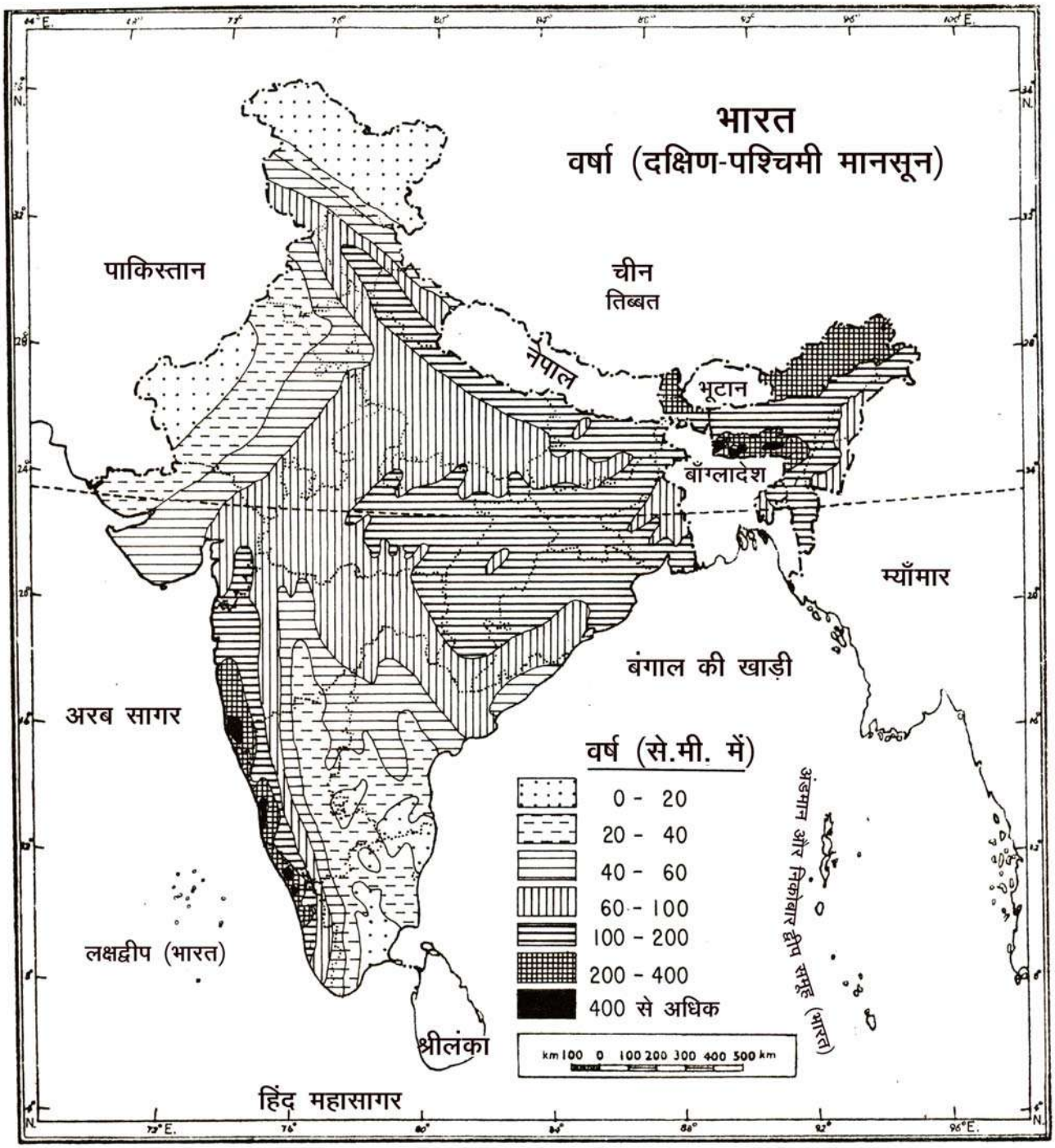

Based upon Survey of India outline map printed in 1979.

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act. 1971, but has yet to be verified.

© Government of India copyright, 1979

चित्र 17.7 भारत : (दक्षिण पश्चिम मानसून)

टिप्पणी

(iv) वर्षा की मात्रा तथा समय व वर्षा व सूखों के दौरों के समय में साल दर साल भिन्नता पायी जाती है। इसे 'मानसून का मानमौजी' होना कहते हैं।

(v) ये पवनें सितम्बर के अन्त तक पीछे हटने लगती हैं; लेकिन कभी–कभी ये अक्टूबर माह तक पीछे हटती हैं या कभी सितम्बर से पूर्व ही पीछे हट जाती हैं।

- भारत के उत्तरपश्चिमी भागों में निम्नदाब की दशाएं तथा भारत को घेरे हुये जलीय भागों पर उच्च दाब की दशायें;
- अरब सागर व बंगाल की खाड़ी में पवनों की सामान्य दिशा दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्व होती है। इनसे विस्तृत प्रदेशों में वर्षा होती है, लेकिन वर्षाकाल के बीच में सूखे के दौर भी आते हैं;
- मानसून जून के पहले सप्ताह में आता है तथा सितम्बर के अन्त तक पीछे हटने लगता है;
- इस ऋतु में मौसम सामान्यतया गर्म व आर्द्र होता है।

(घ) पीछे हटते दक्षिण पश्चिम मानसून की ऋतु

दक्षिण पश्चिम मानसून पाकिस्तान के सीमावर्ती क्षेत्रों व उत्तरी पश्चिमी भारत से सितम्बर के पहले सप्ताह से पीछे हटने लगते हैं, जहाँ वे सबसे अन्त में पहुँचते हैं। इन पवनों के पीछे हटने का मुख्य कारण भारत के उत्तर पश्चिमी भाग के निम्न दाब क्षेत्र का कमजोर होना है। सूर्य का विषुवत वृत्त की ओर आभासी गति तथा विस्तृत वर्षा का कारण तापमान के नीचे गिरने के साथ वायुदाब धीरे–धीरे उच्चा होने लगता है। वायुमण्डलीय दाब के ढांचे में परिवर्तन के कारण दक्षिण पश्चिम मानसून पीछे हटता है। इसलिए इस अवधि को दक्षिण पश्चिम मानसून के पीछे हट जाती हैं। इसके परिणामस्वरूप इस ऋतु में स्वच्छ मौसमी दशायें पायी जाती हैं।

भारत के उत्तर पश्चिमी भाग के निम्न दाब का क्षेत्र अक्टूबर के अंत तक बंगाल की खाड़ी के मध्य स्थानान्तरित हो जाता है। इन अस्थायी दशाओं के कारण बंगाल की खाड़ी में अत्यंत तीव्र चक्रवातीय तूफान पैदा होते हैं। ये चक्रवातीय तूफान भारत के पूर्वी तट के साथ–साथ तटीय प्रदेशों में भारी वर्षा करते हैं। कभी–कभी अत्यधिक तीव्रता वाले तूफानों से खड़ी फसलों, पशुओं, सम्पत्ति, यातायात, संचार व विद्युत लाइनों की भारी क्षति होती है। तमिलनाडु तट अपनी वर्षा का अधिकांश भाग अक्टूबर व नवम्बर या मानसून के पीछे हटने की ऋतु में प्राप्त करता है।

- उत्तर पश्चिमी भारत के निम्नदाब क्षेत्र का कमजोर होना;
- सम्पूर्ण भारत में तापमान का गिरना;
- निम्नदाब क्षेत्र का दक्षिण की ओर खिसकना तथा
- बंगाल की खाड़ी में चक्रवतीय तूफानों का पैदा होना जिनसे भारत के पूर्वी तटीय क्षेत्रों में फसलों व सम्पत्ति की क्षति होना।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 17.4

1. नीचे दी गयी प्रत्येक ऋतु की चार प्रमुख विशेषताओं की सूची बनाइये–

(क) शीत ऋतु

(i) _____ (ii) _____

(iii) _____ (iv) _____

(ख) ग्रीष्म ऋतु

(i) _____ (ii) _____

(iii) _____ (iv) _____

(ग) आगे बढ़ते दक्षिण–पश्चिम मानसूनी ऋतु

(i) _____ (ii) _____

(iii) _____ (iv) _____

(घ) पीछे हटते दक्षिण–पश्चिम मानसून की ऋतु

(i) _____ (ii) _____

(iii) _____ (iv) _____

17.5 वार्षिक वर्षा का वितरण

मानचित्र का अध्ययन कीजिये। आप पायेंगे कि भारत में औसत वार्षिक वर्षा के वितरण में प्रादेशिक भिन्नतायें काफी स्पष्ट हैं। वर्षा के वितरण मानचित्र से यह स्पष्ट है कि जम्मू और कश्मीर के उत्तर पूर्वी भाग व राजस्थान के धुर पश्चिमी भागों में वर्षा 20 से. मी. से कम होती है। दूसरी ओर पश्चिमी तटीय मैदानों, उत्तर–पूर्वी भारत के उप हिमालयी क्षेत्रों के साथ शिलांग पठार पर 200 से.मी. से अधिक वर्षा होती है। खासी, जयन्तिया के दक्षिणी ढ़लानों खासकर चेरापूँजी घाटी में 1000 से.मी. से अधिक वर्षा होती है। 200 से.मी. की समवर्षा रेखा गुज़रात के दक्षिणी तट से प्रारम्भ होकर पश्चिमी घाट के तट के समानान्तर चलती हुयी कन्याकुमारी तक जाती है। पश्चिमी घाट के पूर्व में वर्षा अचानक 60 से.मी. से भी कम हो जाती है। 100 से.मी. की समवर्षा रेखा जम्मू व कश्मीर के दक्षिण–पश्चिमी भागों से प्रारम्भ होकर पूर्व की ओर इलाहाबाद तक जाती है, जहाँ से वह पश्चिम व दक्षिण पश्चिम की ओर मुड़कर पश्चिमी मध्य प्रदेश, पूर्वी महाराष्ट्र और उत्तर आन्ध्र प्रदेश से गुजरती हुयी विशाखापट्नम के पास पूर्वी तट पर मिलती है। इस समवर्षा रेखा के पश्चिम और दक्षिण पश्चिम में स्थित क्षेत्रों में वर्षा कम होती है। कारोमण्डल तट के कुछ भागों में 100 से.मी. से अधिक वर्षा होती है। 100 से.मी. से कम वर्षा पाने वाले भाग कृषि के लिए सिंचाई के साधनों पर निर्भर रहते हैं।

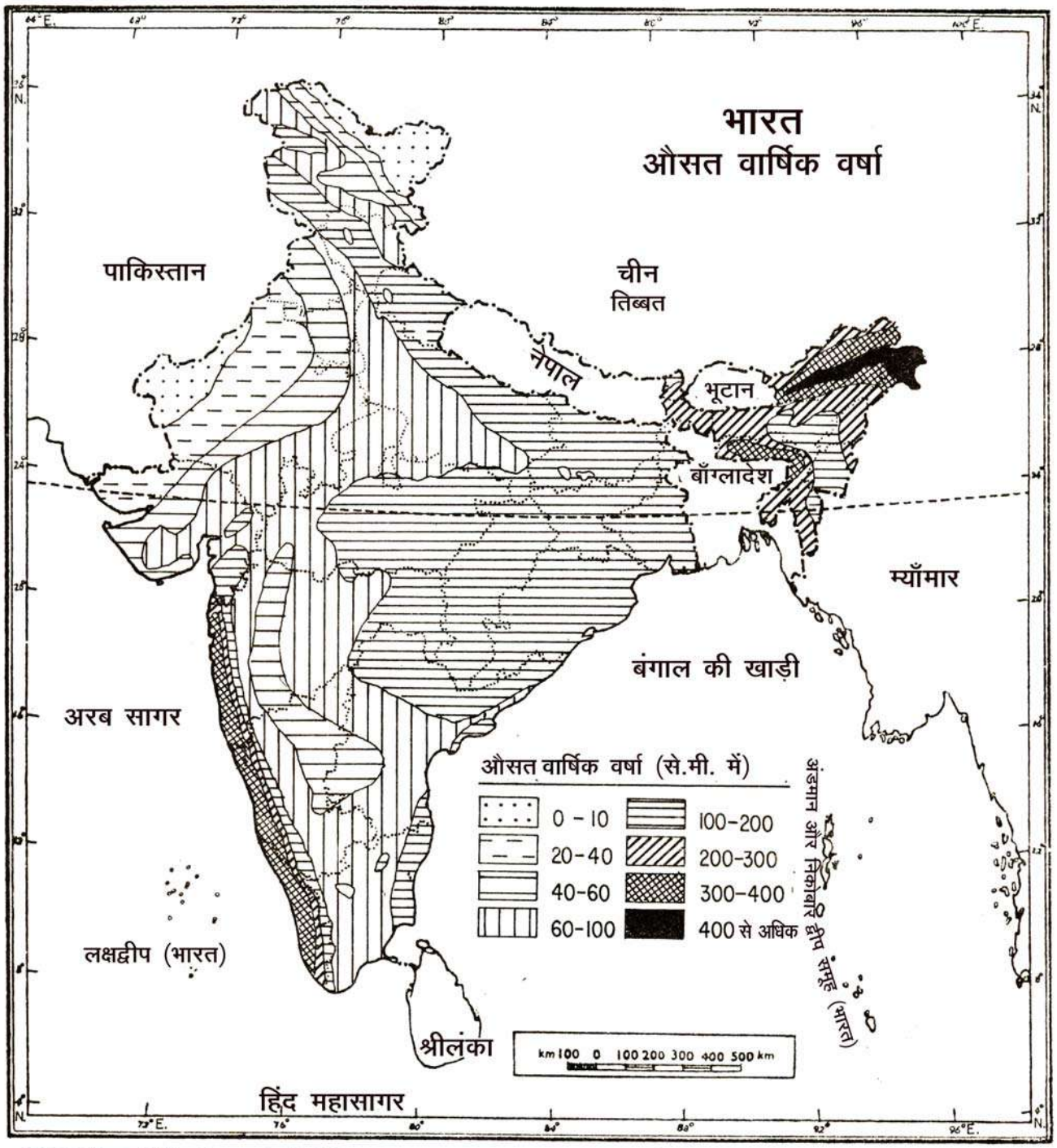

Based upon Survey of India outline map printed in 1979.

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971, but has yet to be verified.

© Government of India copyright, 1979

चित्र 17.8 भारत : औसत वार्षिक वर्षा

टिप्पणी

- कोलकाता से अमृतसर की ओर जाने पर वर्षा कम होती जाती है।
- दक्कन के पठार पर तट से आन्तरिक भागों की ओर वर्षा कम होती जाती है।
- भारत के उत्तर पूर्वी भागों में उत्तर पश्चिमी भागों की तुलना में वर्षा अधिक होती है।
- पवनाभिमुख ढालों पर पवन विमुख ढालों की तुलना में वर्षा अधिक होती है।
- भारत में खासकर दक्षिण पश्चिम मानसून से प्राप्त वर्षा के वितरण का उच्चावच से गहरा संबंध है। अतः इस वर्षा को 'उच्चावच' या 'पर्वतकृत वर्षा' भी कहते हैं। मोटे तौर पर अधिक ऊँचाई वाले स्थानों पर अधिक वर्षा प्राप्त करने के अवसर उन स्थानों की तुलना में अधिक होते हैं जो कम ऊँचाई वाले हैं। वर्षा की मात्रा पर आर्द्र पवनों की दिशा का भी प्रभाव पड़ता है।

17.6 भारत की मानसूनी एकता

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि जलवायु दशाओं में प्रादेशिक भिन्नता के होते हुए भी भारत में जलवायविक एकता है। जलवायु सम्बन्धी एकता का अर्थ है कि भारत के विभिन्न भागों में मौजूद मौसमी दशायें वर्ष की विभिन्न ऋतुओं में कुछ अपवादों को छोड़कर लगभग एक सी ही रहती है। भारतीय जलवायु को मानसूनी जलवायु कहते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि भारत की जलवायु संबंधी एकता बनाये रखने में मानसूनी पवनों का अधिक प्रभाव है। यह जलवायविक एकता मौसमी या मानसून पवनों के नियमित चलने तथा हिमालय पर्वत मालाओं के सम्मिलित प्रभाव का परिणाम है।

पूर्व वर्णित दो कारकों के फलस्वरूप भारत की मानसूनी एकता प्रकट हुई है। यह भारत के आम लोगों की जीवन पद्धतियों व क्रियाकलापों में परिलक्षित होती है। यह है :—

(क) ऋतु लय—गर्म, आर्द्र व शीत ऋतुओं का क्रम भारत के लोगों की जीवन पद्धतियों व आर्थिक क्रियाओं को निम्न रूपों में प्रभावित करता है।

सर्वप्रथम, सम्पूर्ण भारत के किसान मानसून के आगमन पर कृषि से सम्बन्धित क्रियायें जैसे खेतों का जोतना, बीज बोना, रोपण आदि प्रारम्भ करते हैं। विभिन्न क्षेत्रों में खरीफ की फसलों जैसे चावल, ज्वार–बाजरा, कपास व गन्ना का स्वरूप वहाँ होनेवाली वर्षा की मात्रा का प्रतिफल है। शीत ऋतु में ठन्डे व सिंचित क्षेत्रों की रबी की प्रमुख फसल गेहूँ है; जबकि जौ, चना तथा तिलहन उत्तरी तथा मध्य भारत के असिंचित क्षेत्रों की आम फसलें हैं।

द्वितीय, लोगों के वस्त्र भी ऋतुओं द्वारा प्रभावित होते हैं। ग्रीष्म ऋतु में भारत के लोग सूती कपड़े पहनते हैं; जबकि शीत काल में खासकर उत्तरी व मध्यवर्ती भारत के प्रदेशों के लोग ऊनी वस्त्र पहनते हैं।

तीसरे, भारत के अधिकांश भागों में शुष्क ऋतु लम्बी होती है तथा जीवनदायिनी वर्षा ऋतु केवल कुछ ही महीनों की होती है। इसका भारत के लोगों की जीवन पद्धतियों पर गहरा प्रभाव पड़ा है। जब मानसूनी बादलों से पानी की बूँदें प्यासी सूखी भूमि पर गिरती हैं तो उनके संगीत व जमीन से निकलने वाली खुशबू से सम्पूर्ण भारत के लोगों में एक से भावनात्मक व्यवहार उत्पन्न होते हैं; जिन्हें भोजपुर की कजरी तथा ब्रज की मल्हार तथा उनके अन्य रूपों में भारत के त्यौहारों का ऋतुओं से गहरा संबंध है। उत्तरी भारत में, बैसाखी का त्यौहार, रबी की फसल जब पककर कटने के लिए तैयार होती है, तब मनाया जाता है। शीतकाल में, जब सूर्य मकर वृत्त पर लम्बवत चमकता है तथा उत्तर के मैदानों में कड़ाके की सर्दी पड़ती है तब लोहड़ी व मकर संक्रांति के त्यौहार मनाये जाते हैं। जबकि इनका दक्षिणी भारत में प्रतिरूप पोंगल है। भारत में होली बड़े धूम–धाम से बसंत ऋतु में मनाई जाती है।

चौथे, वर्षा द्वारा पोषित निर्वाह कृषि भारतीय ग्रामीण समुदाय की सबसे प्राचीन क्रिया रही है। उसकी अर्थव्यवस्था वर्ष पर्यन्त मानसून की उदारता पर निर्भर करती है चाहे वह कितनी कम हो।

अंत में, मौसमी दशाओं की ऋतुवत व प्रादेशिक विभिन्नताओं ने भिन्न प्रदेशों को, विविध फसलों को अलग–अलग मात्रा में पैदा करने में सक्षम बनाया है। इससे सभी प्रदेश एक दूसरे पर निर्भर हैं। मानसून का तमाम विभिन्नताओं के बावजूद, इस प्रकार की एकता स्थापित करना कोई कम महत्वपूर्ण सहयोग नहीं है।

(ख) जल की आस—आप जानते हैं कि भारत में वर्षा साल के केवल चार या पांच महीने होती है। इस प्रकार, सम्पूर्ण भारत, वर्ष के सात या आठ महीनों तक शुष्क रहता है। वर्षा ऋतु में भी 'सूखे के दौर' आम बात है। कृषि से संबंधित समाज होने के कारण, भारत के अधिकांश भागों में जल की आवश्यकता हर समय रहती है। यहां तक, सबसे अधिक वर्षा पाने वाले चेरापूँजी के आस–पास के क्षेत्रों व कोंकण तथा केरल में लम्बी शुष्क ग्रीष्म ऋतु में पीने का पानी उपलब्ध नहीं है। देश के सभी भागों में रहने वाले लोगों की निगाहें मानसून के बादलों की ओर लगी रहती है।

(ग) मानसूनी वर्षा की प्रतीक्षा—हर भारतवासी चाहे वह वृद्ध हो या बालक, स्त्री हो या पुरूष, किसान हो या श्रमिक सभी मानसूनी वर्षा की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हैं। ऐसा वे केवल ग्रीष्म काल की गर्मी से छुटकारा पाने के लिए ही नहीं करते बल्कि कृषि कार्यों को प्रारम्भ करने के लिए करते हैं जो ग्रामीण व शहरी दोनों अर्थ व्यवस्थाओं का पोषण करते हैं। इसलिए, मानसून विस्फोट का भारत के सभी स्थानों पर एक सा सहर्ष स्वागत होता है।

(घ) सूखा तथा बाढ़—भारतीय मानसूनी वर्षा का सबसे बड़ा विरोधाभास यह है कि भारत का कोई भी भाग ऐसा नहीं है जो कभी न कभी या प्रायः बाढ़ या अकाल से प्रभावित न हो। सूखे का अधिक वर्षा पाने वाले भागों जैसे असम व केरल में पड़ना आम बात है। इसी प्रकार, भारत के उत्तर पश्चिमी शुष्क भाग चाहे पंजाब हो या

राजस्थान का मरुस्थल, बाढ़ों से मुक्त नहीं हैं। इसके परिणामस्वरूप, सिंचाई, पीने तथा जलविद्युत निर्माण के लिए जल के संरक्षण, नियंत्रण व एकत्रित करने की आवश्यकता है।

पाठगत प्रश्न 17.5

1. नीचे दिये प्रत्येक कथन के आगे सही या गलत लिखिए–

   (क) उत्तरी मैदानों में पूर्व से पश्चिम की ओर वर्षा की मात्रा घटती जाती है।

   (ख) गुजरात तथा राजस्थान में वर्षा कम होती है; क्योंकि इन राज्यों में पहुंचने पर मानसून शुष्क हो जाते हैं।

   (ग) भारत के विभिन्न भागों में मानसून के आने की तिथि सदैव निश्चित होती है।

   (घ) कारोमंडल तट अपनी वर्षा का अधिक भाग अक्टूबर–नवम्बर में उत्तर पूर्वी मानसून से प्राप्त करता है।

   (ड़) भारत के केवल कुछ भागों में ही सूखा पड़ता है और बाढ़े आती हैं।

2. भारत के दो क्षेत्रों के नाम बताइये जहां वार्षिक वर्षा 20 से.मी. से कम होती है।

   (क) _____ (ख) _____

आपने क्या सीखा

भारत एक विविध जलवायु वाला देश है। ये विविधतायें तापमान, वायुदाब, पवनों एवं वर्षण की मात्रा के वितरण की विभिन्नताओं द्वारा स्पष्ट हैं। भारत के विभिन्न प्रदेशों की जलवायु को तय करने के लिए उत्तरदायी कारक उसकी स्थिति व अक्षांशीय विस्तार, उच्चावच, हिमालय का जलवायु विभाजक के रूप में कार्य, मानसून पवनें, ऊपरी वायु परिसंचरण, पश्चिमी विक्षोभ तथा चक्रवातीय तूफान हैं। मानसून, अरबी भाषा के शब्द 'मौसम' से लिया गया है, जिसका तात्पर्य ऋतुओं की लय एवं ऋतुवत पवनों की दिशा बदलने से है।

मौसम विज्ञान के अनुसार, भारत में चार ऋतुएं पाई जाती हैं शीत ऋतु, गीष्म ऋतु, आगे बढ़ता दक्षिण पश्चिमी मानसून की ऋतु एवं पीछे हटते दक्षिण पश्चिम मानसून की ऋतु है। इन ऋतुओं की विभिन्न विशेषताएँ है जो मौसमी दशाओं को परिलक्षित करती है।

पाठान्त प्रश्न

1. पश्चिमी विक्षोभ उत्तर पश्चिमी भारत की जलवायु को किस प्रकार प्रभावित करते हैं?

2. अन्तर स्पष्ट कीजिए :—

   (क) शीत ऋतु एवं ग्रीष्म ऋतु

   (ख) दक्षिण पश्चिमी मानसून एवं उत्तर पूर्वी मानसून

3. कारण बताइए :

   (क) कारगिल में स्थित द्रास तिरूवनन्तपुरम से सदैव ठण्डता रहता है।

   (ख) भारत के बड़े भूभाग शीतकाल में ठण्डे व शुष्क रहते हैं।

   (ग) दक्षिण–पश्चिमी मानसून सितम्बर के बाद उत्तरी भारत से पीछे हटने लगते हैं।

   (घ) पश्चिमी तटीय मैदानों में पश्चिमी घाट के पूर्व में स्थित आन्तरिक पठारी प्रदेशों की तुलना में अधिक वर्षा होती है।

4. भारत की जलवायु को प्रभावित करने वाले पांच कारकों का वर्णन कीजिए। अपने उत्तर की पुष्टि के लिए उदाहरण दीजिए।

5. भारत में वर्षा के असमान वितरण को उपयुक्त उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

6. भारत में मानसून की विशेषताएं बताइए।

7. भारत के रेखा मानचित्र में निम्नलिखित की स्थिति दर्शाइए तथा उनके नाम लिखिए :—

   (क) द्रास तथा चेरापूंजी

   (ख) पश्चिमी विक्षोभों से वर्षा पाने वाले क्षेत्र

   (ग) उत्तरी पूर्वी मानसून से वर्षा पाने वाले क्षेत्र

   (घ) 20 से.मी. से कम वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र

टिप्पणी

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

17.1

1. (क) राजस्थान मरुस्थल में जैसलमेर (ख) जम्मू तथा कश्मीर में द्रास
2. (i) तिरुवनन्तपुरम

   (ii) दिल्ली

   (iii) (क) तिरूवनन्तपुरम (ख) नागपुर (ग) दिल्ली (घ) चेन्नई

   (iv) (क) जून, (ख) जुलाई, (ग) अगस्त, (घ) सितम्बर

   (v) लेह

17.2

1. हिमालय पर्वत
2. मुम्बई पश्चिमी तट पर स्थित है जबकि दिल्ली इतनी दूर है कि वहां समुद्र का प्रभाव बहुत कम पड़ता है।
3. श्चिमी जेट वायुधारा।
4. क्योंकि वे स्थल से चलने वाली ठण्डी व शुष्क पवनें होती हैं।
5. ग्रीष्म ऋतु में ऊंचे तापमान के कारण स्थल व समुद्री भागों में वायुदाब दशाओं के पूरी तरह पलटने के कारण।

17.3

1. उष्ण कटिबन्ध के पवनों के उस तंत्र को मानसून कहते हैं जो ग्रीष्म व शीत कालों में अपनी दिशायें पूरी तरह पलट लेती हैं।
2. स्थायी वायुदाब व पवन पेटियों का खिसकना
3. (क) स्थल व समुद्री भागों का भिन्न प्रकार से गर्म व ठण्डा होना

   (ख) भूमण्डलीय वायुदाब व पवन पेटियों का खिसकना

   (ग) जेट वायुधाराओं का तंत्र

17.4

(क) (i) भारत के अधिकांश भागों में ठण्डा व शुष्क

(ii) पवनों की दिशा सामान्य तथा उत्तर–पूर्वी होती है

(iii) उत्तर पश्चिमी मैदानों में हल्की वर्षा व ओलावृष्टि तथा पश्चिमी हिमालय प्रदेश में हिमपात

(iv) उ.पू. मानसून से कारोमण्डल तट पर वर्षा

(ख) (i) सम्पूर्ण भारत में सामान्यतया गर्म व शुष्क

(ii) पवनों की दिशा परिवर्तनशील

(iii) उत्तर के मैदानों में गर्म व शुष्क पवन जिन्हें 'लू' कहते हैं इनसे लोगों को लू लग जाती है

(iv) केरल, पश्चिम बंगाल तथा असम में मानसून पूर्व की हल्की वर्षा

(ग) (i) सम्पूर्ण भारत में सामान्य तथा वर्षा से युक्त

(ii) पवनों की सामान्य दिशा दक्षिण पश्चिम

(iii) इन पवनों का आगमन व वापस लौटना कुछ–कुछ अनिश्चित होता है

(iv) वर्षा की मात्रा स्थान–स्थान व समय–समय पर बदलती रहती है

(घ) (i) भारत के उत्तरी भागों में स्थित निम्न दाब का कमजोर पड़ना

(ii) सम्पूर्ण भारत में तापमान का कम होना

(iii) निम्न वायुदाब क्षेत्र का भारत को घेरे हुए समुद्रों की ओर स्थानान्तरित होना

(iv) बंगाल की खाड़ी में चक्रवातों का बनना

17.5

1. (क) सही (ख) गलत (ग) गलत (घ) सही (ङ) गलत
2. (क) लद्दाख (ख) राजस्थान मरूस्थल

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. अनुच्छेद 17.2 का (छ) देखिए।
2. (क) अनुच्छेद 17.4 का (क) एवं (ख) देखिए।

   (ख) अनुच्छेद 17.4 का (ग) एवं (घ) देखिए।
3. (क) क्योंकि द्रास, कश्मीर के आंतरिक भागों में अधिक ऊँचाई पर उच्च अक्षांशों में स्थित है जबकि तिरूवन्तपुरम समुद्र तट पर विषुवत वृत्त के निकट स्थित है।

   (ख) अनुच्छेद 17.4 का (क) देखिए।

टिप्पणी

(ग) अनुच्छेद 17.4 का (घ) देखिए।

(घ) अनुच्छेद 17.5 देखिए।

4. अनुच्छेद 17.2 देखिए।

5. अनुच्छेद 17.5 देखिए।

6. अनुच्छेद 17.4 का (घ) 1 देखिए।

7. (क) द्रास व चेरापूंजी की स्थिति के लिए अपनी एटलस देखिए।

(ख) अपनी एटलस देखिए।

(ग) अपनी एटलस देखिए।

(घ) चित्र 17.8 देखिए।

18

प्राकृतिक विपदाएँ

मनुष्य अनन्त काल से प्राकृतिक विपदाओं की मार झेलता रहा है। अनेक विपदाएँ ऐसी हैं जिनका वह प्रतिकार करने में असमर्थ हैं। वह तो बस चुपचाप या रोते–धोते उनके दुष्परिणाम भुगतने को अभिशप्त हैं। यही नहीं मनुष्य ने अपने क्रिया–कलापों से अनेक प्राकृतिक विपदाओं की विनाशक शक्ति और उनकी आवृत्ति को बढ़ाने में ही योगदान दिया है। संयुक्त राष्ट्र के आंकड़ों के अनुसार प्रतिवर्ष पूरे संसार में औसतन एक लाख से अधिक लोग प्राकृतिक विपदाओं से मर जाते हैं और 20,000 करोड़ रुपयों की संपत्ति नष्ट हो जाती है।

संसार के सबसे अधिक प्राकृतिक विपदा प्रवण देशों में भारत का स्थान दूसरा है। पहले स्थान पर चीन है। अतः विपदाओं के कारण, परिणाम एवं इसके रोकथाम के उपाय के बारे में आम नागरिकों में जागरूकता पैदा करना आवश्यक है। इससे व्यक्ति एवं समाज अच्छी तरह से निपट सकता है।

इस अध्याय में हम भूकंप, भूस्खलन, सूखा, बाढ़ और चक्रवात जैसी पाँच प्राकृतिक विपदाओं का अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- प्राकृतिक संकट और विपदा शब्दों के अर्थ समझा सकेंगे;
- संकट और विपदा में भेद बता सकेंगे;
- भारत के प्रत्येक भौतिक विभाग के कुछ प्राकृतिक विपदा प्रवण क्षेत्रों को पहचानकर बता सकेंगे;
- प्राकृतिक विपदाओं के कुछ दुष्प्रभावों का वर्णन कर सकेंगे;
- कुछ और अन्य मौसमी विपदाओं के उदाहरण दे सकेंगे;
- विपदा आने से पहले या विपदा के दौरान या उसके बाद, विपदा से उत्पन्न समस्याओं और कष्टों को कम करने या दूर करने के उपाय सुझा सकेंगे।

टिप्पणी

18.1 भारत में विपदाएँ–भूमिका

भारत विपदाओं से कई वर्षों से संघर्ष कर रहा है। हम उस दिन को कैसे भूल सकते हैं, जब 26 दिसंबर 2004 को सुनामी ने भारत के तटीय भागों में तबाही मचाई अथवा 26 जनवरी 2001 की सुबह जब भारत का पश्चिमी भाग भूकम्प से बुरी तरह प्रभावित हुआ था। ये तो कुछ उदाहरण हैं। हम प्रिंट या इलेक्ट्रानिक मीडिया में हमेशा ऐसे समाचार सुनते हैं कि भारत का एक भाग बाढ़ द्वारा प्रभावित है जबकि दूसरा सूखे का सामना कर रहा होता है।

विभिन्न प्रकार की विपदाओं की छेद्यता के कारण भारत को 'विपदा प्रवण राष्ट्र' कहा जाता है। इसके कारण हैं–

(क) 55% से ज्यादा भूभाग भूकम्प की आशंका से ग्रस्त है,

(ख) 12% भूभाग बाढ़ प्रवण है,

(ग) 8% भाग चक्रवातों से प्रभावित है, और

(घ) 70% कृषि भूमि सूखा प्रवण है।

18.2 भारत में प्राकृतिक विपदाएं

मानवीय क्रिया कलापों से भौतिक पर्यावरण की छेद्यता निरंतंर बढ़ती जा रही है। लेकिन यह एकतरफा संबंध नहीं है। मानव पर्यावरण का अंग है। इसीलिए वह पर्यावरणीय प्रक्रियाओं के प्रभावों से बच नहीं सकता।

जब स्थानीय, प्रादेशिक या भूमंडलीय स्तर की पर्यावरणीय प्रक्रियाएं जैसे भूकंप, बाढ़ चक्रवात, भूस्खलन अथवा सूखा, मानव और उसकी संपत्ति के लिए खतरा पैदा करने लगते हैं, तब इन्हें प्राकृतिक संकट कहते हैं। जब तक मानव या संपत्ति को इनसे कोई खतरा नहीं होता, ये केवल प्राकृतिक घटनाएं है। उदाहरण के लिए अंटार्कटिका में चलने वाला बर्फानी तूफान एक प्राकृतिक घटना है। लेकिन यदि यह तूफान हमारे वैज्ञानिक शोध केन्द्र दक्षिण गंगोत्री के लिए खतरा पैदा करता है तो इसे (बर्फानी तूफान) प्राकृतिक संकट कहा जाएगा।

जब प्राकृतिक संकट मानव और संपत्ति को हानि पहुंचा देते हैं अर्थात् इन के प्रभाव से लोग मर जाते हैं और संपत्ति नष्ट हो जाती है तो इसे प्राकृतिक विपदा कहा जाता है। उदाहरण के लिए 26 दिसंबर 2004 को सुमात्रा के पास के सागर में उत्पन्न भूकंप से बनी सुनामी (भूकंपीय ऊंची समुद्री लहर) भारत, श्रीलंका तथा दक्षिण–पूर्व एशिया के कुछ देशों के लिए प्राकृतिक विपदा बन गई थी। इससे अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु के तट पर धन जन की हानि हुई थी।

संकट और विपदा में अंतर

संकट	विपदा
1. संकट एक खतरनाक दशा या घटना है।	1. विपदा समाज की सामान्य दिन–चर्या में बाधा डाल देती है।
2. संकट एक भावी विपदा है। जब तक सम्पत्ति एवं जीवन का विनाश नहीं होता तब तक भूकम्प, बाढ़, ज्वालामुखी विस्फोट, भूस्खंलन सूखा आदि संकट हैं।	2. इससे बड़ी मात्रा में सम्पत्ति एवं जीवन का विनाश होता है। रोजगार के अवसर तक खत्म हो जाते हैं।
3. कम संख्या में लोग प्रभावित होते हैं।	3. इससे अनेक लोग प्रभावित होते हैं
4. इससे चोट लग सकती है या सम्पति को कुछ नुकसान हो सकता है।	4. इससे बड़े स्तर पर धन–जन की क्षति पहुँचती है।
5. भूकंप, बाढ़, ज्वालामुखी विस्फोट सुनामी, भूस्खलन, सूखा आदि को प्राकृतिक संकट ही कहा जाता है।	5. समाज इस हद तक प्रभावित होता है कि इसे बाहरी मदद की आवश्यकता पड़ जाती है ताकि नुकसान की भरपाई हो सके।

- भारत के लगभग 6 करोड़ लोगों को प्रति वर्ष प्राकृतिक विपदाओं की मार सहनी पड़ती है।
- प्राकृतिक घटनाएं जब मानव के लिए खतरा पैदा करने लगती है, तो संकट कहलाती है।

पाठगत प्रश्न 18.1

1. प्राकृतिक घटनाएँ कब प्राकृतिक संकटों में बदल जाती है?

_____

_____

2. सुनामी किसे कहते हैं?

_____

_____

टिप्पणी

18.3 बाढ़

मानसूनी वर्षा के प्रारंभ होते ही देश के 4 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में रहने वाले लोगों की चिंताएँ बढ़ने लगती हैं। पता नहीं कब नदी में उफान आ जाए और उनके गाढ़े पसीने की कमाई पानी में बह जाए। अन्य सभी विपदाओं की तुलना में बाढ़ से जान–माल को सबसे अधिक हानि होती है। दुनिया में बाढ़ से होने वाली मौतों में से 20% भारत में होती है।

बाढ़ क्या है?

ऐसे भूमि क्षेत्र में वर्षा या किन्हीं अन्य जल स्रोतों के जल का भर जाना जिसमें सामान्यतः पानी नहीं भरता है, बाढ़ कहलाता है। दूसरे शब्दों में नदी के तटों को तोड़कर या उनके ऊपर से होकर जल का चारों ओर फैल जाना ही बाढ़ है। बाढ़ कई तरह से आती है। बाढ़ के कारण, उससे होने वाली क्षति एवं उसके रोकथाम का वर्णन निम्न है–

बाढ़ के कारण

भारत में बाढ़ आने के निम्नलिखित कारण हैं:–

(क) भारी वर्षा: नदियों के जलग्रहण क्षेत्र में होने वाली भारी वर्षा के कारण अतिरिक्त जल तेज प्रवाह के साथ बहता है जिससे बाढ़ आती है।

(ख) नदियों में अवसादों का जमा होना: नदियों की धारा क्षेत्र में अवसादों के जमा होने से वे छिछली हो जाती हैं। ऐसी नदियों की जल प्रवाह की क्षमता घट जाती है। भारी वर्षा का पानी किनारों के ऊपर से बहने लगता है।

(ग) वनों का विनाश: वनस्पति वर्षा जल को बहने से रोककर भूमि में रिसने को बाध्य करती है। वनस्पति के विनाश से भूमि नंगी हो जाती है और वर्षा का पानी बेरोक–टोक तेज गति से नदियों में पहुंच कर बाढ़ का कारण बनता है।

(घ) चक्रवात: चक्रवातों के कारण उठी ऊंची–ऊंची लहरें समुद्री जल को तटवर्ती क्षेत्रों में फैला देती है। अक्तूबर 1999 के चक्रवात के कारण आई बाढ़ ने उड़ीसा में भारी तबाही मचाई थी।

(ङ) अपवाह तंत्र से छेड़छाड़: बिना सोचे–समझे सड़कों, रेलमार्गों, नहरों आदि के निर्माण से प्राकृतिक अपवाह तंत्र अवरुद्ध होकर बाढ़ का कारण बनता है।

(च) नदियों का मार्ग परिवर्तन: नदियों के मोड़ और उनके मार्ग परिवर्तन से भी बाढ़ आती है।

(छ) सुनामी (भूकंपीय ऊंची समुद्री लहर): तटवर्ती क्षेत्रों को दूर–दूर तक जल मग्न कर देती है।

बाढ़ से हानि

नदियों में आई बाढ़ की मार मनुष्य और पशुओं दोनों को झेलनी पड़ती है। बाढ़ से लोग बेघर हो जाते हैं। मकान ढह जाते हैं। उद्योग धन्धे चौपट हो जाते हैं। फसलें पानी में डूब जाती हैं। बेजुबान पालतू पशु और वन्य जीव मर जाते हैं। तटवर्ती क्षेत्रों में मछुआरों की नावें, जाल आदि नष्ट हो जाते हैं। मलेरिया, दस्त जैसी बीमारियां फैल

जाती हैं। पेय जल प्रदूषित हो जाता है तथा कभी–कभी उसकी भारी कमी हो जाती है। खाद्यान्न नष्ट हो जाते हैं और बाहर से आपूर्ति कठिन हो जाती है।

प्रतिवर्ष आने वाली बाढ़ के कारण होने वाली हानि घटने के बजाए बढ़ती ही जा रही है। सन् 1953 में बाढ़ से 2.43 करोड़ लोग प्रभावित हुए थे। सन् 1987 तक आते–आते बाढ़ प्रभावित लोगों की संख्या बढ़कर 4.83 करोड़ हो गई।

एक अनुमान के अनुसार प्रति वर्ष औसतन 210 करोड़ रूपये मूल्य की संपत्ति नष्ट हो जाती है। 6 करोड़ लोगों पर बाढ़ का असर पड़ता है तथा एक करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र की फसलें बरबाद होती हैं।

बाढ़ प्रवण क्षेत्र (क्षेत्र जहां बाढ़ आ सकती हैं) - देश का लगभग 4 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र बाढ़ प्रवण है, जो देश के कुल क्षेत्रफल का लगभग आठवां भाग है। सबसे अधिक बाढ़ प्रवण क्षेत्र सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र की द्रोणियों में ही है। राज्यों की दृष्टि से बाढ़ प्रवण राज्य उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और असम हैं। इनके बाद हरियाणा, पंजाब और आंध्रप्रदेश का स्थान है। अब तो राजस्थान और गुजरात में भी बाढ़ आती है। कर्नाटक और महाराष्ट्र भी बाढ़ से अछूते नहीं हैं।

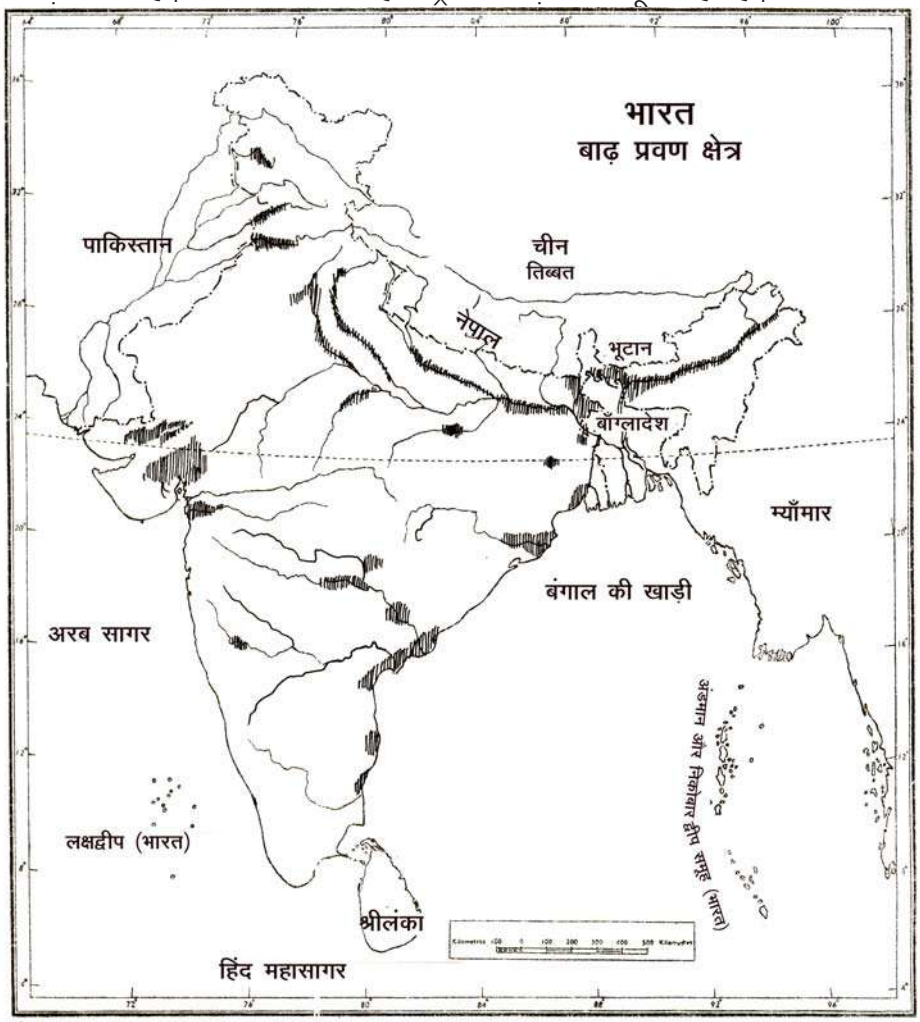

Based upon Survey of India Outline Map printed in 1996.
The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line
Responsibility for correctness of internal details shown on the map rests with the publisher.
© Government of India copyright 1996.

चित्र 18.1 भारत : बाढ़ प्रवण क्षेत्र

टिप्पणी

बाढ़ रोकने के उपाय

(क) **संग्रहण जलाशयः** नदियों के मार्गों में संग्रहण जलाशयों के निर्माण से अतिरिक्त पानी को उनमें रोका जा सकता है लेकिन अब तक किए गए उपाय कारगर सिद्ध नहीं हुए हैं। दामोदर नदी की बाढ़ रोकने के लिए बनाए गए बाधं उसकी बाढ़ों को नहीं रोक पाए हैं।

(ख) **तटबंधः** नदियों के किनारों पर तटबंध बनाकर पार्श्ववर्ती क्षेत्रों में फैलने वाले बाढ़ के पानी को रोका जा सकता है। दिल्ली में यमुना पर बने तटबंधों का निर्माण बाढ़ रोकने में कारगर सिद्ध हुआ है।

(ग) **वृक्षारोपणः** नदियों के जलग्रहण क्षेत्र में यदि वृक्षारोपण किया जाए तो बाढ़ के प्रकोपों को काफी कम किया जा सकता है।

(घ) **प्राकृतिक अपवाह तंत्र की पुनर्स्थापनाः** सड़कों, नहरों, रेलमार्गों आदि के निर्माण से अवरूद्ध प्राकृतिक अपवाह तंत्र को पुनः चालू करने से भी बाढ़ें रोकी जा सकती हैं।

बाढ़ प्रबंधन

लगभग 4 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र पर बाढ़ की आशंका बनी रहती है। इसमें से 1.44 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र को कुछ सीमा तक बाढ़ से सुरक्षित कर दिया गया है। इसके लिए तटबंधों और अपवाह नालियों का निर्माण किया गया है। कस्बों और नगरों की सुरक्षा के उपाय और गांवों को ऊँची भूमि पर बसाने के उपाय किए गए हैं। नौवीं योजना के अंत तक बाढ़ को रोकने के लिए 8,000 करोड़ रू. व्यय किए जा चुके हैं।

बाढ़ से पहले, दौरान या बाद में करणीय - अकरणीय कार्य

- अग्रिम सूचना और सलाह के लिए रेडियो सुनिए।
- बिजली के सभी उपकरण बंद कर दीजिए। घर के सभी कीमती सामान और कपड़े बाढ़ के पानी की पहुँच से दूर रखिए। ऐसा तभी कीजिए जब बाढ़ की चेतावनी मिली हो या आपको आशंका हो कि बाढ़ का पानी आपके घर में घुस जाएगा।
- वाहनों, फार्म के पशुओं तथा आसानी से उठाई जा सकने वाली वस्तुओं को निकट की ऊँची भूमि पर पहुँचा दीजिए।
- खतरनाक प्रदूषण को रोकिए।
- सभी कीटनाशकों को पानी की पहुँच से दूर रखिए।
- यदि आपको घर छोड़ना पड़े, तो बिजली और गैस बंद कर दीजिए।

- घर छोड़ने की मजबूरी में सभी बाहरी खिड़कियों और दरवाजो पर ताले लगा दीजिए।
- यदि आप बच सकते हैं तो बाढ़ के पानी में पैदल या कार में बैठकर प्रवेश मत कीजिए।
- अपने आप बाढ़ ग्रस्त क्षेत्र में इधर–उधर मत घूमिए।

> - ऐसे भूमि क्षेत्र में वर्षा या किसी जलाशय के जल का भर जाना, जिसमें सामान्यतः पानी नहीं भरता है, बाढ़ कहलाता है।
> - सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र की द्रोणियां सबसे अधिक बाढ़ प्रवण क्षेत्र है।

पाठगत प्रश्न 18.2

1. बाढ़ आने के कोई दो कारण बताइए।

   (क) _____ (ख) _____

2. देश के लगभग कितने क्षेत्र में बाढ़ आने की आशंका बनी रहती है।

   _____

3. बाढ़ रोकने के कोई दो उपाय बताइए।

   (क) _____ (ख) _____

18.4 सूखा

सूखे की त्रास्दी मानव को धीरे–धीरे पर विशाल स्तर पर प्रभावित करती है। यह एक अलग तरह का दर्द है, पर है बड़ा कष्ट कारक। अपनी आँखों के सामने अपने प्यारे पालतू पशुओं को भूख–प्यास से तड़प कर मरते हुए देखना, बेहद अनिश्चय और शोषण के हालात में अपने प्रियजनों को, सैकड़ों मील दूर रोजगार की तलाश में भेजना, रूखे–सूखे भोजन में भी दिनों दिन कटौती होते जाना, राहत कार्यों पर दिन भर भटकना और रात को निराश लौटना ये सब दर्दनाक दृश्य हैं।

क्या है सूखा?

मौसम विज्ञानियों के शब्दों में ''काफी लंबे समय तक एक विस्तृत प्रदेश में वर्षण की

टिप्पणी

कमी ही सूखा है।'' सूखे के लिए अकाल और अनावृष्टि जैसे शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है। जब कृषक वर्ग के लिए भौम जल उपलब्ध न हो सके तो भी सूखे की स्थिति होती है। मौसमी परिस्थितियों के कारण किसी भी क्षेत्र–विशेष की फसलें 50 प्रतिशत से भी ज्यादा खराब हो जाती है तो सरकार उस क्षेत्र को सूखा क्षेत्र घोषित करती है।

सूखे का कारण – सूखे का एक मात्र कारण वर्षा की कमी है। लेकिन मानव ने प्रकृति के साथ छेड़–छाड़ करके अपने क्रिया कलापों से पर्यावरण का संतुलन बिगाड़ दिया है। लोगों ने जलाशयों (तालाबों, झीलों, जोहड़ों) को पाट दिया है। वनस्पति का आवरण नष्ट कर दिया है। वनस्पति के कारण वर्षा का जल भूमि में रिसता रहता है क्योंकि वनस्पति उसके प्रवाह को अवरूद्ध करती रहती है। मनुष्य ने लाखों की संख्या में नलकूप लगाकर भूमिगत जल के भंडारों को भी कम किया है।

सूखे के दुष्परिणाम

सूखे के कारण भोजन और पानी की कमी हो जाती है। भूखे–प्यासे लोग त्राहि–त्राहि कर उठते हैं। भुखमरी, कुपोषण और महामारियों से अकाल मौतें होने लगती हैं। मजबूरन लोगों को अपना क्षेत्र छोड़ कर पलायन करना पड़ता है। पानी की कमी से फसलें सूख जाती हैं। मवेशी चारे–पानी के अभाव में मरने लगते हैं। खेती करने वाले लोगों का रोजगार छिन जाता है। भोजन, पानी, हरे चारे और रोजगार की तलाश में लोग गाँव के गाँव छोड़ कर बच्चों के साथ दूर–बहुत दूर की अनिश्चित यात्रा के लिए निकल पड़ते हैं।

भारत के सूखा प्रवण क्षेत्र

दिए गये मानचित्र का ध्यानपूर्वक अध्ययन कीजिए।

इस मानचित्र में सूखा प्रवण क्षेत्रों की एक प्रमुख पट्टी दक्षिणी राजस्थान और तमिलनाडु के बीच है। इस पट्टी में दक्षिणी पश्चिमी राजस्थान, गुजरात, पश्चिमी मध्य प्रदेश, मध्यवर्ती महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु है।

मानसूनी वर्षा की कमी और पर्यावरण ह्रास के कारण राजस्थान और गुजरात प्रायः सूखे की चपेट में रहते हैं। भारत के 593 जिलों (2001) में से 191 जिले भयंकर रूप से सूखा प्रवण है। राजस्थान के अधिकांश क्षेत्र सन् 2003 में चौथे वर्ष लगातार सूखे की चपेट में थे।

Based upon Survey of India Outline Map printed in 1990
The territorial waters of India extened into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the aporopriate base line.
The boundary of Meghalaya shown of this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971, but has yet to be verified
Responsibility for correctness of internal details shown on the map rests with the publisher.

© Government of India copyright, 1996

चित्र 18.2 भारतः सूखा प्रवण क्षेत्र

सूखे से निपटने के उपाय

(क) सूखे क्षेत्रों के अनुकूल कृषि पद्धतिः निम्नलिखित उपायों को अपनाते हुए सूखे की मार से कुछ हद तक बचा जा सकता है। शुष्क प्रदेशों में मोटे अनाज पैदा

टिप्पणी

करके, गहरी जुताई करके मृदा की नमी को संजोकर, छोटे–छोटे बाधों के पीछे पानी रोककर, जोहड़ों में पानी एकत्र करके तथा फुहारा सिंचाई अपनाकर सूखे से एक सीमा तक निपटा जा सकता है।

(ख) **सूखा सहन करने वाली फसलें बोकरः** कपास, मूंग, बाजरा, गेहूं आदि सूखे को सहन करने वाली फसलें बोकर सूखे के प्रभाव को कुछ कम किया जा सकता है।

(ग) **वर्षा जल संग्रहणः** वर्षा की एक–एक बूंद को संग्रहित करके सूखे से निपटा जा सकता है।

(घ) खेतों की ऊँची मेंड बनाकर, सीढ़ीदार खेत बनाकर और खेतों के किनारों पर पेड़ लगाकर वर्षा के पानी का अधिकतम उपयोग किया जा सकता है।

(ङ) सिंचाई की नहरों को पक्का करके पानी को संरक्षित किया जा सकता है।

(च) टपकन विधि अपनाने से थोड़े पानी से अधिक क्षेत्र की सिंचाई की जा सकती है।

सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम

यह कार्यक्रम 1973 में शुरू किया गया था। इस कार्यक्रम के निम्नलिखित उद्देश्य हैंः

(क) फसलों, मवेशियों, भूमि की उत्पादकता, जल और मानव संसाधनों पर सूखे के प्रतिकूल प्रभावों को कम करना। जिस तरह से गुजरात क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों के समन्वित विकास के लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकियों का प्रयोग किया गया है, वैसा करके अन्य भागों में सूखे के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

(ख) वर्षा जल का विकास, संरक्षण और समुचित उपयोग करके लंबे समय तक पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखा जा सकता है।

(ग) संसाधनों के अभाव से ग्रस्त और सुविधाओं से वंचित समाज की आर्थिक और सामाजिक स्थिति सुधारना।

- काफी लंबे समय तक एक विस्तृत प्रदेश में वर्षण की कमी ही सूखा है।
- राजस्थान और गुजरात राज्यों में अपेक्षाकृत अन्य राज्यों से अधिक सूखा पड़ता है।

पाठगत प्रश्न 18.3

1. सूखा किसे कहते हैं?

2. कोष्ठकों में से सही शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

   (क) भारत का सबसे अधिक सूखा प्रवण राज्य _____ है।
   (असम, राजस्थान, छत्तीसगढ़)

   (ख) सूखा प्रवण क्षेत्रों में _____पद्धति अपनाकर सूखे के प्रभाव को कम किया जा सकता है। (प्लव सिंचाई, फुहारा सिंचाई)

18.5 भूस्खलन

अगस्त 1988 में पिथौरा गढ़ से कैलाश–मानसरोवर पैदल पथ पर 'धारचूला' से लगभग 60 कि.मी. दूरी पर लामारी के पास भूस्खलन हुआ था। यह बूंदी और मालपा के बीच लामारी नामक स्थान पर आधी रात को भारी भूस्खलन से काली नदी का प्रवाह अवरूद्ध हो गया था। प्रवाह के रूकने से करीब 1.5 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में जल ही जल हो गया था। इस प्रकार बनी झील में जल जमा हो रहा था। कैलाश मानसरोवर की यात्रा के लिए देश के कोने–कोन से आये थके–हारे यात्री इसी क्षेत्र में चैन की नींद सो रहे थे। इस दुर्घटना में 60 यात्री अकाल ही काल के ग्रास बन गये थे।

क्या होता है भूस्खलन?

पर्वतीय ढ़ालों या नदी तटों पर छोटी शिलाओं, मिट्टी या मलबे का अचानक खिसकर नीचे आ जाना ही, भूस्खलन है। पर्वतीय क्षेत्रों में भूस्खलन का सिलसिला निरंतर बढ़ता ही जा रहा है। इससे पर्वतों के जन–जीवन पर बुरे प्रभाव दिखाई पड़ने लगे हैं।

भूस्खलन प्रवण क्षेत्र–हिमालय, पश्चिमी घाट और नदी घाटियों में प्राय भूस्खलन होते रहते हैं। भूस्खलनों का प्रभाव जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, सिक्किम तथा सभी सात उत्तर पूर्वी राज्य भूस्खलन से ज्यादा ही त्रस्त है। दक्षिण में महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल को भूस्खलन का प्रकोप झेलना पड़ता है।

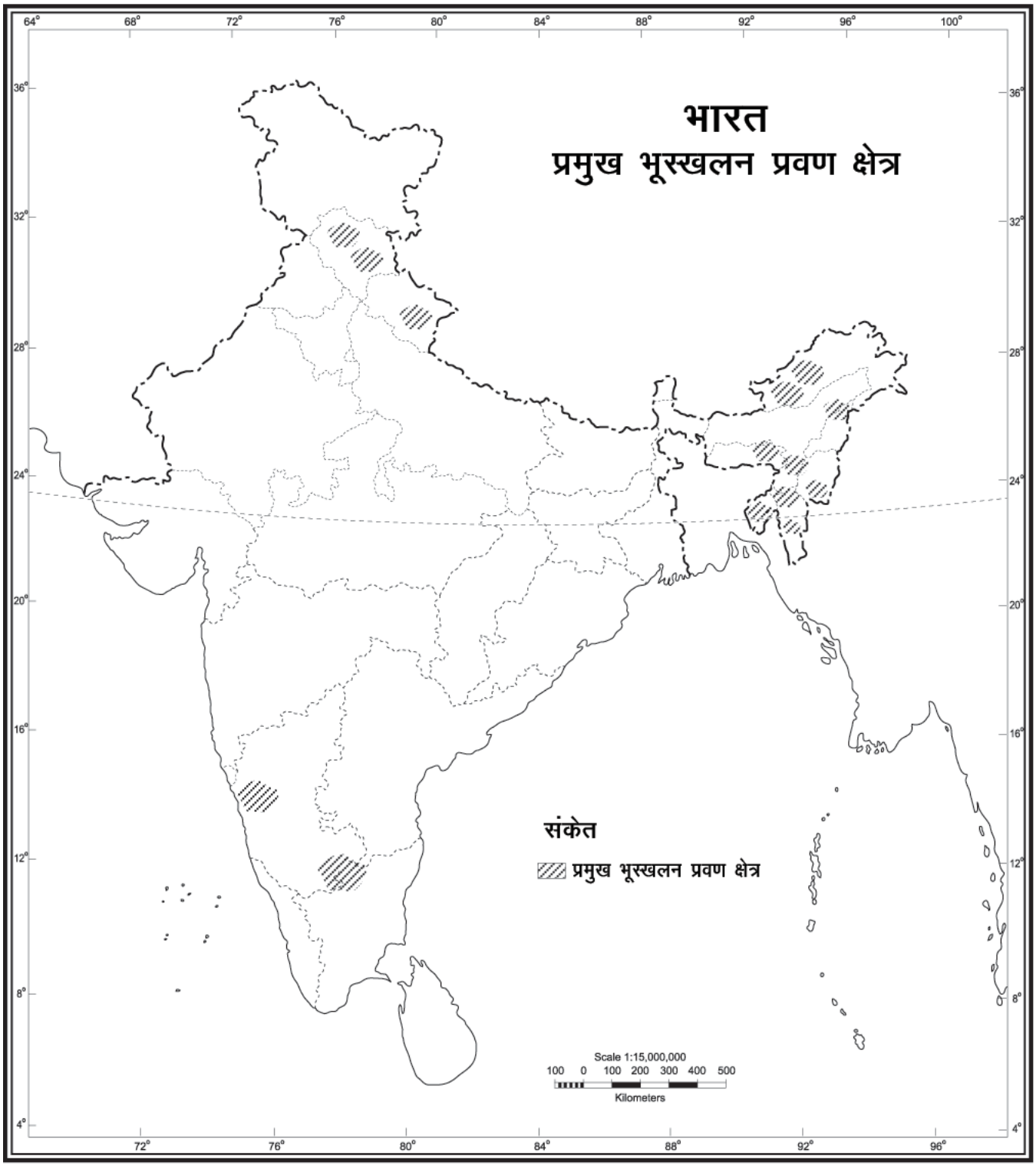

Based upon Survey of India Outline Map printed in 1990
The territorial waters of India extened into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the aporopriate base line.
The boundary of Meghalaya shown of this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971, but has yet to be verified
Responsibility for correctness of internal details shown on the map rests with the publisher.

© Government of India copyright, 1996

चित्र 18.3 भारत : प्रमुख भूस्खलन प्रवण क्षेत्र

भूस्खलन के कारण

(क) **भारी वर्षा** – भारी वर्षा भूस्खलन का एक प्रमुख कारण है।

(ख) **वन-नाशन** – वनों का विनाश भूस्खलन का मुख्य कारण है। वृक्ष, झाड़ियाँ और घासपात मृदा कणों को बांधे रखते हैं। पेड़ों के कटने से पहाड़ी ढाल नंगे हो जाते हैं। ऐसे ढालों पर वर्षा का जल निर्बाध गति से बहता है। उसे सोखने के लिए वनस्पति का आवरण नहीं होता।

(ग) **भूकंप और ज्वालामुखी विस्फोट :** हिमालयी क्षेत्र में प्रायः भूकंप आते रहते हैं। भूकंप के झटके पहाड़ों को हिला देते हैं और वे टूट कर नीचे की ओर खिसक जाते हैं। ज्वालामुखी विस्फोटों से भी पहाड़ी क्षेत्रों में भूस्खलन होते हैं।

(घ) **सड़क निर्माण :** विकास के लिए पहाड़ों में सड़कों का निर्माण चल रहा है। सड़क बनाते समय ढेर सारा मलबा हटाना पड़ता है। इस तरह चट्टानों की बनावट एवं उनके ढाल में बदलाव आता है। फलतः भूस्खलन तीव्र हो जाता है।

(ङ) **झूम कृषि :** उत्तरपूर्वी भारत में झूम खेती के कारण भूस्खलनों की संख्या या आवृत्ति बढ़ी है।

(च) **भवन निर्माण :** जनसंख्या वृद्धि तथा पर्यटन के लिए आवास की व्यवस्था हेतु पर्वतीय क्षेत्रों में अनेक मकान और होटल बनाए जा रहे हैं। इनसे भी भूस्खलनों में वृद्धि होती है।

भूस्खलन के परिणाम

(क) **पर्यावरण का ह्रास:** भूस्खलनों से पर्वतों के पर्यावरण में ह्रास हो रहा है। यहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य धीरे–धीरे घट रहा है।

(ख) जल स्रोत सूख रहे हैं।

(ग) नदियों में बाढ़ की वृद्धि हो रही है।

(घ) सड़क मार्ग अवरूद्ध हो रहा है।

(ङ) अपार धन–जन की हानि हो रही है।

भूस्खलन रोकने तथा इसके दुष्प्रभावों को कम करने के उपाय

(क) **वनरोपण :** वृक्ष और झाड़ियाँ मृदा को बांधे रखने में सहायक होती है।

(ख) सड़कों के निर्माण में नई तकनीकः सड़क इस तरह बनायी जानी चाहिए ताकि कम से कम मलबा निकले।

(ग) खनिजों और पत्थरों के निकालने पर रोक लगाई जाए।

(घ) वनों का शोषण न करके वैज्ञानिक दोहन किया जाए।

टिप्पणी

(ङ) ऋतुवत या वार्षिक फसलों के बदले स्थायी फसलें जैसे फलों के बाग लगाए जाएँ।

(च) भूस्खलन की आशंका वाले क्षेत्रों में पृष्ठीय जल प्रवाह को नियन्त्रित करके जलरिसाव को कम किया जाए।

(छ) पहाड़ी ढालों पर मलबे को खिसकने से रोकने के लिए मजबूत दीवारें बनाई जाएं।

(ज) भूस्खलन प्रवण क्षेत्रों का मानचित्रण किया जाना चाहिए। ऐसे क्षेत्रों में निर्माण कार्यों पर रोक लगाई जाए।

- पर्वतीय ढालों या नदी तटों पर छोटी शिलाओं, मिट्टी या मलवे का खिसक कर नीचे आ जाना ही भूस्खलन है।
- हिमालय, पश्चिमी घाट और गहरी नदी घाटियों में वर्षा के दौरान प्रायः भूस्खलन होते हैं।

पाठगत प्रश्न 18.4

1. भूस्खलन के कोई दो कारण बताइये।

   (क) _____ (ख) _____

2. दो प्रमुख भूस्खलन प्रवण क्षेत्रों के नाम बताइये।

   (क) _____ (ख) _____

3. कोष्ठक में दिए गए उत्तरों में से सही उत्तर चुनकर लिखिए।

   (क) दक्षिण भारत के किस राज्य में भूस्खलन प्रवण क्षेत्र है?

   (आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु)

   (ख) भूस्खलन रोकने के लिए कौन सा उपाय किया जाता है।

   (ढाल को समतल करना, ढाल पर मजबूत दीवार बनाना)

18.6 भूकंप क्या है?

सामान्य शब्दों में धरातल का अचानक कांपने लगना या हिल उठना ही भूकंप है। अधिकतर भूकंप हल्के से कंपन के रूप में आते हैं। लेकिन बड़े या विनाशकारी भूकंप प्रायः हल्के झटकों के साथ शुरू होते हैं और फिर झटकों की तीव्रता बढ़ती जाती है तथा उसके बाद झटकों की तीव्रता कम होती जाती है। झटकों की अवधि प्रायः कुछ सेकेंडों में ही होती है।

भूकंप अचानक आनेवाला संकट है। एक हिन्दी कवि के शब्दों में ''भूकंप आता बिना कहे, सांस छुट्टी कर जाती है''। भूकंप साल में कभी भी, दिन में या रात में आ सकता

है। इसका अचानक प्रभाव होता है। पहले से कोई चेतावनी संकेत नहीं मिलते। निरंतर और गंभीर शोध के बावजूद मानव भूकंप की भविष्यवाणी करने या पूर्वानुमान लगाने में आज तक सफल नहीं हो सका है

तीव्र भूकंप की आशंका वाले क्षेत्र- भारतीय मानक ब्यूरो ने भूकंप के विभिन्न तीव्रताओं वाले क्षेत्रों का मानचित्र बनाया है। इसका संशोधित संस्करण सन् 2002 में प्रकाशित किया गया था। (देखिए चित्र 18.4) भूकंपों की तीव्रता में भिन्नता के आधार पर संपूर्ण भारत को चार क्षेत्रों में बांटा गया है। प्रत्येक क्षेत्र की तीव्रता और भूकंप से होने वाली हानियों का विवरण नीचे दिया गया है।

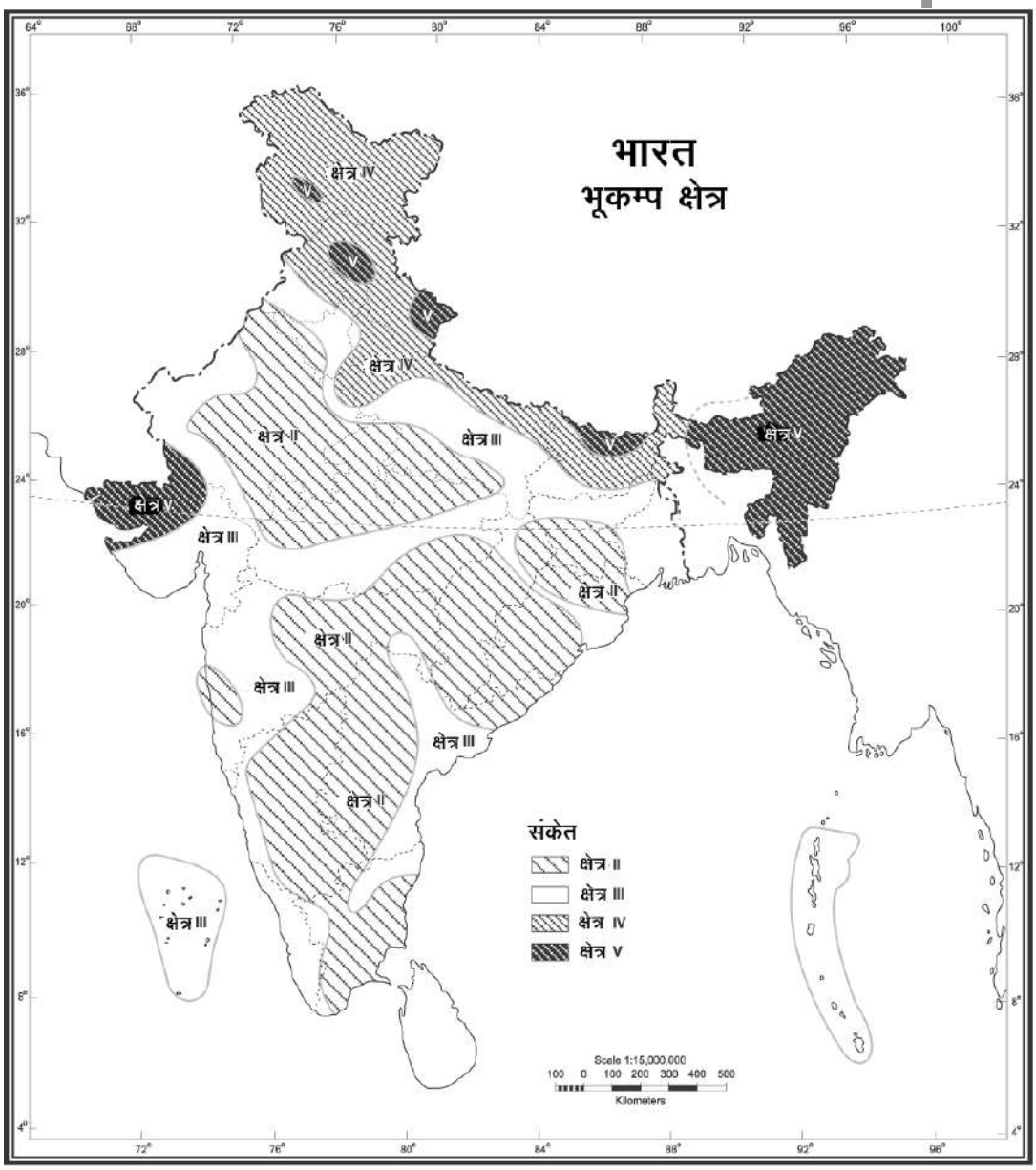

Based upon Survey of India Outline Map printed in 1990
The territorial waters of India extened into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.
The boundary of Meghalaya shown of this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971, but has yet to be verified
Responsibility for correctness of internal details shown on the map rests with the publisher.

© Government of India copyright, 1996

चित्र 18.4 भारत : भूकम्प क्षेत्र

टिप्पणी

क्षेत्र-II सभी को अनुभव होता है। अनेक लोग डरकर घर से बाहर भागते हैं। भारी फर्नीचर खिसक जाता है। दीवारों के प्लास्टर झड़ते हैं। चिमनियों में सामान्य दरारें विकसित हो जाती हैं।

क्षेत्र -III प्रत्येक व्यक्ति घर से बाहर भागता है। अच्छे डिजाइन और मजबूत भवनों (भूकंप रोधी) में भी थोड़ी टूट–फूट हो जाती है। सामान्य रूप से बने भवनों, पुलों आदि में टूट–फूट सामान्य होती है। खराब डिजाइन वाले या घटिया भवनों, पुलों आदि में काफी टूट–फूट होती है।

क्षेत्र -IV विशेष रूप से बने भवनों, पुलों आदि में थोड़ी टूट–फूट, सामान्य रूप से बने भवनों में बहुत टूट–फूट, खराब निमार्णों में भारी टूट–फूट, चिमनियाँ, खंभे, स्मारक, दीवारें, जमीन पर गिर पड़ती हैं।

क्षेत्र-V अच्छी तरह की वैज्ञानिक तकनीक से बने पुलों, भवनों आदि को भारी नुकसान तथा नींव का खिसकना, धरातल में दरार और तीव्र भूकंपों में सब कुछ नष्ट हो जाता है।

दिल्ली और मुबंई अधिक खतरे वाले क्षेत्र सं. IV में स्थित हैं। संपूर्ण उत्तर–पूर्वी भारत, कच्छ, गुजरात, उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू–कश्मीर के कुछ भाग अत्यधिक खतरे वाले क्षेत्र संख्या–V में शामिल हैं। अब प्रायद्वीपीय पठार भी भूकंपों से अछूता नहीं रहा है। महाराष्ट्र राज्य के लाटूर (1993, रिक्टर पैमाने पर तीव्रता 6.4) तथा कोयना (1967, तीव्रता 6.5) के भूकंप इस बात के प्रमाण हैं।

भूकम्प का प्रभाव

(क) संपत्ति की हानि : भूकंप आने पर झोंपड़ी से लेकर महल और एक मंजिली इमारतों से लेकर गगनचुंबी मजबूत भवन आदि सभी ध्वस्त हो जाते हैं। धरातल के नीचे बनी पाइपलाइनें और रेल की पटरियां टूट जाती हैं या बरबाद हो जाती हैं। नदियों पर बने बांध ढह जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप आई बाढ़ बहुत विनाशकारी होती है। दक्षिण भारत में आये 1967 के भूकम्प में कोयना बांध क्षतिग्रस्त हुआ था।

(ख) जनहानिः भूकंप के कुछ सेकेंड के झटके हजारों लोगों की जानें ले लेता है। भारत में सन 1988 और 26 जनवरी 2001 के मध्य आए पाँच बड़े भूकंप में लगभग 31000 लोग अकाल मौत के शिकार हुए। 1934 के बिहार भूकंप और 1905 में कांगड़ा भूकंप में क्रमशः 10,000 और 20,000 लोग मारे गए थे। अनगिनत लोग बेघर और बेसहारा हो गए थे। 26 जनवरी 2001 को गुजरात में आया भूकम्प बड़ा ही भयंकर और विनाशकारी था। इस भूकंप की विनाशलीला ने 25,000 से भी अधिक लोगों को मौत की नींद सुला दिया। संपत्ति का विनाश इतने बड़े पैमाने पर हुआ था कि उसका अनुमान तक नहीं लगाया जा सका।

(ग) नदियों का मार्ग परिवर्तन : भूकंप के प्रभाव से कभी–कभी नदियों के मार्ग अवरूद्ध हो जाते या मार्ग परिवर्तित हो जाते हैं।

(घ) सुनामी : भूकंप के कारण समुद्र में एक ऊंची तरंग उठती है। इसे ही जापान में सुनामी कहते हैं। यह कभी 20–25 मीटर तक ऊंची हो जाती है। यह सागर तट की बस्तियों को लील जाती है। जहाजों को डुबो देती है। 27 दिसम्बर 2004 को सुमात्रा, इन्डोनेशिया के निकट महासागर में जन्मे भूकंप से बनी सुनामी से दक्षिण और दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों के तटवर्ती क्षेत्रों में अरबों रूपयों की संपत्ति नष्ट हो गई। दो लाख से ज्यादा लोगों की मृत्यु हो गई।

(ङ) कीचड़ के फव्वारे: भीषण भूकंपों के कारण धरातल पर गरम पानी और कीचड़ के फव्वारे फूट पड़ते हैं। 1934 ई. के बिहार के भूकंप के समय धरातल में बनी दरारों से कीचड़ ऐसे निकल रही थी, मानों पिचकारी से जलधारा फूट रही हो। किसानों के हरे भरे खेत घुटनों–घुटनों तक कीचड़ में दब गए थे।

(च) दरारें फूटना: सड़कों, रेलमार्गों और खेतों में कभी–कभी दरारें पड़ जाती हैं, जिससे वे बेकार हो जाते हैं। सैन फ्रांसिस्को (कैलेफोर्निया) के भूकंप के दौरान सैन एण्ड्रियास भ्रंश का निर्माण हुआ था।

(छ) अन्य प्रभाव : भूस्खलन और हिमस्खलन होने लगता है। ग्लेशियर के हिमखंड टूटकर तेजी से फिसलने लगते हैं।

भूकंप के दौरान तथा बाद में करणीय-अकरणीय कार्य

तत्काल कार्यवाही

घर के अंदर

- बाहर मत भागिए। अपने परिवार को दरवाजों और मेजों के नीचे कीजिए। पलंगों पर लेटे व्यक्ति को पलंगों के नीचे ले आइए। खिड़कियों और चिमनियों से दूर रहिए।

घर से बाहर

- भवनों, ऊँची दीवारों, बिजली के झूलते तारों से दूर रहिए। क्षतिग्रस्त भवनों में दुबारा मत जाइए।

वाहन–चलाते समय

- अगर कार या बस में यात्रा करते समय भूकंप के झटके महसूस होने लगे तो ड्राइवर को वाहन रोकने के लिए कहिए। वाहन में ही बैठे रहिए।

तत्काल करने योग्य कार्य

- घर की सभी आग बुझा दीजिए तथा बिजली के सभी उपकरण बंद कर दीजिए।
- यदि संभव हो तो घर से बाहर निकल कर खुली जगह पर चले जाइये जो बड़ी इमारत, पेड़, बिजली के तारों से दूर हो।
- गैस बुझाने के बाद यदि गैस के रिसाव का पता चले तो घर से निकल जाइए।
- पानी बचाइए तथा सभी आपातकालीन बरतन भर लीजिए।

टिप्पणी

- पालतू और घरेलू जीव–जंतुओं (कुत्ता, बिल्ली और गोपशु) को बंधन मुक्त कर दीजिए।

> - धरातल का अचानक कांपने लगना या हिल उठना ही भूकंप है।
> - संपूर्ण उत्तर पूर्वी भारत, गुजरात का कच्छ क्षेत्र, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड तथा जम्मू–कश्मीर के कुछ भाग अत्यधिक खतरेवाले क्षेत्र संख्या V में शामिल हैं।

पाठगत प्रश्न 18.5

1. सन 2001 के गणतंत्र दिवस के अवसर पर किस राज्य में भूकंप आया था?

   _____

2. भूकंप के कारण समुद्र में उठने वाली ऊँची लहर को जापानी भाषा में क्या नाम दिया गया है?

   _____

3. भूकंप की तीव्रता की दृष्टि से दिल्ली किस क्षेत्र संख्या में शामिल किया गया है?

   _____

18.7 चक्रवात

चक्रवात निम्न वायुदाब के केन्द्र होते हैं। इनमें केन्द्र से बाहर की ओर वायु दाब-बढ़ता जाता है। नतीजतन परिधि से केन्द्र की ओर पवन चलने लगती है। चक्रवात में पवनों की दिशा उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ी की सूईयों के विपरीत तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में उनके अनुरूप होती है। स्थिति और भौतिक गुणों की दृष्टि से चक्रवात दो प्रकार के होते हैं। शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात और उष्ण कटिबंधीय चक्रवात। यहाँ हम ऊष्ण कटिबंधीय चक्रवात की ही चर्चा करेंगे और उसके लिए केवल चक्रवात शब्द का ही प्रयोग करेंगे क्योंकि अब मौसम विज्ञान की शब्दावली में शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात को अवदाब और उष्ण कटिबंधीय चक्रवात को केवल चक्रवात ही कहते हैं।

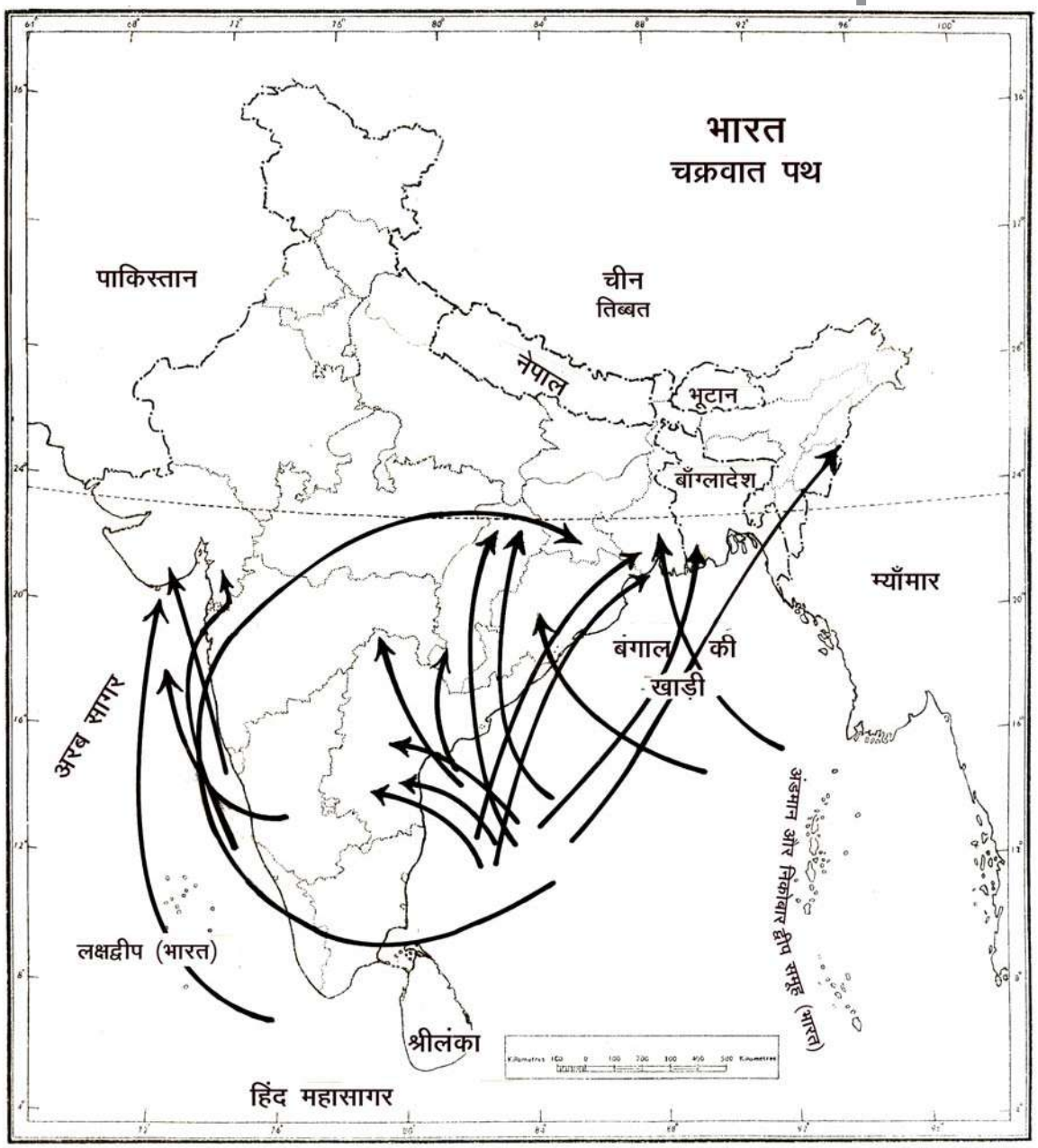

Based upon Survey of India Outline Map printed in 1996.
The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.
The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas(Reorganisation) Act, 1971, but has yet to be verified.
Responsibility for correctness of internal details shown on the map rests with the publisher.

© Government of India copyright, 1996.

चित्र 18.5 चक्रवात का पथ

''चक्रवात अत्यंत निम्न वायुदाब का लगभग वृत्ताकार तूफानी केन्द्र हैं, जिसमें चक्करदार पवन प्रचंड वेग से चलती है तथा मूसलाधार वर्षा होती है।'' वायुमंडल के सामान्य परिसंचरण में चक्रवात महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एक अनुमान के अनुसार एक पूर्ण विकसित चक्रवात मात्र एक घंटे में 3 अरब 50 करोड़ टन कोष्ण आर्द्र वायु को निम्न अक्षांशों में स्थानान्तरित कर देता है।

टिप्पणी

कब-कब आते हैं चक्रवात

चक्रवात एक ऐसी परिघटना है जो वर्ष के कुछ महीनों तक ही सीमित रहती है। भारत में अधिकतर चक्रवात मानसून के बाद अक्टूबर–दिसंबर या मानसून से पहले अप्रैल–मई में आते हैं। सामान्यतः चक्रवात की जीवन अवधि 7 से 14 दिनों की होती है।

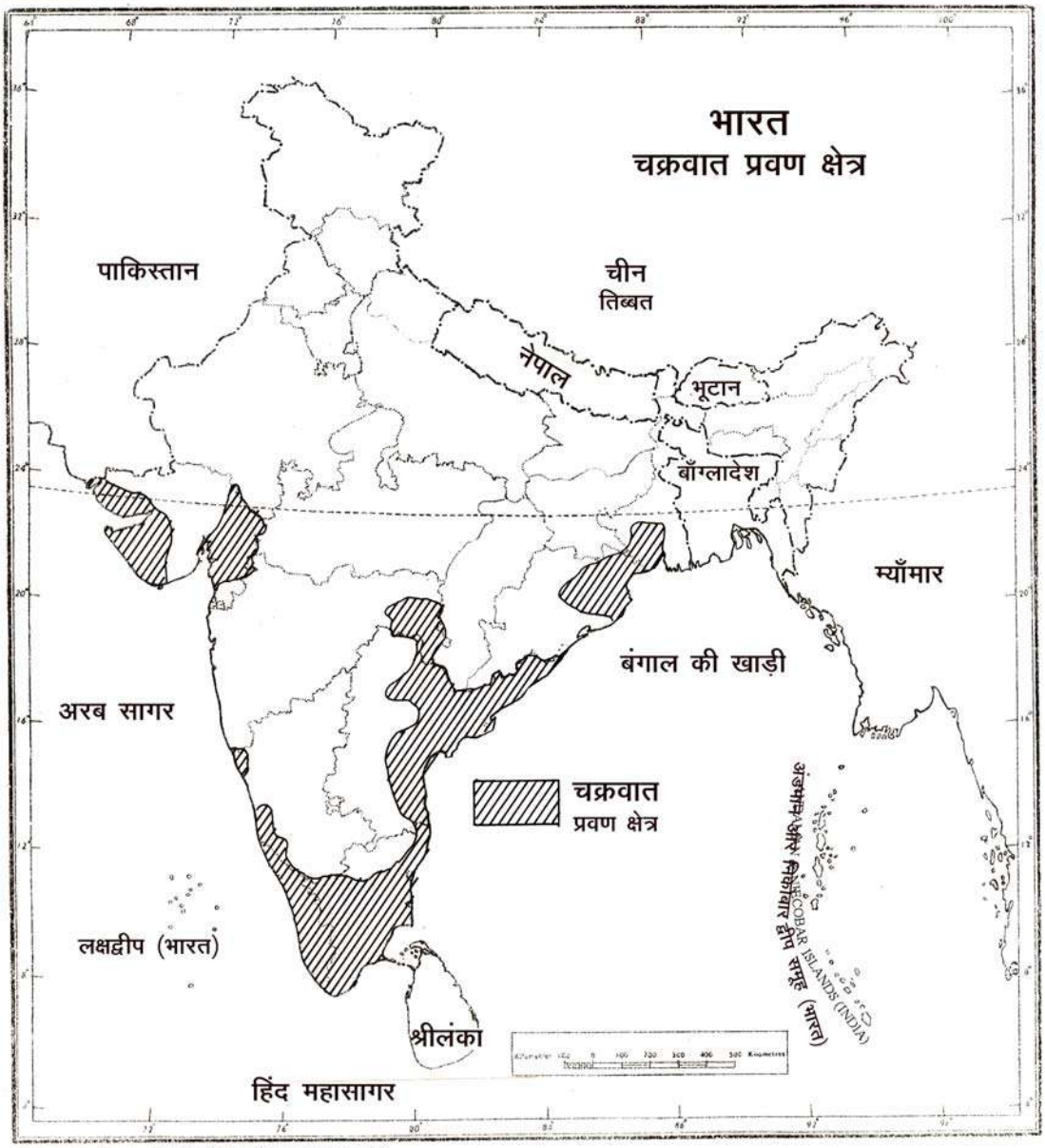

Based upon Survey of India Outline Map printed in 1996.
The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.
The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas(Reorganisation) Act, 1971, but has yet to be verified.
Responsibility for correctness of internal details shown on the map rests with the publisher.

© Government of India copyright, 1996.

चित्र 18.6 चक्रवात प्रवण क्षेत्र

चक्रवातों का संचलन

चक्रवात में बाहर के उच्च वायुदाब से केन्द्र के निम्न वायुदाब क्षेत्र की ओर पवन बड़े वेग से चलती हैं। इनके साथ–साथ ही चक्रवात का पूरा का पूरा तंत्र ही (बंगाल की खाड़ी में) पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा की ओर 15 से 30 कि.मी. प्रति घंटे की गति से आगे बढ़ता है। उड़ीसा में आया चक्रवात अंडमान द्वीप समूह के पास बना था और कई दिन बाद 29 अक्टूबर 1999 को उड़ीसा पहुँचा था। जिस तरह एक लट्टू अपनी कीली पर चक्कर खाते हुए किसी एक दिशा में आगे सरकता रहता है, उसी तरह चक्रवात भी आगे बढ़ता है। समुद्रों के ऊपर पैदा होकर चक्रवात स्थल पर पहुंच कर विघटित हो जाते हैं।

कहाँ-कहाँ आते हैं भारत में चक्रवात

भारत में सबसे अधिक चक्रवात पूर्वी तट पर आते हैं। चक्रवात के संकट की आशंका वाले राज्य हैं– पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु। पश्चिमी तट अरब सागर में बने चक्रवातों से प्रभावित होता है। चक्रवात से उत्पन्न विपदा को सबसे अधिक झेलने वाला पश्चिमी तट का राज्य गुजरात है। महाराष्ट्र के तटीय और कुछ अंदरूनी क्षेत्र भी चक्रवात के प्रकोप की चपेट में आते हैं। संसार किसी भी सागर की तुलना में बंगाल की खाड़ी और अरब सागर में सबसे अधिक चक्रवात आते है।

चक्रवातों द्वारा महाविनाश

चक्रवात जिधर से गुजरते हैं, वहां महाविनाश करके निकलते हैं। चक्रवातों के प्रचंड वेग से कच्ची झोंपड़ियां तो क्या कंक्रीट, लोहे और पत्थरों से बने महल और किले भी ध राशायी हो जाते हैं। पेड़, बिजली के खंभे आदि जो कुछ भी सामने आता है टूट–फूट जाता है। मूसलाधार वर्षा बाढ़ का कारण बन जाती है। बाढ़ का पानी चारों ओर तबाही मचा देता है। चक्रवात के वेग से सागर में उत्ताल तरंगें उठती हैं। ये पानी की दीवारों की तरह आती हैं और तट से 10–15 कि.मी. की दूरी तक घर–द्वार, खेत–खलिहान, सड़कें, भवन, गांव और नगर सभी को निगल जाती हैं। चक्रवाती वर्षा से उत्प्रेरित भूस्खलन और भी अधिक विनाशकारी सिद्ध होते हैं।

विकसित देशों ने तो चक्रवात के प्रतिकार के उपाय खोज लिए हैं। समय पर दी गई

टिप्पणी

सही चेतावनी से लोगों की जान बच जाती है। केवल धन, संपत्ति ही नष्ट होती है। इसके विपरीत विकासशील देशों में चक्रवात से लोग असमय ही मृत्यु को प्राप्त करते हैं, धन–संपत्ति का विनाश तो होता ही होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में सितम्बर 1989 में प्रलयंकारी ह्यूगो हरीकेन आया। सही एवं समयानुसार भविष्यवाणी के कारण केवल 21 लोगों की जानें गई थीं। इसके विपरीत 1991 के बाँग्लादेश के चक्रवात में 1,39,000 लोग मृत्यु का ग्रास बन गए थे।

चक्रवात आने से पूर्व, दौरान तथा बाद में करणीय-अकरणीय कार्य

- अग्रिम सूचना और सलाह के लिए रेडियो सुनते रहिए।
- बचाव के लिए पर्याप्त समय दीजिए।
- चक्रवात कुछ घंटों में मार्ग की दिशा, गति तथा तीव्रता बदल सकता है। अतः नवीनतम सूचना के लिए रेडियो को निरंतर चलाए रखिए।

यदि आपके क्षेत्र के लिए तूफानी पवनों की प्रबल झंझा की भविष्यवाणी की गई हो तोः

- खुले तख्ते, नालीदार टीन, खाली डिब्बे या ऐसी ही अन्य वस्तुएँ, जो पवन के साथ उड़कर खतरा बन सके, बांध दीजिए या स्टोर में रख दीजिए।
- खिड़कियों को टूटने से बचाने के लिए उन्हें बद रखिए।
- निकट के सुरक्षित स्थान में चले जाइए या किसी अधिकार प्राप्त सरकारी संस्था के आदेश पर क्षेत्र को छोड़ दीजिए।

जब तूफान आ जाय

- जब तूफान आ ही जाए, तो घर के अंदर रहिए। अपने घर के सबसे मजबूत भाग में शरण लीजिए।
- रेडियो सुनिए और निर्देशों का पालन कीजिए।
- यदि छत उड़ने लगे, तो मकान के सुरक्षित भाग की खिड़की को खोल दीजिए।
- यदि आप खुले में फंस गए हैं, तो शरण खोजिए।
- तूफान के दौरान खुले में अगर आप हैं तो घर से बाहर या पुलिन पर मत जाइए। ऊँचे पगडंडी के साथ–साथ लेट जाइये। चक्रवातों के साथ प्रायः समुद्र या झील में ऊँची–ऊँची लहरें उठती हैं।

- चक्रवात अत्यंत निम्न वायुदाब का लगभग वृत्ताकार तूफानी केन्द्र है जिसमें चक्करदार पवनें प्रचंड वेग से चलती है तथा वर्षा होती है।
- चक्रवात के संकट की आशंका वाले राज्य हैं: पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु।

पाठगत प्रश्न 18.6

1. भारत में अधिकतर चक्रवात किन महीनों में आते हैं?

_____

2. 29 अक्तूबर 1999 को भयंकर विनाशकारी चक्रवात किस राज्य में आया था?

_____

3. भारत के पश्चिमी तट पर सबसे अधिक चक्रवात किस राज्य में आते हैं?

_____

आपने क्या सीखा

संसार के सबसे अधिक विपदा प्रवण देशों में चीन के बाद भारत का दूसरा स्थान है। भारत की कुल जनसंख्या के लगभग 6% से अधिक लोगों को प्रतिवर्ष प्राकृतिक विपदाओं की मार सहनी पड़ती है। धन–जन को हानि पहुंचाने वाले प्राकृतिक संकटों को विपदा कहते हैं। दुनिया में बाढ़ से होने वाली मौतों में से 20% भारत में होती हैं। भारी वर्षा, नदियों में अवसादों के जमा होने, वनों के विनाश, चक्रवातों, अपवाह तंत्र से छेड़छाड़, नदियों के मार्ग परिवर्तन तथा सुनामी के कारण बाढ़ें आती हैं। भारत का 65% कृष्य क्षेत्र वर्षाधीन है। इस क्षेत्र में ही प्रायः सूखा पड़ता है। पर्यावरण से छेड़छाड़ के कारण भी सूखा पड़ता है। कुछ उपाय अपनाकर सूखे के प्रभाव को कम किया जा सकता है। भारत के 593 (2001) जिलों में से 191 जिले भयंकर रूप से सूखा प्रवण है। वर्षा ऋतु में पर्वतीय ढालों पर भूस्खलन से भारी विनाश होता है। जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, सिक्किम तथा उत्तर पूर्व के सातों राज्य भूस्खलन प्रवण है।

टिप्पणी

वन विनाश, भूकंप, सड़क निर्माण, झूम कृषि और भवन निर्माण भूस्खलन होने के कारण हैं। 26 जनवरी 2001 में गुजरात में भयंकर भूकंप आया था। भूकंपों से धन–जन की हानि के अलावा, नदियों का मार्ग परिवर्तन, सुनामी कीचड़ के फव्वारे, दरारें फूटना जैसी हानिकारक घटनाएं भी घटती हैं। सबसे अधिक विनाशकारी भूकंपों के उत्तरी पूर्वी भारत, गुजरात, उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू–कश्मीर में आने की आशंका रहती है। चक्रवात बंगाल की खाड़ी से उत्पन्न होकर पूर्वीतट के राज्यों को प्रभावित करते हैं। अरब सागर में बने चक्रवात गुजरात और महाराष्ट्र में विनाश लीला दिखाते हैं। कुछ सावधानियां बरतकर चक्रवातों के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

पाठान्त प्रश्न

1. प्राकृतिक संकट और प्राकृतिक विपदा में अंतर स्पष्ट कीजिए।
2. बाढ़ किसे कहते हैं? बाढ़ की उत्पत्ति के कारणों और उससे होने वाली हानियों की व्याख्या कीजिए।
3. भारत के सूखा प्रवण क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।
4. भूस्खलन किसे कहते हैं? मनुष्य के किन क्रियाकलापों के कारण भूस्खलनों की आवृत्ति बढ़ गई है।
5. भूकंप क्या है? मानव पर पड़ने वाले भूकंपों के प्रभावों का वर्णन कीजिए।
6. भारत में चक्रवात कब–कब आते हैं? चक्रवात से बचाव के लिए अपनाए जाने वाले तरीकों का वर्णन कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

18.1

1. जब प्राकृतिक घटनाएं मानव और उसकी संपत्ति के लिए खतरा पैदा करने लगते हैं तो वे प्राकृतिक संकट कहलाते हैं।
2. भूकंप से समुद्र में जन्मी ऊँची लहर को सुनामी कहते हैं। यह अपने उत्पत्ति स्थान

से हजारों कि.मी. दूर के तटों पर भी धन–जन की भारी हानि पहुंचाती है।

18.2

1. भारी वर्षा, वनों का नाश, चक्रवात, सुनामी (कोई दो)।
2. 4 करोड़ हैक्टेयर।
3. संग्रहण जलाशय बनाना, तट बंध बनाना, वृक्षारोपण करना, प्राकृतिक अपवाह तंत्र की पुनः स्थापना करना (कोई दो)।

18.3

1. काफी लंबे समय तक एक विस्तृत प्रदेश में वर्षण की कमी को सूखा कहते हैं।
2. (क) राजस्थान (ख) फुहारा सिंचाई

18.4

1. भूकंप, वनों का विनाश, सड़क निर्माण, झूम कृषि, जनसंख्या वृद्धि (कोई दो)।
2. (क) हिमालय (ख) पश्चिमी घाट
3. (क) तमिलनाडु

   (ख) ढाल पर मजबूत दीवार बनाना

18.5

1. गुजरात
2. सुनामी
3. संख्या IV

18.6

1. अक्तूबर, नवंबर, दिसंबर, अप्रैल और मई
2. उड़ीसा
3. गुजरात

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. अनुच्छेद 18.2 देखिए।

टिप्पणी

2. अनुच्छेद 18.3 देखिए।

3. अनुच्छेद 18.4 देखिए।

4. अनुच्छेद 18.5 देखिए।

5. अनुच्छेद 18.6 देखिए।

6. अनुच्छेद 18.7 देखिए।

19

हमारे संसाधन

प्राकृतिक संसाधन प्रकृति प्रदत्त उपहार हैं जो कि मनुष्य की भौतिक व अभौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। अन्य शब्दों में, कोई पदार्थ जो कि मूल्यवान और मनुष्य के लिए उपयोगी हो, संसाधन कहलाता है। इन संसाधनों में भौतिक जैसे–भूमि, जल, मृदा एवं खनिज और जैविक जैसे वनस्पति, वन्य जीव एवं जलीय जीव/मात्स्यिकी दोनों शामिल हैं। वास्तव में प्रत्येक पदार्थ की मनुष्य के लिए कुछ न कुछ उपयोगिता है, परन्तु इनका उपयोग उपयुक्त तकनीक की उपलब्धता पर ही संभव है। उदाहरण के लिए, कोयला और पेट्रोलियम सदियों से धरातल के नीचे उपस्थित थे, परन्तु उनके उपयोग हेतु तकनीक का विकास हाल में किया गया। ये पदार्थ संसाधनों में तभी परिवर्तित हुए जबकि वे प्रयोग किये जा सके। इसलिए यह मानवीय क्षमता और आवश्यकता है जो कि संसाधन की उपयोगिता उत्पन्न करती है।

इस पाठ में हम संसाधनों के महत्व, उनके प्रकारों, उपयोग के प्रसार, उनके वितरण और संरक्षण के विभिन्न उपायों के बारे में पढ़ेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- संसाधन की परिभाषा को पुनः स्मरण कर सकेंगे;
- संसाधनों के महत्व की व्याख्या कर सकेंगे;
- उपयुक्त उदाहरणों के साथ प्राकृतिक संसाधनों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे;
- भारत में जैविक व अजैविक संसाधनों का वितरण पहचान सकेंगे;
- संसाधनों के असमान उपयोग व उनके वितरण के कारण बता सकेंगे;
- संसाधनों के संरक्षण की विभिन्न विधियों का सुझाव दे सकेंगे और
- हमारी नीतियों व योजनाओं के साथ संसाधन प्रबन्धन की विधियों के सामंजस्य का मूल्यांकन कर सकेंगे।

टिप्पणी

19.1 संसाधन का अर्थ एवं महत्व

जैसा कि पूर्व में लिखा गया है, कि संसाधन शब्द का अभिप्राय साधारणतः मानवी उपयोग की वस्तुओं से है। ये प्राकृतिक और सांस्कृतिक दोनों हो सकती हैं। मनुष्य प्रकृति के अपने अनुरूप उपयोग के लिए तकनीकों का विकास करता है। प्राकृतिक तंत्र में किसी तकनीक का जनप्रिय प्रयोग उसे एक सभ्यता में परिणित करता है, यथा जीने का तरीका या जीवन निर्वाह। इस प्रकार यह सांस्कृतिक संसाधन की स्थिति प्राप्त करता है।

(क) संसाधन राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के आधार का निर्माण करते हैं। भूमि, जल, वन, वायु, खनिज के बिना कोई भी कृषि व उद्योग का विकास नहीं कर सकता।

(ख) ये प्राकृतिक पर्यावरण जैसे कि वायु, जल, वन और विभिन्न जैव रूपों का निर्माण करते हैं, जो कि मानवीय जीवन एवं विकास हेतु आवश्यक है।

(ग) इन प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से मनुष्य ने घरों, भवनों, परिवहन एवं संचार के साधनों, उद्योगों आदि के अपने संसार का निर्माण किया है। ये मानव निर्मित संसाधन प्राकृतिक संसाधनों के साथ काफी उपयोगी भी हैं और मानव के विकास के लिए आवश्यक भी।

19.2 संसाधनों का वर्गीकरण

संसाधनों को इन आधारों पर कई तरीकों से वर्गीकृत किया जा सकता हैः (i) पुनर्नवीनीकरण, (ii) उत्पत्ति और (iii) उपयोग। (देखे चित्र 19.1)

वर्गीकरण का उद्देश्य प्राथमिक रूप से यह निर्धारित करना होगा कि हम एक संसाधन को किस विशिष्ट श्रेणी में रखते हैं।

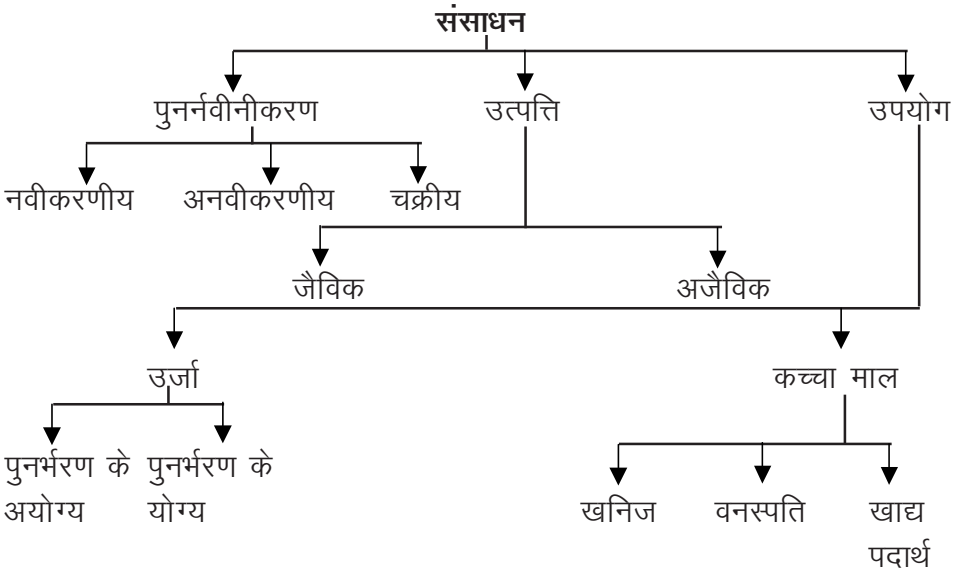

चित्र 19.1 संसाधनों का वर्गीकरण

टिप्पणी

(क) **जैविक संसाधनः** इन संसाधनों में पर्यावरण के समस्त जीवित तत्व सम्मिलित हैं। वन, वनोत्पाद, फसलें, पछी, वन्य जीव, मछलियां व अन्य समुद्री जीव जैव संसाधनों के उदाहरण हैं। ये संसाधन नवीकरणीय है क्योंकि ये स्वयं को पुनरूत्पादित व पुनर्जीवित कर सकते हैं। कोयला और खनिज तेल भी जैविक संसाधन है, परंतु ये नवीकरणीय नहीं हैं।

(ख) **अजैविक संसाधनः** इन संसाधनों में पर्यावरण के समस्त निर्जीव पदार्थ सम्मिलित है। भूमि, जल, वायु और खनिज यथा लोहा, ताँबा, सोना आदि अजैविक संसाधन हैं। ये समाप्त होने योग्य हैं व पुनर्नवीनीकरण के योग्य नहीं है, क्योंकि ये न तो नवीनीकृत हो सकते हैं और न ही पुनरूपादित।

- प्राकृतिक संसाधन मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, ये प्रकृति के मुफ्त उपहार हैं। उदाहरणार्थ – भूमि, जल, मृदा आदि।
- कोई पदार्थ जो कि मनुष्य के लिए मूल्यवान व उपयोगी है, संसाधन कहलाता है।
- संसाधन प्राकृतिक पर्यावरण जैसे कि वायु, जल, वन और विभिन्न जैव रूप का निर्माण करते हैं, जो कि मानव के जीवन यापन व विकास के लिए आवश्यक है।
- संसाधन उत्पत्ति, पुनर्नवीकरण व उपयोग के आधार पर वर्गीकृत किए जा सकते हैं।

पाठगत प्रश्न 19.1

1. 'संसाधन' शब्द को परिभाषित कीजिए।

   _____

2. संसाधनों को उनकी उत्पत्ति के आधार पर वर्गीकृत कीजिए।

   (क) _____ (ख)_____

3. जैविक संसाधनों के दो उदाहरण दीजिए।

   (क) _____ (ख)_____

4. अजैविक संसाधनों के दो उदाहरण दीजिए।

   (क) _____ (ख)_____

5. पुनर्चक्रण न हो सकने वाले दो जैविक संसाधनों के नाम बताइए।

   (क) _____ (ख)_____

टिप्पणी

19.3 जैविक संसाधनों का वितरण

वन

भूगोल विषय में जब हम 'वितरण' शब्द का प्रयोग करते हैं तब इसका मुख्य तात्पर्य भौगोलिक परिघटनाओं/घटनाओं के भौगोलिक या स्थानिक वितरण से होता है। अन्यथा, एक समाजशास्त्री के लिए वितरण का अर्थ मुख्यतः समाज की विभिन्न सामाजिक श्रेणियों में वितरण से है।

पृथ्वी की परिघटनाओं का भौगोलिक अध्ययन करते समय एक भूगोलवेत्ता के दृष्टिकोण से प्रथम एवं महत्वपूर्ण कार्य, इन परिघटनाओं, (इस संदर्भ में वनों का वितरण), की क्षेत्रीय विभिन्नताओं को समझना तथा इस हेतु उत्तरदाई कारणों का परीक्षण करना है।

वर्तमान में भारत की 75.5 मिलियन हेक्टेयर भूमि वनाच्छादित है, जो कि कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 23% है। वनों के वितरण में लगभग 83% का अंतर पाया जाता है, जो कि अंडमान व निकोबार द्वीप समूह में 87% है वहीं हरियाणा में केवल 4%। हमारी राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार, पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने के लिए, देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल के 33% भू–भाग को वनाच्छादित होना चाहिए। दुर्भाग्यवश, यह हमारी वन नीति में निर्धारित (रेखाकित) मानदण्ड से नीचे है। भारत में पाई जाने वाली वनस्पतियों को छः मुख्य प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है। ये हैं– उष्णकटिबंधीय सदाबहार वन, उष्णकटिबंधीय पर्णपाती वन, कटीली झाड़ियाँ, ज्वारीय वन और पर्वतीय वन।

वन्य जीव

भारत में वन्य जीवों की बहुसंख्य प्रजातियाँ पाई जाती हैं। ज्ञात विश्व में, जानवरों की पाई जाने वाली कुल 1.05 मिलियन प्रजातियों में से लगभग 75000 (7.46%) भारत में पाई जाती हैं।

भारत में पंछियों की 1200 से अधिक प्रजातियां पाई जाती हैं। स्तनपायी जीवों में, हमारे पास विशालकाय हाथी है, जो कि असम, केरल व कर्नाटक के वनों में पाया जाता है। ऊँट शुष्क क्षेत्रों में व जंगली गधे गुजरात के कच्छ के रन में पाये जाते हैं। गुजरात के गीर वनों में भारतीय सिंह मिलते हैं। एक सींगवाला गेंडा असम व पश्चिमी बंगाल के दलदली क्षेत्रों में पाया जाता है। भारत में बंदरों व हिरणों की कई प्रजातियाँ हैं। यहाँ पाये जाने वाले कुछ सबसे सुन्दर जानवरों में चौसिंगा, कृष्ण मृग व चिंकारा शामिल हैं।

हिरण की प्रजातियों में हाँगुल (कश्मीर मृग), स्वाम्प हिरण, चीतल, कस्तूरी मृग और पिसूरी सम्मिलित हैं। बिल्ली परिवार के अंतर्गत आने वाले जानवरों में तेंदुआ, क्लाउडेड तेंदुआ व हिम तेंदुआ है। हिमालय श्रेणियों में कई दिलचस्प जानवर जैसे कि जंगली भेड़, पहाड़ी बकरी, साकिन, छंछूंदर और तापिर पाये जाते हैं।

हमारे देश में पंछियों का जीवन भी समान रूप से समृद्ध व रंगीन है। शानदार मोर भारत का राष्ट्रीय पक्षी है। वनों एवं नम भूमियों में फेजेण्ट, गीज, बतख, मैना, तोते, कबूतर, क्रेन (सारस), धनेश और सनबर्ड पाये जाते हैं। यहाँ कोयल व बुलबुल जैसे गाने वाले पंछी भी मिलते हैं।

पशुधन

विश्व की लगभग 57 प्रतिशत भैंसें व लगभग 15 प्रतिशत गाय–बैल भारत में पाये जाते हैं। भारत के दो तिहाई से ज्यादा मवेशी मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, उत्तराखण्ड, झारखण्ड, महाराष्ट्र, उड़ीसा, कर्नाटक व राजस्थान राज्यों में हैं। भारत की कुल भेड़ों का एक चौथाई से ज्यादा हिस्सा राजस्थान में है जबकि भारत की आधे से ज्यादा बकरियां, बिहार, झारखण्ड, राजस्थान, पश्चिमी बंगाल व उत्तर प्रदेश में पायी जाती हैं।

कृषि कार्य में प्रयुक्त होने वाले पशु जैसे कि बैल, भैंस, गाय आदि भारत में कृषक समुदाय के मित्र हैं। ये विभिन्न कृषि कार्यों यथा जुताई, बुवाई, गहाई और कृषि उत्पादों के परिवहन में प्रयुक्त किये जाते हैं। इसके बाद भी कृषि के मशीनीकरण के साथ विशेषकर उत्तर–पश्चिमी भारत, तटीय आंध्र प्रदेश व तमिलनाडु व कुछ अन्य क्षेत्रों में कृषि कार्यों में पशु शक्ति का महत्व कम हो रहा है। गाय व भैंस द्वारा दूध और भेड़ से ऊन, मांस व चमड़े की प्राप्ति होती है। बकरियों से दूध, माँस, बाल व चमड़ा मिलता है। अंडे व पंखों के लिए चूजे, बतखें, गीज़ व टर्की पाली जाती हैं।

मात्स्यिकी

लगभग 20 लाख वर्ग किलोमीटर के विशाल महाद्वीपीय आकार, बड़ी झीलों व नदियों में मछलियों के भोजन की पर्याप्त उपलब्धता, सागरीय धाराओं और कुशल मछुआरों के कारण देश में मात्स्यिकी के विकास के प्रचुर अवसर हैं। यहाँ सागरों व महासागरों में सागरीय मात्स्यिकी तथा झीलों, नदियों व जलाशयों में अंतःस्थलीय मात्स्यिकी की जाती है।

भारत में विभिन्न प्रकार की मछलियों की 1800 से भी ज्यादा प्रजातियाँ विद्यमान हैं। भारत में चार प्रकार की मात्स्यिकी, जैसे– सागरीय मात्स्यिकी, स्वच्छ जल या अन्तःस्थलीय मात्स्यिकी,एस्चुरी मात्स्यिकी एवं पेरल मत्स्यिकी पायी जाती हैं। वार्षिक मत्स्य उत्पादन में सागरीय मात्स्यिकी का हिस्सा लगभग 63 प्रतिशत है। यहां की प्रमुख मछलियाँ सैरडाइन्स, मैकेरल, प्रॉन, क्लूपिओइड्स और सिल्वर बेलीज़ हैं।

देश के कुल मत्स्य उत्पादन का लगभग 37 प्रतिशत भाग अंतःस्थलीय मात्स्यिकी से आता है। प्रमुख मछलियाँ कतला, रोहिता, काला बासिल, मृंगल और कार्प हैं। देश की सागरीय मछलियों के कुल उत्पादन का 97 प्रतिशत से ज्यादा भाग व अंतःस्थलीय मछलियों का 77 प्रतिशत से ज्यादा हिस्सा केरल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक एवं गुजरात से आता है। यहाँ ध्यान देने योग्य है, कि ये सभी तटीय राज्य हैं।

टिप्पणी

- भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 23 प्रतिशत भाग वनाच्छादित है, जो कि पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के लिए राष्ट्रीय वन नीति में दिए गए आँकड़े से काफी कम है।
- राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार, पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के लिए देश के कुल क्षेत्र का 33 प्रतिशत भाग वनों के अंतर्गत होना चाहिए।
- भारत में पशुओं की लगभग 75,000 प्रजातियाँ और पक्षियों की 1200 से भी ज्यादा प्रजातियाँ पाई जाती हैं।
- विश्व की कुल भैंसों का 57 प्रतिशत व मवेशियों की कुल संख्या का 15 प्रतिशत हिस्सा भारत में पाया जाता है।
- भारत में मात्स्यिकी के चार प्रकार जैसे कि सागरीय, स्वच्छ जल, एस्चुअरी व पेरल मत्स्यिकी पाए जाते हैं।

पाठगत प्रश्न 19.2

1. भारत का कितना हिस्सा वनों के अंतर्गत है?

_____

2. उन प्रदेशों व केन्द्र शासित राज्यों के नाम बताइए, जिनका राष्ट्र के वनाच्छादित क्षेत्र में हिस्सा समानुपातिक रूप से अधिकतम एवं न्यूनतम हो।

_____

3. भारत में पाई जाने वाली छः प्रकार की वनस्पतियों के नाम बताइए।

_____

4. भारत में पशुओं की कितनी प्रजातियाँ पाई जाती हैं?

_____

5. भैंस व मवेशियों की विश्व की कुल संख्या में भारत का कितना हिस्सा है?

_____

6. भारत में किए जाने वाले मत्स्य–ग्रहण के चार प्रकार बताइए।

_____

19.4 अजैविक संसाधनों का वितरण

भूमि संसाधन : भारत 32,87,263 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में विस्तृत हैं। क्षेत्र एवं आकार के आधार पर रूस, कनाड़ा, चीन, संयुक्त राज्य अमरीका, ब्राजील व मिस्र के बाद यह विश्व का सातवाँ सबसे बड़ा राष्ट्र है। यह वृहद् आकार स्वतः एक बहुत बड़ा संसाधन है। लगभग 30 प्रतिशत क्षेत्र पर्वतों से ढका है; जो कि दृश्य सौन्दर्य, सदानीरा नदियों, वनों एवं वन्य जीवों का स्त्रोत हैं। भूमि का लगभग 43 प्रतिशत क्षेत्र मैदान होने के कारण कृषि के लिए सर्वथा उपयुक्त है। शेष 27 प्रतिशत क्षेत्र पठारों के अंतर्गत आता है, जो कि खनिजों एवं धातुओं का भंडार है।

जल संसाधनः भारत भाग्यशाली है कि उसके पास विशाल जल संसाधन हैं। संसाधनों में विविधता; हिमानियों, धरातलीय नदियों एवं भूमिगत जल, वर्षा एवं महासागरों के रूप भू–आकारों में विविधता का परिणाम है। अनुमानित औसत वार्षिक वर्षा 117 से.मी. है। भारत में नदियाँ धरातलीय जल का प्रमुख स्रोत हैं। सिंधु, गंगा व ब्रह्मपुत्र कुल धरातलीय जल का लगभग 60 प्रतिशत वहन करती हैं। भारत की पुनर्भरण योग्य भू–जल क्षमता 434 अरब घन मीटर है। आज, 70 प्रतिशत से भी ज्यादा जनसंख्या, अपनी घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भूजल का उपयोग करती है। आधे से भी ज्यादा सिंचाई इस स्त्रोत से प्राप्त होती है।

खनिज संसाधनः भारत खनिज संसाधनों में बहुत ही धनी है और इसमें एक औद्योगिक शक्ति बनने की क्षमता है। यहाँ लौह अयस्क के आरक्षित क्षेत्र, कोयला, खनिज तेल, बॉक्साइट व अभ्रक के व्यापक निक्षेप पाये जाते हैं। झारखण्ड, उड़ीसा और छत्तीसगढ़ में खनिज निक्षेपों का वृहद् संकेन्द्रण है। देश के कुल कोयला निक्षेप का तीन चौथाई भाग यहाँ है। भारत में पाये जाने वाले अन्य महत्वपूर्ण खनिज हैं– लौह अयस्क, मैगनीज, अभ्रक, बॉक्साइट और रेडियोधर्मी खनिज।

- भारत विश्व का सातवां सबसे बड़ा राष्ट्र है।
- औसत वार्षिक वर्षा 117 सेमी. आँकी गई है।
- सिंधु, गंगा व ब्रह्मपुत्र नदी तन्त्र भारत में कुल उपलब्ध भूजल का 60 प्रतिशत भाग वहन करते हैं।
- झारखण्ड, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा में लौह अयस्क, बॉक्साइट और अभ्रक के विशाल निक्षेप हैं।

पाठगत प्रश्न 19.3

1. क्षेत्र व आकार के संदर्भ में भारत का विश्व में कौन सा स्थान है?

टिप्पणी

2. भारत में औसत वार्षिक वर्षा की क्या मात्रा है?

_____

3. उन तीन नदी तन्त्र के नाम बताइए जो भारत के कुल भूजल का 60 प्रतिशत वहन करते हैं।

_____

4. भारत के वे तीन राज्य कौन से हैं जहां खनिज निक्षेपों के विशाल क्षेत्र हैं।

_____

19.5 संसाधनों का उपयोग

अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव प्रारंभ से ही संसाधनों का उपयोग करता रहा है। यह प्रक्रिया 'संसाधन उपयोग' कहलाती है।

इस प्रकार संसाधन मनुष्य द्वारा निर्मित किए जाते हैं। किंतु उसे इन निष्क्रिय उपादानों को मूल्यवान संसाधनों में परिवर्तित करने के लिए संस्कृति की सहायता की आवश्यकता होती है। संस्कृति में समस्त उपकरण एवं मशीनें, परिवहन एवं संचार के साधन साथ ही प्रभावी प्रबंधन, सामूहिक सहयोग, मनोरंजन, बौद्धिक कार्य, शिक्षा, प्रशिक्षण, उन्नत स्वास्थ्य एवं शिक्षा शामिल हैं। संस्कृति के बिना मनुष्य की कार्य एवं उत्पादन की क्षमता सीमित है।

आधुनिक युग में, विज्ञान एवं तकनीक के उपयोग ने उत्पादन हेतु संसाधनों के प्रभावी उपयोग की मनुष्य की क्षमता एवं योग्यता बढ़ा दी है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका व पश्चिम यूरोपीय देशों के पास, उन्नत तकनीक द्वारा प्राकृतिक सम्पदा के प्रभावी उपयोग के लिए 'उच्च विकसित अर्थव्यवस्था' है। दूसरी ओर, अफ्रीका, एशिया व लैटिन अमेरिका के कई देश प्रचुर प्राकृतिक संसाधनों के होते हुए भी विकास के स्तरों में काफी पीछे हैं क्योंकि ये देश आधुनिक तकनीक के मामले में भी काफी पीछे हैं।

19.6 भारत में संसाधन उपयोग की सीमा

प्राकृतिक संसाधनों ने हमारे देश के सामाजिक–आर्थिक विकास में सार्थक भूमिका अदा की है। भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा कृषीय देश है। ऐसा इसलिए क्योंकि विभिन्न फसलों को उगाने के लिए यहाँ विविध जलवायविक दशाएँ और अंतहीन मौसम पाया जाता है। भारत की विशाल खनिज सम्पदा ने इसे औद्योगिक रूप से विकसित होने में समर्थ बना दिया है।

हाल के दशकों में न केवल तेजी से बढ़ती जनसंख्या को भोजन देने बल्कि विशाल भारतीय जनसंख्या के आर्थिक कल्याणों को गति प्रदान करने की इच्छा ने संसाधनों

टिप्पणी

के उपयोग को चमत्कारिक रूप से बढ़ा दिया है। संसाधनों के अधारणीय उपयोग के कारण इसने पर्यावरणीय एवं परिस्थितिकीय असंतुलन को बढ़ाया है। संसाधनों का उपयोग कुल सामाजिक लाभों को अधिक करने के स्थान पर उत्पादन एवं लाभों को अधिकतम करने की प्रेरणा से किया गया। मृदा अपरदन, वन नाशन, अति चराई तथा वनों के असावधानीपूर्ण प्रबंधन के कारण मृदा जैसे मूल्यवान संसाधन का ह्रास हो रहा है। अवैज्ञानिक कृषि क्रियाएँ जैसे– उत्तर–पूर्वी भारत में झूमिंग कृषि और रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग के साथ अति सिंचाई के परिणामस्वरूप मृदा के पोषक तत्वों में कमी, जल भराव व लवणता की समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं।

तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के दबाव के कारण उपलब्ध जल संसाधनों का शोषण हो रहा है जिस कारण ये तेजी से कम हो रहे हैं। तकनीकी कमी के कारण भारतीय नदियों के कुल वार्षिक प्रवाह का लगभग 38 प्रतिशत ही उपयोग के लिए उपलब्ध है। यही स्थिति भू जल के उपयोग की है।

स्वतन्त्रता के पश्चात्, मात्स्यिकी उद्योग ने विशेषकर सागरीय मात्स्यिकी ने पारंपरिक व निर्वाही व्यवसाय को बाजार चालित अरबों रुपये के उद्योग के रूप में बदलते देखा है। वर्तमान में भारत करीब 55 श्रेणियों में सागरीय उत्पादों का दक्षिण एशियाई व यूरोपीय देशों तथा संयुक्त राज्य अमेरिका को निर्यात करता है।

- मनुष्य प्रारंभिक समय से ही अपनी भौतिक व आत्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संसाधनों का उपयोग करता रहा है और यह प्रक्रिया 'संसाधन उपयोग' कहलाती है।
- मृदा अपरदन, वन नाशन व अति चराई के कारण मूल्यवान मृदा संसाधन अवक्षय की आशंका से घिरे हैं।

पाठगत प्रश्न 19.4

1. संसाधन उपयोग से आप क्या समझते हैं?

   _____

2. भारत में मृदा अवक्षय के चार प्रमुख कारणों के नाम लिखिए।

   _____

3. भारतीय नदियों में जल के कुल औसत वार्षिक प्रवाह का कितना भाग उपयोग के लिए उपलब्ध है?

   _____

टिप्पणी

4. भारत में सतही जल का कितना प्रतिशत हिस्सा उपयोग किया जाता है?

_____

19.7 संसाधनों का संरक्षण

संसाधनो के संरक्षण से तात्पर्य उनके विवेकपूर्ण व नियोजित उपयोग के साथ ही उनके अपव्यय, दुरुपयोग व अति–उपयोग से बचाव करते हुए प्राकृतिक संसाधनों का पुनः उपयोग करना है।

आज संसाधनों का कम होना चिंता का सबसे बड़ा विषय है। उत्पादन की अधिकतम सीमा तक पहुंचने के क्रम में हम उन सभी संसाधनों का प्रयोग कर रहे हैं, जो भावी पीढ़ी की संपत्ति हैं। सतत पोषणीय विकास के विचार के अनुसार संसाधन विरासत हैं, जो कि मानव समाज की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होते हैं। नवीकरण के अयोग्य संसाधन कुछ समय बाद समाप्त हो सकते हैं, इसलिए जनसंख्या वृद्धि व संसाधनों के उपयोग के मध्य एक संतुलन बनाना आवश्यक है। वास्तव में इस प्रकार का संतुलन समय व स्थान के संदर्भ में भिन्न होता है। निःसंदेह, हमें किसी क्षेत्र या देश में जनसंख्या व संसाधनों के मध्य स्थैतिक की जगह गतिशील संतुलन को देखना पड़ता है। इन दोनो में से किसी एक में असंतुलन हमारे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की निरंतरता को भंग कर सकता है। इसलिए, संसाधनों का नियोजित ढंग से उपयोग किया जाना चाहिए ताकि असंतुलन न उत्पन्न हो सके।

19.8 संसाधनों के संरक्षण की विधियाँ

(क) यह आवश्यक है कि लोगों के मध्य संसाधनों के परिरक्षण व संरक्षण के बारे में जागरूकता उत्पन्न की जाए। प्राकृतिक संसाधनों के बड़े पैमाने पर विनाश के घातक परिणामों के बारे में लोगों को जागरूक बनाना चाहिए।

(ख) **वनरोपण :** अपरिपक्व तथा युवा वृक्षों को काटने से रोकना तथा लोगों में वृक्षों के रोपण तथा पोषण के बारे में जागरूकता उत्पन्न करना, वनों के संरक्षण में सहायक हो सकते हैं।

(ग) पहाड़ी क्षेत्रों में सीढ़ीदार कृषि, समोच्च रेखाओं के अनुरूप जुताई, झूमिंग कृषि पर नियंत्रण, अतिचराई तथा अवनालिकाओं को रोकना, मृदा संरक्षण की कुछ महत्वपूर्ण विधियाँ हैं।

(घ) वर्षा जल को रोकने के लिए बाँधों का निर्माण, फव्वारा, ड्रिप या ट्रिकल सिंचाई तकनीकों का उपयोग, औद्योगिक या घरेलू उपयोग हेतु जल का पुनर्चक्रण अमूल्य जल संसाधन के संरक्षण में सहायता करेंगे।

(ङ) खनिज अनवीकरणीय संसाधन है, इसलिए कुशल उपयोग, निकालने व शोधन की

टिप्पणी

ज्यादा अच्छी तकनीकों का विकास, खनिजों का पुनर्चक्रण तथा स्थानापन्नों के उपयोग द्वारा इनका संरक्षण किया जाना चाहिए।

(च) ऊर्जा के पारम्परिक स्त्रोतों को बचाने के लिए, ऊर्जा के गैर–परम्परागत स्त्रोतों, जैसे– सौर, पवन या जल का विकास करना होगा।

- संसाधनों के संरक्षण से तात्पर्य उनके विवेकपूर्ण व नियोजित उपयोग के साथ ही उनके अपव्यय, दुरूपयोग तथा अति–उपयोग से बचाव करते हुए प्राकृतिक संसाधनों का पुनः उपयोग करना है।
- यह आवश्यक है कि लोगों के मध्य संसाधनों के परिरक्षण तथा संरक्षण के बारे में जागरूकता उत्पन्न की जाए।
- अनवीकरणीय संसाधनों का संरक्षण तथा सर्वाधिक उचित उपयोग आवश्यक है।

पाठगत प्रश्न 19.5

1. संसाधनों के संरक्षण से आप क्या समझते हैं?

_____

2. आज चिन्ता का सबसे बड़ा विषय क्या है?

_____

3. जल संरक्षण हेतु सिंचाई की किस तकनीक का उपयोग किया जाना चाहिए?

_____

4. पहाड़ी क्षेत्रों में कृषि का कौन सा प्रकार उपयुक्त है?

_____

5. वन संरक्षण की दो विधियों के नाम दीजिए।

_____

6. ऊर्जा के नवीकरणीय स्त्रोतों के नाम लिखिए।

_____

19.9 संसाधनों के संरक्षण पर नीति

पर्यावरण संरक्षण की चेतना के विकास के साथ, भारत जैसे विकासशील देश के लिए

टिप्पणी

संसाधनों का कुशल उपयोग महत्वपूर्ण हो गया है। नये संसाधनों की खोज, कचरे को कम से कम करने की तकनीक और अनवीकरणीय संसाधनों के संरक्षण के लिए हमे अपने अनुसंधान और विकास के प्रयत्नों को बढ़ाना पड़ेगा। भारत सरकार ने हमारे जैविक व अजैविक संसाधनों के संरक्षण के लिए कई योजनाएँ बनाई हैं व कार्यक्रमों को कार्यान्वित किया है।

(क) राष्ट्र में वन एवं पर्यावरण से जुड़े मुद्दों को उच्च प्राथमिकता देने के लिए सन् 1980 में केन्द्रीय स्तर पर वन एवं पर्यावरण मंत्रालय बनाया गया। आज, सभी राज्य सरकारों ने भी वन एवं पर्यावरण का स्वतंत्र मंत्रालय बनाया है।

(ख) 1950 की राष्ट्रीय वन नीति को, राष्ट्र की तात्कालिक आवश्यकता के अनुसार वनों के संरक्षण, सुरक्षा व विकास के लिए 1988 में संशोधित किया गया। इस नीति के अंतर्गत हरित क्षेत्र को बढ़ाने, जलाऊ लकड़ी के उत्पादन व आपूर्ति आदि के लिए सामाजिक वानिकी योजना प्रवर्तित की गई।

(ग) भूमि संसाधनों के संरक्षण तथा इनके अनुकूलतम उपयोग के लिए संदर्श योजना बनाने के लिए 1983 में राष्ट्रीय भूमि उपयोग एवं संरक्षण बोर्ड की स्थापना की गई। सन् 1985 में इसे पुनः संगठित किया गया।

(घ) राष्ट्रीय जल नीति सन् 1987 में पारित की गई जो सिंचाई, जल विद्युत उत्पादन, नौ संचालन, जल के औद्योगिक व अन्य उपयोग के अलावा सबसे बढ़कर पेयजल को प्राथमिकता देती है।

(ङ) सन् 1990 में बनी राष्ट्रीय खनिज नीति खनिजों के उत्खनन व निर्यात के लिए घरेलू विदेशी उपक्रमों को निवेश की अनुमति देती है। केन्द्रीय खान मंत्रालय के अंतर्गत प्राधिकरण को यह खनिज उत्खनन में निवेश व परमिट के लिए यह अनुमति देती है।

(च) नई कृषि नीति में पारिमित्र व सततवाही कृषि तकनीकों, जैसे जैव–तकनीक, को प्रोत्साहित किया गया है।

- वनों की सुरक्षा व विकास के लिए राष्ट्रीय वन नीति प्रवर्तित की गई।
- जल संसाधनों के संरक्षण व सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय जल नीति पारित की गई।
- नई कृषि नीति जैव–तकनीकों के प्रमुखता से उपयोग को प्रोत्साहित करती है।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 19.6

1. किस वर्ष राष्ट्रीय वन नीति पुनर्गठित की गई?

_____

2. किस वर्ष राष्ट्रीय जल नीति पारित की गई?

_____

3. नई कृषि नीति का प्रमुख उद्देश्य क्या था?

_____

आपने क्या सीखा

प्राकृतिक संसाधन प्रकृति प्रदत्त उपहार हैं जोकि मनुष्य की भौतिक व अभौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। पृथ्वी पर पाया जाने वाला कोई भी पदार्थ तब संसाधन बनता है, जब इसकी कुछ उपयोगिता होती है। इसलिए, यह मानव की क्षमता व उपयोगिता है जो संसाधन मूल्य उत्पन्न करती है। संसाधन किसी देश की अर्थव्यवस्था का आधार बनाते हैं। वे मानव के जीवित रहने के लिए आवश्यक प्राकृतिक पर्यावरण जैसे–वायु, जल, वन व विविध जीवन रूपों को बनाते हैं। वे आर्थिक शक्ति व समृद्धि का आधार है।

उत्पत्ति के आधार पर संसाधनों के दो प्रकार हैं– जैविक और अजैविक। जैविक संसाधनों के अंतर्गत वन, समस्त वनोत्पाद, फसलें, पछी, पशु, मछली व अन्य सागरीय जैव रूप आते हैं। अजैविक संसाधनों के अंतर्गत भूमि, जल और खनिज जैसे–लोहा, ताँबा, सोना, चाँदी आदि आते हैं।

भारत के कुल क्षेत्रफल का लगभग 23 प्रतिशत वनाच्छादित है। भारत में पशुओं की लगभग 75,000 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। वृहद जलवायविक भिन्नताओं और लम्बी फसल उत्पादन ऋतु ने भारत को विभिन्न प्रकार की फसलें उगाने का लाभ दे रखा है। भारत में विश्व की लगभग 57 प्रतिशत भैंसे व लगभग 15 प्रतिशत गाय–बैल पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त विशाल महाद्वीपीय मग्न तट, भारत में मात्स्यिकी के विकास के लिए विशाल क्षेत्र उपलब्ध कराते हैं। भारत का विशाल आकार स्वयं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण संसाधन है। विशाल जल संसाधन, धरातलीय जल, भूमिगत जल, वर्षा व महासागरों के रूप में मिलते हैं। भारत खनिज संसाधनों में समान रूप से धनी है।

संसाधनों के संरक्षण से तात्पर्य उनके विवेकपूर्ण व नियोजित उपयोग से है। लोगों के बीच संसाधनों के परिरक्षण व संरक्षण की जागरूकता उत्पन्न करना आवश्यक है।

प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए विभिन्न विधियों, जैसे– वनरोपण, पहाड़ी क्षेत्रों में सीढ़ीदार कृषि, सिंचाई की आधुनिक तकनीकों का उपयोग, खनिजों का सार्थक उपयोग, ऊर्जा के स्थानापन्न स्त्रोतों का उपयोग किया जाना चाहिए।

सरकार ने प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए कई मापदण्ड अपनाए हैं। प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए कुछ नीतियों का गठन व कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया गया है। उदाहरणार्थ–राष्ट्रीय वन नीति का गठन, राष्ट्रीय भूमि उपयोग एवं संरक्षण बोर्ड की स्थापना, राष्ट्रीय जल नीति, खनिज नीति व कृषि नीति।

पाठान्त प्रश्न

1. संसाधन को परिभाषित कीजिए और बताइए कि यह किस प्रकार हमारे लिए उपयोगी हैं।
2. जैविक व अजैविक संसाधनों के मध्य अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. भारत में जैविक संसाधनों के वितरण का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
4. भारत में अजैविक संसाधनों के वितरण को संक्षेप में समझाइए।
5. संसाधन उपयोग से आप क्या समझते हैं? यह संस्कृति से किस प्रकार जुड़ा है?
6. भारत में संसाधन उपयोग के विस्तार पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
7. संसाधनों के संरक्षण से आप क्या समझते हैं? संसाधनों के संरक्षण की विभिन्न विधियों की व्याख्या कीजिए।
8. प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए भारत सरकार द्वारा प्रारंभ किए गए प्रमुख कार्यक्रमों व नीतियों का वर्णन कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

19.1

1. प्रकृति प्रदत्त उपहार जो मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, संसाधन है।
2. (क) जैविक (ख) अजैविक
3. वन, फसलें, पछी, पशु और मछली
4. भूमि, जल, खनिज

टिप्पणी

5. कोयला और खनिज तेल

19.2

1. लगभग 23 प्रतिशत
2. अंडमान व निकोबार द्वीप समूह और हरियाणा
3. वनस्पतियों के छः प्रकार– ऊष्ण कटिबन्धीय सदाबहार वन, ऊष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वन, कंटीली झाड़ियाँ, ज्वारीय वन और पर्वतीय वन
4. लगभग 75,000 प्रजातियाँ
5. भैंसों की संख्या – 57 प्रतिशत

   गाय – बैल की संख्या – 15 प्रतिशत
6. सागरीय मात्स्यिकी, स्वच्छ जल/अन्तःस्थलीय, एस्चुरी व पेरल मात्स्यिकी

19.3

1. सातवाँ
2. 117 से.मी.
3. सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र
4. झारखण्ड, उड़ीसा और छत्तीसगढ़

19.4

1. मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने प्राकृतिक पर्यावरण का उपयोग करते हैं। यही संसाधन उपयोग कहलाता है।
2. मृदा अपरदन, वननाशन, अतिचराई तथा लापरवाही पूर्ण वन प्रबन्धन
3. लगभग 37 प्रतिशत
4. 37 प्रतिशत

19.5

1. प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण व नियोजित उपयोग
2. संसाधनों का रिक्तीकरण
3. फव्वारे, ड्रिप व ट्रिकल सिंचाई

टिप्पणी

4. सीढ़ीदार कृषि
5. वनरोपण, अपरिपक्व तथा युवा वृक्षों को काटने से रोकना
6. सौर, पवन या जल

19.6

1. 1988 में
2. 1987 में
3. उन कृषि तकनीकों का उपयोग करना जो पारिमित्र तथा सततवाही हैं, जैसे–जैव–तकनीक

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. प्रकृति प्रदत्त उपहार जो मानवीय आवश्यकता की पूर्ति करते हैं, प्राकृतिक संसाधन हैं।

   (क) संसाधन एक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था का आधार बनाते हैं।

   (ख) वे प्राकृतिक पर्यावरण का निर्माण करते हैं, जो कि मानव के जीवित रहने व विकास हेतु आवश्यक है।

   (ग) इन संसाधनों के उपयोग द्वारा मनुष्य स्वयं के जैव–जगत का निर्माण करता है, जैसे– घर, भवन, परिवहन व संचार के साधन आदि।

2. अनुच्छेद 19.2 देखिए
3. अनुच्छेद 19.3 देखिए
4. अनुच्छेद 19.4 देखिए
5. अनुच्छेद 19.5 देखिए
6. अनुच्छेद 19.6 देखिए
7. अनुच्छेद 19.7 और 19.8 देखिए
8. अनुच्छेद 19.9 देखिए

20

भारत में भूमि, मृदा तथा वनस्पति

राष्ट्र की शक्ति; चाहे वह सामाजिक, आर्थिक अथवा राजनैतिक किसी भी परिदृश्य में हो; अधिकतर उसके उपलब्ध संसाधनों और उनके उचित उपयोग पर निर्भर है। लेकिन संसाधन क्या है, यह जानना अति आवश्यक है। साधारणतः संसाधन वह तत्व है जो किसी समय और क्षेत्र में मानव की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करता है। किसी भी तत्व को संसाधन की संज्ञा देने से पूर्व तीन मौलिक बातों का जानना आवश्यक है। ये हैं ज्ञान, तकनीकी कुशलता और वस्तु की मांग अथवा उसके द्वारा प्रदत्त सेवा। इनमें से किसी एक के भी अभाव में विशिष्ट तत्व अनुपयुक्त हो जाता है। इसको हम एक उदाहरण से समझ सकते हैं। अनादिकाल से पृथ्वी पर जल विद्यमान है। लेकिन यह शक्ति का संसाधन तब बना जब मनुष्य ने अपने बौद्धिक कौशल तथा तकनीकी ज्ञान द्वारा जल विद्युत का उत्पादन करना शुरू किया। किसी तत्व की केवल भौतिक उपस्थिति उसे संसाधन नहीं बनाती वरन् मानव की योग्यता एवं आश्यकता उसे संसाधन बनाते हैं। इसलिये संसाधन की आधारभूत संकल्पना मानव के कल्याण या हित में निहित है।

भारत के पास विपुल संसाधन हैं। हमारे देश के द्वारा संभावित संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग संगठित प्रयासों द्वारा किया जा रहा है। यह बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण पोषण में सहायता करता है और रोजगार के अधिकाधिक अवसर प्रदान करता है। साथ ही संसाधनों का विकास किसी देश के आर्थिक संकेतक हैं।

इस संदर्भ में हम इस पाठ में तीन महत्वपूर्ण संसाधनों; भूमि, मृदा तथा वनस्पति के विषय में अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- भूमि का संसाधन के रूप में महत्व बता सकेंगे;

- भूमि के मुख्य–मुख्य उपयोग पहचान सकेंगे;
- भूमि संसाधन की मुख्य समस्याओं को पहचान कर उनके समाधान के उपाय समझा सकेंगे;
- संसाधन के रूप में मृदा का महत्व बता सकेंगे;
- भारत की प्रमुख मृदाओं की विशेषतायें बता सकेंगे;
- प्रमुख मृदा प्रदेशों को भारत के मानचित्रों में दर्शा सकेंगे;
- भारत के विभिन्न भागों में भूमिक्षरण के विभिन्न कारकों को पहचान सकेंगे;
- मृदा के कटाव के कारण उत्पन्न विभिन्न समस्याओं को समझा सकेंगे;
- भारत के विभिन्न भागों में मृदा के संरक्षण की अपनाई गई विधियों का संबंध मृदा अपरदन के प्रकार से कर सकेंगे;
- वनस्पति के प्रमुख घटकों को पहचान सकेंगे;
- प्रमुख वनस्पति के प्रकारों को पहचान सकेंगे।

20.1 भूमि संसाधन

भूमि हमारा मौलिक संसाधन है। ऐतिहासिक काल से हम भूमि से ईंधन, वस्त्र तथा निवास की वस्तुएं प्राप्त करते आए हैं। इससे हमें भोजन, निवास के लिए स्थान तथा खेलने एवं काम करने के लिए विस्तृत क्षेत्र मिला है। यह कृषि, वानिकी, पशुचारण, मत्स्यन एवं खनन सामग्री के उत्पादन में प्रमुख आर्थिक कारक रहा है। यह सामाजिक सम्मान, सम्पदा और राजनीतिक शक्ति की प्रमुख आधारशिला है। भूमि संसाधन के कई भौतिक रूप हैं जैसे पर्वत, पहाड़ियाँ, मैदान, निम्न भूमि और घाटियाँ आदि। इस पर उष्ण, शीत, नम एवं शुष्क जैसी विभिन्न जलवायु मिलती है। भूमि विविध प्रकार की वनस्पति का मूल आधार है। अतः किसी स्थान विशेष में भूमि संसाधन का अर्थ है वहाँ की मृदा और उच्चावच लक्षण। इस संदर्भ में भूमि का प्राकृतिक वातावरण से निकटतम् सम्बन्ध है।

कृषि भूमि की उपलब्धता

भारत कृषि भूमि में संपन्न है। यह हमारे सामाजिक और आर्थिक विकास की कुंजी है। क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत विश्व का सातवां बड़ा देश है तथा जनसंख्या की दृष्टि से इसका दूसरा स्थान है। कृषि भूमि में वास्तविक बोया गया क्षेत्र, परती भूमि और बागानी भूमि सम्मिलित है। कृषि भूमि का कुल क्षेत्रफल 16.7 करोड़ हैक्टेयर है जो देश की कुल भूमि का 51 प्रतिशत है।

यद्यपि भारत में प्रति व्यक्ति कृषि भूमि–मानव अनुपात में दूसरे देशों जैसे आस्ट्रेलिया, कनाडा, अर्जेन्टाइना, संयुक्त राज्य अमेरिका, चिली, डेन्मार्क एवं मैक्सिको की तुलना में कम है, परन्तु जापान, नीदरलैंड, मिस्र, यूनाइटेड किंगडम, इजराइल तथा चीन की

टिप्पणी

तुलना में अधिक है। भूमि–मानव अनुपात वह अनुपात है जो वास योग्य भूमि के क्षेत्रफल और उस पर रहने वाले लोगों की कुल संख्या के बीच होता है।

भारत के भौतिक लक्षणों में बड़ी विविधता एवं जटिलता है। यहाँ के पर्वत, पहाड़, पठार और मैदानों में मानव की अनुक्रियायें अलग–अलग हैं। इसीलिये इन भौतिक विभागों में भूमि के उपयोग भी अलग–अलग है। भारत के 30 प्रतिशत धरातलीय क्षेत्रफल पर पर्वत और पहाड़ हैं। ये तीव्र ढलान अथवा अत्यधिक ठंडे होने के कारण कृषि के लिये अनुपयुक्त हैं। इस पहाड़ी भूमि का लगभग 25 प्रतिशत भाग खेती करने के योग्य है। इसका वितरण देश के विभिन्न भागों में है। पठारी भाग देश के 28 प्रतिशत धरातलीय क्षेत्रफल को घेरे हुये हैं, लेकिन इसका भी केवल एक चौथाई भाग खेती करने योग्य है। मैदान सारे क्षेत्रफल के 43 प्रतिशत भाग पर हैं और इनका लगभग 95 प्रतिशत भाग खेती के लिये उपयुक्त है। विभिन्न प्रकार की भूमि के अनुपातों को ध्यान में रखकर हम मोटे तौर पर कह सकते हैं कि भारत के सारे धरातलीय क्षेत्रफल का लगभग दो–तिहाई भाग मानव द्वारा उपयोग करने योग्य है। इसके अतिरिक्त मिट्टियाँ, उच्चावच लक्षण, आर्द्रता और तापमान किसी क्षेत्र के भूमि की कृषि क्षमता और उसकी गुणवत्ता की सीमाएँ निर्धारित करने वाले प्रमुख कारक हैं। इन सबके परिणाम स्वरूप हमारे देश के लगभग आधे भूभाग पर खेती होती है। यह अनुपात संसार के सबसे ऊँचे अनुपातों में से एक है।

- भूमि संसाधन का अर्थ है किसी स्थान विशेष किी मिट्टियाँ और उच्चावच लक्षण। यह सामाजिक सम्मान, सम्पदा और राजनीतिक शक्ति की प्रमुख आधारशिला है।
- भूमि–अनुपात वह अनुपात है जो वासयोग्य भूमि के क्षेत्रफल और उस पर रहने वाले लोगों की कुल संख्या के बीच होता है।
- भारत में भूमि मानव का अनुपात आस्ट्रेलिया, कनाडा, अर्जेन्टाइना, संयुक्त राज्य अमरीका, चिली, डेन्मार्क और मैक्सिको की तुलना में कम है। इसके विपरीत यह अनुपात जापान, नीदरलैंड, यूनाइटेड किंगडम, इजराइल और चीन से अधिक है।

पाठगत प्रश्न 20.1

1. भूमि–मानव अनुपात की परिभाषा दीजिए।

   _____

2. उन चार देशों के नाम बताइये जिनमें भूमि–मानव अनुपात भारत की अपेक्षा अधिक है।

   (क) _____ (ख) _____

   (ग) _____ (घ) _____

टिप्पणी

3. उन चार देशों के नाम बताइये जिनमें भूमि–मानव अनुपात भारत से कम है।

(क) _____ (ख) _____ (ग) _____ (घ) _____

20.2 भूमि उपयोग

भारत के समस्त भौगोलिक क्षेत्रफल में भूमि–उपयोग के सांख्यिकीय आंकड़े केवल 30.5 करोड़ हैक्टेयर भूमि के मिलते हैं। शेष 2.3 करोड़ हैक्टेयर भूमि के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। ऐसी भूमि का सर्वेक्षण नहीं हो पाया है क्योंकि वे अगम्य है। तालिका 20.1 में भूमि उपयोग के उपलब्ध आंकड़े दिये गये हैं। भूमि–उपयोग के विशिष्ट लक्षण निम्नलिखित हैं –

(i) भूमि का अधिक प्रतिशत भाग कृषि योग्य है।

(ii) कृषि क्षेत्र को बढ़ाने की सीमित गुंजाइश है।

(iii) पशुओं की अत्यधिक संख्या होते हुये भी चारागाहों के अन्तर्गत बहुत कम भूमि है।

वर्तमान समय में 4 करोड़ हैक्टेयर भूमि कृषि के लिए अनुपलब्ध है। इस श्रेणी में आने वाला क्षेत्र 1960–61 में 5.07 करोड़ हैक्टेयर से घटकर 1990–91 में 4.08 करोड़ हैक्टेयर रह गया है। थोड़ी सी गिरावट परती भूमि में भी आई है। 1950–51 में 9.9 प्रतिशत से 1990–91 में 7.5 प्रतिशत हो गयी है। कृषि योग्य बंजर भूमि में भी 1950–51 और 1990–91 के बीच 34 प्रतिशत की प्रशंसनीय गिरावट आई है। 1950–51 और 1990–91 के बीच शुद्ध बोये गये क्षेत्र में 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

1950–51 में इस भूमि का क्षेत्रफल 11.87 करोड़ हैक्टेयर था जो 1990–91 में बढ़कर 14.24 करोड़ हैक्टेयर हो गया। 1990–91 में शुद्ध बोये गये क्षेत्र के 14 प्रतिशत भाग अर्थात 4.17 करोड़ हैक्टेयर भूमि से दो या दो से अधिक फसलें प्राप्त की गई। सबसे चकित कर देने वाली बात यह है कि भारत में विश्व के सर्वाधिक पशुओं के होते हुये भी यहाँ स्थाई चारागाह के लिये केवल 5 प्रतिशत भूमि है। अर्थव्यवस्था की लगातार वृद्धि के कारण गैर–कृषि कार्यों में भूमि का उपयोग बढ़ रहा है।

तालिका 20.1
भारत में भूमि उपयोग

	श्रेणी	क्षेत्रफल (करोड़ हैक्टयर में)	सम्पूर्ण सूचित क्षेत्रफल का प्रतिशत
1.	शुद्ध (वास्तविक) बोया गया क्षेत्र	14.24	46.30
2.	चालू परती भूमि	1.37	4.20
3.	अन्य परती भूमि	0.97	3.00
4.	चारागाह एवं उद्यान	1.54	5.00

5.	कृषि योग्य बंजर भूमि	1.50	4.70
6.	कृषि के लिये अनुपलब्ध भूमि		
	(i) बंजर एवं अकृषित भूमि	1.96	6.20
	(ii) गैर–कृषि कार्यों में उपयोग की गई भूमि	2.12	8.60
7.	वन भूमि	6.80	22.00
	योग	**30.50**	**100.00**

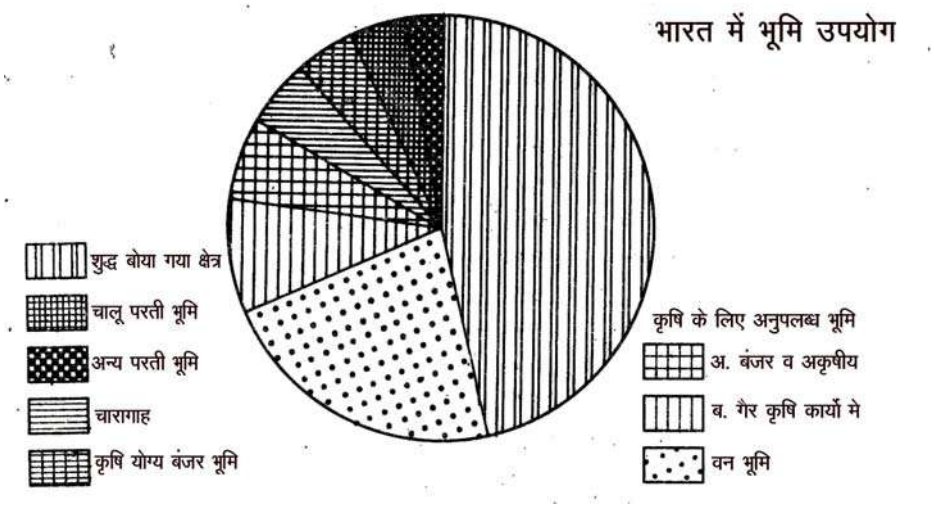

चित्र 20.1 भारतः भूमि उपयोग

औद्योगीकरण और नगरीकरण की माँग को पूरा करने हेतु सड़कों, रेलमार्गों, हवाई मार्गों, मानव बस्तियों, कारखानों और बहु उद्देशीय परियोजना के विशाल बाँधों के लिये अधिकाधिक भूमि का उपयोग हो रहा है। भूमि के सारे सांस्कृतिक उपयोग इसी सीमित कुल क्षेत्रफल में ही आते हैं। अतः स्पष्ट है कि भूमि के ये सारे उपयोग भी कृष्य भूमि पर ही हो रहे हैं। 1950–51 में गैर–कृषि कार्यों को दी जाने वाली भूमि 93 लाख हैक्टेयर थी जो 1990–91 में बढ़कर 2.12 करोड़ हैक्टेयर हो गई।

भारत में वनों के अन्दर भूमि का प्रतिशत संसार में कम पाये जाने वाले देशों में से एक है। देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल के लगभग 22 प्रतिशत भाग पर वन हैं जबकि इसका संसार का औसत 30 प्रतिशत है। भूमि उपयोग के आंकड़ों के अनुसार 1950–51 में वन–भूमि का क्षेत्रफल 4 करोड़ हैक्टेयर था जो 1990–91 में बढ़कर 6.8 करोड़ हैक्टेयर हो गया। यह देश के स्वीकार किये लक्ष्य अर्थात देश के कुल क्षेत्रफल के एक–तिहाई भाग से बहुत कम है।

टिप्पणी

इस प्रकार भूमि–उपयोग एक गतिमान प्रक्रिया है। इसमें समय के साथ बदलाव कई कारणों से होते रहते हैं। इन कारणों में बढ़ती जनसंख्या तथा फसल व्यवस्था और तकनीकी बदलाव का प्रमुख स्थान है। अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्र जैसे–जैसे विकसित होते जाते हैं उनके कारण भूमि उपयोग का प्रारूप भी बदलता जाता है। फिर भी भूमि का अधिकतर भाग कृषि कार्यों में ही प्रयोग किया जा रहा है। कृषि भूमि पर लगातार जनसंख्या वृद्धि का दबाव निश्चय ही बढ़ रहा है। यह हमारी राष्ट्रीय समस्या है जिसके निदान के लिये सतत प्रयास की आवश्यकता है।

20.3 भूमि की समस्यायें

भूमि के कुल क्षेत्रफल में से 17.5 करोड़ हैक्टेयर भूमि का क्षरण हो रहा है। भूमि क्षरण का मुख्य कारण मृदा अपरदन है। भूमि में जलाक्रान्ति होने और उसकी लवणता बढ़ने से भी भूमि का क्षरण होता है। वनों की अंधाधुन्ध कटाई के कारण मृदा का बड़े पैमाने पर अपरदन हो रहा है। मानसून की अवधि में भारी वर्षा भी मृदा अपरदन का कारण बनती है। हिमालय के दक्षिणी और पश्चिमी घाट के पश्चिमी तीव्र ढलानों पर विशेषतया जल के तेज बहाव के कारण मृदा अपरदन होता है। हिमालय के वृहत् भागों में भूस्खलन और अपरदन होते रहते हैं। राजस्थान में वायु अपरदन और चम्बल घाटी, छोटा नागपुर, गुजरात तथा पंजाब हिमालय के निचले भागों में अवनालिका अपरदन बड़े पैमाने पर होता है। भूमि की जलाक्रान्त और लवणीय प्रक्रिया से 1.3 करोड़ हैक्टेयर भूमि का क्षरण हो चुका है तथा इसमें और भी वृद्धि होती जा रही है। इस प्रकार की प्रभावित भूमि अधिकतर नहरी सिंचाई के क्षेत्रों में पाई जाती है। इन क्षेत्रों में जल का निकास ठीक न होने के कारण भूमि खराब हो गई है। देश के बहुत से भागों में खनन क्रिया के कारण भी भूमि का क्षरण हुआ है। खनन द्वारा प्रभावित भूमि का क्षेत्रफल लगभग 80 हजार हैक्टेयर है। कृषि भूमि पर नगरीय अतिक्रमण के कारण भी खेती की भूमि का भाग कम हो रहा है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कृषीकरण, नगरीकरण और औद्योगीकरण के बीच तीव्र होड़ चल रही है। भूमि के स्वामित्व, उसके बेचने और खरीदने के संबंध में भी बहुत से सामाजिक झगड़े हो रहे हैं। काश्तकार कई तरह से हतोत्साहित हो रहा है, जैसे खेत के छीने जाने का भय, ऊँचा लगान और लागत के लिये अपर्याप्त बचत। भूमि सीमा के कानूनों का परिपालन पर्याप्त कठोरता से नहीं किया गया है।

20.4 भूमि की समस्याओं के समाधान

भूमि की समस्याओं के समाधान के लिये देश में भौतिक और सामाजिक दो दृष्टिकोण अपनाये गये हैं। जलाक्रान्त मृदा को रासायनिक प्रक्रिया द्वारा भूमि का भौतिक उद्धार किया जा रहा है। इसके बाद इस भूमि पर वैज्ञानिक ढ़ंग से शस्यावर्तन अपनाया जाता है। इसी प्रकार वह भूमि जो नदी–क्रियाओं और नदी की बाढ़ों द्वारा बेकार हो गई है, इसका उद्धार आवश्यक क्रियाओं द्वारा करके उसकी उर्वरता वापिस लाई जाती है। मरुस्थली भूमि के भौतिक उद्धार के लिये सतत् प्रयास किये जाते हैं। इसके लिये उपयुक्त प्राकृतिक वनस्पति उगाना और सिंचाई की सुविधायें प्रदान करना जरूरी है।

टिप्पणी

इससे भूमि जलस्तर के ऊपर उठने में मदद मिलती है। सामाजिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत राज्य द्वारा ऐसे कानून लागू किये जाते हैं जिनका मुख्य उद्देश्य उत्पादकता बढ़ाना कृषि को बढ़ावा देना आदि के द्वारा ग्रामीण पुनर्निर्माण हैं। चकबन्दी, काश्तकार के खेतों का मालिकाना अधिकार देना, जमींदारी उन्मूलन आदि कई कानून बनाये गये। इस प्रकार कानून द्वारा काश्तकार को सामाजिक न्याय दिलाया गया है।

दूरसंवेदन द्वारा प्राप्त जानकारी के अनुसार कच्छ की खाड़ी का लगभग 200 वर्ग मिलोमीटर क्षेत्र अवसादों के जमाव से भर गया है। नेशनल रिमोट सेन्सिंग एजेन्सी ने अनुमान लगाया है कि देश में 5.3 करोड़ हैक्टेयर (16 प्रतिशत) भूमि बंजर है। इसमें से सर्वाधिक भूमि (60 प्रतिशत) जम्मू और कश्मीर में है। इसके बाद राजस्थान (38 प्रतिशत), सिक्किम (60 प्रतिशत), हिमाचल प्रदेश (37 प्रतिशत) और गुजरात (17 प्रतिशत) के स्थान हैं। भारत सरकार ने 1985 में राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड की स्थापना बंजर भूमि की उत्पादकता बढ़ाने के लिये की है। यह संस्था प्रतिवर्ष 50 लाख हैक्टेयर भूमि पर वनरोपण के कार्यक्रम को पूरा करने की कोशिश कर रही है।

भारत में भूमि की कमी नहीं है। परन्तु खाद्य पदार्थों के उत्पादन को और अधिक बढ़ाने के लिये भूमि सुधार संबंधी नीतियों की पुनः स्थापना करने की आवश्यकता है।

- भूमि–उपयोग गतिमान प्रक्रिया है। यह कई कारकों के परिणाम स्वरूप समय–समय पर बदलता रहता है। जनसंख्या वृद्धि और शस्य प्रणाली एवं तकनीकी बदलाव इसके प्रमुख कारक है। अर्थव्यवस्था के विविध क्षेत्रों में विकास के परिणामस्वरूप भी भूमि उपयोग के प्रारूप में बदलाव आता है।
- मृदा अपरदन, भूमि की जलाक्रान्ति, लवणीकरण, खनन और कृषि भूमि पर नगरों का अतिक्रमण आदि के परिणामस्वरूप कृषि भूमि का ह्रास हो रहा है।
- भारत ने भूमि विकास के दो तरीके अपनाये हैं– (क) भौतिक (भूमि उद्धार) और (ख) सामाजिक (भूमि सुधार)

पाठगत प्रश्न 20.2

1. उन तीन विशिष्ट क्षेत्रों के नाम बताइये जहाँ अवनालिका अपरदन मुख्य रूप से होता है।
   (क) _____ (ख) _____ (ग) _____
2. मृदा अपरदन का सबसे महत्वपूर्ण कारक क्या है?
   _____
3. भूमि सुधार के लिए दो तरीके बताइए?
   (क) _____ (ख) _____
4. वायु अपरदन किस क्षेत्र में अधिक होता है?
   _____

टिप्पणी

20.5 मृदा संसाधन

असंगठित पदार्थों से बनी पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत को मृदा कहते हैं। यह अनेक प्रकार के खनिजों, पौधों और जीव–जन्तुओं के अवशेषों से बनी है। यह जलवायु, पेड़–पौधों, जीव–जन्तुओं और भूमि की ऊँचाई के बीच लगातार परस्पर क्रिया के परिणामस्वरूप विकसित हुई है। इनमें से प्रत्येक घटक क्षेत्र विशेष के अनुरूप बदलता रहता है। अतः मृदाओं में भी एक स्थान से दूसरे स्थान के बीच भिन्नता पाई जाती है। मृदा पारितंत्र का एक महत्वपूर्ण घटक है क्योंकि यह पेड़–पौधों का आश्रय स्थल होने के साथ उन्हें पोषक तत्व प्रदान करने का मुख्य स्रोत है। इस प्रकार मृदा पौधों की वृद्धि के लिये सुरक्षित आधार एवं मौलिक कच्चा माल प्रदान करने का माध्यम है। मृदा अपनी तुलनात्मक उर्वरता के द्वारा मानव की आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित और अपने देश की नियति का निर्धारण करती है। मृदा के नष्ट होने के साथ ही सम्पत्ति एवं संस्कृति दोनों की ध्वस्त हो जाती है। इसीलिये मृदा भारत की बहुमूल्य राष्ट्रीय एवं मौलिक भू–संपदा है।

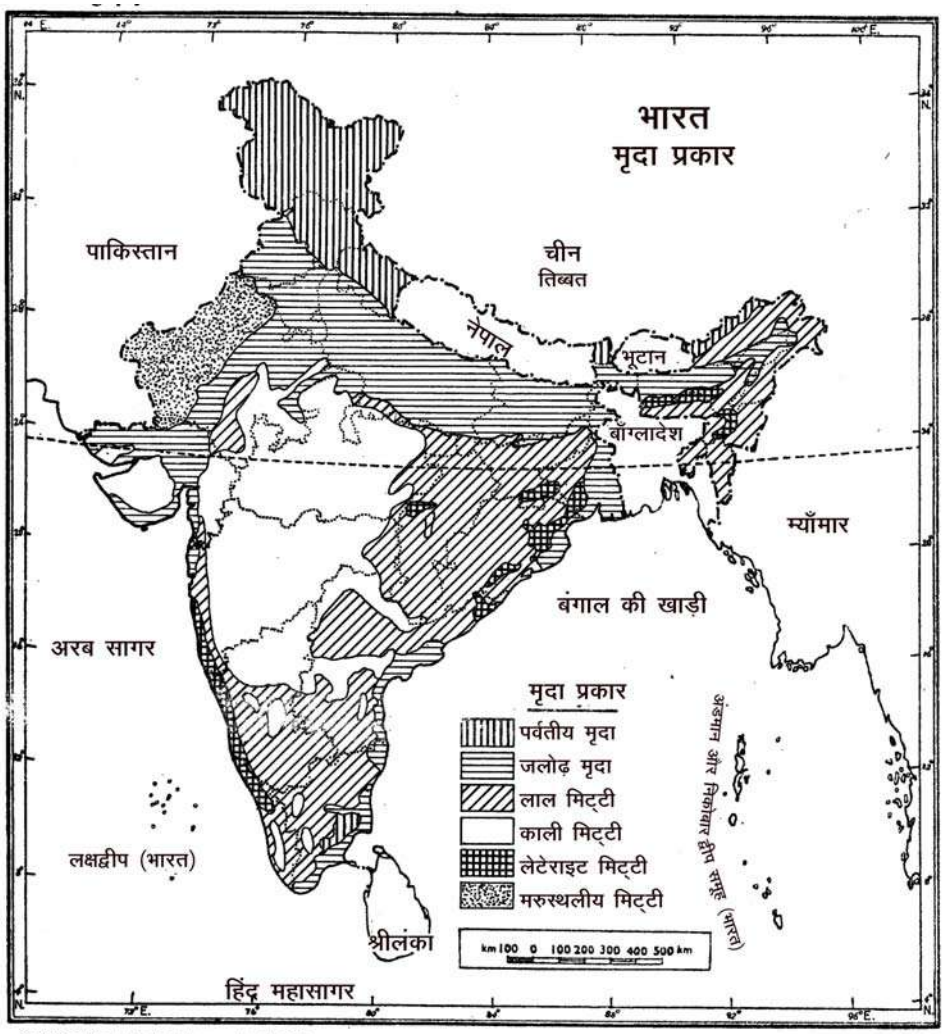

Based upon Survey of India outline map printed in 1979.
The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.
The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971, but has yet to be verified.
© Government of India copyright, 1979.

चित्र 20.2 भारतः प्रमुख मृदाएँ

20.6 मृदाओं के प्रमुख प्रकार

भारत की मृदाओं को निम्नलिखित छः प्रकारों में बाँटा जाता है :

(क) जलोढ़ मृदा

जलोढ़ मृदाएँ भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण मृदाएँ हैं। सतलुज, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के विस्तृत घाटी क्षेत्रों और दक्षिणी प्रायद्वीप के सीमावर्ती भागों में पाई जाती हैं। भारत की सबसे उपजाऊ भूमि के 6.4 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र में जलोढ़ मृदाएँ फैली हुई हैं। जलोढ़ मृदाओं का गठन बलुई–दोमट से मृत्तिका–दोमट तक होता है। इसमें पोटाश की अधिकता होती है, लेकिन नाइट्रोजन एवं जैव पदार्थों की कमी होती है। सामान्यतया ये मृदाएँ धुंधले से लालामी भूरे रंग तक की होती हैं। इन मृदाओं का निर्माण हिमालय पर्वत और विशाल भारतीय पठार से निकलने वाली नदियों द्वारा बहाकर लाई गई गाद और बालू के लगातार जमाव से हुआ है। तरुण होने के नाते इन मृदाओं में परिच्छेदिका के विकास की कमी है। अत्यधिक उत्पादक होने के नाते इन मृदाओं को दो उप–विभागों में बाँटा गया है: नवीन जलोढ़क (खादर) और प्राचीन जलोढ़क (बांगर)। दोनों प्रकार की मृदाएँ संरचना, रासायनिक संघटन, जलविकास क्षमता एवं उर्वरता में एक दूसरे से भिन्न हैं। नवीन जलोढ़क हल्का भुरभुरा दोमट है जिसमें बालू और मृत्तिका का मिश्रण पाया जाता है। यह मृदा नदियों की घाटियों, बाढ़ मैदानों और डेल्टा प्रदेशों में पाई जाती है। इसके विपरीत प्राचीन जलोढ़क दोआबा (दो नदियों के बीच की ऊँची भूमि) क्षेत्र में पाया जाता है। मृत्तिका का अनुपात अधिक होने के कारण यह मृदा चिपचिपी है और जलनिकास कमजोर है। इन दोनों प्रकार की मृदाओं में लगभग सभी प्रकार की फसलें पैदा की जाती हैं।

(ख) काली मृदाएँ (रेगड़ मृदा)

काली मृदा दक्कन के लावा प्रदेश में पाई जाती है। यह मृदा महाराष्ट्र के बहुत बड़े भाग, गुजरात, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश तथा तमिलनाडु के कुछ भागों में पाई जाती है। इस मृदा का निर्माण ज्वालामुखी के बेसाल्ट लावा के विघटन के परिणामस्वरूप हुआ है। इस मृदा का रंग सामान्यतया काला है जो इसमें उपस्थित अलुमीनियम और लोहे के यौगिकों के कारण है। इस मृदा का स्थानीय नाम रेगड़ मिट्टी है और यह लगभग 6.4 करोड़ हैक्टेयर भूमि पर फैली है। यह सामान्यतया गहरी मृत्तिका (चिकनी मिट्टी) से बनी है और यह अपारगम्य है या इसकी पारगम्यता बहुत कम है। मृदा की गहराई भिन्न–भिन्न स्थानों में अलग–अलग है। निम्न भूमियों में इस मृदा की गहराई अधिक है जबकि उच्चभूमियों में यह कम है। इस मृदा की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि शुष्क ऋतु में भी यह मृदा अपने में नमी बनाये रखती है। ग्रीष्म ऋतु में इसमें से नमी निकलने से मृदा में चौड़ी–चौड़ी दरारें पड़ जाती है और जल से संतृप्त होने पर यह फूल जाती है और चिपचिपी हो जाती है, इस प्रकार मृदा पर्याप्त गहराई तक हवा से युक्त और आक्सीकृत होती है जो इसकी उर्वरता बनाये रखने में मदद देते हैं। मृदा की इस प्रकार लगातार उर्वरता बनी रहने के कारण यह कम वर्षा के क्षेत्रों में भी बिना

टिप्पणी

सिंचाई के कपास की खेती करने के लिये अनुकूल है। कपास के अतिरिक्त यह मृदा गन्ना, गेहूँ, प्याज और फलों की खेती करने के लिये अनुकूल है।

(ग) लाल मृदा

प्रायद्वीपीय पठार के बहुत बड़े भाग पर लाल मृदा पाई जाती हैं, इसमें तमिलनाडु, कर्नाटक, गोवा, दक्षिण–पूर्व महाराष्ट्र, आँध्र प्रदेश, उड़ीसा, छोटानागपुर पठार और मेघालय पठार के भाग सम्मिलित हैं। लाल मृदा के ये क्षेत्र कपास की काली मृदा के भूभाग को घेरे हुये हैं। यह मृदा ग्रेनाइट और नींस जैसी रवेदार चट्टानों पर विकसित हुई है और यह कृषि भूमि के 7.2 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र पर फैली है। इस मृदा में लोहे के यौगिकों की अधिकता के कारण इसका रंग लाल है, परन्तु इसमें जैव पदार्थों की कमी है। यह मृदा सामान्यतया कम उपजाऊ है और काली मृदा अथवा जलोढ़ मृदा की तुलना में लाल मृदा का कृषि के लिये कम महत्त्व है। परन्तु इसकी उत्पादकता सिंचाई और उर्वरकों के प्रयोग द्वारा बढ़ाई जा सकती है। यह मृदा चावल, ज्वार–बाजरा, मक्का, मूँगफली, तम्बाकू और फलों की पैदावार के लिये उपयुक्त है।

(घ) लैटराइट मृदा

लैटराइट मृदा कर्नाटक, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, झारखण्ड, उड़ीसा, असम और मेघालय के ऊँचे एवं भारी वर्षा वाले भूभागों में पाई जाती है। इस मृदा का विस्तार 1.3 करोड़ हैक्टेयर से भी अधिक क्षेत्रफल पर है। इस मृदा का निर्माण उष्ण एवं आर्द्र जलवायु दशाओं में होता है। लैटराइट मृदा विशेषतया ऋतुवत भारी वर्षा वाले ऊँचे सपाट अपरदित सतहों पर पाई जाती है। तीव्र निक्षालन क्रिया द्वारा पोषक तत्वों का नाश हो जाना, इस मृदा का सामान्य लक्षण है। इस मृदा का पृष्ठ गिट्टीदार होता है। जो आर्द्र और शुष्क अवधियों के प्रत्यावर्तन के परिणामस्वरूप बनता है। अपक्षय के कारण लैटराइट मृदा अत्यन्त कठोर हो जाती है, इस प्रकार लैटराइट मृदा की प्रमुख विशेषतायें हैः जनक शैल का पूर्णतया रासायनिक विघटन, सिलिका का सम्पूर्ण निक्षालन, अलुमीनियम और लोहे के ऑक्साइडों द्वारा मिला लाल–भूरा रंग और ह्यूमस की कमी। इस मृदा में पैदा की जाने वाल सामान्य फसलें चावल, ज्वार–बाजरा और गन्ना निम्न भूमियों में और रबर, कहवा तथा चाय जैसी रोपण फसलें उच्च भूमियों में है।

(ङ) मरूस्थलीय मृदा

मरूस्थलीय मृदाएं पश्चिमी राजस्थान, सौराष्ट्र, कच्छ, पश्चिमी हरियाणा और दक्षिणी पंजाब में पाई जाती है। इन क्षेत्रों में इस मृदा के पाये जाने का सीधा संबन्ध वहाँ पर विद्यमान मरुस्थलों एवं अर्ध–मरुस्थलों की दशाओं का होना तथा छः महीनों तक पानी की अनुपलब्धता है। जैव पदार्थों की कमी सहित बलुई एवं पथरीली मृदा, ह्यूमस का कम होना, वर्षा का कभी–कभी होना, आर्द्रता की कमी और लम्बी शुष्क ऋतु मरुस्थलीय मृदा की विशेषतायें हैं। इस मृदा में संस्तरों का विकास कम हो गया है। इस मृदा के क्षेत्र में पौधे एक दूसरे से बहुत दूरी पर मिलते हैं। रासायनिक अपक्षय

सीमित है। मृदा का रंग लाल या हल्का भूरा हैं। सामान्यतया इस मृदा में कृषि के लिये आधारभूत आवश्यकताओं की कमी है। परन्तु जब पानी उपलब्ध होता है तो इससे विविध प्रकार की फसलें जैसे कपास, चावल, गेहूँ आदि उर्वरकों की उपयुक्त मात्रा देकर पैदा की जा सकती है।

(च) पर्वतीय मृदा

पर्वतीय मृदाएँ जटिल है और इनमें अत्यधिक विविधता मिलती है। यह नदी द्रोणियों और निम्न ढलानों पर जलोढ़ मृदा के रूप में पायी जाती है। ऊँचे भागों पर अपरिपक्व मृदा या पथरीली है। पर्वतीय भागों में भू आकृतिक, भूवैज्ञानिक, वानस्पतिक एवं जलवायु दशाओं की विविधता तथा जटिलता के कारण यहाँ एक ही तरह की मृदा के बड़े–बड़े क्षेत्र नहीं मिलते। खड़े ढाल वाले उच्चावच प्रदेश मृदा विहीन होते हैं। इस मृदा के विभिन्न प्रदेशों में अलग–अलग प्रकार की फसलें उगाई जाती है, जैसे चावल नदी घाटियों में, फलों के बाग ढलानों पर और आलू लगभग सभी क्षेत्रों में पैदा किया जाता है।

20.7 मृदा अपरदन

मृदा को अपने स्थान से विविध क्रियाओं द्वारा हटाया जाना मृदा अपरदन कहलाता है। यह प्राकृतिक कारकों जैसे जल, पवन, हिमानी और जल की लहरों द्वारा एक प्रकार की मृदा की चोरी है। गुरूत्वबल के कारण पहाड़ी ढलानों पर मृदा नीचे की ओर शनैःशैनैः गतिमान होती है जिसे मृदा–सर्पण कहते हैं अथवा यह भूस्खलन द्वारा तीव्र गति से नीचे आ सकती है। भूमि का वर्तमान स्वरूप हजारों लाखों वर्षों की काट–छाँट द्वारा बना है। मृदा अपरदन आज की पर्यावरणीय समस्याओं में से एक प्रमुख समस्या है और यह कृषि के उत्पादन में गंभीर रुकावट है। मृदा अपरदन की विकरालता एवं उसके फैलाव को कई भौतिक एवं सामाजिक कारक निर्धारित करते हैं। प्रमुख भौतिक कारक हैंः वर्षा की अपरदनकारी शक्ति, मृदा की अपनी कटाव क्षमता, आवर्ती बाढ़ों की तीव्रता, ढलान की लम्बाई और तीव्रता। प्रमुख सामाजिक कारक हैः वनों की कटाई, अतिचराई, भूमि उपयोग की प्रकृति और खेती करने की विधियाँ। भूमि अपरदन के गंभीर एवं अत्यन्त स्पष्ट रूप खड्ड, अवनालिकायें और भूस्खलन हैं। इसके दूसरी ओर वर्षा द्वारा किया गया परत–अपरदन और पवन द्वारा किया गया अपरदन यद्यपि स्पष्ट रूप से बहुत कम दिखाई देते हैं परन्तु ये भी इतने ही गंभीर हैं क्योंकि उनके द्वारा भारी मात्रा में मृदा की बहुमूल्य ऊपरी परत नष्ट हो जाती है। भारत में खड्डों और अवनालिकाओं द्वारा हुए मृदा के अपरदन से 36.7 लाख हैक्टेयर भूमि को नुकसान हुआ है। भारत में खड्डों और अवनालिकाओं के चार प्रमुख क्षेत्र हैंः (1) यमुना–चम्बल खड्ड क्षेत्र (2) गुजरात खड्ड क्षेत्र (3) पंजाब शिवालिक गिरिपाद क्षेत्र और (4) छोटा नागपुर क्षेत्र। इनके अतिरिक्त खड्ड अपरदन के कुछ ठोस उदाहरण महानदी की घाटी, ऊपरी सोन घाटी, ऊपरी नर्मदा और तापी की घाटियों, शिवालिक तथा पश्चिमी हिमालय के गिरिपाद वाली भाबर भूमि और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में

टिप्पणी

गंगा–खादर के सीमान्त में मिलते हैं। खड्ड और अवनालिका अपरदन से सबसे कम प्रभावित क्षेत्र हैं, गोदावरी के दक्षिण में पूर्व दक्कन क्षेत्र, गंगा ब्रह्मपुत्र के मैदान, कच्छ और पश्चिमी राजस्थान। परत अपरदन के प्रमुख क्षेत्र हैं ढालू भूमि, प्रायद्वीपीय प्रदेश की बिना सीढ़ी वाली उच्च भूमियाँ, सतलुज–गंगा का मैदान, तटीय मैदान, पश्चिमी घाट और उत्तर–पूर्वी पहाड़ियाँ।

भूस्खलन सामान्यतया भूकंप वाले क्षेत्रों, विशेषतया शिवालिक के भागों में होते रहते हैं। भारी वर्षा और सड़कों तथा इमारतों को बनाने के लिये ढलानों को काटने एवं खनन क्रियाओं के कारण भी भूस्खलन होते हैं। गत पचास वर्षों में राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, और उत्तर प्रदेश में मरूस्थल का अतिक्रमण हुआ है। इससे 13000 हैक्टेयर भूमि प्रभावित हुई है। हिमानी द्वारा अपरदन हिमालय के उच्च भागों में और समुद्री लहरों द्वारा अपरदन तटीय भागों में सीमित है। मृदा अपरदन और पोषक तत्वों के समाप्त हो जाने के कारण मृदा का समापन दोनों ही गंभीर बाधायें है। मृदा की उत्पादकता बढ़ाने के मार्ग में ये दोनों ही गंभीर समस्या है। इसके परिणामस्वरूप जनसंख्या की वृद्धि की तुलना में यह ज्यादा तेजी से बढ़ रही है।

20.8 मृदा संरक्षण

मृदा के संरक्षण में वे सब विधियाँ आती हैं जिनके द्वारा मृदा अपरदन रोका जाता है। यदि मृदा बह गई है या उड़ गई है तो उसे पुनः स्थापित करना आसान नहीं है। इसलिये मृदा संरक्षण में सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह है कि मृदा अपने ही स्थान पर सुरक्षित बनी रहे। इसके लिये विभिन्न प्रदेशों में कृषि पद्धतियों में सुधार किये गये हैं। पहाड़ी ढलानों पर समोच्चरेखीय जुताई और सीढ़ीदार खेती की जाती है। मृदा संरक्षण की ये बड़ी आसान विधियाँ हैं। वृक्षों की कतार या रक्षक–मेखला बनाकर मरुस्थलीय प्रदेशों में पवन–अपरदन से खेतों की रक्षा की जाती है। हिमालय के ढ़लानों और अपवाह क्षेत्र, झारखण्ड में ऊपरी दामोदर घाटी और दक्षिण में नीलगिरि की पहाड़ियों पर वनरोपण किया गया है। इसके द्वारा धरातलीय जल के तेज बहाव को कम किया गया है जिससे मृदा अपने ही स्थान पर बँधी रहती है। खड्ड अपने विशाल आकार, गहराई और खड़े ढलानों के लिये जाने जाते हैं। ऐसी उत्खात भूमि का उद्धार करने के लिये केन्द्रीय मृदा संरक्षण बोर्ड ने तीन अनुसंधान केन्द्रों की स्थापना की हैः (1) राजस्थान में कोटा, (2) उत्तर प्रदेश में आगरा और (3) गुजरात में बलसार। इन केन्द्रों का दायित्व है कि वे खड्ड भूमि के उद्धार के लिये क्षेत्र अनुसार अनुकूल विधियाँ बताएँ। भेड़, बकरी और अन्य पशुओं द्वारा अतिचराई भी आंशिक रूप से भूमि अपरदन के लिये उत्तरदायी है। इस कारक द्वारा अपरदन जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान और कर्नाटक में ज्यादा होता है। मृदा का समापन खाद और उर्वरको की मदद से रोका जा सकता है।

- भारत में पाई जाने वाली छः मुख्य प्रकार की मृदाएँ है : जलोढ़, काली, लाल, लैटराइट, मरुस्थलीय एवं पर्वतीय।

- मृदा अपरदन को भौतिक एवं सामाजिक कारक निर्धारित करते हैं। भौतिक कारक हैं : वर्षा की अपरदनकारी शक्ति, मृदा की अपनी कटाव क्षमता, आवर्ती बाढ़ों की तीव्रता और ढ़लान की लम्बाई एवं तीव्रता; सामाजिक कारक है : वनों की कटाई, अतिचराई, भूमि उपयोग की प्रकृति और खेती करने की विधियाँ।
- मृदा अपरदन के प्रमुख रूप है : खड्ड, अवनालिकायें, भूस्खलन एवं परत–अपरदन।
- मृदा संरक्षण की विधियाँ हैं : समोच्चरेखीय जुताई और सीढ़ीदार खेती, वृक्षों की कतार या रक्षक–मेखला बनाना, वनरोपण, अतिचराई को रोकना एवं खादों और उर्वरकों का प्रयोग।

पाठगत प्रश्न 20.3

1. (क) जलोढ़ मृदा के दो प्रमुख प्रदेशों के नाम बताइये –

   (i) _____ (ii) _____

   (ख) लाल मृदा में लाल रंग किस कारण होता है?

   _____

2. (क) मृदा के अपरदन के तीन प्रमुख प्रकारों के नाम बताइये:

   (i) _____ (ii) _____ (iii) _____

3. मृदा संरक्षण की किन्हीं चार विधियों के नाम बताइये –

   (क) _____ (ख) _____

   (ग) _____ (घ) _____

20.9 भारत में प्राकृतिक वनस्पति

पौधों की जातियों, जैसे पेड़ों, झाड़ियों, घासों, बेलों, लताओं आदि के समूह, जो किसी विशिष्ट पर्यावरण में एक दूसरे के साहचर्य में विकसित हो रहे हैं, को प्राकृतिक वनस्पति कहते हैं। इसके विपरीत वन से तात्पर्य पेड़ों व झाड़ियों से युक्त एक विस्तृत भाग से है जिसका हमारे लिये आर्थिक महत्व है। इस प्रकार प्राकृतिक वनस्पति की तुलना में वन का अर्थ भिन्न है।

भारत में जलवायु दशाओं की भिन्नता के परिणामस्वरूप देश के विभिन्न भागों में अनेक प्रकार की प्राकृतिक वनस्पति पायी जाती हैं। प्रत्येक पौधे को अपने विकास के लिये

टिप्पणी

निश्चित तापमान व वर्षा की आवश्यकता होती है। पश्चिमी घाट में उष्ण आर्द्र जलवायु के कारण ही उष्ण कटिबन्धीय सदाहरित वनस्पति पाई जाती है। शीतोष्ण सदाहरित वनस्पति उत्तर पूर्वी भारत में मिलती है, जबकि कंटीली या मरुस्थली या अर्द्ध मरुस्थली वनस्पति राजस्थान के मरुस्थल व उसके आस–पास के भागों में पाई जाती है। भारत के मध्यवर्ती भागों में पर्णपाती वनस्पति वहां मौजूद मध्यम जलवायु दशाओं के कारण विकसित हुई है।

प्रमुख वनस्पति प्रकार

भारत में पायी जाने वाली प्राकृतिक वनस्पति को सामान्यतया निम्न प्रकारों में बांटा जाता है :–

1. आर्द्र उष्णकटिबन्धीय सदाहरित एवं अर्द्ध सदाहरित वनस्पति
2. उष्णकटिबन्धीय आर्द्र पर्णपाती वनस्पति
3. उष्णकटिबन्धीय शुष्क वनस्पति
4. ज्वारीय वनस्पति तथा
5. पर्वतीय वनस्पति

आइये, अब इनके बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करें –

1. आर्द्र उष्ण कटिबन्धीय सदाहरित वनस्पति

ये उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन हैं जिन्हें उनकी विशेषताओं के आधार पर निम्न दो प्रकारों में बांटा जाता है :–

(क) आर्द्र उष्णकटिबन्धीय सदाबहार वनस्पति : यह उन प्रदेशों में पायी जाती है जहां वार्षिक वर्षा 300 से.मी. से अधिक तथा शुष्क ऋतु बहुत छोटी होती है। पश्चिमी घाट के दक्षिणी भागों, केरल व कर्नाटक तथा अधिक आर्द्र उत्तर पूर्वी पहाड़ियों में इस प्रकार की वनस्पति पायी जाती है। यह विषुवतीय वनस्पति से मिलती जुलती है। यह वनस्पति, अत्यधिक कटाई से नष्ट प्राय हो गई है। इस प्रकार की वनस्पति की प्रमुख विशेषतायें हैं :–

(i) ये वन घने हैं तथा लम्बे सदा हरित पेड़ों से युक्त हैं। पेड़ों की लम्बाई अक्सर 60 मीटर या इससे भी अधिक होती है।

(ii) प्रति इकाई क्षेत्र पर पौधों की जातियां इतनी अधिक हैं कि उनका वाणिज्यिक उपयोग नहीं हो पाता।

(iii) महोगनी, सिनकोना, बांस तथा ताड़, इन वनों में पाये जाने वाले खास पेड़ हैं। पेड़ों के नीचे झाड़ियों, बेलों, लताओं आदि का सघन मोटा जाल पाया जाता है। घास प्रायः अनुपस्थिति है।

(iv) इन पेड़ों की लकड़ी अधिक कठोर व भारी होती है। अतः इन्हें काटने व लाने ले जाने में अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

(ख) आर्द्र उष्णकटिबन्धीय अर्द्ध सदाहरित वनस्पति : यह आर्द्र सदाहरित वनस्पति तथा आर्द्र शीतोष्ण पर्णपाती वनस्पति के मध्यवर्ती भागों में पायी जाती है। इस प्रकार की वनस्पति मेघालय पठार, सह्याद्रि एवं अण्डमान व निकोबार द्वीपों में मिलती है। यह वनस्पति 250 से.मी. से 300 से.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों तक ही सीमित है। इनकी प्रमुख विशेषतायें हैं :–

(i) यह वनस्पति आर्द्र सदाहरित वनों से कम घनी है।

(ii) इन वनों की लकड़ी दानेदार अच्छी किस्म की होती है।

(iii) रोजवुड, ऐनी तथा तेलसर सह्याद्रि के वनों के प्रमुख वृक्ष हैं। चम्पा, जून तथा गुरजन, असम व मेघालय तथा आइरनवुड, एबोनी व लॉरेल अन्य प्रदेशों के प्रमुख वृक्ष हैं।

(iv) स्थानान्तरी कृषि एवं अत्यधिक शोषण से इन वनों का अत्यधिक ह्रास हुआ है।

2. आर्द्र उष्णकटिबन्धीय पर्णपाती वनस्पति

यह भारत की सबसे विस्तृत वनस्पति पेटी है। इस प्रकार की वनस्पति 100 से.मी. से 200 से.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में पायी जाती है। इसमें सह्याद्रि, प्रायद्वीपीय पठार का उत्तरी पूर्वी भाग, शिवालिक में हिमालय पदीय पहाड़ियां, भाबर तथा तराई क्षेत्र शामिल हैं। इस प्रकार की वनस्पति की प्रमुख विशेषतायें है :–

(i) पर्णपाती वनस्पति क्षेत्र में वृक्ष वर्ष में एक बार शुष्क ऋतु में अपनी पत्तियां गिरा देते हैं।

(ii) यह खासतौर पर मानसूनी वनस्पति है जिसमें वाणिज्यिक महत्व के पेड़ों की किस्में सदाहरित वनों से अधिक पायी जाती है।

(iii) सागवान, साल, चन्दन, शीशम, बेंत तथा बांस इन वनों के प्रमुख वृक्ष हैं।

(iv) लकड़ी के लिये पेड़ों की अन्धाधुंध कटाई से इन वनों का अत्यधिक विनाश हुआ है।

3. शुष्क उष्णकटिबन्धीय वनस्पति

इस प्रकार की वनस्पति को निम्न दो वर्गों में बांटा जाता है :

(क) शुष्क पर्णपाती : यह वनस्पति 70 से 100 सें.मी. वार्षिक वर्षा पाने वाले भागों में

पायी जाती है। इन प्रदेशों में उत्तर प्रदेश के कुछ भाग, उत्तरी व पश्चिमी मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, आँध्र प्रदेश, कनार्टक तथा तमिलनाडु के कुछ भाग सम्मिलित हैं। इन क्षेत्रों में शुष्क ऋतु लम्बी होती है तथा वर्षा हल्की व चार महीनों तक सीमित होती है इसकी प्रमुख विशेषतायें हैं–

(i) पेड़ों के झुरमुटों के बीच विस्तृत घास भूमियां आम तौर से पायी जाती हैं। सागवान इस प्रकार की वनस्पति का प्रधान वृक्ष है।

(ii) पेड़ अपनी पत्तियां लम्बी शुष्क ऋतु में गिरा देते हैं।

(ख) शुष्क उष्णकटिबन्धीय कंटीली वनस्पति : यह 70 सें.मी. से कम वार्षिक वर्षा पाने वाले भागों में पायी जाती है। इनमें भारत के उत्तरी व उत्तरी पश्चिमी भाग तथा सह्याद्रि के पवन विमुख ढाल शामिल हैं। इस प्रकार की वनस्पति की प्रमुख विशेषतायें हैं :–

(i) यहां दूर–दूर तक फैले पेड़ों व झाड़ियों के झुरमुटों के बीच फैली निम्न किस्म की घास वाली विस्तृत भूमियां पायी जाती हैं।

(ii) बबूल, सेहुँड, कैक्टस आदि इस प्रकार की वनस्पति के सच्चे प्रतिनिधि वृक्ष हैं। जंगली खजूर, कंटीले प्रकार के अन्य वृक्ष व झाड़ियां जहां–तहां पायी जाती हैं।

4. ज्वारीय वनस्पति

इस प्रकार की वनस्पति मुख्य रूप से गंगा, महानदी, गोदावरी तथा कृष्णा नदियों के डेल्टा प्रदेशों में पाई जाती है, जहां ज्वार–भाटों व ऊंची समुद्री लहरों के कारण खारे जल की बाढ़ें आती रहती हैं। मैनग्रोव इस प्रकार की प्रतिनिधि वनस्पति है। सुन्दरी ज्वारीय वनों का प्रमुख वृक्ष है। यह पश्चिमी बंगाल के डेल्टा के निचले भाग में बहुतायत से पाया जाता है। यही कारण है कि इन्हें सुन्दरवन कहते हैं। यह अपनी कठोर व टिकाऊ लकड़ी के लिये जाना जाता है।

5. पर्वतीय वनस्पति

उत्तरी तथा प्रायद्वीपीय पर्वतीय श्रेणियों के तापमान तथा अन्य मौसमी दशाओं में अन्तर होने के कारण इन दो पर्वत समूहों की प्राकृतिक वनस्पति में अन्तर पाया जाता है। अतः पर्वतीय वनस्पति को दो भागों प्रायद्वीपीय पठार की पर्वतीय वनस्पति तथा हिमालय श्रेणियों की पर्वतीय वनस्पति के रूप में बांटा जा सकता है।

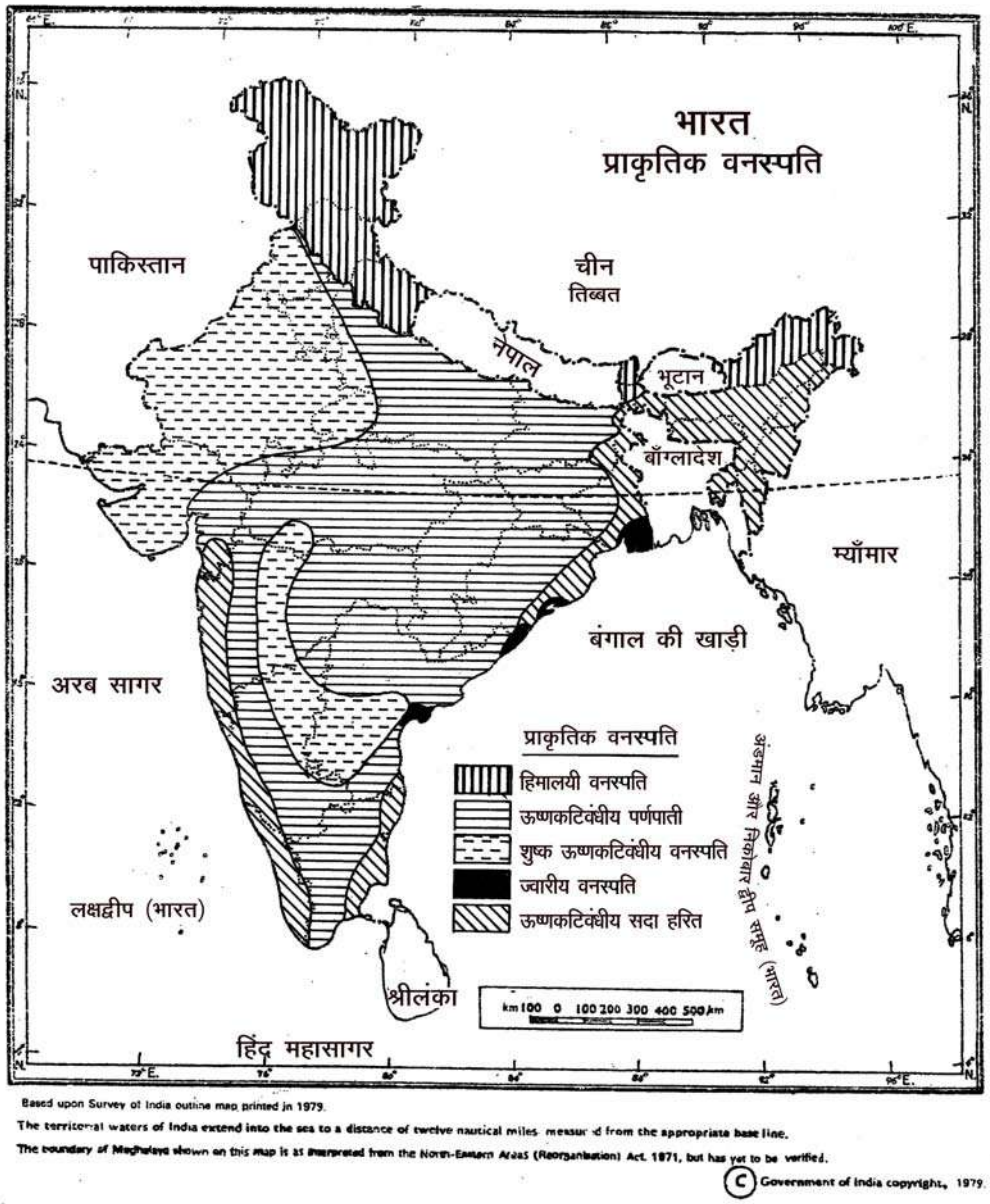

चित्र 20.3 भारत : प्राकृतिक वनस्पति के प्रकार

(क) प्रायद्वीपीय पठार की पर्वतीय वनस्पति

पठारी प्रदेश के अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्रों में नीलगिरि, अन्नामलाई व पालनी पहाड़ियां, पश्चिमीघाट में महाबलेश्वर, सतपुड़ा तथा मैकाल पहाड़ियां शामिल हैं। इस प्रदेश की वनस्पति की महत्वपूर्ण विशेषतायें हैं :–

(i) अविकसित वनों या झाड़ियों के साथ खुली हुई विस्तृत घास भूमियां पायी जाती हैं।

(ii) 1500 मीटर से कम ऊंचाई पर पाये जाने वाले आर्द्र शीतोष्ण वन कम सघन है। अधिक ऊंचाई पर पाये जाने वाले वनों की सघनता ज्यादा है।

टिप्पणी

(iii) इन वनों में पेड़ों के नीचे वनस्पति का जाल पाया जाता है। जिनमें परपोषी, पौधे, काई व बारीक पत्तियों वाले पौधे प्रमुख हैं।

(iv) मैग्नोलिया, लॉरेल एवं एल्म सामान्य वृक्ष हैं।

(v) सिनकोना तथा यूकेलिप्टस के वृक्ष विदेशों से लाकर लगाये गये हैं।

(ख) हिमालय श्रेणियों की पर्वतीय वनस्पति

हिमालय पर्वतीय प्रदेश में बढ़ती हुई ऊंचाईयों पर भिन्न प्रकार की वनस्पति पायी जाती है। इसे निम्न प्रकारों में बांटा जा सकता है :–

(1) आर्द्र उष्णकटिबन्धीय पर्णपाती वन शिवालिक श्रेणियों के पदीय क्षेत्रों, भाबर तथा तराई क्षेत्रों में 1000 मीटर की ऊंचाई तक पाये जाते हैं। हम इन वनों के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं।

(2) आर्द्र शीतोष्ण कटिबन्धीय सदाहरित वन 1000 से 3000 मीटर की ऊंचाईयों के मध्यवर्ती क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इन वनों की महत्वपूर्ण विशेषतायें निम्न हैं :–

(i) ये घने वन लम्बे पेड़ों से युक्त हैं।

(ii) चेस्टनट तथा ओक पूर्वी हिमालय प्रदेश के प्रधान वृक्ष हैं; जबकि चीड़ और पाइन पश्चिमी हिमालय प्रदेश में प्रधानता से पाये जाने वाले वृक्ष हैं।

(iii) साल निम्न ऊंचाई वाले क्षेत्रों का महत्वपूर्ण वृक्ष है।

(iv) देवदार, सिलवर फर तथा स्प्रूस 2000 से 3000 मीटर के मध्यवर्ती भागों के प्रधान वृक्ष हैं। इन ऊंचाईयों पर पाये जाने वले वन कम ऊंचाई के वनों की तुलना में कम घने हैं।

(v) स्थानीय व्यक्तियों के लिये इन वनों का आर्थिक महत्व अधिक है।

3. शुष्क शीतोष्ण वनस्पति इस पर्वतीय प्रदेश के अधिक ऊंचाई वाले पहाड़ी ढालों पर पायी जाती है। यहां तापमान कम तथा वर्षा 70 से 100 सें.मी. होती है। इस वनस्पति की महत्वपूर्ण विशेषतायें हैं :–

(i) यह वनस्पति भूमध्यसागरीय वनस्पति से मिलती जुलती हैं।

(ii) जंगली जैतून और बबूल कठोर व मोटी सवाना घास के साथ उगे प्रमुख वृक्ष हैं।

(iii) कहीं–कहीं ओक तथा देवदार के वृक्ष भी पाये जाते हैं।

4. अल्पाइन वनस्पति 3000 से 4000 मीटर की ऊंचाईयों के मध्य पायी जाती है। इन वनों की प्रमुख विशेषतायें हैं :–

(i) ये कम घने वन हैं।

(ii) सिल्वर फर, जुनी फर, बर्च, पाइन तथा राडॉनड्रान इन वनों के प्रमुख वृक्ष हैं। ये सभी वृक्ष आकार में छोटे हैं।

(iii) अल्पाइन चारागाह इससे भी अधिक ऊंचाई वाले भागों में मिलते हैं।

(iv) हिम रेखा की ओर बढ़ने पर पेड़ों की ऊंचाई क्रमशः कम होती जाती है।

- प्राकृतिक वनस्पति से तात्पर्य पौधों की जातियों के समूह से है जो किसी विशिष्ट पर्यावरण में एक दूसरे के साहचर्य में विकसित हुये हैं।
- विभिन्न प्रदेशों की वनस्पति पर तापमान एवं वर्षा का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है।
- प्रमुख वनस्पति पेटियों में आर्द्र उष्णकटिबन्धीय सदाहरित, आर्द्र उष्णकटिबन्धीय पर्णपाती, शुष्क पर्णपाती, ज्वारीय तथा पर्वतीय वनस्पति जो ऊंचाइयों के अनुसार उष्णकटिबंधीय वनस्पति से लेकर अल्पाइन वनस्पति तक की वनस्पति को संजोये हुये हैं, शामिल हैं।

पाठगत प्रश्न 20.4

1. नीचे दिये गये कथनों के लिये उपयुक्त पारिभाषिक शब्द दीजिए :–

   (क) पौधों की जातियों का समूह जो विशिष्ट पर्यावरण में एक दूसरे के साहचर्य से विकसित हुआ है।

   _____

   (ख) सम्मिलित छाया वाले घने पेड़ों व झाड़ियों से ढका हुआ एक विस्तृत क्षेत्र।

   _____

2. नीचे दिये गये पेड़ों की जातियों को दिये गये वनस्पति प्रकारों में बांटिए :–

   महोगनी, एबोनी, शीशम, सिनकोना, साल, ताड़, रोजवुड

   (क) आर्द्र उष्णकटिबन्धीय सदाहरित _____

   (ख) आर्द्र उष्णकटिबन्धीय पर्णपाती _____

   (ग) आर्द्र उष्णकटिबन्धीय अर्द्ध सदाहरित _____

3. नीचे दिये गये वार्षिक वर्षा के प्रदेशों में पायी जाने वाली वनस्पति प्रकार का नाम बताइए :–

   (क) 300 से.मी. से अधिक _____

टिप्पणी

(ख) 200 से 300 से.मी. _____

(ग) 100 से 200 से.मी. _____

4. आर्द्र उष्णकटिबन्धीय पर्णपाती वनस्पति की दो सबसे महत्वपूर्ण विशेषतायें बताइए:–

(क) _____ (ख) _____

आपने क्या सीखा

भूमि हमारा मौलिक संसाधन है। यह उत्पादन का प्रमुख आर्थिक कारक, सामाजिक सम्मान, सम्पदा और राजनीतिक शक्ति की आधारशिला है। भारत कृषि भूमि में संपन्न है। भारत का भूमि–मानव अनुपात जापान और नीदरलैंड से अधिक है जबकि यह आस्ट्रेलिया, कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका से कम है।

भूमि उपयोग एक गतिमान प्रक्रिया है। कई कारकों में बदलाव के कारण समयानुसार इसमें भी बदलाव होते रहते हैं। इनमें से जनसंख्या वृद्धि, फसल व्यवस्था और तकनीक में बदलाव प्रमुख हैं। भूमि का अधिकतर भाग कृषि कार्यों में उपयोग किया जाता है। भारत कई तरह की भूमि संबंधी समस्याओं का सामना कर रहा है। ये है भूमिरक्षण, भूमि का स्वामित्व और वनों की कटाई। इन समस्याओं के समाधान हेतु भारत दो तरह के उपाय – भूमि उद्धार और भूमि सुधार अपना रहा है। असंगठित पदार्थों से बनी पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत को मृदा कहते हैं। भारत की मृदाओं को छः प्रमुख वर्गों में बांटा गया है। ये हैं जलोढ़, काली, लाल, लैटराइट, मरूस्थलीय और पर्वतीय मृदाएँ। भूमि की तरह मृदा की भी समस्याएँ हैं, जैसे मृदा अपरदन और मृदा का समापन। भारत में मृदा संरक्षण की अपनाई गई प्रमुख विधियाँ हैं: समोच्चरेखीय जुताई, सीढ़ीदार खेती, रक्षक–मेखला बनाना, वनरोपण आदि।

प्राकृतिक वनस्पति से तात्पर्य पौधों की जातियों के समूह से है जो विशिष्ट पर्यावरण में एक दूसरे के साहचर्य में विकसित होते हैं। जलवायु दशाओं की विभिन्नता के फलस्वरूप प्राकृतिक वनस्पति में भी विभिन्नता पायी जाती है। भारत में पाये जाने वाले प्रमुख वनस्पति प्रकारों में आर्द्र उष्णकटिबंधीय सदाहरित, आर्द्र उष्णकटिबन्धीय पर्णपाती, शुष्क पर्णपाती ज्वारीय वन तथा पर्वतीय वनस्पति शामिल हैं।

पाठान्त प्रश्न

1. भारत के भूमि उपयोग के प्रमुख लक्षण क्या हैं?

2. भारत के विभिन्न प्रकार के भूमि उपयोगों का संक्षिप्त वर्णन करिये।

टिप्पणी

3. भारत में पाई जाने वाली प्रत्येक प्रकार की मृदा की दो प्रमुख विशेषतायें बताइये।

4. मृदा संरक्षण के लिये अपनाये गये विभिन्न उपायों का वर्णन करिये।

5. निम्नलिखित में अन्तर बताइयेः–

   (क) लैटराइट मृदा और लाल मृदा

   (ख) मृदा अपरदन और मृदा संरक्षण

   (ग) नवीन जलोढ़क एवं प्राचीन जलोढ़क

6. प्राकृतिक वनस्पति को परिभाषित कीजिये। वन इससे किस प्रकार भिन्न हैं?

7. ज्वारीय वनस्पति तथा पर्वतीय वनस्पति के बीच अन्तर बताइये।

8. कारण दीजिए–

   (क) हिमालय क्षेत्र की वनस्पति पट्टी ऊँचाई के आधार पर परिभाषित होती है न कि क्षैतिज।

   (ख) शुष्क प्रदेश कांटेदार वृक्ष एवं झाड़ियों से आच्छादित है।

9. भारत के रेखा मानचित्र में निम्नलिखित की स्थिति दर्शाइए तथा उनके नाम लिखियेः–

   (क) जलोढ़ मृदा

   (ख) लैटेराइट मृदा

   (ग) मरूस्थलीय मृदा

   (घ) ज्वारीय वन तथा उष्णकटिबन्धीय कांटेदार वन

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

20.1

1. भूमि–मानव अनुपात वह अनुपात है जो वास योग्य भूमि के क्षेत्रफल और उस पर रहने वाले लोगों की कुल संख्या के बीच होता है।

2. आस्ट्रेलिया, कनाडा, अर्जेन्टाइना, संयुक्त राज्य अमेरिका, चिली, डेनमार्क और मेक्सिको (कोई चार)

3. जापान, नीदरलैंड, मिस्र, यूनाइटेड किंगडम, चीन, इजराइल (कोई चार)

20.2

1. चम्बल घाटी, छोटानागपुर, गुजरात, पंजाब हिमालय के निम्न भाग (कोई तीन)
2. वनों का विनाश
3. (क) भौमिक (भूमि उद्धार), (ख) सामाजिक (भूमि सुधार)
4. राजस्थान

20.3

1. (क) (i) सतलुज, गंगा और ब्रह्मपुत्र की घाटियाँ (ii) दक्षिणी प्रायद्वीपीय पठार का सीमान्त क्षेत्र अर्थात् तटीय पट्टियाँ

   (ख) लोहे के यौगिकों के कारण

2. (क) (i) अवनालिका अपरदन, (ii) भूस्खलन, (iii) परत–अपरदन (iv) पवन अपरदन (कोई तीन)

   (ख) (i) समोच्चरेखीय जुताई, (ii) सीढ़ीदार खेती (iii) रक्षक–मेखला बनाना, (iv) वनरोपण

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. अनुच्छेद 20.1 देखिये
2. अनुच्छेद 20.2 देखिये
3. अनुच्छेद 20.3 देखिये
4. अनुच्छेद 20.4 देखिये
5. (क) अनुच्छेद 20.6 के भाग 4 और 3 देखिये

   (ख) अनुच्छेद 20.7 और 20.8 देखिये

   (ग) अनुच्छेद 20.6 का भाग 1 देखिये
6. अनुच्छेद 20.9 देखिये
7. अनुच्छेद 20.9 के भाग 4 और 5 देखिये
8. अनुच्छेद 20.9 का भाग 5 (ख) तथा 3 देखिये।
9. (i), (ii) एवं (iii) के लिए चित्र संख्या 20.2 देखिये (iv) के लिए चित्र संख्या 20. 3 देखिये।

21

हमारे जल संसाधन

जल के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। जीवन की उत्पत्ति ही जल में हुई है। हर जीवन के सृजन में जल का विशेषयोगदान है। प्राणियों में 65 प्रतिशत तथा पेड़–पौधों में 65 से 99 प्रतिशत तक जल अंश मिलता है। इससे जल की आवश्यकता और उपयोगिता सहज झलकती है। जल प्रकृति का ऐसा उपहार है, जिसका कोई दूसरा विकल्प नहीं है। जल का विविध उपयोग है और जल विकास की धुरी भी है।

भारत में पेय जल उपलब्धता तथा उपयुक्तता की दृष्टि से सीमित है। जल का वितरण तो बहुत ही असमान है, कहीं उसकी अधिकता है तो कहीं उसकी भारी कमी मिलती है। जल की गुणवत्ता में भी दिनों–दिन गिरावट आती जा रही है। यह अपने में बड़ी चिन्ता का विषय है। जल की मांग और आपूर्ति में समन्वय के साथ–साथ जल संसाधनों के स्त्रोतों के बीच ताल–मेल अनिवार्य है। अतः जल संसाधनों का संरक्षण आवश्यक है।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- जल के विभिन्न स्रोतों को जान सकेंगे;
- जल बजट का अर्थ समझा सकेंगे;
- जल के असमान वितरण को स्पष्ट कर सकेंगे;
- जल की उपयोगिता बता सकेंगे;
- सिंचाई के विभिन्न साधनों की उपयोगिता तथा वितरण बता सकेंगे;
- प्रमुख नदी घाटी परियोजनाओं को मानचित्र पर दिखा सकेंगे;
- जल प्रबंधन की आवश्यकता स्पष्ट कर सकेंगे;
- बाढ़ और सूखे का जन जीवन पर प्रभाव स्पष्ट कर सकेंगे;

टिप्पणी

- जल संभर विकास का अर्थ समझा सकेंगे;
- जल संसाधनों के संरक्षण की विधियों को स्पष्ट कर सकेंगे;

21.1 जल संसाधन

जल प्रकृति का सबसे मूल्यवान उपहार है। यह आपूर्य और असमाप्त होने वाला संसाधन है; परन्तु यह संकटग्रस्त संसाधन भी है। पानी की मांग सतत् बढ़ रही है और जलापूर्ति निरंतर घट रही है। विश्व के संदर्भ में देखा जाए तो भारत के पास 4 प्रतिशत जल है, जबकि जनसंख्या 16 प्रतिशत है। इसका अर्थ यह हुआ कि विश्व के औसत की तुलना में हमारे यहाँ प्रति व्यक्ति के हिस्से में केवल चौथाई जल ही आता है। सिंचित क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का विश्व में पहला स्थान है। देश का आठवाँ हिस्सा बाढ़ग्रस्त है तथा छटा हिस्सा सूखा से त्रस्त है। इस सबके लिए मानसून की प्रकृति उत्तरदाई है। बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यान्नों और अन्य कृषि उपजों की अधिक आवश्यकता है। यही कारण है कि फसलों के लिए सिंचाई के रूप में जल का उपयोग बढ़ता जा रहा है। नगरीकरण, औद्योगीकरण तथा आधुनिकीकरण के कारण नगरों में जल की मांग बहुत बढ़ी है। केवल इतना ही नहीं मल–जल की निरंतर बढ़ती निकासी और सभी प्रकार की गंदगी के निपटान के लिए जल की मांग और भी अधिक बढ़ रही है।

21.2 जल के स्रोत

जल के चार प्रमुख स्रोत हैं–1. पृष्ठीय जल 2. भूमिगत जल 3. वायुमंडलीय जल तथा 4. महासागरीय जल। हम अपने व्यावहारिक जीवन में प्रत्यक्षतः पृष्ठीय और भूमिगत जल का ही उपयोग करते हैं। आइए इनके विषय में विस्तार से जानें।

(क) पृष्ठीय जल : धरातल पर पृष्ठीय जल का मूल स्रोत वर्षण है। वर्षण का लगभग 20 प्रतिशत भाग वाष्पित होकर वायुमंडल में विलीन हो जाता है। जल का कुछ अंश भूमिगत हो जाता है। पृष्ठीय जल का एक बड़ा भाग धरातल पर नदियों–नालों, तालाबों, झीलों तथा पोखर–जोहड़ों में मिलता है। शेष जल बहकर सागर–महासागरों में जा मिलता है। भू–पृष्ठ पर पाये जाने वाले जल को पृष्ठीय या धरातलीय जल कहते हैं।

कुल पृष्ठीय जल का लगभग दो–तिहाई भाग देश की तीनों बड़ी नदियों – सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र से होकर बहता है। आज भारत में निर्मित जलाशयों के जल भंडारण की क्षमता लगभग 174 अरब घन मीटर है। स्वतंत्रता के समय जलाशयों के भंडारण की क्षमता मात्र 18 अरब घनमीटर थी। इस प्रकार जल भण्डारण की क्षमता लगभग दस गुनी बढ़ाई जा चुकी है।

सारणी 21.1 भारतः नदियों की द्रोणियों के अनुसार पृष्ठीय

टिप्पणी

और भूमिगत जल का वितरण

(इकाई अरब घन मीटर में)

नदी द्रोणी		पृष्ठीय जल प्रवाह		भूमिगत जल	
		वार्षिक प्रवाह	उपयोग योग्य क्षमता	आपूर्णीय	उपयोग योग्य क्षमता
1.	सिंधु	71.3	46.0	26.5	24.3
2.	गंगा	525.0	250.0	171.0	157.0
3.	ब्रह्मपुत्र	629.0	24.0	27.0	24.0
4.	गोदावरी	110.5	76.3	40.7	37.0
5.	कृष्णा	70.0	58.0	26.4	24.0
6.	कावेरी	21.4	19	12.3	11.3
7.	महानदी	68.9	50.0	16.5	15.0
8.	नर्मदा	45.7	34.5	10.8	9.9
9.	तापी	14.9	14.5	8.3	7.6
	अन्य नदियाँ	365.4	118.2	74.0	68.2
	योग	1952.1	690.3	431.32	395.6

गंगा द्रोणी में उपयोग के योग्य जल भंडारण की क्षमता सबसे अधिक है, परन्तु ब्रह्मपुत्र नदी द्रोणी में वार्षिक प्रवाह सर्वाधिक होते हुए भी उपयोग योग्य जल भंडारण की क्षमता सबसे कम है। गोदावरी, कृष्णा, महानदी तथा सिंधु नदी द्रोणियों में भण्डारण क्षमता पर्याप्त है। उपयोग योग्य जल भंडारण की क्षमता को अनुपात की दृष्टि से देखा जाए तो तापी नदी द्रोणी का पहला स्थान बनता है। तापी नदी द्रोणी की भंडारण क्षमता 97 प्रतिशत है। देश की तीनों बड़ी नदियों सिंधु, गंगा तथा ब्रह्मपुत्र में वार्षिक जल प्रवाह की मात्रा अधिक है। अतः इन नदियों के जल भंडारण की क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।

(ख) भूमिगत जल : वर्षा का जल रिस–रिस कर भूमिगत होता रहता है। जल रिसाव की प्रक्रिया पृष्ठीय जल से भी होती है। इन दोनों ही माध्यमों से भूमि के नीचे विशाल मात्रा में पानी इकट्ठा हो जाता है। इसे भूमिगत जल या भौम जल भी कहते हैं। केन्द्रीय भौम जल बोर्ड के अनुसार 1994–95 में भारत में आपूर्य भूमिगत जल क्षमता लगभग 431 अरब घन मीटर प्रतिवर्ष है। इसमें से लगभग 396 अरब घन मीटर जल उपयोग

टिप्पणी

के लिए उपलब्ध है।

भूमिगत जल का वितरण सर्वत्र समान नहीं है। भूमिगत जल की उपलब्धता वर्षा की मात्रा, वर्षा की प्रकृति, भूमि के स्वभाव तथा भूमि के ढाल पर निर्भर करती है। अधिक वर्षा वाले भागों में जहाँ भूमि समतल तथा सरंध्र मृदा वाली है वहाँ पानी आसानी से रिस जाता है। अतः इन क्षेत्रों में भूमिगत जल कम गहराई पर पर्याप्त मात्रा में मिलता है। राजस्थान जैसे क्षेत्रों में समतल भूभाग तथा सरंध्र बलुई मृदा होते हुए भी वर्षा की कमी के कारण जल अधिक गहराई पर कम मात्रा में मिलता है। देश के उत्तर–पूर्वी क्षेत्रों में यद्यपि अधिक वर्षा होती है, परन्तु भूमि के ढालू होने के कारण जल के प्रवेश के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ नहीं मिलती, फलतः इन भागों में भी भूमिगत जल अधिक गहराई में तथा कम मात्रा में मिलता है। गंगा–ब्रह्मपुत्र के मैदानों तथा तटीय मैदानों में भौम–जल के विशाल भंडार हैं। प्रायद्वीपीय पठार, हिमालयी क्षेत्रों तथा मरुस्थलीय भागों में भूमिगत जल कम मात्रा में मिलता है।

भूमिगत जल क्षमता का उपयोग

जिन क्षेत्रों में वर्षा की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती वहाँ पर भूमिगत जल का उपयोग बड़े पैमाने पर किया जाता है। पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, तमिलनाडु, गुजरात तथा उत्तर प्रदेश में भूमिगत जल का उपयोग बड़े पैमाने पर किया जाता है; जबकि आंध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा छत्तीसगढ़ ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ वर्षा की मात्रा कम होते हुए भी भूमिगत जल का उपयोग कम हो पाता है। भूमिगत जल के विकास की विशेष आवश्यकता है।

[redacted] मूल स्रोत क्या है?

2. भूमिगत जल उपयोग के लिए सबसे अधिक किस नदी द्रोणी में उपलब्ध है?

3. देश का कितना भाग हर वर्ष सूखे और बाढ़ की चपेट में रहता है?

[redacted] में उपलब्ध कुल जल राशि तथा काम में आने वाली जल राशि के बीच संतुलन। जल संसाधनों के वितरण में स्थान तथा समय के अनुसार बहुत अंतर मिलता है। वर्षा ऋतु में जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है। शुष्क ऋतु आने पर जल की कमी होने लगती है। हमारे पृष्ठीय और भूमिगत जल के भंडार लगभग

2384 अरब घन मीटर हैं। इसमें से केवल 1086 अरब घन मीटर जल ही उपयोग के लिए उपलब्ध है।

जल की मात्रा मापने की इकाई **'घन मीटर'** या **हेक्टेयर** मीटर है। यदि एक वर्ग मीटर समतल भूभाग पर एक मीटर की गहराई तक जल को स्थिर रखा जाए तो उस सम्पूर्ण जल का कुल आयतन एक घन मीटर होगा। ठीक इसी प्रकार एक हेक्टेयर समतल भूमि पर एक मीटर की गहराई तक यदि जल को स्थिर रखा जाए तो जल का कुल आयतन एक हेक्टेयर मीटर होगा।

भारत की वर्षा की प्रकृति और उसके वितरण के स्वरूप के विषय में आप पाठ 17 में पढ़ चुके हैं। भारत में 90 प्रतिशत वर्षा जून से अगस्त तक 3 महीनों की अल्प अवधि में हो जाती है। भारत में वर्षा के दिनों की संख्या में भी बहुत अंतर मिलता है। पश्चिमी तट पर वर्षा वाले दिनों का औसत 137 दिन है। राजस्थान में दिनों की संख्या घटकर 10 से भी कम हो जाती है। वर्षा की प्रकृति में अंतर पाया जाता है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में वर्षा प्राय तेज और लगातार हो सकती है; जबकि कम वर्षा वाले भागों में वर्षा की प्रकृति मंद तथा रुक–रुक कर अथवा बीच में अंतराल देकर हो सकती है। अतः वर्षा के क्षेत्रीय वितरण में अधिक असमानता मिलती है। देश के 8 प्रतिशत भूभाग पर 200 सें.मी. से अधिक वर्षा होती है। 20 प्रतिशत भाग में 125 से 200 सें.मी. वर्षा होती है। 42 प्रतिशत भाग पर 75 से 125 सें.मी. वर्षा होती है। शेष 30 प्रतिशत भाग पर 75 सें.मी. से कम वर्षा होती है। वर्षा का असमान वितरण ही पृष्ठीय तथा भूमिगत जल के असमान वितरण के लिए उत्तरदाई है।

1. [redacted] क्या अर्थ है?

_____

2. जल की दो मापक इकाईयों के नाम बताइए।

   (क)_____(ख)_____

3. वर्षा की सबसे लम्बी अवधि देश के किस भाग में मिलती है?

   _____

4. देश के कितने प्रतिशत भूभाग पर 200 सें.मी. से अधिक वर्षा होती है।

   _____

5. देश में जल के असमान वितरण के लिए उत्तरदाई मुख्य घटक का नाम बताइए।

   _____

टिप्पणी

21.4 जल की उपयोगिता

भारत में जनसंख्या निरंतर और तेजी से बढ़ रही है। स्वतंत्रता के बाद देश की जनसंख्या लगभग तिगुनी हुई है। जनसंख्या बढ़ने के कारण सभी क्षेत्रों में जल की मांग बहुत बढ़ी है। पेय जल तथा सिंचाई व उद्योगों के लिए जल की मांग अपेक्षाकृत अधिक बढ़ी है। दूसरी ओर भारत में प्रति व्यक्ति जल की वार्षिक उपलब्धता बराबर घट रही है। सन् 1951 में प्रति व्यक्ति वार्षिक जल की उपलब्धता 5177 घन मीटर थी जो 2001 में घटकर केवल 1829 घन मीटर प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष रह गई है। आने वाले समय में अर्थात् 2025 तक पहुँचते–पहुँचते जल की उपलब्धता प्रति व्यक्ति घटकर 1342 घन मीटर प्रतिवर्ष रह जाएगी। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि 1000 घन मीटर औसत वार्षिक जल की उपलब्धता पर जल संकट पैदा हो जाता है। आज कई देश जल संकट की स्थिति में पहुँच चुके हैं। यहाँ तक कि उन्हें जल का आयात करना पड़ता है।

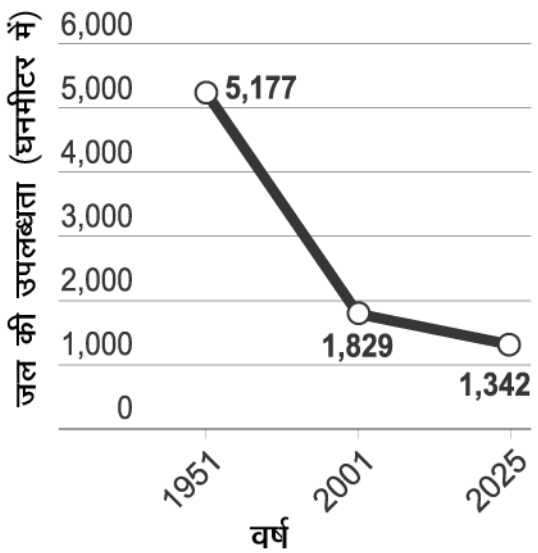

चित्र 21.1 वार्षिक जल की घटती उपलब्धता

पानी का विविध उपयोग है। इस के उपयोग की सूची लम्बी है। पीने के लिए तो पानी चाहिए ही। घरेलू कार्यों, सिंचाई, उद्योगों, जन स्वास्थ्य, स्वच्छता तथा मल–मूत्र की निकासी के लिए जल अपरिहार्य है। जल विद्युत के निर्माण तथा परमाणु संयंत्रों के शीतलन के लिए विशाल जल राशि निरंतर चाहिए। मत्स्य पालन, वानिकी और जल क्रीड़ाओं की कल्पना जल के बिना नहीं की जा सकती। पर्यटन को विकसित तथा बढ़ावा देने में पानी की विशेष भूमिका है। कृषि अर्थव्यवस्था का तो जल अभिन्न अंग है। इस प्रकार जल सभी प्रकार के विकास कार्य के लिए आवश्यक है। इसका उपयोग जीवन के हर क्षेत्र में आवश्यक है और उपयोग हर क्षेत्र में तेजी से बढ़ रहा है। नगरों के बढ़ने के कारण नगरों में जल की मांग प्रतिदिन बढ़ रही है।

सारणी 21.2 भारतः जल के उपयोग का बदलता स्वरूप

(इकाईः अरब घन मीटर)

उपयोग	1990	2000	2010*	2025*	2050*
घरेलू	25	33	42	52	60
सिंचाई	460	536	653	770	800
उद्योग	15	30	79	120	130
ऊर्जा	19	27	44	71	120
अन्य	30	33	35	37	40
योग	549	659	853	1050	1150

* अनुमानित

भारत कृषि प्रधान देश है। अतः सिंचाई के लिए विशाल जल–राशि की आवश्यकता होती है। वर्ष 2000 में सिंचाई के लिए 536 अरब घन मीटर जल का उपयोग किया गया। यह उपयोग की गई कुल जल राशि का 81 प्रतिशत है। शेष प्रतिशत जल का उपयोग घरेलू कार्यों, उद्योगों, ऊर्जा तथा अन्य कामों में होता है।

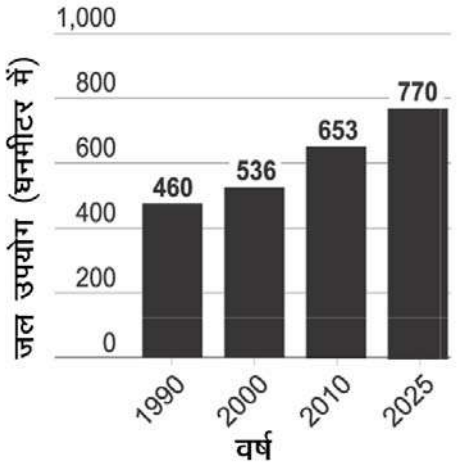

चित्र 21.2 जल का उपयोग

स्वतंत्रता के बाद सिंचित क्षेत्र में बहुत वृद्धि हुई है। 1999–2000 में कुल सिंचित क्षेत्र 8.47 करोड़ हेक्टेयर था। भारत में सिंचाई के लिए जल के उपयोग की अधिकतम क्षमता 11.35 करोड़ हेक्टेयर मीटर है। इस क्षमता का लगभग तीन चौथाई जल का ही उपयोग हो पाता है।

भारत में सिंचाई की मांग निरंतर बढ़ती जा रही है। सिंचाई की मांग बढ़ने के प्रमुख कारण हैं–

1. वर्षा के वितरण में क्षेत्रीय और ऋतुवत असमानता,
2. वर्षाकाल में भारी अन्तर और अनिश्चितता,
3. वाणिज्यिक फसलों के लिए जल की बढ़ती मांग,
4. फसलों का बदलता प्रतिरूप।

21.5 सिंचाई के साधन

भारत में सिंचाई के तीन प्रमुख साधन हैं–

(क) कुएं एवं नलकूप

(ख) नहरें तथा

(ग) तालाब।

(क) कुएं एवं नलकूप - भारत में कुओं द्वारा सिंचाई प्राचीन काल से होती चली आ रही है। डीजल तथा बिजली के पंपिंग सेटों के उपयोग से कुओं और नल कूपों द्वारा सिंचित क्षेत्र में बहुत वृद्धि हुई है। 1950–51 में कुओं और नलकूपों द्वारा सिंचित क्षेत्र केवल 59 लाख हेक्टेयर था, जो 1997–98 में बढ़कर 3 करोड़ हेक्टेयर से भी अधिक हो गया है। इस अवधि में कुल सिंचित क्षेत्र 30 प्रतिशत से बढ़कर 57 प्रतिशत हो गया है।

उत्तरी भारत के जलोढ़ मैदानों में भूमिगत जल के विशाल भंडार हैं। यहाँ कुओं और नलकूपों को खोदना और बनाना आसान है। लागत–मूल्य भी कम आता है। अतः इन मैदानों में कुओं तथा नलकूपों द्वारा सिंचाई लोकप्रिय है। दूसरी ओर गुजरात, गोवा, राजस्थान तथा महाराष्ट्र ऐसे राज्य है, जिनमें 60 प्रतिशत से अधिक सिंचाई कुओं और नलकूपों द्वारा होती है।

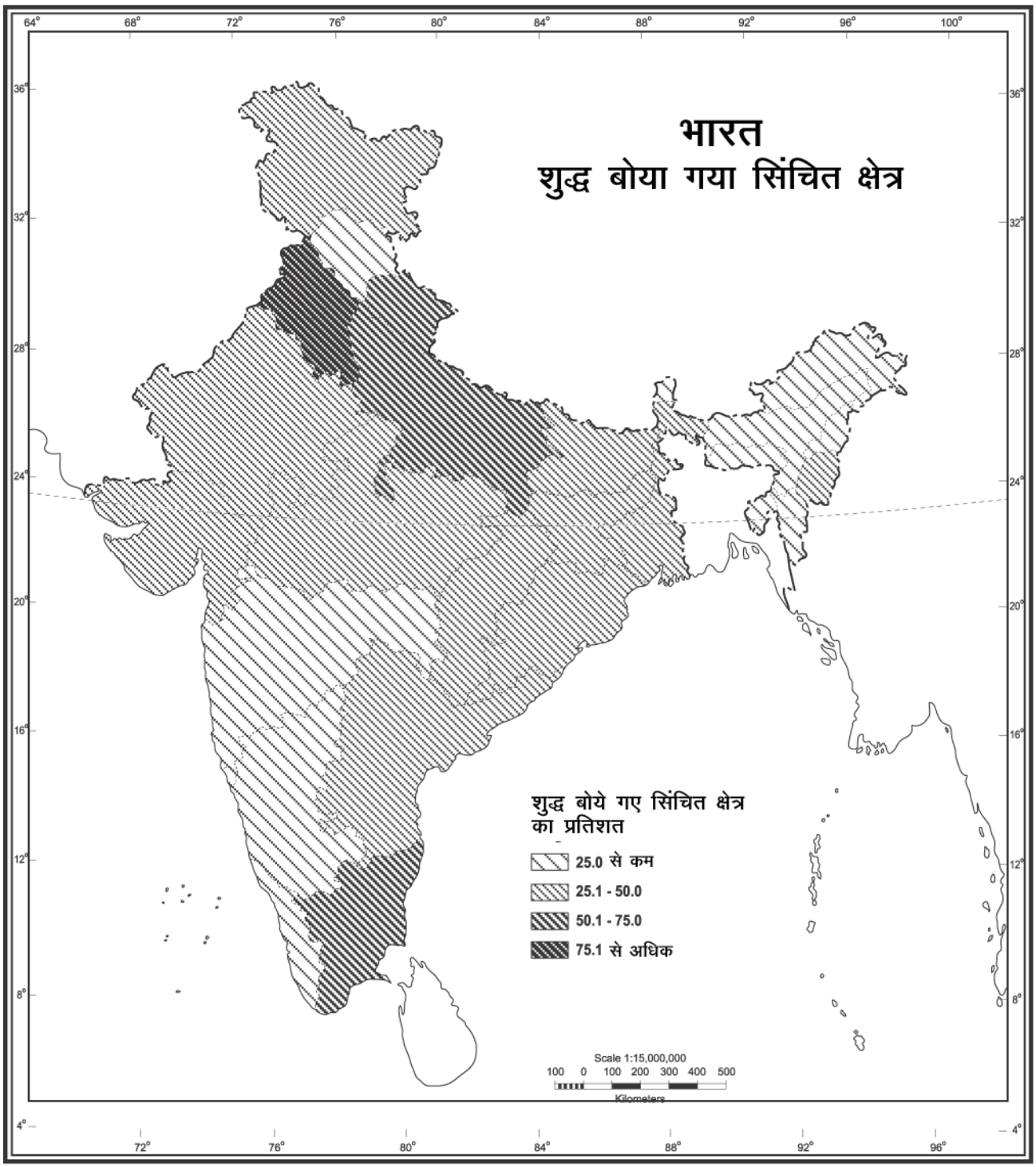

Based upon Survey of India Outline Map printed in 1990
The territorial waters of India extened into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the aporopriate base line.
The boundary of Meghalaya shown of this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971, but has yet to be verified
Responsibility for correctness of internal details shown on the map rests with the publisher.

© Government of India copyright, 1996

चित्र 21.3 शुद्ध बोया गया सिंचित क्षेत्र

टिप्पणी

(ख) **नहरें** - सन् 1960 तक नहरें भारत में सिंचाई का मुख्य साधन थीं। देश के कुल सिंचित क्षेत्र में नहरों की लगभग 40 प्रतिशत भागीदारी थी। 1996–97 में यह घटकर 31 प्रतिशत रह गई है। सन् 1996–97 में नहरों द्वारा लगभग 1.74 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र पर सिंचाई की गई। इसका आधे से अधिक भाग 52.5 प्रतिशत उत्तरी मैदानों के राज्यों में ही सीमित है। नहरी सिंचाई की दृष्टि से हरियाणा, उड़ीसा, कर्नाटक, पं. बंगाल, आंध्र प्रदेश और पंजाब का नाम उल्लेखनीय है। जम्मू–कश्मीर, मिजोरम, असम और त्रिपुरा ऐसे राज्य हैं जो सिंचाई के लिए अधिकतर नहरों पर ही निर्भर है; क्योंकि इन राज्यों में सिंचाई के अन्य साधनों का अभाव है। सबसे कम संचित क्षेत्रफल वाला राज्य–मिजोरम सिंचाई के लिए पूर्णतः नहरों पर निर्भर है।

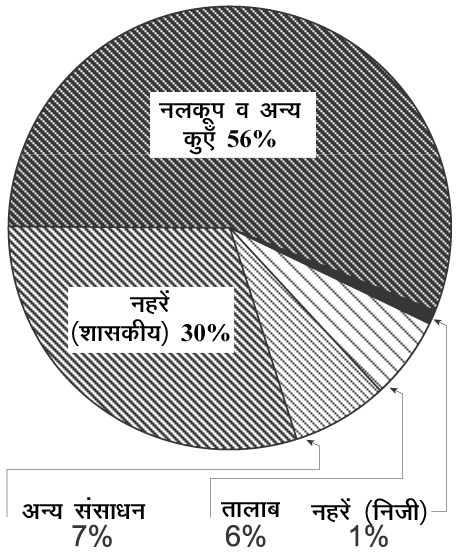

चित्र 21.4 साधनों के अनुसार सिंचित क्षेत्र

(ग) **तालाब** - सिंचाई में तालाबों की भागीदारी घटी है। देश के लगभग 6 प्रतिशत सिंचित भाग पर तालाबों द्वारा सिंचाई की जाती है। प्रायद्वीपीय पठारी भाग में तालाबों द्वारा सिंचाई लोकप्रिय है। यहाँ तालाब बनाना आसान है। तालाबों द्वारा सिंचाई में तमिलनाडु राज्य का पहला स्थान है। यहाँ लगभग 22 प्रतिशत क्षेत्र तालाबों द्वारा सिंचित है। उड़ीसा, महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल और पश्चिम बंगाल में तालाबों द्वारा सिंचाई की जाती है।

पाठगत प्रश्न 21.3

1. भारत में प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष जल की औसतन उपलब्धता कितनी है?

_____

टिप्पणी

2. जल की कितनी उपलब्धता पर जल संकट पैदा हो जाता है?

_____

3. भारत में सिंचाई का सर्वप्रमुख साधन कौन सा है? इससे कितने प्रतिशत भूभाग पर सिंचाई होती है?

_____

4. देश के किस भाग में तालाबों द्वारा सिंचाई का चलन अधिक है?

_____

21.6 नदी घाटी परियोजनाएँ

स्वतंत्रता के बाद से ही देश को आर्थिक रूप से आत्म निर्भर बनाने तथा लोगों का जीवन स्तर सुधारने के लिए योजनाबद्ध आर्थिक गतिविधियाँ प्रारम्भ की गई। इनमें से नदी घाटी परियोजाओं के विकास पर विशेष बल दिया गया। इन परियोजनाओं द्वारा नदी घाटियों से जुड़ी विभिन्न समस्याओं को हल करना उचित समझा गया। इनमें बाढ़ नियंत्रण, मृदा अपरदन पर रोक, सिंचाई और पीने के लिए पानी, उद्योगों के लिए जल उपलब्ध करना, विद्युत उत्पादन, परिवहन, मनोरंजन, वन्यजीव संरक्षण और मत्स्यन का विकास इन परियोजनाएं के प्रमुख उद्देश्य रहे हैं।

सारणी 21.3 भारत की प्रमुख नदी घाटी परियोजनाएं

परियोजना का नाम	नदी	निर्मित बाँध/जलाशय	लाभान्वित राज्य
1. दामोदर घाटी	दामोदर	1. तिलैया 2. कोनार 3. मैथान 4. पंचेतहिल	1. झारखंड 2. प. बंगाल
2. भाखड़ा नांगल	सतलुज	1. भाखड़ा 2. नांगल 3. पोंग जलाशय गोविंद सागर	1. पंजाब 2. हिमाचल 3. हरियाणा 4. दिल्ली
3. हीरा कुंड	महानदी	1. हीरा कुंड 2. टिक्करपाड़ा 3. नराज	1. मध्य प्रदेश 2. उड़ीसा 3. छत्तीसगढ़
4. तुंगभद्रा	तुंगभद्रा	बाँधों के साथ नहरें तुंगभद्रा बाँध	1. कर्नाटक 2. आंध्रप्रदेश
5. नागार्जुन सागर	कृष्णा	नागार्जुन सागर बाँध	आन्ध्र प्रदेश
6. नर्मदा घाटी	नर्मदा	प्रस्तावित 30 बाँध, तैयार बाँध 1. सरदार सरोवर 2. नर्मदा सागर 3. तवा 4. बर्गी	1. मध्य प्रदेश 2. महाराष्ट्र 3. गुजरात 4. राजस्थान

टिप्पणी

7. कोसी	कोसी	तीन इकाई 1. कोसी बैराज 2. कोसी शक्ति गृह 3. हनुमान नगर	1. बिहार 2. झारखंड तथा नेपाल
8. चम्बल घाटी	चम्बल	1. गांधी सागर 2. राणा प्रताप सागर 3. जवाहर सागर 4. कोटा बैराज	1. राजस्थान 2. मध्य प्रदेश
9. इन्दिरा गांधी नहर	व्यास–सतलुज	रावी, व्यास और सतलुज का जल बाँध–पोंग	राजस्थान

21.7 वर्षा जल संग्रहण

वर्षा जल संग्रहण का सामान्य अर्थ वर्षा के जल को एकत्रित करने से है। विशेष अर्थों में यह भूमिगत जल के पुनर्भरण बढ़ाने की तकनीक है। इस तकनीक में जल को बिना प्रदूषित किए स्थानीय रूप से वर्षा जल को एकत्रित करके जल को भूमिगत किया जाता है। इससे स्थानीय घरेलू मांग को, अभाव वाले दिनों में पूरा किया जा सकता है।

अब प्रश्न उठता है कि आखिर हमारे लिए जल संग्रहण क्यों आवश्यक है? इसके लिए मुख्यतः तीन कारक उत्तरदाई हैं:

1. पृष्ठीय जल का अभाव
2. भूमिगत जल पर निर्भरता का बढ़ना और
3. तेजी से नगरीकरण का होना।

(क) **नगरीय परिदृश्यः** किसी क्षेत्र में प्राप्त वर्षा की कुल मात्रा को **'वर्षा जल निधि'** कहते हैं। वर्षा जल निधि के प्रभावी ढंग से किए गए संग्रहण को 'संभाव्य जल संग्रहण' कहते हैं। जरा सोचिए! आपके मकान की छत का क्षेत्रफल 100 वर्गमीटर है और क्षेत्र की औसत वार्षिक वर्ष 60 सें.मी. है। यह मान लिया जाए कि छत का पानी न तो बहा है, न रिसा है और न ही उड़ा है तो ऐसी स्थिति में छत पर 60 सें.मी. पानी खड़ा मिलेगा।

जल का आयतन = छत के क्षेत्रफल x वार्षिक वर्षा की मात्रा

= 100x60 सें.मी. = 100 x .6 = 60 घन मीटर

अर्थात् एक परिवार एक वर्ष में 60000 लीटर जल का संचय कर सकता है। इससे परिवार की जल सम्बन्धी सभी आवश्यकताऐं पूरी की जा सकती हैं। औसतन एक व्यक्ति को प्रतिदिन पीने के लिए 10 लीटर जल की आवश्यकता होती है। यदि आपका परिवार 6 सदस्यों का है तो वर्ष में पीने के लिए

टिप्पणी

6x10x365=21900 लीटर पानी चाहिए। शेष 60000–21900=38100 लीटर जल शुष्क मौसम में प्रयोग किया जा सकता है।

(ख) **ग्रामीण परिदृश्य** – भारत में जल संग्रहण की परम्परा अति प्राचीन है; परन्तु जल संग्रहण की आज जैसी सार्थकता पहले कभी नहीं देखी गई और न अनुभव की गई। जल के अभाव वाले क्षेत्रों में आज भी लोग पुराने तरीकों को अपना कर अपना काम चलाने का प्रयास करते हैं। आज भी इसमें कुओं, तालाबों, जोहड़ों को गहरा करना, समय–समय पर उनकी सफाई करना शामिल है। वर्षा की कमी वाले क्षेत्रों में बावड़ी जल संग्रहण की महत्वपूर्ण परंपरागत विधि है। अब तो जल संग्रहण की नई तकनीकों को अपना कर हम अधिक सुरक्षित स्थिति में हो सकते हैं तनिक सोचिए! भारत के सभी 587000 गाँव अपने 2000 लाख हेक्टेयर क्षेत्र के वर्षा जल के संग्रह में जुट जाएं तो अपार जल राशि उपलब्ध हो सकेगी। औसतन एक गाँव 37500 लाख घन मीटर वर्षा जलनिधि की परिधि में आता है। इस गणना से पता चलता है कि वर्षा जल संग्रहण की संमाव्यता विशाल है।

21.8 वर्षा जल संग्रहण की विधियाँ

वर्षा जल के संग्रहण के लिए विभिन्न विधियों को आवश्यकता, सुविधा तथा परिस्थिति के अनुसार अपनाया जा सकता है। निम्नलिखित विधियाँ विशेष उल्लेखनीय है:

1. **गड्ढे या गर्तिका बनाना :** छिछले जलाभृत क्षेत्रों में जल के पुनर्भरण के लिए छोटे–छोटे गड्ढे बनाकर जल का संग्रहण किया जा सकता है। इन गड्ढों को 1–2 मीटर चौड़ा तथा 2–3 मीटर गहरा बनाया जा सकता है। इनकी आकृति किसी भी प्रकार की हो सकती है। इन गड्ढों को कंकड़, बजरी, बालू आदि से भर दिया जाता है। इससे वर्षा जल का रिसाव सहज होता रहता है।

2. **खाइयाँ बनाना** – निचले भागों में जहाँ सरंध्र शैले पाई जाती हैं, उन भागों में 0.5 से 1 मीटर चौड़ी, 1 से 1.5 मीटर गहरी तथा 10 से 15 मीटर लम्बी खाई बनाकर उन्हें बालू बजरी आदि से भर दिया जाता है। खाइयों को सामान्यतः भूमि के ढाल के समानांतर बनाना चाहिए।

3. **कुओं का उपयोग** – पहले से सूखे, बंद पड़े, काम में न आने वाले कुओं का वर्षा जल संग्रहण के लिए उपयोग किया जा सकता है।

4. **हैंडपम्प** – भूमिगत जलाभाव क्षेत्रों में वर्षा के इकट्ठे किए गए जल को चालू हैण्ड पम्पों के द्वारा फिल्टर की मदद से भूमिगत किया जा सकता है।

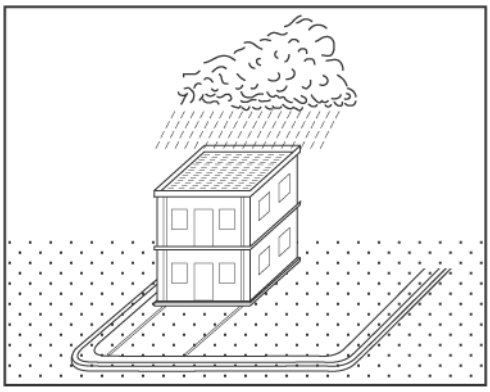

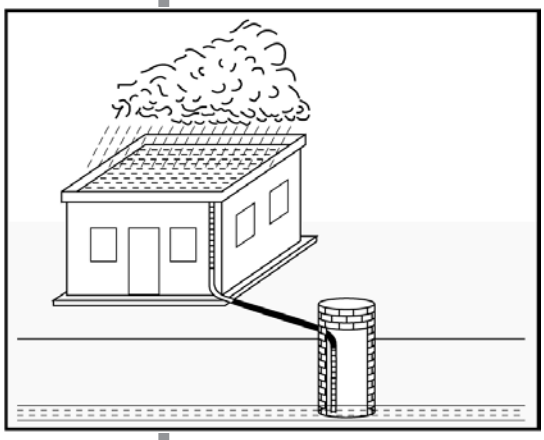

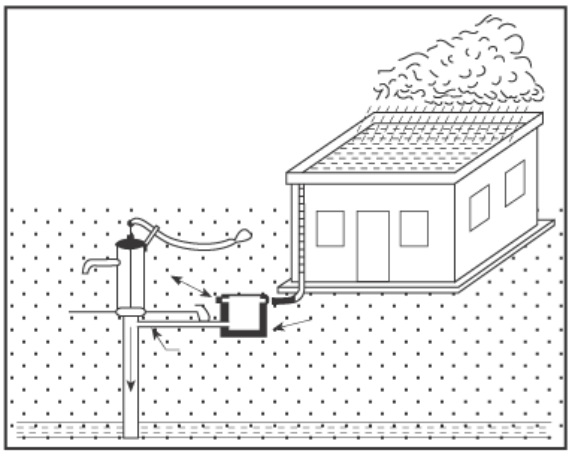

चित्र 21.7 जल संग्रहण की विधियाँ

पाठगत प्रश्न 21.4

1. वर्षा जल निधि किसे कहते हैं?

   _____

2. वर्षा जल संग्रहण की किन्हीं दो विधियों के नाम बताइये।

   (क)_____(ख)_____

3. नदी घाटी परियोजनाओं के मुख्य उद्देश्य क्या है?

   _____

21.9 राष्ट्रीय जल नीति

जल राष्ट्रीय अमूल्य निधि है। सरकार द्वारा जल संसाधनों की योजना, विकास तथा प्रबंधन के लिए नीति बनाना आवश्यक है, जिससे पृष्ठीय जल और भूमिगत जल का न

केवल सदुपयोग किया जा सके, अपितु भविष्य के लिए भी जल सुरक्षित रहे। वर्षा की प्रकृति ने भी इस ओर सोचने के लिए विवश किया है। इसी संदर्भ में सितम्बर, 1987 में 'राष्ट्रीय जल नीति' को स्वीकार किया गया। कालान्तर में कई मुद्दों व समस्याओं के उभरने के कारण वर्ष 2002 में इसे संशोधित कर 'राष्ट्रीय जलनीति 2002' प्रस्तुत की गई। जल पारितंत्र का एक महत्वपूर्ण और प्रमुख घटक है। सभी प्रकार के जीवन के लिए इसे आवश्यक पर्यावरणीय रूप में मानकर व्यवहार करना चाहिए। इसका योजना बद्ध तरीके से विकास, सरंक्षण तथा प्रबंधन करना चाहिए। इसके सामाजिक और आर्थिक पहलू पर भी विचार आवश्यक है। देश के विस्तृत क्षेत्र हर वर्ष सूखा और बाढ़ से पीड़ित रहते हैं। इससे न केवल धन–जन की हानि होती है; अपितु विकास का पहिया भी ठहर जाता है।

बाढ़ और सूखे की समस्याएँ किसी राज्य विशेष की सीमा से नहीं जुड़ी हैं। यह राष्ट्रीय स्तर पर ही विचारणीय विषय है। जल संसाधनों की योजना, उनके क्रियान्वयन के साथ अनेक समस्याएं जुड़ जाती हैं। इनमें पर्यावरणीय सतत् पोषणीयता, सही ढंग से लोगों और पशुधन के विस्थापन एवं पुनर्वास, स्वास्थ्य, बाँध सुरक्षा आदि विषय अपने में समय साध्य एवं व्यय साध्य हैं। कई क्षेत्रों में जल भराव तथा मृदा के क्षारीयपन की समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। देश के कई भूभागों में तो भूमिगत जल के आवश्यकता से अधिक शोषण ने भी चुनौतियां दे डाली हैं। इन सभी समस्याओं पर सामान्य नीति के तहत ही विचार आवश्यक है।

खाद्यान्न का उत्पादन 1950 के दशक में 500 लाख टन था जो 1999–2000 में बढ़कर 2080 लाख टन हुआ। सन् 2025 में खाद्यान्न की मात्रा 3500 लाख टन करनी होगी। घरेलू उपयोग, उद्योगों, ऊर्जा उत्पादन आदि क्षेत्रों में जल की मांग बढ़नी है। जल संसाधन पहले से ही कम हैं, भविष्य में इनकी और कमी होगी। जल की गुणवत्ता एक और महत्वपूर्ण पहलू है। पृष्ठीय और भूमिगत जल में प्रदूषण बढ़ रहा है। जल प्रदूषण के मानव जन्य मुख्य स्रोत–घरेलू अपशिष्ट जल, औद्योगिक अपशिष्ट जल और निस्राव तथा कृषि कार्यों में प्रयुक्त रसायन है। कभी–कभी प्राकृतिक कारण भी जलप्रदूषण को बढ़ाने से नहीं चूकते। जल प्रदूषण के प्राकृतिक स्रोत–अपरदन, भूस्खलन, पेड़–पौधों और जीव–जन्तुओं की सड़न और विघटन हैं। भारत के तीन चौथाई पृष्ठीय जल संसाधन प्रदूषित हैं। प्रदूषण से मुक्ति के लिए वैज्ञानिक नई तकनीक और प्रौद्योगिकी तथा प्रशिक्षण द्वारा जल संसाधन विकास और प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

21.10 जल संभर विकास

जल संभर का अभिप्राय एक ऐसे क्षेत्र से है जिसका जल एक बिन्दु की ओर प्रवाहित होता है। इस जल का योजनाबद्ध तरीके से उपयोग अच्छे परिणाम देने वाला बन सकता है। संबंधित क्षेत्र एक इकाई के रूप में एक गांव हो सकता है अथवा गाँवों का

टिप्पणी

समूह भी। इस क्षेत्र में कृषि, बंजर, वन आदि सभी प्रकार की भूमियाँ शामिल हो सकती हैं। जल संभर कार्यक्रमों से भूमि का अधिकतम उपयोग संभव है। इस प्रकार किसी क्षेत्र विशेष में जल के हर संभव उपयोग को ही जल संभर विकास कहते हैं।

(क) **जल संभर विकास से लाभ :** जल संभर विकास के द्वारा निम्नलिखित लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं–

1. पीने और सिंचाई के लिए जल की आपूर्ति,
2. जैव विविधता में वृद्धि,
3. जलाक्रान्त तथा लवणता का ह्रास,
4. कृषि उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि,
5. वनों के कटाव में कमी,
6. जीवन स्तर उठना,
7. रोजगार में वृद्धि,
8. स्थानीय लोगों की सहभागिता से आपसी मेल–जोल बढ़ना।

(ख) **जल संभर विकास से अपेक्षित परिणामः** जल संभर विकास परियोजना से अभी तक इच्छित परिणाम नहीं मिल सके हैं। जबकि भारत सरकार 2000 तक विभिन्न मंत्रालयों के माध्यमों से जल संभर विकास कार्यक्रमों में 2 अरब डालर खर्च कर चुकी है। इसके लिए निम्नकारक उत्तरदाई हैं:

1. वैज्ञानिक सोच का अभाव,
2. तकनीकी कमियाँ,
3. स्थानीय लोगों के सहयोग की कमी,
4. विभिन्न विभागों के बीच आपसी सहयोग का अभाव तथा
5. पृथक मंत्रालय का न होना।

(ग) **नदी संयोजनः** देश के विस्तृत क्षेत्र सूखा तथा बाढ़ से पीड़ित रहते हैं। सूखा और बाढ़ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इस समस्या के हल के लिए 1982 में 'राष्ट्रीय जल विकास अभिकरण' का गठन किया गया। इसके गठन का मुख्य उद्देश्य 'राष्ट्रीय जल के जाल' की पहचान करना मात्र था। अंततः राष्ट्रीय जल विकास अभिकरण ने 30 नदी जुड़ावों की पहचान की है। इस कार्यक्रम में बड़ी नदियों को प्रमुखता से शामिल किया गया है। अभिकरण ने 6 जुड़ाव स्थलों पर काम करने की संस्तुति की है तथा तीन चरणों में उन्हें पूरा करने की बात कही है।

प्रथम चरण में प्रमुख प्रायद्वीपीय नदियों–महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी को शामिल किया गया है।

द्वितीय चरण के अंतर्गत प्रायद्वीपीय भारत की छोटी–छोटी नदी द्रोणियों को एक दूसरे से जोड़ने की बात रखी गई है, जिसमें केन–बेतवा तथा पार–तापी नदियाँ शामिल हैं।

तृतीय चरण में गंगा और ब्रह्मपुत्र की सहायक नदियों को एक दूसरे से जोड़ने का प्रावधान रखा है।

(घ) **नदी संयोजन से लाभः** नदी द्रोणियों को आपस में जोड़ने से बहुमुखी विकास संभव है। इस कार्यक्रम की सफलता से पृष्ठीय जल द्वारा 250 लाख हेक्टेयर अतिरिक्त कृषि क्षेत्र पर सिंचाई संभव हो सकेगी। 100 लाख हेक्टेयर अतिरिक्त कृषि क्षेत्र को सिंचाई के लिए भूमिगत जल उपलब्ध हो सकेगा। अंततः सिंचित क्षेत्र 1130 लाख हेक्टेयर से बढ़कर 1500 लाख हेक्टेयर हो जाएगा। 340 लाख कि.वा. अतिरिक्त जल विद्युत का निर्माण हो सकेगा। इन लाभों के अतिरिक्त कई और भी लाभ मिल सकेंगे जैसे बाढ़ नियंत्रण, जल परिवहन, जलापूर्ति, मत्स्यन, क्षारीयपन का दूर होना तथा जल प्रदूषण नियंत्रण शामिल हैं। परन्तु इन सभी लाभों को सहज प्राप्त नहीं किया जा सकता। ये परियोजनाएं बहुत ही व्यय साध्य एवं समय साध्य हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि इन परियोजनाओं को पूरा करने के लिए 560 हजार करोड़ रुपये की विशाल धन राशि की आवश्यकता होगी।

21.11 जल संरक्षण के उपाय

जल नहीं तो जीवन नहीं। अतः जल का संरक्षण अति आवश्यक है। जल की कमी से आने वाली पीढ़ी संकट में पड़ सकती है। जल के संरक्षण में व्यक्ति, समाज और सरकार सभी की सहभागिता अनिवार्य है। जल के संरक्षण के लिए निम्न उपाय अपनाए जा सकते हैं।

1. नदियों का जल व्यर्थ में बहकर सागरों में न जाए। इसके लिए नदियों पर बाँधों और जलाशयों का निर्माण करना चाहिए।
2. नदियों के जल को नगरों की गंदगी से हर कीमत पर बचाना चाहिए।
3. बाढ़ों की रोकथाम के लिए गंभीरता से हर संभव प्रयास करने चाहिए।
4. जल का सदुपयोग करना चाहिए।

टिप्पणी

5. जल संरक्षण के प्रति जन जागरण पैदा करना चाहिए।
6. जल संरक्षण और उसके कुशल प्रबंधन से सम्बन्धित सभी क्रिया–कलापों में लोगों को शामिल कर; उनसे सक्रिय सहयोग लेना चाहिए।
7. बागवानी, वाहनों की धुलाई, घर–आँगन और शौचालयों की सफाई में पेय जल का उपयोग नहीं करना चाहिए।
8. जलाशयों को प्रदूषण से बचाना चाहिए।
9. पानी की टूटी पाइप लाइनों की अविलम्ब मरम्मत करनी चाहिए।
10. जल की 'हर बूंद' कीमती है। यह भाव जनमानस तक पहुँचाना चाहिए।
11. वर्षा पोषित क्षेत्रों में ऐसी फसलों के उगाने पर रोक होनी चाहिए। जिन्हें अधिक पानी की आवश्यकता होती है।
12. वृक्षा रोपण पर बल देना चाहिए।

पाठगत प्रश्न 21.5

1. जल संसाधनों की योजना और उनके क्रियान्वयन से जुड़ी किन्हीं चार प्रमुख समस्याओं का उल्लेख कीजिए।

   (क)_____ (ख)_____ (ग)_____(घ)_____

2. जल प्रदूषण के प्रमुख तीन कारक कौन से हैं?

   (क)_____ (ख)_____ (ग)_____

3. भारत सरकार वर्ष 2000 तक जल संभर विकास के लिए कितना खर्च कर चुकी है?

   _____

4. राष्ट्रीय जल विकास अभिकरण का गठन कब और क्यों किया गया?

   _____

5. राष्ट्रीय जल विकास अभिकरण ने कितनी नदियों की जुड़ाव के लिए पहचान की?

   _____

21.12 एक विशेष अध्ययनः जल संरक्षण की दिशा में 'तरुण भारत संघ' का प्रयास

'तरूण भारत संघ' की स्थापना 1985 में श्री राजेन्द्र सिंह के मार्गदर्शन में की गई। इसकी स्थापना राजस्थान के अलवर जिले की थानागाजी तहसील के हमीरपुर गाँव में हुई। थानागाजी क्षेत्र वासियों ने 'तरूण भारत संघ' के निर्देशन से वह करिश्मा कर दिखाया जो पश्चिमी राजस्थान में सरस्वती नदी की खोज में केंद्रीय जल अधिकरण तथा भामा परमाणु अनुसंधान केन्द्र मिलकर भी नहीं कर पाए। 'तरूण भारत संघ' एक गैर सरकारी संगठन (एन.जी.ओ.) है। इसके 15 साल के भागीरथी प्रयासों से अर्वारी नदी का पुनर्जन्म हुआ। पहले यह नदी सूखी और उजाड़ थी। अर्वारी नदी की दो शाखाएं हैं। इनकी कुल लम्बाई 45 किलोमीटर है। इसका जल संभर क्षेत्र 503 वर्ग कि.मी. में फैला है। इसके अंतर्गत जयपुर, दौसा तथा अलवर जिलों के कुछ भाग शामिल हैं।

पहले यहाँ असिंचित क्षेत्र में खेती होती थी। सिंचाई के साधन नहीं थे। कुल मिलाकर 10 प्रतिशत भूभाग पर खेती होती थी। खेती पूर्णतः वर्षा पर निर्भर थी। खेती एक फसली थी। पानी की कमी की पूर्ति के लिए 'तरूण भारत संघ' ने गांववालों के सहयोग से तालाबों और जोहड़ों की सफाई कर उन्हें गहरा किया तथा पहाड़ी ढालू भागों में जोहड़ बनाने का बीड़ा उठाया। इस काम के लिए 1985–86 में एक गांव का चयन किया। परिणाम बहुत ही सुखद रहे। यह देखकर अन्य गाँव वालों में अपने यहाँ जोहड़ बनवाने तथा बनाने की होड़ लग गई। सन् 1996 में 'जल बचाओ' और 'जोहड़ आंदोलन' चलाया। अब तक इस क्षेत्र में 3500 जोहड़ बनाए जा चुके हैं। गाँव वालों ने स्वयं ही 70 से अधिक जोहड़ बना डाले हैं। जोहड़ों के बन जाने से भूमिगत जल का स्तर ऊँचा उठा है। कुओं, तालाबों, जोहड़ों तथा नदियों में वर्षभर जल बना रहता है। खेती ने अपना रूप बदल लिया है। हर जगह हरितमा का साम्राज्य दिखाई पड़ता है। पशुधन चुस्त व स्वस्थ्य हो गया है। गाए और भैंसें अधिक दूध देने लगी हैं। लोगों का आर्थिक स्तर ऊँचा उठा है। गरीबी रेखा से नीचे गुजर-बसर करने वाले परिवार भी आज 40–50 हजार रूपये प्रति वर्ष कमा लेते हैं। गावों से नगरों की ओर पलायन रुक गया है। यहाँ तक कि पलायन किए गए परिवार अब अपने घरों की ओर वापस आने लगे हैं।

अर्वारी नदी द्रोणी में बसे 70 गाँवों के लोगों ने मिलकर 150 सदस्यों वाली एक अनूठी संसद का गठन किया। संसद का नाम अर्वारी नदी के नाम पर अर्वारी संसद रखा गया। 26 जनवरी 1999 को हमीरपुर में नदी किनारे 'अर्वारी संसद' के सदस्यों ने शपथ ग्रहण की। इसी दिन से 'अर्वारी संसद' ने अपना संविधान लागू किया। यह एक ऐसी संसद है जो केवल नियम और कानून ही नहीं बनाती, अपितु स्वयं उनका पालन करती है और क्षेत्र के सभी निवासी उन नियमों और कानूनों का दृढ़ता से पालन करते और पालन कराते हैं।

टिप्पणी

'अर्वारी संसद' ने लोगों की आवश्यकता, पर्यावरणीय संतुलन तथा भूमि को ध्यान में रखते हुए कुछ नियम और कानून बनाए हैं। उनमें से निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय हैं:

1. अधिक जल चाहत वाली फसलों–गन्ना, चावल और मिर्च उगाने पर प्रतिबंध।
2. होली के बाद और वर्षांत से पहले कोई भी व्यक्ति नदी के पानी का उपयोग खेती के लिए नहीं करेगा।
3. जल संभर क्षेत्र में किसी भी औद्योगिक इकाई की स्थापना नहीं होगी।
4. जौ, ज्वार–बाजरा और मक्का की फसलों को उगाने की सिफारिश की।
5. नदी के निचले भागों में सब्जियाँ उगाने की अनुमति दी गई।
6. शिकार तथा हरे पेड़ों को काटने पर रोक।
7. क्षेत्र में हाल ही में विकसित किए गए 'भेंरो देव मानस' अभ्यारण्य में कोई भी व्यक्ति कुल्हाड़ी लेकर नहीं जाएगा।
8. पूरे क्षेत्र को जैव विविधता का क्षेत्र घोषित किया है।
9. खाद्यान्नों तथा सब्जियों को क्षेत्र से बाहर भेजने पर प्रतिबंध।
10. जल संभर क्षेत्र से बाहर के लोगों को इस क्षेत्र में पशुओं के चराने पर रोक।

आज क्षेत्र वासियों के लिए अर्वारी नदी बहुत उपयोगी हो गई हैं। क्षेत्र वासी उसकी पूजा अर्चना करते हैं। मेले और उत्सव मनाते हैं। 'अर्वारी संसद' ने अर्वारी मंदिर, अर्वारी खजाना तथा अर्वारी सचिवालय स्थापित किया है। इस प्रकार के कार्यक्रम राजस्थान के अन्य क्षेत्रों में भी चलाए जा रहे हैं। इस मामले में गुजरात, मध्यप्रदेश तथा छत्तीसगढ़ राज्यों में काफी उत्साह जनक कार्यक्रम चल रहा है। ऐसे आदर्श अनुकरणीय कार्यक्रमों को सरकारों द्वारा संरक्षण और प्रोत्साहन देना चाहिए। इन कार्यक्रमों को वर्षा पोषित क्षेत्रों में चलाए जाने की विशेष आवश्यकता है।

आपने क्या सीखा

जल प्रकृति का सबसे महत्वपूर्ण और मूल्यवान संसाधन है। यह जीवन का आधार है। जल का विविध उपयोग है। इसका उपयोग पीने में, घरेलू कामों में, सिंचाई, उद्योगों, ऊर्जा आदि क्षेत्रों में होता है। भारत कृषि प्रधान तथा निरंतर वर्धन काल वाला देश है। अतः जल का सबसे अधिक उपयोग सिंचाई में होता है। कुएं–नलकूप, नहरें तथा तालाब सिंचाई के प्रमुख साधन हैं। सिंचाई में कुओं–नलकूपों का सबसे अधिक योगदान है।

भारत में जल का वितरण बहुत असमान है। वर्षा की अवधि, वर्षा की प्रकृति, भूमि का स्वभाव तथा भूमि का ढाल असमान वितरण के प्रमुख उत्तरदाई कारक है। नदी घाटी

परियोजनाओं ने जल संसाधनों के विकास, बाढ़ नियंत्रण तथा जल का सदुपयोग कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन्होंने देश के आर्थिक विकास तथा संसाधनों के संरक्षण में विशेष योगदान दिया है। जल की कमी, जल के वितरण में स्थानिक और सामयिक असमानता, विशाल और बढ़ती जनसंख्या के लिए जल की बढ़ती मांग और पर्यावरणीय बदलती परिस्थितियों के कारण जल संसाधनों का संरक्षण आवश्यक हो गया है। इस दिशा में वर्षा जल संग्रहण तथा जल संभर विकास कार्यक्रमों पर विशेष बल दिया है। इन कार्यक्रमों को ईमानदारी व मेहनत से लागू किया जाए तो भारत में जल का संकट कभी नहीं आ सकता। इसमें वर्षा जल संग्रहण कार्यक्रमों को जन सहयोग से बहुत कम बजट के द्वारा पूरा किया जा सकता है। इसके लिए जल संसाधनों के प्रति सोच बदलने की नितांत आवश्यकता है। इस क्षेत्र में कई सामाजिक संगठनों, समितियों, व्यक्तियों ने उल्लेखनीय और अनुकरणीय कार्य किए है। उनके सहयोग से उजाड़ और पिछड़े क्षेत्र आबाद और विकास के पथ पर अग्रसर हो चुके हैं।

जल संभर विकास और नदियों को आपस में जोड़ने का कार्य बहुत समय साध्य, व्यय साध्य और जटिल है। परन्तु यह कार्य राज्य सरकारों के आपसी सहयोग और केन्द्र सरकार की दृढ़ इच्छा शक्ति तथा जन–सहयोग से पूरा किया जा सकता है।

पाठान्त प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए:
   - (क) जल संसाधनों का क्या अर्थ है?
   - (ख) पृष्ठीय जल के प्रमुख स्रोतों का उल्लेख कीजिए।
   - (ग) देश के उत्तरी विशाल मैदानों में भूमिगत जल अधिक क्यों मिलता है?
   - (घ) नदी घाटी परियोजनाओं का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
   - (ङ) वर्षा जल संग्रहण का अर्थ बताइए।
   - (च) जल संभर का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
   - (छ) नदी संयोजन के तीन चरणों का उल्लेख कीजिए।
2. अन्तर स्पष्ट कीजिए
   - (क) पृष्ठीय जल और भूमिगत जल
   - (ख) वर्षा जल संग्रहण और जल संभर विकास
3. भारत में जल का वितरण असमान क्यों है? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिएं
4. ''भूमिगत जल, जल की आपूर्ति का सतत् और विश्वसनीय संसाधन है।'' इस कथन की सार्थकता सिद्ध कीजिए।

टिप्पणी

5. वर्षा जल संग्रहण की प्रमुख विधियों का वर्णन कीजिए।

6. जल संभर विकास द्वारा कौन–कौन से लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं? उल्लेख कीजिए।

7. जल संभर विकास परियोजनाओं से अभी तक इच्छित परिणाम क्यों नहीं मिल सके हैं? कारण बताइए।

8. जल का संरक्षण क्यों आवश्यक है? जल संरक्षण के विभिन्न उपायों को स्पष्ट कीजिए।

9. भारत में जल संभर विकास कार्यक्रमों की उपयोगिता तथा व्यावहारिकता का मूल्यांकन कीजिए।

10. निम्नलिखित की स्थिति मानचित्र में दिखाइए।

    (i) सतलुज (ii) महानदी (iii) कृष्णा (iv) तुंगभद्रा

    (v) राणा प्रताप सागर बाँध (vi) सरदार सरोवर बाँध

    (vii) नर्मदा सागर बाँध

11. परियोजना कार्य

    अपने गाँव/कस्बा/नगर के लिए वर्षा जल संग्रहण के लिए कोई भी उपयुक्त विधि अपनाइए। इसके क्रियान्वयन और परिणाम पर आधारित एक संक्षिप्त रिपोर्ट तैयार कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

21.1

1. वर्षण

2. गंगा – बह्मपुत्र के मैदान

3. देश का आठवाँ भाग बाढ़ से तक छटा भाग सूखे से पीड़ित रहता है।

21.2

1. जल बजट का अर्थ देश में कुल उपलब्ध जल की मात्रा तथा कुल जल राशि के उपयोग की मात्रा के बीच सन्तुलन।

2. (क) घन मीटर (ख) हेक्टेयर मीटर

3. पश्चिमी तट

4. 8 प्रतिशत

5. पृष्ठीय जल और भूमिगत जल

टिप्पणी

21.3

1. 1829 घन मीटर प्रति व्यक्ति (2001)
2. जल संकट 1000 घन मीटर से कम वार्षिक प्रति व्यक्ति ।
3. कुएं और नलकूप, 57 प्रतिशत।
4. प्रायद्वीपीय पठार।

21.4

1. किसी क्षेत्र में प्राप्त वर्षा की कुल मात्रा को 'वर्षा जल निधि' कहते है।
2. गड्ढे या गर्तिका बनाना, खाइयाँ बनाना, कुओं से उपयोग, हैण्डपम्प (कोई दो)
3. बाढ़ नियंत्रण, मृदा अपरदन पर रोक, सिंचाई और पीने के लिए पानी, उद्योगों के लिए जल, जल विद्युत उत्पादन आदि।

21.5

1. पर्यावरणीय सतत् पोषणीयता, सही ढंग से लोगों और पशुधन का विस्थापन एवं पुनर्वास, स्वास्थ्य, बाँध, सुरक्षा आदि।
2. (क) घरेलू अपशिष्ट (ख) औद्योगिक जल (ग) कृषि कार्यो में प्रयुक्त रसायन
3. 20 अरब
4. 1982, सूखे और बाढ़ की समस्या के हल हेतु।
5. 30

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. (क) अनुच्छेद 21.1 देखिए

   (ख) अनुच्छेद 21.2 देखिए

   (ग) अनुच्छेद 21.2 (ख) देखिए

   (घ) अनुच्छेद 21.6 देखिए

   (ङ) अनुच्छेद 21.7 देखिए

   (च) अनुच्छेद 21.10 देखिए

   (छ) अनुच्छेद 21.10 (ग) देखिए

2. (क) अनुच्छेद 21.2 (क) और (ख) देखिए

टिप्पणी

(ख) अनुच्छेद 21.7, 21.8 तथा 21.10 देखिए

3. अनुच्छेद 21.3 (ख) देखिए
4. अनुच्छेद 21.2 देखिए
5. अनुच्छेद 21.8 देखिए
6. अनुच्छेद 21.10 (क) देखिए
7. अनुच्छेद 21.10 (ख) देखिए
8. अनुच्छेद 21.11 देखिए
9. अनुच्छेद 21.10 देखिए
10. मानचित्र देखिए।

23

भारत के खनिज एवं ऊर्जा संसाधनों का विकास

पिछले पाठों में हमने भूमि, मृदा, जल एवम् वन जैसे संसाधनों के बारे में पढ़ा। इस पाठ में हम दो महत्वपूर्ण संसाधनों के बारे में अध्ययन करेंगे। ये संसाधन हैं—खनिज तथा ऊर्जा। पृथ्वी पर जैसे जल और थल अतिमहत्वपूर्ण खजाने हैं ठीक उतने ही महत्वपूर्ण खनिज संसाधन भी हैं। खनिज संसाधन के बिना हम अपने देश के औद्योगिक क्रियाकलापों को गति, युक्ति एवं दिशा नहीं दे सकते। इसलिए देश का आर्थिक विकास भी अवरुद्ध हो सकता है। विश्व के बहुत से देशों में खनिज सम्पदा राष्ट्रीय आय के प्रमुख स्रोत बने हुए हैं। किसी भी देश की आर्थिक, सामाजिक उन्नति उसके अपने प्राकृतिक संसाधनों के युक्तिसंगत उपयोग करने की क्षमता पर निर्भर करता है। खनिजों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि एक बार उपयोग में आने के पश्चात ये लगभग समाप्त हो जाते हैं। इसका संबंध हमारे वर्तमान एवं भविष्य के कल्याण से है। चूँकि खनिज ऐसे क्षयशील संसाधन हैं जिन्हें दोबारा नवीनीकृत नहीं किया जा सकता अतः इनके संरक्षण की आवश्यकता बहुत ज्यादा है।

रोमन साम्राज्य के पतन के अनेकों कारणों में से एक कारण वहाँ के खनिज–निक्षेप का क्षीण होना तथा मृदा अपरदन था। विकसित देशों में विगत कुछ वर्षों पूर्व जो खदानों वाले शहर या कस्बे थे वे आज वीरान, उजाड़ तथा सभ्यता से परित्यक्त इसलिए हो गए हैं क्योंकि खदानों से खनिजों का सम्पूर्ण दोहन हो चुका है तथा आकर्षण समाप्त हो चुका है। कनाडा के इलियट झील के आसपास के नगर ''आणविक–युग के प्रथम वीरान, उजाड़, परित्यक्त नगरों'' में बदल गए। इसका कारण इन नगरों से यूरेनियम खनिज जिसकी खुदाई एवं संग्रहण करने के लिए 25,000 आबादी वाली मानव–बस्ती बसाई गई थी (1950-58), जैसे ही अमेरिका को वैकल्पिक आण्विक खनिज (यूरेनियम) के भण्डार मिले, बस्ती की जनसंख्या 5000 हो गई। इस प्रकार की मानवीय क्रियाकलापों से एक आर्थिक–सामाजिक सलाह मिलती है कि खनिज एवं ऊर्जा पर आधारित चमक–दमक की सम्पन्नता एवं सभ्यता को स्थाई नहीं मानना चाहिये।

इस पाठ के अध्ययन से हम पृथ्वी पर पाए जाने वाले विशिष्ट खनिज पदार्थ, खनिज–तेल

टिप्पणी

एवं ऊर्जा के अन्य संसाधनों के भौगोलिक वितरण, इन संसाधनों के साथ संयुक्त समस्याएँ एवं इनके संरक्षण की आवश्यकताओं से अवगत होंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- देश के खनिज संसाधनों की स्थिति बता सकेंगे;
- ऽ आर्थिक विकास में खनिज तथा ऊर्जा संसाधनों के महत्व को समझा सकेंगे;
- (i) धात्विक एवं अधात्विक खनिज,

  (ii) परम्परागत और गैर–परम्परागत ऊर्जा के संसाधनों के बीच अंतर कर सकेगे;
- भारत के मानचित्र में उन भिन्न–भिन्न क्षेत्रों को दर्शा सकेंगे जहाँ खनिज एवं ऊर्जा संसाधन उपलब्ध हैं;
- खनन/शोधन एवं जीवाश्म ईंधन के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव को जान सकेंगे;
- खनिज एवं ऊर्जा संसाधनों के संरक्षण हेतु सुझाव दे सकेंगे।

23.1 भारत के खनिज संसाधन

भारत प्रचुर खनिज–निधि से सम्पन्न है। हमारे देश में 100 से अधिक खनिजों के प्रकार मिलते हैं। इनमें से 30 खनिज पदार्थ ऐसे हैं जिनका आर्थिक महत्व बहुत अधिक है। उदाहरणस्वरूप कोयला, लोहा, मेंगनीज़, बाक्साइट, अभ्रक इत्यादि। दूसरे खनिज जैसे फेल्सपार, क्लोराइड, चूनापत्थर, डोलोमाइट, जिप्सम इत्यादि के मामले में भारत में इनकी स्थिति संतोषप्रद है। परन्तु पेट्रोलियम तथा अन्य अलौह धातु के अयस्क जैसे ताँबा, जस्ता, टिन, ग्रेफाइट इत्यादि में भारत में इनकी स्थिति संतोषप्रद नहीं है। अलौह खनिज वे हैं जिनमें लौह तत्व नहीं होता है। हमारे देश में इन खनिजों की आन्तरिक माँगों की आपूर्ति बाहर के देशों से आयात करके की जाती है।

जैसा कि आपने इतिहास में पढ़ा होगा कि अंग्रेजों की हुकूमत के दौरान भारत के अधिकांश खनिज निर्यात कर दिये जाते थे। किन्तु स्वतंत्रता के बाद भी भारत से खनिज पदार्थों का निर्यात हो रहा है, परन्तु खनिजों का दोहन देश की औद्योगिक इकाइयों द्वारा खपत की माँग के अनुरूप भी बढ़ा है। परिणामस्वरूप भारत में खनिजों के कुल दोहन का मूल्य 2004-2005 में लगभग 744 अरब रुपयों तक पहुँच गया जो वर्ष 1950-51 में मात्र 89.20 करोड़ रुपये ही था। इसका अर्थ यह हुआ कि पिछले 50 वर्षों में 834 गुना वृद्धि हुई। खनिज पदार्थों को अलग–अलग करके देखें कि उपरोक्त मूल्यों में किसका कितना योगदान है तो स्पष्ट हो जाता है कि ईंधन के रूप में प्रयुक्त खनिज (जैसे कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस और लिग्नाइट) का योगदान 77% था, धात्विक खनिजों का 10% तथा अधात्विक खनिजों का योगदान 8% था। धात्विक खनिज के अयस्क लौह अयस्क, क्रोमाइट, मेग्नीज, जिंक, बाक्साइट, ताम्र–अयस्क, स्वर्ण अयस्क हैं जबकि

अधात्विक अयस्कों में चूनापत्थर, फास्फोराइट, डोलोमाइट, केवोलीन मिट्टी, मेग्नेसाइट, बेराइट और जिप्सम इत्यादि हैं।

यदि खनिजों के सकल मूल्य में इनका अलग–अलग योगदान देखें तो कोयला (36.65%), पेट्रोलियम (25.48%), प्राकृतिक गैस (12.02%), लौह अयस्क (7.2%), लिग्नाइट (2.15%), चूनापत्थर (2.15%) तथा क्रोमाइट (1.1%) आदि कुछ ऐसे खनिज हैं, जिनका अंश 1 प्रतिशत से अधिक है।

अभी तक की गई विस्तृत चर्चा के अन्तर्गत खनिज पदार्थों की स्थानिक उपलब्धता उनके आर्थिक महत्व के बारे में बहुत से जरूरी तथ्यों का खुलासा किया गया था। अगले अनुच्छेद में इन खनिजों के भौगोलिक वितरण संबंधी जानकारी प्राप्त करेंगे।

23.2 खनिज पदार्थों एवं ऊर्जा संसाधनों का स्थानिक वितरण

भारत में खनिज एवं ऊर्जा संसाधनों का वितरण बहुत ही असमान और अनियमित है। खनिज संसाधनों की उपस्थिति कुछ विशिष्ट भू–वैज्ञानिक संरचनाओं से संबद्ध होती है। जैसे कोयला के निक्षेप गोन्डवाना शैल समूह के बाराकर संस्तर में मिलते हैं। इसी प्रकार से धारवाड़ एवं कुडप्पा तंत्र में भारत के प्रमुख धात्विक खनिज जैसे ताम्बा, सीसा, जस्ता इत्यादि और प्रमुख अधात्विक खनिज जैसे चूनापत्थर, डोलोमाइट, जिप्सम, केल्शियम, सल्फेट, इत्यादि कुडप्पा एवं ऊपरी विन्धयन तंत्र में मिलते हैं।

यदि हम इन खनिज पदार्थों के देश के विभिन्न भागों में वितरण को ध्यान से देखें तो स्पष्ट हो जाएगा कि भारतीय प्रायद्वीप के उस भाग में जो कि मंगलोर से कानपुर को जोड़ने वाली रेखा के पश्चिम में है बहुत ही कम मात्रा में खनिज पाए जाते हैं। इस रेखा के पूर्वी भागों के अन्तर्गत कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, बिहार एवं पश्चिम बंगाल के क्षेत्र आते हैं। इन राज्यों में धात्विक खनिज अयस्क जैसे लोहा, बाक्साइट, मेंगनीज इत्यादि के प्रचुर भण्डार हैं। अधात्विक खनिज जैसे कोयला, चूने के पत्थर, डोलोमाइट, जिप्सम इत्यादि के भी बहुत विशाल भण्डार हैं। इनमें से अधिकांश क्षेत्र जो खनिज सम्पदा से सम्पन्न हैं, वे प्रायद्वीपीय पठारी क्षेत्रों में संकेन्द्रित हैं। इस पठारी भाग में खनिज सम्पदा की तीन प्रमुख पट्टियाँ स्पष्ट रूप से चिन्हित की जा सकती हैं:

(क) उत्तर-पूर्वी पठार —इनके अन्तर्गत छोटानागपुर के पठार, उड़ीसा के पठार और आन्ध्रप्रदेश के पठारी भाग आते हैं। इस पट्टी के अन्तर्गत खनिज–सम्पदा विशेषकर धातु कर्म उद्योगों में उपयोग आनेवाले खनिजों के विशाल भण्डार हैं। इनमें से प्रमुख खनिज जिनके बड़े एवं विपुल भण्डार पाए जाते हैं, वे हैं–लौह अयस्क, मेंग्नीज, अभ्रक, बॉक्साइट, चूनापत्थर, डोलोमाइट इत्यादि। इस क्षेत्र में कोयले के विशाल भण्डार दामोदर नदी, महानदी, सोन नदी की घाटियों में उपलब्ध हैं। इस क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा में तांबा, यूरेनियम, थोरियम, फास्फेट जैसे खनिजों के भण्डार भी मिलते हैं।

(ख) दक्षिण पश्चिम पठार—इस क्षेत्र का विस्तार कर्नाटक पठार तथा समीपस्थ तमिलनाडु के पठारी क्षेत्र तक है। यहाँ धात्विक खनिजों में लौह अयस्क, मेंग्नीज, बॉक्साइट

टिप्पणी

के प्रचुर भण्डार के अलावा कुछ अधात्विक खनिजों के भण्डार भी हैं। इस क्षेत्र में कोयला नहीं मिलता। भारत के तीनों प्रमुख सोने की खदानें इसी क्षेत्र में स्थित हैं।

(ग) उत्तर-पश्चिम पठार—इस क्षेत्र का विस्तार गुजरात के खम्बात की खाड़ी से आरंभ होकर राजस्थान के अरावली पर्वत श्रेणियों तक है। पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस के मुख्य भण्डार इस क्षेत्र में हैं। अन्य खनिजों के भण्डार थोड़े एवं बिखरे हुए हैं। फिर भी तांबा, चाँदी, सीसा एवं जस्ता के भण्डार तथा उनके खनन के लिए इस क्षेत्र को पूरे देशभर में जाना जाता है।

इन खनिज पट्टियों के अलावा ब्रह्मपुत्र नदी घाटी क्षेत्र प्रमुख पेट्रोलियम उत्पादक क्षेत्र हैं, जबकि केरल के तटवर्ती क्षेत्र भारी खनिजयुक्त (रेडियोधर्मिता वाले) रेतों के लिए देश में प्रसिद्ध हैं।

इन उपर्युक्त वर्णित क्षेत्रों के अलावा देश के अन्य भूभागों में खनिज काफी कम मात्रा में व प्रकीर्ण रूप में मिलते हैं।

अगले अनुच्छेद में हम खनिज तेल एवं खनिजों के प्रकारों, जैसे कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, रेडियोधर्मी विशेषकर यूरेनियम एवं थोरियम की एक–एक करके विस्तृत चर्चा करेंगे।

23.3 खनिज ईंधन

ईंधन की गुणवत्ता से युक्त खनिजों में कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस एवं रेडियोधर्मी खनिज शामिल है।

(क) कोयला

भारत में कोयला वाणिज्यिक ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है। देश के सभी कारखानों में ईंधन के रूप में तथा सभी ताप–विद्युत गृहों में एवं देश के कुछ भागों में आज भी कोयला, घरेलू–ईंधन के रूप में प्रयुक्त हो रहा है। इसका प्रयोग कच्चे माल के रूप में रसायन एवम् उर्वरक कारखानों में तथा दैनिक जीवन में उपयोग की जाने वाली हजारों वस्तुओं के उत्पादक में होता है।

जनवरी 2005 में किए गए एक आकलन के अनुसार देश में कोयले के कुल भण्डार लगभग 2,47,847 मिलियन टन है। परन्तु खेद इस बात का है कि सकल भण्डार में कम गुणवत्ता वाले कोयले की मात्रा अधिक है। कोकिंग कोयले की आवश्यकता की आपूर्ति आयात द्वारा की जाती है। भारत में ऐसे प्रयासों को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है जिसके अन्तर्गत विद्युत–ताप गृहों की उन्हीं स्थानों पर स्थापना होती है जो या तो कोयला–उत्पादक क्षेत्र में हों या उसके समीपस्थ स्थान में आते हों। इन ताप गृहों में उत्पादित विद्युत ऊर्जा को सम्प्रेषण द्वारा दूर–दराज के क्षेत्रों तक पहुँचाया जाता है। कभी कोयले की खपत का सबसे बड़ा उपभोक्ता भारतीय रेल हुआ करता था, परन्तु डीजल एवं विद्युत के प्रयोग से भारतीय रेल अब कोयले का सीधा एवं प्रत्यक्ष खपत करने वाला ग्राहक नहीं रहा।

सारिणी 23.1 भारत में कोयले का उत्पादन (लिग्नाइट सहित)

वर्ष	उत्पादन (मिलियन टनों में)
1950-51	32.8
1960-61	55.7
1970-71	76.3
1980-81	118.8
1990-91	225.7
2004-05	376.63

स्रोत—भारत 2006, संदर्भ वार्षिकी (पृष्ठ 276)

वितरण: भारत में कोयला दो प्रमुख क्षेत्रों में उपलब्ध है। पहला क्षेत्र—गोन्डवाना कोयला क्षेत्र कहलाता है तथा दूसरा टरशियरी कोयला क्षेत्र कहलाता है। भारत के कुल कोयला भण्डार एवं उसके उत्पादनों का 98% गोन्डवाना कोयला क्षेत्रों से प्राप्त होता है तथा शेष 2% टरशियरी कोयला क्षेत्रों से मिलता है। गोन्डवाना कोयला क्षेत्र गोन्डवाना काल में बनी परतदार शैल समूहों के अन्तर्गत अवस्थित हैं। इनका भौगोलिक वितरण भी भू—वैज्ञानिकी कारकों से नियंत्रित है। यह मुख्य रूप से दामोदर (झारखण्ड़—प. बंगाल), सोन (मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़), महानदी (उड़ीसा), गोदावरी (आंध्र प्रदेश) तथा वर्धा (महाराष्ट्र) नदी घाटियों में वितरित हैं।

टरशियरी कोयला क्षेत्र भारतीय प्रायद्वीप के उत्तरी बाह्य क्षेत्रों में, जिसके अन्तर्गत असाम, मेघालय, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, जम्मू—कश्मीर तथा सिक्किम आते हैं, में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त भूरा—कोयला (लिग्नाइट) तमिलनाडु के तटवर्ती क्षेत्र, गुजरात एवं राजस्थान में मिलता है।

झारखण्ड कोयला भण्डार एवं उत्पादन की दृष्टि से पूरे देश में सर्वप्रथम है। कोयला झारखंड के धनबाद, हजारीबाग एवं पालामऊ जिलों में मिलता है। झरिया एवं चन्द्रपुरा के महत्वपूर्ण कोयला क्षेत्र धनबाद जिला में आते हैं। सबसे पुराना कोयला क्षेत्र रानीगंज, पश्चिम बंगाल में है, जो कि भारत का दूसरा सबसे बड़ा कोयला क्षेत्र है। इसका विस्तार बर्दवान और पुरुलिया जिलों में फैला है। छत्तीसगढ़ में कोयला के निक्षेप बिलासपुर तथा सरगुजा जिलों में मिलते हैं। मध्य प्रदेश में कोयले के निक्षेप सीधी, शहडोल एवं छिंदवाड़ा जिलों में मिलते हैं। आंध्रप्रदेश में कोयले के निक्षेप आदिलाबाद, करीमनगर, वारंगल, खम्मम तथा पश्चिम गोदावरी जिलों में मिलते हैं। उड़ीसा राज्य में तालचेर कोयला क्षेत्र के अलावा सम्बलपुर और सुन्दरगढ़ जिलों में भी कोयला के निक्षेप प्राप्त होते हैं। महाराष्ट्र में कोयला निक्षेप चन्द्रपुर, यवतमाल तथा नागपुर जिलों में मिलते हैं।

भारत के कोयले के भण्डार क्षमता की तुलना में उसके लिग्नाइट (भूरा कोयला) के भण्डार साधारण है। सबसे अधिक लिग्नाइट के भण्डार नेव्हेली (तमिलनाडु) में मिलते हैं। इसके अलावा लिग्नाइट के महत्वपूर्ण निक्षेप राजस्थान, पाँडिचेरी, जम्मू—कश्मीर राज्यों में भी मिलते हैं।

टिप्पणी

- इसका प्रयोग कच्चे माल के रूप में रसायन एवं उर्वरक कारखानों तथा दैनिक जीवन में उपयोग की जाने वाली हजारों वस्तुओं में होता है।
- कोयला मुख्य रूप से गोन्डवाना तथा टरशियरी कोयला क्षेत्रों में पाया जाता है।
- कोयला उत्पादकों में अग्रणी राज्य क्रमशः झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़, आन्ध्र प्रदेश एवं उड़ीसा हैं।
- लिग्नाइट के निक्षेपों के बहुत बड़े भण्डार नैव्हेली एवं उसके आसपास के क्षेत्रों में मिलते हैं।

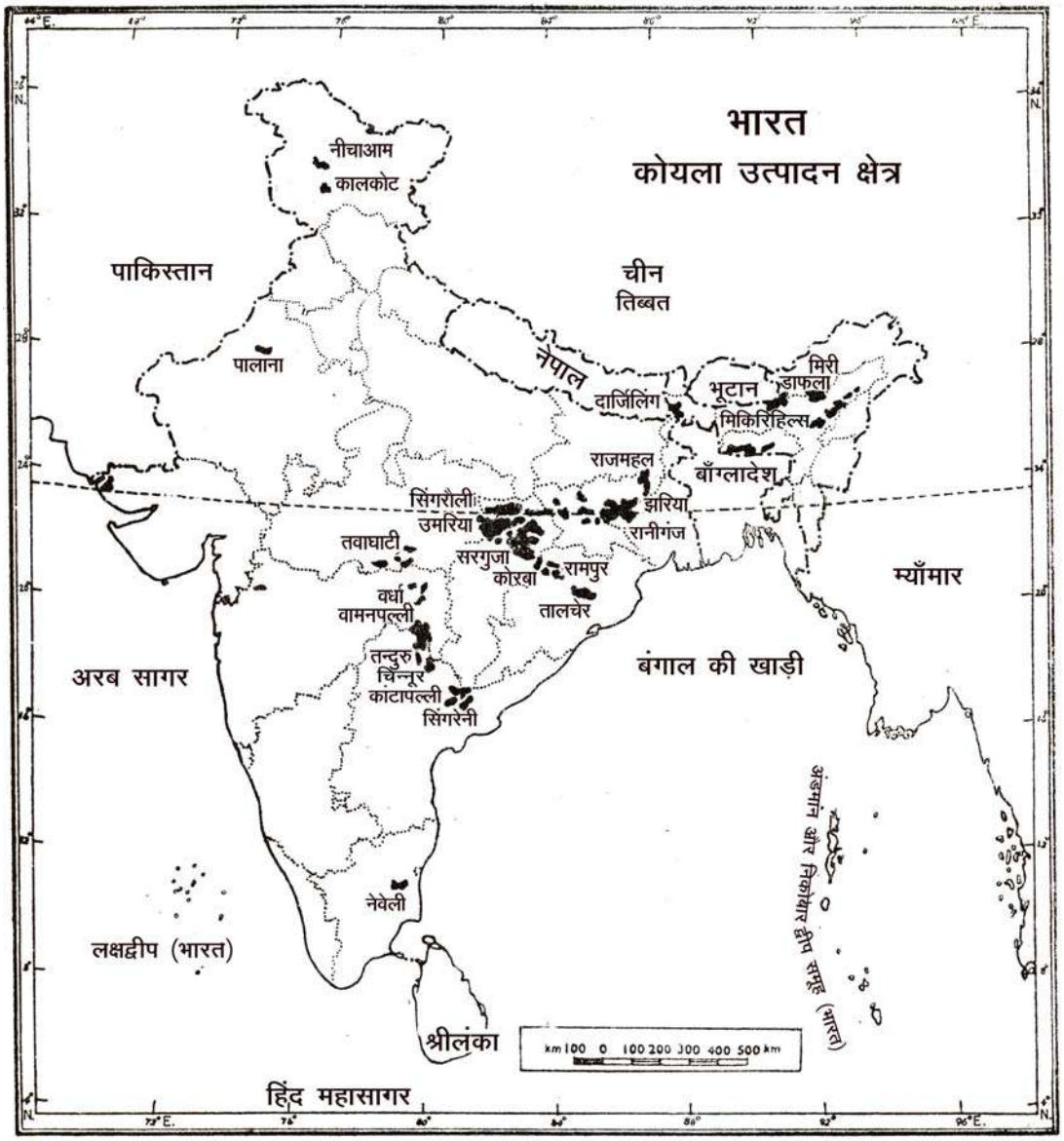

चित्र 23.1 भारतः प्रमुख कोयला क्षेत्र

टिप्पणी

(ख) पेट्रोलियम

इसे प्रायः तरल सोना भी कहा जाता है। इसके पीछे पेट्रोलियम की बहुमुखी उपयोगिताएँ हैं। हमारी कृषि, उद्योग तथा परिवहन तंत्र कई रूपों में इस पर निर्भर है। कच्चा पेट्रोलियम दहनशील हाइड्रोकार्बन का सम्मिश्रण है जोकि गैस, तरल या गैसीय रूपों में होता है। उद्योगों में पेट्रोलियम उत्पादों का कृतिम पदार्थों व आवश्यक रसायनों के निर्माण के लिए तेल व चिकनाई के युक्त पदार्थों के रूप में उपयोग किया जाता है। पेट्रोलियम के महत्वपूर्ण उत्पादों में पेट्रोल, मिट्टी का तेल, डीजल हैं। साबुन, कृत्रिम रेशा, प्लास्टिक एवं अन्यान्य प्रसाधन उत्पाद हैं।

वितरण: पेट्रोलियम भ्रंशों और अपनतियों में पाया जाता है। भारत में यह अवसादी शैल संरचना में पाया जाता है। इस प्रकार के अधिकांश क्षेत्र असाम, गुजरात तथा पश्चिमी तट के अपतटीय क्षेत्रों में पाए गए हैं।

अब तक भारत में पेट्रोलियम का उत्पादन असाम पट्टी, गुजरात–खम्बात की पट्टी तथा बाम्बे–हाई में हो रहा है। असाम की पट्टी का विस्तार सुदूर उत्तर–पूर्वी छोर पर अवस्थित देहाँग–बेसिन से लेकर पहाड़ियों के बाहरी छोर के साथ–साथ सूरमा–घाटी की पूर्वी सीमा तक विस्तृत है। गुजरात–खम्बात पट्टी गुजरात के उत्तर में मेहसाना से लेकर दक्षिण में रत्नागिरि (महाराष्ट्र) के महाद्वीपीय निमग्न तट तक फैली है। इसी के अन्तर्गत बाम्बे हाई भी आता है जो भारत का सबसे बड़ा पेट्रोलियम उत्पादक क्षेत्र है।

असाम में उत्पादक क्षेत्र लखीमपुर तथा शिवसागर जिलों में स्थित हैं। पेट्रोलियम के उत्पादन के लिये खननकूप डिग्बोई, नहरकटिया, शिवसागर एवं रुद्र सागर के आसपास स्थित हैं। इसी प्रकार गुजरात राज्य में तेल उत्पादक स्थान वड़ोदरा, भरोच, खेड़ा, मेहसाना एवं सूरत जिलों में स्थित हैं। हाल ही में पेट्रोलियम के भण्डार की खोज राजस्थान के बीकानेर जिलान्तर्गत बहुत बड़े क्षेत्र में तथा बाड़मेर एवं जैसलमेर क्षेत्रों में की गई है। इसी प्रकार आन्ध्रप्रदेश के पूर्वी तटवर्ती गोदावरी डेल्टा तथा कृष्णा डेल्टा में अन्वेषण के दौरान प्राकृतिक गैस मिली है।

पेट्रोलियम भण्डार के संभावित क्षेत्र बंगाल की खाड़ी, जिसका विस्तार पश्चिम बंगाल की तटवर्ती रेखा के साथ–साथ उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु तथा अन्डमान व निकोबार द्वीप समूह तक फैला है।

- पेट्रोलियम अपनतियों और भ्रंशों में पाया जाता है। भारत में यह अवसादी शैल संरचना में पाया जाता है। ऐसे अधिकांश क्षेत्र असाम, गुजरात तथा पश्चिमी तटवर्ती क्षेत्र के सहारे समुद्र के महाद्वीपीय निमग्न तट पर मिलते हैं।
- पेट्रोलियम के महत्वपूर्ण उत्पादों में पेट्रोल, डीजल, मिट्टी का तेल, साबुन, कृत्रिम रेशे, प्लास्टिक, विविध सौन्दर्य–प्रसाधन वस्तुएँ आदि हैं।
- उद्योगों में पेट्रोलियम उत्पादों का कृत्रिम पदार्थों व आवश्यक रसायनों के निर्माण के लिए तेल व चिकनाई युक्त पदार्थों के रूप में उपयोग किया जाता है।

सारिणी 23.2 भारत में कच्चे पेट्रोलियम का उत्पादन

वर्ष	उत्पादन (मिलियन टनों में)
1960-61	0.5
1970-71	6.8
1980-81	10.5
1990-91	33.0
2000-01	32.4
2005-06	32.2

स्रोत—आर्थिक सर्वेक्षण 2006-07. S-1

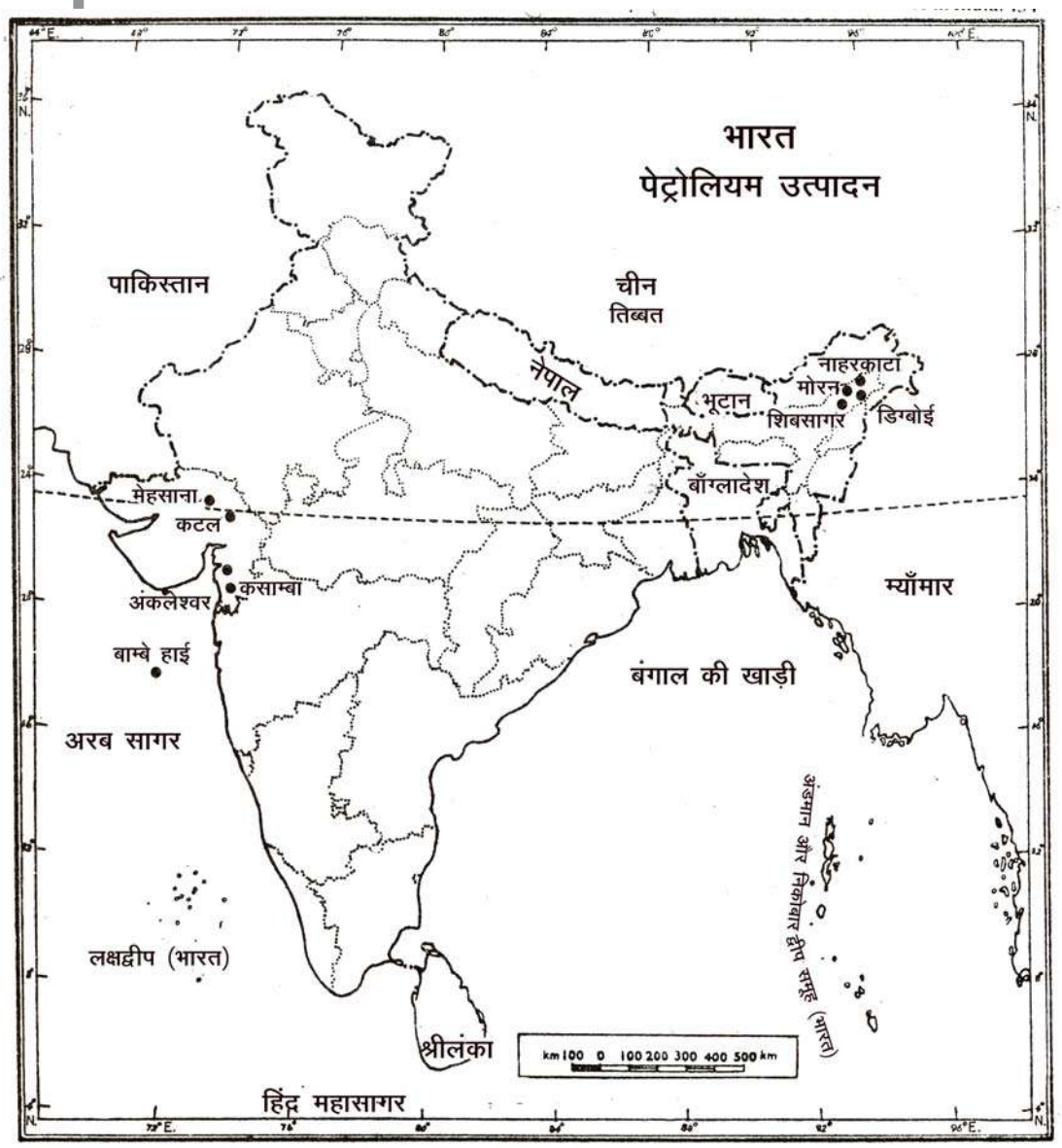

Based upon Survey of India outline map printed in 1979.
The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.
The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971, but has yet to be verified.

© Government of India copyright, 1979

चित्र 23.2 भारतः पेट्रोलियम उत्पादन

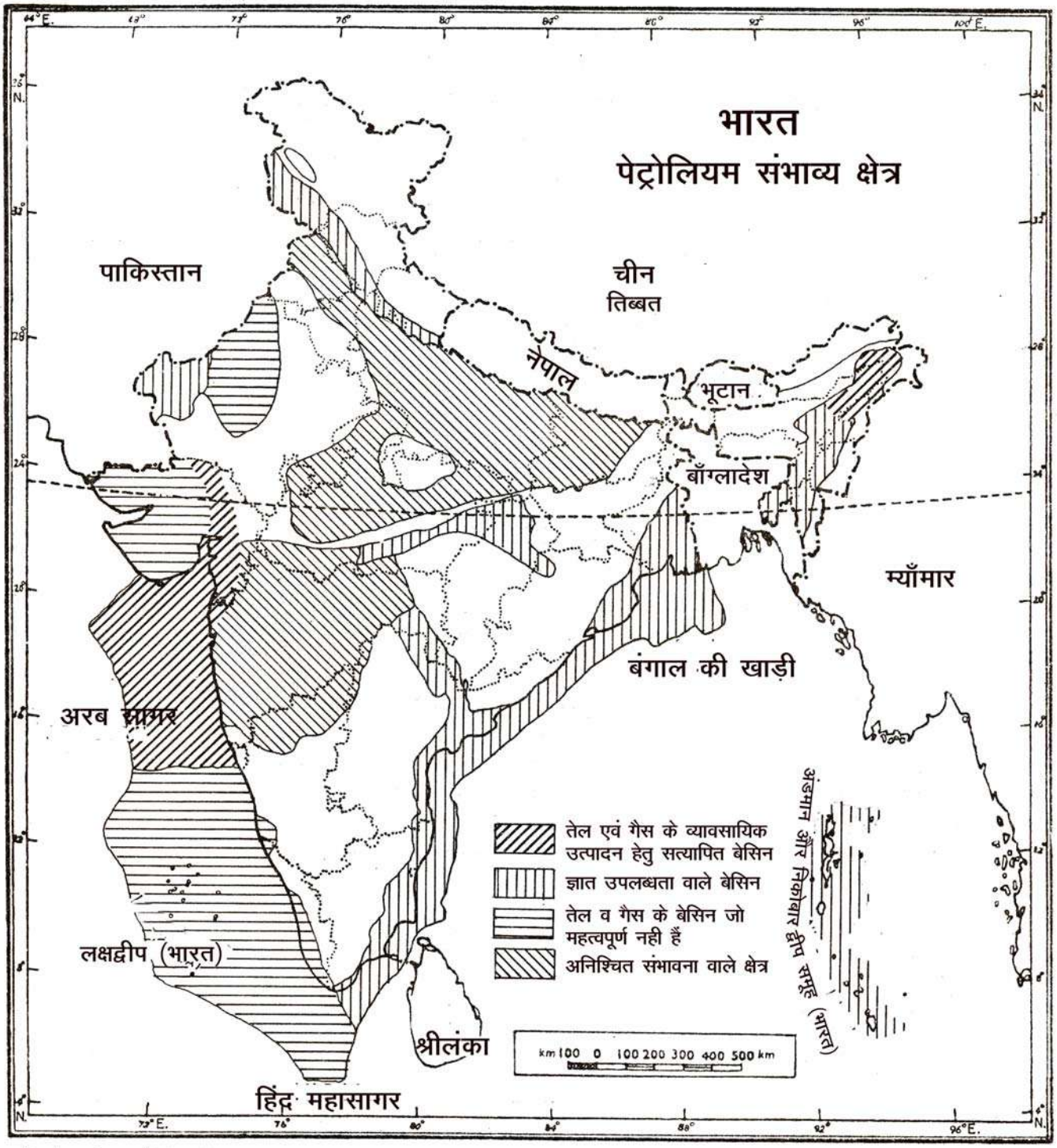

Based upon Survey of India outline map printed in 1979.

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971, but has yet to be verified.

© Government of India copyright, 1979

चित्र 23.3 भारतः पेट्रोलियम संभाव्य क्षेत्र

टिप्पणी

भारत में तेलशोधक संयंत्र

कच्चा पेट्रोलियम जो जमीन के अन्दर से निकाला जाता है उसे सीधे उपयोग में लाने के पहले प्राकृतिक अशुद्धियों से परिष्कृत करना पड़ता है। पेट्रोलियम का परिष्करण एक जटिल रासायनिक अभियांत्रिकीय प्रौद्योगिकी है। वर्तमान में लगभग 17 तेल शोधक संयंत्र भारत में स्थापित हैं जो सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। केवल एक तेलशोधक संयंत्र रिलायंस इन्डस्ट्री द्वारा निजी क्षेत्र में संचालित है। सार्वजनिक क्षेत्र के तेल शोधक संयंत्र, डिगबोई, बोंगइगांव तथा नूनमाटी (तीनों संयंत्र असाम में), मुम्बई में 2 इकाइयाँ (महाराष्ट्र), विशाखापट्टनम (आंध्रप्रदेश), बरौनी (बिहार), कोयली (गुजरात), मथुरा (उत्तर प्रदेश), पानीपत (हरियाणा), कोचीन (केरल), मेंगलोर (कर्नाटक) एवं चेन्नई (तमिलनाडु) में हैं। जामनगर (गुजरात) में रिलायंस इन्डस्ट्रीज द्वारा निजी क्षेत्र में संचालित एकमात्र तेलशोधक संयंत्र हैं।

इन तेल शोधक संयंत्रों को कच्चे तेल की आपूर्ति या तो जहाजों द्वारा अथवा पाइप लाइनों के द्वारा की जाती है। यद्यपि पेट्रोलियम उत्पादन की वार्षिक दर बढ़ती नजर आती है, किन्तु भारत को अपनी आवश्यकताओं की आपूर्ति पेट्रोलियम एवं पेट्रोलियम उत्पादों के बाहर से आयात द्वारा करना पड़ता है।

- वर्तमान में भारत में 17 तेलशोधक संयंत्र सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत तथा 1 संयंत्र निजी क्षेत्र में है।
- यद्यपि वार्षिक उत्पादन की गति बढ़ती नजर आ रही है तथापि अपनी आन्तरिक आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए भारत को पेट्रोलियम का आयात करना पड़ता है।

(ग) प्राकृतिक गैस

प्राकृतिक गैस अब वाणिज्यिक ऊर्जा के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में उभर कर आ रहा है। प्रायः पेट्रोलियम उत्पादन में आनुषंगिक रूप में प्राकृतिक गैस के मिलने की संभावना बनती ही है। प्रतिलभ्य भण्डार पर प्राकृतिक गैस का भारत में (1 अप्रैल 2001 के आंकलन पर आधारित) भण्डार लगभग 638 अरब घनमीटर है। आशा की जाती है कि भविष्य में कृष्णा, गोदावरी तथा महानदी घाटियों के क्षेत्रों में चल रहे अन्वेषणों से प्राकृतिक गैस के अनेक भण्डारों के मिलने से इसकी मात्रा बढ़ेगी। वर्ष 2003-2004 में प्राकृतिक गैस का भारत में उत्पादन करीब 31 अरब घनमीटर था। भारत में प्राकृतिक गैस प्राधिकरण की स्थापना 1984 में की गई थी। इस प्राधिकरण का उद्देश्य प्राकृतिक गैसों का संसाधन, परिवहन, वितरण एवं उसका सुव्यवस्थित विपणन कराना है। प्राधिकरण के अधिकार एवं संचालन के अन्तर्गत 5,340 कि.मी. लम्बी गैस पाइप लाइन देश में फैली हुई है।

(घ) आण्विक खनिज

परमाणु शक्ति का उत्सर्जन इन खनिजों के अन्दर व्याप्त परमाणुओं के विखंडन या विलयनीकरण से होता है। इन खनिजों के अंतर्गत यूरेनियम, थोरियम एवं रेडियम आते हैं। भारत में विश्व का सबसे बड़ा भण्डार मोनाजाइट का है, जो थोरियम का स्रोत है। इसके अलावा यूरेनियम के भण्डार हैं।

यूरेनियम

भारत में यूरेनियम आग्नेय एवं रूपान्तरित शैलों में अन्तःस्थापित होकर पाए जाते हैं। ऐसे विशिष्ट खनिजयुक्त शैल झारखण्ड, राजस्थान, आन्ध्रप्रदेश तथा हिमालय के कुछ भागों में पाए जाते हैं। केरल के तटवर्ती क्षेत्रों में काफी बड़ी मात्रा में यूरेनियम, मोनाजाइट–बालुओं के ढेरों में उपलब्ध हैं।

वर्तमान में यूरेनियम का उत्पादन सिंहभूमि जिले (झारखण्ड) की जादूगुड़ा खदानों से किया जा रहा है। भारत में यूरेनियम के भण्डार 5,000 से 10,000 मेगावाट बिजली उत्पादन करने में सक्षम हैं।

थोरियम

थोरियम मुख्य रूप से मोनाजाइट बालू में मिलते हैं। केरल के पालघाट तथा कोल्लम (क्विलोन) जिलों में पाए जाने बालुओं में विश्व का सर्वाधिक मोनाजाइट खनिज मिलता है। आन्ध्र प्रदेश के विशाखापट्टनम में भी बालुओं में मोनाजाइट मिलता है।

- वर्तमान में यूरेनियम का उत्पादन जादूगुड़ा की खदानों से किया जा रहा है।
- थोरियम का प्रमुख स्रोत मोनाजाइट है जिसका भण्डारण विश्व में सबसे अधिक भारत देश में ही है।
- समुद्र तटीय बालू जिनमें मोनाजाइट मिलता है का केरल के पालघाट तथा कोल्लम जिलों में विशाल भण्डार हैं जो पूरे विश्व में सबसे अधिक है।
- भारत में यूरेनियम झारखण्ड, राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश व हिमालय के कुछ भागों में, आग्नेय व रूपान्तरित शैलों में पाये जाते हैं।

पाठगत प्रश्न 23.1

1. निम्नलिखित कथनों में से सही विकल्प चुनकर उसके आगे (✓) सही का चिन्ह लगाएँ—

   (क) आर्थिक मूल्य की दृष्टि से इनमें से कौन सा खनिज अग्रणी है।
   (i) कोयला, (ii) पेट्रोलियम, (iii) लौह अयस्क, (iv) सोना

   (ख) भारत में सोने के तीनों प्रमुख खनिज क्षेत्रों की अवस्थिति निम्न में से किस भाग में है—
   (i) उत्तर–पूर्वी पठार (ii) दक्षिण–पश्चिम का पठार
   (iii) उत्तर–पूर्वी क्षेत्र (iv) उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र

   (ग) तेल शोधन का कार्य किया जाता है—
   (i) कानपुर (ii) कान्दला (iii) बरौनी (iv) मछलीपट्टनम।

   (घ) भारत के प्रमुख पेट्रोलियम क्षेत्र हैं—
   (i) असाम एवं गुजरात (ii) आन्ध्र प्रदेश एवं राजस्थान
   (iii) मध्य प्रदेश एवं असाम (iv) गुजरात एवं बिहार

टिप्पणी

(ङ) भारत में 80 प्रतिशत कोयले का भण्डार उपलब्ध है—
(i) गोदावरी नदी घाटी में (ii) वर्धा नदी घाटी में
(iii) दामोदर नदी घाटी में (iv) महानदी घाटी में

(च) टरशियरी कोयला पाया जाता है—
(i) केरल में (ii) जम्मू–कश्मीर में
(iii) बिहार में (iv) उत्तर प्रदेश में।

(छ) सबसे अधिक कोयला उत्पादक क्षेत्र है—
(i) रानीगंज (ii) झरिया (iii) बैलाडिला (iv) तालचेर

(ज) कुछ समय पहले प्राकृतिक गैस की खोज किस 'बेसिन' में की गई—
(i) नर्मदा एवं तापी (ii) गंगा एवं ब्रह्मपुत्र
(iii) कृष्णा एवं गोदावरी (iv) दामोदर एवं स्वर्ण रेखा।

23.4 कुछ प्रमुख खनिजों का वितरण

भारत में खनिजों का वितरण बहुत असमान है। अधिकांश खनिज दक्कन के पठार तथा छोटानागपुर पठार में पाए जाने वाले प्राचीन रवेदार शैलों में मिलते हैं। कुछ खनिज हिमालयी भागों में भी मिलते हैं परन्तु उनका दोहन करना बहुत कठिन है। भारत के सभी खनिजों को मोटे तौर पर दो बड़े भागों में बाँटा जा सकता हैं—धात्विक खनिज तथा अधात्विक खनिज। धात्विक खनिज पुनः दो भागों में बाँटा जा सकता है—लौह व अलौह वर्ग।

(क) लौह खनिज

लौह खनिज वे कहलाते हैं जिनमें लौह तत्व काफी अधिक मात्रा में रहता है।

1. धात्विक लौह खनिज

धात्विक खनिजों के सकल उत्पादन मूल्य का तीन चौथाई हिस्सा लौह धातु के खनिजों का होता है। खनिज ईंधन के बाद सबसे महत्वपूर्ण खनिज वर्ग की सूची लौह धात्विक खनिजों द्वारा ही निर्मित होती है। इस सूची में आने वाले धात्विक खनिजों में लोहा, मेंगनीज, क्रोमाइट, पाइराइट इत्यादि हैं। ये धात्विक खनिज भारत में धातुकर्मीय उद्योगों के लिए सुदृढ़ आधार प्रदान करते हैं—खासकर लौह, इस्पात एवं मिश्रधातु।

(i) लौह अयस्क

भारत पूरे विश्व के गिने–चुने ऐसे देशों में से एक है जहाँ उत्तम कोटि के लौह–अयस्क के विशाल भण्डार हैं। विश्व के सकल लौह अयस्क भण्डार का 20 प्रतिशत से अधिक भण्डार भारत में है। भारत में मिलने वाले लौह अयस्कों में लौह धातु के अंश 60 प्रतिशत से कुछ ज्यादा है। इसलिए भारत के लौह अयस्क उच्च कोटि के माने जाते हैं।

भारत में पाए जाने वाले लौह अयस्क तीन प्रकार के हैं—(i) हेमेटाइट, (ii) मेग्नेटाइट, (iii) लिमोनाइट। हेमेटाइट नामक अयस्क में लोहे का अंश 68% तक होता है। इस अयस्क का रंग लाल होता है। इसलिए प्रायः इसे ''लाल अयस्क'' के नाम से भी जाना जाता है। इसके बाद दूसरे स्थान पर मेग्नेटाइट नामक लौह अयस्क आता है जिसका रंग काला

होता है, इसलिए इसे ''काला अयस्क'' भी कहते हैं। मेग्नेटाइट अयस्क की भण्डार मात्रा तथा लौह धातु के प्रतिशत की दृष्टि से स्थान हेमेटाइट के बाद दूसरा है। इसमें लौह धातु का भाग 60 प्रतिशत तक होता है। तीसरा लौह अयस्क ''लिमोनाइट'' कहलाता है। जिसमें लौह धातु 35-40 प्रतिशत तक होता है। इसका रंग पीला होता है। चूँकि हेमेटाइट तथा मेग्नेटाइट अयस्क के इतने विशाल भण्डार हैं अतः लिमोनाइट अयस्क का दोहन भारत में फिलहाल नहीं हो रहा है।

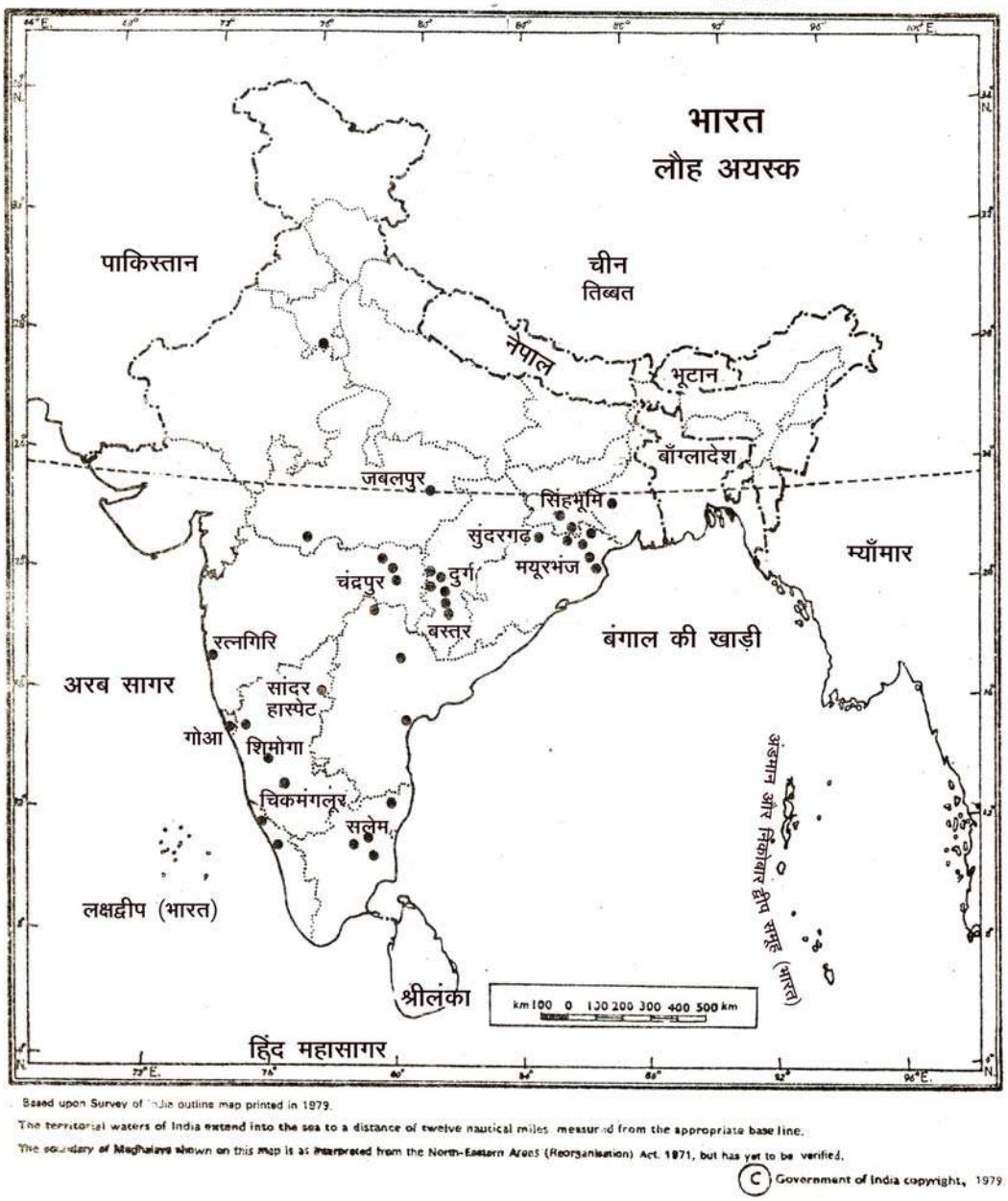

चित्र 23.4 भारत : लौह अयस्क का वितरण

लौह अयस्क का भारत में आकलित भण्डार करीब 12,317 मिलियन टन हेमेटाइट का है तथा शेष 540 मिलियन टन मेग्नेटाइट है। भण्डार की यह राशि पूरे विश्व में लौह अयस्क के भण्डार की 1/4 आंकलित की गई है।

टिप्पणी

वर्ष	उत्पादन (मिलियन टन में)
1950-51	3.0
1960-61	11.0
1970-71	32.5
1980-81	42.2
1990-91	53.7
2004-0.5	140.46

स्रोत—भारत 2006. संदर्भ—वार्षिकी (पृष्ठ—571.

वितरण

वैसे तो भारत में लौह अयस्क प्रायः सभी राज्यों में पाए जाते हैं। परन्तु भारत के कुल भण्डार का 96 प्रतिशत उड़ीसा, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, कर्नाटक एवं गोवा राज्यों में सीमित हैं। इतना ही नहीं लौह अयस्क का 95% उत्पादन भी इन्हीं राज्यों से होता है। शेष 3% लौह अयस्क का उत्पादन तमिलनाडु, महाराष्ट्र एवं आन्ध्र प्रदेश से होता है।

उड़ीसा एवं झारखण्ड में भारत के उच्च श्रेणी के कुल लौह अयस्क का 50% भाग विद्यमान है। उड़ीसा में लौह अयस्क सुन्दरगढ़, मयूरभंज एवं क्योंझर जिलों में तथा झारखण्ड में सिंहभूम जिले मिलता है।

छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश में देश के कुल लौह अयस्क भण्डार का 25% विद्यमान है। इसी प्रकार देश के कुल लौह अयस्क उत्पादन का 20-25% भी छत्तीसगढ़ एवं मध्य प्रदेश राज्यों से होता है। इन अयस्क के भण्डार बैलाडिला की पहाड़ियों में स्थित है। इसी प्रकार से अरिडोंगरी (बस्तर जिला) तथा दल्ली—राजहरा के पहाड़ी क्षेत्रों (दुर्ग जिला) में पाए जाते हैं।

गोवा में लौह अयस्क यद्यपि अच्छे दर्जे का नहीं है फिर भी देश के कुल उत्पादन में गोवा में मिलने वाले लौह अयस्कों का योगदान महत्वपूर्ण है। गोवा में लौह अयस्क की खदान सीढ़ीदार, खुले व सुव्यवस्थित होते हैं तथा उत्खनन एवं उत्खनित अयस्कों को बाहर जमीन सतह पर फेंकने की प्रणाली पूरी तरह यांत्रिकीय इंजीनियरिंग द्वारा संचालित होती हैं। लगभग पूरा लौह अयस्क गोवा के मरमगाओ बन्दरगाह से जापान को निर्यात कर दिये जाता है। कर्नाटक में सबसे मशहूर लौह अयस्क के निक्षेप साँडूर—होसपेट क्षेत्र (बेल्लारी जिले), चिकमंगलूर जिले के बाबाबूदन के पहाड़ी क्षेत्र तथा शिमोगा एवं चित्रदुर्ग जिलों में पाए जाते हैं।

आन्ध्रप्रदेश में लौह अयस्क के निक्षेप अनन्तपुर, खम्मम, कृष्णा, करनूल, कुडप्पा तथा नेल्लूर जिलों में बिखरे एवं छिटपुट रूप में पाए जाते हैं। कुछ निक्षेप इसी रूप में तमिलनाडु, महाराष्ट्र एवं राजस्थान में भी मिलते हैं।

सकल विश्व व्यापार में भारत का योगदान में 7 से 8 प्रतिशत है। अब लौह अयस्कों के निक्षेपों का विकास निर्यात को विशेष ध्यान में रखकर किया जाता है। जैसे बैलाडिला एवं राजहरा (छत्तीसगढ़) के लौह अयस्कों के निक्षेपों तथा उड़ीसा के किरुबुरू खदानों से लौह अयस्कों का उत्पादन सीधे निर्यात के लिए किया जाता है। जापान, रोमानिया एवं चेकोस्लावाकिया एवं पोलेण्ड देश भारत के लौह अयस्कों का आयात करते हैं। भारत से इन अयस्कों का निर्यात हल्दिया, पारादीप, मरमगाओ, मंगलोर एवं विशाखापट्टनम बन्दरगाहों से होता हैं।

- भारत में विश्व के सकल भण्डार का 20 प्रतिशत लौह अयस्क विद्यमान है।
- लौह अयस्क के निक्षेप प्रायः सभी राज्यों में मिलते हैं। भारत के कुल भण्डार का 36 प्रतिशत लौह अयस्क उड़ीसा, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, कर्नाटक एवं गोवा राज्यों में है।
- छत्तीसगढ़ में बैलाडिला एवं राजहरा की खदानें तथा उड़ीसा की किरूबुरू खदान में उत्खनन का कार्य निर्यात को लक्ष्य बनाकर किया जा रहा है।

(ii) मेंगनीज अयस्क

मेंगनीज अयस्क के उत्पादन में भारत का स्थान विश्वस्तर पर रूस एवं दक्षिण अफ्रीका के बाद तीसरा है। भारत के सकल मेंगनीज अयस्क उत्पादन का लगभग एक चौथाई भाग निर्यात किया जाता है।

लौह एवं इस्पात के निर्माण में मेंगनीज अयस्क एक महत्वपूर्ण अवयव है। मेंगनीज की उपयोगिता शुष्क बैटरियों के निर्माण में, फोटोग्राफी में, चमड़ा और माचिस उद्योगों में महत्वपूर्ण होती है। भारत में सकल मेंगनीज अयस्क के लगभग 85 प्रतिशत भाग की खपत धातुकर्मीय उद्योगों में हो जाती है।

वितरण

मेंगनीज उत्पादन के प्रमुख खेत्र उड़ीसा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक एवं आन्ध्र प्रदेश के अन्तर्गत आते हैं। भारत के 78 प्रतिशत से ज्यादा मेंगनीज अयस्क के भण्डार महाराष्ट्र के नागपुर तथा भण्डारा जिलों से लेकर मध्य प्रदेश के बालाघाट एवं छिन्दवाड़ा जिलों तक फैली पट्टी में मिलते हैं। परन्तु ये दोनों राज्य सकल उत्पादन में क्रमशः 12 एवं 14 प्रतिशत का ही योगदान देते हैं। शेष 22 प्रतिशत मेंगनीज भण्डार का वितरण उड़ीसा, कर्नाटक, गुजरात, राजस्थान, गोवा एवं आन्ध्र प्रदेश के अन्तर्गत अवस्थित निक्षेपों में है।

उड़ीसा भारत में मेंगनीज अयस्क के उत्पादन में शीर्ष पर है जहाँ भारत के कुल उत्पादन का 37 प्रतिशत उत्पादन होता है। इस राज्य में उपलब्ध मेंगनीज अयस्क के निक्षेप भारत के कुल भण्डार का 12 प्रतिशत है। मेंगनीज की प्रमुख खदानें सुन्दरगढ़, रायगढ़, बोलांगीर, क्योंझर, जाजपुर एवं मयूरभंज जिलों में है।

कर्नाटक में मेंगनीज अयस्क के निक्षेप शिमोगा, चित्रदुर्ग, तुमकूर तथा बेल्लारी जिलों में हैं। छुटपुट निक्षेप बीजापुर, चिकमंगलूर एवं धारवाड़ जिलों में पाए गए हैं। यद्यपि कर्नाटक में मेंगनीज अयस्क के भण्डार काफी कम हैं (भारत के कुल भण्डार का 6 प्रतिशत) फिर भी अयस्क का उत्पादन कर्नाटक में भारत के मेंगनीज उत्पादन का 26 प्रतिशत होता है।

आन्ध्र प्रदेश में मेंगनीज का उत्पादन भारत के कुल उत्पादन का 8 प्रतिशत होता है जो काफी अच्छा है। यद्यपि यहाँ मेंगनीज अयस्क के निक्षेप काफी कम है। गोवा, झारखण्ड एवं गुजरात में भी मेंगनीज अयस्क के निक्षेप पाए जाते हैं।

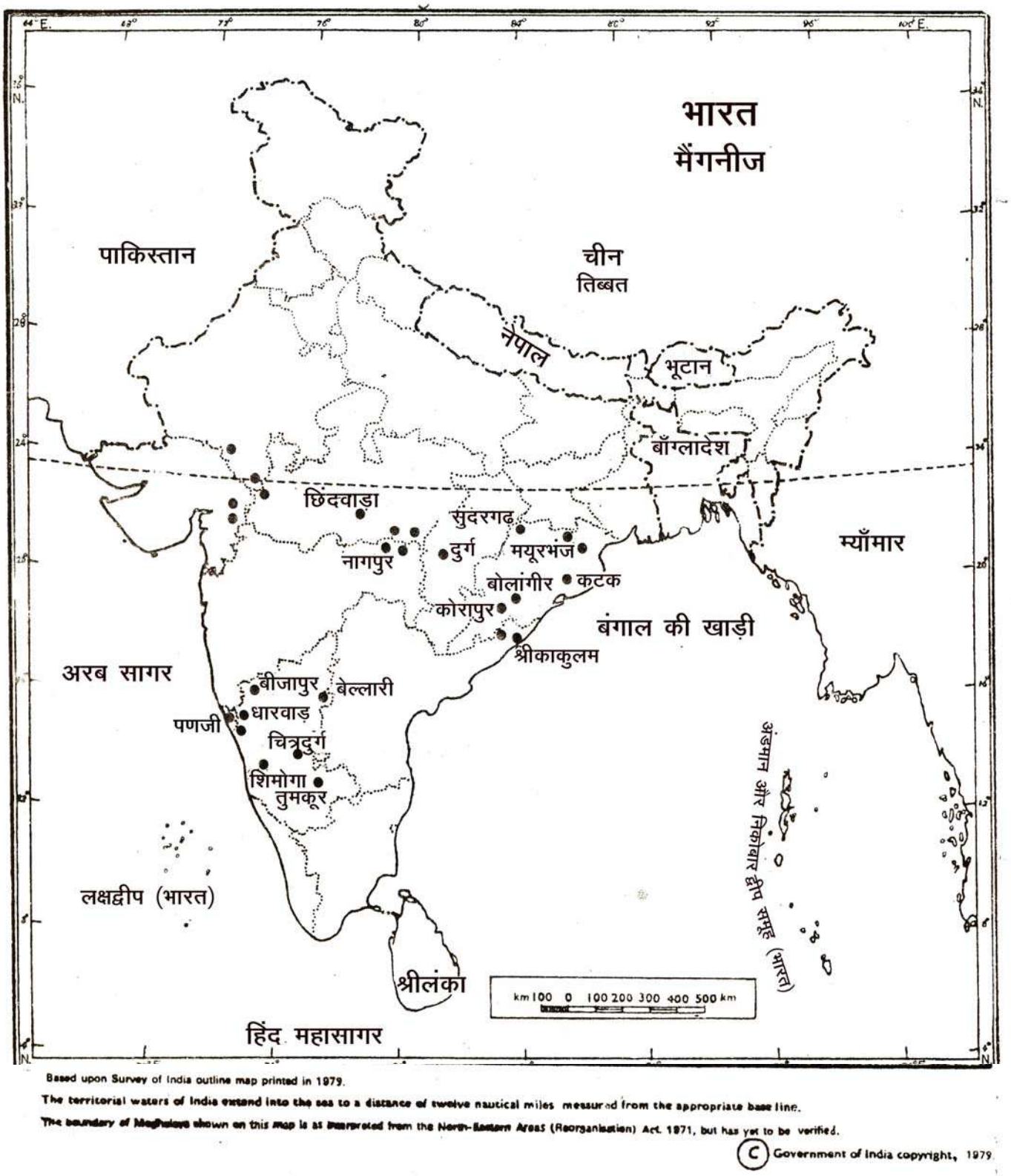

Based upon Survey of India outline map printed in 1979.

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971, but has yet to be verified.

© Government of India copyright, 1979

चित्र 23.5 भारतः मेंगनीज अयस्क का वितरण

- विश्व में मेंगनीज अयस्क के उत्पादन करने वाले देशों में भारत का स्थान तीसरा है।
- मेंगनीज उत्पादन का 85 प्रतिशत उपयोग देश के अन्दर स्थापित धातुकर्मीय उद्योगों में हो जाता है।
- उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र उड़ीसा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक एवं आन्ध्र प्रदेश में हैं।

2. धात्विक अलौह खनिज

अलौह खनिज वे होते हैं जिनमें लोहा का अंश नहीं होता। इनके अन्तर्गत धात्विक खनिजों में शामिल हैं—सोना, चाँदी, ताम्बा, टिन, सीसा, जस्ता इत्यादि। ये सभी धात्विक खनिज काफी महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनसे उपलब्ध धातु दैनिक जीवन में बहुत काम में आती है। वैसे भारत इन खनिजों की उपलब्धि एवं भण्डार के मामले में काफी कमजोर तथा अभावग्रस्त है।

(i) बॉक्साइट

यह एक अलौह खनिज निक्षेप है जिससे अल्यूमिनियम नामक धातु निकाली जाती है। भारत में बॉक्साइट खनिज के इतने निक्षेपों के भण्डार हैं कि भारत अल्यूमिनियम के मामले में आत्म निर्भर रह सकता है। अल्यूमिनियम धातु, जो बॉक्साट खनिज से निकाला जाता है, का बहुमुखी उपयोग वायुयान निर्माण, विद्युत उपकरणों के निर्माण, बिजली के घरेलू उपयोगी सामान बनाने में, घरेलू साज–सज्जा के सामान के निर्माण में होता है। बाक्साइट का उपयोग सफेद सीमेन्ट के निर्माण में तथा कुछ रासायनिक वस्तुएं बनाने में भी होता है। भारत में सभी प्रकार के बाक्साइट का अनुमानित भण्डार 3037 मिलियन टन है।

सारिणी 23.4 भारत में बॉक्साइट का उत्पादन

वर्ष	उत्पादन (हजार टन में)
1951	68.4
1961	475.9
1971	1,517.1
1981	1,954.6
1991	4,977.0
2004-2005	11,598.0

स्रोत—भारत 2006, संदर्भ वार्षिकी, पृष्ठ–570

वितरण

बॉक्साइट के निक्षेपों का वितरण देश के अनेक क्षेत्रों में है। परन्तु विपुल राशि में इसके

टिप्पणी

भण्डार महाराष्ट्र, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, कर्नाटक, तमिलनाडु, गोवा एवं उत्तर प्रदेश में अवस्थित हैं।

झारखण्ड में भारत के सकल बॉक्साइट भण्डार का 13 प्रतिशत भाग तथा उत्पादन में देश के कुल उत्पादन का 37 प्रतिशत भाग मिलता है। बॉक्साइट के महत्वपूर्ण निक्षेप इस राज्य के पालामू, राँची एवं लोहरदरगा जिलों में अवस्थित हैं।

गुजरात में बॉक्साइट अयस्क के निक्षेपों की भण्डारण राशि देश के कुल भण्डार के 12 प्रतिशत भाग के बराबर तथा इतनी ही प्रतिशत की भागीदारी उत्पादन के मामले में है। बॉक्साइट के निक्षेप इस राज्य के भावनगर, जूनागढ़ तथा अमरेली जिलों में अवस्थित हैं।

मध्य प्रदेश तथा छत्तीसगढ़ को मिलाकर देखा जाए तो देश के कुल बॉक्साइट भण्डार के 22 प्रतिशत भाग तथा उत्पादन में देश के कुल उत्पादन का 25 प्रतिशत भाग इन दोनों राज्यों के निक्षेपों से प्राप्त होते हैं। इन राज्यों में बॉक्साइट के तीन प्रमुख क्षेत्र हैं— अमरकंटक पठार में सरगुजा, रायगढ़ एवं बिलासपुर जिले; मैकल पर्वत श्रृंखला के अन्तर्गत बिलासपुर, दुर्ग, (दोनों छत्तीसगढ़) एवं मण्डला, शहडोल व बालाघाट जिले (मध्यप्रदेश) तथा कटनी जिला (मध्यप्रदेश) सम्मिलित हैं।

महाराष्ट्र में बॉक्साइट अयस्क के निक्षेप तथा उत्पादन अपेक्षाकृत कम है। देश के कुल उत्पादन का 18 प्रतिशत भाग का उत्पादन यहां होता है, परन्तु निक्षेपों का कुल भण्डार देश के कुल भण्डार के 22 प्रतिशत भाग के बराबर है। बाक्साइट के महत्वपूर्ण निक्षेप कोल्हापुर, रायगढ़, थाणे, सतारा एवं रत्नागिरी जिलों में अवस्थित हैं।

कर्नाटक के बेलगाम जिले के उत्तर–पश्चिमी भूभाग में बॉक्साइट के निक्षेप मिलते हैं। देश के पूर्वी घाट क्षेत्रों में बाक्साइट के विशाल निक्षेप अवस्थित हैं। इस घाट क्षेत्र में उड़ीसा तथा आन्ध्र प्रदेश के क्षेत्र आते हैं।

अन्य क्षेत्रों में जैसे तमिलनाडु के सालेम, नीलगिरी तथा मदुरै जिलों में; उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले में बॉक्साइट अयस्क के महत्वूपर्ण निक्षेप मिलते हैं।

भारत विभिन्न देशों को बाक्साइट का निर्यात करता है। प्रमुख आयातक देश हैं–इटली, यूनाइटेड किंगडम, पश्चिम जर्मनी एवं जापान।

- बाक्साइट अयस्क से अल्यूमिनियम धातु निकाली जाती है।
- बाक्साइट अयस्क का उपयोग सफेद सीमेन्ट तथा कुछ रसायनों के निर्माण में भी होता है।
- बाक्साइट निक्षेप के विशाल भण्डार झारखण्ड, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, गोवा और उत्तर प्रदेश में मिलते हैं।

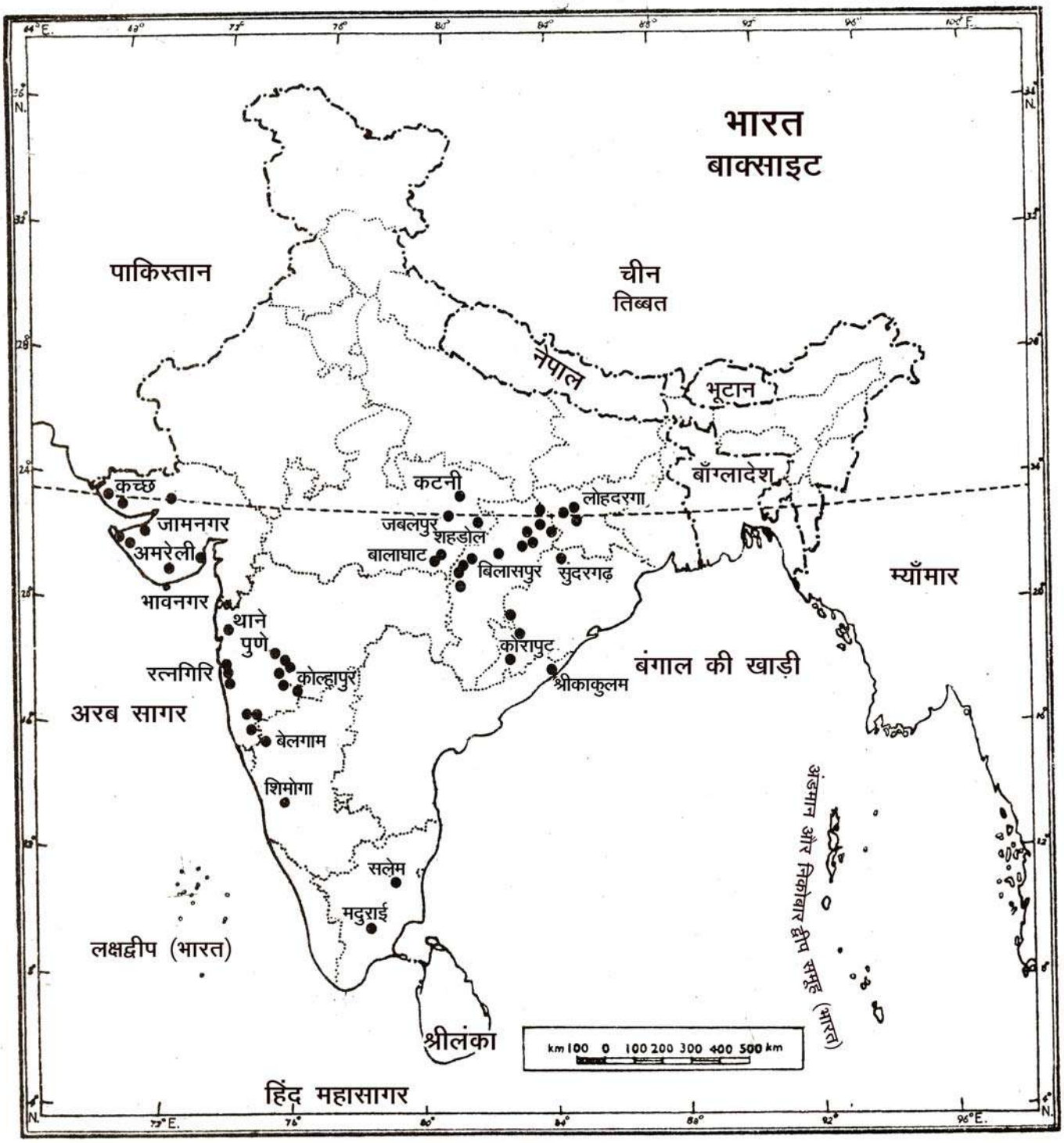

Based upon Survey of India outline map printed in 1979.

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act. 1971, but has yet to be verified.

© Government of India copyright, 1979

चित्र 23.6 भारतः बाक्साइट का वितरण

टिप्पणी

(B) अधात्विक खनिज

भारत में अधात्विक खनिजों की संख्या बहुत अधिक है किंतु इनमें से कुछ ही खनिजों का व्यापारिक एवं वाणिज्यिक दृष्टि से महत्व है। ये हैं– चूना पत्थर, डोलोमाइट, अभ्रक, कायनाइट, सिलिमनाइट, जिप्सम एवं फास्फेट। इन खनिजों का उपयोग विभिन्न उद्योगों में जैसे सीमेन्ट, उर्वरक, रिफ्रैक्टरीज तथा बिजली के अनेक उपकरणों एवं सामानों के निर्माण में होता है। इस पाठ में हम अभ्रक एवं चूना–पत्थर के बारे से अध्ययन करेंगे।

(i) अभ्रक

भारत पूरे विश्व में शीट अभ्रक का अग्रणी उत्पादक देश है। अब तक इलेक्ट्रिकल एवं इलेक्ट्रॉनिक उद्योगों में अभ्रक अपरिहार्य रूप से उपयोग में आते रहे हैं। परन्तु जब से इसका कृत्रिम रूप से संश्लेषित विकल्प आ गया, अभ्रक खनिज का उत्पादन एवं निर्यात दोनों कम हो गया है।

वितरण

भारत में यद्यपि अभ्रक का वितरण बहुत विस्तृत है, किन्तु उत्पादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण निक्षेप तीन प्रमुख पट्टियों में सीमित हैं। ये तीनों पट्टियां बिहार, झारखण्ड, आन्ध्र प्रदेश एवं राजस्थान राज्यों के अन्तर्गत आती हैं।

बिहार और झारखण्ड में उत्तम कोटि के रूबी अभ्रक का उत्पादन होता है। बिहार, झारखण्ड के मिले जुले भूभाग में अभ्रक खनिज की निक्षेप पट्टी का विस्तार पश्चिम में गया जिला से हजारीबाग, मुँगेर होते हुए पूर्व में भागलपुर जिले तक फैला हुआ है। इस पट्टी के बाहरी क्षेत्र में धनबाद, पालामू, राँची एवं सिंहभूमि जिलों में भी अभ्रक के भण्डार मिलते हैं। बिहार, झारखण्ड मिलाकर भारत के कुल अभ्रक उत्पादन का 80 प्रतिशत भाग उत्पादित करते हैं। आन्ध्रप्रदेश में अभ्रक की पट्टी नैलूर जिले में ही सीमित है। राजस्थान देश का तीसरा प्रमुख अभ्रक उत्पादक राज्य है। इस राज्य में अभ्रक खनिज से सम्पन्न पट्टी का विस्तार जयपुर, उदयपुर, भीलवाड़ा, अजमेर और किशनगढ़ जिलों में फैला है। यहाँ अभ्रक की गुणवत्ता अच्छी नहीं है। इन तीन प्रमुख पट्टियों के अलावा अभ्रक के निक्षेप केरल, तमिलनाडु एवं मध्य प्रदेश में भी मिलते हैं।

भारत में अभ्रक खनिज का उत्खनन निर्यात के लिय होता रहा है। भारत के अभ्रक का आयात प्रमुख रूप से (कुल निर्यात का 50 प्रतिशत भाग) संयुक्त राज्य अमेरिका करता रहा।

(ii) चूना पत्थर

इस खनिज का उपयोग कई प्रकार के उद्योगों में होता है। सीमेन्ट उद्योग भारत के 76 प्रतिशत चूने पत्थर के खपत का प्रमुख स्रोत है। चूने के पत्थर की खपत लौह इस्पात उद्योग में 16 प्रतिशत और रासायनिक उद्योगों में 4 प्रतिशत होती है। शेष 4 प्रतिशत उर्वरक, कागज, शक्कर, फेरो–मेंगनीज उद्योगों में खप जाता है।

वितरण

मध्यप्रदेश में चूना पत्थर के कुल भण्डार का 35 प्रतिशत अंश पाया जाता है। दूसरे उत्पादक राज्य में छत्तीसगढ़, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, झारखण्ड, उत्तराखण्ड और उत्तर प्रदेश है। शेष चूना पत्थर के भण्डार के अंश असम, हरियाणा, जम्मू कश्मीर, केरल एवं मेघालय राज्यों में है। कर्नाटक में कुल भण्डार का 10 प्रतिशत उत्पादन होता है। इस खनिज के निक्षेप कर्नाटक में बीजापुर, बेलगाम और शिमोगा जिलों में मिलते हैं। आन्ध्र प्रदेश में इसके निक्षेप विशाखापट्टनम, गुन्टूर, कृष्णा, करीमनगर, एवं आदिलाबाद जिलों में मिलते हैं। उड़ीसा के सुन्दरगढ़ जिले, बिहार के रोहतास जिले तथा झारखण्ड के पालामू जिले में भी चूने के पत्थर के भण्डार हैं।

- भारत संसार का अग्रणी अभ्रक उत्पादक देश है।
- अभ्रक का उपयोग इलेक्ट्रिकल तथा इलेक्ट्रोनिक उद्योगों में होता है।
- अभ्रक यद्यपि पूरे देश में वितरित है किन्तु निर्यात के लिये उपयोगी निक्षेप बिहार, झारखण्ड, आन्ध्रप्रदेश तथा राजस्थान में मिलते हैं।
- चूना–पत्थर सबसे अधिक मध्य प्रदेश में मिलता है, इसके बाद कर्नाटक आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, झारखण्ड तथा मेघालय में मिलता है।

पाठगत प्रश्न 23.2

1. नीचे दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प पर (✓) चिन्ह लगा कर उत्तर दीजिए–

(क) लौह अयस्क का बेलाडिला क्षेत्र से निर्यात किस बन्दरगाह से होता है–

(i) पारादीप (ii) काकीनाडा (iii) विशाखापट्टनम् (iv) हल्दिया

(ख) लौह अयस्क जिसमें सबसे ज्यादा लौह तत्व मिलता है–

(i) मेग्नेटाइट (ii) हेमेटाइट (iii) लिमोनाइट (iv) सेडेराइट

(ग) मेगनीज उत्पादन में कौन सा राज्य अग्रणी है–

(i) बिहार (ii) उड़ीसा (iii) मध्य प्रदेश (iv) कर्नाटक

(घ) इनमें से कौन सा उद्योग मेंगनीज का सबसे अधिक उपभोग करता है–

(i) चमड़ा उद्योग (ii) दियासलाई उद्योग (iii) धातुकर्म उद्योग (iv) फोटोग्राफी उद्योग

(ङ) बॉक्साइट एक है–

(i) लौह–समुदाय का धात्विक खनिज है

टिप्पणी

(ii) अलौह खनिज का धात्विक खनिज है

(iii) अधात्विक खनिज है

(iv) ईंधन खनिज है

(च) अल्यूमिनियम का अयस्क खनिज है—

(i) हेमेटाइट (ii) मेग्नेटाइट (iii) बॉक्साइट (iv) लिमोनाइट

(छ) भारत इनमें से किस खनिज का अग्रणी उत्पादक है—

(i) चूना पत्थर (ii) तांबा (iii) अभ्रक (iv) फास्फेट।

23.5 समस्याएँ

खनिज उत्खनन से कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इनमें से प्रमुख समस्याएँ इस प्रकार हैं—

(क) खनिजों का तीव्रता से समापन

खनिजों के अंनियंत्रित दोहन से बहुत से महत्वपूर्ण खनिज पूर्ण समाप्ति के करीब पहुंचने वाले हैं। अतः इनके संरक्षण तथा न्यायसंगत एवं विवेकपूर्ण उपयोग की अत्यन्त आवश्यकता है।

(ख) पारिस्थितिकीय समस्याएँ

खनिजों के उत्खनन ने कई गंभीर पर्यावरणीय समस्याओं को प्रस्तुत किया है। सबसे प्रमुख समस्या कृषि भूमि के काफी बड़े–बड़े क्षेत्र खनन क्रियाओं से प्रभावित तथा कृषि भूमि पर खनन से निकाले अनुपयोगी पत्थरों को अधिभार स्वरूप फैला देने पर पूर्णतः अकृष्य एवं अनुपयुक्त हो गए। इसके अतिरिक्त खदानों में कार्य प्रारंभ कने से पूर्व अधोसंरचना बनाने में प्राकृतिक वानस्पतिक सम्पदाओं का विनाश हो जाता है। इससे उत्पन्न कई समस्याएँ जैसे बार–बार बाढ़ प्रभावित होना, अपवाह क्षेत्र में अवरोध उत्पन्न होने से पानी का इधर–उधर जमाव मच्छरों का आश्रय स्थान बनते हैं, जिससे मलेरिया जैसे संक्रामक बीमारियां फैलने की प्रबल संभावनाएं बनती हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में खनन कार्य से भूस्खलन बार–बार होता है जिससे जीव–जन्तु, पशु–सम्पदा तथा मानवों की जान–माल की हानि होती है। कई खदानों में, खनन श्रमिकों को बहुत ही खतरनाक माहौल में काम करना पड़ता है। कोयले की खदानों में आग लगने से अथवा पानी भर जाने से सैकड़ों श्रमिकों को जान गंवानी पड़ती है। कई खदानों में कभी–कभी विषैली गैस अचानक मिल जाने से कई श्रमिक मर जाते हैं।

(ग) प्रदूषण

बहुत से खनिज उत्पादक क्षेत्रों की गतिविधियों से जल तथा वायु का प्रदूषण आसपास के क्षेत्रों में फैल जाता है जिससे कई प्रकार की स्वास्थ्य संबंधी आपदाएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

(घ) सामाजिक समस्याएँ

खनिजों की नई खोजों से स्थानीय लोगों का विस्थापन होता है। चूंकि बहुत से जनजातीय क्षेत्रों में खनिजों की प्रचुरता पाई जाती है, अतः उनके विकास एवं दोहन होने पर सर्वाधिक प्रभाव जनजातियों पर पड़ता है। इन क्षेत्रों के औद्योगीकरण से इन जनजातियों की आर्थिक स्थिति, इनके जीवन मूल्यों एवं जीवनयापन करने के तौर–तरीकों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

23.6 संसाधनों का संरक्षण

घटते साधनों की दुनिया में यह परम आवश्यक है कि खनिज संसाधनों का न्यायसंगत उपभोग वर्तमान पीढ़ी द्वारा किया जाये ताकि भावी पीढ़ी प्राकृतिक उपहारों से वंचित न हो जाये। इसलिये संसाधन की उपलब्धियों की पूर्ण सुरक्षा अति आवश्यक है।

खनिज संसाधनों का संरक्षण निम्नलिखित युक्तिसंगत उपायों द्वारा संभव है—

(क) पुनरोद्धार

जहाँ तक सम्भव हो सभी प्रकार से प्रयास किया जाना चाहिये जिनसे विभिन्न खनिजों का पुनरोद्धार हो सके। सुदूर–संवेदन प्रविधियों के प्रयोग से नए–नए क्षेत्रों में खनिज–निक्षेपों के पाए जाने की संभावनाओं की पहचान की जा सकती है।

(ख) पुनः चक्रण

इस प्रक्रिया से तात्पर्य उत्पादन प्रक्रिया में खनिजों के पुनः उपयोग से है। यथा (i) अनुपयोगी कागज, चिथड़ों, उपयोग की हुई बोतलें, टीन, प्लास्टिक के कचरों का पुनः चक्रण कर कागज, समाचार पत्र के कागज, प्लास्टिक व कांच के बर्तन, डिब्बा बनाने के लिए टन आदि का उत्पादन किया जा सकता है। यह प्रक्रिया जल एवं विद्युत की खपत को प्रभावी तरीके से कम करती है। ऐसे कदम वन संपदा के कम होने की प्रक्रिया को धीमा कर सकते हैं। (ii) पुरानी मशीनों, वाहनों, औद्योगिक उपकरणों के उपयोग के बाद इन्हें कास्ट व लोहे में परिवर्तित कर इनसे नए उत्पाद बनाए जाते हैं।

(ग) प्रतिस्थापन

प्रौद्योगिकी के बढ़ते विचार से तथा नई जरूरतों के बढ़ने से खनिजों के उपयोग

टिप्पणी

में कई परिवर्तन आए हैं। जैसे पेट्रो–रासायनिक उद्योग से उत्पन्न प्लास्टिक ने पारम्परिक पीतल या मिट्टी के घड़ों को प्रतिस्थापित कर अपनी जगह बना ली। यहां तक कि अब आटोमोबाइल उद्योग में कार, स्कूटर के ढ़ाचे में प्रयुक्त इस्पात की जगह प्लास्टिक ने ले रखी है। ताँबे की पाइप की जगह प्लास्टिक पाइप उपयोग में आने लगी।

(घ) अधिक कौशलयुक्त उपयोग

खनिजों को लंबी अवधि तक संरक्षण करने से खनिजों के अधिक कौशलयुक्त उपयोग बहुत मददगार साबित हुए हैं। इसलिये आजकल खनिज संसाधनों का बड़ी कुशलता से उपयोग होने लगा है। बतौर उदाहरण आज बाजार में ज्यादा शक्तिशाली इंजीनियरिंग तथा निर्माण प्रक्रियाओं से मोटरगाड़ियाँ अधिक क्षमता एवं गति वाली मिलनी लगी हैं।

23.7 ऊर्जा संसाधन

आर्थिक विकास तथा जीवन को सुख सुविधा से सम्पन करने में ऊर्जा एक आवश्यक निवेश के रूप में महत्वपूर्ण योगदान देता है। ऊर्जा संसाधन के बिना आधुनिक जीवन की कल्पना करना संभव नहीं लगता। दिन–प्रतिदिन ऊर्जा की खपत बढ़ती ही जा रही है। ऊर्जा अपने विभिन्न रूपों में भारत में उपलब्ध हैं। आगे आने वाले अनुच्छेदों में हम इस पर विस्तृत चर्चा करेंगे।

23.8 ऊर्जा के स्रोत एवं उनके वर्गीकरण

ऊर्जा के कई स्रोत हैं। इन स्रोतों को भिन्न–भिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है। वर्गीकरण का एक प्रकार है, जिसमें ऊर्जा को वाणिज्यिक तथा अवाणिज्यिक स्रोतों के रूप में विभाजित किया जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी लोग मानवीय श्रम या श्रम शक्ति, पशु शक्ति, गोबर, फसलों के अपशिष्ट भागों का उपयोग ऊर्जा के स्रोत के रूप में करते हैं, क्योंकि ये वस्तुएँ आसानी से और सस्ते में उपलब्ध होती हैं। इन्हें कम लागत के ऊर्जा संसाधन कह सकते हैं। इसके ठीक विपरीत ऊर्जा के स्रोत जिनका शहरी क्षेत्रों में प्रयोग होता है वे मूलतः वाणिज्य प्रधान होते हैं। इनमें शामिल हो सकते हैं कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, रसोई गैस एवं बिजली। इन सभी साधनों को वाणिज्यिक ऊर्जा स्रोत कहते हैं। परंतु कुछ समय से ग्रामीण इलाकों में भी परिदृश्य बदलता नजर आ रहा है।

ऊर्जा संसाधनों को दूसरे आधार पर भी वर्गीकृत किया गया है, जो मूलतः स्रोतों की सजीवता पर आधारित हैं। जैसे खनिज संसाधनों में कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, रेडियोधर्मी खनिज इत्यादि सभी एक निश्चित समय के पश्चात् समाप्त हो जाएंगे, परन्तु इसके विपरीत प्रवाही जल, सूरज की किरणें, पवन, समुद्री लहरें, गरम जल के झरने, बायोगैस इत्यादि ऊर्जा के ऐसे स्रोत हैं जो अक्षय हैं, ये समाप्त या नष्ट नहीं होते। ऊर्जा के इन स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा प्रदूषणमुक्त होती है।

ऊर्जा के खनिज स्रोतों में कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस शामिल है। इन सभी खनिजों में छिपी ऊर्जा वास्तविक रूप में सूर्य द्वारा प्राप्त ऊर्जा का एकत्रित रूप में अंश ही है जो अश्मीभूत हो गए। इन खनिजों को इसीलिए जीवाश्म ईंधन भी कहा जाता है। दूसरे प्रकार को रेडियोधर्मी या आण्विक खनिज कहा जाता है, इनसे प्राप्त ऊर्जा प्रदूषण युक्त होती है।

खनिजों के अलावा ऊर्जा के अन्य स्रोत हैं– प्रवाही जल, सूर्य, पवन, ज्वार एवं गरम पानी के झरने। इनसे प्राप्त ऊर्जा प्रदूषण मुक्त होती है।

ऊर्जा स्रोतों का एक और वर्गीकरण परम्परागत और गैर–परम्परागत स्रोतों के आधार पर भी किया जाता है। परम्परागत स्रोतों में कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस इत्यादि आते हैं। गैर–परम्परागत स्रोतों में सूर्य, पवन, ज्वार, गरम झरने एवं बायोगैस इत्यादि सम्मिलित हैं।

- ईंधन की लकड़ी, गोबर तथा फसलों के अपशिष्ट पदार्थ इत्यादि सभी परम्परागत या गैर–वाणिज्यिक ऊर्जा के स्रोत कहलाते हैं।
- कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, जल–प्रपात एवं यूरेनियम, थोरियम (आण्विक खनिज) इत्यादि परम्परागत स्रोत के अन्तर्गत आते हैं।
- सूर्य, पवन, बायोगैस, ज्वार, गरम पानी का झरना इत्यादि ऊर्जा के गैर–परम्परागत स्रोत हैं। इन सभी परम्परागत स्रोतों से ऊर्जा का उत्पादन अभी भी प्रारंभिक विकास की अवस्था में है। उचित तकनीकी प्रविधियों के अभाव में इन स्रोतों का व्यापक दोहन नहीं हो पा रहा है।
- गैर परम्परागत ऊर्जा के स्रोत महत्वपूर्ण है इसलिए कि ये सभी प्रदूषण मुक्त ऊर्जा प्रदान करते हैं तथा इनका पुनर्चक्रण संभव है।

23.9 विद्युत का बढ़ता उत्पादन एवं उपभोग

विद्युत ऊर्जा का बहुमुखी एवं सुविधाजनक रूप है। जब विद्युत के उत्पादन में कोयला, पेट्रोलियम अथवा प्राकृतिक गैस का उपयोग होता है तब इसे 'ताप विद्युत' कहते हैं। प्रवाहमय जल स्रोत से उत्पन्न शक्ति को 'जल–शक्ति' या जल विद्युत कहते हैं। इसके अतिरिक्त विद्युत उत्पादन आण्विक खनिजों के विखण्डन से भी किया जाता है। जिसे परमाणु–बिजली कहते हैं। यह भी ताप विद्युत का ही एक रूप है, परंतु इसका स्रोत भिन्न है तथा इसके लिए उच्च विकसित तकनीक की आवश्यकता होती है।

भारत में सन् 1947 में प्रति व्यक्ति बिजली की उपलब्धि मात्र 2.4 किलो वाट प्रति घंटे थी, जो 1995-1996 के अन्तराल में बढ़कर 53 किलो वाट प्रति घंटे हो गई। व्यापक

टिप्पणी

सुधार एवं उत्पादन के बावजूद भी बिजली की प्रति व्यक्ति उपलब्धता विश्व के बहुत से देशों की तुलना में काफी कम है।

भारत में लगभग 600,000 गाँव हैं। 1947 में बमुश्किल 300 ग्रामों में ही बिजली उपलब्ध थी। आज बिजली करीब 5 लाख गाँवों में उपलब्ध है। यह इसलिये संभव हो सका क्योंकि 1947 से 2005 तक के अन्तराल में बिजली उत्पादन में 85 गुणा की अभिवृद्धि हुई। कुल संस्थापित उत्पादन क्षमता जो 1947 में लगभग 1400 मेगावाट थी आज बढ़कर (31 मार्च 2005 तक) 1,18,419.09 मेगावाट तक हो गई। इसमें 80,902.45 मे.वा. ताप विद्युत, 30.935.63 मे.वा. जल विद्युत 3811.01 मे.वा. पवन ऊर्जा तथा 2770 मे.वा. आणविक बिजली शामिल हैं।

आइये हम सब देखें कि विगत पांच दशकों में विद्युत के वास्तविक उत्पादन कैसा रहा। 1950-51 में कुल विद्युत उत्पादन 6.6 अरब कि.वा.घं. था जो 1995-96 तक बढ़कर 415 अरब कि.वा.घं. हो गया। इसमें से 380 अरब कि.वा.घं. की ही विस्तृत जानकारी उपलब्ध है। बाकी के 35 कि.वा.घं. 'उपयोग के लिए नहीं' शीर्षक में अंकित थे। जल विद्युत का उत्पादन 1950-51 में 2.5 अरब कि.वा.घं. था। 45 वर्षों में यह बढ़कर 72.5 अरब कि.वा.घं. हो गया (1995-96 तक)। इसी प्रकार ताप विद्युत का उत्पादन भी जल विद्युत उत्पादन से कोई ज्यादा भिन्न नहीं था। ताप विद्युत उत्पादन 1950-51 में 2.6 अरब कि.वा.घं. था। यह वर्तमान जल विद्युत उत्पादन की तुलना में चार गुना से भी अधिक है। इस अवधि में आण्विक विद्युत उत्पादन का कुल उत्पादन में स्थान नगण्य था।

पाठगत प्रश्न 23.3

I. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए—

(क) भारत में ऊर्जा संयंत्रों के दो प्रसिद्ध प्रकारों का नाम बताइए।

(i) _____ (ii) _____

(ख) उस पारम्परिक ऊर्जा स्रोत का नाम बताइए जो नवीकरणीय है।

_____

(ग) तीन खनिजों के नाम बताइए जिनका उपयोग विद्युत उत्पादन में होता है।

(i) _____ (ii) _____ (iii) _____

II. सही विकल्प चुनिए—

1. निम्नलिखित में से किस क्षेत्र में पिछले कुछ वर्षों में बिजली के उपयोग में तेजी से वृद्धि हुई है—

(क) कृषि (ख) उद्योग (ग) परिवहन (घ) इनमें से कोई नहीं

2. निम्नलिखित में से कौन सा ऊर्जा का गैर–परम्परागत प्रकार है?

   (क) तापीय ऊर्जा (ख) जल विद्युत (ग) सौर ऊर्जा (घ) परमाणु ऊर्जा

3. निम्नलिखित विद्युत ऊर्जा प्रकारों में से कौन से प्रकार का सर्वाधिक योगदान कुल विद्युत उत्पादन में होता है–

ञ (क) जल विद्युत (ख) ताप विद्युत (ग) परमाणु ऊर्जा (घ) पवन ऊर्जा।

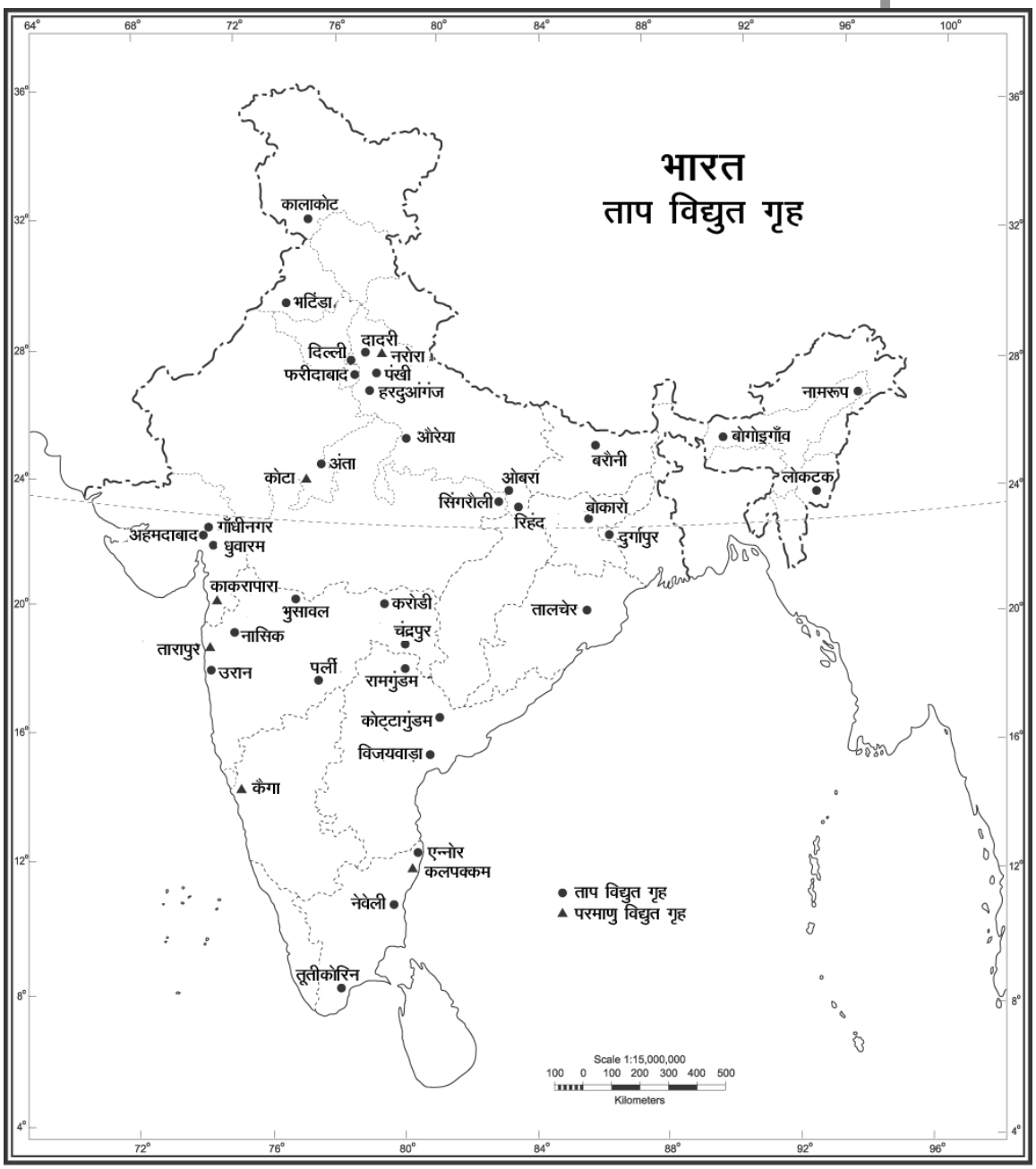

Based upon Survey of India Outline Map printed in 1990
The territorial waters of India extened into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the aporopriate base line.
The boundary of Meghalaya shown of this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971, but has yet to be verified
Responsibility for correctness of internal details shown on the map rests with the publisher.

© Government of India copyright, 1996

चित्र 23.7 भारत : ताप विद्युत गृह

टिप्पणी

23.10 ताप विद्युत स्रोत

ताप विद्युत के प्रमुख स्रोत कोयला, डीजल एवं प्राकृतिक गैस है जिनका प्रयोग विद्युत उत्पादन में होता है। ताप विद्युत ही देश में बिजली की आपूर्ति में सबसे अधिक योगदान करती है। विद्युत उत्पादन के अधिष्ठापित संयंत्रों से ताप विद्युत की क्षमता, जलविद्युत से तीन गुना अधिक है। 2004-2005 में ताप विद्युत का योगदान 80,903 मे.वा. रहा है जो कि देश में विद्युत उत्पादन (1,18,419 मे.वा.) का लगभग 60 प्रतिशत था। सन् 1975 में राष्ट्रीय ताप विद्युत निगम (एन.टी.पी.सी.) की स्थापना के बाद ताप विद्युत के योगदान में लगातार तीव्र वृद्धि हो रही है। वर्तमान में एन.टी.पी.सी. के अन्तर्गत कोयले पर आधारित 13 सुपर ताप विद्युत परियोजनाएँ तथा 7 गैस/द्रव ईंधन पर संचालित संयंत्र चल रहे हैं। वर्ष 2004-2005 में एन.टी.पी.सी. ने 24,435 मेगावाट ताप विद्युत का उत्पादन किया जो देश में उत्पादित ताप विद्युत का 30 प्रतिशत था। कोयले पर आधारित ताप विद्युत संयंत्रों की स्थापना कोयले की खदानों के समीपस्थ क्षेत्र में की गई ताकि संयंत्र तक परिवहन लागत बचाई जा सके। विद्युत का सम्प्रेषण दूरस्थ क्षेत्रों में करने में भी किफायती साबित होता है हालांकि संप्रेषण में कुछ शक्ति ह्रास अवश्य होता है।

सुपर ताप विद्युत संयंत्रों की स्थापना भी कोयले की खदानों के समीप की गई है। ये हैं—सिंगरौली (उत्तर प्रदेश), कोरबा (छत्तीसगढ़), रामागुन्डम (आन्ध्रप्रदेश), फरक्का (पश्चिम बंगाल), विन्ध्याचल (मध्य प्रदेश), रिहन्द (उत्तर प्रदेश), कावस (गुजरात), गांदार (गुजरात) तथा तालचेर (उड़ीसा)। इनमें से अधिकांश संयंत्रों ने अपनी कार्यदक्षता एवं लाभांश को प्लाण्ट लोड फैक्टर को प्रोन्नत कर बढ़ा लिया है (राष्ट्रीय औसत 63% की तुलना में 78%)।

रेल विभाग अपनी मुख्य लाइनों का विद्युतीकरण करने की योजना कार्यान्वित करना चाहता है और इसके लिए वह प्रमुख कोयला क्षेत्रों के निकट अपने सुपर ताप विद्युत केन्द्र स्थापित कर रहा है। भारतीय रेल ने अपना सुपर ताप विद्युत संयंत्र नेव्हेली (तमिलनाडु) में स्थापित किया है। इसे कोयले की आपूर्ति नेव्हेली लिग्नाइट कोल क्षेत्र से की जाती है।

कोयला पर आधारित ताप विद्युत संयंत्रों के साथ आजकल की नवीनतम प्रवृत्ति डीजल तथा प्राकृतिक गैस पर आधारित ताप विद्युत संयंत्र को प्रोत्साहित करना है। ऐसे संयंत्रों को विपणन के अथवा उपयोग के क्षेत्र या बाजार के केन्द्र के पास स्थापित किया जा सकता है। तेल तथा गैस पर आधारित ताप बिजली संयंत्रों को लगाने व चालू करने की अवधि सामान्यतः बहुत छोटी होती है। इसके अलावा पेट्रोलियम/गैस पर आधारित संयंत्र की उत्पादन क्षमता भी कोयले पर आधारित संयंत्रों से अच्छी होती है। परन्तु इन संयंत्रों के कार्यशील रहने के लिए पेट्रोलियम या प्राकृतिक गैस को पाइप लाइन बिछाकर अनवरत आपूर्ति करना होता है।

चूँकि भारत खनिज तेल एवं प्राकृतिक गैस संसाधनों में समृद्ध नहीं है, इसलिए भारत को इनका तथा नेप्था आदि का मध्य–पूर्व खाड़ी के देशों से आयात करना पड़ता है। महाराष्ट्र के कोंकण तटवर्ती क्षेत्र में इन्हीं आयातित खनिज तेल एवं अन्य सामग्रियों पर

आधारित डाभोल ताप विद्युत संयंत्र स्थापित किया गया है। इस संयंत्र की स्थापना भारत में नई प्रवृत्ति का संकेत हैं।

खनिज तेल पर आधारित अधिकांश ताप विद्युत संयंत्र भारत के उत्तर–पूर्व सुदूर क्षेत्रों तथा हिमालय क्षेत्र में स्थापित किए गए हैं। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि दक्षिण के कर्नाटक तथा केरल राज्यों में एक भी ताप–विद्युत संयंत्र की स्थापना आज तक नहीं की गई है। क्या आप इसका कारण समझा सकते हैं?

23.11 जल शक्ति संसाधन

जल शक्ति संसाधन तापशक्ति संसाधन से कई तरीकों में भिन्न है। जल–शक्ति के संसाधन अक्षय हैं, इन्हें जब चाहे आवश्यकतानुसार पुनः उपयोग कर सकते हैं। दूसरे, यह संसाधन प्रदूषण मुक्त है। इसकी सालाना आवर्तन लागत या संसाधन के रख–रखाव की लागत बहुत कम होती है। इसके बावजूद इस संसाधन की दो प्रमुख कमियां हैं—जल विद्युत संयंत्र की स्थापना में प्रारंभिक पूंजी–निवेश बहुत अधिक होता है, खासकर उन क्षेत्रों में जहां पूरे वर्ष भर जल की सतत आपर्ति बनाए रखने के लिए जल को बड़े जलाशय निर्माण कर तथा एकत्रित कर सुरक्षित रखा जाता है। दूसरे संयंत्रों की स्थापना में लगी पूंजी की सगर्भता अवधि बहुत लम्बी होती है।

काँगो, रूस, कनाड़ा, संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद भारत अपनी संभावित क्षमता 41,000 मेगावाट के साथ पाँचवे स्थान पर है।

जल विद्युत शक्ति –भारत में जल विद्युत का विकास, 19वीं सदी के अन्तिम दशक में सन् 1897 में दार्जिलिंग में बिजली की आपूर्ति हेतु जल विद्युत संयंत्र की स्थापना से शुरू हुआ। इसके बाद 1902 में कर्नाटक के शिवसमुद्रम में कावेरी नदी के जलप्रपात पर दूसरे जल विद्युत संयंत्र की स्थापना हुई। बाद में पश्चिमी घाट पर्वतीय क्षेत्र में कुछ संयंत्र डाले गए जिससे विद्युत की आपूर्ति मुम्बई को हो सके। जल विद्युत शक्ति के कुछ संयंत्र उत्तर भारत में उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और दक्षिण भारत में तमिलनाडु एवं कर्नाटक में 1930 के दशक में स्थापित किए गए। इस प्रकार से स्थापित संयंत्रों से पूरे देश में बिजली उत्पादन की सकल क्षमता 1947 तक 508 मेगावाट हो गई थी। इसके पश्चात् देश की पंचवर्षीय योजनाओं के तहत सघन प्रयास किए गए। कई बहुउद्देश्यीय योजनाओं को संचालित किया गया ताकि जल विद्युत शक्ति का समुचित और शीघ्र विकास हो सके।

वर्ष 2000–01 के अंत तक जल विद्युत की स्थापित क्षमता बढ़कर 25,219.55 मेगावाट हो गई जो कि विद्युत की कुल स्थापित क्षमता के एक–चौथाई के करीब था। ऊर्जा का सस्ता, प्रदूषण मुक्त व पुनःचक्रीय स्रोत होते हुए भी स्वतंत्रता के पश्चात् इसका महत्व घटा है। कुल ऊर्जा उत्पादन में इसका हिस्सा 1950–51 में 49 प्रतिशत से घटकर 2000–01 में केवल 14.9 प्रतिशत रह गया। इसके बाद भी जल विद्युत उत्तरी, पश्चिमी व दक्षिणी ग्रिड में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उत्तर–पूर्वी ग्रिड तो प्रमुख रूप से जल शक्ति पर ही निर्भर है।

देश में शक्ति की कमी के संदर्भ में जल विद्युत शक्ति केन्द्रीय भूमिका निभा सकता है। भारतीय नदियाँ प्रतिवर्ष 1677 करोड़ घन मीटर जल सागरों में बहा देती हैं। केन्द्रीय जल एवं ऊर्जा आयोग ने इन नदियों की जल विद्युत क्षमता 60 प्रतिशत लोड फैक्टर पर लगभग 40 मिलियन किलोवाट आकलित की है। केन्द्रीय विद्युत परिषद ने यह क्षमता 60 प्रतिशत लोड फैक्टर पर 84,000 मेगावाट आँकी है।

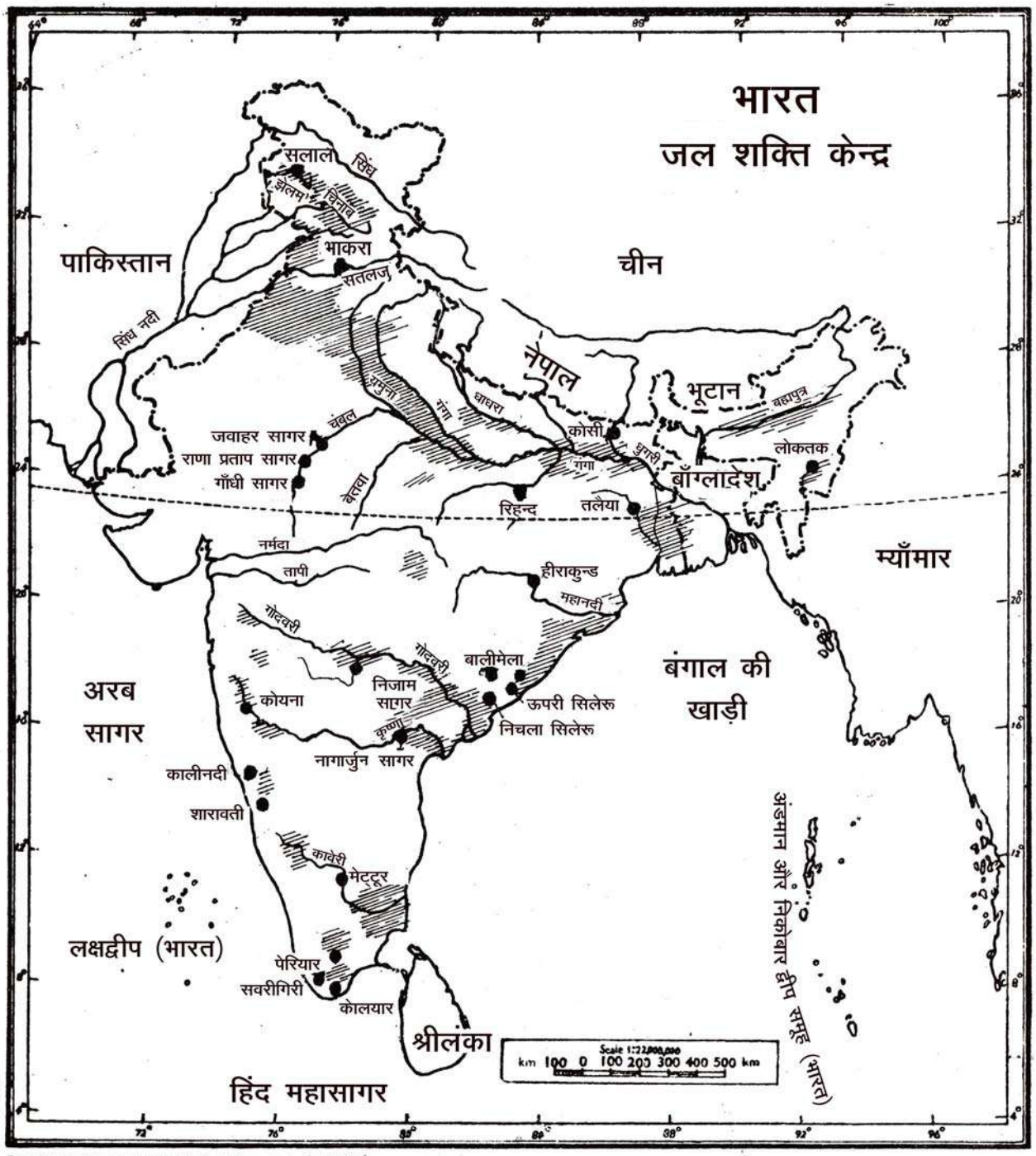

Based upon Survey of India Outline Map printed in 1987.
The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.
Responsibility for correctness of internal details shown on the map rests with the publisher.

© Government of India copyright, 1987.

चित्र 23.8 भारत : जल शक्ति केन्द्र

यह वार्षिक ऊर्जा उत्पादन की लगभग 450 करोड़ इकाई के बराबर है। उत्पादन क्षमता का बेसिन अनुसार वितरण सारिणी में दिया गया है।

सारिणी 23.5 भारतः नदी बेसिन अनुसार अनुमानित जल विद्युत क्षमता (अन्तर्निहित जल विद्युत शक्ति क्षमता 60 प्रतिशत लोड पर हजार मेगावाट में)

बेसिन का नाम	अन्तर्निहित क्षमता	% सकल क्षमता
सिंध	20.0	23.8
ब्रह्मपुत्र	35	41.7
गंगा	11.0	13.1
मध्य भारत के बेसिन	3.0	3.6
पश्चिम की ओर बहने वाली नदियाँ	6.0	7.1
पूर्व की ओर बहने वाली नदियाँ	9.0	10.7
कुल	**84.0**	**100.00**

उपरोक्त अन्तर्निहित जल विद्युत क्षमता कई भौतिक एवं आर्थिक कारकों पर आश्रित हैं। इन कारकों में से नदी पथ, नदी जल की राशि, नदी के जल प्रवाह में निरंतरता (ये सब वर्षा जल के कम या अधिक होने पर आश्रित हैं), भौम्याकृति, विद्युत शक्ति के अन्य स्रोत के उपलब्ध होने, स्थानीय आर्थिक विकास के स्तर (जिस पर विद्युत शक्ति की मांग निर्भर है) एवं स्थान विशेष का प्रौद्योगिकी स्तर, इत्यादि महत्वपूर्ण हैं। नदी में नियमित रूप से तीव्र प्रवाह के साथ पर्याप्त जल की राशि का मिलते रहना जल–विद्युत शक्ति के संयंत्र की स्थापना के लिए उपयुक्त परिस्थितियां प्रदान करती हैं। स्थान विशेष पर वर्षा जल की विशेष उपलब्धता तथा ढाल वाली भूमि की आकृतियां नदी–बेसिन में जल एवं प्रवाह दोनों को प्रभावित करते हैं। चूँकि उपर्युक्त कारकों के सहित स्थितियां पूरे देश में असमान रूप से विद्यमान है, इसलिए जल–विद्युत शक्ति की क्षमता का भी पूरे देश में असमान वितरण है।

भारत में उत्तरी पर्वतीय श्रेणियों से निकलने वाली नदियां इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण हैं। इन नदियों को हिमानियों तथा हिम क्षेत्रों से जल प्राप्त होता है इसलिए इनमें वर्ष भर नियमित जल प्रवाह बना रहता है। नदी के प्रवाह क्षेत्र की ऊँची नीची, कटाव युक्त भूमि संरचना के कारण नदी वेगवती बन जाती हैं। इसके साथ इस क्षेत्र में नदी जल के अन्य उपयोग करने की कोई विशेष स्पर्धा न होने से भी जल–प्रवाह अवरुद्ध नहीं है।

इस पर्वतीय क्षेत्र का उत्तर–पूर्वी भाग जिसमें ब्रह्मपुत्र बेसिन प्रमुख है, सर्वाधिक जल–विद्युत शक्ति क्षमता का बेसिन है। दूसरा स्थान भारत के पश्चिमोत्तर क्षेत्र में बहने वाली सिंधुनदी का है। हिमालय पर्वत श्रृंखलाओं से निकलने वाली गंगा की अनेक सहायक नदियों में संभावित जल–विद्युत शक्ति क्षमता कुल 11,000 मेगावाट की अनुमानित है।

टिप्पणी

इस प्रकार संभावित सकल जल–विद्युत क्षमता का तीन–चौथाई भाग हिमालय पर्वत श्रृंखला से निकलने वाली नदियों के बेसिनों में सीमित है।

भारत के प्रायद्वीपीय क्षेत्र की नदियां इस संदर्भ में सशक्त नहीं है। यहां की समस्त नदियां वर्षा ऋतु पर आश्रित हैं। इसलिये इन नदियों में जल प्रवाह एवं वेग मानसून के समय प्रचण्ड रहता है किन्तु वर्षा ऋतु उपरान्त एक लम्बे समय तक नदी में जल की राशि एवं उसका प्रवाह दोनों अनिश्चित हो जाते हैं। इन्हीं सब कारणों से नदी–जल का संचय करना आवश्यक हो जाता है। जल विद्युत शक्ति की क्षमता का अधिकांश भाग नदियों के पर्वतीय क्षेत्रों में है जो नदियों के ऊपरी एंव मध्य प्रवाह क्षेत्रों में होते हैं। इन पर्वतीय क्षेत्रों में जमीन ऊंची–नीची व ऊबड–खाबड़ होने से सिंचाई हेतु संसाधन विकसित करने के लिए उपयुक्त नहीं होती। इस कारण जल–विद्युत शक्ति संयंत्र के स्थापित करने में जल संसाधन को किसी प्रकार के अन्य प्राथमिकता वाले विकास संबंधित विरोध का भी सामना नहीं करना पड़ता। विद्युत शक्ति उत्पादन क्षमता के संभावित क्षेत्र ऊपरी नर्मदा बेसिन, पश्चिमी घाट, उत्तर–पश्चिमी कर्नाटक तथा अन्नामलाई पहाड़ियों में विद्यमान हैं। इसके बावजूद भी दक्षिण भारत के राज्यों में जल विद्युत शक्ति का उत्पादन अपेक्षाकृत ज्यादा होता है क्योंकि ये क्षेत्र प्रमुख कोयला क्षेत्रों से बहुत दूर है।

सारिणी 23.6 भारत के विभिन्न राज्यों में जल-विद्युत शक्ति संयंत्रों की स्थिति

राज्य	जल-विद्युत संयंत्रों के नाम
जम्मू एवं कश्मीर	निचली झेलम, चिनाब पर सलाल, दूल हस्ती, कर्रा
पंजाब और हिमाचल प्रदेश	भाखड़ा–नंगल, (सतलज पर); ब्यास पर देहर, गिरी–बाटा, अंधरा, बिनवा रुकती, रोंगतांग, भाबानगर, बस्सी, बैरा–सियूल, चामेरा; नाथपा–झाकरी (सतलज नदी पर भारत की सबसे बड़ी जल–विद्युत परियोजना)
उत्तर प्रदेश	रिहन्द, खोडरी, टोन्स पर चिब्रो
उत्तराखण्ड	भागीरथी पर टिहरी बांध
राजस्थान	राणाप्रताप सागर एवं जवाहर सागर (चम्बल नदी पर)
मध्य प्रदेश	चम्बल नदी पर गान्धी सागर, पेंच, बरगी, (नर्मदा नदी पर), सोन नदी पर बाण सागर
बिहार	कोसी
झारखण्ड	सुबर्णरेखा, मैथन, पन्चेत, तिलैया (अन्तिम तीनों दामोदर घाटी योजना में)
पश्चिम बंगाल	पंचेत
उड़ीसा	महानदी पर हीराकुण्ड, बालीमेला

टिप्पणी

उत्तर–पूर्वी राज्य	दिखू, दोयांग (दोनों नागालैंड में), गोमती (त्रिपुरा) लोक–तक (मणिपुर), कोपिली (असम), खाण्डोंग एवं किर्दिम कुलाई (मेघालय), सेरलुई एवं बाराबी (मिजोरम) रंगा नदी (अरुणाचल प्रदेश)
गुजरात	ऊकई (तापी), कदाना (माही)
महाराष्ट्र	कोयना, भिवपुरी (टाटा हाइड्रो इले. वर्क्स), खोपोली, भोला, भीरा, पुर्ना, वैतर्णा, पैथोन, भटनागर बीड
आन्ध्र प्रदेश	निचली सीलेरू, ऊपरी सीलेरू, मचकुन्द, निजाम सागर, नागार्जुन सागर, श्रीसैलम (कृष्णा नदी)
कर्नाटक	तुंगभद्रा, सारावती, कालिन्दी, महात्मा गांधी (जोग जलप्रपात), भद्रा, सिवसमुद्रम (कावेरी), शिमसापुरा, मुनीराबाद, लिंगनामक्की
केरल	इडिक्की (पेरियार), सबरीगिरी, कुट्टिआद्दी, शोलयार सेंगुलम, पल्लीवासल, कल्लाड, नेरियामंगलम, पराम्बीकुलम, अलियार, पोरिंगल, पोनियार
तमिलनाडु	पैकरा, मेट्टूर, कोडयार, शोलयार, अलियार, साकरपट्टी, मोयार, सुरूलियार, पापनासम।

23.12 परमाणु शक्ति

भारत ने यूरेनियम व थोरियम जैसे परमाणु खनिजों से ऊर्जा उत्पादन करने की प्रौद्योगिकी विकसित कर ली थी। परमाणु शक्ति को उत्पन्न करने के लिए परमाणु रिएक्टर की स्थापना हेतु बहुत बड़ी मात्रा में पूंजी निवेश के साथ उच्च कोटि की तकनीकी सुविज्ञता की आवश्यकता होती है। भारत में परमाणु शक्ति का कुल उत्पादित शक्ति (सभी स्रोतों से) में 2 प्रतिशत का योगदान है। परन्तु आगामी भविष्य में परमाणु शक्ति ऊर्जा का उदीयमान स्रोत सिद्ध होगा। जब भविष्य में ऊर्जा के अन्य स्रोत जैसे कोयला, पेट्रोलियम इत्यादि समाप्ति की कगार पर आ जायगें, यह शक्ति के पूरक स्रोत के रूप में भी कारगर सिद्ध होगा।

परमाणु शक्ति कार्यक्रम पिछली शताब्दी के पाँचवें दशक में प्रारंभ किए गए और अगस्त 1948 में टाटा परमाणु ऊर्जा आयोग की स्थापना एक शीर्ष संस्थान के रूप में की गई जो परमाणु कार्यक्रमों पर निर्णयात्मक गतिविधि का संचालन करता है। परन्तु इस दिशा में प्रगति परमाणु ऊर्जा संस्थान की ट्राम्बे में 1954 में स्थापना के बाद ही हो सकी। इसी संस्थान को 1967 में एक नया नाम ''भाभा परमाणु शोध केन्द्र'' (बार्क) दिया गया। भारत का सर्वप्रथम परमाणु शक्ति केन्द्र (320 मेगावाट शक्ति) मुम्बई के पास तारापुर

टिप्पणी

में 1969 में स्थापित किया गया। इसके बाद परमाणु रिएक्टर 'रावत भाटा' (300 मेगावाट) कोटा (राजस्थान), कलपक्कम (400 मेगावाट) तमिलनाडु, नरोरा (उत्तर प्रदेश), कैगा (कर्नाटक) एवं काकरापारा (गुजरात) में भी स्थापित हुए। इस प्रकार वर्तमान में परमाणु शक्ति का उत्पादन 10 इकाइयों से जोकि 6 केन्द्रों में अवस्थित हैं, से हो रही हैं। परमाणु ईंधन एवं भारी जल की आवश्यकताओं की आपूर्ति क्रमशः ''परमाणु ईंधन संयंत्र समूह'' हैदराबाद (आंध्रप्रदेश) तथा 'भारी जल संयंत्र' वड़ोदरा (गुजरात) से की जाती है।

2004-05 में 16,707 मे.वा. परमाणु शक्ति का उत्पादन हुआ जो कि देश के कुल विद्युत ऊर्जा उत्पादन का एक छोटा सा अंश है। परमाणु ऊर्जा विभाग (डी.ए.ई.) के पास बहुत ही महत्वाकांक्षी परमाणु शक्ति योजना है जिसका लक्ष्य 2020 तक 20,000 मे.वा. को प्राप्त करना है।

परमाणु शक्ति के उत्पादन की प्रक्रिया जटिल एवं जोखिम भरी है। जरा सी चूक अथवा सावधानियों के पालन में भूल बहुत बड़ा हादसा पैदा कर सकती है जिससे संयंत्र के परिवेष एवं आसपास के क्षेत्रों में भारी तबाही तथा हजारों लोगों की जानें भी जा सकती हैं। इसलिये परमाणु शक्ति केन्द्रों की सुरक्षा के कठोर उपायों की नितान्त आावश्यकता है।

23.13 विद्युत उत्पादन के स्रोतों के आधार पर क्षेत्रीय वर्गीकरण

विद्युत उत्पादन के स्रोतों के आधार पर तीन प्रमुख क्षेत्रों की पहचान की गई हैः—

(क) **जल-विद्युत प्रधान क्षेत्रः** इस क्षेत्र के अन्तर्गत शामिल राज्यों में कर्नाटक, केरल, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, जम्मू—कश्मीर, मेघालय, नागालैंड, त्रिपुरा और सिक्किम राज्य आते हैं। ये राज्य कोयला खनिज क्षेत्रों से काफी दूर स्थित है परन्तु यहां की भौगोलिक परिस्थितियां जल—विद्युत शक्ति उत्पादन में यथेष्ठ सहायक हैं।

(ख) **ताप-शक्ति प्रधान क्षेत्रः** इस क्षेत्र में सम्मिलित राज्य हैं—पश्चिम बंगाल, झारखण्ड, बिहार, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, गुजरात, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, असाम, दिल्ली, हरियाणा और पंजाब। इनमें से अधिकांश राज्यों में कोयले के अपार भण्डार हैं जिनका उपयोग विद्युत ऊर्जा के उत्पादन में होता है। पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार में यद्यपि कोयला भण्डार के क्षेत्र नहीं हैं फिर भी इन राज्यों को रेलवे लाइनों द्वारा सीधी पहुँच उपलब्ध है। ये राज्य आजकल ऊर्जा के स्रोतों में विविधता ला रहे हैं।

(ग) **परमाणु-शक्ति प्रधान क्षेत्रः** राजस्थान ही एक मात्र राज्य है जो इस के अन्तर्गत आता है। इस राज्य में पचास प्रतिशत से ज्यादा वाणिज्य ऊर्जा परमाणु शक्ति पर आधारित है। यह इसलिए कि इस राज्य में जल तथा कोयला दोनों का अभाव है।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 23.4

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

   (क) कोयले के प्रयोग से विद्युत उत्पादन _____ शक्ति है।
   (जल–विद्युत तापीय)

   (ख) तेज प्रवाहित जल की शक्ति से उत्पन्न विद्युत को _____ कहते हैं।
   (जल–विद्युत ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा)

   (ग) वे दो खनिज जिनका प्रयोग परमाणु शक्ति के उत्पादन में होता है–
   (i) _____ (ii) _____
   (कोयला, थोरियम, यूरेनियम)

   (घ) भारत में सर्वप्रथम परमाणु शक्ति स्टेशन का विकास _____ में हुआ।
   (रावतभाटा, तारापुर)

2. निम्न प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए–

   (क) जल–विद्युत शक्ति के दो मुख्य लाभ बताइए।

   (i) _____ (ii) _____

   (ख) जल–विद्युत शक्ति उत्पादन क्षमता में भारत का विश्व में कौन सा स्थान है?

   _____

   (ग) प्राकृतिक गैस पर आधारित दो ताप शक्ति संयंत्रों के नाम बताइए जो उत्तर प्रदेश में स्थित हैं–

   (i) _____ (ii) _____

   (घ) भारत के किस क्षेत्र ने अपनी जल–शक्ति क्षमता का सबसे अधिक विकास कर लिया है।

   _____

टिप्पणी

23.14 ऊर्जा के गैर-परम्परागत स्रोत

ऊर्जा के परम्परागत स्रोतों में कोयला, खनिज तेल, गैस आदि आते हैं जो धीरे–धीरे समाप्त होते जा रहे हैं। जल विद्युत ऊर्जा भविष्य की बढ़ती बिजली की मांगों की आपूर्ति अकेले नहीं कर सकती है। इसलिये ऊर्जा के अन्य वैकल्पिक स्रोतों की खोज एवं विकास करने की आवश्यकता प्रबल होती जा रही है। सूर्य, पवन, ज्वारीय लहरें, जैविक अपशिष्ट, गरम जल के झरने ऐसे ही कुछ महत्वपूर्ण स्रोत हैं जिन्हें ऊर्जा शक्ति के वैकल्पिक स्रोत के रूप में विकसित किया जा सकता है। इन्हें ही ऊर्जा के गैर–परम्परागत स्रोत कहा जाता है। ये सभी गैर–परम्परागत स्रोत बार–बार नवीकृत किए जा सकते हैं। ये सभी स्रोत प्रदूषणमुक्त हैं। हम इन्हीं में से कुछ महत्वूपर्ण स्रोतों के हमारे देश में विकास के सन्दर्भ में चर्चा करेंगे।

(क) सौर ऊर्जा: पृथ्वी के लिए सूर्य ही प्राथमिक रूप से सभी प्रकार की ऊर्जा का स्रोत है। सूर्य ही सर्वाधिक सजीव एवं सशक्त एवं प्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध होने वाली शक्तियों का केन्द्र है। भारतवर्ष उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र में आने वाला विशाल देश है जहां प्रचुर सौर–प्रकाश प्रतिदिन लम्बे समय तक मिलता रहता है। यहां पर अपरमित संभावनाएं हैं जिसके अन्तर्गत बहुत कम लागत में सौर ऊर्जा को विद्युत शक्ति के रूप में विकसित कर सकते हैं।

सौर ऊर्जा को सोलर फोटो वोल्टिक (एस.पी.व्ही.) व्यवस्था द्वारा बैटरियों में कैद कर लिया जाता है। इस प्रकार की बैटरियों में समाहित सौर ऊर्जा को कई प्रकार से उपयोग में लाया जाता है—जैसे इससे उत्सर्जित तापीय ऊर्जा गरम करने में (पानी गरम करना, सोलर कुकर में खाना पकाना, खाद्यान्न को सुखाने में) प्रयुक्त होती है। सौर ऊर्जा का विकास तो पूरे देश में किया जा सकता है। परन्तु राजस्थान जैसे क्षेत्र जो इतने गरम, शुष्क एवं मेघाच्छादन से मुक्त रहते है, आदर्श क्षेत्र है जहां सौर ऊर्जा अच्छी तरह विकसित हो सकती है।

(ख) पवन ऊर्जा : पवन ऊर्जा को शक्ति के स्रोत के रूप में उन क्षेत्रों में विकसित किया जा सकता है जहां सालभर शक्तिशाली तेज रफ्तार वाली पवन चलती हों। पवन के वेग से चलने वाली पवनचक्की में पवन ऊर्जा का ही प्रयोग होता है। इस चक्की से न केवल विद्युत शक्ति उत्पन्न की जाती है, अपितु कई जगहों में सिंचाई के लिए पम्पों को संचालित किया जाता है। भारत में पवन ऊर्जा की संभावित क्षमता 45,000 मेगावाट है। इस संसाधन को विकसित करने के उपयुक्त स्थलों की पहचान की गई हैं जो तमिलनाडु, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक एवं केरल के अन्तर्गत आते हैं। पवन ऊर्जा क्षमता जो कि उपयोग की जा सकती है 13,000 मेगावाट तक सीमित है। वर्तमान में 2,438 मेगावाट

शक्ति का उत्पादन पवन ऊर्जा स्रोत से भारत में किया जा रहा है। इस प्रकार भारत की विश्व में स्थिति जर्मनी, संयुक्त राज्य अमेरिका, डेनमार्क और स्पेन के बाद पाँचवें स्थान पर है।

(ग) बायो-गैसः बायोगैस पशुओं के गोबर से प्राप्त की जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में आजकल घरेलू ईंधन के रूप में इसका बहुत प्रचलन हो रहा है। इसे पूरे देशभर में प्रचलित करने के लिए प्रोत्साहनयुक्त प्रयास किए जा रहे हैं।

बड़े शहरों और औद्योगिक केन्द्रो में शहरी व औद्योगिक अपशिष्ट बायोगैस के अन्य प्रमुख स्त्रोत हैं। इन पदार्थों का प्रयोग विद्युत उत्पादन या बायोगैस हेतु किया जा सकता है। इस दिशा में कार्य अभी प्राथमिक स्तर पर ही है। दिल्ली और कुछ अन्य बड़े शहरों में ऐसे संयंत्रों की स्थापना की गई है।

(घ) बायोमास ऊर्जाः खेत–खलिहान में पड़े कूड़ा–करकट अपशिष्ट या कृषि आधारित औद्योगिक इकाइयों से निष्कासित अपशिष्ट इत्यादि से पैदा की गई ऊर्जा को बायोमास ऊर्जा कहते हैं। देश में बायोमास ऊर्जा की संभावित क्षमता 19,500 मेगावाट है। अब तक 614 मेगावाट क्षमता वाले बायोमास शक्ति उत्पादन संयंत्र स्थापित किए गए हैं और 643 मेगावाट क्षमता के संयंत्र स्थापित करने की प्रक्रियाएं प्रगति पर हैं।

(ङ) ज्वारीय ऊर्जा : समुद्र में जब ऊंची लहरें उत्पन्न होती हैं तो उन लहरों में समाहित ऊर्जा को भी विकसित कर बिजली प्राप्त की जा सकती है। कुछ ऐसे महत्वपूर्ण स्थलों की पहचान कर ली गई हैं जहां ज्वारीय लहरों से बिजली उत्पन्न की जाएगी, ये हैं—कच्छ की खाड़ी एवं खम्भात (दोनों गुजरात में) तथा केरल के तटवर्ती क्षेत्र 150 मेगावाट क्षमता का एक संयंत्र केरल तट पर स्थापित किया गया है।

(च) भूतापीय ऊर्जाः भारत में भू–तापीय ऊर्जा के स्रोत सीमित हैं। कुछ महत्वपूर्ण स्थलों का चयन किया गया है जहां पर भू–तापीय ऊर्जा से बिजली उत्पन्न की जा सकती है। ये हैं हिमाचल प्रदेश (मनिकरन) तथा जम्मू एवं कश्मीर (लद्दाख में पूगा–घाटी)। इसके अलावा हिमाचल प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर, उत्तराखण्ड, झारखण्ड तथा छत्तीसगढ़ राज्यों में भी संभावित स्थलों की खोजबीन जारी है।

जैसा कि हम पहले चर्चा कर चुके हैं कि ऊर्जा के गैर–पारम्परिक स्रोत नवीकृत किए जा सकते हैं तथा वे प्रदूषण मुक्त भी होते हैं। भारत में विषम तथा असमान रूप में वितरित संसाधनों के उपयोग में गैर–परंपरागत स्रोत से प्राप्त ऊर्जा का प्रयोग लाभकारी सिद्ध होगा। परन्तु ऊर्जा के इन स्रोतों का विकास अभी अत्यन्त धीमी गति से हो रहा है। इसे गति प्रदान करने के लिए अधिक अच्छी और उन्नत तकनीक जो आर्थिक

टिप्पणी

रूप से उचित भी हो, की आवश्यकता है। इन दुविधाओं के बावजूद आने वाले भविष्य में ऊर्जा के ये ही स्रोत यथार्थ रूप में विश्वसनीय एवं अपरिहार्य रूप से शक्ति प्राप्त करने के स्रोत होंगे।

भारत के कोने–कोने में निर्माण उद्योगों व कृषि का विकास हो रहा है। इसलिए नैसर्गिक रूप से गैर परम्परागत स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा की अधिक माँग होगी।

पाठगत प्रश्न 23.5

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए।

1. गैर–परम्परागत स्रोतों से बिजली प्राप्त करने के कोई दो लाभ बताइए।

   (क) _____ (ख) _____

2. देश के कौन से क्षेत्र बायो–गैस संयंत्रों के प्रयोग से अधिक लाभान्वित हो रहे हैं?

   _____

3. गुजरात के उन दो स्थलों के नाम बताइए जहां ज्वार से ऊर्जा प्राप्त करने की योजना बनी है।

   (क) _____ (ख) _____

4. सौर–ऊर्जा के दोहन की दो प्रणालियों को बताइए।

   (क) _____ (ख) _____

5. पवन ऊर्जा से प्राप्त शक्ति के दो मुख्य उपयोग बताइए।

   (क) _____ (ख) _____

आपने क्या सीखा

खनिज एवं ऊर्जा संसाधनों की राष्ट्र के औद्योगिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वे औद्योगिक कच्चे माल एवं ईंधन प्रदान करते हैं। खनिजों को धात्विक और अधात्विक समूहों में वर्गीकृत किया गया है। धात्विक खनिज के समूह को आगे लौह और अलौह खनिजों में वर्गीकृत किया गया है। खनिज ईंधन होते हैं—कोयला, पेट्रोलियम (खनिज तेल) एवं प्राकृतिक गैस। भारत की स्थिति लौहयुक्त धात्विक खनिजों में अच्छी हैं। उच्च कोटि के लौह अयस्क भारत में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। भारत में अभ्रक एवं बाक्साइट खनिजों के विशाल निक्षेप हैं जो अच्छी गुणवत्ता के हैं। अभ्रक के मामले में भारत पूरे

विश्व में अग्रणी उत्पादकों में से एक है। भारत में कोयला ऊर्जा शक्ति का प्राथमिक स्रोत है। कोयला गोन्डवाना समूह के शैल स्तरों में एवं टर्शियरी काल के शैल स्तरों में मिलता है। गोन्डवाना कोयला क्षेत्रों में उपलब्ध कोयला का भण्डार एवं उत्पादन देश के सकल भण्डार एवं उत्पादन का 96 प्रतिशत है। पेट्रोलियम के भण्डार एवं उत्पादन के मामले में भारत की स्थिति संतोषप्रद नहीं है। असाम की पट्टी तथा गुजरात–खम्भात और बाम्बे हाई ऐसे दो महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं जहां से पेट्रोलियम का उत्पादन हो रहा है। यूरेनियम एवं थोरियम दो मुख्य परमाणु खनिज भारत में मिलते हैं। खनिज संसाधनों को जिन बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है उनमें से पहला है खनिज भण्डारों का तेजी से ह्रास होना, पारिस्थितिकीय समस्याएं, प्रदूषण एवं सामाजिक समस्याएं। खनिज संसाधनों के संरक्षण के लिए कई उपाय अपनाए जा रहे हैं। इन उपायों में पुनरुद्धार करना, पुनः चक्रीकरण, प्रतिस्थापन तथा अधिक दक्षतापूर्ण उपयोग आदि मुख्य हैं।

समुद्री तट तथा अप तट क्षेत्रों में, हाल ही में पेट्रोलियम कुओं में तेल प्राप्त हुए हैं। राजस्थान तथा आन्ध्रप्रदेश व तमिलनाडु के तटवर्ती क्षेत्रों में पेट्रोलियम क्षेत्र पाए गए। प्राकृतिक गैस के एक महत्वपूर्ण वाणिज्यिक ऊर्जा शक्ति के रूप में उभर कर आने से, देश में इसके उपलब्ध हो सकने वाले संभावित क्षेत्रों में जैसे पूर्वी समुद्री तट में कृष्णा, गोदावरी एवं महानदी के मुंहानों पर अन्वेषण से प्राकृतिक गैस के भण्डार का पता चला है।

ऊर्जा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ढांचागत संसाधन है, जिस पर देश का आर्थिक विकास आधारित होता है। कोयला, खनिज तेल, प्राकृतिक गैस, परमाणु शक्ति एवं जल–विद्युत शक्ति ये सभी ऊर्जा के प्रमुख स्रोत हैं। इन सभी स्रोतों को पारम्परिक स्रोत कहते हैं क्योंकि परम्परागत ऊर्जा उत्पादन इन्हीं स्रोतों से हो रहा है। कोयला, पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस को प्रयोग करने से ऊर्जा प्राप्त होती है, उसे ''ताप शक्ति'' कहते हैं। ये सभी स्रोत भविष्य में समाप्त हो जाएंगे, इन्हें पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसके अलावा इनके प्रयोग से विभिन्न प्रकार के प्रदूषण फैलते हैं। जल विद्युत शक्ति सतत् प्राप्त हो सकने वाला स्रोत है, जो प्रदूषण मुक्त भी है। इस स्रोत एवं ऊर्जा शक्ति उत्पादन में बहुत अधिक पूंजी का निवेश करना पड़ता है। इसके साथ ही परमाणु शक्ति उत्पादन में उच्च कोटि की प्रौद्योगिक सुविज्ञता तथा वैज्ञानिक सूझबूझ की आवश्यकता होती है। इस ऊर्जा के उत्पादन एवं विकास में बहुत सावधानी एवं सुरक्षित उपायों को हमेशा प्रयोग में लाना अनिवार्य है ताकि कोई अप्रत्याशित आकस्मिक दुर्घटना न होने पाए। ताप–शक्ति का योगदान सकल विद्युत उत्पादन का 70 प्रतिशत है। इसके बाद जल विद्युत शक्ति का योगदान आता जो 26 प्रतिशत है। परमाणु ऊर्जा शक्ति का योगदान मात्र 2.5 प्रतिशत ही है।

टिप्पणी

कोयला आधारित ताप विद्युत संयंत्रों की स्थापना या तो कोयला क्षेत्रों में ही हुई है अथवा उपभोग केन्द्रों के समीप। अधिकांश संयंत्रों की स्थापना मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड एवं उड़ीसा राज्य में हुई है। कुछ ताप–विद्युत संयंत्रों की स्थापना महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश राज्यों की सीमाओं पर की गई हैं। इन संयंत्रों से विद्युत की आपूर्ति इन राज्यों के दूर–दराज क्षेत्रों में की जाती है। भारत के दक्षिण राज्यों में जल–विद्युत शक्ति का विकास सन्तोषप्रद हुआ है। भारत ने अपने जल–शक्ति की संभावित क्षमता का करीब 50 प्रतिशत विकसित कर लिया है। सौर ऊर्जा, पवन, ज्वार, गरम झरने, बायोगैस इत्यादि शक्ति के वैकल्पिक स्रोत हैं। इन्हें ऊर्जा के गैर–परम्परागत स्रोत के रूप में जाना जाता है। इनको पुनः सजीव किया जा सकता है। ये प्रदूषणमुक्त स्रोत हैं। इनका कम लागत में उत्पादन एवं संचालन किया जा सकता है। उपयुक्त एवं आर्थिक रूप से व्यवहार्य प्रविधियों के अभाव में इन गैर–परम्परागत स्रोतों की उपयोगिता एवं उत्पादन की रफ्तार धीमी चल रही है।

पाठान्त प्रश्न

1. खनिज संसाधनों में भारत की स्थिति का वर्णन करें।
2. निम्न खनिजों एवं खनिज तेल के वितरण एवं उत्पादन का वर्णन कीजिए–

   (क) लौह–अयस्क, (ख) कोयला, (ग) पेट्रोलियम
3. खनिजों के दोहन में आने वाली समस्याएं कौन सी हैं?
4. खनिज संसाधनों के संरक्षण के विविध उपायों का वर्णन कीजिए?
5. संक्षेप में उत्तर दीजिए–

   (क) ऊर्जा के तीन महत्वपूर्ण स्रोतों के नाम लिखिये जो नवीकृत नहीं किए जा सकते और वे प्रदूषण मुक्त भी हैं।

   (ख) ताप–शक्ति, जल–विद्युत शक्ति एवं परमाणु शक्ति के बीच अन्तर बताइए। इन तीनों का अलग–अलग योगदान सकल उत्पादन के कितने प्रतिशत में हैं?

   (ग) गैर–परम्परागत स्रोतों से ऊर्जा प्राप्त करने के दो मुख्य लाभों को बताइए।

   (घ) ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा की प्राप्ति में बायोगैस की भूमिका का वर्णन कीजिए।
6. अन्तर बताइए–

   (क) शक्ति के परम्परागत एवं गैर परम्परागत स्रोत

(ख) सौर ऊर्जा एवं पवन ऊर्जा

7. भारत के मानचित्र में निम्नलिखित को दर्शाइए—

(क) झरिया एवं रानीगंज कोयला क्षेत्र

(ख) अँकलेश्वर एवं डिगबोई तेल क्षेत्र

(ग) मथुरा एवं पानीपत तेलशोधक संयंत्र

(घ) तालचेर एवं कोरबा ताप विद्युत संयंत्र।

(ङ) कैगा एवं कोटा परमाणु शक्ति संयंत्र।

(च) भाकड़ा एवं नागार्जुन सागर जल विद्युत संयंत्र।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

23.1

1. (क) (i) कोयला, (ख) (ii) दक्षिण पश्चिम का पठार, (ग) (iii) बरौनी, (घ) (i) असाम एवं गुजरात, (ङ) (iii) दामोदर घाटी, (च) (ii) जम्मू–कश्मीर, (छ) (ii) झरिया, (ज) (iii) कृष्णा और गोदावरी।

23.2

1. (क) (iii) विशाखापट्टनम, (ख) (ii) हेमेटाइट, (ग) (iii) उड़ीसा, (घ) (ii) धातुकर्म उद्योग, (ङ) (i) अलौह समुदाय का धात्विक खनिज है, (छ) (ii) बाक्साइट, (ज) (iii) अभ्रक

23.3

I. (क) (i) ताप, (ii) जल विद्युत, (ख) जल–विद्युत शक्ति, (ग) (i) कोयला, (ii) पेट्रोलियम (iii) प्राकृतिक गैस

II. 1. (क) 2. (ग) 3. (ख)

23.4

1. (क) तापीय ऊर्जा, (ख) जल–विद्युत ऊर्जा, (ग) यूरेनियम एवं थोरियम, (घ) तारापुर

2. (क) (i) पुनः नवीकरण (ii) प्रदूषणमुक्त (ख) पाँचवाँ (ग) (i) दादरी (ii) औरिया (घ) भारतीय प्रायद्वीपीय क्षेत्र

23.5

टिप्पणी

1. (क) प्रदूषण मुक्त (ख) पुनःनवीकरण
2. ग्रामीण क्षेत्र
3. (क) कच्छ की खाड़ी (ख) खम्भात की खाड़ी
4. (क) तापीय उष्मा प्रणाली (ख) फोटो वोल्टिक बैटरी
5. (क) पम्प द्वारा पानी खींचना (ब) विद्युत शक्ति उत्पन्न करने के लिए।

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. अनुच्छेद 23.1 देखिए
2. (क) अनुच्छेद 23.4 (क) के अन्तर्गत (i) लौह अयस्क देखिए

   (ख) अनुच्छेद 23.3 (क) देखिए

   (ग) अनुच्छेद 23.3 (ख) देखिए
3. अनुच्छेद 23.5 देखिए
4. अनुच्छेद 23.6 देखिए
5. (क) अनुच्छेद 23.8 देखिए

   (ख) अनुच्छेद 23.10, 23.11 और 23.12 देखिए

   (ग) अनुच्छेद 23.14 देखिए

   (घ) अनुच्छेद 23.14 देखिए
6. (क) अनुच्छेद 23.8, 23.10, 23.11, 23.12 और 23.14 देखिए

   (ख) अनुच्छेद 23.14 (क) तथा (ख) देखिए
7. दिए गए भारत के मानचित्र देखिए

24

औद्योगिक विकास

प्राकृतिक संसाधनों को संसाधित कर के अधिक उपयोगी एवं मूल्यवान वस्तुओं में बदलना विनिर्माण कहलाता है। ये विनिर्मित वस्तुएँ कच्चे माल से तैयार की जाती हैं। विनिर्माण उद्योग में प्रयुक्त होने वाले कच्चे माल या तो अपने प्राकृतिक स्वरूप में सीधे उपयोग में ले लिए जाते हैं जैसे कपास, ऊन, लौह अयस्क इत्यादि अथवा अर्द्ध–संशोधित स्वरूप में जैसे धागा, कच्चा लोहा आदि जिन्हे उद्योग में प्रयुक्त कर के और अधिक उपयोगी एवं मूल्यवान वस्तुओं के रूप में बदला जाता है। अतः किसी विनिर्माण उद्योग से विनिर्मित वस्तुएँ दूसरे विनिर्माण उद्योग के लिए कच्चे माल का कार्य करती हैं। अब यह सर्वमान्य तथ्य है कि किसी भी देश की आर्थिक–प्रगति या विकास उसके अपने उद्योगों के विकास के बिना संभव नहीं है। औद्योगिक विकास के स्तर का किसी देश की आर्थिक सम्पन्नता से सीधा संबंध है। विकसित देशों जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, रूस की आर्थिक सम्पन्नता इन देशों की औद्योगिक इकाइयों की प्रोन्नत एवं उच्च विकासयुक्त वृद्धि से जुड़ा है। औद्योगिक दृष्टि से अविकसित देश अपने प्राकृतिक संसाधनों का निर्यात करते हैं तथा विनिर्मित वस्तुओं को अधिक मूल्य चुकाकर आयात करते हैं। इसीलिए आर्थिक रूप से ये देश पिछड़े बने रहते हैं।

भारत में विनिर्माण उद्योग का सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 30% का योगदान है। इन औद्योगिक इकाइयों द्वारा करीब 280 लाख लोगों को रोजगार उपलब्ध कराए जाते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि निर्माण उद्योग राष्ट्रीय आय तथा रोजगार के प्रमुख स्रोत हैं।

इस पाठ के अन्तर्गत हम भारत में विकसित विभिन्न प्रकार के निर्माण उद्योग, उनके वर्गीकरण तथा उनके क्षेत्रीय वितरण कर अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- भारत में विनिर्माण उद्योगों के ऐतिहासिक विकास को जान सकेंगे;

टिप्पणी

- हमारे देश के आर्थिक विकास एवं प्रगति में इन औद्योगिक इकाइयों के योगदान को समझ सकेंगे;
- उद्योगों का विभिन्न लक्षणों के आधार पर वर्गीकरण कर सकेंगे;
- औद्योगिक विकास का संबंध कृषि, खनिज तथा ऊर्जा के साथ स्थापित कर सकेंगे;
- उद्योगों के स्थानीयकरण को प्रभावित करने वाले कारकों का परीक्षण कर सकेंगे;
- कुछ प्रमख कृषि–आधारित उद्योगों तथा खनिज आधारित उद्योंगों के स्थानिक वितरण का वर्णन कर सकेंगे;
- भारत के मानचित्र पर कुछ चुने हुए उद्योगों की अवस्थितियों को दर्शा सकेंगे और उनकी पहचान कर सकेंगे;
- भारत में औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने के लिए बनाई गई विभिन्न नीतियों के योगदान को समझा सकेंगे;
- औद्योगिक विकास और क्षेत्रीय विकास के बीच संबंध स्थापित कर सकेंगे;
- स्थान–विशेष पर स्थापित उद्योंगों के विकास एवं वृद्धि पर आर्थिक उदारीकरण के प्रभाव का वर्णन कर सकेंगे;
- औद्योगिक विकास के पर्यावरण पर पड़ रहे प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे।

24.1 आधुनिक उद्योगों का संक्षिप्त इतिहास

भारत में आधुनिक औद्योगिक विकास का प्रारंभ मुंबई में प्रथम सूती कपड़े की मिल की स्थापना (1854) से हुआ। इस कारखाने की स्थापना में भारतीय पूँजी तथा भारतीय प्रबंधन ही मुख्य था। जूट उद्योग का प्रारंभ 1855 में कोलकाता के समीप हुगली घाटी में जूट मिल की स्थापना से हुआ जिसमें पूँजी एवं प्रबंध–नियन्त्रण दोनो विदेशी थे। कोयला खनन उद्योग सर्वप्रथम रानीगंज (पश्चिम बंगाल) में 1772 में शुरू हुआ। प्रथम रेलगाड़ी का प्रारंभ 1854 में हुआ। टाटा लौह–इस्पात कारखाना जमशेदपुर (झारखण्ड राज्य) में सन् 1907 में स्थापित किया गया। इनके बाद कई मझले तथा छोटी औद्योगिक इकाइयों जैसे सीमेन्ट, कांच, साबुन, रसायन, जूट, चीनी तथा कागज इत्यादि की स्थापना की गई। स्वतंत्रता पूर्व औद्योगिक उत्पादन न तो पर्याप्त थे और न ही उनमें विभिन्नता थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत की अर्थव्यवस्था अविकसित थी, जिसमें कृषि का योगदान भारत के सकल घरेलू उत्पाद का 60% से अधिक था तथा देश की अधिकांश निर्यात से आय कृषि से ही थी। स्वतंत्रता के 60 वर्षो के बाद भारत ने अब अग्रणी आर्थिक शक्ति बनने के संकेत दिए हैं।

भारत में औद्योगिक विकास को दो चरणो में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम चरण

(1947-80) के दौरान सरकार ने क्रमिक रूप से अपना नियन्त्रण विभिन्न आर्थिक–क्षेत्रों पर बढ़ाया। द्वितीय चरण (1980-97) में विभिन्न उपायों द्वारा (1980-1992 के बीच) अर्थव्यवस्था में उदारीकरण लाया गया। इन उपायों द्वारा उदारीकरण तात्कालिक एवं अस्थाई रूप से किया गया था। अतः 1992 के पश्चात उदारीकरण की प्रक्रिया पर जोर दिया गया तथा उपागमों की प्रकृति में मौलिक भिन्नता भी लाई गई।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत में व्यवस्थित रूप से विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत औद्योगिक योजनाओं को समाहित करते हुए कार्यान्वित किया गया और परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में भारी और मध्यम प्रकार की औद्योगिक इकाइयों की स्थापना की गई। देश की औद्योगिक विकास नीति में अधिक ध्यान देश में व्याप्त क्षेत्रीय असमानता एवं असंतुलन को हटाने में केन्द्रित किया गया था और विविधता को भी स्थान दिया गया। औद्योगिक विकास में आत्मनिर्भरता को प्राप्त करने के लिए भारतीय लोगों की क्षमता को प्रोत्साहित कर विकसित किया गया। इन्हीं सब प्रयासों के कारण भारत आज विनिर्माण के क्षेत्र में विकास कर पाया है। आज हम बहुत सी औद्योगिक वस्तुओं का निर्यात विभिन्न देशों को करते हैं।

पाठगत प्रश्न 24.1

1. कब और किस जगह कोयले का उत्खनन सर्वप्रथम शुरू हुआ?

_____

2. भारत में किस वर्ष में रेलगाड़ी का प्रारंभ हुआ?

_____

3. टाटा लौह और इस्पात सयंन्त्र किस जगह स्थापित किया गया था?

_____

24.2 उद्योगों का वर्गीकरण

विभिन्न लक्षणों के आधार पर उद्योगों को कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। किन्तु निम्न सारिणी में उद्योगों को 5 प्रमुख आधारों पर वर्गीकृत किया गया है–

सारिणी 24.1 उद्योगों का वर्गीकरण

क्रम	आधार	उद्योगों के प्रकार	प्रमुख विशेषताएँ	उदाहरण
1.	कच्चे माल के स्रोत के आधार पर	(i) कृषि–आधारित उद्योग	कृषि–उत्पादों को कच्चेमाल के रूप में उपयोग करना	सूती–वस्त्र उद्योग, जूट या पटसन उद्योग, चीनी (शक्कर) उद्योग एवं कागज उद्योग

टिप्पणी

		(ii) खनिज आधारित उद्योग	खनिजों का कच्चे माल के रूप में उपयोग करना	लोहा और इस्पात, रसायन एवं सीमेंट उद्योग
2.	स्वामित्व (के आधार पर)	(i) सार्वजनिक क्षेत्र	स्वामित्व नियंत्रण एवं प्रबंधन सरकार द्वारा	बोकारो लोहा एवं इस्पात संयन्त्र, चितरंजन लोकोमोटिव
		(ii) निजी–क्षेत्र	स्वामित्व, नियंत्रण एवं प्रबंधन किसी व्यक्ति अथवा समूह द्वारा कम्पनी के रूप में	टाटा–लोहा एव इस्पात संयन्त्र, जे.के. सीमेन्ट, अपोलो टायर्स.
		(iii) संयुक्त क्षेत्र	सयुक्त रूप से सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र स्वामित्व	मारूति उद्योग
		(iv) सहकारी क्षेत्र	कच्चे माल के उत्पादकों द्वारा सहकारी समिति बनाकर स्थापित उद्योग	महाराष्ट्र के चीनी उद्योग, ''अमूल'' (गुजरात) और ''इफ्फको'' (काँदला)
3.	प्रमुख कार्य अथवा योगदान के आधार पर	(i) आधारभूत उद्योग	आधारभूत उद्योगों के द्वारा विनिर्मित उत्पादों का दूसरे अन्य उद्योगों द्वारा कच्चे माल के रूप में उपयोग करना	लोहा और इस्पात उद्योग, पेट्रो–रसायन उद्योग
		(ii) उपभोक्ता उद्योग	इन उद्योगों द्वारा निर्मित उत्पादों का सीधे उपभोक्ताओं द्वारा उपयोग में लाया जाना	टूथपेस्ट, साबुन, चीनी उद्योग
4.	उद्योग के आकार के आधार पर	(i) बड़े पैमाने के उद्योग	अधिक पूँजी निवेश, भारी मशीनरी, कारीगरों की अधिक संख्या, विशाल संयंत्र 24 घंटे अनवरत कार्य	लोहा और इस्पात उद्योग, तेल–शोधक सयंन्त्र
		(ii) छोटे–पैमाने के उद्योग	कम पूँजी निवेश, छोटे स्तर के संयत्र, कारीगरों एवं कार्यशील मजदूरों की थोड़ी संख्या	साइकिल उद्योग, बिजली सामान बनाने वाले उद्योग
		(iii) ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग	परिवार के सदस्यों का स्वामित्व, छोटी मशीने जिन्हे घर पर ही संचालित किया जा सके.	आभूषण निर्माण, हस्तशिल्प, दस्तकारी कलात्मक वस्तुएँ
5.	कच्चे माल तथा तैयार माल के भार के आधार पर	(i) भारी उद्योग	कच्चे माल तथा विनिर्मित माल दोनो भारी–भरकम तथा आकार में बड़े परिवहन में काफी लागत	लोहा एवं इस्पात भारत हेवीइलेक्ट्रिकल लिमिटेड, (हरिद्वार जनरेटर जैसे भारी बिजली उत्पाद

टिप्पणी

(ii) हल्के उद्योग	कच्चे माल तथा उत्पाद दोनो वजन में हल्के, परिवहन में कम लागत	घड़ियाँ, सिले–सिलाए वस्त्र निर्माण, खिलौने, फाउन्टेन पेन उद्योग

यह आवश्यक नहीं कि कोई एक उद्योग एक ही श्रेणी में शामिल होता हो। वर्गीकरण के आधार पर एक ही उद्योग विभिन्न प्रकार के उद्योगों का उदाहरण बन सकता है। उदाहरण के तौर पर बोकारो लोहा एवं इस्पात संयन्त्र खनिज आधारित उद्योग है, जो सार्वजनिक क्षेत्र का भी उद्योग है तथा एक आधारभूत उद्योग है, यह बड़े पैमाने का उद्योग है तथा यह भारी उद्योग का भी उदाहरण है।

पाठगत प्रश्न 24.2

1. निम्नलिखित में से कौन–सा उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत आता है?
   - (क) जे.के. सीमेन्ट उद्योग
   - (ख) टाटा लौह एवं इस्पात संयन्त्र
   - (ग) बोकारो लौह एवं इस्पात संयन्त्र
   - (घ) रेमण्ड कृत्रिम वस्त्र उद्योग
2. निम्नलिखित में से कौन सा उपभोक्ता उद्योग है?
   - (क) पेट्रो–रसायन
   - (ख) लोहा एवम् इस्पात
   - (ग) चितरंजन लोकोमोटिव
   - (घ) चीनी उद्योग
3. निम्नलिखित में से कौन–सा छोटे पैमाने का उद्योग है?
   - (क) चीनी
   - (ख) कागज
   - (ग) कपास
   - (घ) बिजली के पंखे
4. उन पाँच आधारों के नाम बताइए जिन पर उद्योगों को वर्गीकृत किया जा सकता है?

   (क)_____(ख) _____(ग)_____

   (घ)_____(ङ) _____

टिप्पणी

24.3 कृषि आधारित उद्योग

वस्त्र, चीनी, कागज एवं वनस्पति तेल उद्योग इत्यादि कृषि उपज पर आधारित उद्योग हैं। ये उद्योग कृषि उत्पादों को अपने कच्चे माल के रूप में प्रयोग करते हैं।

संगठित औद्योगिक क्षेत्र में वस्त्र उद्योग सबसे बड़ा उद्योग है। इसके अन्तर्गत (i) सूती वस्त्र (ii) ऊनी वस्त्र (iii) रेशमी वस्त्र (iv) कृत्रिम रेशे वाले वस्त्र (v) जूट उद्योग आते हैं। कपड़ा उद्योग औद्योगिक क्षेत्र का सबसे बड़ा घटक है। कुल औद्योगिक उत्पाद का पांचवा हिस्सा वस्त्र उद्योग उत्पादन का है तथा विदेशी मुद्रा अर्जन में इसका एक तिहाई योगदान है। रोजगार उपलब्ध कराने में कृषि क्षेत्र के बाद इसी का स्थान है।

(क) सूती कपड़ा उद्योग

भारत में औद्योगिक विकास का प्रारंभ 1854 में मुम्बई में आधुनिक सूती वस्त्र कारखाने की स्थापना से हुआ। और तब से यह उद्योग उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त कर रहा है। वर्ष 1952 में इसकी कुल 378 औद्योगिक इकाइयाँ थीं जो मार्च 1998 में बढ़कर 1998 हो गई।

भारत की अर्थव्यवस्था में कपड़ा उद्योग का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। यह बहुत बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार उपलब्ध कराता है। देश की कुल औद्योगिक श्रमिक संख्या का 1/5 वाँ हिस्सा कपड़ा उद्योग क्षेत्र में लगा हुआ है।

(i) उत्पादन

वस्त्र निर्माण उद्योग के तीन क्षेत्र हैं। (i) कपड़ा मिल क्षेत्र (ii) हैन्डलूम (हथकरघा) एवं (iii) पावरलूम। सन् 1998–99 में कुल सूती वस्त्र उत्पादन में बड़े कारखानों, हैडलूम तथा पावरलूम का भाग क्रमशः 5.4 प्रतिशत, 20.6 प्रतिशत एवं 74 प्रतिशत था। सन् 1950–51 में सूती वस्त्रों का उत्पादन 421 करोड़ वर्ग मीटर था जो 1998–99 में बढ़कर 1794.9 करोड़ वर्गमीटर तक पहुँच गया।

सूती धागे एवं कृत्रिम धागों पर आधारित वस्त्र उद्योग ने जबरदस्त उन्नति की है। दोनों प्रकार के धागों से निर्मित कपड़े की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 1960–61 में केवल 15 मीटर थी। 1995–96 में यह बढ़कर 28 मीटर प्रति व्यक्ति हो गयी। परिणामस्वरूप सूती धागों का सूती वस्त्रों एवं कृतिम धागों से निर्मित वस्त्रों का बड़े पैमाने पर निर्यात होने लगा। इनके निर्यात से हमने सन् 1995–96 में 2.6 अरब डालर की विदेशी मुद्रा अर्जित की।

(ii) वितरण – सूती वस्त्र उद्योग देश के सभी भागों मे फैला हुआ है। इस उद्योग के कारखाने भारत के विभिन्न भागों मे 88 से अधिक केन्दों में अवस्थित हैं। परन्तु अधिकतर सूती वस्त्रों के कारखाने आज भी उन क्षेत्रों में ही हैं जहाँ कपास का उत्पादन प्रमुख रूप से किया जाता है। ये क्षेत्र उत्तरी भारत के विशाल मैदानी क्षेत्र तथा भारतीय प्रायद्वीपीय पठारी भागों में स्थित हैं।

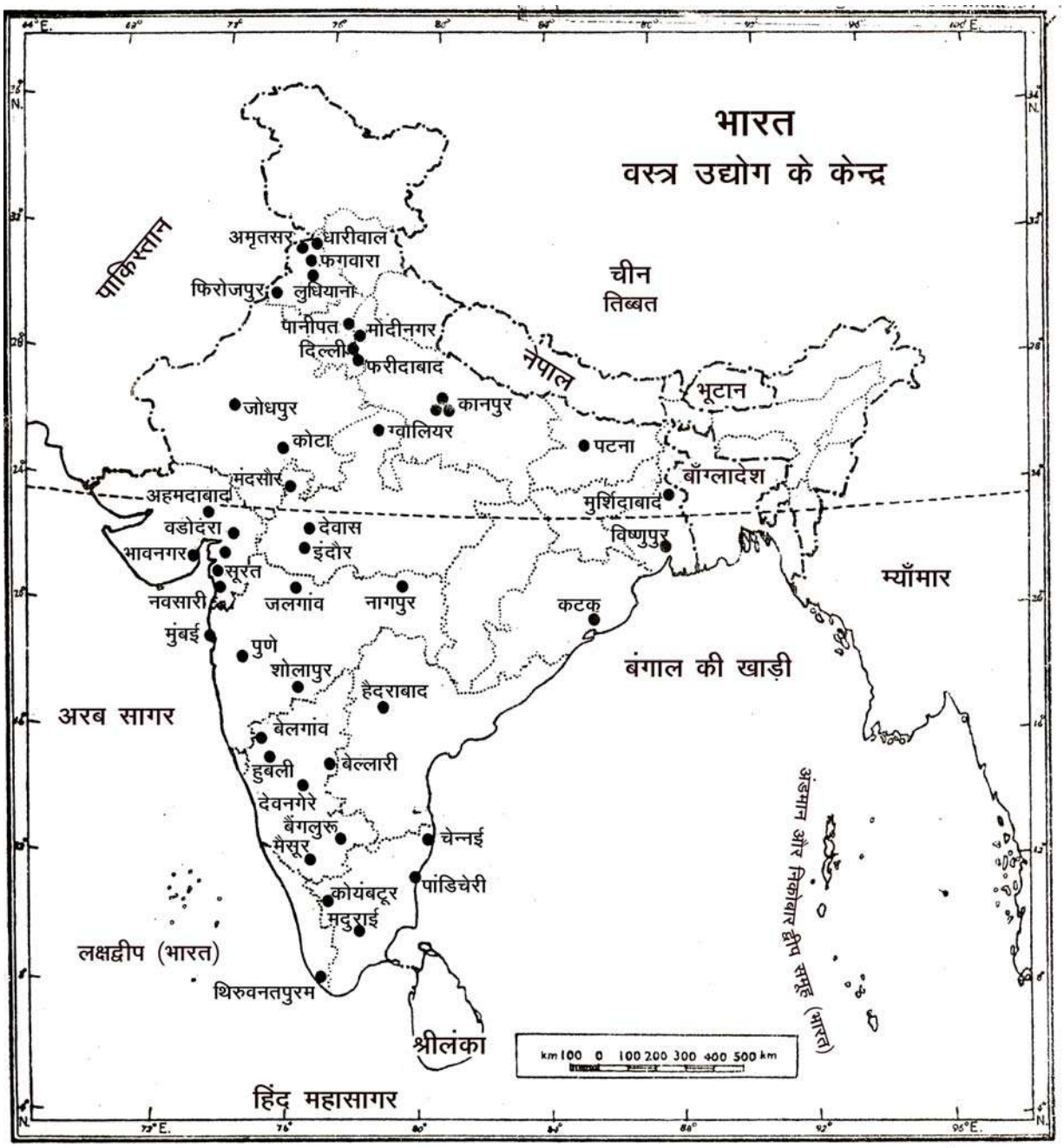

चित्र 24.1 भारत में सूती वस्त्र उद्योग के केन्द्र

महाराष्ट्र राज्य सूती वस्त्र उत्पादन में हमारे देश का अग्रणी राज्य है। मुम्बई सूती कपड़ों के कारखानों का प्रमुख केन्द्र है। क्योंकि लगभग आधे सूती कपड़े निर्माण करने वाले कारखानें मुम्बई में स्थित हैं। इसीलिए मुम्बई को कॉटन पोलिस ठीक ही कहा गया है।

टिप्पणी

शोलापुर, कोल्हापुर, नागपुर, पुणे, औरंगाबाद एवं जलगाँव इत्यादि शहर भी महाराष्ट्र राज्य के सूती कपड़े निर्माण के महत्वपूर्ण स्थान है।

सूती वस्त्र उत्पादन में गुजरात का देश में दूसरा स्थान है। अहमदाबाद इस राज्य का प्रमुख केन्द्र है। इसके अलावा सूरत, भड़ोच, वड़ोदरा, भावनगर एवं राजकोट राज्य के अन्य केन्द्र हैं।

तमिलनाडु दक्षिण भारत में सूती वस्त्र उत्पादन में एक महत्वपूर्ण राज्य के रूप में उभरा है। कोयम्बटूर इस राज्य का सबसे महत्वपूर्ण सूती वस्त्र उद्योग का केन्द्र है। इसके अलावा तिरूनलवेली, चेन्नई, मदुरै, तिरूचनापल्ली, सालेम एवं तंजौर राज्य के अन्य महत्वपूर्ण केन्द्र है।

कर्नाटक राज्य में सूती वस्त्र उद्योग बेंगलुरू, मैसूर, बेलगाम और गुलबर्गा नगरों में केन्द्रित है। उत्तर प्रदेश में सूती वस्त्र उद्योग कानपुर, इटावा, मोदीनगर, वाराणसी, हाथरस शहरों में केन्द्रित हैं। मध्य प्रदेश में सूती वस्त्र उद्योग इंदौर और ग्वालियर शहरों में केंद्रित है। पश्चिम बंगाल के अन्तर्गत हावड़ा, सेरामपुर, मुर्शिदाबाद जैसे बड़े शहरों में सूती वस्त्र उद्योग स्थित है।

इसके अलावा राजस्थान, पंजाब, हरियाणा और आँध्र प्रदेश राज्य भी सूती वस्त्र उत्पादन में योगदान देते हैं।

अहमदाबाद–मुम्बई–पुणे क्षेत्र में सूती वस्त्र उद्योगों के संकेन्द्रित होने के प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं :

1. **कच्चे माल की उपलब्धता** – इस क्षेत्र में कपास का उत्पादन काफी मात्रा में किया जाता है।

2. **पूँजी की उपलब्धता**-पूँजी निवेश के लिए मुम्बई, पुणे, अहमदाबाद ऐसे स्थान हैं जहाँ आसानी से उद्योग में पूँजी लगाने की सुविधा उपलब्ध है।

3. **परिवहन के साधन** – यह क्षेत्र देश के अन्य भागों से सड़क और रेलमार्ग द्वारा अच्छी तरह से जुड़ा हुआ है। अतः उत्पादित वस्तुओं का परिवहन आसान है।

4. **बाजार की निकटता** – वस्त्र उत्पादों को बेचने के लिए महाराष्ट्र और गुजरात में बहुत बड़ा बाजार उपलब्ध है। विकसित परिवहन के साधनों द्वारा वस्त्र उत्पादों को देश के अन्य बाजारों एवं विदेशी बाजारों तक भेजने में आसानी रहती है। आजकल सूती वस्त्र उद्योग के संकेन्द्रण के लिए बाजार एक महत्वपूर्ण कारक बन गया है।

5. **पत्तनों की निकटता** – मुम्बई पत्तन द्वारा विदेशों से मशीनरी तथा अच्छी किस्म की कपास को आयात करने और तैयार माल को निर्यात करने में आसानी रहती है।

6. **सस्ते श्रमिक** – सस्ते एवं कुशल श्रमिक आसपास के क्षेत्रों से आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं।

7. **ऊर्जा की उपलब्धता** – यहाँ सस्ती एवं पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा आसानी से उपलब्ध हो जाती है।

(ख) चीनी उद्योग

भारत के कृषि आधारित उद्योगों में चीनी उद्योग का दूसरा स्थान है। अगर हम गुड़, खांडसारी और चीनी तीनों के उत्पादन को जोड़कर देखें तो भारत विश्व में चीनी उत्पादों का सबसे बड़ा उत्पादक बन जाएगा। सन् 2003 में हमारे देश में लगभग 453 चीनी के कारखाने थे। इस उद्योग में लगभग 2.5 लाख लोग लगे हुए हैं।

(i) उत्पादन

चीनी उत्पादन का सीधा सम्बन्ध गन्ने के उत्पादन से है। चीनी के उत्पादन में उतार–चढ़ाव गन्ने के उत्पादन के उतार–चढ़ाव पर निर्भर करता है। सन् 1950-51 में चीनी का कुल उत्पादन 11.3 लाख टन था। 2002-2003 मे यह बढ़कर 201.32 लाख टन हो गया। परन्तु 2003-2004 में यह घटकर 138 लाख टन रह गया।

(ii) **वितरण** – चीनी के अधिकांश कारखाने छः राज्यों में ही संकेन्द्रित हैं। ये राज्य हैं–उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश।

उत्तर प्रदेश – चीनी उत्पादन में उत्तर प्रदेश का महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ पर चीनी के कारखाने पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, बिजनौर, मुरादाबाद और बुलन्दशहर जिलों में संकेन्द्रित हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश में देवरिया, बस्ती, गोंडा और गोरखपुर जिले चीनी उद्योग के महत्वपूर्ण केन्द्र हैं। उत्तर प्रदेश में गन्ने की कृषि के अंतर्गत सबसे अधिक क्षेत्र है। लेकिन यह राज्य 2003-2004 में भारत के कुल चीनी उत्पादन का केवल एक–तिहाई भाग का ही उत्पादन कर सका। यहाँ पर गन्ने का प्रति हेक्टेयर उत्पादन कम है और गन्ने में चीनी का अंश भी कम है।

महाराष्ट्र – भारत के प्रायद्वीपीय क्षेत्र में महाराष्ट्र एक महत्वपूर्ण चीनी उत्पादक राज्य है। यहाँ चीनी का उत्पादन देश के सकल उत्पादन के एक चौथाई अँश के बराबर होता है। महाराष्ट्र राज्य में चीनी उत्पादन के प्रमुख केन्द्र नासिक, पुणे, सतारा, साँगली, कोल्हापुर और शोलापुर हैं।

आन्ध्र प्रदेश– पूर्वी एवं पश्चिमी गोदावरी, विशाखापट्टनम, निजामाबाद, मेडक एवं चित्तूर जिले इस राज्य के चीनी उत्पादन के केन्द्र हैं।

तमिलनाडु – इस राज्य के उत्तरी तथा दक्षिणी आरकोट, मदुरै, कोयम्बटूर और त्रिचरापल्ली चीनी–उत्पादन के महत्वपूर्ण जिले हैं।

टिप्पणी

कर्नाटक- यह भी एक महत्वपूर्ण चीनी उत्पादक राज्य है। इस राज्य के बेलगाम, मान्डया, बीजापुर, बेलारी, शिमोगा तथा चित्रदुर्ग जिले चीनी उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण हैं।

बिहार, गुजरात, पंजाब, हरियाणा और राजस्थान अन्य राज्य हैं जहाँ चीनी मिले अवस्थित हैं।

चीनी-उद्योग के स्थानीयकरण के निम्नलिखित कारक हैं-

(1) चीनी निर्माण में गन्ना ही प्रमुख कच्चामाल होता है। अतः चीनी मिलों की स्थापना गन्ना–उत्पादन क्षेत्र में ही हो सकती है। गन्ने की फसल कटने के बाद ना तो गोदामों में रखी जा सकती है और न ही उसे कटने के बाद खेत में अधिक समय तक छोड़ा जा सकता है क्योंकि वे जल्दी से सूखने लगते है। इसलिए फसलों की कटाई के बाद गन्नों को तुरन्त चीनी मिलों को भेजना आवश्यक है।

(2) गन्नों का परिवहन भी महँगा होता है। आमतौर पर गन्नों को बैलगाड़ियों में लादकर समीपस्थ चीनी मिल को भेजा जाता है। इनसे सामान्यतः 25-30 कि. मी. तक की दूरी तय की जा सकती है। अब गन्नों को चीनी मिल तक पहुँचाने के लिए ट्रेक्टर ट्राली और ट्रकों का प्रयोग भी किया जाने लगा है। इन उपरोक्त दो कारको के अलावा पूँजी की उपलब्धि, विपणन की सुविधा, सहज और सस्ते मजदूरों का मिलना और सबसे महत्वपूर्ण ऊर्जा की उपलब्धता इत्यादि कारक है जो चीनी–मिलों के स्थानीयकरण को प्रभावित एवं नियन्त्रित करते है।

उत्तरी भारत के क्षेत्रों से चीनी उद्योग के भारत के प्रायद्वीपीय क्षेत्र में स्थानांतरित होने के कारण

पिछले कुछ समय से चीनी उद्योग का क्रमिक रूप से धीरे–धीरे उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों से हटकर भारतीय प्रायद्वीप के राज्यों में हस्तांतरण हो रहा है। इसके पीछे कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित है–

(1) प्राय द्वीपीय भारत में गन्ने की फसल का प्रति हेक्टेयर उत्पादन उत्तर भारतीय क्षेत्र से अधिक है। वास्तविकता तो यह है कि उष्ण–कटिबंधीय जलवायु गन्ने की पैदावार के लिए बहुत अनुकूल होती है।

(2) शर्करा (सुक्रोज) की मात्रा, जो गन्ने की मिठास को नियंत्रित करती है, उष्ण–कटिबंधीय क्षेत्र की फसल में अपेक्षाकृत अधिक होती है।

(3) गन्ना पेरने की अवधि दक्षिण भारत में उत्तर भारत की अपेक्षा ज्यादा लम्बी होती है।

(4) दक्षिण भारत में अधिकांश चीनी मिलों में आधुनिक उपकरण प्रयोग में लिए जाते हैं।

टिप्पणी

(5) दक्षिण भारत में चीनी उद्योग की अधिकांश मिलों का स्वामित्व सहकारिता क्षेत्र के अन्तर्गत है, जहाँ मुनाफा को अधिक से अधिक करने का न तो लक्ष्य होता है और न ही प्रवृत्ति।

- कृषि–आधारित उद्योग कृषि उत्पादों को कच्चे माल के रूप में उपयोग करते हैं।
- भारत के संगठित क्षेत्र में सूती–कपड़ा उद्योग सबसे बड़ा उद्योग है।
- सूती वस्त्र उद्योग भारत के अधिकांश राज्यों में अवस्थित है।
- बहुत बड़ी संख्या में चीनी मिले महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात तथा बिहार राज्य में स्थापित है।

1. प्रथम आधुनिक सूती वस्त्र का कारखाना कब और कहाँ स्थापित किया गया?

_____

2. भारत में सकल सूती कपड़ा उत्पादन में पावरलूम का योगदान कितना प्रतिशत है?

_____

3. भारत में कौन सा राज्य सूती वस्त्र उत्पादन में अग्रणी है?

_____

4. किन्ही तीन कारणों को स्पष्ट कीजिए जो चीनी उद्योग के उत्तर भारत से दक्षिण भारत की ओर स्थानांतरण होने की स्थितियों को समझा सके।

(क) _____

(ख) _____

(ग) _____

टिप्पणी

24.4 खनिज आधारित उद्योग

वे उद्योग जिनमें खनिजों को कच्चे माल के रूप में उपयोग में लाया जाता है खनिज आधारित उद्योग कहलाते हैं। इन उद्योगों में लोहा एवं इस्पात उद्योग सबसे महत्वपूर्ण है। इन्जीनियरिंग, सीमेन्ट, रासायनिक एवं उर्वरक उद्योग भी खनिज आधारित उद्योग के उदाहरण हैं।

(क) लोहा एवं इस्पात उद्योग

यह एक आधारभूत उद्योग हैं क्योंकि इस के उत्पाद बहुत से उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

भारत में यद्यपि लौह इस्पात के निर्माण की औद्योगिक क्रियाएँ बहुत पुराने समय से चली आ रही हैं किन्तु आधुनिक लौह इस्पात उद्योग की शुरूवात 1817 में बंगाल के कुल्टी नामक स्थान पर बंगाल लोहा एवं इस्पात कारखाने की स्थापना से हुई। टाटा लोहा एवं इस्पात कम्पनी की स्थापना जमशेदपुर में 1907 में हुई। इसके पश्चात् भारतीय लोहा एवं इस्पात सयंत्र की स्थापना 1919 में बर्नपुर में हुई। इन तीनो संयत्रों की स्थापना निजी क्षेत्र के अंतर्गत हुई थी। सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत प्रथम लोहा तथा इस्पात का संयत्र जिसे अब ''विश्वेसरैया लोहा एवं इस्पात कम्पनी'' के नाम से जाना जाता है, की स्थापना भद्रावती में सन् 1923 में हुई थी।

स्वतंत्रता के पश्चात् लोहा एवं इस्पात उद्योग में तीव्रता से प्रगति हुई। सभी वर्तमान इकाइयों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई। तीन नए एकीकृत संयत्रों की स्थापना क्रमशः राउरकेला (उड़ीसा), भिलाई (छत्तीसगढ़) तथा दुर्गापुर (पश्चिम बंगाल) में की गई। बोकारो इस्पात संयन्त्र की स्थापना सार्वजनिक क्षेत्र के अनतर्गत सन 1964 में की गई। बोकारो तथा भिलाई स्थित सयंन्त्रो की स्थापना भूतपूर्व सोवियत संघ के सहयोग से की गई। इसी प्रकार दुर्गापुर लोहा एवं इस्पात संयन्त्र की स्थापना यूनाइटेड किंगडम के सहयोग से तथा राऊरकेला सयंत्र जर्मनी के सहयोग से स्थापित किए गए। इसके पश्चात विशाखापट्टनम और सलेम संयंत्रो की स्थापना हुई। स्वतंत्रता के समय भारत सीमित मात्रा में कच्चे लोहे तथा इस्पात का निर्माण करता था। सन् 1950-51 में भारत में इस्पात का उत्पादन केवल 10 लाख टन था जो 1998–99 में बढ़ते–बढ़ते 238 लाख टन तक पहुँच गया।

भारत के प्रमुख लौह तथा इस्पात सयंन्त्र झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक तथा तमिलनाडु राज्यो में अवस्थित हैं। इसके अलावा भारत में 200 लघु इस्पात सयंत्र हैं जिनकी क्षमता 62 लाख टन प्रति वर्ष है। लघु इस्पात संयन्त्रों में इस्पात बनाने के लिए स्क्रेप या स्पॉन्ज लोहे का प्रयोग किया जाता है। ये सारी छोटी इकाइयाँ देश में लोहा तथा इस्पात उद्योग के महत्वपूर्ण घटक हैं।

लोहा तथा इस्पात उद्योग के अधिकांश सयंन्त्र भारत के छोटा नागपुर पठार पर अथवा उसके आसपास इसलिए स्थापित हुए हैं, क्योंकि इसी क्षेत्र में लौह अयस्क, कोयला,

मेंगनीज, चूने का पत्थर, डोलोमाइट जैसे महत्वपूर्ण खनिजों के विपुल निक्षेप मिलते हैं।

लौह–इस्पात उद्योग के लिए आवश्यक कच्चा माल, शक्ति एवं स्वामित्व तथा अवस्थिति की जानकारी निम्नलिखित सारिणी में दी गई है–

सारिणी 24.2 भारत : लोहा तथा इस्पात संयन्त्र एवं उनके कच्चे माल के स्रोत

				कच्चे माल की आपूर्ति			
क्रम सं.	संयंत्रों के नाम	स्थिति	स्वामित्व	कोयला/ बिजली	लौह अयस्क	चूने का पत्थर	मेंगनीज
1.	टाटा आयरन एण्ड स्टील कं. (टिस्को)	जमशेदपुर	निजी क्षेत्र	झरिया	मयूरभंज	क्योंझर	सिंहभूमि
2.	इंडियन आयरन एण्ड स्टील कं. (इस्को)	बर्नपुर	सार्वजनिक क्षेत्र	झरिया दामोदरघाटी	सिंहभूमि मयूरभज	क्योंझर	सिंहभूमि
3.	विश्वेसरैया आयरन एण्ड स्टील कं. (वीआई एसएल)	भद्रावती	सार्वजनिक क्षेत्र	सारावती परियोजना	केमामान गुडी	भाडिग्रुडा	चित्रदुर्गा, शिमोगा
4.	हिन्दुस्तान स्टील लि. (एचएस एल)	राउरकेला	सार्वजनिक क्षेत्र	बोकारो, झरिया, हीराकुण्ड परियोजना	सुन्दरगढ़, क्योंझर	पुमापानी	बड़ा जामदा
5.	हिन्दुस्तान स्टील लि. (एचएस एल)	भिलाई	सार्वजनिक क्षेत्र	करगली, कोरबा	दल्ली–राजहरा	नदनी	बालाघाट
6.	हिन्दुस्तान स्टील लि. (एचएस एल)	दुर्गापुर	सार्वजनिक क्षेत्र	झरिया, दामोदर घाटी	बोलांगीर, क्योंझर	बीरमित्रपुर (सुन्दरगढ़ जिला)	जामदा क्योंझर जिला
7.	भारत स्टील लि. (बीएसएल)	बोकारो	सार्वजनिक क्षेत्र	झरिया	किरिबुरू	पालामू	

8.	एसएसपी	सलेम	सार्वजनिक क्षेत्र	नैवेली	सलेम जिला	सलेम जिला	सलेम जिला
9.	वीएसएल	विशाखा–पट्टनम	सार्वजनिक क्षेत्र	दामोदर घाटी	बैलाडीला (छत्तीसगढ़ राज्य)	छत्तीसगढ़ एवं मध्य प्रदेश	बालाघाट

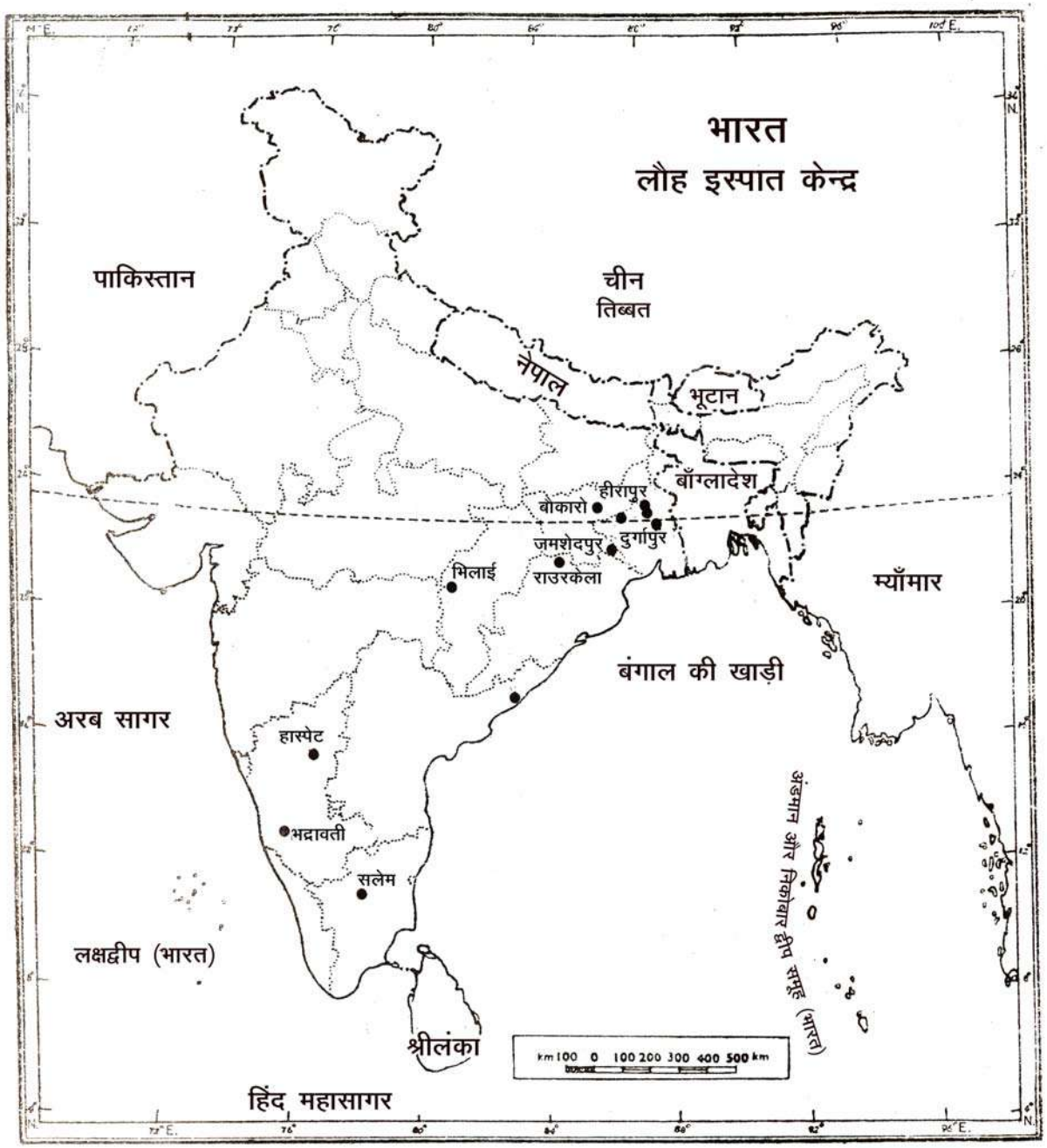

Based upon Survey of India outline map printed in 1979.

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act 1971, but has yet to be verified.

© Government of India copyright, 1979

चित्र 24.2 भारत : लौह एवं इस्पात संयन्त्र

कच्चे माल के बारे में जितनी जानकारियाँ सारिणी 24.2 में दी गई हैं उनका मिलान चित्र संख्या 24.2 के साथ भी किया जा सकता है।

पाठगत प्रश्न 24.4

1. ''बंगाल लोहा एवं इस्पात वर्क्स'' किस स्थान पर और कब स्थापित हुआ था?

   _____

2. दुर्गापुर इस्पात संयन्त्र किस देश के सहयोग से स्थापित हुआ था?

   _____

3. निम्नलिखित इस्पात संयन्त्रों में से कौन सा संयन्त्र आँध्र प्रदेश में है?

   (क) दुर्गापुर (ख) बोकारो (ग) भिलाई (घ) विशाखापट्टनम्

4. निम्नलिखित में से कौनसा इस्पात संयन्त्र निजी क्षेत्र में है?

   (क) बर्नपुर (ख) भद्रावती (ग) जमशेदपुर (घ) भिलाई

24.5 पेट्रो-रसायन उद्योग

भारत में पेट्रोरसायन उद्योग तेजी से वृद्धि करता हुआ उद्योग है। इस उद्योग ने देश के पूरे उद्योग जगत में एक क्राँति ला दी है क्योंकि इसके उत्पाद परम्परागत कच्चे माल जैसे लकड़ी, काँच एवं धातु को प्रतिस्थापित करने में अधिक सस्ते और उपयोगी पाए जाते हैं। लोगों की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले इस पेट्रो–रसायन के उत्पाद लोगों को सस्ते दामों पर उपलब्ध हैं। पेट्रो–रसायन को पेट्रोलियम या प्राकृतिक गैस से प्राप्त किया जाता है। हम पेट्रो–रसायन से निर्मित विभिन्न वस्तुओं का प्रयोग सुबह से शाम तक करते हैं। टूथ–ब्रश, टूथ–पेस्ट, कंघी, बालो में लगाने वाले हेयर पिन, साबुन रखने के डिब्बे, प्लास्टिक मग, सिंथेटिक कपड़े, रेडियो और टी.वी. कवर, बाल पॉइन्टपेन, इलेक्ट्रिक स्विच, डिटर्जेंट पाउडर, लिपस्टिक, कीड़े मारने की दवाइयाँ, प्लास्टिक थैलियाँ, फोम के गद्दे तथा चादरें इत्यादि असंख्य वस्तुएँ पेट्रो–रसायन से ही बनती हैं।

भारतीय पेट्रो–रसायन निगम ने वड़ोदरा (गुजरात) के समीप एक वृहद पेट्रोकेमिकल काम्पलेक्स को स्थापित किया है जिसमे विभिन्न प्रकार के पदार्थ बनाए जाते हैं। वड़ोदरा के अलावा गुजरात राज्य में गन्धार एवं हजीरा केन्द्र भी स्थापित किए गए हैं। अन्य राज्यो में महाराष्ट्र (नागाथोन केन्द्र) में पेट्रो रसायन उद्योग स्थापित है। भारत पेट्रो रसायन पदार्थो के निर्माण मे पूर्णतः आत्म निर्भर है।

टिप्पणी

कच्चे तेल को परिष्कृत किए बगैर कोई खास महत्व नहीं है। परन्तु जब उसे परिष्कृत किया जाता है तब वह खनिज तेल पेट्रोल के रूप में बहुत मूल्यवान बन जाता है। तेल के परिष्करण करते समय हजारों किस्म के पदार्थ मिलते हैं– जैसे मिट्टी का तेल, पेट्रोल, डीजल, लुब्रीकेन्टस और वे पदार्थ जो पेट्रो–रसायन उद्योग में कच्चे माल के रूप में उपयोग में आते हैं।

भारत में इस समय 18 तेल परिष्करण शालाएँ है। इन तेल परिष्करण शालाओं की अवस्थिति इस प्रकार हैं– डिगबोई, बोंगइगांव, नूना माटी (तीनो असम राज्य में), मुम्बई (महाराष्ट्र) में दो इकाइयाँ हैं, विशाखापट्टनम (आन्ध्र प्रदेश), बरौनी (बिहार राज्य), कोयाली (गुजरात), मथुरा (उत्तर प्रदेश), पानीपत (हरियाणा), कोच्चि (केरल), मँगलोर (कर्नाटक) और चेन्नई (तमिलनाडु)। जामनगर (गुजरात) में स्थित परिष्करणशाला एकमात्र संयंत्र है जो निजी क्षेत्र के अन्तर्गत आता है तथा यह रिलायन्स उद्योग लि. द्वारा लगाया गया है।

पाठगत प्रश्न 24.5

1. कच्चेमाल के रूप में प्रयुक्त तीन पदार्थो के नाम लिखिये जिन का प्रतिस्थापन पेट्रो–रसायनिक पदार्थो द्वारा होता है।

   (क)_____(ख)_____(ग)_____

2. पेट्रोरसायन निगम का मुख्यालय कहाँ पर अवस्थित है?

   _____

3. महाराष्ट्र में एक पेट्रो रसायन केन्द्र का उल्लेख कीजिए?

   _____

4. सही मिलान कीजिए–

अ	ब
(क) नून माटी	(i) केरल
(ख) कोच्चि	(ii) असाम
(ग) करनाल	(iii) बिहार
(घ) बरौनी	(iv) हरियाणा

24.6 औद्योगिक समूह

भारत में औद्योगिक विकास के स्तरों में बहुत अधिक क्षेत्रीय असमानताएँ व भिन्नताएँ हैं।

कुछ स्थानों पर भारतीय उद्योग समूह के रूप में संकेन्द्रित हो गए हैं। भारत में अधिकतर औद्योगिक क्षेत्रों का विकास कुछ प्रमुख बन्दरगाहों जैसे कोलकाता, मुम्बई, चेन्नई के पृष्ठ भाग के इर्द–गिर्द क्षेत्रों में हो गया है। इन औद्योगिक क्षेत्रों को सभी सुविधाएँ एवं लाभदायक स्थितियाँ प्राप्त हैं जैसे कच्चे माल की उपलब्धि, ऊर्जा, पूँजी, विपणन केन्द्रों तक अभिगम्यता, इत्यादि। कुल छः औद्योगिक क्षेत्रों में से तीन इन बन्दरगाहो के पृष्ठप्रदेश में ही स्थित हैं। प्रमुख छः औद्योगिक क्षेत्र निम्नलिखित हैं–

(1) हुगली औद्योगिक क्षेत्र

(2) मुम्बई–पुणे औद्योगिक क्षेत्र

(3) अहमदाबाद–वड़ोदरा क्षेत्र

(4) मदुरै–कोयम्बटूर–बँगलोर क्षेत्र

(5) छोटा नागपुर का पठारी क्षेत्र

(6) दिल्ली और उसके आसपास के क्षेत्र

इन उपरोक्त प्रमुख क्षेत्रों के अलावा 15 छोटे औद्योगिक क्षेत्र तथा 15 औद्योगिक जिले हैं।

24.7 औद्योगिक आत्मनिर्भरता

औद्योगिक आत्मनिर्भरता का अर्थ है भारत के लोग उद्योगों की स्थापना, संचालन और प्रबंधन, देश में उपलब्ध तकनीकी ज्ञान, पूँजी एवं मशीनरी, कल पुर्जे जो भारत में ही विनिर्मित किए जाते हैं, उनका उपयोग दक्षता और कुशलता से कर सकने में समर्थ हैं। इसमें किसी भी बाहरी देश के किसी भी प्रकार की सहायता पर निर्भरता नहीं रहती।

भारत सरकार ने सन् 1956 में एक औद्योगिक नीति का निर्धारण किया जिसके मुख्य लक्ष्य थे– औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाना, रोजगार पैदा करना, उद्योगों का विकेन्द्रीकरण करना, औद्योगिक विकास में क्षेत्रीय असमानता को दूर करना तथा लघु–उद्योग एवं कुटीर–उद्योग को विकसित करना इत्यादि।

उद्योगों के सुनियोजित विकास के द्वारा आज हम अनेकों प्रकार के औद्योगिक उत्पादों का निर्माण करते हैं। सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है ऐसी वस्तुओं का विनिर्माण जो अन्य वस्तुओं को विनिर्मित करने में सहायक होती हैं। भारत आज भारी मशीनरी और उपकरणों के निर्माण में सक्षम और पूर्णतः स्वावलम्बी है। इन विनिर्मित मशीनों एवं विभिन्न उपकरणों का उपयोग उत्खनन, सिंचाई, ऊर्जा परियोजनाओं, परिवहन एवं संचार के क्षेत्र में होता है। हम भारत में बनी भारी मशीनो का उपयोग सीमेन्ट, वस्त्र, लोहा एवं इस्पात, चीनी उद्योगों में करते हैं।

टिप्पणी

सार्वजनिक क्षेत्र का औद्योगिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में अभूतपूर्व योगदान रहा है। लोहा एवं इस्पात, रेलवे के उपकरण, पेट्रोलियम, कोयला एवं उर्वरक जैसे उद्योगों का सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत ही विकास किया गया है। ये उद्योग औद्योगिक रूप से पिछड़े क्षेत्रो में ही स्थापित किए गए थे। सातवी पंचवर्षीय योजना के काल में उच्च–प्रौद्योगिकी, उच्च मूल्य सवंर्धन और आधुनिक ज्ञान विज्ञान आधारित उद्योग जैसे इलेक्ट्रोनिक्स उद्योग, प्रोन्नत प्रकार के मशीनी उपकरण, निर्माण, दूर–संचार के क्षेत्र पर अधिक बल दिया गया था।

24.8 आर्थिक उदारीकरण का प्रभाव

भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– 1992 के पूर्व एवं पश्चात। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रथम चालीस वर्षो के अन्तराल में भारत की अर्थव्यवस्था में तेजी से विविधता तथा विस्तार आए। परन्तु इस वृद्धि में कठोर सरकारी नियंत्रण तथा निर्धारित नियमो का अनुपालन इसकी विशेषता रही है।

अगस्त 1992 में भारत सरकार ने एक साहसिक कदम उठाते हुए भारत की आर्थिक–नीतियों पर लगने वाले सरकारी नियंत्रणों में बदलाव लाया गया और इन्हें बाजार की शक्तियों के अनुरूप बदलाव लाने का लचीलापन प्रदान किया गया। निजी पूँजी निवेश तथा संचालन की जिम्मेदारी देते हुए उद्योगों को चाहे घरेलू अथवा विदेशी संस्थाएँ अथवा समुदाय हो, कार्यान्वित और स्थापित करने की छूट प्रदान करने की जरूरत को महसूस किया गया। इन सभी सोच–विचार का नतीजा एक नई औद्योगिक नीति का निर्धारण करना था जिसके अन्तर्गत अगस्त 1992 में उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण की नई नीति को अपनाया गया था। अगस्त 1992 में लिए गए इस नीति निर्णय के पीछे तात्कालिक कारण बकाया भुगतान की अदायगी के संकट पर काबू पाना तथा सामाजिक–आर्थिक, राजनैतिक, भौगोलिक निहितार्थो पर नियंत्रण प्राप्त करना था।

उदारीकरण का अर्थ एक तो सरकारी नियंत्रण में कमी लाना है दूसरा उस उदार दृष्टिकोण से है जिसके अन्दर बाजार की मौजूदा प्रतिस्पर्धायुक्त शक्तियों के अनुरूप आर्थिक नीतियों में लचीलापन लाना। इससे सरकार की उदार प्रवृति के तहत निजीकरण को प्रोत्साहित करने का इरादा भी उजागर होता है। इन उदारीकरण नीतियों ने उद्योगों की स्थापना एवं संचालन, जो 1992 के पहले के वर्षो में सार्वजनिक क्षेत्रों पर ही निर्भर थे, में निजी संस्थाओं को भी जिम्मेदारी, भागीदारी के अवसर प्रदान किए। इस उदारीकरण को भारतीय अर्थव्यवस्था में व्याप्त तमाम कमियों का अचूक रामबाण माना गया। परन्तु लगातार 15 वर्षो तक इस उदारीकरण की नीति का अनुसरण करते हुए जो परिणाम उपलब्ध हुए है वे इतने अच्छे नहीं है। धनवान और निर्धन, सम्पन्न एवं विपन्न के बीच खाई अब और बढ़ गई। व्यापक खपत वाली वस्तुओं के उत्पादन में अपेक्षाओं के अनुरूप वृद्धि नहीं हुई। इसी प्रकार रोजगार के अवसरों में भी आशातीत वृद्धि नहीं हुई। निजीकरण में स्वामित्व का हस्तांतरण सार्वजनिक क्षेत्र से निजीक्षेत्र में, निजी संस्थाओं/व्यक्ति समूह के हाथो में आ जाता है तथा अधिक से

अधिक औद्योगिक क्षेत्रों को निजी पूँजी और प्रबन्धन को सौंपा जाता है। निजीकरण का मुख्य उद्देश्य निजी संसाधनों का लोगों के सामूहिक कल्याण के लिए प्रयोग करना है।

वर्तमान चरण में वैश्वीकरण का अर्थ विश्व की विभिन्न अर्थ–व्यवस्थाओं में एकीकृत संबंधों को बढ़ाने से है। विश्व के विभिन्न देशों के बीच आर्थिक असमानता को विभिन्न देशों के बीच व्यापार के तहत सामान/वस्तुओं/व्यक्तियों/सेवाओं के आदान–प्रदान/पूँजी निवेश/प्रौद्योगिकी के आदान प्रदान पर लगे प्रतिबन्धों को समाप्त करके दूर किया गया।

वैश्वीकरण ने लोगों के रहन–सहन, जीवन के स्तर एवं जीवन–शैली तथा वस्तुओं के उपयोग–प्रतिमानो पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। आज पूरा का पूरा विश्व ही विपणन का व्यापक केन्द्र जैसा लगने लगा हे। वैश्वीकरण ने हमारे नैतिक मूल्यों एवं मान्यताओं को भी प्रभावित किया है।

पाठगत प्रश्न 24.6

1. भारत ने कब अपनी पहली औद्योगिक नीति का निर्धारण किया?

   _____

2. सांतवी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत किन्ही तीन उद्योगों का उल्लेख कीजिए, जिन पर प्रभावी ढंग से विशेष ध्यान दिया गया था।

   _____

3. उदारीकरण का क्या अर्थ है?

   _____

आपने क्या सीखा

प्राकृतिक संसाधनों को अधिक उपयोगी और मूल्यवान बनाने के लिए उनको संसाधित करने की प्रक्रियाओं को विनिर्माण कहते हैं। किसी भी देश की आर्थिक प्रगति एवम् समृद्धि का सीधा संबंध उस देश में हो रहे औद्योगिक विकास के स्तर से सीधा जुड़ा होता है। भारत में विनिर्माण उद्योगों का देश के सकल घरेलू उत्पादन में भागीदारी का अंश प्रतिशत के रूप में पिछले कुछ वर्षो में विशेष रूप से आर्थिक नीतियों में सुधार के बाद वाले वर्षो में बढ़ता रहा है। स्वतंत्रता पूर्व भारत औद्योगिक रूप से कम विकसित था। परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात वाले वर्षो में भारत ने सुनियोजित ढंग से औद्योगिक विकास को बढ़ाने के लिए अपनी विभिन्न पँचवर्षीय योजनाओं में महत्वपूर्ण

टिप्पणी

स्थान दिया। और आज भारत विभिन्न विनिर्मित वस्तुओं का निर्यात विश्व के विभिन्न देशों को कर रहा है।

उद्योगों को उनमें प्रयोग होने वाले कच्चे माल के स्रोत, प्रमुख कार्य, उद्योग के आकार तथा कच्चे और तैयार माल के भार के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है। भारत चूँकि अभी भी एक कृषि–प्रधान देश है, यहाँ पर विविध प्रकार के कृषि–आधारित उद्योग जैसे सूती कपड़े, ऊनी कपड़े, जूट के कपड़े के उद्योग एवं चीनी उद्योग इत्यादि विकसित हो गए हैं। भारत में संगठित क्षेत्र के उद्योगों में सूती–वस्त्र निर्माण उद्योग सबसे बड़ा उद्योग है। भारत में विपुल खनिज भण्डार है। अतः भारत में खनिजों पर आधारित बहुत सी औद्योगिक इकाईयाँ विकसित हुई हैं, जैसे लोहा एवं इस्पात उद्योग, भारी मशीनरी उद्योग, आटोमोबाइल, रासायनिक उद्योग, पेट्रो–रसायन उद्योग इत्यादि।

भारत सरकार ने ऐसी औद्योगिक नीतियों का निर्धारण किया था जिनके कारण भारत उद्योग के विभिन्न क्षेत्रों में स्वावलंबी हो सका है। उदारीकरण, वैश्वीकरण तथा निजीकरण को प्रोत्साहन देने से विदेशी पूँजी–निवेश के साथ आधुनिक प्रौद्योगिकी को भारत मे लाने में बहुत सहायता प्राप्त हुई है। निजी उद्योगों को उद्योगों के अभ्यंतर क्षेत्र में प्रवेश की अनुमति प्रदान करने से उद्योग–क्षेत्र में प्रतिस्पर्धायुक्त तीव्र प्रगति भी हुई है।

पाठान्त प्रश्न

1. मुम्बई और आसपास के क्षेत्रों में सूती–वस्त्र निर्माण उद्योग के संकेन्द्रित होने के क्या कारण है? कोई चार कारण बताइए।

2. चीनी उद्योग के उत्तर भारतीय क्षेत्र से दक्षिण भारतीय क्षेत्र में स्थानांतरित होने के तीन कारणों का उल्लेख कीजिए।

3. स्वामित्व के आधार पर उद्योगों को उदाहरण सहित वर्गीकृत कीजिए।

4. औद्योगिक स्वावलंबन की परिभाषा दीजिए। भारत को औद्योगिक स्वावलंबन की आवश्यकता क्यों है?

5. छोटा नागपुर पठार में और उसके आसपास के क्षेत्र में इस्पात उद्योग के संकेन्द्रित होने के किन्ही चार कारकों का वर्णन कीजिए।

6. कृषि आधारित उद्योग और खनिज आधारित उद्योग के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए। दोनो उद्योगों के दो–दो उदाहरण दीजिए।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

24.1

1. 1772 रानीगंज
2. 1854
3. जमशेदपुर

24.2

1. (ग) बोकारो लौह एवं इस्पात संयंत्र
2. (घ) चीनी उद्योग
3. (घ) बिजली के पंखे
4. कच्चे माल के स्रोत, स्वामित्व, कार्य, आकार, कच्चेमाल तथा उत्पादित वस्तुओं के भार के आधार

24.3

1. 1854, मुम्बई
2. 74%
3. महाराष्ट्र
4. प्रतिहेक्टेयर गन्ने का अधिक उत्पादन

   सुक्रोज की अधिक मात्रा

   गन्ने–पेरने की ऋतु की लम्बी अवधि

   आधुनिक मशीनरी

   उद्योगों का सहकारी क्षेत्र में होना (कोई तीन कारण)

24.4

1. पश्चिम बंगाल के कुल्टी में, 1817
2. युनाइटेड किंगडम
3. (घ)

टिप्पणी

4. (ग)

24.5

1. लकड़ी, काँच, धातु
2. वड़ोदरा
3. नागाथोन
4. (क) और (ii) , (ख) और (i) , (ग) और (iv) , (घ) और (iii)

24.6

1. 1956
2. इलेक्ट्रोनिक्स, उच्च किस्म के मशीनी उपकरण और दूर संचार उपकरण
3. सरकारी नियंत्रण में कमी और बाजार की प्रतिस्पर्द्धा अधिक

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. अनुच्छेद 24.3 (क) देखिए
2. अनुच्छेद 24.3 (ख) देखिए
3. अनुच्छेद 24.2 (सारिणी 24.1) देखिए
4. अनुच्छेद 24.7 देखिए
5. अनुच्छेद 24.4 देखिए
6. अनुच्छेद 24.2 (सारिणी 24.1) देखिए

25

भारतः परिवहन, संचार एवं व्यापार

पिछले पाठ में आप ने खनिज एवं ऊर्जा शक्ति के आवश्यक आधारभूत ढाँचा को संसाधन के रूप में पढ़ा। इसी प्रकार परिवहन, संचार एवं व्यापार भी महत्वपूर्ण सेवा सुविधाओं के अन्तर्गत आते हैं। परिवहन, संचार एवं व्यापार कृषि एवं उद्योग दोनों क्षेत्रों की अभिवृद्धि करने में सहायक होते हैं। परिवहन के साधन लोगों और उनके सामानों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने ले जाने में सहायक हैं। परिवहन इस प्रकार से उत्पादन, वितरण एवं उनके खपत के लिए सहायक है। संचार माध्यमों द्वारा दो व्यक्तियों अथवा संस्थाओं के बीच संदेशों के आदान–प्रदान करने में दूरी और समय दोनो की बचत करते हैं। रेडियो और टेलीविजन ऐसे संचार माध्यम हैं जिनके द्वारा सामूहिक–संदेश जिनमें जानकारी, समाचार, मनोरंजन इत्यादि शामिल होते हैं, दूर–दराज के क्षेत्रों में लोगों तक पहुँचाए जाते हैं। टेलिफोन एव तार (टेलीग्राफ) सेवाएँ लोगों की नजदीकियाँ बढ़ाती हैं। इससे व्यापार–वाणिज्य को प्रोत्साहन मिलता है। व्यापार के अन्तर्गत दूर–दराज क्षेत्रों में उत्पादित वस्तुओं का क्रय–विक्रय व विनिमय आते हैं। इस प्रकार व्यापार कृषि उत्पादन अथवा उद्योग उत्पादन दोनों की प्रगति को त्वरित करता है।

इस पाठ में आप परिवहन, संचार एवं व्यापार की भारत में सापेक्ष महत्ता के बारे से पढ़ेंगे। आप परिवहन एवं संचार के वितरण एवं इसके घनत्व के बारे में सीखेंगे। इसके साथ ही व्यापार की व्यापकता एवं दिशा के बारे में भी जानकारी प्राप्त करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- आधारभूत संरचना को परिभाषित कर सकेंगे;
- क्षेत्रीय विकास में आधारभूत संरचना की भूमिका को समझा सकेंगें;

टिप्पणी

- परिवहन की आवश्यकताओं एवं प्रकारों के बीच संबंध स्थापित कर सकेंगे;
- महत्वपूर्ण सड़कों, रेल मार्गों, वायु मार्गों, जल मार्गों, की प्रणालियों तथा व्यवस्था तंत्र को पहचान सकेंगे;
- आधुनिक संचार व्यवस्था के विभिन्न माध्यमों की भूमिका का वर्णन कर सकेंगे;
- ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की जीवन शैली को बदलने में परिवहन एवं संचार की भूमिका को बता सकेंगे;
- क्षेत्रीय आश्रय एवं राष्ट्रीय एकता में व्यापार के महत्व को दैनिक जीवन में समझा सकेंगे;
- बदलते व्यापार को दर्शाने वाले ग्राफों, चित्रों एवं आकड़ों को अच्छी तरह प्रस्तुत कर सकेंगे।

25.1 आधारभूत संरचनाः परिभाषा एवं क्षेत्रीय विकास में भूमिका

विश्व पुस्तक शब्दकोष के अनुसार ''इन्फ्रास्ट्रक्चर'' शब्द उन आवश्यक घटकों को दर्शाता है जिनके द्वारा किसी संरचना अथवा व्यवस्था का गठन होता है। इन्फ्रास्ट्रक्चर शब्द के अन्तर्गत वे सभी संसाधन शामिल हैं जो देश की आर्थिक स्थिति के आधार को सुदृढ़ करने में सहायक होते हैं। अच्छे आधारभूत संरचना एवं सेवाओं में परिवहन (सड़क, रेल यातायात, बन्दरगाह, नागरिक उड्यन इत्यादि), संचार (दूरसंचार, टेलीग्राफ, टेलीफोन, डाक–तार व्यवस्था इत्यादि) और विद्युत सम्प्रेषण (ट्रांसमिशन) एवं वितरण देश के विकास में निर्णायक भूमिका निभाते हैं।

क्षेत्रीय विकास की किसी भी परियोजना की तैयारी करने में आधारभूत सुविधाएँ एवं सेवाएँ महत्वपूर्ण निर्णायक तत्त्व होते हैं। उत्कृष्ट आधारभूत सेवाओं में परिवहन, संचार, विद्युत सम्प्रेषण एवं वितरण के अलावा संचार व्यवस्था, जल आपूर्ति एवं स्वच्छता, साफ–सफाई सेवाएँ, ठोस अपशिष्टों की निष्कासन व्यवस्था इत्यादि आते हैं। इन सुविधाओं एवं सेवाओं से युक्त किसी भी क्षेत्र का विकास होता है। पिछड़े हुए राज्यों में गरीबी उन्मूलन में ये बहुत सहायक सिद्ध होते हैं।

किसी भी अविकसित एवं अर्ध–विकसित क्षेत्र का आधारभूत सेवाओं की मौजूदगी में विकास किया जा सकता है। इसीलिए क्षेत्रीय विकास की योजना बनाने वाला अधिकारी इन सेवाओं की उपयुक्तता तथा उनके बीच तारतम्यता को हमेशा ध्यान में रखता है।

25.2 परिवहन का महत्व

भारत एक विशाल देश है। सामाजिक सम्बद्धता को बढ़ाने, आर्थिक सम्पन्नता को तेज करने, देश की प्रतिरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए सक्षम एवं सघन परिवहन जाल की आवश्यकता होती है।

परिवहन की तीन प्रमुख विधाएँ हैं– स्थल, जल और वायु। इन तीनों विधाओं में प्रत्येक के कुछ गुण और दोष हैं। वे एक दूसरे से सदैव प्रतिस्पर्धायुक्त रहते हैं। इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि इन विधाओं के बीच पारस्परिक एवं परिपूरक संबंध बना रहता है। इसलिए ये सुप्रबंधित एवं एकीकृत परिवहन जाल के रूप में एक संगठित तंत्र का निर्माण करते हैं।

वायु–परिवहन नवीनतम है जबकि स्थल एवं जल परिवहन अनादि काल से प्रचलित हैं। स्थल परिवहन के अन्तर्गत सड़क एवं रेलमार्ग द्वारा आवागमन सम्मिलित किया जाता है। इन दोनों के बीच रेल परिवहन अपेक्षाकृत अधिक नूतन है। भारी वस्तुओं को लम्बी दूरियों तक ले जाने के किए यह कम लागत का उत्कृष्ट साधन है। यात्रियों को दूर–दूर के स्थानों की यात्रा करने में सबसे कम खर्च मे अधिक प्रभावशाली परिवहन माध्यम है। इसकी तुलना में, सड़क परिवहन छोटी–छोटी दूरियाँ तय करने मे तथा कम दूरी पर स्थित स्थानों में आने–जाने एवं वस्तुओं के परिवहन के लिए सुगम, सस्ता एवं सुविधा युक्त होता है। उचित लागत पर घरेलू काम की चीजों को आप के घर तक पहुँचाने में सड़क परिवहन ही अपनाया जाता है।

जल परिवहन अब यात्रियों के लिए आकर्षण का माध्यम नहीं रहा। परन्तु फिर भी भारी सामानों को परिवहन योग्य नदी मार्गों द्वारा तथा विश्व के अन्य देशों को सामुद्रिक मार्गो द्वारा परिवहन करने का सर्वथा उपयुक्त साधन आज भी है। यद्यपि परिवहन की गति अपेक्षाकृत धीमी है परन्तु यह सबसे सस्ता साधन है।

वायु परिवहन आजकल बहुत लोकप्रिय हो चुका है। उन व्यक्तियों को जिन्हें अचानक सूचना प्राप्त होते ही विश्व के अनेक भागों में कार्य सम्पादन करना हो, वायु परिवहन ही एकमात्र विकल्प रहता है। हवाई यात्रा बहुत महँगी होने के बावजूद भी यात्रियों के बहुमूल्य समय एवं शारीरिक ऊर्जा की बचत करता है। आजकल वायु परिवहन द्वारा शीघ्र खराब होने वाले सामान, नाशवान वस्तुओं तथा बहुमूल्य वस्तुओं को विश्व के एक भाग से दूसरे भाग में पहुँचाया जाता है। निजी हवाई कम्पनियों के प्रारम्भ होने के कारण घरेलू या अन्तर्राष्ट्रीय उड़ानों के किराये में भारी कमी आयी है।

परिवहन तंत्र उत्पादन केन्द्रों एवं उपभोक्ता केन्द्रों को जोड़ते हैं। ये स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वस्तुओं, सेवाओं और लोगों को आने–जाने में मदद करते हैं।

- प्रभावशील परिवहन तन्त्र आर्थिक सम्पन्नता को प्राप्त करने तथा देश की प्रतिरक्षा कायम रखने के लिए आवश्यक है।
- परिवहन की तीन प्रमुख विधाएँ हैं– स्थल, जल और वायु।

25.3 रेल परिवहन

भारतीय रेल तंत्र रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा के बाद विश्व का चौथा

टिप्पणी

सबसे बड़ा रेल तंत्र है। भारत जैसे विशाल देश में रेल परिवहन देश के दूर–दराज स्थित, कोने–कोने से आने वाले यात्रियों में मेल–जोल बढ़ाता है। रेल तंत्र लम्बी दूरियों तक यात्रियों एवं उनके सामानों को पहुँचाने का सबसे आदर्श साधन है। यह केन्द्रीय सरकार के विभिन्न संस्थानों की अपेक्षा सबसे अधिक लोगों को रोजगार प्रदान करता है।

भारत में सबसे पहली ट्रेन वर्ष 1853 में मुम्बई से थाणे के बीच चली और 34 कि.मी. की दूरी तय की। इस बीच भारतीय रेल तंत्र में बहुत ज्यादा विकास तथा अभिवृद्धि हुई। स्वतंत्रता के पश्चात रेल तंत्र की वृद्धि एवं विकास को निम्न सारिणी द्वारा अध्ययन कर सकते हैं:

सारिणी 25.1 भारतीय रेल का संचालन

	1950-51	2003-04
विद्युत संचालित रेल मार्ग की कुल लंबाई (हजार किलोमीटर में)	0.4	17.5
भारतीय रेल लाइन की कुल लम्बाई (हजार कि.मी. में)	53.6	63.2
कुल यातायात (मिलियन टन में)	93.0	557.3
कुल माल की ढुलाई (अरब टन–कि.मी.)**	44.1	381.2
यात्रियों की कुल संख्या (मिलियन में)	1284.0	5123.0
यात्री कि.मी.+ (अरब में)	66.5	541.2

स्रोत – भारत 2006 संदर्भ वार्षिकी, पृ. 805-810
*1000 मिलियन = 1 बिलियन (अरब) 1 मिलियन = 1,000,000 (दस लाख)
** एक टन–कि.मी. = जब 1 टन वजन के सामान की ढुलाई 1 किलोमीटर तक की जाए
1 व्यक्ति–कि.मी. = जब एक यात्री 1 कि.मी. की यात्रा करता है।

उपरोक्त सारिणी पिछले 50 वर्षो में भारतीय रेलवे की संख्यात्मक अभिवृद्धियों को दर्शाती है। सर्वप्रथम, भारतीय रेल लाइन की लम्बाई में वृद्धि दर कम रही। इस रेल लाइन की 28 प्रतिशत लम्बाई का विद्युतीकरण हो चुका है। इसका अर्थ यह हुआ कि इन विद्युत से संचालित रेलमार्ग पर रेलों के यातायात प्रदूषणमुक्त एवं तेजी से संचालित होते हैं। रेल इंजनो के वाष्प चलित होने से कोयले की खपत ज्यादा होती थी। विद्युत चालित होने से कोयले की खपत में जबरदस्त बचत हुई। दूसरा फायदा यह भी हुआ कि जिन रेल डिब्बों का इस्तेमाल स्वयं के उपयोग के लिए कोयला ढोने में किया जाता था, वे अब ग्राहकों के सामानों की ढुलाई में प्रयोग होने लगे, इससे रेलवे की आमदनी में वृद्धि हुई। इसी प्रकार, रेलवे लाइन की लम्बाई में भले ही वृद्धि ज्यादा नहीं हुई परन्तु

टिप्पणी

यात्री–किलोमीटर में 8 गुना वृद्धि हुई। इसी प्रकार माल ढुलाई यातायात (टन–किलोमीटर) में 10 गुना की वृद्धि दर्ज हुई है। ये सब स्पष्ट करते हैं कि रेल की कौशलयुक्त गुणात्मक दक्षता में वृद्धि हुई है। ये सभी गुणात्मक अभिवृद्धि रेल लाइनों पर चलने वाले विद्युत इंजनों एवं डीजल इंजनों के कारण हुई है। वाष्प इंजनो की संख्या घटकर केवल 45 (2003-04 में) रह गई जबकि इनकी संख्या 1950-51 में 8120 थी। इसी प्रकार डीजल इंजन की संख्या जो वर्ष 1950-51 में केवल 17 थी, वे अब बढ़कर 4769 (2003-04) हो गई। विद्युत इंजन की संख्या जो पहले केवल 72 थी वे अब बढ़कर 2003-04 में 3003 तक पहुँच गई।

पहले बताया जा चुका है कि रेल लाइनों की लम्बाई में या नई रेल लाइन बिछाने में मामूली सी वृद्धि हुई है किन्तु रेल–पटरियों पर यातायात की व्यस्तता बहुत बढ़ी है। 1950-51 में रेल–पटरियों की कुल लम्बाई 59,000 कि.मी. थी। 2003-04 तक यह 84,000 कि.मी. तक ही बढ़ पाई। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि जहाँ रेल–पटरियाँ थी, उन क्षेत्रों में दोहरे या कभी–कभी तिहरे रेलमार्ग विस्तृत किए गए। इससे सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि यात्री रेलगाड़ियों एवं मालगाड़ियों की संख्या एवं रफ्तार दोनों में सुधार हुआ। भारतीय रेलवे ने दूसरा मुख्य कार्य यह किया कि मीटर गेज की लाइन को ब्रॉड गेज (गेज 1.68 मीटर) में बदलने की योजना को कार्यान्वित किया। इससे यात्री गाड़ियों तथा माल ढोने वाली गाड़ियो की संख्या एवं क्षमता दोनों में वृद्धि हुई। लम्बी दूरी वाले प्रमुख रेल मार्गो की पटरियों की क्षमता एवं भार–वहन कर सकने की शक्ति में सुधार किए गए। पहले की गतिमान रेलगाड़ियों, पैसेंजर, एक्सप्रेस या मेल यात्री गाड़ियाँ होती थी। अब साथ ही साथ रेल विभाग सुपरफास्ट राजधानी एक्सप्रेस, शताब्दि एक्सप्रेस जैसी अति द्रुतगामी यात्री–गाड़ियाँ इन्ही व्यस्त रेलमार्गो पर चला रहा है।

भारतीय रेल अपनी क्षमता और उपयोगिता की वृद्धि में लगातार प्रयत्नशील है। इसी संदर्भ में भारतीय रेल के आधुनिकीकरण के नए प्रतिमान ''मेट्रो–रेल'' के रूप में उभर कर आया। मेट्रो–रेल का मुख्य उद्देश्य महानगरों में द्रुत परिवहन की सुविधा उपलब्ध कराना तथा बढ़ते यातायात के दबाव को नियन्त्रित करना है। इस दिशा में दिल्ली पहला उदाहरण है जहाँ मेट्रो रेल सफलतापूर्वक दौड़ रही है।

भारतीय रेल ने अपनी उपयोगिता तथा क्षमता में सुधार एवं अभिवृद्धि लाने के लिए निम्नलिखित उपायों को अपनाया हैः–

- कार्य–शील रेलवे लाइन की लम्बाई में काफी विस्तार करना।
- व्यस्त यातायात के प्रमुख रेलमार्गो का शीघ्रता से विद्युतीकरण करना।
- मीटर गेज रेल मार्गो को ब्रॉड गेज रेल मार्गों में बदलना।
- द्रुतगामी एवं अतिद्रुतगामी रेलगाड़ियाँ को चलाना।

टिप्पणी

- खाद्य–सामग्रियाँ ढ़ोने वाली विशिष्ट द्रुतगामी रेलगाड़ियों को चलाना।
- रेल गाड़ियों में आरक्षण की अच्छी और सुविधायुक्त प्रणाली को अपनाना।
- ''इन्टरनेट'' पर आरक्षण की सुविधा उपलब्ध कराना।
- ग्राहक सेवा केन्द्र का खोला जाना।

आइये भारतीय रेलमार्गो के जाल पर चर्चा करें। देश में इन्हें सघन, सामान्य एवं विरल जालतंत्र में विभक्त कर चर्चा की जाएगी।

सघन रेल परिवहन जाल के क्षेत्र

(i) भारत के उत्तरी मैदानी एवं पूर्व–तटीय क्षेत्रों में सघन रेल परिवहन जाल पाया जाता है। इस सघन परिवहन जाल के निर्माण में इस क्षेत्र में विद्यमान समतल भूमि, उपजाऊ मिट्टियाँ, सघन जनसंख्या और औद्योगिक इकाइयों का क्षेत्रीय विस्तार आदि प्रमुख कारक हैं।

(ii) इसी प्रकार अन्य भागों के अन्तर्गत गुजरात तथा सौराष्ट्र के सपाट मैदानी क्षेत्र, मध्यवर्ती तमिलनाडु तथा छोटानागपुर का विशाल पठारी भाग आते हैं। इन क्षेत्रों में अधिक विकसित उद्योग मौजूद हैं।

सामान्य रेल परिवहन जाल के क्षेत्र

तमिलनाडु एवं छोटानागपुर के भागों को छोड़कर पूरे भारतीय प्रायद्वीपीय पठारी क्षेत्र में सामान्य रेल परिवहन जाल है। यह विशाल भाग पहाड़ियों तथा ऊँची–नीची पथरीली पठारी जमीन से बना है। इन कारणों से रेल पटरियाँ बिछाना दुष्कर कार्य होता है। फिर भी कुछ प्रमुख रेल मार्ग हैं जो बड़े महत्वपूर्ण उद्योग केन्द्रों एवं बन्दरगाहों को जोड़ते हैं। पटरियाँ दो पहाड़ियों के बीच से अथवा उनके भीतर सुरंगे बनाकर बिछाई जाती हैं।

विरल रेल परिवहन जाल के क्षेत्र

(i) हिमालय पर्वतीय क्षेत्र के अन्तर्गत जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, सिक्किम और अरूणाचल प्रदेश में रेल मार्ग नहीं के बराबर विकसित हो सके हैं। यहाँ की उबड़–खाबड़ भू–आकृतियाँ और पर्वतीय क्षेत्र असुविधाजनक कारक हैं। पर्वतों के पाद–स्थल अर्थात तलहटी में बसे हिमालय पर्वत–पदीय भागों में कुछ महत्वपूर्ण शहर जैसे जम्मू, काठगोदाम, कोट्द्वार और देहरादून रेलमार्ग के अन्तिम सिरे के रूप में है। हाल ही में जम्मू तक पहुँचने वाली रेल लाइन, ऊधमपुर (जम्मू–कश्मीर) तक बढ़ाई गई है। इस क्षेत्र में दो प्रमुख संकरे (नैरो) गेज की रेल लाइनें कालका से शिमला तथा सिलीगुड़ी से दार्जिलिंग शहरों को जोड़ती हैं।

(ii) भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में भी रेल परिवहन तंत्र विरल है। असम राज्य के केवल

ब्रह्मपुत्र घाटी में ही रेल मार्ग है। अन्य पर्वतीय राज्य रेल यातायात सुविधा से वंचित हैं। घने जंगल, भारी वर्षा, उबड़–खाबड़ भूसंरचना, विरल जनसंख्या के साथ क्षेत्र में निम्न आर्थिक एवं औद्योगिक विकास विरल रेल–परिवहन तंत्र के प्रमुख कारण है।

(iii) इसी प्रकार राजस्थान के पश्चिमी मरूस्थलीय क्षेत्र में रेल परिवहन जाल विरल है। इस क्षेत्र के बड़े शहरों को मीटर गेज रेल लाइनें जोड़ती हैं। भारतीय रेल अब इन मीटर गेज रेल लाइनों में से अधिकांश को ब्रॉड गेज रेललाइनो में बदल चुकी है। यह मरूस्थलीय क्षेत्र विरल आबादी के साथ ही औद्योगिक विकास में भी पीछे है। इसके अलावा इस क्षेत्र की जलवायु भी गर्म व शुष्क है। शुष्क रेतीली आँधियों से अक्सर रेल लाइन आच्छादित हो जाती है। इन्हीं सब कारणों से रेल–पटरियाँ बिछाना और उनकी देखभाल करना कठिन कार्य हैं।

मुख्य रेल मार्गो का प्रारूप

देश के रेलवे मानचित्र को ध्यान से देखें। व्यस्त रेल मार्ग दिल्ली से शुरू हो कर मुम्बई, चेन्नई, कोलकाता को जोड़ते हुए पुनः वापस दिल्ली पहुँचता है। विकर्ण रेखाएँ एक तरफ मुम्बई को कोलकाता से जोड़ती है, दूसरी तरफ दिल्ली और चेन्नई को जोड़ती हैं। ये जुड़ी हुई रेल लाइनें पतंगनुमा या हीरे की आकृति का प्रारूप दर्शाती है। ये रेलमार्ग एक प्रकार से भारतीय रेल तंत्र का मेरूदंड हैं।

इस मौजूदा प्रारूप में दो और प्रमुख रेल–परिवहन जाल का उल्लेख करने की आवश्यकता है। पहला, सतलज नदी बेसिन (पंजाब राज्य का पश्चिमोत्तर सपाट मैदानी भाग) है जिनमें पठानकोट, अमृतसर, वाघा, फिरोजपुर, जैसे महत्वपूर्ण लाइनों को दिल्ली से जोड़ा गया है। दूसरा रेल परिवहन तंत्र असम के ब्रह्मपुत्र घाटी का है। ये भाग बिहार के पूर्वोत्तर क्षेत्र और पश्चिम बंगाल के उत्तरी भाग, असम के पूर्वी भाग में स्थित डिब्रूगढ़ से जुड़े हुए हैं।

ये सभी रेलमार्ग ब्रॉड गेज पटरियों वाले हैं तथा सभी दिल्ली से जुड़ते हैं। इन मार्गो का अधिकांश लम्बाइयों में विद्युतीकरण हो चुका है।

भारतीय रेलों की भूमिका

भारतीय रेल की अहम् भूमिका के अध्ययन के लिए निम्न सारिणी को ध्यान से देखिए। सारिणी के अन्त में दिए गए तथ्यों का अवलोकन करें।

सारिणी 25.2 भारतीय रेल द्वारा माल ढुलाई (दस लाख टन में)

	वस्तुएँ	1950-51	2003-04
(i)	कोयला	20.2	271.40
(ii)	लोहा–इस्पात उद्योग के लिए (कोयला के अतिरिक्त) कच्चे माल	आकड़े–उपलब्ध नहीं	44.26

टिप्पणी

(iii) कच्चा लोहा, इस्पात संयंत्र का उत्पादित माल	–	15.24
(iv) निर्यात के लिए लौह–अयस्क	कुछ नहीं	36.41
(v) सीमेन्ट	2.5	53.47
(vi) खाद्यान	8	46.52
(vii) उर्वरक	कुछ नहीं	28.75
(viii) खनिज तेल	2.7	22.00

स्रोत–आर्थिक सर्वेक्षण–2005-06 पृष्ठ 195

(i) रेल द्वारा वस्तुओं की ढुलाई में कोयला सबसे प्रमुख वस्तु रहा है। रेल परिवहन सेवा ने कोयला विहीन क्षेत्रों में भी औद्योगिक विकास को बढ़ाया है।

(ii) औद्योगिक केन्द्रों पर कच्चे माल की ढुलाई कर रेलवे ने उद्योगों को बढ़ावा दिया।

(iii) द्वितीयक उद्योगों को विकसित करने में रेलवे का योगदान महत्वपूर्ण रहा। यह अर्ध–निर्मित तथा पूर्ण तैयार उत्पादों को परिवहन करके वितरित करता है।

(iv) रेल परिवहन तंत्र ने निर्यात की वस्तुओं जैसे लौह–अयस्क, सीमेन्ट, खाद्यान्न इत्यादि का उत्पादन क्षेत्र से निर्यात स्थान तक पहुँचाने तथा विदेशी मुद्रा अर्जित करने में सहायता पहुँचाई है।

(v) सीमेन्ट का परिवहन कर देश के दूर–दूर क्षेत्रो में भवन–निर्माण प्रक्रिया को प्रोन्नत करने में रेलवे का योगदान रहा है।

(vi) देश के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में उर्वरकों का परिवहन करके कृषि–उत्पादन के विकास में रेलवे का विशेष योगदान रहा है।

(vii) भारतीय रेल परिवहन द्वारा खनिज–तेल बन्दरगाह तथा तेल शोधक संयत्रो से देश के आन्तरिक भागों तक पहुँचाया जाता है।

इन उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि क्यों भारतीय रेल देश की प्रमुख परिवहन सेवा है।

पाठगत प्रश्न 25.1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए:

1. किन्ही दो आधारभूत सेवाओं का उल्लेख कीजिए–

   (क)_____(ख)_____

टिप्पणी

2. वर्ष 2003-04 में भारतीय रेल मार्ग की कुल लम्बाई कितनी थी?

_____

3. रेल परिवहन के दो प्रमुख लाभ बताइये।

(क)_____(ख)_____

4. भारत के दो क्षेत्रों के नाम बताइये जहाँ रेल परिवहन तंत्र सघन है।

(क)_____(ख)_____

5. भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्रो में विरल रेल परिवहन तंत्र होने के दो सबसे महत्वपूर्ण कारणों को स्पष्ट कीजिये।

(क)_____(ख)_____

6. प्रायद्वीपीय पठारी क्षेत्र में रेल लाइन बिछाने की प्रमुख समस्याओं का उल्लेख कीजिये।

(क)_____(ख)_____

25.4 सड़क परिवहन

परिवहन का सबसे प्राचीन साधन सड़क रहा है। यह रेल परिवहन की अपेक्षा अधिक विस्तृत एवं सुलभ साधन है। ग्रामीण अर्थ व्यवस्था तो सड़क परिवहन पर ही अधिक निर्भर है। मोटरकार के आविष्कार के बाद तो सड़क का महत्व और भी बढ़ गया है। रेल परिवहन की तुलना में सड़क परिवहन की श्रेष्ठता निम्न तथ्यों से स्पष्ट होती है–

1. सड़कें ग्राहक के दरवाजे तक सेवा प्रदान करती है जबकि रेल परिवहन की सेवाएँ रेलवे स्टेशन पर आकर समाप्त हो जाती हैं।

2. सड़क मार्गो को पहाड़ी क्षेत्रों के अधिक ढलान वाले भागों में भी बनाया जा सकता हैं। पहाड़ को बिना सुरंग बनाए घुमावदार सड़के बनाकर पहाड़ को पार किया जा सकता है। पहाड़ी क्षेत्रों में रेल लाइन बिछाना अधिक खर्चीला तथा कठिनाई भरा होता है।

3. सड़क परिवहन सुगम्य, विश्वसनीय एवं द्रुतगामी है।

4. शीघ्र खराब होने वाली वस्तुओं जैसे दूध, मछली, सब्जी, फल इत्यादि का परिवहन सड़क द्वारा अधिक सुविधाजनक होता हैं।

5. रेल परिवहन की अपेक्षा सड़कों का निर्माण एवं देखभाल अधिक आसान एवं कम लागत में संभव है।

टिप्पणी

6. कम दूरी के लिए सड़क परिवहन आदर्श साधन है। सड़कें रेल स्टेशनों को आन्तरिक नगरों, कस्बों, गाँवो से जोड़ने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

7. देश में पर्यटन उद्योग को प्रोत्साहित करने में सड़कें बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

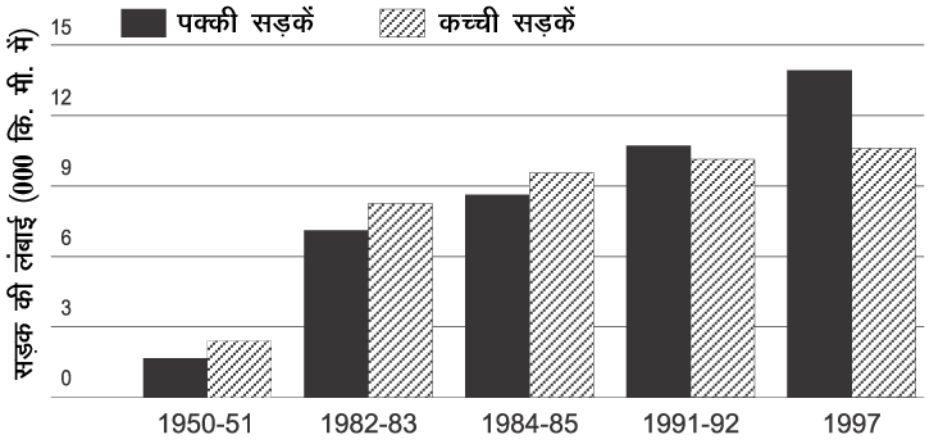

चित्र 25.1 भारत में सड़क मार्गों का विकास

देश में सड़क मार्ग की कुल लम्बाई लगभग 3.32 लाख कि.मी. है। संसार के विभिन्न देशों के सड़कों के जाल के मुकाबले में भारतीय सड़क–जाल का स्थान सर्वप्रथम है, फिर भी यह पर्याप्त नहीं है।

पक्की तथा कच्ची सड़कें

पक्की सड़कें सीमेंट व क्रॉंकीट अथवा गिट्टी बिछाकर कोलतार से आच्छादित कर बनाई जाती हैं। पक्की सड़कों पर यातायात सालभर चलता रहता है। इन पर मौसम का प्रभाव ज्यादा नहीं पड़ता है। मार्च 1997 तक पक्की सड़कों की कुल लम्बाई 13,94,067 कि.मी. थी।

कच्ची सड़कें मिट्टी से बनाई जाती हैं। इन सड़कों पर बैल गाड़ियाँ, साइकिल, ट्रैक्टर इत्यादि चला करते हैं। गाँवो को एक दूसरे से जोड़ने में तथा गाँवों को शहर से जोड़ने में भी इनका महत्वपूर्ण योगदान होता है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था को विकसित एवं मजबूत करने में इनकी भूमिका अहम होती है। वर्षा के दिनों में कच्ची सड़कों पर यातायात अवरूद्ध हो जाता है। इन कच्ची सड़कों की लम्बाई मार्च 1997 तक 10,71,816 कि. मी. थी।

सड़क परिवहन का विकास

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात सड़कों की लम्बाई में भारी वृद्धि हुई है। पक्की सड़कों की लम्बाई 1950-51 में 1.57 लाख कि.मी. से बढ़कर वर्ष 1997 में 13.94 लाख. कि. मी. हो गई। इसी अवधि में कच्ची सड़कों की लम्बाई 2.42 लाख कि.मी. से बढ़कर 10.71 लाख कि.मी. से भी ज्यादा हो गई।

इन वर्षों में केवल सड़कों की लम्बाई ही नहीं बढ़ी, यातायात में प्रयुक्त होने वाले वाहन गाडियाँ जैसे बसों, ट्रकों की संख्या में भी बहुत वृद्धि हुई है। जहाँ एक ओर व्यापारिक एवं सामान्य वाहनों की संख्या में बढ़ोत्तरी देश के विकास का परिचायक है, वहीं बढ़ते वाहनों से सड़क यातायात के समक्ष अनेकों समस्याएँ भी उत्पन्न हुई हैं। सड़कों पर होने वाली दुर्घटनाओं में भी बहुत वृद्धि हुई है। बढ़ते यातायात से सड़कों पर चलने वाले वाहनों द्वारा निष्कासित धुआँ वायु प्रदूषण को बढ़ा रहा है।

सड़कों का भौगोलिक वितरण

सड़क घनत्व का आशय प्रति 100 वर्ग कि.मी. क्षेत्र पर सड़कों की कुल लम्बाई है। विकसित देशों के मुकाबले भारत में सड़क घनत्व अभी भी बहुत कम है। सड़कों की जाल सघनता भारत के उत्तरी मैदानी भागों में ज्यादा है। इसका मुख्य कारण समतल भूमि, उपजाऊ मृदा एवं सघन जनसंख्या है। इन प्रदेशों में पक्की सड़कों की तुलना में कच्ची सड़कें ज्यादा प्रचलित हैं। भारत के प्रायद्वीपीय पठार में पक्की सड़कों का अनुपात ज्यादा है क्योंकि सड़क निर्माण में उपयोगी वस्तुएँ आसानी से उपलब्ध हैं। उत्तर पूर्वी राज्यों में धरातलीय बनावट पहाड़ी, पर्वतीय, उबड़–खाबड़ तो है ही इसके साथ इस क्षेत्र में भारी वर्षा, सघन जंगल तथा बार–बार बाढ़ आना, भूस्खलन इत्यादि सड़क निर्माण में बाधा उत्पन्न करते हैं। सबसे महत्वपूर्ण कारण यहाँ की विरल आबादी है।

भारत में सड़क घनत्व का प्रतिरूप भी असमान है। तमिलनाडु, केरल, पंजाब तथा हरियाणा राज्यों में सड़क घनत्व सब से अधिक है। इसका मुख्य कारण इन क्षेत्रों में कृषि, निर्माण उद्योग, शहरीकरण का विकास एवं सघन जनसंख्या है। इसी प्रकार अधिक सड़क घनत्व वाले क्षेत्र कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्रप्रदेश, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल राज्यों में है। सामान्य सड़क घनत्व के क्षेत्र मध्यप्रदेश, उड़ीसा छत्तीसगढ़, राजस्थान, झारखण्ड, बिहार, असम राज्यों के अन्तर्गत आते हैं।

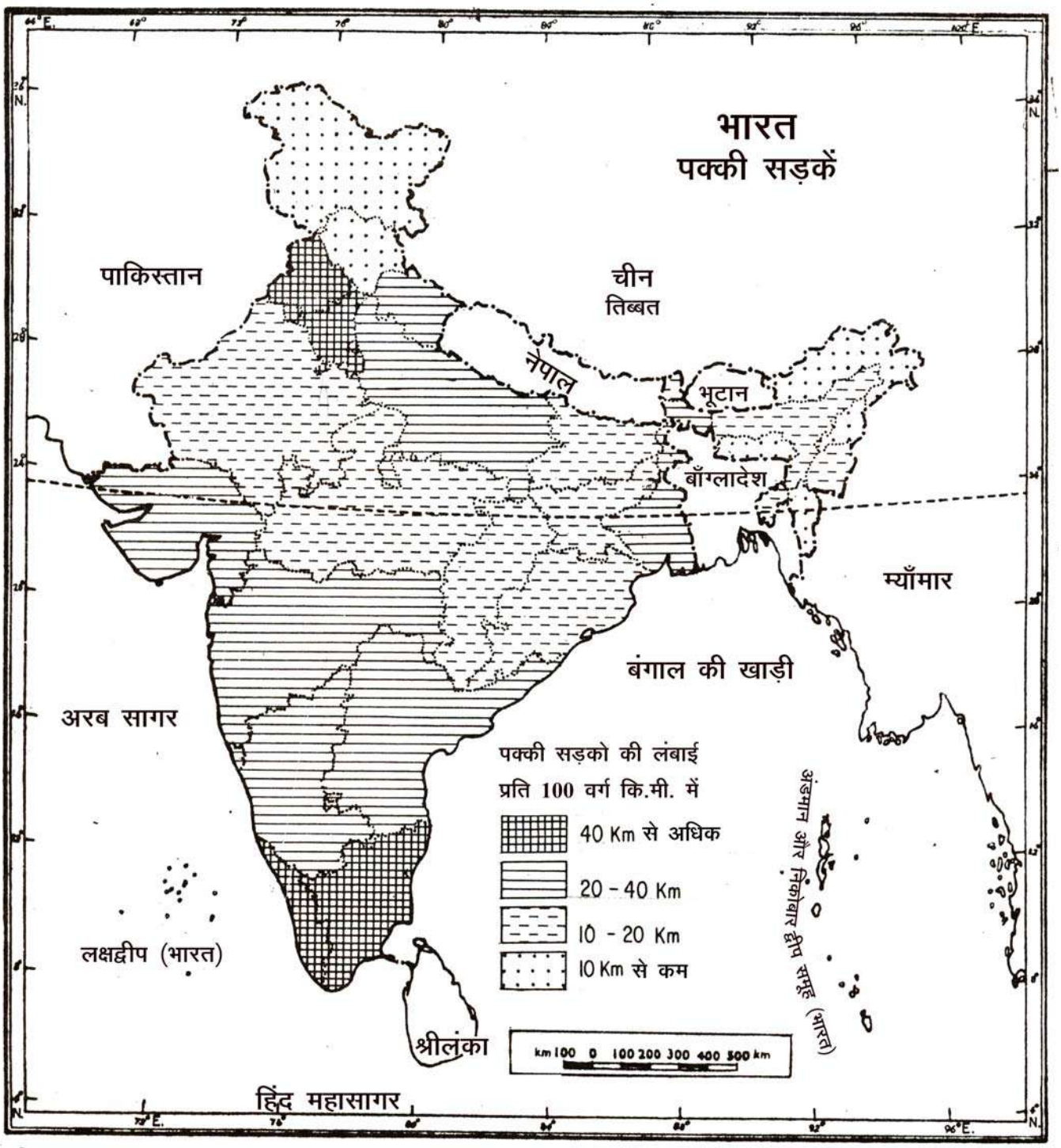

Based upon Survey of India outline map printed in 1979.

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act. 1971, but has yet to be verified.

© Government of India copyright, 1979.

चित्र 25.2 भारतः पक्की सड़कें

हिमालय पर्वतीय क्षेत्रों एवं उत्तर–पूर्वी राज्यों में सड़क घनत्व बहुत कम हैं। यहाँ प्रति 100 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में 20 कि. मी. से भी कम सड़कें हैं। उत्तर में पंजाब, हरियाणा, दिल्ली तथा दक्षिण में तमिलनाडु, केरल में पक्की सड़कों का सार्वाधिक घनत्व है। सम्पूर्ण दक्षिण भारत में पक्की सड़कों का घना जाल बिछा हुआ है। यहाँ पक्की सड़कों तथा समस्त सड़क घनत्व के प्रतिरूप में बहुत अधिक समरूपता मिलती है।

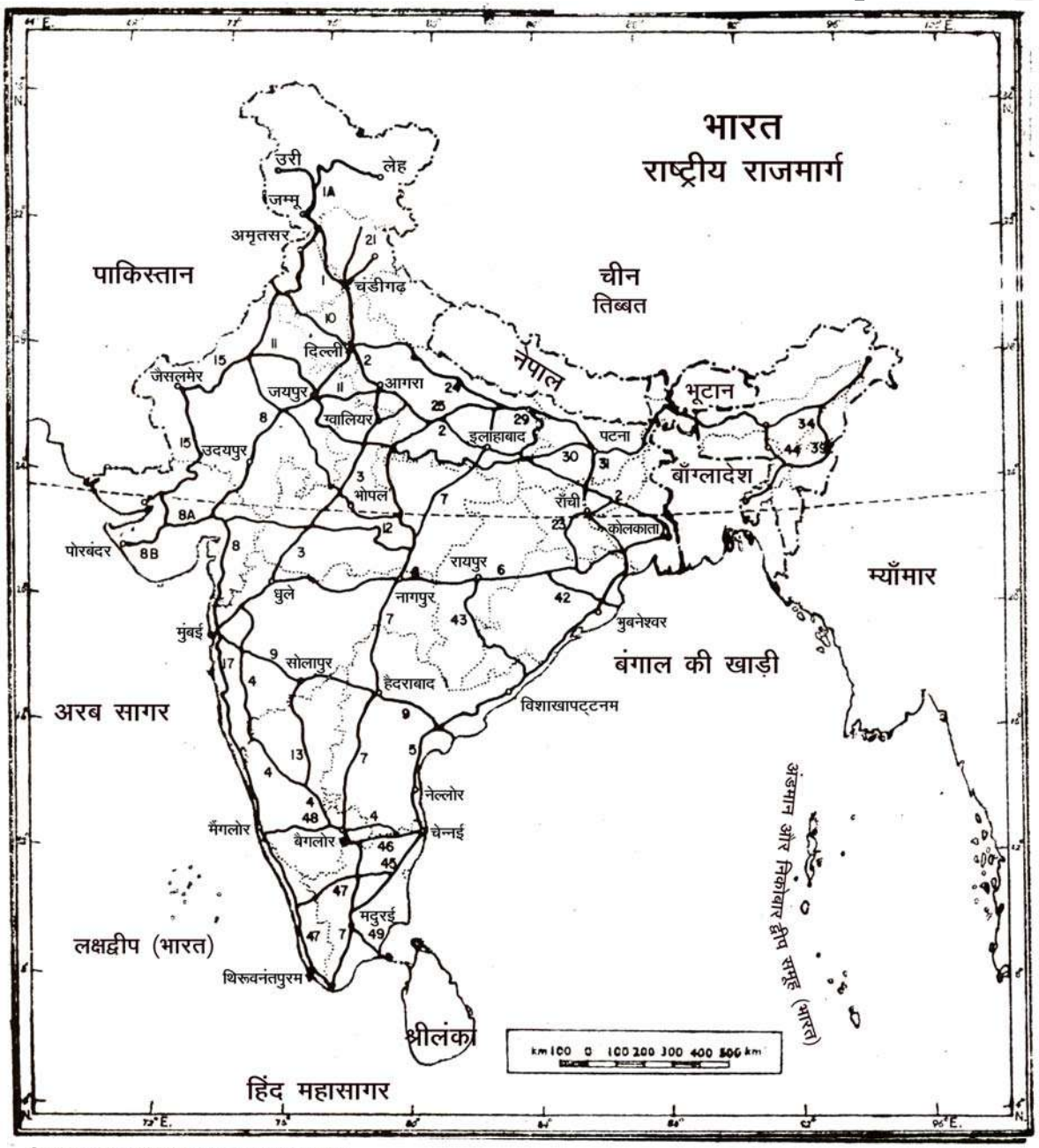

चित्र 25.3 भारतः राष्ट्रीय महामार्ग

टिप्पणी

भारत में सड़क–घनत्व में एकरूपता नहीं है। प्रमुख कारणों में स्थान विशेष की धरातलीय बनावट तथा जलवायु, जनसंख्या घनत्व, आर्थिक विकास इत्यादि हैं।

भारत में सड़कों को तीन वर्गों में रखा जाता है, जैसे - (1)राष्ट्रीय महामार्ग, (2) राज्य महामार्ग, (3) जिला व ग्रामीण सड़क।

राष्ट्रीय महामार्ग प्रमुख मार्ग है जो देश के बड़े शहरों को जोड़ते हैं। इन सड़कों का निर्माण, रख–रखाव, मरम्मत इत्यादि का संचालन केन्द्रीय सरकार द्वारा होता है। राष्ट्रीय महामार्गो की सकल लम्बाई 65,500 कि.मी. है। भारत में 219 राष्ट्रीय महामार्ग हैं। यद्यपि महामार्गो की लम्बाई भारत की कुल पक्की सड़कों की लम्बाई का केवल 2 प्रतिशत ही है तथापि पक्की सड़कों पर होने वाले सभी प्रकार के यातायात का 40 प्रतिशत भाग इन्ही महामार्गो में होता है। भारत का राष्ट्रीय महामार्ग क्र. 7 सबसे लम्बा है जो उत्तर में वाराणसी (उत्तर प्रदेश) को दक्षिण में कन्या कुमारी से जोड़ता है। इसकी कुल लम्बाई 2683 कि.मी. है।

राज्य महामार्ग राज्यों द्वारा बनाए तथा देख–रेख किये जाते है। राज्य सड़क परिवहन विभाग, राज्य के लोक निर्माण विभाग इन सड़कों का निर्माण, रख–रखाव व मरम्मत इत्यादि का संचालन करते हैं। इसी प्रकार जिला व ग्रामीण सड़कों का निर्माण, परिवहन–संचालन, रख–रखाव, मरम्मत इत्यादि का प्रबंध जिला पंचायत, जनपद पंचायत एवं ग्राम पंचायत जैसे स्वायत्त् संस्थानों द्वारा किया जाता है जिन्हे आर्थिक सहायता राज्य–कोष से उपलब्ध कराई जाती है।

अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं से सटे सुदूर सीमावर्ती क्षेत्रों में सड़कों का निर्माण किया जाता है। ये सड़कें सुदूर क्षेत्रो में रहने वाले लोगों को प्रमुख नगरों से जोड़ने और प्रतिरक्षा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। सीमा सड़क मार्गो के निर्माण, मरम्मत तथा रख–रखाव का संचालन एवं नियन्त्रण ''सीमा सड़क संगठन'' करता है। इन सड़क मार्गो का सामारिक एवं आर्थिक महत्व है। पूरे विश्व का सबसे ऊँचा सड़क मार्ग लेह और मनाली के बीच बनाया गया है। समुद्र तल से इसकी ऊँचाई 4270 मीटर है। इस सड़क निर्माण में भारतीय सीमा सड़क संगठन के इंजीनियरों ने कुशलता एवं साहस का परिचय दिया। भारत की अधिकांश सीमावर्ती सड़कें उन क्षेत्रो में बनाई गई हैं जहाँ की जलवायु दुष्कर एवं असह्य है। भौगोलिक संरचना बीहड़, पहाड़ी, उबड़–खाबड़, वीरान तथा जल विहीन मरूस्थलीय प्रदेश है।

- राष्ट्रीय महामार्ग देश के नगरों, महानगरों को जोड़ते हैं यद्यपि इनकी कुल लम्बाई पूरी पक्की सड़कों की लम्बाई का मात्र 2 प्रतिशत ही है किन्तु देश का 40 प्रतिशत यातायात इन्ही राष्ट्रीय महामार्गो पर होता है।
- राज्य महामार्ग राज्य की राजधानी को राज्य के सभी जिला मुख्यालयों से जोड़ते हैं। जिला तथा ग्रामीण सड़कें जिला मुख्यालय, छोटे कस्बों और ग्रामों को परस्पर जोड़ती हैं।

राष्ट्रीय महामार्ग विकास परियोजना (एन.एच.डी.पी.) के अंतर्गत सड़कों का नवीन विकास

इस परियोजना के अन्तर्गत हाल ही में कई सड़कों का विकास हुआ है। भारत सरकार ने देश के आर्थिक विकास को प्रोन्नत एवं गतिमान करने के उद्देश्य से जिस परियोजना को संचालित किया उसे ''राष्ट्रीय महामार्ग विकास कार्यक्रम'' (एन.एच.डी.पी) कहा जाता है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रथम दो चरणों के लक्ष्यो को प्राप्त किया जा चुका है तथा अब तृतीय चरण में सुनिश्चित लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में है। प्रथम दो चरणों में प्राप्त किए गए उपलब्धियों का ब्योरा इस प्रकार है–

(i) **स्वर्णिम चतुर्भुज महामार्गो का जाल**–इसके अन्तर्गत चार लेन वाली चौड़ी पक्की सड़क का निर्माण किया गया है। यह देश के चार महानगरों दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई तथा कोलकाता को वापस दिल्ली से जोड़ता है। इस चतुर्भुजाकार सड़क की कुल लम्बाई 5846 कि.मी. है। 31 मई 2005 तक 5846 कि.मी. में से 4856 कि.मी. मार्ग पर निर्माण कार्य पूरा कर लिया गया है।

(ii) दूसरा प्रमुख लक्ष्य देश के उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम दिशाओं में गलियारे का निर्माण है। इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय महामार्गो का निर्माण कर श्रीनगर को कन्याकुमारी से जोड़ना है, इसे कोचीन तथा सलेम से भी जोड़ा गया है। इसमें पश्चिम में पोरबंदर से पूर्व में सिलचर तक का सड़क निर्माण भी शामिल हैं। इस सड़क की कुल लम्बाई 7300 कि.मी. है। परन्तु 31 मई 2005 तक चार/छः लेन वाली सड़क केवल 707 कि.मी. तक ही बन पाई है। भारत सरकार के अनुसार इस महती परियोजना को दिसंबर 2007 तक पूरा करने की योजना है।

(iii) तीसरा महत्वपूर्ण लक्ष्य 12 प्रमुख बन्दरगाहों को जोड़ने वाले महामार्गो के 356 कि.मी. लम्बाई को चार लेन में तब्दील करना है। दूसरे महामार्गो के कुल 777 कि.मी. लम्बाई को भी चार लेन वाली सड़कों में बदलना है। 31 मई 2005 तक बन्दरगाहो को जोड़ने वाले महामार्गो की चार लेन वाली सड़क में तब्दीली केवल 69 कि.मी. तक हो पाई तथा अन्य महामार्गों पर मात्र 287 कि.मी. की लम्बाई को ही चार लेन में परिवर्तित किया जा सका।

इसके अतिरिक्त 'भारतीय राष्ट्रीय महामार्ग प्राधिकरण' ने महामार्गो के विकास की पाँच चरणों में परियोजना बनाई है। वे इस प्रकार है–

(i) निर्माण–परिचालन–हस्तांरण (बी.ओ.टी.) के आधार पर राष्ट्रीय महामार्गो के करीब 10,000 कि.मी. लम्बाई की सड़को को चार लेन वाली सड़कों में तब्दील करना (तृतीय चरण)।

(ii) राष्ट्रीय महामार्ग के दो लेन वाली सड़क पर खड़ंजा डाल कर 20,000 कि.मी. की लम्बाई पूरी करना (चतुर्थ चरण)।

(iii) 5000 कि.मी. की लम्बाई में राष्ट्रीय महामार्ग को छः लेन वाली सड़को में तब्दील करना (पांचवा चरण)।

टिप्पणी

(iv) 1000 कि.मी. की लम्बाई में राष्ट्रीय महामार्ग की चुनिन्दा सड़कों को अतिद्रुतगामी यातायात प्रवाह (एक्सप्रेस) वाली सड़क में तब्दील करना (छठवाँ चरण)।

(v) रिंग रोड, बाइपास, फ्लाई–ओवर इत्यादि का निर्माण करना ताकि राष्ट्रीय महामार्गो पर मार्ग–अवरोध की समस्याओं से निपटा जा सके।

(vi) इन सब के अतिरिक्त उत्तर–पूर्वी भारत के क्षेत्रों में राष्ट्रीय महामार्ग तथा अन्य मार्गो के विकास का कार्यक्रम बनाया गया है। इसका संचालन ''उत्तर–पूर्वी क्षेत्र में विशेष त्वरित सड़क विकास कार्यक्रम'' (SARDP-NE) के तहत किए जाने की योजना है।

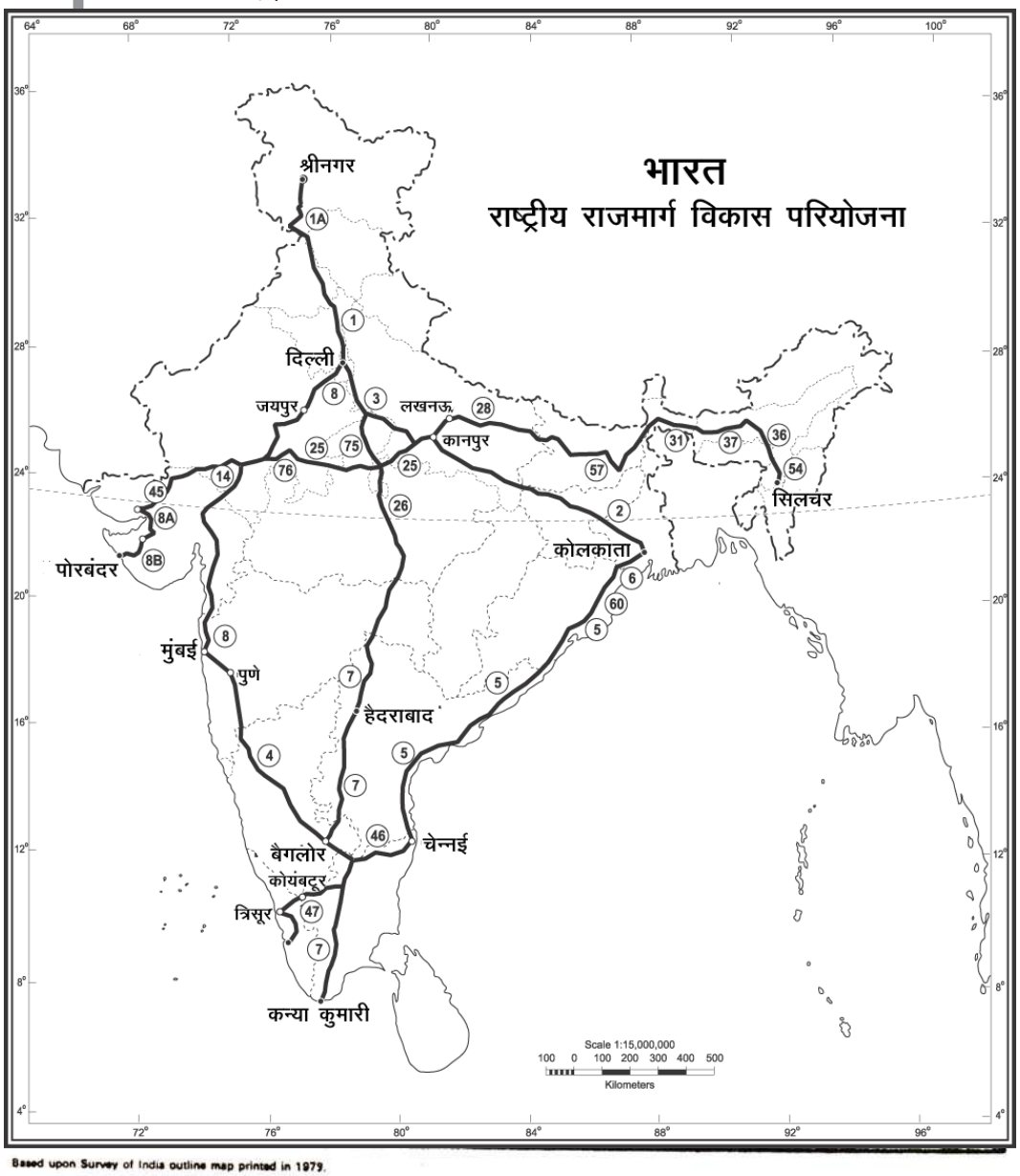

Based upon Survey of India outline map printed in 1979.
The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.
The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act. 1971, but has yet to be verified.
© Government of India copyright, 1979

चित्र 25.4 भारतः स्वर्णिम चतुर्भुज एवं उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम गलियारा

पाठगत प्रश्न 25.2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए–

1. वर्ष 1997 में पक्की सड़कों की कुल लम्बाई कितनी थी?

2. राष्ट्रीय महामार्ग संख्या 7 के अन्तिम छोरों के नाम दीजिए।

   (क) _____ (ख) _____

3. भारत के उन दो राज्यों के नाम बताइये जहाँ सबसे अधिक सड़क–घनत्व है।

   (क) _____ (ख) _____

4. विश्व की सबसे ऊँची सड़क के दोनो छोरों का नाम लिखिए।

   (क) _____ (ख) _____

5. किन क्षेत्रों मे कच्ची सड़कों का महत्व अधिक है?

   _____

6. भारत के उत्तर–पूर्वी भागों में विरल सड़क–घनत्व होने का सबसे अधिक प्रमुख कारण का उल्लेख कीजिए।

   _____

7. ''स्वर्णिम–चतुर्भुज महामार्ग'' की कुल लम्बाई कितनी है?

   _____

25.5 पाइप लाइन परिवहन

भारत में पाइप लाइन परिवहन का प्रचलन अभी हाल ही में शुरू हुआ है। खनिज तेल, पेट्रोलियम के अन्य तरल पदार्थ एवं प्राकृतिक गैस को उत्पादन क्षेत्रों से सीधे तेलशोधक संयंत्रों तक या विपणन केन्द्रो तक सुविधा पूर्वक पहुँचाने में पाइप–लाइन परिवहन भरोसेमन्द साधन है। अब ठोस पदार्थ को भी अर्ध–तरल अवस्था में बदलकर पाइप लाइनों में परिवहित किया जाता है।

दूसरे परिवहन के साधनो की तुलना में पाइप लाइन परिवहन के कुछ विशेष लाभ हैं। (i) पाइप लाइनों को दुर्गम, कठिन, उबड़–खाबड़ भूभागों तथा मार्ग में पड़ने वाले जलाशयो के पानी के नीचे से भी बिछाया जा सकता है। (ii) यद्यपि पाइप बिछाने की प्रारंभिक लागत बहुत अधिक होती है, परन्तु बाद में इसके रख–रखाव की लागत कम होती है। (iii) पाइप लाइन परिवहन द्वारा पदार्थो की आपूर्ति अनवरत रूप से सुनिश्चित

टिप्पणी

होती है। इस परिवहन साधन में तरल पदार्थो के वाहनान्तरण प्रक्रिया में समय भी बहुत बचता है तथा परिवहन के पदार्थो का नुक्सान भी कम होता है। (iv) पाइप लाइन परिवहन में ऊर्जा की खपत भी बहुत कम होती है।

उपरोक्त लाभों के बावजूद इस परिवहन प्रणाली की कुछ सीमाएँ हैं– जैसे एक बार निश्चित व्यास की पाइप लाइन डाल दी गई तो फिर उसकी परिवहन क्षमता भविष्य में बढ़ाई नहीं जा सकती है। कुछ क्षेत्रों में पाइप लाइन की सुरक्षा सुनिश्चित करना कठिन कार्य होता है, तथा पाइप लाइनों में रिसाव का पता लगाना भी कठिन कार्य हो जाता है। असाम राज्य के पेट्रोलियम उत्पादन क्षेत्रों को पाइप लाइनों द्वारा असम तथा बिहार स्थित तेलशोधक संयंत्रों से जोड़ दिया गया है। कान्दला (गुजरात) से मथुरा स्थित तेल–शोधक संयन्त्र तक बिछाई गई पाइप लाइन की लम्बाई (1220 कि.मी.) सबसे अधिक है। गुजरात और महाराष्ट्र राज्यों में बहुत सी पाइप लाइने बिछी हैं जो खनिज तेल को उत्पादन कूपों से सीधे तेल शोधक संयन्त्र को या विपणन केन्द्रों को जोड़ती हैं। प्राकृतिक गैस का परिवहन पाइप लाइनों से भी होता है। भारत की सबसे लम्बी गैस पाइप लाइन (1730 कि.मी) गुजरात के हजीरा से शुरू होकर मध्य प्रदेश के विजयपुर होते हुए उत्तर प्रदेश के जगदीशपुर तक बिछाई गई है। यह गैस पाइप लाइन एच.बी. जे. कहलाती है। इसके द्वारा 6 उर्वरक कारखानों तथा दो ताप–विद्युत केन्द्रों को गैस की आपूर्ति की जाती है। पाइप लाइनों के परिवहन ने रेलों पर भार ढोने के बढ़ते दबाव को बहुत कम कर दिया है। पाइप लाइन परिवहन के महत्वपूर्ण योगदान को ध्यान में रखकर यह तय किया गया है कि देश में गैस व खनिज–तेल की आपूर्ति को अनवरत को अविरक्त बनाए रखने के लिए अधिक पाइप लाइन बिछाना होगा। पाइप लाइन परिवहन व्यवस्था के द्वारा गैस की आपूर्ति सुनिश्चित हो जाने से भारत के दुर्गम क्षेत्रों में भी गैस इंजन पर आधारित ताप–विद्युत संयन्त्रों की स्थापना की जा रही है। इससे इन उपेक्षित क्षेत्रों में औद्योगिक विकास को नई दिशा मिलेगी।

- पाइप लाइन परिवहन सबसे सुविधाजनक प्रणाली है जिसके द्वारा खनिज तेल व गैस की अनवरत आपूर्ति सुनिश्चित की जा सकती है।

25.6 जल परिवहन

भारतीय मुख्यभूमि तथा उसके द्वीप–समूहों को मिलाकर भारतीय समुद्र–तट रेखा की लम्बाई 6100 किलोमीटर से कुछ अधिक है। इन लम्बी तट रेखाओ पर 12 प्रमुख बन्दरगाह हैं जिनका प्रबन्धन केन्द्र सरकार द्वारा किया जाता है। इनके अतिरिक्त 186 छोटे बन्दरगाह है जिनका नियंत्रण राज्य सरकार करती हैं। इन 12 प्रमुख बन्दरगाहों से 3840 लाख टन सामान का सामुद्रिक आयात–निर्यात किया जाता है। ये 12 प्रमुख बन्दरगाह देश के अन्तर्राष्ट्रीय जल जनित व्यापार का 90 प्रतिशत व्यापार संभालते हैं।

पश्चिमी समुद्री तट पर प्रमुख बन्दरगाह कान्दला, मुम्बई, जवाहर लाल नेहरू पत्तन

नाव्हाशेवा, (मुम्बई पोताश्रय के ठीक विपरीत स्थित), मारमागोवा, न्यू मँगलोर और कोची है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पश्चिमी समुद्रतट वाले प्रत्येक राज्य के अन्तर्गत कम से कम एक बन्दरगाह है। अन्य पाँच बन्दरगाह पूर्वी समुद्रतट पर स्थित हैं जो क्रमशः तूतीकोरिन, चेन्नई, विशाखापट्टनम, पारादीप, हल्दिया–कोलकाता हैं।

पूर्वी तटवर्ती राज्यों में भी कम से कम एक बन्दरगाह प्रत्येक राज्य में है। इन सभी 12 प्रमुख बन्दरगाहों में नवी मुम्बई स्थित जवाहर लाल नेहरू बन्दरगाह सबसे आधुनिक एवं साज–सज्जा सम्पन्न है।

- जल परिवहन एक सस्ता साधन है जो विदेशी व्यापार के विकास में सहायक है।
- भारत के समुद्र तटों से होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में आयात–निर्यात का 90 प्रतिशत भाग इन्ही 12 प्रमुख पत्तनों से सम्पन्न किए जाते हैं।

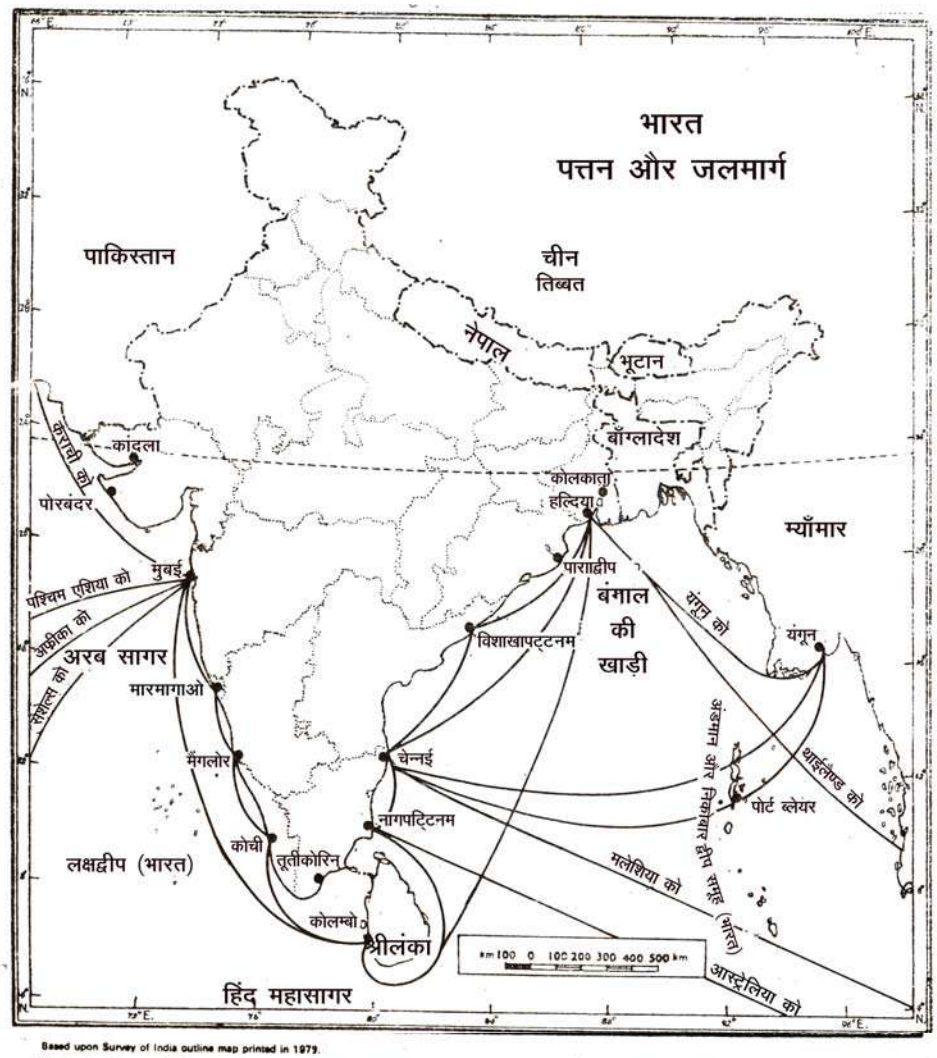

Based upon Survey of India outline map printed in 1979.
The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.
The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act 1971, but has yet to be verified.
© Government of India copyright, 1979

चित्र 25.5 भारतः पत्तन एवं जल मार्ग

टिप्पणी

अन्तःस्थलीय जल मार्ग

भारत में अन्त स्थलीय जलमार्गो की स्थिति संतोषजनक नहीं है। भारतीय अन्तः स्थलीय जलमार्ग यद्यपि 14,500 कि.मी. है परन्तु केवल 2,700 कि.मी. लम्बाई के जलमार्ग में मशीनीकृत नौकाएँ एवं स्टीमर चलाए जाते हैं।

भारत के कुछ अन्तःस्थलीय जलमार्ग

(i) इलाहाबाद से हल्दिया के बीच गंगा नदी में जलमार्ग करीब 1620 कि.मी. की लम्बाई में उपलब्ध हैं। इसमें हल्दिया से पटना तक बड़े जलयान (स्टीमर) चलाए जा सकते है। इस जलमार्ग को राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 1 घोषित किया गया है।

(ii) ब्रह्मपुत्र नदी में भी नौवहन योग्य जल मार्ग 1384 कि.मी. की लम्बाई में डिब्रूगढ़ तक उपलब्ध हैं। इस लम्बाई का केवल 891 कि.मी. भारत के क्षेत्र में आता है। बाकी बँगलादेश के अन्तर्गत हैं।

(iii) कोल्लम एवं कोटपुरम होती हुई पश्चिमी तटवर्ती नहर तथा चम्पाकार और उद्योगमण्डल नहर (केरल) की कुल लम्बाई 205 कि.मी. तक है, जिसमें जल–मार्ग उपलब्ध है।

(iv) दक्षिण भारत में कृष्णा, गोदावरी तथा महानदी के निचले प्रवाह क्षेत्रों में भी अन्तः स्थलीय जलमार्ग बनाए जा सकते हैं। आन्ध्रप्रदेश तथा तमिलनाडु के बीच मौजूद बकिंघम नहर जो पहले जलमार्ग के रूप में प्रयुक्त थी अब अप्रयुक्त स्थिति में है।

भारत में अन्तःस्थलीय जलमार्ग परिवहन को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित कारक हैं–

(i) नदियों के जल का अधिकांश भाग सिंचाई के लिए प्रयुक्त किया जाना,

(ii) नदियों के तल में निरन्तर अवसाद जमा होते रहने से जल की गहराई का कम होना,

(iii) नदी जल के स्तर में मौसम के अनुसार उतार–चढ़ाव होते रहना,

(iv) नदी मार्ग में पुलों, छोटे तथा बड़े जलप्रपात की मौजूदगी,

(v) रेल परिवहन, सड़क परिवहन की दिनों–दिन बढ़ती सुविधाओं ने असमान्य प्रतिस्पर्धा स्थापित कर दी है।

इसलिए भारत के अन्तः स्थलीय जलमार्गों का उचित विकास नहीं पा रहा है क्योंकि इन मार्गो से परिवहन, व्यापार या यातायात रेल और सड़क परिवहन के सामने प्रतिस्पर्धा में सक्षम नहीं है।

पाठगत प्रश्न 25.3

निम्न प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए।

1. दो प्रमुख पदार्थो के नाम बताइए जिनका परिवहन पाइप–लाइनों द्वारा किया जाता है–

   (क)_____(ख)_____

2. भारत की कौन सी गैस पाइप लाइन सबसे अधिक लम्बी है?

   _____

3. भारत का कौन सा बन्दरगाह सबसे ज्यादा समुद्रिक व्यापार के यातायात का संचालन करता है?

   _____

4. नौकायन जलमार्ग के लिए उपयुक्त भारत की दो नदियों के नाम बताइए–

   (क)_____(ख)_____

25.7 वायु परिवहन

वायु परिवहन सर्वाधिक गतिशील एवं सुविधायुक्त साधन है। यह अन्य परिवहन साधनों के मुकाबले बहुत महँगा होता है। दिल्ली से बैंगलौर की यात्रा हवाई जहाज द्वारा मात्र ढाई घंटों में सम्पन्न की जा सकती है जबकि रेल यात्रा में इतनी दूरी तय करने में 42 घंटे लगते हैं।

वायु परिवहन उन क्षेत्रों के लिए अधिक उपयुक्त हैं जहाँ उबड़–खाबड़ धरातलीय आकृतियों के कारण सड़क परिवहन विकसित करना कठिन होता है। इन दुर्गम स्थलों में घने जंगल, दलदली जमीन, ऊँचे पर्वतीय क्षेत्र, बीहड़ पहाड़ भी वायु परिवहन में अवरोध नहीं होते हैं।

भारत की अन्तर्राष्ट्रीय वायु मार्गो में स्थिति बहुत अनुकूल है क्योंकि एक ओर उत्तरी अमेरिका, यूरोप तथा दक्षिण–पश्चिम एशिया तथा दूसरी ओर पूर्वी एवं दक्षिण–पूर्वी एशिया एवं आस्ट्रेलिया सहित सबको जोड़ता है।

भारत में वायु परिवहन का संचालन मुख्यतः सार्वजनिक क्षेत्र के इन्डियन एयरलाइन्स, एयर इंडिया, एयर इंडिया चार्टर्स लिमिटेड (एयर इंडिया एक्सप्रेस) और एलाएंस एयर प्रतिष्ठानों द्वारा होता है। निजी क्षेत्र में 7 अनुसूचित कंपनियाँ यात्री विमानों का संचालन करती हैं, जैसे–जेट एयरवेज, सहारा एयरलाइन्स, डक्कन एविहएशन, स्पाइसजेट, गो एयरवेज, किंगफिशर एयर लाइन्स, पैरामाउन्ट एयरवेज और इन्डिगो।

टिप्पणी

निजी क्षेत्र के अन्तर्गत सामान परिवहन एयर लाइन्स भी है जिसे ''ब्लू डार्ट एविहएशन'' कम्पनी संचालित करती है। वर्तमान में करीब 46 निजी कम्पनियाँ भारत में है जिनके पास वायु परिवहन चालन का अनुज्ञा पत्र प्राप्त है।

एयर इंडिया अन्तर्राष्ट्रीय वायु सेवाओं के लिए उत्तरदायी है। यह विदेशी यात्रियों तथा उनके सामानों का वायुमार्ग से परिवहन का संचालन करती है। एयर इंडिया नियमित तथा अधिकाधिक उड़ानें संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा एवं यूरोपीय देशों के लिए संचालित करती है। इस समय एयर इन्डिया के पास 37 विमान है, जिनमें अधिकांश विमान बोइंग 747 हैं। वर्ष 2004-05 के दौरान एयर इंडिया द्वारा 44 लाख यात्रियों को वायु सेवा प्रदान की गई भारत में 11 अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे हैं जो दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई, थिरुवनन्तपुरम, बैंगलौर, हैदराबाद, गुवाहाटी, अमृतसर, जयपुर एवं लखनऊ महानगरों में अवस्थित हैं।

इन्डियन एयरलाइन्स भारत में घरेलू उड़ानो द्वारा वायु यातायात को संचालित करता है। भारत के प्रत्येक राज्य की राजधानी एवं अन्य प्रमुख नगरों के लिए नियमित रूप से उड़ानें हैं। पयर्टकों के रूचिकर स्थानों पर भी इनकी सेवायें उपलब्ध हैं। इस संस्थान द्वारा 55 घरेलू विमान स्थलों तथा 18 अन्तर्राष्ट्रीय विमान स्थलों का भी संचालन किया जाता है। पड़ोसी देशों जैसे श्रीलंका, नेपाल, बाँग्लादेश, पाकिस्तान, मलेशिया, सिंगापुर, माले एवं मध्य–पूर्व खाड़ी देशो को वायुसेवाएं उपलब्ध कराई जाती हैं। इस समय इस संस्थान के पास 73 विमान हैं।

पवन हँस हेलीकाप्टर लिमिटेड एक सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनी है जो ओ.एन.जी.सी. के द्वारा अपतट क्षेत्रों में किए जा रहे कार्यों के लिए हेलीकॉप्टर सेवाए उपलब्ध कराती है। इसका उपयोग यदा–कदा विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा भी किया जाता है।

उत्तर–पूर्वी क्षेत्रों के लिए वायु परिवहन एक जरूरत है। इसका कारण वहाँ के विपरीत भौतिक कारक जैसे पर्वतीय इलाका, घने जंगल, बार–बार बाढ़ लाने वाली बड़ी नदियाँ आदि हैं। सामाजिक एवं आर्थिक आधार पर भी भारत के अन्य भागों की तरह इन्हें और नजदीक करने का पर्यत्न करने की आवश्यकता है।

- वायु परिवहन महंगा परन्तु सबसे तेज गति वाला साधन है। वायु परिवहन दुनिया के लोगों को एक दूसरे के नजदीक लाया है।
- एयर इंडिया एव इन्डियन एयरलाइन्स देश के दो प्रमुख सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठान हैं। सात वायुयान कंपनियाँ निजी क्षेत्र में हैं।

पाठगत प्रश्न 25.4

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए–

1. भारती की अन्तर्राष्ट्रीय वायुसेवा प्रदान करने वाली कंपनी नाम बताइए।

2. सार्वजनिक क्षेत्र के घरेलू वायु परिवहन सेवा के लिए वायु परिवहन कम्पनी का नाम बताइए।

3. भारत के किस भाग में वायु परिवहन आवश्यक है?

4. भारत के पांच अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डों के नाम बताइए।

   (क)_____(ख)_____(ग)_____(घ)_____(ङ)_____

5. किन दो तरीकों में वायु परिवहन, परिवहन के अन्य प्रकारों से अलग है?

   (क)_____(ख)_____

6. निजी क्षेत्र की किन्ही दो वायु परिवहन कम्पनी के नाम बताइए।

   (क)_____(ख)_____

25.8 संचार व्यवस्था

संचार व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण योगदान आर्थिक विकास, सामाजिक संबंधों में वृद्धि तथा सांस्कृतिक एकता को कायम करने में होता है। संचार के साधन परस्पर विरोधी तथा बेमेल लोगों को अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर लाकर परस्पर सौहार्द्र बढ़ाने में सहायक होते हैं। किसी प्रत्याशित विनाशकारी दुर्घटना हो जाने पर अथवा आपातकालीन परिस्थितियों में संचार के तात्कालिक साधन आसानी से विपदाओं का समाचार तत्काल पूरे विश्व में प्रसारित कर सकते हैं ताकि राहत व सहायतार्थ साज–समान एवं लोग घटनास्थल पर पहुँच सके।

डाक सेवा

यह सब से अधिक प्रयुक्त संचार का माध्यम रहा है। हमारे देश में डाक सेवा ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है। आज भी करीब 99 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रो में डाक सेवाओं का लाभ मिल रहा है।

वर्तमान में करीब 1.55 लाख पोस्ट आफिस पूरे देश में हैं जो देश के कोने–कोने में डाक–सेवाएँ उपलब्ध करा रहे हैं। विश्व के भिन्न भागों में हो रहे आधुनिकीकरण के तारतम्य में भारतीय डाक सेवाओं को भी प्रोन्नत एवं आधुनिक बनाया जा रहा है। कुछ सुधार इस प्रकार हैं–

(i) पिन कोड़– डाक वितरण को अधिक द्रुतगामी करने के लिए डाक सूचना अंक

टिप्पणी

प्रणाली (पिन) को प्रयोग में लाया गया है, (ii) स्पीड–पोस्ट सेवाएँ अपनाई गई हैं जिसमें डाक को शीघ्रता से पहुँचाया जाता है। (iii) क्विक मेल सर्विस (क्यू. एम. एस.) भी स्पीड पोस्ट सेवा जैसी एक अन्य सेवा है। यह डाक को शीघ्रता पूर्वक पहुँचाने में प्रयोग होता है।

इसके अतिरिक्त उपग्रह मनीआर्डर की अदायगी का प्रयोग 1994 में किया गया। इसके अन्तर्गत दूरसंचार प्रणाली द्वारा भारत के दूर–दराज के पिछड़े एवं पर्वतीय भागो में इस प्रकार की सेवाएँ देश के छः नगरों से आरंभ की गई। अन्तर्राष्ट्रीय द्रुतगामी डाक सेवाएँ वायु मार्ग एवं समुद्री जलमार्गो द्वारा सम्पन्न होती हैं जिससे भारत का विश्व के अन्य देशों के साथ संबंध जुड़ता है।

दूर संचार

सामूहिक तथा व्यक्तिगत स्तर पर संचार का यह अति आधुनिक एवं महत्वपूर्ण माध्यम है। इस माध्यम के प्रकारों में तार सेवा, दूरभाष, टेलेक्स एवं फैक्स इत्यादि है। वर्ष 2004-05 की अवधि तक दूरभाष की संख्या के आधार पर भारत विश्व का दसवाँ सबसे बड़ा देश बन गया है।

1. **तारसेवा (टेलीग्राफ):** यह संचार माध्यम का अपेक्षाकृत सबसे पुराना माध्यम है अतिशीघ्र सूचना भेजने में इसका प्रयोग होता है। इस समय हमारे देश में लगभग चालीस हजार तारघर कार्यरत हैं।

2. **दूरभाषः** दूरभाष सेवाओं में बहुत तेजी से विस्तार हुआ है। 31 मार्च 2006 तक भारत में 1420.9 लाख दूरभाष कनेक्शन मौजूद हैं तथा फरवरी 2006 तक 23.4 लाख सार्वजनिक दूरभाष केन्द्र स्थापित हो चुके हैं। देश में सेल्यूलर फोन उपभोक्ताओं की संख्या 629.0 लाख तक पहुँच चुकी है और इसकी माँग का आधार भी 20 लाख प्रतिमाह की दर से बढ़ रहा है। दूरभाष सेवाओं में प्रसार बहुत तीव्रता से हो रहा है। देश में टेलीफोन सेवाओं में एस.टी.डी (सबस्क्राइबर ट्रक डायलिंग) की सुविधा सभी बड़े नगरों एवं छोटे शहरों में उपलब्ध हैं। पूर्णतः स्वचालित आई.एस.डी. (इंटरनेशनल सबस्क्राइबर डायलिंग) सेवाएँ विश्व के सभी देशों के लिए उपलब्ध हैं।

3. **टेलेक्सः** इन सेवाओं के अन्तर्गत किसी छपे हुए समाचार को प्रेषित किया जा सकता है। भारत के 200 से अधिक शहरो में टेलेक्स की सेवाएँ उपलब्ध है। उपग्रहों के उपयोग ने संचार सेवाओ में अद्भुत क्राँति ला दी है।

जनसंचार

रेडियो एवं दूरदर्शन इलोक्ट्रॉनिक माध्यम के सशक्त साधन हैं। ये व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाते हैं।

रेडियोः यह जनसंचार का सशक्त माध्यम है। इसके द्वारा सभी प्रकार के समाचार, सूचनाएँ तथा मनोरंजन के विभिन्न कार्यक्रम प्रसारित किए जाते है। इस समय करीब

223 रेडियो प्रसारण केन्द्र कार्यरत हैं जिनसे देश की 99.13 प्रतिशत जनता को सेवाएँ उपलब्ध होती है तथा इन केन्द्रों द्वारा देश के 91.42 प्रतिशत क्षेत्र में प्रसार होता है। आजकल एफ.एम. सेवायें रेडियो प्रसारण को नया आयाम दे रहे हैं।

दूरदर्शनः दूरदर्शन सेवाएँ भारत में 1959 में प्रारंभ की गई। दूरदर्शन सेवाओं में वास्तविक विकास 1980 के बाद हुआ। हाल के वर्षो में दूरदर्शन में कई चैनल उपलब्ध होने से विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम प्रदर्शित होने लगे। दूरदर्शन के तंत्र–जाल में 64 दूरदर्शन केन्द्र (स्टूडियो सहित) तथा 1400 ट्रांसमीटर (DD1 के लिए 1134 ट्रांसमीटर, दूरदर्शन समाचार के लिए 153 ट्रांसमीटर, क्षेत्रीय सेवाओं के लिए 109 ट्रांसमीटर) हैं। देश के चारो महानगरों में एक एक डिजिटल ट्रांसमीटर स्थापित किए गए हैं। दूरदर्शन 1 देश के 79 प्रतिशत क्षेत्र को सेवा प्रदान करता है जिससे 91 प्रतिशत जनता दूरदर्शन सेवाएँ प्राप्त करती है।

सिनेमा : सिनेमा आज भी जनसंचार का लोकप्रिय साधन है। प्रतिदिन लाखों लोगों का मनोरंजन सिनेमा द्वारा होता है।

समाचार प्रकाशन

समाचार पत्र, साप्ताहिक पत्रिकाएँ, जर्नल इत्यादि का प्रकाशन जनसंचार माध्यम के अन्तर्गत आते हैं। स्वतंत्रता पश्चात् देश में प्रकाशन के क्षेत्र में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। 31 मार्च 2006 के सर्वे के मुताबिक देश में 62,550 समाचार पत्र प्रकाशित होते हैं। इनमें दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, पाक्षिक पत्रिकाएँ, बुलेटिन, जर्नल भी शामिल हैं। वैसे अलग अलग रूप में गिना जाय तो 6,800 दैनिक समाचार, 369 त्रि/द्वि साप्ताहिक, 21,453 साप्ताहिक पत्रिकाएँ, 8,227 पाक्षिक, 18,545 मासिक पत्रिकाएँ, 4340 त्रैमासिक, 584 वार्षिक तथा 2,232 अन्य पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। हिन्दी भाषा में सबसे ज्यादा प्रकाशन (24,017) होता है। इसके बाद अँग्रेजी भाषा में (8,768) है।

पाठगत प्रश्न 25.5

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

1. दिए गए सक्षिप्त रूप के पूर्ण रूप को लिखिये–

   (क) पी.आई.एन. (ख) क्यू.एम.एस. (ग) एस.टी.डी. (घ) पी.सी.ओ.
   (ङ) आई.एस.डी.

   (क) _____ (ख) _____ (ग) _____

   (घ) _____ (ङ) _____

2. जन संचार के तीन माध्यमों के नाम बताइए

   (क) _____ (ख) _____ (ग) _____

टिप्पणी

3. प्रकाशन माध्यम (प्रिन्ट मीडिया) क्या है?

_____

25.9 व्यापार

व्यापार से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिससे वस्तुओं का लेन देन होता है। परिवहन, संचार एवं बैंक प्रणाली की तरह ही व्यापार तृतीय श्रेणी की क्रिया है। इसे देश की अर्थव्यवस्था के विकास में आधारभूत संसाधन माना जाता है। व्यापार कई स्तरों पर सम्पन्न किए जाते हैं जैसे स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय।

व्यापार की उन्नति और वृद्धि विकसित विपणन व्यवस्था तथा सुविधा पूर्वक पहुँच के साथ–साथ सुव्यवस्थित संचार व्यवस्था पर भी निर्भर करती है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वस्तुओं और सेवाओं के आदान–प्रदान को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार कहते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार द्विपार्श्विक अथवा बहुपार्श्विक हो सकता है; यदि दो राष्ट्र या दो से अधिक राष्ट्र निर्दिष्ट वस्तुओं अथवा सेवाओं के स्वैच्छिक लेन देन में सम्मिलित हों।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है। भारत का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार 1950-51 में 1,214 करोड़ रूपयों में हुआ था। भारत का विश्व के सभी प्रमुख व्यापारिक समुदायों तथा सभी भौगोलिक क्षेत्रों से व्यापारिक संबंध है। परन्तु भारत के प्रमुख व्यापार सहभागी देशों में से संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, पश्चिमी यूरोप के देश, जापान और ओसीनिया के देश आते हैं। वर्ष 2004-05 में सकल निर्यात का 47.41 प्रतिशत भाग एशिया तथा ओसीनिया के देशों को हुआ। उसके बाद पश्चिमी यूरोप के देशों को 23.80 प्रतिशत तथा अमेरिका को 20.42 प्रतिशत निर्यात किया गया। भारत में आयात वर्ष 2004-05 में सबसे अधिक एशिया एवं ओसिनिया से (35.40 प्रतिशत), इसके बाद पश्चिमी यूरोप से (22.60 प्रतिशत) तथा अमेरिका से (8.36 प्रतिशत) हुआ।

निर्यात

ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में भारत से निर्यात होने वाली वस्तुओं में अधिकांश कच्चे माल के रूप में, जैसे कपास, पटसन, चमड़ा व खालें, खनिज तथा खाद्यान्न वस्तुएँ जैसे गेंहू, चाय, कहवा, गर्म मसाला इत्यादि हुआ करते थे। सम्पूर्ण विदेशी व्यापार ब्रिटिश शासन के माध्यम से होता था। स्वतंत्रता के पश्चात निर्यात की वस्तुओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इसके पीछे प्रमुख कारण भारत में तेजी से औद्योगिक विकास है। अब भारत करीब 7500 वस्तुएँ निर्यात करता है। निर्यात में प्रगति भी अद्भुत हुई है। वर्ष 1950-51 में निर्यात से अर्जित आमदनी मात्र 607 करोड़ थी जो 2004-05 तक बढ़कर 3,56,069 करोड़ रूपये का हो गया।

निर्यात में साल–दर–साल उतार–चढ़ाव की संभावना बनी रहती है फिर भी निर्यात की कुछ प्रमुख वस्तुएँ है, जिनका निर्यात पिछले कुछ वर्षो से (2004-05 मिलाकर) बढ़ता जा रहा है। इनमें इंजिनियरिंग के समान, कीमती पत्थर एवं आभूषण, रासायनिक एवं उससे संबंधित पदार्थ, सूती कपड़े, पेट्रोलियम पदार्थ, कृषि एवं उसके विभिन्न उत्पाद, खनिज एवं खनिज अयस्क इत्यादि प्रमुख है।

स्वतंत्रता के पश्चात के वर्षो से निर्यात की वस्तुओं में लगातार परिवर्तन होते रहे हैं। कच्चे माल के निर्यात के स्थान पर तैयार किए गए पदार्थो का निर्यात ज्यादा होने लगा, इससे अधिक लाभ मिलता है।

आयात

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में आयातित पदार्थों के मूल्यों में लगातार वृद्धि होती रही है। आज भारत में 6000 प्रकार की वस्तुओं का आयात हो रहा है। स्वतंत्रता–पूर्व के समय में आयात के मुख्य सामानों में विभिन्न प्रकार की मशीन एवं उसके कल–पुर्जे, औद्योगिक उत्पाद से निर्मित वस्तुएँ, रसायन, दवाइयाँ, इत्यादि शामिल थी। स्वतंत्रता के बाद आयात में सर्व प्रमुख खाद्यान्न वस्तुएँ हुआ करती थी। उसके बाद के वर्षो में आयात के प्रकार एवं वस्तुओं में विभिन्नता आती रही।

भारत में वर्ष 1950-51 में 581 करोड़ रूपये मूल्य के बराबर वस्तुओं का आयात हुआ था। आयात उत्तरोत्तर बढ़कर 2004-05 में 4,81,064 करोड़ रूपये के बराबर पहुँच गया। इस प्रकार पिछले 55 वर्षो में अभूतपूर्व वृद्धि दर्ज हुई है।

वर्ष 2004-05 में समूह में किया गया आयात कुल आयात का 40 प्रतिशत था। इस समूह में शामिल वस्तुएँ थी रासायनिक उर्वरक, खाद्यान्न, खाद्य–तेल, अखबारी–कागज एवं पेट्रोलियम पदार्थ इत्यादि। पर इस समूह में 71 प्रतिशत हिस्सा पेट्रोलियम, कच्चे तेल एवं पेट्रोलियम उत्पादों के ही हैं। दूसरे शब्दों में कुल आयात का 28 प्रतिशत भाग केवल पेट्रालियम पदार्थों का था।

आयात की अन्य वस्तुओं में उद्योगों के लिए आवश्यक कलपुर्जे, मशीनरी, परियोजना संबंधी उपकरण, अलौह धातुएँ, फार्मास्युटिकल पदार्थ, दवाइयाँ, कार्बनिक, तथा अकार्बनिक रासायनिक पदार्थ, कोयला, कोक, मोती, कीमती एवं कम कीमती पत्थर इत्यादि।

भारत के विदेशी व्यापार की वर्तमान प्रवृतियाँ

स्वतंत्रता के समय भारत का विदेशी व्यापार बहुत सीमित था। भारत प्राथमिक वस्तुओं/उत्पादों का निर्यातक देश था। मशीनरी तथा तैयार एवं निर्मित माल का आयात करता था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उद्योग एवं कृषि के क्षेत्रों में तीव्रगति से प्रगति हुई है। इसके साथ अन्तर्राष्ट्रीय विपणन में भी विकास एवं प्रसार हुआ। पिछले दशक में आयात–निर्यात

टिप्पणी

की वस्तुओं में भी बहुत बदलाव आया है। भारत ने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में निर्यात की वृद्धि के लिए एशिया, अफ्रिका एवं ओशिनिया के देशों से संबंध बढ़ाए। भारत सरकार की ओर से निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए कई कदम उठाए हैं। इनमें से एक महत्वपूर्ण निर्णय, कम ब्याज पर निर्यात के लिए ऋण उपलब्ध कराना है। इसके साथ–साथ निर्यात पर लगी कई पाबन्दियों एवं नियंत्रणों में कुछ ढील देना रहा है। अधिक महत्व और निर्यात के लिए प्रोत्साहन उन्ही वस्तुओं को दिया जाता रहा है जिनसे अधिक मूल्य प्राप्त होता हो।

भारत ने नई आयात नीति भी अपनाई है। आयात की इस नई नीति से भारतीय अर्थव्यवस्था मजबूत हुई है। ऐसी आवश्यक वस्तुओं को आसान शर्तो पर आयात किया जा सकता है, जिनका उपयोग निर्माण उद्योगों में होता है।

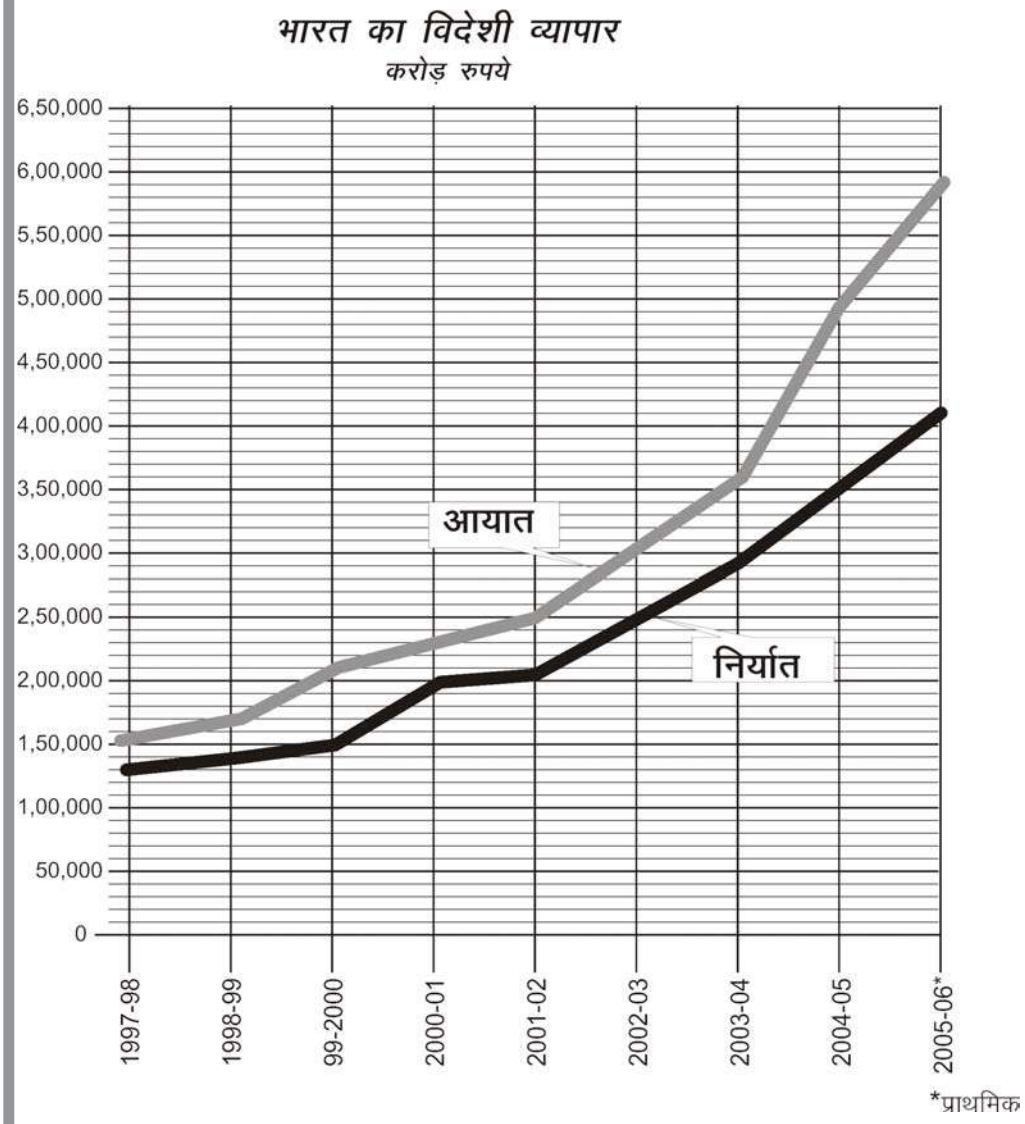

चित्र 25.7 भारत के विदेशी व्यापार की वर्तमान प्रवृत्तियाँ

टिप्पणी

- पिछले दो दशकों में भारत के आयात में भारी बदलाव हुआ है।
- भारत का विदेशी व्यापार वर्ष 1950-51 में 1214 करोड़ रुपये से बढ़कर 2004-05 में 8,37,133 करोड़ रूपयो में पहुँचा गया।
- भारत के विदेशी–व्यापार में भारी परिवर्तन आए हैं। खासकर उन वस्तुओं के आयात–निर्यात में जिन्हें अब तक भारत करता आया है।

व्यापार सन्तुलन

आयात और निर्यात के मूल्यों के बीच के अन्तर को व्यापार सन्तुलन कहते हैं। यदि किसी देश के आयात और निर्यात के मूल्यों में कोई अन्तर नहीं होता तब ऐसी स्थिति उस देश के लिए संतुलित विदेशी व्यापार कहलाती है। यदि आयात की तुलना में निर्यात ज्यादा हो तो अनुकूल संतुलन तथा यदि आयात की तुलना मे निर्यात कम हो तो प्रतिकूल व्यापार संतुलन कहलाता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत में विदेशी व्यापार की स्थिति अनुकूल थी, परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के दो दशकों में खाद्यान्नो के बढ़ते आयात से व्यापार के सन्तुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। वर्तमान में भी देश में आयात, निर्यात से ज्यादा है। अतः हमारा विदेशी व्यापार सन्तुलन प्रतिकूल है। 2004-05 में व्यापार में कमी (-) 123995 करोड़ रूपयों की है। यदि हम ध्यान देकर देखें तो हमारे निर्यात एवं आयात की मात्राओं एवं मूल्यों में भारी वृद्धि हुई है। पिछले 55 वर्षो में विश्व–व्यापार में हमारी भागीदारी में भारी गिरावट आई है। यह विश्व के कुल व्यापार का एक प्रतिशत से भी कम है।

पाठगत प्रश्न 25.6

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

1. विदेशी व्यापार के उन दो घटकों के नाम बताइए जिनमे विदेशी व्यापार को विभक्त किया जाता है।

   (क)_____(ख)_____

2. स्वतंत्रता के बाद भारत के निर्यात में कौन से महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है?

   (क)_____(ख)_____

टिप्पणी

3. भारत के दो प्रमुख व्यापार–भागीदारों के नाम बताइए.

   (क)_____(ख)_____

4. हमारी सकल आयातित वस्तुओं में किस वस्तु की भागीदारी सबसे अधिक है?

   _____

5. विदेशी व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिए भारत ने कौन सी नई नीति बनाई है?

   (क)_____(ख)_____

6. व्यापार सन्तुलन से क्या तात्पर्य है?

   _____

आपने क्या सीखा

आधारभूत सेवा–सुविधा किसी भी व्यवस्था अथवा संगठन के विकास का आधार होते हैं। परिवहन, संचार तथा व्यापार किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के आधारभूत संसाधन माने जाते हैं। इन आधारभूत सेवाओं की सुलभता पूरी आर्थिक व्यवस्था के विकास, खासकर कृषि एवं उद्योग को प्रभावित करती है।

रेल, सड़क तथा पाइप लाइनों को स्थल परिवहन के माध्यम कहते हैं। देश की अखंडता एवं एकता को सुदृढ़ करने में ये साधन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये देश में सामाजिक एवं आर्थिक सम्पन्नता बढ़ाते हैं। जल परिवहन एक सस्ता परन्तु धीमी गति का परिवहन साधन है। देश में अंतः स्थलीय जलमार्ग के विकास की संभावना सीमित हैं। यह संभावना भारत के पूर्वी क्षेत्र तथा पूर्वी–समुद्र तटीय भागों में ही सीमित है। भारत की अवस्थिति व्यस्त स्वेज मार्ग पर है। यह आदर्श स्थिति एक ओर आस्ट्रेलिया तथा दूसरी ओर दक्षिण पूर्व एशिया एवं यूरोप को जोड़ती है। वायु परिवहन यद्यपि बहुत महँगे किन्तु तीव्रगामी भी है। उन क्षेत्रों के लिए वायु–परिवहन उपयुक्त है जहाँ स्थल–परिवहन का विकास करना संभव नहीं है। परिवहन के साधनों ने विश्व को बहुत छोटा कर दिया है। विश्व के देशों के बीच की दूरी कम समय में तय की जा सकती है। रेल परिवहन लम्बी दूरियों के लिए अधिक उपयुक्त है। रेल द्वारा एक ही बार में अधिक माल व यात्रियों को लाया जा सकता हैं। देश के उत्तरी मैदान, पूर्वी तटीय

क्षेत्र तथा गुजरात के मैदानी भागों में रेलों का सघन जाल है। इसके विपरीत, उत्तर–पूर्वी क्षेत्र, पश्चिमी राजस्थान एवं हिमालय क्षेत्रों में रेल परिवहन व्यवस्था बहुत विरल या नहीं के बराबर है। सड़क परिवहन की श्रेष्ठता इस सत्य से उजागर होती है कि इसकी सेवाएँ घर के दरवाजे तक उपलब्ध हो जाती हैं। कम दूरियों के लिए सड़क परिवहन अधिक उपयुक्त तथा सुविधायुक्त हैं। देश के पंजाब, हरियाणा, केरल तथा तमिलनाडु में पक्की सड़कों का सघन जाल है।

संचार साधनों द्वारा संदेश तथा सूचनाएँ व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्तरों पर भेजी या प्राप्त की जाती है। डाक तार, दूरभाष, टेलीप्रिंटर्स, रेडियो, दूरदर्शन तथा प्रकाशन आदि संचार व्यवस्था के विभिन्न माध्यम हैं। रेडियो तथा दूरदर्शन जनसंचार के सशक्त इलैक्ट्रोनिक माध्यम हैं। परिवहन तथा संचार व्यवस्थाओं के बीच गहरे सम्बन्ध होते हैं। वे एक दूसरे के पूरक हैं तथा एक दूसरे को सुदृढ़ करते हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत के अन्य देशों से व्यापारिक संबंधों में तेजी से विकास और विस्तार हुआ। भारत के अनेक विकसित एवं विकासशील देशों से द्वि–पार्श्विक व्यापार संबंध हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के वर्षो में व्यापार के आयात तथा निर्यात की वस्तुओं के स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। भारत ने अब विदेशी–व्यापार के सन्दर्भ में उदार नीति अपनाई है जिसके प्रभाव से आयात–निर्यात पर होने वाली अनेक पाबन्दियों एवं नियंत्रणों को हटाया जा रहा है अथवा उनमें बहुत छूट दी गई है। भारत के विदेशी व्यापार में अभूतपूर्व वृद्धि होने के बावजूद विश्व व्यापार में भारत की भागीदारी 1 प्रतिशत से भी कम है।

पाठान्त प्रश्न

निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. आधारभूत सेवा की परिभाषा बताइए।
2. रेल परिवहन के दो विशिष्ट गुण बताइए।
3. भारत के उत्तरी मैदानी भागों में सघन रेल परिवहन के जाल विकसित होने के दो प्रमुख कारणों को समझाइए।
4. सड़क परिवहन के दो प्रमुख लाभों का उल्लेख कीजिए।

टिप्पणी

5. वायु परिवहन भारत के उत्तर–पूर्वी क्षेत्रों के लिए अधिक उपयुक्त एवं उपयोगी क्यों है?

6. अन्तर स्पष्ट कीजिए–

   (क) राष्ट्रीय महामार्ग तथा राज्य महामार्ग

   (ख) पक्की सड़कें एवं कच्ची सड़कें

   (ग) निर्यात एवं आयात

7. संचार–साधनों के रूप में डाक सेवाओं की भूमिका की समीक्षा कीजिए।

8. उपयुक्त उदाहरण देते हुए भारतीय विदेशी–व्यापार के स्वरूप में हुए नूतन परिवर्तनों की संक्षेप में चर्चा कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

25.1

1. परिवहन, बिजली का वितरण, संचार (कोई दो)

2. 63.2 करोड़ किलोमीटर

3. (क) लम्बी दूरी की यात्रा करने वाली यात्रियों के लिए

   (ख) भारी वस्तुओं की ज्यादा मात्रा में ढुलाई।

4. (क) उत्तर भारत के मैदानी भाग (ख) गुजरात व सौराष्ट्र के मैदान

5. (क) पर्वतीय एवं पहाड़ी भूभाग (ख) सघन जंगल, भारी वर्षा इत्यादि

6. पहाड़ी उबड़–खाबड़, ऊँची–नीची जमीन तथा पर्वत श्रृँखलाएँ

25.2

(1) 13,94,061 किलोमीटर (2) वाराणसी और कन्याकुमारी (3) पंजाब और केरल (4) लेह और मनाली (5) ग्रामीण क्षेत्र (6) विरल आबादी, अतिवृष्टि वाले सघन वनों से आच्छादित, प्राकृतिक सम्पदा की कमी, पहाड़ी क्षेत्र (7) 5846 किलोमीटर

25.3

1. (क) पेट्रोल (ख) प्राकृतिक गैस
2. हजीरा–बिजयपुर–जगदीशपुर (एच.बी.जे) गैस पाइप लाइन
3. मुम्बई बन्दरगाह
4. (क) गंगा नदी तथा (ख) ब्रह्मपुत्र नदी.

25.4

1. एयर इंडिया 2. इन्डियन एयरलाइन्स 3. भारत के उत्तर–पूर्वी भाग
4. (क) मुम्बई, (ख) दिल्ली, (ग) कोलकाता, (घ) चेन्नई, (ङ) थिरूवनन्तपुरम
5. (क) तीव्र और द्रुतगामी (ख) बहुत महँगे
6. जेट एयरवेज, सहारा एयरलाइन्स, किंगफिशर एयरलाइन्स (कोई दो)

25.5

1. (क) पोस्टल इन्डेक्स नम्बर (ख) क्विक मेल सर्विस

   (ग) सब्सक्राइबर ट्रंक डायलिग (घ) पब्लिक काल ऑफिस

   (ङ) इन्टरनेशनल सब्सक्राइबर डायलिंग
2. (क) रेडियो (ख) दूरदर्शन (ग) सिनेमा
3. समाचार पत्र, पत्रिकाएँ तथा विभिन्न प्रकार के जर्नल इत्यादि इस श्रेणी में आते हैं।

25.6

1. (क) निर्यात (ख) आयात
2. प्राथमिक उत्पादों के स्थान पर द्वितीयक उत्पादों के निर्यात को बढ़ाना
3. (क) संयुक्त राज्य अमेरिका तथा (ख) रूस
4. पेट्रोलियम एवं पेट्रोलियम के उत्पाद

टिप्पणी

5. (क) व्यापार का उदारीकरण करना तथा (ख) आयात पर लगे प्रतिबंधों में कमी करना

6. निर्यात एवं आयात के मूल्यों में अन्तर

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. अनुच्छेद 25.1 देखिए

2. अनुच्छेद 25.3 देखिए

3. सघन रेल परिवहन जाल के कारणः समतल जमीन, उपजाऊ मृदा अधिक जनसंख्या का घनत्व, उद्योग की इकाईयों का वितरण (कोई दो) अधिक जानकारी के लिए अनुच्छेद 25.3 देखिए।

4. अनुच्छेद 25.4 देखिए।

5. अनुच्छेद 25.7 देखिए।

6. (क) अनुच्छेद 25.4 देखिए (ख) अनुच्छेद 25.4 देखिए (ग) अनुच्छेद 25.9 देखिए।

7. अनुच्छेद 25.8 देखिए।

8. अनुच्छेद 25.9 देखिए।

26

भारतः जनसंख्या घनत्व, वितरण तथा वृद्धि

अब तक हमने भारत के प्राकृतिक संसाधनों के बारे में जानकारी हासिल की। इन संसाधनों के अन्तर्गत भूमि, मृदा, जल, वन, खनिज तथा वन्य–जीव इत्यादि आते हैं। हमने इन उपरोक्त संसाधनों के वितरण एवं दोहन की दर एवं दिशा तथा विकास के कार्यक्रमों में उनकी उपयोगिता के बारे में भी जानकारी प्राप्त की। इन्हीं संसाधनों का यहां के देशवासियों के सन्दर्भ में अध्ययन करना है। लोगों या जनता से अभिप्राय यहाँ की जनसंख्या को केवल उपभोक्ता की संख्या के रूप में ही नहीं बल्कि उन्हें यहाँ के प्राकृतिक संसाधनों के प्रबन्धक के रूप में मानने से है। इसके लिए सही मायने में लोगों के शैक्षिक तथा स्वास्थ्य स्तर, उनके व्यावसायिक, तकनीकी एवं सामाजिक दक्षता पर ध्यान देते हैं। और इससे भी अधिक लोगों की आकांक्षाओं एवं प्रचलित मान्यताओं के साथ कार्य नीति पर ध्यान देने की जरूरत है। इस संदर्भ में आप अनुभव करेंगे कि लोग प्राकृतिक संसाधनों के केवल उपभोक्ता ही नहीं अपितु ये देश की अनमोल परिसम्पति हैं। इस पाठ में हम भारत की जनसंख्या के आकार का मूल्यांकन विश्व जनसंख्या के सन्दर्भ में करेंगे। इसलिए पहले जनसंख्या के वितरण एवं घनत्व तथा इन पहलुओं को प्रभावित करने वाली विभिन्न कारकों का अध्ययन करेंगे। अन्त में जनसंख्या में वृद्धि करने वाली प्रवृत्तियों तथा उन्हें प्रभावित करने वाले निर्धारकों के साथ परिणामों का भी विश्लेषण करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- विश्व जनसंख्या के परिप्रेक्ष्य में भारत की जनसंख्या के आकार को समझा सकेंगे;
- भारत में जनसंख्या के असमान वितरण के लिए उत्तरदायी कारकों का विश्लेषण कर सकेंगे;

टिप्पणी

- भारत के मानचित्र पर सघन, सामान्य तथा विरल जनसंख्या वाले क्षेत्रों को दर्शा सकेंगे;
- जनसंख्या के वितरण, घनत्व तथा उसकी वृद्धि के बारे में आँकड़ों की व्याख्या कर सकेंगे;
- पिछले सौ वर्षों (1901–2001) में जनसंख्या में हुई वृद्धि की प्रवृत्ति का विवेचन कर सकेंगे;
- जनसंख्या में होने वाली तीव्र–वृद्धि के लिए उत्तरदायी कारकों की पहचान कर सकेंगे;
- जनसंख्या विवेचन में प्रयुक्त बहुत सी शब्दावलियाँ, जैसे–जन्म–दर, मृत्यु-दर, इत्यादि की भलीभाँति व्याख्या कर सकेंगे;
- जनसंख्या में लगातार हो रही वृद्धि को कम करने की आवश्यकता को महसूस कर सकेंगे;
- देश के किसी भी क्षेत्र में आप्रवासन एवं उत्प्रवासन के कारणों एवं परिणामों का विश्लेषण कर सकेंगे।

26.1 भारत की जनसंख्या

विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से चीन के बाद दूसरा सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश भारत है। एक मार्च सन् 2001 को भारत की कुल जनसंख्या 1027 मिलियन याने एक अरब 27 करोड़ हो चुकी थी। यह संख्या विश्व की कुल जनसंख्या के 16.7 प्रतिशत के बराबर है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि विश्व का हर छठवा व्यक्ति भारतीय है। चीन हमसे एक कदम आगे है क्योंकि विश्व में हर पाँचवा व्यक्ति चीन का है। भारत में उपलब्ध भूमि विश्व की कुल भूमि का 2.42 प्रतिशत ही है और इतनी ही भूमि पर विश्व की कुल जनसंख्या का करीब 17 प्रतिशत भारत में है।

क्षेत्रीय प्रसार की दृष्टि से विश्व में भारत का स्थान रूस, कनाडा, चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्राजील और आस्ट्रेलिया के बाद सातवां है। चीन को छोड़ दें तो बचे पाँचों बड़े क्षेत्रफल वाले देशों की कुल जनसंख्या भारत की जनसंख्या के मुकाबले बहुत कम है। इन पाँचों देशों के क्षेत्रफल को मिला दें तो वह भारत के क्षेत्रफल से 16 गुना बड़ा क्षेत्रफल होगा और इस क्षेत्रफल में रहने वाली आबादी की मिली जुली जनसंख्या भारत की जनसंख्या से बहुत कम है। यह तथ्य दर्शाता है कि सीमित भूमि संसाधन में इतनी विशाल जनसंख्या के कारण हम कितने असहाय एवं अवरोधों से ग्रसित हैं। यह भी दृष्टव्य है कि तीन महाद्वीपों–उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया की कुल जनसंख्या को जोड़ दिया जाए तो भी भारत की जनसंख्या से कम है। और इसके साथ विडम्बना यह कि प्रति वर्ष हमारी जनसंख्या में 1 करोड़ 70 लाख व्यक्तियों का इजाफ़ा हो रहा है। यह संख्या आस्ट्रेलिया की कुल जनसंख्या से ज्यादा है। विश्व की सबसे घनी आबादी वाले चीन में जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि–दर भारत की वार्षिक दर से कम है।

26.2 जनसंख्या का घनत्व तथा वितरण

संसार की जनसंख्या अथवा किसी भी देश की जनसंख्या उसके सभी भागों में समान रूप से वितरित नहीं होती। भारत के लिए भी यह तथ्य लागू होता है। देश के कुछ भागों में घनी जनसंख्या है कुछ भागों में मध्यम जनसंख्या है तो कुछ भाग विरल बसे हैं। (देखिये चित्र 26.1)

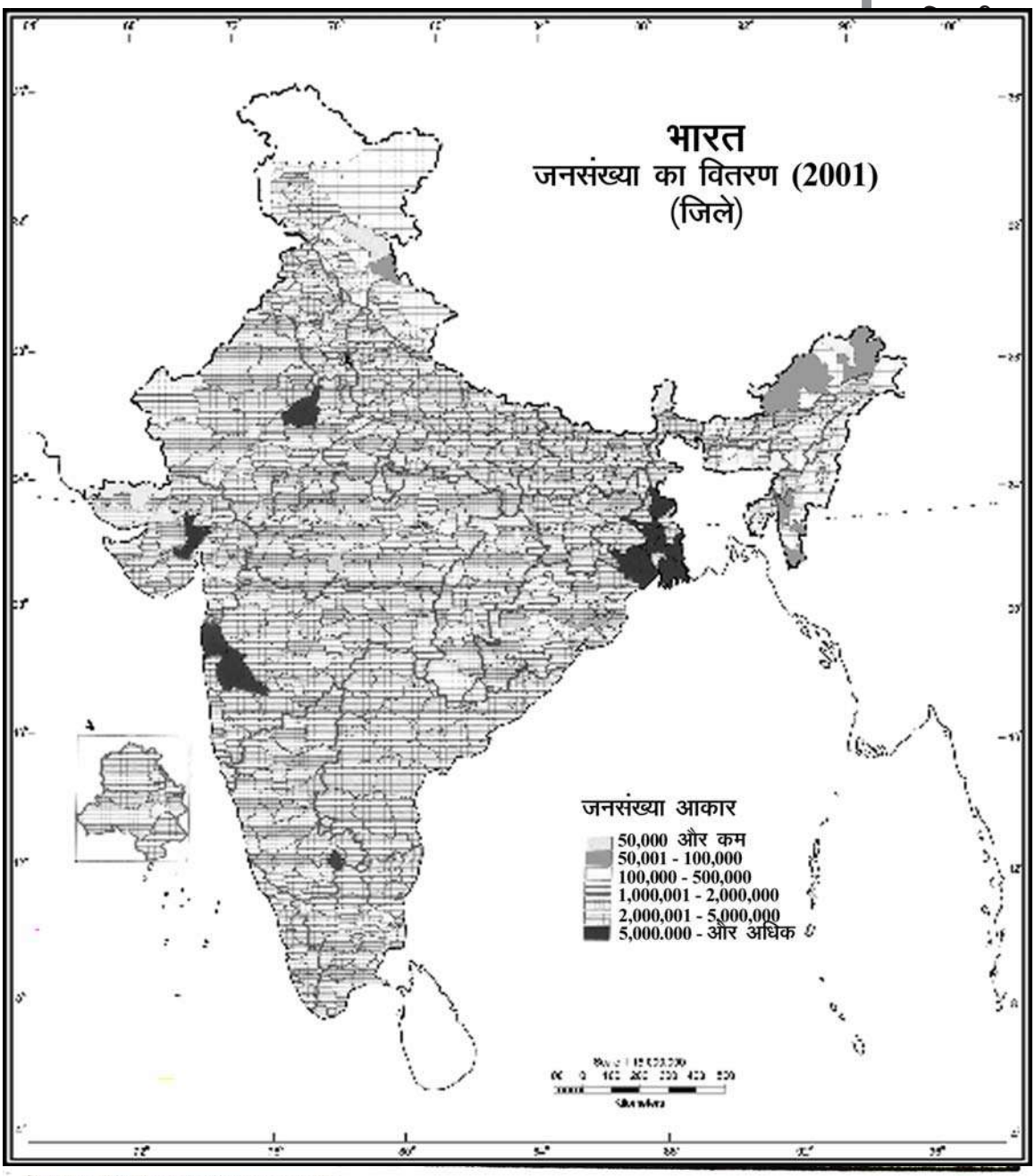

Based upon Survey of India outline map printed in 1979.
The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.
The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971, but has yet to be verified.
© Government of India copyright, 1979.

चित्र 26.1 भारतः जनसंख्या का वितरण (2001)

विभिन्न क्षेत्रों की जनसंख्या के आकार की तुलना कई तरीकों से की जा सकती है। इनमें से एक तरीका है कि विभिन्न क्षेत्रों की पूरी जनसंख्या के आकार की तुलना करना। परन्तु इस विधि में जनसंख्या तथा उस क्षेत्र या प्रांत के क्षेत्रफल अथवा उसके आधार संसाधनों के बीच के संबंधों के बारे में कुछ भी नहीं जान सकते। अतः क्षेत्रों के बीच तुलनात्मक अध्ययन गुमराह कर सकता है। उदाहरण स्वरूप सिंगापुर की जनसंख्या 42 लाख है और चीन की जनसंख्या 1 अरब 30 करोड़ (1,300 मिलियन) है। सिंगापुर का क्षेत्रफल मात्र 630 वर्ग कि.मी. है जबकि चीन का क्षेत्रफल 95 लाख वर्ग कि.मी. है। एक इतना छोटा और दूसरा इतना विशाल। इससे स्पष्ट है कि चीन की तुलना में सिंगापुर कितना भीड़–भाड़ वाला है। इसलिए विभिन्न देशों की जनसंख्या की तुलना सामान्यतः उन देशों के जनसंख्या के घनत्व के रूप में की जाती है। इस विधि में मनुष्य और भूमि के अनुपात को ध्यान में रखते हुए तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इस तरीके में किसी क्षेत्र की कुल जनसंख्या के वितरण को देश के क्षेत्रफल में समान रूप से वितरित मानते हुए प्रति वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में कितनी जनसंख्या समाहित होती है, इसकी गणना की जाती है। इसे अँक–गणितीय जनसंख्या का घनत्व कहते हैं। किसी भी क्षेत्र या देश की कुल जनसंख्या को उस क्षेत्र के या देश के जमीनी क्षेत्रफल से भाग देने पर प्रति वर्ग किमी जनसंख्या का घनत्व प्राप्त हो जाता है। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत वर्ष में जनसंख्या का घनत्व 324 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। पिछले सौ वर्षों में जनसंख्या का घनत्व चौगुना से भी ज्यादा बढ़ा है। सन् 1901 में यह घनत्व 77 था जबकि सन् 2001 में यह 324 हो गया। अब एक बात और समझने की है। जब यह कहा जाए कि भारत में जनसंख्या का घनत्व 324 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. है, इससे यह मतलब नहीं निकालना चाहिये कि देश के प्रत्येक वर्ग कि.मी. पर आबादी 324 व्यक्तियों की होगी। वास्तव में जनसंख्या का वितरण भारत वर्ष में बहुत ही अनियमित है। अरूणाचल प्रदेश में औसतन जनसंख्या 13 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. है, जबकि दिल्ली में सन् 2001 की जनगणना के अनुसार 9,294 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. है।

- विभिन्न क्षेत्रों अथवा देशों की जनसंख्या का तुलनात्मक अध्ययन सार्थक एवं उचित तभी हो सकता है जब उन देशों की जनसंख्या के औसत घनत्व को आधार मान कर अध्ययन किया जाय।
- घनत्व से व्यक्ति और भूमि के बीच अनुपातिक संबंध का बोध होता है।
- किसी क्षेत्र अथवा देश की जनसंख्या के घनत्व को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं।

$$\text{घनत्व} = \frac{\text{देश की कुल जनसंख्या}}{\text{देश का सकलभूमि का क्षेत्रफल}}$$

26.3 जनसंख्या के वितरण एवं घनत्व को प्रभावित करने वाले कारक

जैसा कि पहले हम लोगों ने चर्चा की, भारत की जनसंख्या का स्थानीय वितरण एक समान नहीं है। इसमें बहुत अधिक क्षेत्रीय विभिन्नताएं हैं। आइये देखें वे कौन से कारक हैं जो इस विभिन्नता को बनाते हैं। वे सब कारक जो जनसंख्या के घनत्व एवं उसके वितरण को प्रभावित करते हैं उन्हें दो श्रेणियों में बाँट सकते हैं। ये हैं (क) भौतिक कारक (ख) सामाजिक–आर्थिक कारक।

(क) भौतिक कारक – ये जनसंख्या के घनत्व एवं वितरण को प्रभावित करने में अहम भूमिका निभाते हैं। भौतिक कारकों में सम्मिलित हैं– भूमि की बनावट या आकृति, जलवायु, मृदा इत्यादि। यद्यपि विज्ञान एवं तकनीक में बहुत अधिक प्रगति हुई है परन्तु फिर भी भौतिक कारकों का प्रभाव बरकरार है।

1. भू-आकृति – यह जनसंख्या वितरण के प्रतिरूप को प्रभावित करता है। भू–आकृति का सबसे महत्वपूर्ण भाग है उसमें मौजूद ढ़लान तथा उसकी ऊँचाई। इन दोनों गुणों पर जनसंख्या का घनत्व एवं वितरण बहुत कुछ आधारित रहता है। इसका प्रमाण पहाड़ी एवं मैदानी क्षेत्र की भूमि ले सकते हैं। गंगा–सिंधु का मैदानी भूभाग घनी आबादी का क्षेत्र है जबकि अरूणाचल प्रदेश समूचा पहाड़ियों से घिरा उबड़–खाबड़ पर्वतीय भूभाग है, अतः जनसंख्या का घनत्व सबसे कम एवं वितरण भी विरल एवं फैला हुआ है। इसके अलावा भौतिक कारकों में स्थान विशेष का जल–प्रवाह क्षेत्र, भूमि जल स्तर जनसंख्या वितरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

2. जलवायु – किसी स्थान की जलवायु जनसंख्या के स्थानिक वितरण एवं प्रसार को प्रभावित करती है। अब राजस्थान के गरम और सूखे रेगिस्तान साथ ही ठंडा एवं आर्द्रता एवं नमी वाले पूर्वी हिमालय भूभाग का उदाहरण लें। इन कारणों से यहां जनसंख्या का वितरण असमान तथा घनत्व कम है। केरल एवं पश्चिम बंगाल की भौगोलिक परिस्थितियाँ इतनी अनुकूल हैं कि आबादी सघन एवं समान रूप से वितरित है। पश्चिमी घाट पर्वत श्रृंखला के पवन–विमुख भाग तथा राजस्थान के भागों में घनत्व कम है।

3. मृदा – यह बहुत हद तक जनसंख्या के घनत्व एवं वितरण को प्रभावित करता है। वर्तमान औद्योगीकरण एवं उद्योग प्रमुख समाज में मृदा कैसे जनसंख्या को प्रभावित करने में सक्षम हो सकती है। यह स्वाभाविक प्रश्न हो सकता है। परन्तु इस सच्चाई से कि आज भी भारत की 75 प्रतिशत जनता गाँवों में बसती है, कोई इन्कार नहीं कर सकता। ग्रामीण जनता अपना जीवन–यापन खेती से ही करती है। खेती के लिए उपजाऊ मिट्टी चाहिये। इसी वजह से भारत का उत्तरी मैदानी भाग, समुद्र तटवर्ती मैदानी भाग एवं सभी नदियों के डेल्टा क्षेत्र उपजाऊ एवं मुलायम मिट्टी की प्रचुरता के कारण सघन जनसंख्या वितरण प्रस्तुत करते हैं। दूसरी ओर राजस्थान के विशाल मरूभूमि क्षेत्र, गुजरात का कच्छ का रन तथा उत्तराखण्ड के तराई भाग जैसे क्षेत्रों में

टिप्पणी

मृदा का कटाव तथा मृदा में रेह का उत्फुलन (मिट्टी पर सफेद नमकीन परत चढ़ जाना जो उसकी उपजाऊपन को नष्ट कर देती है) विरल जनसंख्या वाले क्षेत्र हो जाते हैं।

किसी भी क्षेत्र में जनसंख्या का घनत्व एवं वितरण एक से अधिक भौतिक एवं भौगोलिक कारकों से प्रभावित होते हैं। उदाहरण स्वरूप भारत के उत्तर–पूर्वी भाग को लें। यहाँ अनेक कारक प्रभावशील है – जैसे भारी वर्षा, उबड़–खाबड़, उतार–चढ़ाव वाली जमीनी बनावट, सघन वन एवं पथरीली सख्त मिट्टी। ये सब एक साथ मिलकर जनसंख्या के घनत्व एवं वितरण को विरल बनाते हैं।

(ख) सामाजिक-आर्थिक कारक– भौतिक कारकों के समान ही सामाजिक–आर्थिक कारक भी जनसंख्या के वितरण एवं घनत्व को प्रभावित करते हैं। परन्तु इन दोनों कारकों के सापेक्षिक महत्व के विषय में पूर्ण एकरूपता नहीं भी हो सकती है। कुछ स्थानों पर भौतिक कारक ज्यादा प्रभावशील होते हैं तो कुछ जगहों पर सामाजिक एवं आर्थिक कारक अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सामान्य तौर पर आम सहमति है कि सामाजिक एवं आर्थिक (अभौतिक) कारकों की भूमिका बढ़ी है। विभिन्न सामाजिक–आर्थिक कारक जो जनसंख्या की बसावट में विभिन्नता लाते हैं, इस प्रकार हैं– (1) सामाजिक–सांस्कृतिक एवं राजनैतिक कारक (2) प्राकृतिक संसाधनों का दोहन।

1. सामाजिक-सांस्कृतिक एवं राजनैतिक कारक–मुम्बई–पुणे औद्योगिक काम्पलेक्स (संकुल) एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह दर्शाता है कि किस प्रकार सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक कारकों के समूह ने इस काम्पलेक्स की जनसंख्या और घनत्व की तीव्र वृद्धि की हैं। आज से दो सौ वर्षों से भी पहले पश्चिमी समुद्री तटवर्ती थाणे इलाके के सकरी खाड़ी में महत्त्वहीन छोटे–छोटे बिखरे द्वीप समूह थे। साहसी पुर्तगाली नाविकों ने इन द्वीप समूहों पर अपना अधिकार कायम कर लिया था। चूँकि अधिग्रहित द्वीपों का स्वामित्व उनके राजा के पास था। पुर्तगाल के राजा ने इसे इंग्लैंड के राजघराने को दहेज स्वरूप भेंट कर दिया। इस द्वीप में निवास करने वाले मछुआरों ने कभी सपने में भी नहीं सोचा होगा कि किसी दिन उनकी यह बसावट एक विशाल जनसंख्या के समूह के रूप में विकसित हो जाएगा। इंग्लैन्ड की ईस्ट इंडिया कम्पनी ने इन द्वीपों पर एक व्यापारिक केन्द्र को स्थापित किया जिसे बाद में बाम्बे प्रेसीडेन्सी के राजधानी शहर में परिवर्तित कर दिया। उद्यमी व्यापार कुशल सम्प्रदायों ने (जैसे पारसी, कच्छी, गुजराती लोग) यहाँ कपड़ा बनाने की मिलों को स्थापित किया और इसके लिये आवश्यक जलशक्ति का विकास किया। इतना ही नहीं पश्चिमी घाट पर्वत श्रृंखला के आर–पार सड़क तथा रेलमार्ग का निर्माण किया। इससे पृष्ठ प्रदेश आवागमन के साधनों से सम्पन्न हो गया। आशा के विपरीत स्वेज नहर का निर्माण हो जाने से बाम्बे (अब मुम्बई) भारत का ऐसा बन्दरगाह बन गया जो यूरोप का सबसे नजदीक व्यापारिक केन्द्र सिद्ध हुआ। मुम्बई में शिक्षित युवकों की मौजूदगी तथा कोंकण के सस्ते, सशक्त एवं अनुशासित मजदूरों की आसान उपलब्धता ने यहाँ की क्षेत्रीय जनसंख्या को तेजी से पनपने में बहुत बड़ा योगदान दिया।

कुछ समय पश्चात् मुम्बई के नजदीक अरब सागर के उथले क्षेत्र में तेल (पेट्रोलियम) तथा गैस–भण्डार की खोज ने इस क्षेत्र में पेट्रो–रसायन उद्योग को उभरने में बहुत बढ़ावा दिया। आज मुम्बई भारत की वाणिज्यिक एवं व्यापारिक राजधानी के रूप में प्रतिष्ठित है। इसलिए यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय एवं घरेलू हवाई–अड्डे स्थापित हैं। मुम्बई देश तथा विदेश के प्रमुख समुद्री बन्दरगाहों से जुड़ा हुआ है। राष्ट्रीय राजमार्ग एवं रेल–मार्ग का अन्तिम छोर मुम्बई है। लगभग ऐसी ही स्थिति औपनिवेशक शासकों द्वारा भारत के अन्य प्रमुख महानगर कोलकाता तथा चेन्नई के साथ लागू होती है।

2. प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता – छोटा नागपुर का पठार हमेशा से एक पर्वतीय, पथरीला एवं उबड़–खाबड़ क्षेत्र रहा है। वर्षा एवं वनों से आच्छादित यह भाग अनेकों आदिवासियों का निवास स्थान रहते आया है। यह आदिवासी क्षेत्र जनसंख्या घनत्व की दृष्टि से देश के विरल क्षेत्रों में से एक गिना जाता है। किन्तु प्रचुर मात्रा में खनिज अयस्क जैसे लोहा, मेंगनीज, चूना पत्थर, कोयला आदि के उपलब्ध होने के कारण पिछली शताब्दि के दौरान अनेक औद्योगिक केन्द्र तथा नगरों की स्थापना हुई है। लौह अयस्क तथा कोयले की खदाने आसपास मिलने से बड़े औद्योगिक उपक्रमों एवं कारखानों के स्थापित होने का आकर्षण बना रहा। इस कारण लोहा तथा इस्पात उद्योग, भारी–इन्जिनियरिंग उद्योग धातुकर्म उद्योग तथा यातायात में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों को बनाने के कारखाने खुले। इस क्षेत्र में उत्तम गुणों के कोयला उपलब्ध होने के कारण शक्तिशाली राष्ट्रीय ताप विद्युत संयत्रों की स्थापना हुई। इन केन्द्रों से विद्युत की आपूर्ति तथा वितरण दूर–दराज के क्षेत्रों को भी किया जाता है। उदारीकरण के बाद से इस क्षेत्र में अनेकों विदेशी बहु–राष्ट्रीय कम्पनियाँ एवं भारतीय कम्पनियाँ अपने-अपने कारखाने एवं संयत्रों को स्थापित करने में संलग्न हैं।

26.4 राज्य स्तर पर जनसंख्या घनत्व

किसी खास उद्देश्य के अनुसार जनसंख्या के आँकड़ों को कई प्रकार से अँकित एवं आलेखित किया जा सकता है। यदि जनसंख्या के वितरण के प्रतिरूप की जानकारी हासिल करनी हो तो जनसंख्या के आँकड़ों को राज्य–स्तर पर या राज्य के बड़े क्षेत्र के जनसंख्या के आँकड़ों को इकट्ठा कर उन्हें अंकित एवं आलेखित किया जाता है। यदि बारीक तौर पर जानकारी हासिल करनी हो, तो जनसंख्या के आँकड़ों को छोटी–छोटी इकाइयों में जैसे जिला स्तर या तहसील के स्तर पर अँकित किया जाता है। आइये, अब भारत में जनसंख्या वितरण एवं घनत्व के प्रतिरूप के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं।

भारत में राज्य स्तर पर उपलब्ध जनसंख्या के आंकड़ों के आधार पर जनसंख्या घनत्व को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता हैः अधिक घनत्व वाले क्षेत्र, मध्य घनत्व वाले क्षेत्र तथा कम घनत्व वाले क्षेत्र।

(क) अधिक घनत्व वाले क्षेत्र – दिए गए भारत के मानचित्र (चित्र 26.1) में जनसंख्या के वितरण को दर्शाया गया है। जहाँ जनसंख्या का घनत्व 400 व्यक्ति प्रति वर्ग

किलोमीटर से ज्यादा पाया जाता है। ऐसे क्षेत्र अधिक घनत्व वाले क्षेत्र कहलाते हैं। इन क्षेत्रों में घनी आबादी होने का मुख्य कारण उपजाऊ मृदा तथा भरपूर वर्षा का पाया जाना है। इससे सघन एवं सशक्त खेती द्वारा उपज मिलती है। इन कारणों से प्रति वर्ग कि.मी. क्षेत्र में बसी जनसंख्या के अधिकांश लोगों को पर्याप्त भोजन मिल जाता है। ऐसे क्षेत्र तमिलनाडु, केरल, पश्चिम बंगाल राज्य में आते हैं। परन्तु, केन्द्र शासित संघीय क्षेत्र जैसे दिल्ली, चण्डीगढ़ एवं पॉण्डिचेरी की स्थिति भिन्न है। यहाँ जनसंख्या सघन होने का मुख्य कारण उच्च शहरीकरण तथा आधुनिकीकरण है। इसके कारण लोगों को व्यवसाय तथा नौकरी के अवसर मिलते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जिन क्षेत्रों में उपजाऊ मृदा तथा सघन कृषि होती है तथा जिन क्षेत्रों में रोजगार, व्यवसाय व नौकरी के अच्छे अवसर उपलब्ध होते हैं, वहाँ जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है।

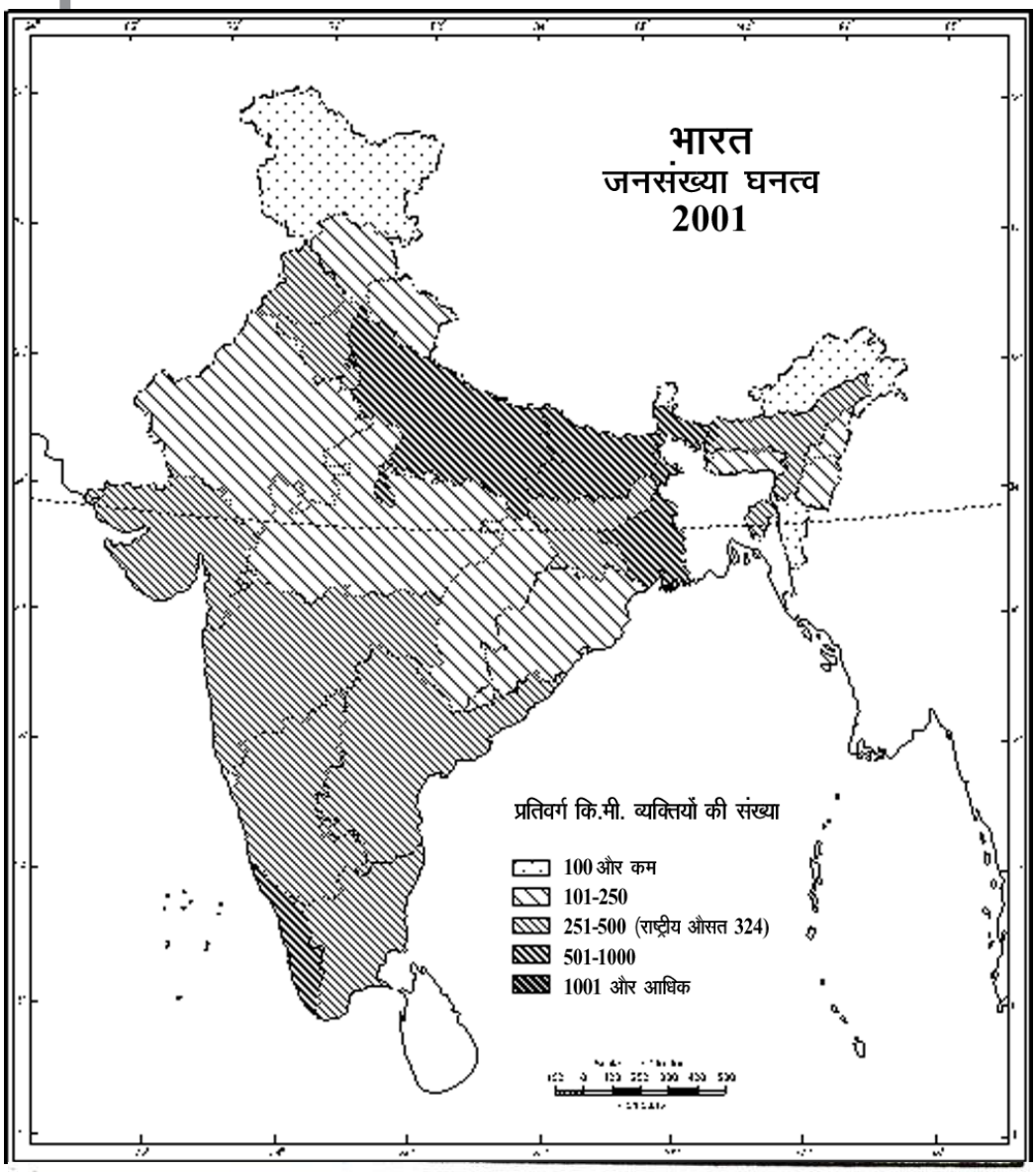

Based upon Survey of India outline map printed in 1979.
The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.
The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971, but has yet to be verified.
© Government of India copyright, 1979

चित्र 26.2 भारत : जनसंख्या घनत्व

(ख) मध्यम घनत्व वाले क्षेत्र – इस श्रेणी में वे राज्य तथा संघ शासित क्षेत्र आते हैं, जिनका जनसंख्या घनत्व 100 से 400 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. के बीच होती है। ये राज्य आन्ध्र प्रदेश, असम, दादर एवं नगर हवेली, गोवा, गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, त्रिपुरा, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, जम्मू एवं कश्मीर, उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, नागालैन्ड, मणिपुर, त्रिपुरा एवं मेघालय हैं। इस श्रेणी के अन्तर्गत देश के अधिकांश क्षेत्र शामिल हो जाते हैं। मध्यम घनत्व की आबादी होने का मुख्य कारण उबड़–खाबड़ जमीन के चलते कृषि में अवरोध, वर्षा की निम्न व अनियमित मात्रा तथा सिंचाई के लिए जलाभाव है। यदि उपयुक्त सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएँ तो प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर के व्यावसायिक कार्यक्रम चलाए जा सकते है तथा इसकी प्रबल संभावनाएँ भी मौजूद हैं। उदाहरण के तौर पर छोटा नागपुर क्षेत्र को लिया जाए। स्वतन्त्रता के समय यह क्षेत्र विरल आबादी का था। किन्तु इस क्षेत्र में विद्यमान अनेकों प्रकार के खनिज एवं अयस्क का खनन एवं खदानों के विकास के साथ बहुत से उद्योग एवं कारखाने स्थापित होते गए और हो भी रहे हैं। इसके प्रभाव से लोगों का आना तथा उनकी आबादी की बसावट भी बढ़ते–बढ़ते मध्यम घनत्व के दर्जे में पहुँच गई है।

(ग) कम घनत्व वाले क्षेत्र – उपरोक्त दोनों वर्गों के घनत्व वाले क्षेत्र के अलावा शेष बचे क्षेत्र इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। इस श्रेणी में शामिल क्षेत्रों में जनसंख्या घनत्व 100 व्यक्ति या उससे भी कम प्रति वर्ग कि.मी. होता है। भारत के राज्य एवं केन्द्र शासित संघीय क्षेत्र जो इसके अन्तर्गत आते हैं, वे हैं – अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, सिक्किम तथा अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह। कम घनत्व के प्रमुख कारणों में – ऊँची–नीची तथा विषम भू–आकृतियाँ, कम वर्षा तथा अस्वास्थ्यकर जलवायु का होना है। इन्हीं कारणों से जीवन–यापन करने के लिए रोजगार के अवसरों की बहुत कमी होती है। अधिक शीत या अति शुष्क क्षेत्र में भी कृषि का विकास नहीं हो पाता। उबड़–खाबड़, भूमि, कठिन जलवायु तथा निम्न कृषि के कारण नगरीकरण तथा औद्योगीकरण की संभावनाएं अवरूद्ध हो जाती है। इसलिए ऐसे क्षेत्रों में प्रति इकाई क्षेत्र में व्यक्तियों की संख्या, जिन्हें भरण–पोषण की सुविधा उपलब्ध हो सके, स्वतः कम हो जाती है। पहाड़ी एवं पर्वतीय क्षेत्रों में धरातलीय आकृतियों के चलते न केवल आवागमन के साधन तथा संचार माध्यमों का विस्तार करना कठिनाईयों से भरा हुआ है बल्कि कुल मिलाकर विकासात्मक आर्थिक स्तर निम्न होता है। इन सब कारकों के चलते जनसंख्या का घनत्व इन क्षेत्रों में काफी कम है।

- जनसंख्या के अधिक घनत्व वाले राज्य पश्चिम बंगाल, केरल, बिहार, पंजाब, तमिलनाडु, दिल्ली, उत्तर प्रदेश तथा हरियाणा हैं। केन्द्रशासित संघीय क्षेत्र चण्डीगढ़, लक्षद्वीप, पॉण्डिचेरी और दमन व दिव भी इसमें शामिल हैं।
- इन सभी उपरोक्त क्षेत्रों में कृषि कार्य अथवा द्वितीय या तृतीय श्रेणी के विभिन्न व्यवसायों द्वारा लोगों को रोजगार प्राप्त करने के भरपूर अवसर प्राप्त होते हैं।

टिप्पणी

- जनसंख्या के कम घनत्व वाले राज्य अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, सिक्किम, अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह हैं।
- ये क्षेत्र या तो कम वर्षा, या पहाड़ी उबड़-खाबड़ जमीन या अवास्थ्यप्रद जलवायु या इन सभी कारणों के मिलेजुले प्रभाव से घनत्व कम है।

26.5 जिलास्तर पर जनसंख्या का घनत्व

जनसंख्या के आँकड़ों का सूक्ष्म अवलोकन इस तथ्य को उजागर करता है कि प्रत्येक राज्य में जनसंख्या के घनत्व की एक से अधिक श्रेणियां मिलती हैं। जनसंख्या के वितरण का भौगोलिक अथवा स्थानिक प्रारूप और भी स्पष्ट होता है जब जनसंख्या के आंकड़ों को जिलास्तर पर अंकित कर विश्लेषित करते हैं। जनसंख्या के वितरण की विषमताएँ मुख्यतः विविध भौतिक कारकों की मौजूदगी, स्थान विशेष के आर्थिक विकास प्राकृतिक संसाधन के वितरण में विषमताओं एवं दशाओं द्वारा प्रभावित होती है। हिमाचल प्रदेश के लाहुल एवं स्पीति जिलों में घनत्व 2 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हैं तो दिल्ली में 29,395 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. की घनी आबादी है। देश के शीर्ष 20 जिलों में या तो पूर्णतः शहरीकरण हो गया है अथवा शहरीकरण का व्यापक प्रभाव मौजूद है। इसके अंतर्गत दिल्ली राज्य के सभी 9 जिले; कोलकाता, हावड़ा, उत्तरी 24 परगना (पश्चिम बंगाल में); मुम्बई एवं मुम्बई से लगे चारों तरफ अर्ध विकसित नगरीय बसावट वाले क्षेत्र (महाराष्ट्र में); हैदराबाद (आंध प्रदेश में) एवं केन्द्रशासित संघीय राज्य चण्डीगढ़ शामिल हैं। समूचे भारत की जनसंख्या के सघन घनत्व को 2 अविछिन्न तथा स्पष्ट पट्टियों में विभक्त कर समझा जा सकता है। ये पट्टियाँ (क) उत्तरी भारत का विशाल मैदानी भूभाग (पंजाब से पश्चिम बंगाल तक) तथा (ख) समुद्री तटवर्त्ती क्षेत्र, पूर्व में उड़ीसा से लेकर आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु, केरल के पश्चिम तटवर्ती क्षेत्र होकर कोंकण तट तक फैली है। एक मध्यम उच्च घनत्व की पेटी सम्पूर्ण महाराष्ट्र, गुजरात के मैदानी भाग, तेलंगाना, दक्षिणी कर्नाटक तथा झारखण्ड के छोटा नागपुर क्षेत्र को शामिल करती है। निम्न घनत्व के क्षेत्र सामान्यतः देश के पर्वतीय क्षेत्रों, वनच्छादित, हिमाच्छादित क्षेत्रों अथवा राजस्थान की शुष्क मरुभूमि में पाए जाते हैं। ये क्षेत्र मुख्यतः हिमालय के अधिकांश भाग राजस्थान के मरुस्थलीय इलाके (जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर इत्यादि) तथा गुजरात के कच्छ के रन के अंतर्गत आते हैं।

पाठगत प्रश्न 26.1

1. अधिक जनसंख्या घनत्व वाले तीन राज्यों के नाम लिखिये –

   (क) _____ (ख) _____ (ग) _____

2. किन्हीं तीन केन्द्र शासित संघीय क्षेत्रों के नाम लिखिए जहाँ जनसंख्या घनत्व अधिक हो –

   (क) _____ (ख) _____ (ग) _____

3. किन्हीं तीन ऐसे राज्यों के नाम लिखिये जो जनसंख्या की कम घनत्व वाली श्रेणी में आते हैं–

   (क) _____ (ख) _____ (ग) _____

4. किसी एक केन्द्रीय शासित संघीय क्षेत्र का नाम लिखिए जहाँ जनसंख्या का कम घनत्व है।

   _____

5. कोष्ठक में दिए गए शब्दों से सर्वाधिक उपयुक्त शब्द चुनकर रिक्त स्थान को भरिये –

   (क) ऐसे क्षेत्र जहाँ पर्याप्त वर्षा तथा उपजाऊ मृदा उपलब्ध है वहाँ जनसंख्या घनत्व _____ होने की संभावना है। (अधिक, मध्यम, निम्न)

   (ब) ऐसे क्षेत्र जो उबड़–खाबड़ है तथा अक्सर सूखे का प्रभाव बना रहता हो उन क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व _____ होने की संभावना है। (अधिक, मध्यम, निम्न)

26.6 जनंसख्या की वृद्धि

किसी भी क्षेत्र में जनसंख्या की वृद्धि वहाँ के जन्मदर, मृत्युदर तथा प्रवास पर निर्भर करती है। जन्मदर को प्रति वर्ष प्रति हजार जनसंख्या पर जीवित बच्चों की संख्या से गणना की जाती है। इसी प्रकार मृत्यु दर को किसी क्षेत्र में प्रति हजार व्यक्तियों में से प्रति वर्ष मरने वाले व्यक्तियों की संख्या से गणना की जाती है। साधारणतया विभिन्न सामाजिक, आर्थिक एवं जनसंख्या के आयुगत ढाँचे का प्रभाव जन्मदर पर पड़ता है। जन्म दर तथा मृत्यु दर के अन्तर को प्राकृतिक वृद्धि दर कहा जाता है। लोगों के एक स्थान से दूसरे स्थान या एक देश से दूसरे देश में स्थानान्तरण को प्रवास कहते हैं। एक देश से दूसरे देश में जाकर बसने की प्रक्रिया जनसंख्या प्रवास कहलाती है। जनसंख्या प्रवास की दर उस क्षेत्र में रहने वाली जनसंख्या में व्यक्तियों की संख्या बढ़ने या घटने से जनसंख्या वृद्धि दर को प्रभावित करती है।

जनसंख्या वृद्धि की दर धनात्मक या ऋणात्मक हो सकती है। धनात्मक वृद्धि दर तब होती है जब किसी क्षेत्र में जन्मे बच्चे तथा आप्रवासी (बाहर से आने वाले) व्यक्तियों की संख्या उस क्षेत्र में मरने वाले व्यक्तियों तथा उत्प्रवासी (क्षेत्र से बाहर जाने वाले लोगों) व्यक्तियों की संख्या से ज्यादा हो। ऋणात्मक वृद्धि दर में उपरोक्त बाते ठीक उल्टी लागू होती हैं तथा इससे किसी क्षेत्र की जनसंख्या में लगातार कमी होती जाती है।

सारिणी 26.1 जनसंख्या वृद्धि (1901-2001)

जनगणना वर्ष	जनसंख्या करोड़ में	मूल बदलाव करोड़ में	बदलाव प्रतिशत में	औसत वार्षिक वृद्धि प्रतिशत में
1901	23.840	-	-	-
1911	25.209	+1.370	5.75	0.56
1921	25.132	–0.077	–0.31	–0.03
1931	27.898	+2.766	11.0	1.04
1941	31.866	+3.968	14.22	1.33
1951	36.109	+4.243	13.31	1.25
1961	43.923	+7.815	21.64	1.96
1971	54.816	+10.892	24.80	2.22
1981	68.333	+13.517	24.66	2.22
1991	84.339	+16.306	23.86	2.14
2001	102.702	+18.063	21.34	1.93

जिलास्तर पर जनसंख्या वृद्धि प्रतिरूप

जिलास्तर पर आंकड़े का विश्लेषण यह प्रदर्शित करता है कि 19 जिलों में वृद्धि दर काफी ऊँची है यानी पचास प्रतिशत से भी ज्यादा। इसके दूसरी ओर 58 जिलों में वृद्धि दर बहुत ही कम है यानी दस प्रतिशत से भी कम। उच्च वृद्धि दर के 19 जिलों में से पाँच जिले नागालैण्ड के तथा चार जिले दिल्ली के हैं। इसी तरह कम वृद्धि दर के 58 जिलों में से 40 जिले दक्षिणी भारत में हैं। इन 40 जिलों में से 20 तमिलनाडु, 11 केरल, 5 आन्ध्र प्रदेश तथा 4 कर्नाटक में पाये जाते हैं। अगर जिलास्तर पर वृद्धि का प्रतिरूप देखें तो पूरे सिंधु–गंगा के मैदानी प्रदेशों, पश्चिम में हरियाणा से लेकर पूर्व में पश्चिम बंगाल तक उच्च वृद्धि दर पाया जाता है। सतपुड़ा पर्वत श्रेणी से उत्तर की ओर मालवा के पठार तक, वृहत भारतीय मरूस्थल सहित पूरा राजस्थान, पश्चिमी महाराष्ट्र तथा उत्तर पूर्व राज्यों के भागों में उच्च वृद्धि दर दर्ज की जा रही है। इसके दूसरी ओर गोदावरी नदी घाटी, छत्तीसगढ़ का मैदान, छोटानागपुर का पठार, पश्चिम बंगाल का पश्चिमी भाग, तथा उड़ीसा में निम्न वृद्धिदर अंकित की जाती है। काफी निम्न वृद्धि दर पंजाब, उत्तराखण्ड तथा दक्कन के पठार के दक्षिणी भाग में पाई जाती है।

सारिणी 26.1 को देखिये, आप पायेंगे कि हमारे देश (आज की राजनैतिक सीमाओं के ही अंतर्गत) की कुल आबादी सन् 1901 में मात्र 23.84 करोड़ थी। सन् 2001 के जनगणना के अनुसार यह संख्या 102.70 करोड़ हो गई है। यानी पिछले एक सौ वर्ष में यह वृद्धि 78.86 करोड़ की हुई है। यह वृद्धि सन् 1901 से अब तक 4.3 गुणा की है। अगर पिछले सौ वर्षों की जनसंख्या वृद्धि को देखें तो इसे सामान्यतः चार निम्नलिखित वर्गों में रखा जा सकता हैः–

(i) गतिहीन वृद्धि दर का काल (सन् 1921 से पहले)

(ii) नियमित वृद्धि दर का काल (सन् 1921 से सन् 1951 तक)

(iii) तीव्र वृद्धि दर का काल (सन् 1951 से सन् 1981 तक)

(iv) घटती हुई वृद्धि दर का काल (सन् 1981 के बाद)

आइए प्रत्येक काल के बारे में संक्षिप्त विवेचन करते हैं–

(i) सन् 1921 से पहले जनसंख्या में वृद्धि यंत्र–तत्र, अनियमित तथा मंद थी। इसका मुख्य कारण उच्च जन्मदर एवं उच्च मृत्यु दर था। अतः प्राकृतिक वृद्धि नगण्य थी। सन् 1911-21 के बीच मूल वृद्धि में थोड़ी कमी हुई। इसका मुख्य कारण अकाल, भुखमरी, महामारी इत्यादि का घटित होना था। सन् 1921 के बाद जनसंख्या बढ़ती रही है। इसी कारण सन् 1921 को भारत के जनसंख्या अध्ययन में जनसांख्यिकी विभाजक के रूप में जाना जाता है।

(ii) सन् 1921 से सन् 1951 तक जनसंख्या में नियमित वृद्धि होती रही। इसका मुख्य कारण मृत्यु दर में नियमित ह्रास था। मृत्युदर में ह्रास का कारण स्वच्छता तथा चिकित्सा में सुधार था। अन्य कारक सड़क सुविधा का विकास है जिससे आपातकालीन स्थिति में देश के एक भाग से दूसरे भाग में खाद्यान्न को पहुँचाने में मदद मिली जिससे अकाल मृत्यु को रोका जा सका। इसके साथ ही कृषि अर्थव्यवस्था में भी काफी सुधार इसके लिए जिम्मेदार हैं। अतः इस काल में जनसंख्या वृद्धि मृत्यु रोधक वृद्धि के नाम से जाना जाता है।

(iii) जहाँ तक भारत में जनसंख्या वृद्धि का संबंध है, सन् 1951 से सन् 1981 के बीच का काल बहुत ही संकटकालीन अवस्था का है। इस तीस वर्ष के काल में भारत की जनसंख्या दोगुनी हो गई। इस काल में तीव्र गति से मृत्युदर में ह्रास हुआ जबकि जन्मदर में नाम मात्र का ह्रास रहा। सारिणी संख्या 26.2 से स्पष्ट है कि सन् 1951 से 1981 के बीच जन्म दर में कमी 41.7 प्रति हजार से 37.2 प्रति हजार ही है जबकि मृत्युदर में यह कमी 28.8 प्रति हजार से 15.0 प्रति हजार तक पहुँच गयी। अतः जन्मदर एवं मृत्युदर में काफी बड़ा अंतर रहा जिसके परिणामस्वरूप प्राकृतिक वृद्धिदर काफी ऊँची रही। इसका मुख्य कारण विकासात्मक गतिविधि में तेजी, चिकित्सा सुविधाओं में और अधिक सुधार, लोगों के जीवन–निर्वाह की दशा में उन्नति इत्यादि रहा। जनसंख्या वृद्धि का यह काल उत्पादकता रोधक वृद्धि से संबोधित किया जाता है।

(iv) अंत के दो दशकों यानी सन् 1981 से सन् 2001 तक में जनसंख्या वृद्धि की दर में धीरे–धीरे कमी आना प्रारम्भ हुआ। इसने भारत के जनसांख्यिकी इतिहास में एक नये दौर के प्रारंभ का संकेत दिया। इस काल में जन्मदर में तेजी से कमी

आयी। यह कमी 1971-81 के 37.2 प्रति हजार से 1991-2001 में 24.8 प्रति हजार तक अंकित की गयी। दूसरी तरफ मृत्युदर में कमी घटती दर में अंकित की गयी। इसी अवधि में मृत्यु दर 15.0 प्रति हजार से घटकर 8.9 प्रति हजार हो गयी। प्राकृतिक वृद्धि में यह घटती हुई प्रवृति एक धनात्मक दिशा की ओर संकेत करती है। सरकार द्वारा चलाये जा रहे परिवार कल्याण कार्यक्रमों और लोगों की जागरूकता को इसका श्रेय जाता है।

सारिणी 26.2 वार्षिक जन्मदर, मृत्युदर तथा प्राकृतिक जनसंख्या वृद्धिदर (भारत जनगणना 1901 से 2001 तक)

दशक	जन्म दर प्रति हजार पर	मृत्यु दर प्रति हजार पर	प्राकृतिक वृद्धि दर प्रति हजार पर	प्राकृतिक वृद्धि प्रतिशत में
1901–11	49.2	42.6	6.6	0.66
1911–21	48.1	47.2	0.9	0.09
1921–31	46.4	36.3	10.1	1.01
1931–41	45.2	31.2	14.0	1.40
1941–51	39.9	27.4	12.5	1.25
1951–61	41.7	22.8	18.9	1.89
1961–71	41.2	19.0	22.2	2.22
1971–81	37.2	15.0	22.2	2.22
1981–91	32.7	11.7	21.0	2.10
1991–2001	24.8	8.9	15.9	1.59

- जनसंख्या की वृद्धि दर जन्म दर, मृत्यु दर तथा प्रवास कारकों के कार्यात्मक परिणाम है। जन्मदर तथा मृत्यु दर के अन्तर को जनसंख्या की प्राकृतिक वृद्धि कहते हैं।
- भारत की जनसंख्या सन् 1921 से लगातार तेज–गति से बढ़ती रही है। इसका सबसे प्रमुख कारण मृत्यु दर का तेजी से घटना है।

26.7 राज्यस्तर पर जनसंख्या वृद्धि के प्रतिरूप

भारत के सभी प्रांतों में जनसंख्या की वास्तविक वृद्धि दर एक समान नहीं है। देश के कुछ भागों में वृद्धि दर अन्य भागों के मुकाबले ज्यादा है। 1991–2001 के दशक में पूरे देश की औसत वृद्धि दर 21.39 प्रतिशत थी। यदि अन्तर–राज्य स्तर पर वृद्धि दरों के अन्तर पर ध्यान दें तो पता चलता है कि केरल में सबसे कम वृद्धि दर 9.42 प्रतिशत

है जबकि नागालैण्ड में सर्वाधिक वृद्धि दर 64.41 प्रतिशत। राज्य स्तर के प्रतिरूपों पर सरसरी तौर पर ध्यान देते हैं तो उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत के राज्यों की जनसंख्या वृद्धि के बीच एक विभाजक की मौजूदगी साफ दिखाई देती है। पूरे उत्तर भारत एवं पूर्वोत्तर भारत के राज्यों में अधिक वृद्धि दर दर्ज हुई है जबकि समस्त दक्षिण भारत के राज्यों में यह वृद्धि दर कम दर्ज हुई है। इसका प्रमुख कारण सामाजिक व आर्थिक विकास में बहुत अन्तर होना है। दक्षिण भारत के राज्यों में शिक्षा एवं साक्षरता का स्तर, प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं की व्यापक सुविधा, अधिक शहरी जनसंख्या, सुधरी एवं सुदृढ़ अर्थव्यवस्था के कारण जनमानस जागृत एवं ज्यादा समझदार हैं।

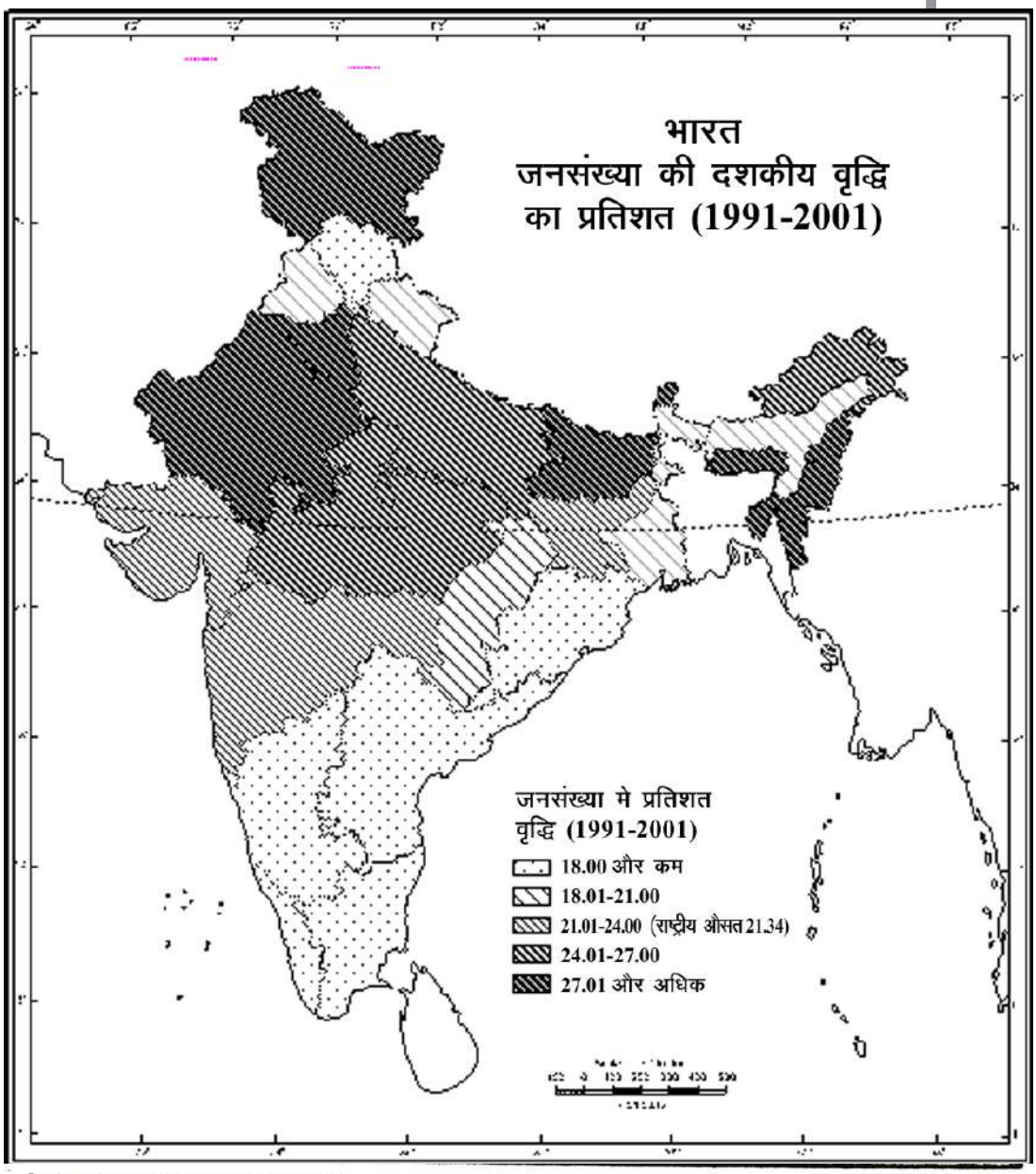

Based upon Survey of India outline map printed in 1979.
The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.
The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971, but has yet to be verified.
© Government of India copyright, 1979

चित्र 26.3 भारतः जनसंख्या वृद्धि (1991-2001)

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 26.2

1. सबसे उपयुक्त उत्तर पर (√) का निशान लगाइये–

(क) भारत में जनसंख्या की उच्च वृद्धि दर का सबसे प्रमुख कारण हैः

(i) तेजी से बढ़ती हुई जन्म दर (ii) तेजी से घटती मृत्यु दर

(iii) बाहर से लोगों का अधिक आप्रवास (iv) बहुत ऊँची जन्मदर तथा मृत्यु दर

(ख) भारत में जनसंख्या वृद्धि दर लगातार बढ़ रही है –

(i) 1901 से (ii) 1921 से (iii) 1951 से (iv) 1981 से

2. उस राज्य का नाम लिखिये जहाँ जनसंख्या की वृद्धिदर सबसे अधिक है।

_____

3. उस राज्य का नाम लिखिये जिसकी जनसंख्या वृद्धि दर सबसे कम है।

_____

26.8 प्रवास

पहले ही हमने चर्चा की है कि जनसंख्या की वृद्धि दर जन्मदर, मृत्युदर तथा प्रवासियों की संख्या पर निर्भर करती है। व्यक्तियों के एक स्थान से दूसरे स्थान में जाकर बसने की क्रिया को प्रवास कहते हैं। इसके कई प्रकार हो सकते हैं। किसी दूसरे स्थान में आकर बसावट की प्रकृति के आधार पर इस प्रवास को (i) स्थाई अथवा (ii) अस्थाई कह सकते हैं। स्थाई प्रवास में आए हुए व्यक्ति बसावट करने के बाद वापस अपने मूल स्थान नहीं जाते हैं। इसका सबसे सुन्दर एवं सरल उदाहरण ग्रामीण जनसंख्या का अपने–अपने गाँवों से रोजगार की तलाश में पलायन करके शहरों में आकर स्थाई रूप से बसना। अस्थाई प्रवास के अन्तर्गत वे लोग आते हैं जो कुछ समय रोजगार धंधा इत्यादि करके अपने मूल निवास स्थान को लौट जाते हैं। उदाहरण के लिए मौसमी प्रवास को लिया जा सकता है। फसल कटाई के समय बिहार के खेतिहर मजदूरों का पंजाब एवं हरियाणा प्रदेश में आकर रहना अस्थाई प्रवास है क्योंकि ये सब फिर से अपने अपने गाँवों को वापस लौट जाते हैं। बड़े–बड़े शहरों जैसे कोलकाता, चेन्नई, मुम्बई तथा अन्य बड़े शहरी क्षेत्रों में लोग सुबह आकर काम काज करके सायंकाल में वापस अपने घर चले जाते हैं। इस प्रकार के जनसंख्या के आवागमन को दैनिक प्रवास कहा जाता है।

पर्वतीय क्षेत्रों में सामान्यतः लोग ग्रीष्मकाल में अपने पशुओं के साथ घाटी इलाके से चलकर ऊँची पहाड़ियों पर पहुँच जाते हैं। जैसे ही शीत ऋतु का आगमन होता है, ये लोग अपने मवेशियों के साथ उतरकर पुनः अपने घाटी के इलाके में लौट आते हैं। इन

लोगों का मूल स्थायी आवास घाटी में होता है तथा पर्वतीय ढलानों पर पशुओं को चराने के लिए चले जाते हैं। जब सर्दी में उच्च पर्वतीय ढाल ठंडे होने लगते हैं, वे लोग निम्न भागों की ओर घाटी में लौट आते हैं। आमतौर पर वार्षिक आवागमन के रास्ते तथा चारागाह भी वस्तुतः तय एवं निश्चित होते हैं। इस प्रकार, ऊँचाई के अनुसार प्रवास को ऋतु प्रवास कहते हैं। हिमाचल प्रदेश की गद्दी जनजाति तथा जम्मू–कश्मीर राज्य की बकरवाल जनजाति प्रतिवर्ष ऐसा प्रवास करते हैं।

प्रवासी लोगों के मूलस्थान तथा निर्दिष्ट स्थान के आधार पर प्रवास को चार भागों में बाँटा जा सकता है–

(क) ग्रामीण क्षेत्र से ग्रामीण क्षेत्र में

(ख) ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय क्षेत्र में

(ग) नगरीय क्षेत्र से नगरीय क्षेत्र में

(घ) नगरीय क्षेत्र से ग्रामीण क्षेत्र में

- लोगों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर बसने को प्रवास कहा जाता है।
- प्रवास स्थाई, अस्थाई और दैनिक हो सकता है।
- मौसम की अनुकूलता के अनुसार लोगों का अस्थाई रूप से दो निर्दिष्ट स्थानों के बीच अपने सामान एवं पशुओं के साथ एक निश्चित मार्ग से होकर आवागमन करना ऋतु प्रवास कहलाता है।

26.9 भारत में प्रवास की प्रवृत्तियाँ

हमारे देश के एक अरब 2 करोड़ लोगों में से करीब 30 प्रतिशत यानी 30 करोड़ 70 लाख लोगों के नाम प्रवासी (जन्मस्थान के आधार पर) के रूप में दर्ज हैं। जनगणना के समय लोगों की गिनती उनके जन्मस्थान के अतिरिक्त अन्य जगहों पर होती है तो उन्हें प्रवासी की श्रेणी में रखा जाता है। सन् 2001 की जनगणना में 30 प्रतिशत का आंकड़ा (जम्मू–कश्मीर को छोड़कर), 1991 की जनगणना के 27.4 प्रतिशत से अधिक है। वास्तव में पिछले कई दशकों से इन प्रवासी लोगों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। यदि 1961 तथा 2001 की जनगणना की तुलना करें तो प्रवासी लोग 1961 में 14 करोड़ 40 लाख थे जबकि 2001 में इनकी संख्या 30 करोड़ 70 लाख हो गई है। पिछले दशक में अर्थात 1991–2001 के बीच इन प्रवासी लोगों की संख्या में (जम्मू–कश्मीर को छोड़कर) वृद्धि 32.9 प्रतिशत हुई है। इन प्रवासियों की जनसंख्या, उनके लिंगभेद, प्रवास का स्त्रोत एवं गंतव्य स्थान की जानकारी सारिणी 26.3 में दी गई है।

सारिणी 26.3 कुल प्रवासियों की संख्या- 2001

प्रवासी के प्रकार	जनसंख्या
कुल प्रवासी	30 करोड़ 71 लाख
पुरूष	9 करोड़ 4 लाख
स्त्री	21 करोड़ 67 लाख
• अन्तः जिला प्रवास	18 करोड़ 17 लाख
• अन्तर जिला प्रवास	7 करोड़ 68 लाख
• अन्तर राज्य प्रवास	4 करोड़ 23 लाख
• विदेशों से प्रवास	61 लाख

यदि हम इन प्रवासियों के आगमन के प्रतिरूप पर ध्यान दें तो यह पाया गया कि महाराष्ट्र में सबसे अधिक आप्रवासियों की संख्या (79 लाख), इसके बाद दिल्ली (56 लाख) फिर पश्चिम बंगाल (55 लाख), है। दूसरी तरफ उत्प्रवासी लोगों के आधार पर उत्तर प्रदेश, बिहार एवं राजस्थान का स्थान है। परन्तु यदि आप्रवासी एवं उत्प्रवासी लोगों की संख्या के अन्तर को देखें तो महाराष्ट्र सर्वोपरि (23 लाख), दिल्ली (17 लाख), गुजरात (6.8 लाख) तथा हरियाणा (6.7 लाख) में प्रवासी हैं।

आइये, अब इन प्रवासियों की रूपरेखा को कुछ विस्तार से जानें। प्रवासियों की गणना उनकी उम्र तथा उस स्थान पर रहने की अवधि से की जाती है। जनगणना में पहले वाले को जन्म स्थान के आधार पर तथा दूसरे वाले को पिछले निवास के स्थान के आधार पर प्रवासी करार दिया जाता है। अतः पहला उत्प्रवासी तथा दूसरा आप्रवासी होता है।

(क) आयु-वर्ग के अनुसार प्रवासी – आयु–वर्ग के प्रवासी को समझाने के लिये अन्तर्राज्यीय प्रवास तथा अन्तःराज्यीय प्रवास का उदाहरण लेते है। कुल 25 करोड़ 80 लाख अन्तःराज्यीय प्रवासियों में से 17.4 प्रतिशत, 15–24 वर्ष आयु वर्ग के हैं, 23.2 प्रतिशत लोगों का आयु वर्ग 25–34 वर्ष का है तथा 35.6 प्रतिशत प्रवासी लोग 35–59 वर्ष आयु वर्ग के हैं। इसी प्रकार अन्तर्राज्यीय प्रवासियों में से 4 करोड़ 20 लाख (18. 5 प्रतिशत) लोग 15–24 वर्ष के आयु वर्ग के, 24.7 प्रतिशत लोग 25–34 वर्ष की आयु वर्ग तथा 36.1 प्रतिशत लोग 35–59 वर्ष के आयु वर्ग वाले हैं। दोनों वर्गों के प्रवासी यानी अन्तर्राज्यीय एवं अन्तःराज्यीय प्रवासी में 36 प्रतिशत आर्थिक कार्य में लिप्त तथा अधिक आयु वर्ग के हैं। इन दोनों श्रेणियों के प्रवासियों पर विस्तारपूर्वक चर्चा अगले अनुच्छेदों में की जायेगी।

(ख) पिछले निवास स्थान के आधार पर प्रवासी – इस प्रकार के आंकड़े का संकलन क्षेत्र में प्रवासियों की जनसंख्या को समझने के लिये किया जाता है। यह संभव है कि कोई व्यक्ति जन्म स्थान से निकल अन्यत्र प्रवास कर सकता है और बाद में उसके

प्रवास के स्थान बदल सकते हैं। जन्मस्थान के आधार पर प्रवास की प्रक्रिया का अध्ययन एक कालीय घटना के अध्ययन समान है। परन्तु प्रवास के पूर्व निवास स्थान की जानकारी प्राप्त करने से पिछले कई वर्षों के अन्तराल में किये गए प्रवासों की भी जानकारी उपलब्ध हो जाती है। सन् 2001 की जनगणना की रिपोर्ट के अनुसार पिछले निवास स्थान के अनुसार भारत में प्रवासियों की संख्या 31 करोड़ 40 लाख है।

यदि इनके प्रवास के दौरान बिताए वर्षों पर ध्यान दें तो यह स्पष्ट है कि इन 31 करोड़ 40 लाख लोगों में से एक वृहद समुदाय (10 करोड़ 10 लाख) 20 वर्ष पहले से ही प्रवास कर रहे हैं। करीब 9 करोड़ 83 लाख लोग पिछले दशक में अर्थात 0–9 वर्ष के अन्तराल में प्रवासित हुए हैं। अतः पिछले दशक में हुए प्रवासन को दो वर्गों में बाँट कर विश्लेषण करेंगे (i) अन्तः राज्यीय प्रवास तथा (ii) अन्तर्राज्यीय प्रवास।

(i) अन्तः राज्यीय प्रवास – प्रवासियों की बहुत बड़ी संख्या इसी श्रेणी के अन्तर्गत आती है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार 8 करोड़ 7 लाख प्रवासी लोग अन्तः राज्यीय श्रेणी में आते हैं। राज्य के अन्तर्गत एक गाँव से दूसरे गाँव में प्रवासित लोगों का हिस्सा 60.5 प्रतिशत हैं। जबकि केवल 12.3 प्रतिशत लोग ही शहर से शहर में प्रवासित हुए हैं। शेष 17.6 प्रतिशत प्रवासित लोग शहर में गाँवों से आकर बस गए तथा 6.5 प्रतिशत शहर छोड़ कर गाँव में बसे। बचे 3.1 प्रतिशत ऐसे प्रवासी हैं जो किसी श्रेणी में सम्मिलित नहीं होते हैं क्योंकि ये लोग जनगणना के समय उचित जानकारी उपलब्ध नहीं करा पाए।

इन अन्तः राज्यीय प्रवासियों में 70 प्रतिशत संख्या स्त्रियों की है। इतना ऊँचा प्रतिशत मुख्यतः शादियों के फलस्वरूप हो सका है। स्त्रियों में 69 प्रतिशत गाँव से गाँव में प्रवासित श्रेणी में आती हैं। 13.6 प्रतिशत स्त्री प्रवासी गाँव छोड़कर शहर में प्रवासित हुईं। 9.7 प्रतिशत स्त्रियाँ एक शहर से दूसरे शहर में प्रवासित हुईं। केवल 5.6 प्रतिशत स्त्री प्रवासी शहर से गाँव में बसी। शेष 2.6 प्रतिशत प्रवासित स्त्री अवर्गीकृत श्रेणी में है।

पुरूष प्रवासियों में 41.6 प्रतिशत लोग गाँव से गाँव में आकर बसने वाले हैं। 18.3 प्रतिशत पुरूष प्रवासी एक शहर से दूसरे शहर में आने वाले हैं तथा 27.1 प्रतिशत संख्या उन पुरूषों की है जो गाँव छोड़कर शहर में बस गए। 8.6 प्रतिशत पुरूष शहर छोड़कर गाँव में बसने वाले हैं। जनसंख्या के प्रवास में सबसे बड़ी संख्या उन लोगों की है जो रोज़गार की तलाश में एक गाँव से दूसरे गाँव में आकर बस जाते हैं।

(ii) अन्तर्राज्यीय प्रवास– भारत में ऐसा प्रवास अन्तःराज्यीय प्रवास की तुलना में सीमित प्रतिशत में होता है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार एक करोड़ 70 लाख लोग इस प्रवास की श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। इन प्रवासियों में 26.6 प्रतिशत, एक राज्य के गाँव से दूसरे राज्य के गाँव में आकर बसने वालों का है। इसी प्रकार 26. 7 प्रतिशत उन लोगों का है जो एक शहर से दूसरे शहर में जाकर बस गए। 37.9

टिप्पणी

प्रतिशत उन लोगों का है जो गाँव से आकर शहर में बस जाते हैं। केवल 6.3 प्रतिशत लोग शहर छोड़कर गाँव में बसे हैं 2.6 प्रतिशत प्रवासी किसी भी श्रेणी में वर्गीकृत नहीं होते हैं।

अन्तर्राज्यीय प्रवासियों में करीब आधे लोग पुरूष वर्ग के हैं और इन पुरूष वर्गों के बीच 26.6 प्रतिशत गाँव से गाँव में प्रवास करते हैं। करीब 26.7 प्रतिशत लोग शहर से शहर में प्रवास करते हैं। 37.9 प्रतिशत प्रवासी पुरूष गाँव से आकर शहर में बसते हैं। 6.3 प्रतिशत पुरूष शहर छोड़कर गाँव में प्रवास करते है।

26.10 प्रवास के कारण

प्रवास अनेकों कारकों के मिले–जुले एवं पारस्परिक क्रियाओं का प्रतिफल होता है। सामान्य रूप से प्रवास को प्रभावित करने वाले कारकों को दो समूहों में बाँट सकते हैं– (i) अपकर्ष तथा (ii) प्रतिकर्ष कारक। मूल स्थान पर निवास करने वाले व्यक्तियों को प्रतिकर्ष कारक वहाँ से प्रवास करने के लिए मजबूर करता है, जबकि अपकर्ष कारक किसी भी क्षेत्र विशेष में व्यक्तियों को आकर्षित करता है। जब तक दोनों समूहों के कारक एक साथ क्रियाशील होकर प्रभावित नहीं करेंगे तब तक जनसंख्या में प्रवास करने की न तो मजबूरी रहेगी और न ही आकर्षण। दोनों समूहों को प्रभावित करने वाले कारक आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक घटकों को शामिल करते हैं। इनकी संक्षिप्त विवेचना नीचे दी जा रही है।

- प्रवास अनेकों कारकों के मिले–जुले एवं पारस्परिक क्रियाओं का प्रतिफल है। इन्हें दो, अपकर्ष तथा प्रतिकर्ष वर्गों में रखा जा सकता है।
- अपकर्ष तथा प्रतिकर्ष दोनों समूहों के कारक आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक हो सकते है।

(क) आर्थिक कारक – सामान्यतः लोगों की प्रवृत्ति उसी स्थान में निवास करने की होती हैं जहाँ उन्हें आजीविका प्राप्ति के अवसर होते हैं। इसलिए उस क्षेत्र से जहाँ की मृदा अनुपजाऊ, आवागमन के साधन कम विकसित, निम्न औद्योगिक विकास एवं रोजगार की कम संभावनाएँ हों वहाँ से लोग पलायन कर जाते हैं। ये कारक प्रवास के लिए प्रतिकर्षित करते हैं। दूसरी तरफ वे क्षेत्र जहाँ पर रोजगार की गुंजाइश हो तथा जीवनस्तर भी अपेक्षाकृत ऊँचा हो, लोगों को उत्प्रवास के लिए आकर्षित करता है। अतः इन कारकों को आकर्षणकारी समूह कहते हैं। इस प्रकार वे सभी क्षेत्र जहाँ की मृदा उपजाऊ, खनिज संसाधन की उपलबधता, आवागमन के सुविकसित साधन, संचार माध्यम का विकास, कारखानों एवं औद्योगिक इकाइयों का सुव्यवस्थित विकास एवं शहरीकरण हों, लोगों को बसने के लिए आकर्षित करते हैं। आप ने शायद ध्यान दिया होगा कि काफी बड़ी संख्या में लोग दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता एवं चेन्नई जैसे महानगरों में आसपास के क्षेत्रों से तथा दूर–दराज के भागों से पहुँचते हैं। बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़ से लोग काफी बड़ी संख्या में इन शहरों में पिछले अनेकों वर्षों से प्रवास कर रहे हैं। इन राज्यों में संभावनाएं सामान्यतः कम हैं। इन सभी लोगों को प्रवास

के लिए उत्प्रेरित करने वाली प्रमुख प्रेरणा आर्थिक लाभ प्राप्त करना है। कुछ लोग शहर में मौजूद आमोद–प्रमोद के साधन, जीवन की सुख–सुविधाएँ तथा अन्य शहरी चकाचौंध से प्रभावित एवं आकर्षित होकर प्रवासी बन जाते हैं।

- प्रवास को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण आर्थिक कारक – उपजाऊ मृदा, खनिज संसाधनों की उपलब्धता, यातायात एवं संचार के उन्नत साधन, उच्चस्तरीय नगरीकरण एवं औद्योगिक विकास तथा रोजगार की संभावनाएँ हैं।
- प्रवास को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण आर्थिक कारक (प्रतिकर्ष कारक) अनुपजाऊ मृदा, यातायात एवं संचार साधनों की कमी, बहुत ही कम स्तर का औद्योगिक विकास एवं शहरीकरण तथा रोजगार व धंधे का अभाव हैं।

(ख) सामाजिक-राजनैतिक कारक– मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अतः वह चाहता है कि वह अपने निकटतम संबंधियों के साथ रहे। साधारणतः एक ही धर्म, भाषा तथा समान सामाजिक रीति–रिवाज़ों को मानने वाले लोग एक साथ रहना पसन्द करते हैं। इसके ठीक विपरीत यदि कोई व्यक्ति ऐसे स्थान में रह रहा हो जहाँ लोगों का रहन–सहन, सामाजिक रीति–रिवाज अलग हो तो वह अन्यत्र प्रवास करना चाहेगा। बहुत से लोग धार्मिक महत्व के स्थानों पर जाना पसन्द करते हैं भले ही वह अस्थाई रूप में ही हो जैसे बद्रीनाथ, तिरूपति, वाराणसी आदि। इन्हीं सब कारणों से प्रेरित होकर शहरों के विभिन्न भागों में खास समुदाय के लोगों का संकेन्द्रण हो जाता है। अल्पसंख्यक वर्ग के लोगों का धार्मिक, सामाजिक दबाव में आकर एक खास स्थान पर प्रवास करना तभी होता है जब बहुसंख्यक समुदाय उनसे असहिष्णु हो जाते हैं।

(ग) जनांकिकीय कारक– जनांकिकी में उम्र की अहम भूमिका होती है। युवा व्यक्तियों में प्रवास ज्यादा मिलता है जबकि बच्चों एवं वृद्धों में कम। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि युवा व्यक्ति कार्य की तलाश या बेहतर संभावनाओं की खोज में अन्यत्र प्रवास करते हैं।

जनसंख्या प्रवास में राजनैतिक कारकों में से अधिकांश का संबंध सरकार की नीति से होता हैं। आधुनिक युग में ऐसे राजनैतिक कारक बहुत प्रभावशाली होते जा रहे हैं। इसके चलते प्रवास की गति, दिशा एवं स्तर प्रभावित हो रहा है। कई बार सरकारी नीतियाँ क्षेत्र के अल्पसंख्यकों को प्रवासित करने को बाध्य कर देती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश के भारत एवं पाकिस्तान के रूप में विभाजन के परिणामस्वरूप वृहद पैमाने पर दोनों देशों के बीच प्रवास हुआ।

- लोग अपने धर्म अथवा रीति–रिवाज़ों को मानने वाले लोगों के साथ रहना पसन्द करते हैं।
- बहुसंख्यक समुदाय के हाथों अल्पसंख्यक लोगों का दमन भी मजबूरी में प्रवास करने का महत्वपूर्ण कारक हो सकता है।

टिप्पणी

26.11 जनसंख्या प्रवास के परिणाम

जनसंख्या प्रवास के कारणों की तरह ही परिणाम भी विविध होते हैं। प्रवास के परिणाम दोनों स्थानों में, अर्थात जहाँ से लोग निकलते हैं तथा जहाँ पर लोग उत्प्रवास कर बसते हैं, दिखाई पड़ते हैं। परिणामों को तीन प्रकार के वर्गों में रखा जा सकता है– आर्थिक, सामाजिक तथा जनसांख्यिकीय।

(क) आर्थिक परिणाम– प्रवास के आर्थिक परिणामों में से सबसे महत्वपूर्ण परिणाम, जनसंख्या तथा संसाधनों के बीच के अनुपात पर प्रभाव है। प्रवास के उद्‌गम स्थान में तथा प्रवास के बसावट, दोनों स्थानों पर इस अनुपात में बदलाव आता है। इनमें से एक स्थान तो कम जनसंख्या वाला हो जाता है तो दूसरा स्थान अधिक जनसंख्या वाला या फिर उचित या आदर्श जनसंख्या वाला। कम जनसंख्या के क्षेत्र में लोगों की संख्या तथा मौजूद संसाधन में असंतुलन होता है, नतीजतन संसाधन का उचित उपभोग एवं विकास दोनों अवरूद्ध होते हैं। ठीक इसके विपरीत अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्र में लोगों की बहुलता होती है, फलस्वरूप संसाधनों पर दबाव बढ़ जाता है। इस तरह लोगों का जीवनस्तर गिरने लगता है। यदि किसी देश की जनसंख्या इतनी हो कि प्रतिव्यक्ति संसाधनों का विकास एवं उपभोग बिना किसी अवरोध अथवा बाधा के उपलब्ध रहे तथा लोगों के जीवनस्तर में कोई विपरीत प्रभाव न पड़ता हो तो उतनी जनसंख्या को उक्त देश अथवा क्षेत्र के लिये आदर्श जनसंख्या कहा जाता है। यदि प्रवास की प्रक्रिया में लोग अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्र से कम जनसंख्या वाले क्षेत्रों में जा रहे हों तो यह अच्छा संकेत हैं क्योंकि इससे दोनों क्षेत्रों में जनसंख्या एवं संसाधनों के बीच अनुपात एवं संतुलन बना रहेगा। अन्यथा विपरीत परिस्थितियाँ दोनों क्षेत्रों के लिए हानिकारक हो सकती हैं।

प्रवास दोनों क्षेत्रों में विद्यमान जनसंख्या की व्यावसायिक संरचनाओं को प्रभावित करता है। जिस क्षेत्र से लोगों का उत्प्रवास होता है, उस क्षेत्र में आमतौर पर क्रियाशील लोगों का आभाव हो जाता है तथा जिन क्षेत्रों में उत्प्रवासी लोग जाकर बसते हैं वहाँ क्रियाशील व्यक्तियों की संख्या बढ़ जाती है। उत्प्रवासित क्षेत्र यानी जहाँ से लोग प्रवास के लिये बाहर निकल आए वहाँ कार्यशील व्यक्तियों की कमी होने से उन पर आश्रितों की संख्या बढ़ जाती है। आजकल प्रवास का सबसे गंभीर एवं दूरगामी परिणाम हमारे देश में देखा जा रहा है– उच्च–शिक्षा प्राप्त कर प्रतिभाशाली व्यक्तियों का अन्य देशों के लिए पलायन कर जाना। इस प्रक्रिया को प्रतिभा–पलायन (ब्रेन–ड्रेन) कहते हैं। इस प्रक्रिया में गरीब एवं विकासशील देशों से प्रतिभा सम्पन्न युवक विभिन्न तकनीकी ज्ञान में निपुणता प्राप्त कर धनोपार्जन की लालसा में विकसित देशों में प्रवासी बन कर बस जाते हैं। भारत इसका बहुत सटीक उदाहरण है। यहाँ से इंजीनियर, चिकित्सक तथा अन्य तकनीकी एवं वैज्ञानिक विधाओं के कुशल एवं कार्यशील व्यक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैंड, तथा कनाडा में प्रवासी रूप में बस गए हैं।

यद्यपि इस प्रकार के प्रवास का किसी भी क्षेत्र में विद्यमान संसाधन एवं जनसंख्या के अनुपात में कोई विशेष प्रभाव पड़ता नज़र नहीं आता क्योंकि उत्प्रवासी व्यक्तियों की

संख्या बहुत कम होती है, फिर भी उद्गम क्षेत्रों में यानी जहाँ के लोग पलायन करते हैं वहाँ की जनसंख्या की गुणवत्ता पर कुप्रभाव पड़ता ही है। प्रतिभाशाली एवं कुशल वैज्ञानिक, इंजीनियर, चिकित्सकों के चले जाने से उद्गम स्थान के संसाधनों के विकास में काफी बाधा एवं रूकावटें आती हैं।

(ख) सामाजिक परिणाम – प्रवास के कारण विभिन्न संस्कृतियों के साथ पारस्परिक क्रिया होती हैं। प्रवास क्षेत्रों में भिन्न संस्कृतियों वाले व्यक्तियों के आने से इन क्षेत्रों की संस्कृति अधिक समृद्ध हो जाती हैं। भारत की आधुनिक संस्कृति अनेक संस्कृतियों की पारस्परिक क्रिया के फलस्वरूप प्रस्फुटित एवं पल्लवित हुई है। कभी कभी विभिन्न संस्कृतियों का मिलन सांस्कृतिक संघर्ष को भी जन्म देता है।

बहुत से प्रवासी (विशेष कर पुरूष वर्ग) जो शहरों में अकेले रहते हैं, उन लोगों को विवाहेत्तर एवं असुरक्षित यौन संबंधों में लिप्त पाया जाता है। इनमें से कुछ लोग एच. आई. वी. जैसी संक्रामक बीमारियों से ग्रसित पाए गए। इतना ही नहीं अस्थाई प्रवास के पश्चात् जब ये अपने स्थाई निवास क्षेत्रों में वापस जाते हैं तो वहाँ भी इन संक्रामक बीमारियों के फैलाने के साधन बन जाते हैं। इस तरह इनकी पत्नी एवं होने वाले बच्चे भी इस बिमारी का शिकार बन जाते है। ऐसा क्यों होता है?

- सही जानकारी की कमी के कारण,
- असुरक्षित यौन संबंधों के कारण,
- यौन संबंधों की जिज्ञासा,
- नशीली दवाओं का सेवन एवं मदिरापन,

- प्रवास क्षेत्रों में साँस्कृतिक समृद्धि को बढ़ावा मिलता है। यद्यपि कई बार सांस्कृतिक मनमुटाव अथवा संघर्ष भी उत्पन्न हो जाते हैं।
- प्रवास के कारण उत्प्रवासित क्षेत्र एवं आप्रवासित क्षेत्र दोनों जगहों में संसाधन एवं जनसंख्या के अनुपात में परिवर्तन आ जाता है।
- प्रतिभा–पलायन भी एक गंभीर दुष्परिणाम है जो प्रवास की प्रक्रिया के कारण आ जाता है।

(ग) जनांकिकीय परिणाम – प्रवास के कारण दोनों स्थानों की जनसंख्या में गुणात्मक परिवर्तन आता हैं, खासकर जनसंख्या के आयुवर्ग तथा लैंगिक वर्ग के अनुपात में। इस कारण जनसंख्या की वृद्धि दर भी प्रभावित होती है। आमतौर पर जहाँ से युवा वर्ग उत्प्रवासित होकर अन्यत्र चले जाते हैं वृद्धों, बच्चों एवं महिलाओं की संख्या बढ़ती है। दूसरा स्थान, जहाँ पर युवा वर्ग के प्रवासी आकर बस जाते हैं वहाँ की जनसंख्या की संरचना में वृद्धों, बच्चों की एवं महिलाओं की संख्या अपेक्षाकृत कम हो जाती है। यही कारण है कि जहाँ से युवा वर्ग बाहर निकला है वहाँ लिंगानुपात ज्यादा होता है तथा जहाँ आकर युवा वर्ग प्रवासित होता है वहाँ लिंगानुपात कम हो जाता है। इसका कारण युवा पुरूषों का ज्यादा प्रवास होना है। इस प्रकार दोनों स्थानों

की जनसंख्या में बदलाव तो होता ही है जनसंख्या की संरचना में भी परिवर्तन हो जाता है। इसके कारण दोनों ही क्षेत्रों में जन्मदर, मृत्युदर एवं इसके परिणामस्वरूप वृद्धि दर में परिवर्तन होता है। जिस क्षेत्र से युवा वर्ग प्रवास में बाहर चले जाते हैं वहाँ की जन्मदर घट जाता है, अतः जनसंख्या में वृद्धि दर का कम पाया जाना स्वाभाविक परिणाम है। ठीक इसका उल्टा प्रभाव एवं परिणाम उस क्षेत्र की जनसंख्या में जन्मदर एवं वृद्धि दर पर पड़ता है जहाँ पर अधिक युवा प्रवासी आकर बस जाते हैं।

- बच्चों, महिलाओं एवं वृद्धों का अनुपात उस क्षेत्र में बढ़ता हैं जहाँ से युवा वर्ग बाहर चले जाते हैं तथा यही अनुपात घट जाता हैं जहाँ प्रवासित युवा वर्ग बसते हैं। इन्हीं कारकों से दोनों स्थानों की जनसंख्या की आयु संरचना, स्त्री–पुरूष का अनुपात, जनसंख्या वृद्धि की दर में परिवर्तन होता है।

पाठगत प्रश्न 26.3

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कोष्ठक में दिए उपयुक्त शब्द चुनकर कीजिए–

(क) लोगों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने को _____ कहते हैं। (प्रवास/ऋतु प्रवास)

(ख) लोगों का प्रतिदिन आसपास के क्षेत्रों से शहरों में आना–जाना _____ कहलाता है। (दैनिक प्रवास/ऋतु प्रवास)

(ग) अपने पशुओं के साथ लोगों का मौसम के अनुसार किन्हीं निश्चित मार्गों से प्रवास को _____ कहते हैं। (दैनिक प्रवास/ऋतु प्रवास)

(घ) प्रवास के कारण उन स्थानों में जहाँ से युवा वर्ग का उत्प्रवास होता है वहाँ की जनसंख्या में युवा व्यक्तियों के अनुपात के _____ की संभावना होती है। (बढ़ने/घटने)

(ङ) आप्रवास के क्षेत्रों में कार्यशील जनसंख्या के अनुपात के _____ की संभावना होती है। (बढ़ने/घटने)

(च) विकासशील देशों जैसे भारत से तकनीकी कुशल लोगों का विकसित देश में प्रवास को _____ कहते हैं। (उत्प्रवास/प्रतिभा–पलायन)

(छ) प्रवासी लोगों में बहुसंख्यक _____ होते हैं। (स्त्री/पुरूष)

आपने क्या सीखा

मानव संसाधन किसी भी क्षेत्र की प्रमुख परिसम्पत्ति है। मानव संसाधन की संख्या की अपेक्षा गुणवत्ता अधिक महत्वपूर्ण होती है क्योंकि इन पर देश का आर्थिक विकास निर्भर करता है।

संसार में चीन के बाद भारत दूसरा सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है। जनसंख्या के वितरण का अध्ययन उसके घनत्व से किया जाता है। भारत में जनसंख्या का घनत्व सर्वत्र समान नहीं है। जनसंख्या के घनत्व के आधार पर भारत को तीन प्रमुख वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। अधिक घनत्व, मध्यम घनत्व, तथा निम्न घनत्व। उन सभी कारकों को जो जनसंख्या के घनत्व एवं वितरण को प्रभावित करते हैं, दो प्रमुख वर्गों में बाँटा जाता है– भौतिक कारक, सामाजिक–आर्थिक कारक।

सन् 1921 से क्रमशः भारत की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ती रही है क्योंकि जनसंख्या की वृद्धि दर में भी बढ़ोत्तरी होती रही है। जनसंख्या वृद्धि दर का निर्धारण– जन्मदर, मृत्युदर तथा प्रवासी लोगों की संख्या से होता है। जनसंख्या घनत्व तथा उसके वितरण में असमानता के समान ही वृद्धि दर भी सम्पूर्ण देश में असमान है।

जनसंख्या प्रवास जनसंख्या वृद्धि दर को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक है। प्रवास को विभिन्न वर्गों में बाँटा जा सकता है। इस तरह प्रवास स्थायी या अस्थाई वर्ग में बँट सकता है। जहाँ से प्रवास होता है तथा जिस स्थान में आप्रवास होता है, उसके आधार पर प्रवासी जनसंख्या को गाँव से गाँव, ग्रामीण से शहरी, नगर से नगर, तथा नगर से ग्रामीण क्षेत्र में वर्गीकृत किया जाता है। प्रवास के इन चारों प्रकारों को दो बड़ी श्रेणियों अन्तःराज्यीय प्रवास तथा अंतर्राज्यीय प्रवास में वर्गीकृत किया जा सकता है।

लोग एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर आर्थिक, सामाजिक–राजनैतिक तथा जनांकिकीय कारणों के प्रभाव से प्रवास करते हैं। प्रवास के कारणों का अध्ययन प्रतिकर्ष या अपकर्ष कारकों के सन्दर्भों में किया जा सकता है। प्रवास के परिणाम अनेकानेक हैं। उनका अध्ययन भी आर्थिक, सामाजिक एवं जनाँकिकीय परिप्रेक्ष्य में ही किया जाता है। प्रवासी का विवाहेत्तर यौन संबंध तथा मादक दवाइयों के सेवन से अनेको बीमारियों का शिकार होते हैं तथा जब ये अपने घर वापस जाते हैं तो इन बीमारियों के प्रसार का जरिया बनते हैं।

पाठान्त प्रश्न

1. भारत में जनसंख्या वितरण की संक्षिप्त चर्चा कीजिए। उच्च, मध्यम तथा निम्न जनसंख्या के घनत्व के कुछ क्षेत्रों के नाम बताइए।
2. भारत में जनसंख्या वृद्धि की प्रमुख प्रवृत्तियाँ क्या हैं? उचित उदाहरण देते हुए इसके लिए उत्तरदायी कारकों का वर्णन कीजिये।
3. जनसंख्या प्रवास से क्या तात्पर्य है? उपयुक्त उदाहरण देते हुए प्रवास के विभिन्न प्रकारों को परिभाषित कीजिए।
4. प्रवास के प्रमुख कारणों तथा परिणामों का संक्षिप्त विवरण दीजिये।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

26.1

1. पश्चिम बंगाल, केरल, बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, तमिलनाडु एवं हरियाणा (कोई भी तीन)
2. दिल्ली, चण्डीगढ़, पॉण्डिचेरी, लक्षद्वीप एवं दमन व दिव (कोई भी तीन)
3. सिक्किम, मिजोरम, अरूणाचल प्रदेश
4. अण्डमान एवं निकोबार द्वीप
5. (क) उच्च (ख) निम्न

26.2

1. (क) (ii)

   (ख) (ii)
2. नागालेंड
3. केरल

26.3

(क) प्रवास (ख) दैनिक या प्रति दिन (ग) ऋतु प्रवास

(घ) घटना (ङ) बढ़ना (च) प्रतिभा पलायन (छ) पुरूष

पाठान्त प्रश्नों के लिए संकेत

1. देश में जनसंख्या का वितरण बहुत ही असमान है। भारत को जनसंख्या के घनत्व के आधार पर तीन प्रमुख भागों में बांटा जा सकता है– अधिक घनत्व वाले, मध्यम घनत्व वाले तथा निम्न या कम घनत्व वाले। इन क्षेत्रों की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन जनसंख्या के घनत्व के सन्दर्भ में कीजिये। अधिक, मध्यम तथा निम्न घनत्व के क्षेत्रों के नाम लिखिये। (अधिक वर्णन के लिये अनुच्छेद 26. 2 एवं 26.4 देखिए)

2. भारत की जनसंख्या की वृद्धि दर सन 1921 से क्रमशः बढ़ती रही है। इस तथ्य को उजागर कीजिये तथा इसके कारण को संक्षेप में प्रस्तुत करिए। (अधिक जानकारी के लिये अनुच्छेद 26.6 देखिए)

3. लोगों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना प्रवास कहलाता है। प्रवास की अवधि के आधार पर यह अस्थाई, मौसमी और स्थाई हो सकता है। इस आधार पर कि प्रवास देश के अन्दर होता है या दो देशों या दो से अधिक देशों के बीच होता है, प्रवास को राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय कहा जाता है। (अधिक जानकारी के लिए अनुच्छेद 26.8 देखिए)

4. संक्षेप में प्रवास के कारणों तथा परिणामों की चर्चा कीजिए। (अधिक जानकारी के लिये अनुच्छेद 26.10 और 26.11 देखिये)

टिप्पणी

चिंतन के बिन्दु

एच.आई.वी. संक्रमण बचाव

एच.आई.वी. का अर्थ है:	*ए.आई.डी.एस. का अर्थ है:*
एच = मानव	*ए = एक्वायरड*
आई = प्रतिरक्षा की कमी	*आई = इम्युनो*
वी = वाइरस, रोगाणु	*डी = डेफिशिएन्सी*
	एस = सिन्ड्रोम

ऐसी बहुत सी सावधानियों को अमल में यदि लाया जाय तो आप अपने आप को एच.आई.वी. जैसे संक्रामक रोग से बचा सकते हैं –

- *उन सत्य एवं तथ्यपूर्ण जानकारियों को समझिये कि आप कैसे बड़े होते हैं और एच.आई.वी./एड्स क्या है।*
- *आप अपने शक या भय के बिना इन उपरोक्त बातों पर बेझिझक बात करें। साथ ही समझने का प्रयास करें।*
- *अपने समकक्ष दोस्त या हम जोली के दबाव या बहकावे में आकर किसी प्रकार की असुरक्षित हरकतें न करें।*
- *मादक नशीली दवाएँ तथा मद्यपान करने से बचें, खासकर यौन संबंध बनाने की प्रक्रिया में। इससे आपका मस्तिष्क असंतुलित हो जाता है तथा आपकी निर्णयात्मक बुद्धि आपको गलत तथा असुरक्षित यौन संबंधों में ढकेल सकती है।*
- *यौन संबंध बनाने से परहेज करें। जहाँ तक संभव हो इससे जितनी दूरी बना सके श्रेयस्कर है। इसकी जगह और भी विकल्प हैं, उन्हें अमल में ला सकते है, जैसे– आलिंगन, गले लगाना, चुम्बन, स्वप्नावलोक में विचरण इत्यादि।*
- *यदि आप यौन संबंधों से परहेज़ नहीं कर सकते हैं तो कम से कम सुरक्षित उपायों का इस्तेमाल करें। यौन संबंध केवल एक विश्वसनीय तथा असंक्रमित साथी के ही साथ होना चाहिये।*
- *इस बात से आश्वस्त होना जरूरी है कि आप के साथी को किसी प्रकार का संक्रामक रोग जैसे एच.आई.वी. या कोई यौन संक्रामक बीमारी (STIs) तो नहीं है अन्यथा कॉन्डोम का हर बार प्रयोग करें।*
- *यदि आप सुई, सिरिंज या ऐसी ही किसी प्रकार की चीज का जो आपकी चमड़ी में छेद करें, प्रयोग करते हैं तो जरूरी है कि उन्हें पहले अच्छी तरह उबालकर रोगाणुमुक्त कर दिया जाये।*
- *रक्त चढ़ाने से पहले यह सुनिश्चित कर लें कि रक्त जाँचा हुआ है। ''एच.आई.वी. मुक्त'' प्रमाणित रक्त का ही प्रयोग करें।*

27

भारतः जनसंख्या संघटन

पिछले पाठ में हमने भारत में जनसंख्या का वितरण, उसका घनत्व एवं उसकी वृद्धि के बारे में पढ़ा। जनसंख्या के वितरण एवं उसके घनत्व के कारणों तथा परिणामों से भी परिचित हो चुके हैं। पिछले एक सौ वर्षों में जनसंख्या में वृद्धि के कारणों एवं परिणामों पर भी चिन्तन किया गया। विभिन्न प्रकार के प्रवास के कारणों तथा परिणामों पर भी विचार व्यक्त किए गए। इस पाठ में कुछ निश्चित आयामों के सन्दर्भ में भारत की जनसंख्या के संघटनीय संरचना के बारे में अध्ययन करेंगे। सर्वप्रथम हम उन अधिवासों की स्थिति एवं आकार के बारे में जानने का प्रयास करेंगे तथा देखेंगे कि इन अधिवासों में लोग रहना क्यों पसन्द करते हैं। इस प्रकार के अधिवास दो प्रकार के ग्रामीण तथा शहरी होते हैं। इसके बाद हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि जनसंख्या में पुरुष एवं महिलायें क्या बराबर संख्या में हैं। इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि इन दोनों की सामाजिक स्थितियां कैसी हैं हमारी जनसंख्या की आयु संघठनात्मक संरचना तथा इसकी जटिलताओं के बारे में जानने का प्रयास करेंगे। इन जानकारियों से अवगत होने के बाद हमारा ध्यान जनांकिकीय विवरणों से हटकर जनसंख्या के सामाजिक–सांस्कृतिक पहलुओं पर केन्द्रित होगा। यह हमारे समाज की भाषाई तथा धार्मिक संरचना को समझने में मदद करेगा। अन्त में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या, स्थिति एवं वितरण पर नजर डालेंगे। अन्तिम पर उतनी ही महत्वपूर्ण हमारे समाज की साक्षरता दर है तथा हमें इसके प्रमुख संघटकों से अवगत होना है। इन सभी पहलुओं का विश्लेषणात्मक विवरण मददगार होगा और यह दर्शायेगा कि हमारे देश की जनसंख्या महज गिनती की संख्या नहीं है, बल्कि यह मानव सम्पदा का परिचायक है।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- भारत की जनसंख्या में ग्रामीण–शहरी, पुरुष–स्त्री (लिंग अनुपात) तथा आयु संघटन का विश्लेषण कर सकेंगे;

टिप्पणी

- जनसंख्या वृद्धि दर तथा साक्षरता दर के बीच के संबंध को स्थापित कर सकेंगे;
- भारत के रेखा मानचित्र पर जनजातीय जनसंख्या के वितरण क्षेत्रों को दर्शा सकेंगे;
- देश के विशेष क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या के केन्द्रीकरण का विश्लेषण कर सकेंगे;
- जिन क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों का संकेन्द्रीकरण होता है, उन स्थानों में अनुसूचित जनजातियों की संख्या बहुत कम हो जाती है और ठीक इसके विपरीत स्थिति का कारण सहित विवरण दे सकेंगे;
- भारत की जनसंख्या में धार्मिक तथा भाषाई संरचना की महत्वपूर्ण विशिष्टताओं का वर्णन कर सकेंगे।

27.1 ग्रामीण शहरी संघटन

अधिवासों के आकार तथा वहाँ रहने वाले लोगों के व्यवसाय के आधार पर देश की जनसंख्या को दो बड़े वर्गों –ग्रामीण एवं शहरी में विभक्त करते हैं। ग्रामीण जनसंख्या छोटे–छोटे आकार के अधिवासों में ग्रामीण इलाकों में बिखरी रहती हैं। शहरी जनसंख्या बड़े आकार के अधिवासों जैसे बड़े–बड़े शहरों तथा नगरों में रहती है। यद्यपि इस वर्गीकरण का आधार मुख्यतः रहने वाले लोगों का व्यवसाय है। भारत में ग्रामीण क्षेत्र उन्हें कहा जाता है जहां तीन–चौथाई या इससे भी अधिक लोगों का प्राथमिक एवं प्रमुख व्यवसाय जैसे कृषि, पशुपालन, वानिकी, मत्स्य–ग्रहण, उत्खनन आदि हो। इसी तरह शहरी क्षेत्र में तीन–चौथाई या इससे भी अधिक लोग अकृषिगत व्यवसायों जैसे निर्माण उद्योग, व्यापार, यातायात, संचार, बैंकिंग एवं विविध सामाजिक सेवाओं जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा तथा प्रशासनिक आदि कार्यों में लगे रहते हैं।

सारिणी 27.1 भारत में ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या (1901 से 2001 तक)

जनगणना वर्ष	कुल जनसंख्या का प्रतिशत	
	ग्रामीण	शहरी
1901	89.2	10.8
1911	89.7	10.3
1921	88.8	11.2
1931	88.0	12.0
1941	86.1	13.9
1951	82.7	17.3
1961	82.0	18.0

1971	80.1	19.9
1981	76.7	23.3
1991	74.3	25.7
2001	72.2	27.8

स्रोत—भारत की जनगणना

भारत की पूरी जनसंख्या 5.8 लाख गांवों तथा 4615 नगरों में फैली हुई है। प्रसिद्ध लोकोक्ति के अनुसार भारत को गांवों का देश कहा जाता है। आज भी करीब भारत की 72 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में ही बसती है। सारिणी 27.1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि प्रत्येक जनगणना में ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत घटता रहा है। इसके परिणामस्वरूप नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत धीरे–धीरे परन्तु उत्तरोत्तर बढ़ा है। सन् 1901 में शहरी जनसंख्या 10.8 प्रतिशत थी जो धीरे–धीरे बढ़ते–बढ़ते 2001 में 27.8 प्रतिशत तक पहुंच गई। इसका मुख्य कारण शहरी जनसंख्या की वृद्धि दर ग्रामीण की तुलना में ज्यादा होना है। भारत की कुल जनसंख्या की औसत वृद्धि दर 21.34 प्रतिशत पाई गई जबकि शहरी जनसंख्या में वृद्धि दर 31.13 प्रतिशत हो गई। यह वृद्धि मात्र जनसंख्या की प्राकृतिक वृद्धि दर का ही परिणाम नहीं है। वास्तव में यह वृद्धि ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्र में लोगों के प्रवास के कारण हुई है। पिछले पाठ में प्रवास के विभिन्न कारणों की विस्तार से चर्चा की जा चुकी है। प्रवास से आम जनता का रूझान धीरे–धीरे प्राथमिक व्यवसायों से हटकर द्वितीयक तथा तृतीयक व्यवसायों की ओर बढ़ने का भी संकेत मिलता है। अक्सर यह भी देखने में आता है कि नगरपालिका या नगरनिगम की सीमा का विस्तार बढ़ते–बढ़ते शहर के निकट ग्रामों या कस्बों को भी अपने दायरे में ले लेता है।

भारत की कुल नगरीय जनसंख्या का लगभग आधा भाग केवल पांच राज्यों में है। ये पांच राज्य हैं—महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल एवं आंध्र प्रदेश। मध्य प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, बिहार राजस्थान एवं केन्द्रशासित प्रदेश दिल्ली में देश की कुल नगरीय जनसंख्या का 32 प्रतिशत भाग बसता है। शेष 18 प्रतिशत शहरी जनसंख्या देश के बाकी राज्यों में तथा बचे केन्द्रशासित प्रदेशों में फैली हुई है।

जनगणना वर्ष 2001 के अनुसार भारत के 35 शहर ऐसे हैं जिनमें से प्रत्येक की जनसंख्या 10 लाख से अधिक है। इन बड़े शहरों या नगरों को महानगर (10 लाख से ज्यादा आबादी वाला नगर) कहते हैं। इन 35 महानगरों की कुल जनसंख्या भारत की कुल नगरीय जनसंख्या का 37.8 प्रतिशत है। एक अनुमान के अनुसार यदि यही प्रवृति कायम रही तो महानगरों की संख्या 2011 तक 50 के लगभग पहुंच जाएगी। तब शायद देश की कुल नगरीय जनसंख्या का आधा हिस्सा इन्हीं महानगरों में होगा। इन महानगरों के तेजी से बढ़ने के कारण कई समस्याएं भी सामने आएंगी जैसे रहने का मकान, बिजली, पेयजल आपूर्ति, स्कूल, स्वास्थ्य केन्द्र, राशन की दुकानें इत्यादि की समुचित व्यवस्था।

Based upon Survey of India outline map printed in 1979.
The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.
The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971, but has yet to be verified.
© Government of India copyright, 1979

चित्र 27.1 भारत : महानगरों का वितरण (2001)

भारत में इन 35 महानगरों की स्थिति चित्र 27.1 पर दर्शायी गई है। जनसंख्या के घटते क्रम में इन महानगरों का क्रम इस प्रकार है—मुम्बई महानगर, कोलकाता, दिल्ली, चेन्नई, बंगलौर, हैदराबाद, अहमदाबाद, पुणे, सूरत, कानपुर, जयपुर, लखनऊ, नागपुर, पटना, इन्दौर, वड़ोदरा (बड़ौदा), भोपाल, कोयम्बटूर, लुधियाना, कोच्ची, विशाखापट्टनम, आगरा, वाराणसी, मदुरै, मेरठ, नासिक, जबलपुर, जमशेदपुर, आसनसोल, धनबाद, फरीदाबाद, इलाहाबाद, अमृतसर, विजयवाड़ा एवं राजकोट।

- भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 27.2 प्रतिशत भाग नगरीय क्षेत्रों में रहता है।
- भारत की कुल जनसंख्या में नगरीय जनसंख्या का अनुपात लगातार तीव्रगति से बढ़ रहा है।

- देश में नगरीय जनसंख्या की वृद्धि दर ग्रामीण जनसंख्या की वृद्धि दर से अधिक है।
- प्रत्येक ऐसे नगर जिनकी जनसंख्या 10 लाख या इससे अधिक होती है, महानगर कहलाते हैं। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार देश में 35 महानगर हैं।

पाठगत प्रश्न 27.1

1. कोष्ठक में दिए गए शब्दों में से उचित शब्द चुनकर रिक्त स्थानों को भरिये—

   (द्वितीयक तथा तृतीयक, बढ़ रही है, 35, कम, प्राथमिक)

   (क) भारत में ग्रामीण जनसंख्या की वृद्धि दर नगरीय जनसंख्या की वृद्धि दर से _____ है।

   (ख) ग्रामीण जनसंख्या मुख्यतः _____ व्यवसाय में कार्यरत रहती है जबकि नगरीय जनसंख्या आमतौर पर _____ व्यवसायों में लगी रहती है।

   (ग) नगरीय जनसंख्या का अनुपात सन् 1921 से _____ रहा है।

   (घ) सन् 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में कुल _____ महानगर हैं।

27.2 लिंग-अनुपात

लिंग अनुपात से आशय है किसी क्षेत्र में प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या। इस प्रकार स्त्री–पुरुष की संख्या का लिंग अनुपात निकाला जाता है। भारत की सन् 2001 की जनगणना के अनुसार देश में प्रति हजार पुरुषों की तुलना में 933 महिलाएं हैं। इस प्रकार लिंग अनुपात प्रतिकूल कहा जाएगा, क्योंकि स्त्रियों की संख्या पुरुषों की संख्या से कम है।

लिंग अनुपात अनुकूल तब कहा जाता है जब स्त्रियों की संख्या पुरुषों की संख्या से अधिक हो। केरल में देश के अन्य राज्यों की तुलना में सबसे अधिक अनुकूल लिंग अनुपात (1058) है। इसी प्रकार सबसे अधिक प्रतिकूल अनुपात हरियाणा (861) में है। केन्द्रशासित प्रदेशों के बीच पांडिचेरी में सबसे अधिक अनुपात (1001) और दमन व दिव में सबसे कम अनुपात (709) है। देश में लिंग अनुपात के सम्बन्ध में सबसे अहम् बात यह है कि यह अनुपात लगातार घटता जा रहा है, यद्यपि अपवाद स्वरूप 1951, 1981 और अब 2001 में मामूली सी वृद्धि हुई है। सारिणी 27.2 में इसे और अधिक स्पष्ट किया गया है।

सारिणी 27.2 भारत में लिंग अनुपात (1901–2001) (प्रति हजार पुरुषों पर महिला संख्या)

जनगणना वर्ष	लिंग अनुपात
1901	972
1911	964
1921	955
1931	950
1941	945
1951	946
1961	941
1971	930
1981	934
1991	927
2001	933

स्रोत—भारत की जनगणना।

जिला स्तर पर प्रतिरूप

जिला स्तर के आंकड़ों पर नजर डालें तो एक बात स्पष्ट होती है कि भारत के कुल 593 जिलों में से 324 जिलों में यह अनुपात राष्ट्रीय औसत (933) से ज्यादा है तथा 4 जिलों में राष्ट्रीय औसत के बराबर है। अर्थात 593 जिलों में से 55 प्रतिशत जिलों में लिंग अनुपात राष्ट्रीय औसत से ज्यादा है। इन 55 प्रतिशत जिलों (324 जिले) के 78 जिले भारत के 16 राज्यों तथा केन्द्रशासित प्रदेशों में फैले हैं। वहां लिंग अनुपात का आंकलित मान एक से ऊपर है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि प्रति हजार पुरुषों की संख्या की तुलना में स्त्रियों की संख्या एक हजार से ज्यादा है। ऐसे जिलों की सबसे अधिक संख्या तमिलनाडु (15) में, इसके बाद केरल (13), उत्तराखण्ड (8), छत्तीसगढ़ (7), एवं उड़ीसा (7) जिले हैं। पांडिचेरी के माहे जिले में लिंगानुपात सबसे ज्यादा (1148) है। इसके बाद उत्तराखण्ड का अलमोड़ा (1147) जिला तथा महाराष्ट्र का रत्नागिरी (1135) जिला है। यदि इन आंकड़ों को स्थानीय वितरण पर देखें तो पता चलता है कि ऐसे तीन स्पष्ट भौगोलिक क्षेत्र हैं जहां लिंग अनुपात अनुकूल हैं। पहला क्षेत्र दक्षिण भारत है जिसके अन्तर्गत तमिलनाडु राज्य के अधिकांश जिले, पांडिचेरी, केरल के प्रायः सभी जिले तथा कर्नाटक के तटवर्ती जिले आते हैं। दूसरा क्षेत्र उड़ीसा, छत्तीसगढ़, आन्ध्र प्रदेश तथा मध्य प्रदेश के पहाड़ी एवं पठारी भूभाग है जो अनुसूचित जनजाति बहुल क्षेत्र है। तीसरा क्षेत्र उत्तराखण्ड तथा हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय इलाके हैं।

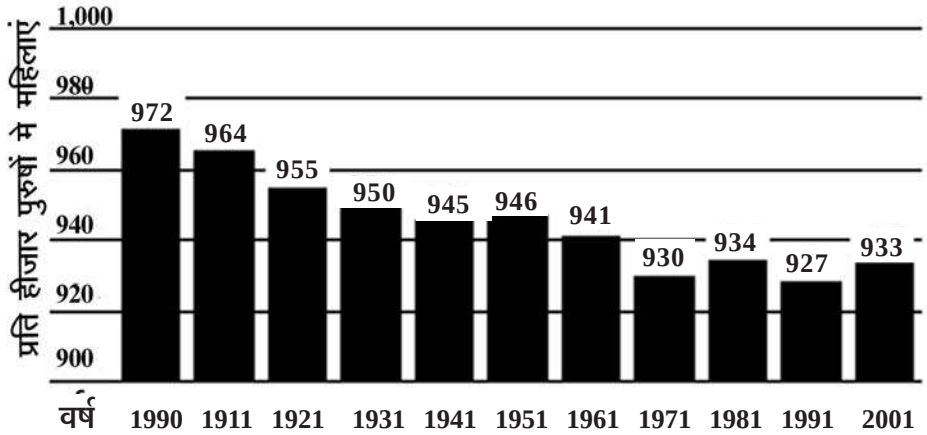

चित्र 27.2 भारत : लिंग अनुपात (1901-2001)

भारत के 265 जिलों में लिंग अनुपात राष्ट्रीय औसत से कम हैं। इन 265 जिलों में से 42 जिलों में यह अनुपात 850 से भी कम है। **ये जिले कहां और किन राज्यों में हैं?** उत्तर प्रदेश के 8 जिले तथा हरियाणा के 6 जिले इसके अंतर्गत आते हैं। वैसे इन 42 जिलों में से 10 जिले महानगरों में स्थित हैं। दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के अन्दर आने वाले 8 जिले हैं। मुम्बई महानगर तथा चण्डीगढ़ संघीय प्रदेश के एक-एक जिलों में काफी कम लिंगानुपात है। कम लिंगानुपात का मुख्य कारण उद्योगों, व्यवसायों, भवन निर्माण, अनौपचारिक विभागों एवं अव्यवस्थित कार्यों में बहुत अधिक संख्या में पुरुषों का रोजगार प्राप्ति हेतु प्रवास है। जिलों के सन्दर्भ में सबसे कम लिंग अनुपात दमन जिले में पाया गया (591), इसके बाद अरुणाचल प्रदेश के पश्चिमी कमेन्ग (749) तथा सिक्किम के उत्तरी जिले (752) आते हैं।

भारत में लिंग अनुपात में गिरावट क्यों? लिंग अनुपात में गिरावट के प्रमुख कारणों में स्त्रियों में प्रसव–पीड़ा के समय ज्यादा मृत्युदर तथा नवजात कन्या शिशुओं की मृत्यु दर बहुत अधिक होना है। इन दोनों कारणों का सीधा संबंध हमारे समाज में स्त्रियों के निम्न स्तर से है। इसके अलावा पुरुष प्रधान समाज में व्याप्त सामाजिक–धार्मिक मान्यताओं एवं विश्वास के कारण पुत्रों की प्राथमिकताएं लिंगानुपात कम होने के लिए जिम्मेदार है। इस मानसिकता का दुष्परिणाम कम होते लिंग अनुपात में परिलक्षित होता है। स्त्रियों का अल्पायु का शिकार होना तभी रूक सकता है जब उन्हें समाज में सम्मानजनक स्थान एवं पहचान मिले। इसके अलावा स्त्रियों को शिक्षा तथा समयानुकूल स्वास्थ्यवर्धक दवाएं, सेवाएं एवं पोषण मिलना जरूरी है। इससे प्रसव के समय एवं उपरान्त होने वाले नवजात शिशुओं की मृत्यु दर में कमी आएगी। साथ ही साथ प्रसव के समय स्त्रियों की मृत्यु दर में भी गिरावट आएगी।

- भारत में लिंग अनुपात प्रतिकूल है। औसतन प्रति हजार पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या 933 है। सबसे अधिक अनुपात केरल (1058) में तथा सबसे कम अनुपात (709) दमन व दिव में है।

टिप्पणी

- लिंग अनुपात में गिरावट के प्रमुख कारणों में नवजात कन्या शिशुओं की अधिक मृत्यु दर तथा समाज में स्त्रियों का निम्न स्तर है।

परियोजना कार्य

अपने पड़ोस में किन्हीं 20 परिवारों को चुनिये। प्रत्येक परिवार से सम्पर्क करें तथा यह जानने का प्रयास करें कि उसमें पुरुषों एवं महिलाओं की कुल संख्या कितनी है। सभी 20 परिवारों से सम्पर्क करने के पश्चात् महिलाओं एवं पुरुषों की संख्या को अलग–अलग जोड़िये। (1) यदि अनुपात 1:1 आता है तो लिंग अनुपात संतुलित कहा जायेगा। (2) यदि स्त्री का अनुपात एक से अधिक है तो लिंग अनुपात अनुकूल है अन्यथा प्रतिकूल होगा, यदि एक से कम हो तो। (3) यह जानने का प्रयास करें कि अनुकूल अथवा प्रतिकूल लिंग अनुपात के क्या कारण हैं? इसके लिए प्रत्येक परिवार का साक्षात्कार करें।

पाठगत प्रश्न 27.2

निम्न प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में दीजिए:

(क) सबसे ज्यादा एवं अनुकूल लिंग अनुपात वाले राज्य का नाम बताइए।

_____

(ख) सबसे कम लिंग अनुपात वाले राज्य का नाम बताइये।

_____

(ग) भारत की जनगणना 2001 के अनुसार भारत का लिंग अनुपात क्या है?

_____

(घ) लिंग अनुपात को परिभाषित कीजिये

_____

27.3 आयु संरचना

आयु तथा लिंग पिरामिड लोगों की आयु एवं लिंग के अनुसार जनसंख्या की संरचना दिखाता है। यह जनसंख्या की वृद्धिदर तथा कार्यशील एवं आश्रितों की जनसंख्या का भी संकेत देता है। भारत की जनगणना 2001 के अनुसार 14 वर्ष तक के उम्र के बच्चे कुल जनसंख्या के 35.3 प्रतिशत हैं। इसी प्रकार 15-59 वर्ष के समूह में 56.9 प्रतिशत तथा वृद्ध (60 वर्ष एवं इससे अधिक) 7.4 प्रतिशत है। हाल के दशकों में भारत में आयु संरचना में धीरे–धीरे कुछ परिवर्तन हो रहे हैं।

इनमें से एक प्रवृत्ति है युवा वर्ग के हिस्से का बढ़ना, इनमें 0-14 आयु वर्ग का अनुपात घटता नजर आ रहा है तथा कार्यशील उम्र (15-59 वर्ष) तथा वृद्ध लोगों (60 वर्ष एवं उससे अधिक) का जनसंख्या में अनुपात बढ़ रहा है। किन्तु 2001 जनगणना के अनुसार, 1991 में कार्यशील (15-59 वर्ष) व्यक्ति 57.7 प्रतिशत थे जो घटकर 2001 में 56.9 प्रतिशत तक आ गया है। जबकि वृद्ध आयु वर्ग (60 वर्ष एवं अधिक) के लोग 1991 में 6.6 प्रतिशत थे जो 2001 में बढ़कर 7.4 प्रतिशत हो गए। इसी प्रकार 0-14 वर्ष के आयु वर्ग का अंश 1991 में 36.5 प्रतिशत था जो 2001 में घटकर 35.3 प्रतिशत हो गया है।

सारिणी 27.3 भारत में आयु तथा लिंग के अनुसार कुल जनसंख्या का प्रतिशत में वितरण (2001)

आयु वर्ग (वर्ष में)	कुल व्यक्ति	पुरुष	स्त्री
0-4	10.7	10.7	10.7
5-9	12.5	12.5	12.4
10-14	12.1	12.3	11.9
15-19	9.7	10.1	9.3
20-24	8.7	8.7	8.8
25-29	8.1	7.8	8.4
30-34	7.2	7.0	7.4
35-39	6.9	6.8	7.0
40-44	5.4	5.6	5.2
45-49	4.6	4.7	4.5
50-54	3.6	3.7	3.4
55-59	2.7	2.6	2.8
60-64	2.7	2.6	2.8
65-69	1.9	1.8	2.1
70-74	1.4	1.4	1.4
75-79	0.6	0.6	0.7
80 एवं अधिक	0.8	0.7	0.8

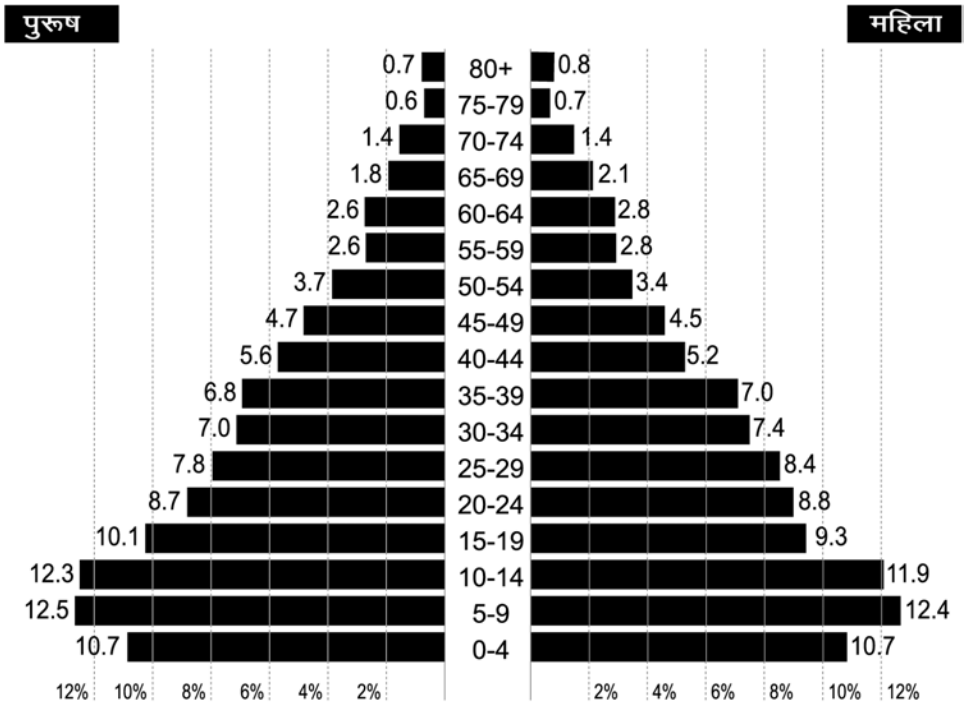

चित्र 27.3 भारतः आयु तथा लिंग संरचना (2001)

27.4 भाषाई संघटन

भारत में जिस प्रकार प्राकृतिक संरचना एवं पर्यावरण में भिन्नताएं हैं, ठीक उसी प्रकार से भारत में प्रचलित भाषाओं में भी विभिन्नताएं एवं विविधताएं मौजूद हैं। यहां सैकड़ों भाषाएं एवं स्थानीय बोलियों का प्रचलन पाया जाता है। सन् 1961 की जनगणना में 1652 भाषाओं को मातृभाषा के रूप में दर्जा दिया गया था। इनमें से केवल 23 भाषाओं को आपस में मिला दें तो ये देश की कुल जनसंख्या का 97 प्रतिशत हो जाता है। परन्तु ज्यादा लोगों द्वारा प्रयोग की जाने वाली इन 23 भाषाओं में से भारतीय संविधान में केवल 18 भाषाओं को मान्यता प्रदान की गई है। इसके अलावा संविधान की 8वीं सूची में अंग्रेजी को सम्पर्क भाषा के रूप में मान्यता दी गई है। इन 18 भाषाओं में असामी, बंगाली, हिन्दी, तेलुगू, तमिल, मलयालम, कन्नड़, मराठी, गुजराती, उड़िया, पंजाबी, कश्मीरी, संस्कृत, कोंकणी, सिंधी, नेपाली, मनीपुरी तथा उर्दू हैं। इन 18 भाषाओं में हिन्दी सबसे अधिक लोगों द्वारा बोली जाती है जबकि सबसे कम लोगों

द्वारा संस्कृत बोली जाती है। विभिन्न शब्दों के अर्थ और उनके उच्चारण होने से भी भाषा में स्थानीय विविधता होती है। किसी एक विशेष भाषा बोलने वाले लोग ही दूसरे स्थान पर शब्दों के उच्चारण में थोड़े अन्तर के साथ उसी भाषा को बोलते हैं। भाषाओं में बोलने की विभिन्नताओं के कारण एक ही भाषा से कई 'बोलियों' का उद्भव होता है। इस प्रकार एक बोली (उपभाषा) किसी एक भाषा के सदृश्य ही होती है, जिसे क्षेत्रीय भाषा माना जा सकता है। राजस्थानी, हरियाणवी, भोजपुरी अथवा पूर्वी बोलियां हिन्दी भाषा की ही उपभाषाएं कहलाती हैं।

भाषा संस्कृति का एक महत्वपूर्ण घटक है तथा बहुत सी भाषाएं एवं उनकी उपभाषाएं या बोलियां भारत के विभिन्न भागों में बोली जाती हैं। ये भारत की संस्कृति को समृद्ध एवं विविध बनाती हैं। इसके साथ ही देश में भाषाएं अपनी प्रादेशिक पहचान भी बनाए रखती हैं। इसी कारण स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में प्रमुख भाषाओं के वितरण को आधार बनाकर राज्यों का पुनर्गठन किया गया। संख्यात्मक सामर्थ्य के आधार पर भारत को बारह प्रमुख भाषाई प्रदेशों में विभक्त किया जा सकता है। इस प्रकार एक भाषाई प्रदेश वह क्षेत्र कहलाता है जहां बहुसंख्यक लोग आमतौर पर उसी भाषा में बोलते हैं। भाषाई प्रदेशों के निर्धारण हेतु निम्न भाषाओं को चुना गया है—(1) कश्मीरी, (2) पंजाबी, (3) हिन्दी/उर्दू, (4) बंगला, (5) असमिया, (6) उड़िया, (7) गुजराती, (8) मराठी, (9) तमिल, (10) तेलुगू, (11) कन्नड़ तथा (12) मलयालम।

भारतीय भाषाओं का वर्गीकरण एवं वितरण

यद्यपि भारत की सभी भाषाएं बोलने में एक दूसरे से भिन्न नजर आती हैं, तथापि उनकी उत्पत्ति के आधार पर उन्हें चार प्रमुख भाषाई परिवारों में वर्गीकृत किया जा सकता है। ये भाषाई परिवार इस प्रकार हैं—(1) आस्ट्रिक परिवार (निषाद), (2) द्रविण परिवार (द्राविड़), (3) चीनी–तिब्बत परिवार (किरात) तथा (4) भारतीय–यूरोपीय परिवार (आर्य)।

आस्ट्रिक परिवार की भाषाएं मेघालय, अण्डमान–निकोबार द्वीपसमूह और मध्य भारत की जनजातीय पट्टी विशेष रूप से संथाल परगना, रांची और मयूरभंज जिलों में बोली जाती है। चीनी–तिब्बती परिवार की भाषाएं एवं उनकी उपभाषाएं देश के उत्तरी पूर्वी क्षेत्र तथा उत्तर एवं उत्तर–पश्चिम के उप-हिमालयी क्षेत्रों में बोली जाती हैं। ये भाषाएं लद्दाख (जम्मू तथा कश्मीर), हिमाचल प्रदेश तथा सिक्किम के कुछ भागों में बोली जाती है।

द्रविड़ परिवार की भाषाएं बोलने वालों की संख्या दक्षिण भारत में संकेन्द्रित है। तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक तथा केरल राज्य में अधिकांश लोगों द्वारा इस परिवार की भाषाएं बोली जाती हैं। प्रायद्वीपीय पठारी प्रदेश में रहने वाले जनजातीय लोगों द्वारा भी इस परिवार की भाषाएं बोली जाती हैं।

टिप्पणी

भारतीय–यूरोपीय परिवार की भाषाएं बोलने वाले लोग देश के उत्तरी मैदानी भागों तथा मध्य भारत में संकेन्द्रित है। सम्पूर्ण उत्तर भारतीय मैदान में फैला हुआ उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, बिहार, राजस्थान, दिल्ली, हरियाणा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात राज्यों में इसी परिवार की भाषाओं का उपयोग होता है।

भारत की कुल जनसंख्या में विभिन्न भाषाई परिवारों की भाषाएं बोलने वालों का अनुपात काफी भिन्नता दर्शाता है। जहां आर्य (भारतीय यूरोपीय परिवार) भाषाएं बोलने वालों का अनुपात 70 प्रतिशत से अधिक है, वहां चीनी–तिब्बती परिवार की भाषाएं बोलने वाले केवल 0.85 प्रतिशत है। द्रविण परिवार की भाषाएं बोलने वाले 20 प्रतिशत हैं।

- भारत में बोली जाने वाली भाषाएं चार प्रमुख परिवारों से संबंध रखती हैं। ये परिवार हैं– (1) आस्ट्रिक परिवार (2) द्रविड़ परिवार (3) चीनी–तिब्बती परिवार (4) भारतीय–युरोपीय परिवार।
- विभिन्न परिवारों से संबंधित भाषाओं का संकेन्द्रीकरण देश के विभिन्न भागों में हुआ है। आस्ट्रिक परिवार का देश के उत्तर–पूर्वी भाग में, द्रविण परिवार का दक्षिण भारत में, चीनी–तिब्बती परिवार की भाषाएं देश के उप–हिमालयी भागों में तथा भारतीय–यूरोपीय परिवार की भाषाएं देश के उत्तरी मैदानी भाग तथा मध्य भारत में संकेंद्रित है।
- भारतीय आर्य परिवार की भाषाएं भारत में सबसे अधिक लोगों द्वारा बोली जाती हैं। चीनी–तिब्बती परिवार की भाषाएं बोलने वाले लोगों की संख्या सबसे कम है। भारत के 70 प्रतिशत से अधिक लोग भारतीय–आर्य परिवार की भाषाएं और बोलियां बोलते हैं।

पाठगत प्रश्न 27.3

कोष्ठक में दिए गए शब्दों में से उपयुक्त शब्द द्वारा रिक्त स्थानों भरिये–

(क) आस्ट्रिक भाषाई परिवार से संबंध रखने वाली भाषाओं में से एक भाषा _____ है (संथाली/हिन्दी/बंगला)

(ख) हिन्दी _____भाषाई परिवार से संबंधित भाषा है (द्रविड़/आर्य/आस्ट्रिक)

(ग) आस्ट्रिक भाषाएं बोलने वाले लोग मुख्यतया _____ में संकेंद्रित हैं। (उत्तर–पूर्व के जनजातीय क्षेत्र/पश्चिमी हिमालय/कोंकण प्रदेशों में)

27.5 धार्मिक संरचना

भारतीय समाज विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में बंटा हुआ है। परन्तु, मोटे तौर पर सात प्रमुख धर्म हैं। अधिकांश लोग इन्हीं सात धर्मों में से किसी एक धर्म के अनुयायी होते हैं। ये सात धर्म हैं—हिन्दू, इस्लाम, ईसाई, जैन, बौद्ध, सिख और पारसी। हिन्दू धर्म के अनुयाइियों की संख्या भारत में सबसे ज्यादा है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार 80.5 प्रतिशत लोग इस धर्म को मानते हैं। इस धर्म के माननेवालों की संख्या भारत के उत्तरी मैदानी भाग तथा मध्य भारत के पठारी प्रदेश के उत्तरी भाग में अधिक केन्द्रित हैं। इसके अलावा भारत के सभी भागों में इनकी संख्या पर्याप्त है। किन्तु इनकी संख्या भारत के कुछ उत्तर–पूर्वी क्षेत्रों में एवं संघीय प्रदेश लक्षद्वीप में नगण्य है।

अन्य धार्मिक समुदायों का भारत में वितरण बिखरा हुआ है। ये कुछ ही क्षेत्रों में संकेन्द्रित हैं। मुसलमानों की सर्वाधिक संख्या एवं कुल जनसंख्या में अनुपात जम्मू–कश्मीर एवं लक्षद्वीप में अधिक है। वैसे मुसलमानों की सबसे ज्यादा संख्या उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा बिहार राज्यों में हैं। इन राज्यों के अलावा मुसलमानों की संख्या (राष्ट्रीय औसत से ज्यादा) असम तथा केरल में भी है। अगर क्षेत्रीय वितरण पर नजर दौड़ाएँ तो स्पष्ट होता है कि केरल तथा जम्मू–कश्मीर के अलावा इनका वितरण उत्तरी विशाल मैदानी भागों में ही है।

ईसाइयों का सबसे ज्यादा संकेन्द्रण केरल में है। इसके बाद तमिलनाडु एवं आन्ध्र प्रदेश का स्थान है। कुल जनसंख्या में उनका सबसे अधिक अनुपात उत्तर–पूर्वी राज्यों, खासकर मिजोरम, मेघालय एवं नागालैण्ड में है। जहां तक सिख धर्म के मानने वालों की संख्या का सवाल है, इनकी तीन चौथाई संख्या केवल पंजाब राज्य में संकेन्द्रित है। इसके अलावा सिखों की संख्या हरियाणा तथा राजस्थान के सीमावर्ती जिलों में भी है। उत्तराखण्ड के तराई क्षेत्रों तथा राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में भी इनकी संख्या काफी है।

जहां तक बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म के अनुयाइयों की स्थिति का सवाल है, महाराष्ट्र राज्य ही ऐसा क्षेत्र है जहां दोनों धर्मों को मानने वालों की संख्या बहुत है। इसके अतिरिक्त परम्परागत रूप से जाना माना निवास जम्मू–कश्मीर का लद्दाख, हिमाचल प्रदेश में धर्मशाला (मैक्लि–योडगंज) एवं समीपवर्ती जिले सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश तथा त्रिपुरा राज्यों में है। इसी प्रकार महाराष्ट्र के अलावा जैन धर्म के अनुयाइयों की काफी संख्या राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश तथा छत्तीसगढ़ राज्यों में भी है। पारसी लोग वैसे भी बहुत ही कम संख्या में है जो महाराष्ट्र में मुम्बई तथा उसके आस–पास में ही पाये जाते हैं।

सारिणी 27.4 जनगणना 2001 में धर्मानुसार जनसंख्या

धार्मिक समूह	कुल जनसंख्या में प्रतिशत
हिन्दू	80.5
मुस्लिम	13.6
ईसाई	2.33
सिख	0.86
बौद्ध	0.76
जैन	0.40
अन्य	0.53

- जिन धर्मों को अधिकांश भारतीय मानते हैं, उनकी संख्या सात है। हिन्दुओं के सबसे बड़े समूह के बाद मुसलमान, सिख एवं इसाईयों के समुदाय हैं। विभिन्न धर्मों का संकेन्द्रण भारत के अलग–अलग भागों में है।

पाठगत प्रश्न 27.4

1. अधिकांश पारसी लोग भारत के किस भाग में रहते हैं?

   _____

2. भारत के अधिकतर ईसाई किन राज्यों में रहते हैं?

   _____

3. उस राज्य का नाम बताइये जहां पर मुसलमानों की जनसंख्या का सबसे अधिक संकेन्द्रण है।

   _____

4. अधिकांश भारतीय बौद्ध भारत के किस राज्य में निवास करते हैं?

   _____

27.6 अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों का संघटन एवं वितरण

भारत का संविधान बहुत सी जातियों एवं जनजातियों के समूह को मान्यता प्रदान करता है। इन्हें क्रमशः अनुसूचित जातियां तथा अनुसूचित जनजातियां के रूप में जाना जाता है। ये दोनों भारत की जनसंख्या के प्रमुख घटक हैं। भारत की जनगणना

2001 के अनुसार अनुसूचित जातियां तथा अनुसूचित जनजातियां भारत की कुल जनसंख्या के क्रमश 16 प्रतिशत तथा 8.2 प्रतिशत हैं। पूरे देश में इनका वितरण बहुत ही असमान एवं अनियमित है।

(क) अनुसूचित जातियां

संख्यात्मक रूप से इनका सबसे अधिक संकेन्द्रण उत्तर प्रदेश में है। इसके पश्चात् पश्चिम बंगाल एवं बिहार राज्य आते हैं। मिजोरम में अनुसूचित जाति के केवल 272 व्यक्ति हैं, जो प्रतिशत के हिसाब से नगण्य ही है। केन्द्रशासित प्रदेश लक्षद्वीप, अण्डमान–निकोबार द्वीपसमूहों में तथा नागालैण्ड राज्य में अनुसूचित जातियां है ही नहीं। कुल जनसंख्या में इनके प्रतिशत के आधार पर ये सबसे अधिक पंजाब में हैं जहाँ ये 28.85 प्रतिशत है। हिमाचल प्रदेश में इनका प्रतिशत 24.7 तथा पश्चिम बंगाल में 23.3 प्रतिशत है। अनुसूचित जातियां अधिकतर भूमिहीन खेतिहर मजदूर हैं। कुछ लोगों के पास बहुत कम कृषि भूमि है। ये छोटी–मोटी वस्तुओं के उत्पादक अथवा कारीगर हैं। कृषिगत कार्यकलापों से सम्बंध होने के कारण इनका सबसे अधिक संकेन्द्रण देश के जलोढ़ तथा तटीय मैदानों में पाया जाता है। यही कारण है कि इनका संकेन्द्रण पंजाब, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल एवं बिहार राज्यों में है। दूसरी तरफ मध्य तथा उत्तर–पूर्व भारत के पहाड़ी तथा वनीय इलाकों, जिनमें जनजातियों की संख्या बहुत है, में अनुसूचित जातियां बहुत कम संख्या में पाए जाते हैं।

जिला स्तरीय आंकड़ों के विश्लेषण करने पर निम्नलिखित तीन स्पष्ट क्षेत्र दृष्टिगत होते हैं–

(i) अधिक संकेन्द्रण के क्षेत्र–अनुसूचित जातियों के संकेन्द्रण के दो प्रमुख क्षेत्र हैं। ये सिंधु–गंगा मैदान तथा पूर्वी तटीय मैदान है। इन दानों मैदानी क्षेत्रों में उपजाऊ मिट्टी, पर्याप्त जल आपूर्ति तथा बहुत सी फसलों के उत्पादन के लिए उपयुक्त जलवायु है। इन सुविधाओं के कारण सघन कृषि का विकास हुआ।

(ii) मध्यम संकेन्द्रण के क्षेत्र–अधिक संकेन्द्रण के क्षेत्र के निकटवर्ती जिलों में अनुसूचित जातियों का संकेन्द्रण मध्यम है।

(iii) निम्न संकेन्द्रण के क्षेत्र–यह क्षेत्र मध्य विन्ध्य, छोटानागपुर का भाग, राजस्थान के पश्चिमी शुष्क क्षेत्र, उत्तर पूर्वी भारत के पहाड़ी क्षेत्र तथा कर्नाटक एवं महाराष्ट्र के समुद्री तटवर्ती भागों में हैं।

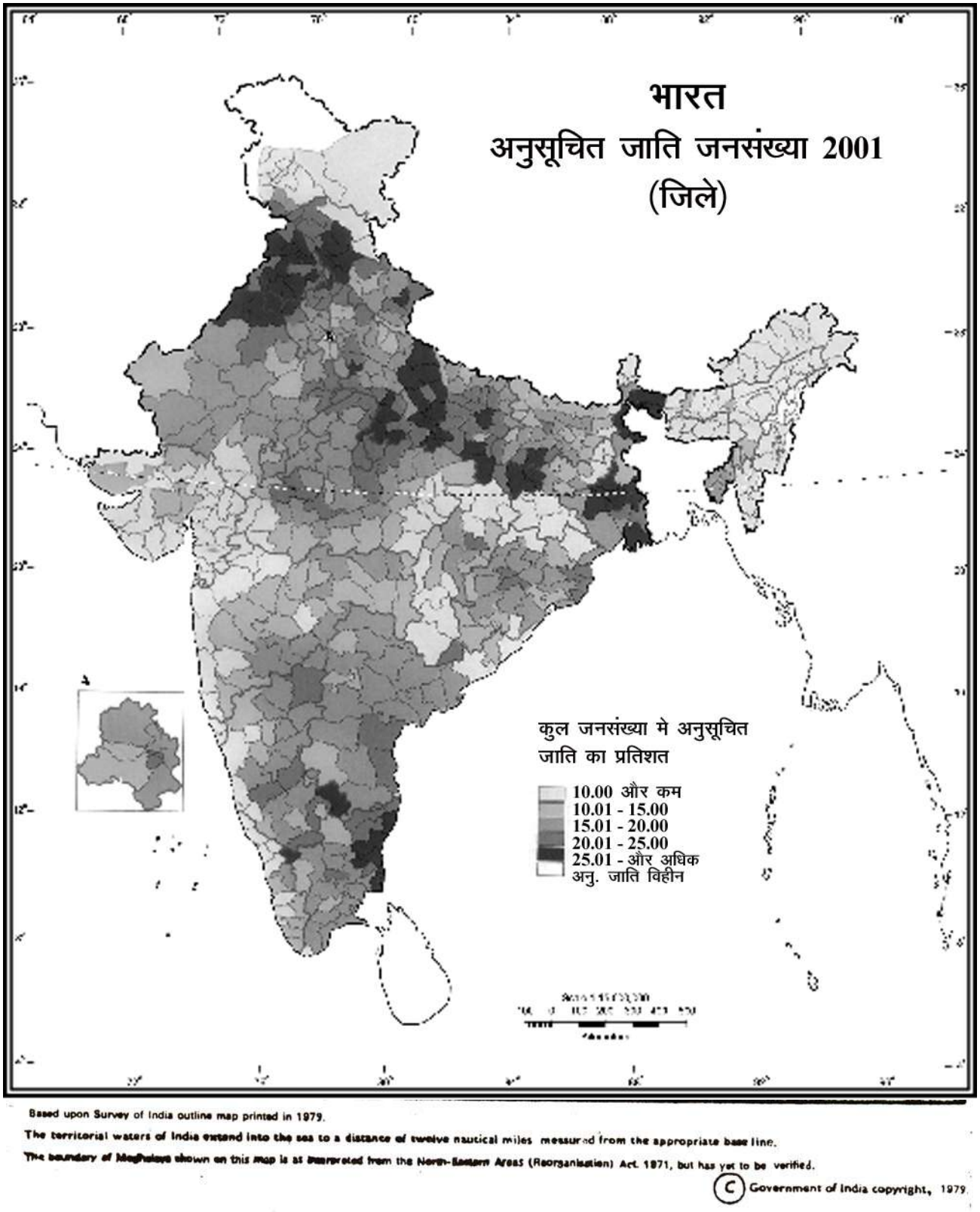

चित्र 27.4 अनुसूचित जाति जनसंख्या का वितरण 2001

(ख) अनुसूचित जनजातियां

अनुसूचित जनजातियों के कुछ विशिष्ट लक्षण होते हैं जो उन्हें अन्य लोगों से भिन्न पहचान बनाने में सहायक होते हैं। साधारणतया ये एकान्तप्रिय जीवन बिताना पसन्द करते हैं। इसलिये ये प्रायः वनाच्छादित तथा पर्वतीय क्षेत्रों में निवास करते हैं। ये जनजातियां अत्यन्त पुरानी धार्मिक धारणाओं का पालन करती हैं। इन जातियों के अधिकतर समुदाय अशिक्षित हैं। इन जनजातियों की कोई लिपिबद्ध भाषा नहीं है। इन जनजातियों के अधिकांश लोग अलौकिक शक्तियों एवं धारणाओं में अटूट आस्था रखते हैं।

अनुसूचित जनजातियों का वितरण एवं विस्तार देश में एक समान नहीं है। इनकी आबादी कहीं घनी है तो कहीं विरल। देश में तीन ऐसे क्षेत्र हैं जहां इनकी आबादी अपेक्षाकृत संकेन्द्रित है। ये क्षेत्र—(i) मध्य भारत की पेटी जिसमें राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, छत्तीगसढ़, झारखण्ड, उड़ीसा तथा पश्चिम बंगाल के भाग, (ii) उत्तर–पूर्वी क्षेत्र जिसमें असम, मेघालय,मणिपुर, मिजोरम, नागालैण्ड, त्रिपुरा एवं अरुणाचल प्रदेश के पर्वतीय भाग तथा (iii) दक्षिण भारत के क्षेत्र जिसके अन्तर्गत तमिलनाडु तथा आन्ध्र प्रदेश के पर्वतीय इलाके और अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह सम्मिलित है।

उपरोक्त चर्चाओं तथा भारत के मानचित्र पर दर्शाए गए वितरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत की अनुसूचित जनजातियां खास क्षेत्रों में ही पाई जाती हैं। मानचित्र में दर्शाए वितरण से स्पष्ट है कि ये जनजातियाँ वनाच्छादित पर्वतीय क्षेत्रों में हैं, जहां कृषि उत्पादकता बहुत ही कम होती है, साथ ही इन क्षेत्रों में प्रायः प्राकृतिक विपदाएं एवं विषमताएं घनीभूत होती हैं। इन क्षेत्रों में आर्थिक–विकास की सीमित संभावनाओं के रहते आर्थिक स्तर भी नीचा ही है। इन क्षेत्रों में यातायात एवं संचार व्यवस्था क्षीण एवं समस्यायुक्त है। इन क्षेत्रों में उपलब्ध प्राकृतिक सम्पदाओं का उचित दोहन भी नहीं हो पाता है।

प्रायः ऐसी धारणा प्रचलित है कि उन क्षेत्रों का आर्थिक विकास इसलिए नहीं हो पाता क्योंकि वहां जनजातियां निवास करती हैं। वस्तुतः यह एक गलत धारणा है। इन क्षेत्रों में आर्थिक विकास के कम होने का कारण सम्भाव्य साधनों का सीमित होना, परिवहन के साधनों का अभाव तथा प्राकृतिक परिवेष एवं पर्यावरण इतने दुरुह है कि किसी भी प्रकार के आर्थिक विकास दुष्कर एवं दुविधायुक्त होते हैं। इसके बावजूद भी अनुसूचित जनजातियां ऐसे प्रतिकूल पर्यावरण तथा प्राकृतिक प्रकोपयुक्त क्षेत्रों को अपना निवास क्षेत्र बनाये हुए हैं।

वास्तव में वनवासी जनजातियां ऐसी बसावट स्वेच्छा से नहीं चुनते हैं। इन्हें आधुनिक सभ्यता के प्रसार–विस्तार ने प्रतिकूल क्षेत्रों में जाने को विवश किया है। देश के प्रारंभिक अधिवासी निरंतर आक्रमणकारियों अथवा प्रवासियों के दबाव में नवागन्तुक आक्रान्ताओं से युद्ध में हारकर अथवा डरकर एकान्त एवं बीहड़ स्थानों

में चले गए। वर्तमान में पाई जाने वाली अनूसूचित जनजातियां वर्षों से चली आ रही परंपराओं तथा पीढ़ी–दर–पीढ़ी अपने पूर्वजों के द्वारा बनाई व्यवस्था एवं व्यवहार का निर्वाह करते आ रहे हैं।

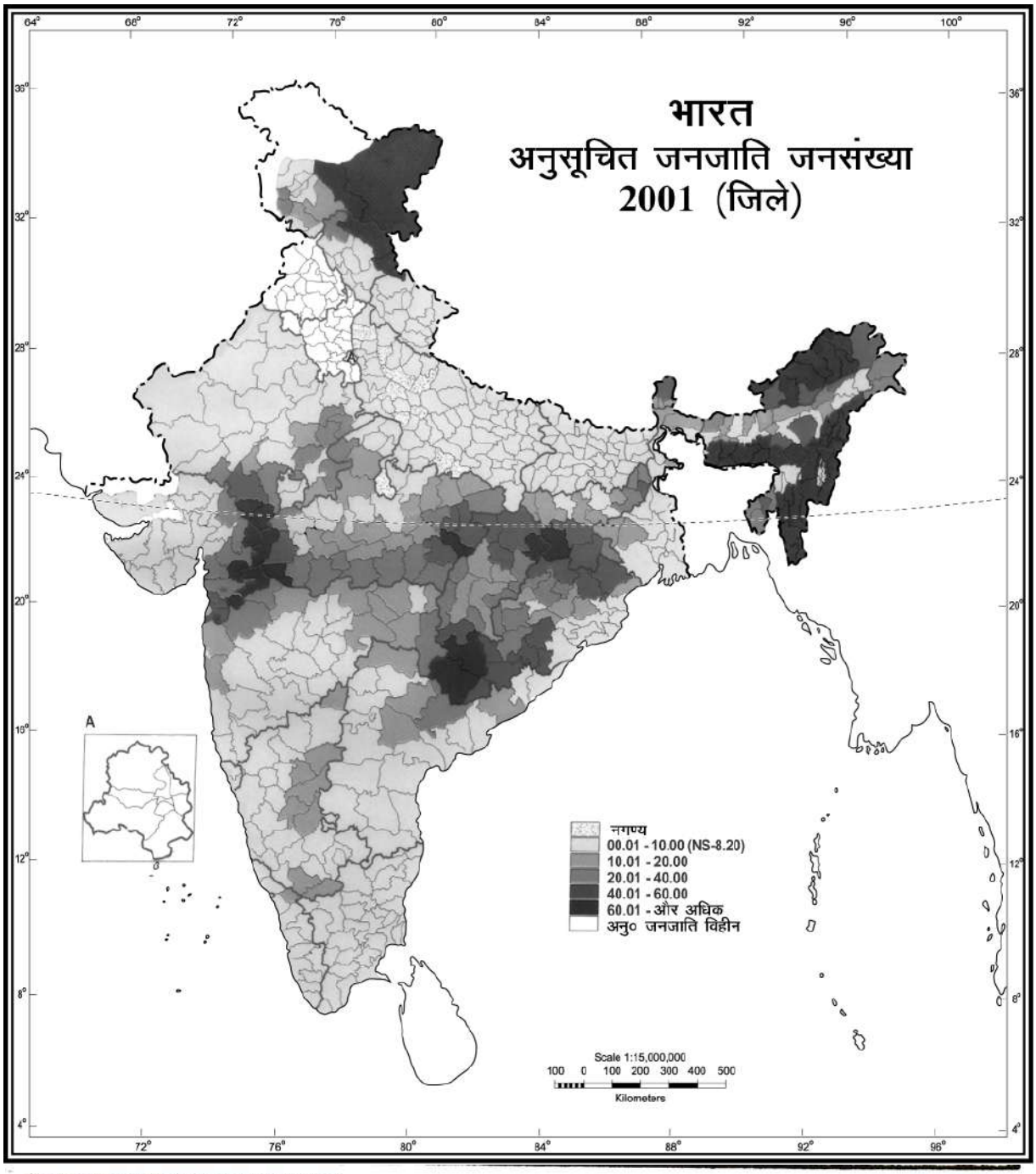

Based upon Survey of India outline map printed in 1979.
The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.
The boundary of Meghalaya shown on this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act. 1971, but has yet to be verified.
© Government of India copyright, 1979

चित्र 27.5 अनुसूचित जनजाति जनसंख्या का वितरण 2001

जिला स्तरीय प्रतिरूप

अनुसूचित जातियों के समान, जिला स्तर पर इनके वितरण का प्रारूप तीन स्तरों में पाया जाता है। ये हैं (i) जनजातियों का उच्च–स्तरीय संकेन्द्रण, (ii) मध्यम संकेन्द्रण तथा (iii) कम संकेन्द्रण का क्षेत्र है।

(i) उच्च-स्तरीय संकेन्द्रण के क्षेत्र

देश के कुल 40 जिले ऐसे हैं जिनमें अनुसूचित जनजातियां प्रबल एवं प्रधान रूप से पायी जाती हैं। इन 40 जिलों में से प्रत्येक जिले में जनजातीय जनसंख्या का अनुपात कुल जनसंख्या की तुलना में 75 प्रतिशत से 98 प्रतिशत तक पाया जाता है। उनमें से 8 जिले मिजोरम में, नागालैण्ड एवं मेघालय राज्यों में प्रत्येक में 7 जिले, 6 जिले अरुणाचल प्रदेश में तथा 5 जिले मणिपुर में है। शेष 7 जिले चार राज्यों–जम्मू व कश्मीर, गुजरात, मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ राज्यों से हैं। मिजोरम राज्य के सिरछिप जिले में देश की सबसे अधिक अनुसूचित जनजातियों का संकेन्द्रण 98.09 प्रतिशत पाया जाता है, इसके बाद मेघालय राज्य के पश्चिमी खासी पर्वतीय जिला में 98.02 प्रतिशत मिलता है।

(ii) मध्यम-स्तरीय संकेन्द्रण के क्षेत्र–इन क्षेत्रों में जनजातियों की संख्या 25 प्रतिशत से 75 प्रतिशत के बीच पायी जाती है। यह क्षेत्र देश के 17 राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों में है। इस वर्ग में आने वाले 85 जिले हैं। स्थानिक विस्तार के अनुसार बड़ी आबादी वाले क्षेत्र मध्य प्रदेश (14 जिले), उड़ीसा (14 जिले), छत्तीसगढ़ (10 जिले), झारखण्ड (8 जिले), अरुणाचल प्रदेश (7 जिले) तथा गुजरात (7 जिले) हैं।

(iii) निम्न-स्तरीय संकेन्द्रण के क्षेत्र–इस क्षेत्र में जनजातियों का प्रतिशत 5 से 25 के बीच होता है। इतने प्रतिशत आबादी की सीमा वाले 140 जिले हैं। ये देश के 18 राज्यों/संघीय प्रदेशों में है। स्थानिक रूप से ऐसी संरचना वाले 18 जिले मध्य प्रदेश में है। इनकी संख्या महाराष्ट्र में 17 जिले, राजस्थान में 17 जिले, कर्नाटक में 14 जिले, असम में 13 जिले, आन्ध्र प्रदेश में 10 जिले, पश्चिम बंगाल में 10 जिले, उड़ीसा में 10 जिले, झारखण्ड में 8 जिले, जम्मू व कश्मीर में 9 जिले तथा छत्तीसगढ़ में 5 जिले हैं। शेष बिखरे हुए हैं जिनकी संख्या गुजरात में 3 जिले, सिक्किम में 3 जिले, उत्तराखण्ड में 2 जिले तथा मणिपुर, केरल, दमन व दिव एवं बिहार में 1–1 जिले हैं।

इसके अलावा जनजातियों के संकेन्द्रण (0.5 से 5.0 प्रतिशत जनसंख्या) वाले 143 जिले भी हैं जो देश के 18 राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों के अन्तर्गत स्थित हैं।

27.7 साक्षरता

आमतौर पर साक्षरता का अर्थ किसी व्यक्ति की पढ़ने, लिखने तथा समझने एवं सामान्य गणना करने की क्षमता से लिया जाता है। इतनी उदार तथा सरल परिभाषा

टिप्पणी

के बावजूद देश में साक्षरता की दर ऊँची नहीं है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में साक्षरता की दर 65.38 प्रतिशत ही है। इस प्रतिशत में 7 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की संख्या शामिल नहीं है।

देश के एक भाग से लेकर दूसरे भाग तक साक्षरता में भिन्नताएं दृष्टिगत होती हैं। एक तरफ केरल राज्य में साक्षरता की दर 90.92 प्रतिशत तक पहुंच गई है तो दूसरी तरफ बिहार राज्य में साक्षरता की दर 47.53 प्रतिशत ही है। केन्द्रशासित प्रदेशों में सबसे ऊंची साक्षरता दर लक्षद्वीप में 87.52 प्रतिशत तक पहुंच चुकी है तो दादर और नगर हवेली में साक्षरता दर 60.03 प्रतिशत ही है।

साक्षरता की दर का अन्तर स्त्री–पुरुषों के बीच में भी बहुत अधिक है। पुरुषों में औसत साक्षरता का प्रतिशत जहां 75.85 तक है वहीं स्त्रियों में यह प्रतिशत 54.16 ही है। परन्तु केरल देश का ऐसा राज्य है जहां साक्षरता की दर पुरुषों (94.20 प्रतिशत) तथा स्त्रियों दोनों में ही ऊँची (87.86 प्रतिशत) पाई गई है। वहीं बिहार में पुरुषों की साक्षरता दर 60.32 प्रतिशत है तथा स्त्रियों की साक्षरता दर 33.57 प्रतिशत है। यह दर पुरुषों एवं स्त्रियों दोनों में ही कम है। इसी प्रकार साक्षरता दर शहरी इलाकों में जहां 73.01 प्रतिशत है वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता की दर मात्र 44.54 प्रतिशत ही है।

यद्यपि भारत में साक्षरता की दर नीचे है, परन्तु प्रत्येक जनगणना वर्षों में इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही है। सन् 1911 में साक्षरता दर 6 प्रतिशत से भी कम थी किन्तु यह धीरे–धीरे बढ़कर 1951 में 16.7 प्रतिशत हो गई। वास्तव में साक्षरता की दर में वृद्धि 1951 की जनगणना के बाद के दशकों में हुई। सन् 1961 में यह 24 प्रतिशत हो गई तथा बाद में बढ़कर 2001 में 65.38 प्रतिशत तक हो गई। इस प्रगति में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य स्त्रियों की साक्षरता की दर का तेजी से वृद्धि रही। देश की कुल स्त्रियों की संख्या का मात्र 1.1 प्रतिशत ही सन् 1911 में साक्षर था जो सन् 2001 में बढ़कर 54.66 प्रतिशत हो गया। बहुत हद तक इस वृद्धि का श्रेय भारत में केन्द्र एवं राज्य सरकारों की शिक्षा नीतियों को खासकर प्राथमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के प्रयासों को जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों के दूरदराज के स्थानों में स्कूलों की सुविधा उपलब्ध कराने से साक्षरता दर तो बढ़ी ही है, साथ में बालिकाओं (स्त्रियों में) की साक्षरता दर में भी अभिवृद्धि हुई।

यद्यपि साक्षरता की दर में प्रतिशत की दृष्टि से प्रत्येक गणना के दशक में वृद्धि दर्ज होती रही है, पर इसके साथ–साथ निरक्षर व्यक्तियों की कुल संख्या में भी वृद्धि होती रही है। सन् 1991 से सन् 2001 के बीच के दशक में पहली बार अशिक्षितों की संख्या में पिछले जनगणना दशकों के मुकाबले में प्रभावी रूप से कमी आई है। इसके बाद भी अशिक्षितों की संख्या आज भी काफी है। इस समस्या से निजात पाने के लिए सरकार ने कई प्रयासों को आरंभ किया है, जैसे राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, सर्व शिक्षा अभियान इत्यादि।

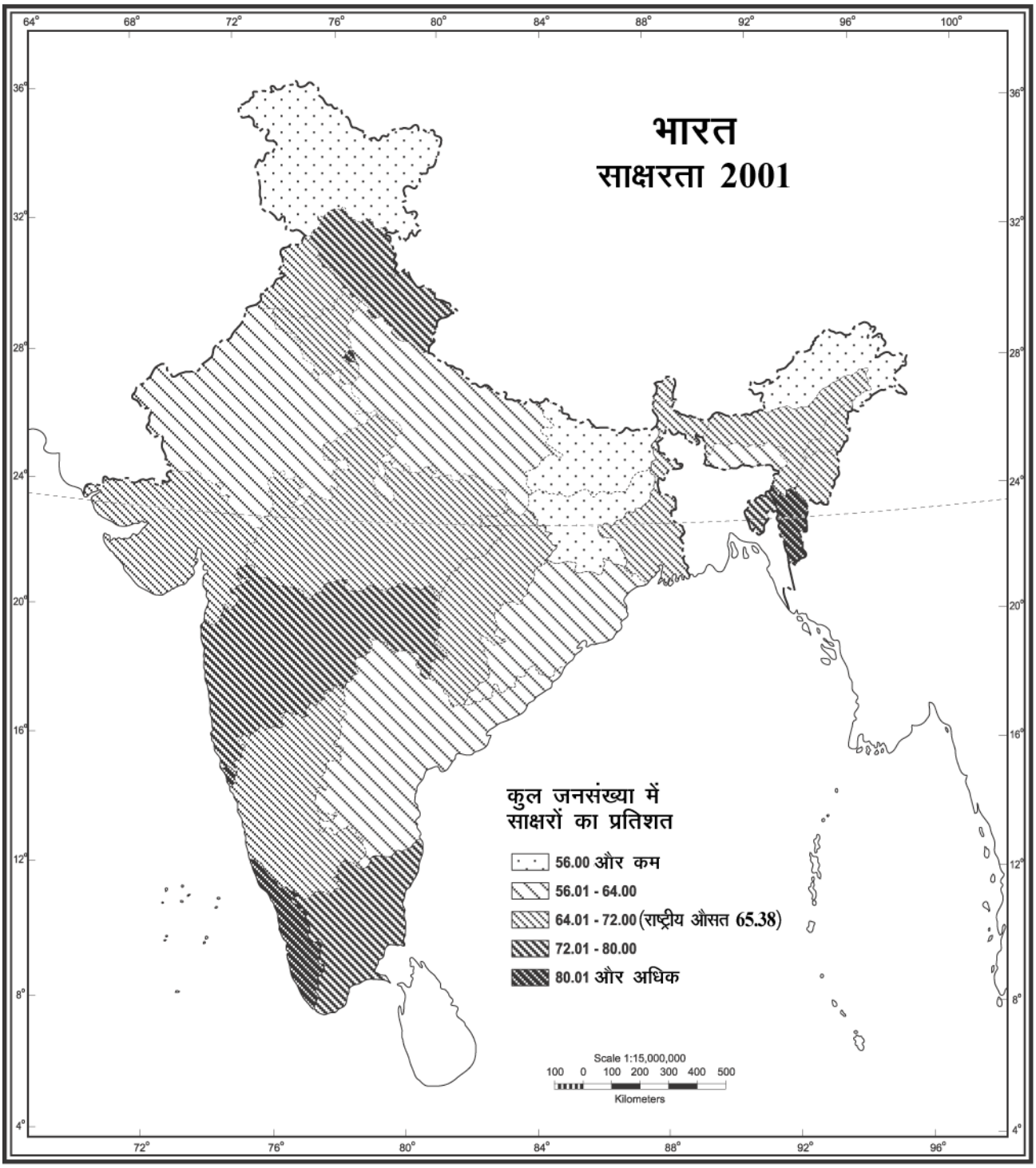

Based upon Survey of India Outline Map printed in 1990
The territorial waters of India extened into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the aporopriate base line.
The boundary of Meghalaya shown of this map is as interpreted from the North-Eastern Areas (Reorganisation) Act, 1971, but has yet to be verified
Responsibility for correctness of internal details shown on the map rests with the publisher.

© Government of India copyright, 1996

चित्र 27.6 भारतः साक्षरता का प्रादेशिक वितरण 2001

टिप्पणी

साक्षरता का जिला स्तरीय प्रतिरूप

जिला स्तरीय आंकड़ों का विश्लेषण यह दर्शाता है, कि साक्षरता दर में भिन्नता 96.64 प्रतिशत आइजाल जिला (मिजोरम) से लेकर 30.01 प्रतिशत दन्तेवाड़ा जिला (छत्तीसगढ़) तक पाई गई है। देश के 591 जिलों में साक्षरता दर की दृष्टि से 59 जिलों में साक्षरता दर 80 प्रतिशत से ज्यादा है। इनमें से अधिकांश जिले भारत के दक्षिणी राज्यों में हैं। इसके अंतर्गत केरल के कुल 14 जिलों के साथ तमिलनाडु के 4 जिले, पाण्डिचेरी के 3 जिले, कर्नाटक के 2 जिले तथा लक्षद्वीप एवं अण्डमान तथा निकोबार के एक–एक जिले आते हैं। दक्षिण भारत के अलावा उत्तर–पूर्वी भारतीय क्षेत्र में 10 जिले स्थित हैं। इनमें से 7 जिले मिजोरम, 2 जिले नागालैण्ड तथा एक जिला मणिपुर में है। पश्चिमी भारत में 11 जिले है जिनमें से महाराष्ट्र के 9 जिले आते हैं। उत्तरी भारत में 11 जिले आते हैं जिनमें से 6 जिले 'राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र' दिल्ली के अन्तर्गत स्थित हैं। बाकी 5 जिलों में से 3 जिले हिमाचल प्रदेश एवं एक–एक जिला चण्डीगढ़ एवं उत्तराखंड राज्यों में स्थित है। पूर्वी भारत में एक जिला पश्चिम बंगाल तथा एक जिला उड़ीसा राज्य में है। मध्य भारत क्षेत्र में इस श्रेणी का एक भी जिला नहीं है।

इसके विपरीत देश में 26 जिले ऐसे हैं जिनमें साक्षरता की दर 40 प्रतिशत से भी कम है। ये जिले भारत के 7 राज्यों में बिखरे हुए हैं। बिहार राज्य में 11 जिले, उत्तर प्रदेश में 5 जिले, उड़ीसा में 4 जिले, झारखण्ड में 3 जिले तथा छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, जम्मू–कश्मीर राज्यों में एक–एक जिला है।

- ऐसा व्यक्ति जो किसी भी एक भाषा में सही समझ के साथ लिख–पढ़ सकता है, साक्षर कहा जाता है।
- भारत की जनगणना 2001 के अनुसार साक्षरता की दर 65.38 प्रतिशत है।
- भारत में सर्वोच्च साक्षरता की दर केरल राज्य (90.92 प्रतिशत) में है तथा सबसे कम बिहार राज्य (47.53 प्रतिशत) में है।
- साक्षरता की दर स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक है। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों में अधिक है।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से लगातार तीव्र गति से साक्षरता की दर में वृद्धि हो रही है।

पाठगत प्रश्न 27.5

1. कोष्ठक में दिए गए शब्दों में से सही शब्द चुनकर निम्न स्थानों को भरिए–

   (क) भारत के बहुत अधिक संकेन्द्रण वाले जनजातीय क्षेत्र _____ है। (पंजाब/हरियाणा/झारखण्ड)

(ख) भारत की जनगणना 2001 के अनुसार अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या का भारत की कुल जनसंख्या की तुलना में करीब _____ प्रतिशत है। (16, 15, 8, 7)

(ग) जिस राज्य में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या उस राज्य की कुल जनसंख्या का बहुत बड़ा एवं महत्वपूर्ण भाग है, वह राज्य है _____। (उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब)

(घ) भारत की जनगणना 2001 के अनुसार देश की औसत साक्षरता दर _____ प्रतिशत है। (65, 38, 64.44, 68.01)

2. किन्हीं दो कार्यक्रमों के नाम लिखिये, जिन्हें भारत सरकार ने साक्षरता दर को बढ़ाने के लिए शुरू किया।

(क) _____ (ख) _____

3. किस राज्य में स्त्री एवं पुरुष दोनों की साक्षरता सर्वोच्च पाई जाती है?

_____

आपने क्या सीखा

किसी देश का विकास उसके मानव संसाधनों की गुणवत्ता एवं संख्या पर निर्भर करता है। मानव संसाधनों की गुणवत्ता उसकी जनसंख्या की संगठनात्मक संरचना पर निर्भर करती है। ये संरचनाएं ग्रामीण–शहरी, लिंग, आयु, भाषाई, धार्मिक, अनुसूचित जातियां एवं जनजातियां, साक्षरता–निरक्षरता है।

प्रचलित लोकोक्ति के अनुसार भारत को गांवों का देश माना जाता है। आज भी देश की करीब 72 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गांवों में ही बसती है। शहरीकरण की रफ्तार देश में तेजी से बढ़ रही है। नगरीय जनसंख्या की वृद्धि दर पूरे देश की जनसंख्या की औसत वृद्धि दर से अधिक है। इसका प्रमुख कारण ग्राम वासियों का अधिक संख्या में शहरी प्रवास है। देश में कुल 35 महानगर हैं। प्रत्येक की जनसंख्या दस लाख से अधिक है।

देश में लिंग अनुपात प्रतिकूल है। सबसे अधिक महिलाओं की संख्या प्रति हजार पुरुषों पर केरल राज्य (1058) दर्ज की गई। जबकि सबसे कम संख्या (861 स्त्री प्रति हजार पुरुष पर) हरियाणा राज्य में दर्ज की गई। यदि संघीय प्रदेशों को इस विश्लेषण में शामिल करें तो सबसे कम लिंग अनुपात दमन और दिव (709) में हैं। लिंग अनुपात प्रत्येक जनगणना वर्षों में घटता आ रहा है यद्यपि कुछ एक जनगणना वर्षों में जैसे 1951, 1981 एवं 2001 में आंशिक वृद्धि दर्ज हुई है। आप अपने इलाके

टिप्पणी

में भी इस लिंग अनुपात की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिये आपको एक छोटा सा परियोजना कार्य अपनाना होगा।

भारत में साक्षरता की दर कोई विशेष ऊंची नहीं है। यह करीब 65.38 प्रतिशत है। साक्षरता की सबसे अधिक दर (90.92 प्रतिशत) केरल में है जबकि इसके विपरीत बिहार में सबसे कम (47.53 प्रतिशत) दर्ज है।

भारत देश सामाजिक विविधताओं का विशाल क्षेत्र है। यह विभिन्न जाति–समूह, भाषाई एवं धर्मावलम्बियों का विशाल निवास स्थान है। आदिम जनजाति के लोग भारत के मूल नस्ल के लोगों के सबसे नजदीकी संबंधियों में आते हैं। अनुसूचित जातियां विभिन्न नस्ल समूहों के पारस्परिक मिलन के परिणाम स्वरूप हुई। 2001 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों का अनुपात क्रमशः 16 प्रतिशत तथा 8.20 प्रतिशत है। अनुसूचित जातियों का संकेन्द्रण भारत के उत्तरी मैदानी इलाकों में उनके व्यावसायिक कुलशलता के अनुसार मिलता है। अनुसूचित जनजातियां सामान्यतया निर्जन, वनाच्छादित तथा पहाड़ी बीहड़ पट्टियों में निवास करती हैं। ये लोग औद्योगिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में हैं। ये प्राकृतिक एवं पराशक्तियों में अविचल आस्था रखते हैं।

भारत देश भाषा एवं धर्म की दृष्टि से अद्भुत एवं अद्वितीय है। यहां विश्व के सभी धर्मों को मानने वाले लोगों का सौहार्द्रपूर्ण जमघट है। इस देश में 18 प्रमुख भाषाएं तथा सैकड़ों बोलियां बोलने वाले लोग निवास करते हैं।

पाठान्त प्रश्न

1. भारत की जनसंख्या की निम्नलिखित विशेषताओं पर संक्षेप में चर्चा कीजिये।

   (क) आयु संरचना, (ख) ग्रामीण नगरीय अनुपात, (ग) लैंगिक अनुपात।

2. भारत में साक्षरता का विवरण दीजिए।

3. लिंग अनुपात के घटने के लिए कौन से कारक उत्तरदायी हैं? संक्षेप में चर्चा कीजिये?

4. भारत में जनजातीय जनसंख्या के प्रादेशिक वितरण पर चर्चा कीजिये।

5. अधिकतर भारतीय भाषाएं किस भाषाई–परिवार से संबंधित हैं? भारत में विभिन्न भाषाई परिवारों के वितरण का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

27.1

(क) नीचे, (ख) प्राथमिक; माध्यमिक एवं तृतीयक, (ग) बढ़ रही है (घ) 35

27.2

(क) केरल, (ख) हरियाणा, (ग) 933, (घ) इसका संबंध प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या से है।

27.3

(क) सन्थाली (ख) आर्य (ग) मध्य भारत के आदिवासी जनजातीय क्षेत्र

27.4

1. मुम्बई और उसके आसपास के क्षेत्रों में।
2. तमिलनाडु, केरल, आन्ध्र प्रदेश एवं उत्तर–पूर्व क्षेत्र
3. उत्तर प्रदेश
4. महाराष्ट्र एवं अरुणाचल प्रदेश

27.5

1. (क) झारखण्ड (ख) 16 प्रतिशत (ग) पंजाब (घ) 65.38
2. राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, सर्वशिक्षा अभियान
3. केरल

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. आयु संरचना की स्थानीय एवं सामयिक संरचना, जनसंख्या का ग्रामीण एवं नगरीय अनुपात तथा लिंग अनुपात, संक्षिप्त वर्णन लिखिये। (अधिक जानकारी के लिए अनुच्छेद 27.3. 27.1 एवं 27.2 देखिए)
2. अनुच्छेद 27.7 देखिए।
3. लिंग अनुपात का प्रतिकूल होना या घटना आधारित है स्त्रियों में प्रजनन के समय अकाल मृत्यु, बालिका शिशु मृत्यु दर की अधिकता, धार्मिक–सामाजिक मान्यताएं जिसके तहत पुरुषों, पुरुष–बालकों को प्राथमिकता का दर्जा दिया जाना इत्यादि।

टिप्पणी

4. अनुच्छेद 27.6 (ख) देखिए।

5. अनुच्छेद 27.4 देखिए।

चिंतन के बिन्दु

किशोरावस्था (उम्र 10-19 वर्ष)

एडोलसेन्स अंग्रेजी शब्द जिसका अर्थ 'किशोरावस्था' है की उत्पत्ति लैटिन भाषा से हुई है, जिसका आशय ''बढ़ती परिपक्वता पाना'' है। इस सन्दर्भ में किशोरावस्था एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा समाज में सक्रिय भागीदारी के लिए आवश्यक व्यवहार या प्रवृति को प्राप्त किया जाता है। इसका उम्र से उतना अधिक संबंध नहीं है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने किशोरावस्था की आयु सीमा 10 वर्ष से 19 वर्ष के बीच तय की है। इसकी विशेषता उनमें होने वाले शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक परिवर्तन हैं। भारत की जनगणना 2001 के अनुसार 10-19 वर्षों के बीच किशोरों की संख्या देश की कुल जनसंख्या का 21.8 प्रतिशत है।

28

मानव विकास

जब कभी भी हम विकास के बारे में सोचते हैं तो हमारी सोच के दायरे में सांसारिक सुख–साधन एवं उसके लिए आर्थिक विकास जैसे पक्ष ही आते हैं। सांसारिक सुख–साधनों में रहने के लिए सुन्दर घर, जमीन–जायदाद, मोटर–कार, हीरे–जवाहरात, सोने–चाँदी के आभूषण इत्यादि आते हैं। इन समस्त भौतिक सम्पत्तियों को जब कभी भी एवं जहाँ कहीं भी जरूरत पड़ने पर रूपयों के मूल्यांकन पर बदला जा सकता है। पूरी दुनिया आज दो खेमों में बँटी हुई है– ऐसे देशों का समुदाय जो विकास युक्त या पूर्ण विकसित है तथा दूसरा बहुत बड़ा समूह ऐसे देशों का है जो विकासशील हैं यानि विकास की सीढ़ियाँ चढ़ रहे हैं, विकसित हो रहे हैं। इस प्रकार के विभाजन का आधार उन खेमो में हो रहे आर्थिक विकास के स्तरों से है। इस प्रकार की परम्परागत सोच आज भी व्याप्त हैं। परन्तु अब एक नई सोच जो आर्थिक विकास से हटकर, विकास को मानवीय उन्नति पर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता प्रस्तुत करती है। सन् 1990 में दो विश्व विख्यात अर्थशास्त्रियों प्रोफेसर मेहबूब अल हक एवं प्रोफेसर अमर्त्य सेन ने मानव विकास की अवधारणा को प्रस्तुत किया और तब से (यानि 1990 से) संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू.एन.डी.पी.) प्रति वर्ष मानव विकास सूचकांक (एच.डी.आई.) का परिकलन (गणना) करके एक रिपोर्ट प्रकाशित करता आ रहा है। इस रिपोर्ट को मानव–विकास रिपोर्ट (एच.डी.आर.) कहते हैं। यह रिपोर्ट प्रति वर्ष प्रकाशित होती है जिसके अन्तर्गत विश्व के प्रायः सभी देशों में हो रहे मानव विकास को सुनिश्चित किये गए पैमानो के आधार पर प्रत्येक देश के विकास की प्रगति को तीन श्रेणियों, अधिक या उच्च, मध्यम तथा कम या निम्न में वर्गीकृत किया जाता है।

इस पाठ के अन्तर्गत हम सब समझेंगे कि वे कौन से पैमाने और अवधारणाएं हैं, जिनके आधार पर मानव विकास के सूचकांक तय करने की पद्धति बनती है। इसके साथ हम इसी सन्दर्भ में यह जानने का प्रयास करेंगे कि हमारे देश भारत वर्ष की विश्व के अन्य देशों की तुलना में क्या स्थिति है। इसी प्रयास के साथ–साथ हम यह भी विश्लेषण करेंगे कि भारत के विभिन्न राज्यों में मानव–विकास के सूचकांक के पैमानों के आधार पर क्या स्थितियाँ हैं। अन्त में कुछ ऐसे उपायों को सुझाएंगे जिससे हमारे देश में मानव विकास का और सुधार हो सके।

टिप्पणी

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- मानव विकास शब्द को परिभाषित कर सकेंगे;
- मानव विकास सूचकांक शब्द की व्याख्या कर सकेंगे;
- भारत के सभी राज्यों में मानव विकास सूचकांक के क्षेत्रीय प्रतिरूपों का वर्णन कर सकेंगे;
- मानव विकास के सूचकांक को भारत के सन्दर्भ में और सुधार करने की आवश्यकता को उजागर कर सकेंगे।

28.1 मानव विकास सूचकांक

मानव विकास सूचकांक एक संयुक्त सूचकांक है जिसके द्वारा किसी देश के मानव विकास की औसत उपलब्धियों को मानव विकास के तीन आधारभूत आयामों के आधार पर माप सकते हैं। ये तीन आधारभूत आयाम हैंः (i) दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन, (ii) ज्ञान प्राप्त करना तथा (iii) एक शिष्ट और शालीन जीवन जीना। इन तीनों आयामों को निम्नाँकित तरीकों से मापा जाता है–

1. स्वस्थ एवं दीर्घायु का मापन जन्म के समय जीवन प्रत्याशा से किया जाता है।
2. ज्ञान का मापन प्रौढ़ साक्षरता दर (2/3 की धारिता) और संयुक्त प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक स्तर पर सकल नामांकिन दर के अनुपात (1/3 धारिता) से होता है।
3. शिष्ट और शालीन जीवन जीने का मापन उस देश के सकल घरेलू उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति क्रय शक्ति (अमेरिकी डालरो में) के सन्दर्भ में की जाती है। इसे क्रय शक्ति समरूपता (पी.पी.पी.) कहते हैं।

यहाँ पर हमें भली–भाँति समझ लेना चाहिए कि मानव विकास सूचकांक उपर्युक्त वर्णित सभी आयामों का संम्पूर्ण योग मात्र होता है। यह मानव विकास के सर्वांगीण विकास को चित्रित नहीं करता अपितु परम्परागत विकास मापक 'आय' से हटकर विकास की दशाओं में हुए सकारात्मक वृद्धि को दर्शाने का एक प्रयत्न है। यह प्रदर्शित करता है कि मानव विकास के प्रमुख क्षेत्रों में क्या उपलब्धियाँ हुई हैं। यह सूचकांक एक प्रकार का बैरोमीटर है जो मानव कल्याण के उपागमो में हो रहे परिवर्तनों को मापता है तथा देश के भिन्न–भिन्न राज्यों में हो रहे परिवर्तनो की प्रगति की तुलनात्मक स्थितियों को प्रदर्शित करने में सहायक है। मानव विकास की अवधारणा का आधार स्वतंत्रता तथा मुक्त विकास है। हम विकास का अर्थ स्वतंत्रता के साथ पर्यायवाची रूप में देखते हैं।

प्रायः लोगों में अपने आधारभूत विकल्पों को तय करने की न तो क्षमता होती है और न ही स्वतंत्रता। यह ज्ञान प्राप्त करने की अक्षमता, उनकी आर्थिक गरीबी, सामाजिक भेद–भाव जैसे अनेक कारण हो सकते हैं। अतः मानव विकास का उद्देश्य मानवो में उनकी क्षमता, सामर्थ्य एवं मानवीय योग्यताओं को बनाना तथा बढ़ाना होता है। मानवीय सामर्थ्य का मतलब उन तमाम चीजों को कर सकने की क्षमता को विकसित करना है, जिनके द्वारा वह सार्थक जीवन जी सके तथा समाज में प्रतिभागिता करते हुए अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सकने में स्वतंत्रता का आनंद ले सके। व्यक्तिगत अधिकार तथा स्वतंत्रता मानव विकास में बहुत महत्व रखते हैं, परन्तु ऐसे अधिकार एवं स्वतंत्रता का उपभोग कर सकने की पाबन्दी कुछ लोगों पर लग जाती हैं क्योंकि वे गरीब हैं, बीमार हैं, निरक्षर है, सामाजिक भेदभाव के कारण उपेक्षित हैं, आक्रामक संघर्ष में आतंकित हैं या फिर राजनैतिक पहचान से वंचित है। इन्हीं सब कारणों से संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू.एन.डी.पी.) मानव विकास प्रतिवेदन 1990 के प्रारंभिक रिपोर्ट में, लेखकों ने उपरोक्त सूचकों को आवश्यक विकल्पों के रूप में परिभाषित तथा उल्लेखित किया कि इन विकल्पों की अनुपस्थिति अनेकों अवसरों को अवरूद्ध कर सकती है। अतः लोगों के विकल्पों में वृद्धि करना, उनके जीवन में सुधार एवं सार्थकता को विकसित करना और लोगों में क्षमताओं का निर्माण करने की प्रक्रिया को मानव विकास के रूप में परिभाषित किया जाता है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमें अपने विकास की प्रक्रिया को नए तरीके से सुनियोजित करना होगा ताकि विकास लोगों के चतुर्दिक हो न कि लोग विकास के इर्दगिर्द घूमें।

आर्थिक विकास और मानव विकास में मूलभूत अंतर यह होता है कि जहाँ आर्थिक विकास के सारे प्रयास ''आय'' बढ़ाने में संकेन्द्रित होते हैं वहीं मानव विकास का ध्यान मानव जीवन के सभी पहुलुओं में विकास करने से होता है। ये पहलू आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक या सांस्कृतिक हो सकते हैं। आर्थिक विकास में मानवीय विकास एक आवश्यक घटक जरूर है।

इसके पीछे मूलभूत भावना यह है कि आय का सदुपयोग न केवल आय वृद्धि मात्र है बल्कि इसके प्रयोग से मानव विकास के विकल्पों को निर्धारित करने से है। चूँकि किसी भी देश की वास्तविक परिसम्पति उसके मानव संसाधन हैं, अतः विकास का लक्ष्य मानव जीवन को साधन एवं सुविधा सम्पन्न करना ही होना चाहिए।

मानव विकास रिपोर्ट में मानव विकास के सूचकाँको के अलावा अन्य चार सूचक या संकेतों को चुना गया है, जो निम्नाँकित हैं–

(i) मानव–गरीबी सूचकाँक (एच.पी.आई.–1) विकासशील देशों के लिए,

(ii) मानव–गरीबी सूचकाँक (एच.पी.आई.–2) कुछ चुने हुए डी.ई.सी.डी. देशों के लिए,

(iii) लिंग–आधारित विकास सूचकांक (जी.डी.आई),

(iv) लिंग–सशक्तिकरण उपाय (जी.ई.एम.),

इन चारों दिए गए सूचकाँको में एच.डी.आई, एच.पी.आई–I एवं जी.डी.आई. के आँकलन में तीन प्रमुख आयामों पर विचार किया जाता है– लम्बी आयु एवं स्वस्थ जीवन, ज्ञान/साक्षरता एवं शालीन जीवन स्तर। पर इनमें से कुछ संकेत इन्हीं आयामों के भीतर कुछ–कुछ अलग एवं हट कर हैं। आइये इन सूचकों के बीच की जो समानताएँ एवं असमानताएँ उन्हें नीचे दी गई सारिणी से पहचानें–

सारिणी 28.1 एच.डी.आई., एच.पी.आई I एवं जी.डी.आई. में प्रयुक्त तीनों मुद्दों पर तुलनात्मक विश्लेषण-

क्रमांक	मुद्दे	एच.डी.आई.	एच.पी.आई-I, जी.डी.आई.
1. लम्बी आयु एवं स्वास्थ्य	● जन्म के समय प्रत्याशित आयु का आंकलन	● जन्म के समय 40 वर्ष की आयु न पार कर सकने की संभावना	● जन्म के समय प्रत्याशित आयु का आंकलन
2. ज्ञान	● प्रौढ़–साक्षरता की दर (2/3 अंक निर्धारित) ● प्राथमिक, माध्यमिक एवं तृतीय स्तर का मिलीजुली सकल दाखिला या प्रवेश लेने वालों की संख्या का अनुपात (1/3 अँक निर्धारित)	● प्रौढ़ साक्षरता की दर ● ऐसे लोगों का प्रतिशत जिन्हें शुद्ध जल स्रोत में पहुँच नहीं है–	● प्रौढ़ साक्षरता की दर ● प्राथमिक, माध्यमिक एवं तृतीय स्तरो के मिले जुले सकल अनुपात
3. शालीनता से जीने का जीवन स्तर	● सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) (प्रति व्यक्ति क्रय–शक्ति, अमेरिकी डालर में)	● एक वर्ष आयु के औसत से कम वजन वाले बच्चों का प्रतिशत (पी.पी.पी.)	● अनुमानित अर्जित आय (पीपीपी/ अमेरिकन डालर में)

28.2 मानव विकास ही क्यों

पॉल स्ट्रीटेन, (विकास अर्थशास्त्री) ने विकास के छः कारणों की पहचान की। वे कारण निम्नलिखित हैं–

(क) विकास के प्रयासों का अन्तिम लक्ष्य मानवीय दशाओं में सुधार करना तथा उन्हें अपने आपको विकसित करने के लिए अधिक से अधिक विकल्पों को बढ़ाना है।

(ख) मानव विकास उच्चतम उत्पादकता का एक उत्तम साधन है। एक सुपोषित, स्वस्थ, सुशिक्षित, कुशल व जागरूक श्रमिक शक्ति सर्वाधिक उत्पादक परिसम्पति है। अतः उत्पादकता के आधार पर इस क्षेत्र में किया गया पूँजी निवेश न्याय संगत है।

(ग) इससे जनसंख्या वृद्धि दर में कमी लाने में सहायता मिलती है।

(घ) मानव विकास का भौतिक पर्यावरण से मैत्रीपूर्ण संबंध है क्योंकि जब गरीबी घटती

है तो जंगलों की कटाई, मरुस्थलीकरण और मृदा अपक्षरण एवं अपरदन में कमी आती है।

(ङ) मनुष्य की गरीबी एवं रहन–सहन की दशाओं में सुधार से एक स्वस्थ नागरिक समाज के निर्माण तथा उसमें अधिकतम स्थिरता लाने में सहायता मिलती है।

(च) मानव विकास से सामाजिक उथल–पुथल में कमी तथा राजनैतिक स्थिरता को बढ़ाने में सहायता मिलती है।

अब तक आप मानव विकास की आवश्यकता एवं महत्ता को समझ गए होंगे। अब हम इसी विकास के सन्दर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की स्थिति पर विचार करेंगे तथा भारत में मानव विकास का स्तर कम होने के कारणों को जानने का प्रयत्न करेंगे–

28.3 भारतः मानक विकास सूचकांक की प्रवृत्तियाँ

मानव विकास रिपोर्ट 2005 के अनुसार विश्व के कुल 177 देशों में भारत 127 वें स्थान पर है। सभी 177 देशों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है। ये हैं उच्च, मध्यम एवं निम्न वर्ग की श्रेणियाँ। वे देश जिनके मानव विकास सूचकांक का मूल्य 0.80 एवं उससे अधिक है, उन्हें उच्च वर्ग में गिना जाता है। इसी प्रकार मध्यम वर्ग की श्रेणी वाले देशों मे मानव विकास सूचकांक 0.50 से 0.799 के बीच होता है। वे सारे देश जिनके सूचकांक 0.50 से कम हैं, उन्हें निम्न मानव विकास वाली श्रेणी में गिना जाता है। भारत का स्थान मध्यम विकास श्रेणी में रखे जाने वाले देशों में सबसे नीचे आता है। हमारे पड़ोसी देश जैसे चीन (85वाँ स्थान), श्रीलंका (93वाँ), मालदीव (96वाँ), भारत से (127 वें स्थान) बहुत ऊपर स्थित हैं। भारत से ठीक नीचे स्थान पाने वाले अन्य पड़ोसी देश हैं म्याँमार (129वाँ), भूटान (134वाँ), पाकिस्तान (135वाँ) तथा नेपाल (136वाँ)। भारत से नीचे सूचकांक वाले अधिकांश देश अफ्रीका महाद्वीप के हैं तथा कुछ देश एशिया महाद्वीप के हैं। यदि हम पिछले 30 वर्षों की स्थिति को देखें तो इतना तो कहा जा सकता है कि भारत की स्थिति (मानव विकास क्षेत्र के संदर्भ) में काफी कुछ सुधार हुआ है। यह निम्न सारिणी से स्पष्ट है।

सारिणी 28.2: भारत में मानव विकास सूचकांक की प्रवृत्तिया 1975–2007

वर्ष	1975	1980	1985	1990	1995	2000	2005
मानव विकास सूचकांक	0.412	0.438	0.476	0.513	0.546	0.577	0.602

स्रोत– मानव विकास रिपोर्ट 2005, पृष्ठ 225

यद्यपि पिछले 30 वर्षों में कुछ प्रगति हुई है पर यह संतोषप्रद नहीं कही जा सकती है। एशिया तथा अफ्रीका महाद्वीप के अनेक छोटे–छोटे देश जैसे फिजी, मँगोलिया,

टिप्पणी

ट्यूनिशिया भारत से काफी ऊँचे स्थान पर हैं। भारत को 0.501 से 0.800 सूचकांक वाले मध्यम श्रेणी में ऊँचा स्थान पाने के लिये काफी प्रयास करना होगा। यदि मानव विकास की वर्तमान गति से भारत को उच्च विकास की श्रेणी में (0.80 एवं इस से अधिक) प्रवेश के लिए कम से कम 30 वर्ष और चाहिए। इसके लिये सामाजिक क्षेत्र जैसे शिक्षा एवं साक्षरता, स्वास्थ्य एवं आर्थिक क्षेत्र विशेषतः गरीबी उन्मूलन के लिए अथक परिश्रम करना होगा। भारत की मानव विकास में खराब स्थिति होने के पीछे जो कारण हैं, वे अधोलिखित हैं–

(क) जनसंख्या में तेजी से वृद्धि,

(ख) बहुत बड़ी संख्या में अशिक्षित प्रौढ़ों का होना तथा कुल विद्यालय प्रवेश अनुपात का कम होना,

(ग) बीच में ही पढ़ाई छोड़ने वालों की उच्च दर,

(घ) शिक्षा एवं स्वास्थ्य पर बहुत कम शासकीय अनुदान एवं खर्च,

(ङ) बहुत बड़ी संख्या में कुपोषित लोग तथा कम वजन के कमजोर बच्चे,

(च) बहुत ही निम्न स्तर की साफ–सफाई व्यवस्था तथा अति आवश्यक जीवन रक्षक दवाइयों का आम जनता के पहुँच के बाहर होना।

मानव विकास सूचकांक के अलावा भारत वर्ष में लिंग–भेद विकास (जीडीआई) तथा मानव के गरीबी सूचकांक (एच.पी.आई) भी कोई खास सराहनीय नहीं हैं। मानव विकास रिपोर्ट 2005 के अनुसार जी.डी.आई. में भारत विश्व के 140 देशों में 98 वें स्थान पर है तथा एच.पी.आई. में कुल 103 देशों में भारत 58 वें स्थान पर आता है।

पाठगत प्रश्न 28.1

1. मानव विकास सूचकांक क्या हैं?

   _____

2. उन तीन आयामों को तथा उनसे संबंधित संकेतकों को लिखिये जिनके द्वारा मानव विकास सूचकांक का मापन किया जाता है

   (क) _____

   (ख) _____

   (ग) _____

3. मानव विकास एवं आर्थिक विकास के बीच अन्तर को समझाइये।

   _____

4. विकाशील देशों के मानव गरीबी सूचकांक (एच.पी.आई–1) का मापन कैसे किया जाता हैं?

   (क) _____

   (ख) _____

   (ग) _____

5. मानव विकास रिपोर्ट–2005 के अनुसार मानव विकास सूचकांक में भारत का क्या स्थान है? किन्हीं दो पड़ोसी देशों के नाम बताइये जो भारत की अपेक्षा कही ज्यादा अच्छा प्रदर्शन कर रहे हैं।

   _____

   _____

28.4 सामाजिक-आर्थिक संकेतक

आइये अब संक्षेप में विभिन्न प्रकार के सामाजिक–आर्थिक संकेतकों के बारे में चर्चा करें जो भारत वर्ष में हो रहे मानव विकास के लिए उत्तरदायी रहे हैं। जैसे कि पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है– हम स्वास्थ्य एवं शिक्षा की चर्चा सामाजिक संकेतकों द्वारा करते हैं तथा सामान्य आर्थिक स्थिति को प्रति व्यक्ति आय तथा उसकी गरीबी के संदर्भ में करते हैं।

भारत में स्वास्थ्य संबंधित दशाएं

जैसा कि आप सब अब तक जान चुके हैं कि स्वास्थ्य मानव विकास के तीन आवश्यक आयामों में से एक है। यद्यपि स्वास्थ्य के अन्तर्गत ''जीवन प्रत्याशा'' प्रथम संकेतक होता है तथापि अन्य स्वास्थ्य संबंधित जनाँककीय संकेतक जैसे जन्मदर, मृत्युदर, सकल प्रजनन–क्षमता दर, नवजात शिशु मृत्युदर इत्यादि से भी परिचित होना चाहिए। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएँ जैसे अस्पताल, औषधालय, अस्पताल में उपलब्ध बिस्तरों की संख्या, इसके साथ डाक्टरों एवं नर्सो की संख्या इत्यादि से भी देश में विद्यमान स्वास्थ्य सेवाओं तथा उसकी स्थिति का सम्पूर्ण आँकलन किया जाता है। निश्चित रूप से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं एवं स्थिति में काफी सुधार आया है।

भारत में वर्तमान समय में काफी महत्वपूर्ण जनाँककीय परिवर्तन हुए हैं तथा संक्रमणीय बीमारियां उत्पन्न हुई हैं। भारत आज अनेकों संक्रामक बीमारियों को रोकने में सफल हो सका है। फिर भी कई ऐसी संक्रामक बीमारियाँ हैं जैसे मस्तिष्क–ज्वर तथा एड्स जैसी खतरनाक बीमारियाँ, आज भी चिन्ता का विषय है।

टिप्पणी

घटती मृत्युदर तथा बढ़ती जीवन प्रत्याशा एवं जीवन शैली में परिवर्तन के चलते असंक्रामक बीमारियाँ जैसे उच्च रक्त–चाप, हृदयरोग, कैंसर, मोतिया–बिन्द, मधुमेह इत्यादि अनेक बीमारियाँ बढ़ी हैं। एच.आई.वी./एड्स रोग ऊपर उल्लेखित सभी रोगों से ज्यादा चुनौतीपूर्ण है क्योंकि अभी तक इसका कोई इलाज सम्भव नहीं है। दिसंबर 2005 तक भारत में एड्स/एच. आई. वी. बीमारी से पीड़ित लोगों की संख्या करीब 52 लाख थी। इस प्रकार अफ्रीका के बाद भारत विश्व का दूसरा सबसे अधिक एड्स पीडित जनसंख्या वाला देश है। यूएनएड्स के द्वारा हाल में किये गये अनुमान के अनुसार भारत में एड्स पीडितों की संख्या अफ्रीका से ज्यादा हो गई है। पर यहाँ की समस्या एक बहुत बड़ी जनसंख्या की आधार भूमि के रूप में होने के कारण है, खासकर प्रजननशील आयुवर्ग 15-49 वर्ष के बीच की संख्या का। पिछले पाठ की सारिणी 27.3 में दर्शाए कुल संख्या को देखें जिसमें इस आयु–वर्ग के लोग जो इस बीमारी से ग्रसित हैं। यदि हम चाहते हैं कि इस एच.आई.वी. से युवा पीढ़ी बचें तो हमें हमारे जीवन जीने की कला में सजगता तथा सोच को निम्नलिखित तरीके से बदलना होगा–

- सोच समझकर अपने लिए अच्छे उन्नत विचार रखों/अपने आप में विश्वास रखो। अपनी कमजोरियों को एवं अच्छाइयों की ताकत की पहचान एवं जानकारी रखो। अपने आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास को बरकरार रखो।
- अनुभवो से चाहे वह अरूचिकर ही क्यों न रहे हों उन से शिक्षा या सीख ग्रहण करने को सदा तत्पर रहो। जीवन के प्रति सदा सकरात्मक दृष्टिकोण बनाए रखो।
- किसी अड़चन या आड़े वक्त में शोर मचाने के बजाय समस्या या अड़चनो के कारणों को पहचानो और उनसे छुटकारा पाने के सबसे उत्तम उपायों को स्वयं जानो तथा उन्हें शीघ्र अमल में लाओ।
- अपनी परेशानियों, चिन्ताओं को दूसरो के साथ बाँटें तथा आवश्यकतानुसार सामयिक मदद लें।
- जीवन के प्रति स्वस्थ चिन्तन एवं जीवन–शैली अपनाइये।
- हमेशा जिम्मेदारी से युक्त निर्णय लिया करें।
- आवश्यकतानुसार विश्वसनीय स्रोतों से जानकारी प्राप्त करें एवं तदनुसार अपने विकल्पों तथा निर्णयों को कार्यान्वित करें।
- दूसरों के अनुभवों से शिक्षा लें तथा उनके द्वारा की गई गलतियों से शिक्षा लेकर स्वयं लाभान्वित होने की कोशिश करें।
- अपने द्वारा किये जाने वाले क्रिया–कलापों के निर्णयों एवं परिणामों पर ध्यान से विचार करें। कोई भी कार्य जल्दबाजी या आवेश में आकर न करें।
- अपने ऊपर हो रहे मानसिक तनाव अपने से बड़ो जैसे माता–पिता, अभिभावक, शिक्षक, मित्र एवं सलाहकारों से चर्चा कर उचित परामर्श लें तथा तनाव–मुक्ति का प्रबंधन स्वयं करें।

- हमउम्र व्यक्ति के दबाव डालने पर भी गलत कार्यो के लिए ''ना'' कहने की हिम्मत रखें।
- दूसरों की देखभाल तथा परानुभूति जैसे सद्गुण अपनाएँ तथा उन व्यक्तियों के प्रति भी विशिष्ट ध्यान एवं सद्भावनापूर्वक प्रेमभाव रखें जो एच. आई. वी /एड्स (पी.एल.डब्लू.एच.ए.) जैसी जानलेवा बीमारी से ग्रसित हैं।
- अति संवेदनशील मामलों जैसे प्रजननशील स्वास्थ्य के संदर्भ में उचित परामर्श लें।

नीचे दी गई सारिणी का अध्ययन करें तथा स्वास्थ्य संबंधी संकेतकों की जानकारी प्राप्त करें।

सारिणी 28.3 कुछ चुने हुए स्वास्थ्य संबंधी संकेतक

क्रम सं.	संकेतक		1951	2003
1.	प्रति हजार में जन्मदर		40.8	24.8
2.	प्रति हजार में मृत्युदर		25.1	8.0
3.	नवजात शिशुओं (प्रति हजार) मृत्युदर		146 (1951-61)*	60
4.	बच्चों (0-4 वर्ष) में मृत्युदर (प्रति हजार)		57.3	17.8
5.	कुल प्रजननशीलता की दर		6	3 (2001)*
6.	जन्म के समय प्रत्याशित आयु दर			
		पुरुष	37.2	63.9 (2001-06)*
		महिला	36.2	66.9 (2001-06)*

स्रोत–आर्थिक सर्वेक्षण 2005-06, वित्त मन्त्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ 25
* तारांकित कोष्ठक में दिये गए वर्ष के आँकड़े सारिणी के वर्षो से मेल नहीं खाते।

हमें विश्वास है कि आपने सारणी में दिए गए आँकड़ो को ध्यान से पढ़ा होगा। जैसा कि हमने पहले बताया था कि स्वास्थ्य संबंधी सभी संकेतकों में महत्वपूर्ण सुधार हुआ है। फिर भी अपेक्षित या प्रत्याशित परिणाम नहीं मिल पाए। जैसे कि जन्मदर को उम्मीद के अनुसार घटा नही पाए। इसी प्रकार नवजात शिशुओं की मृत्युदर तथा सकल प्रजननशीलता की दरों में अपेक्षित कमी नहीं आ पाई। दूर–दराज के ग्रामीण इलाकों में जहाँ स्वास्थ्य सेवाएँ करीब–करीब ठप्प पड़ी रहती हैं, उन क्षेत्रों के लिए सतत प्रयास द्वारा सेवाएँ प्रदत्त करना आज की बहुत बड़ी आवश्यकता है। पूरे देश

में उपलब्ध स्वास्थ्य सेवाएँ एवं सुविधाएँ यद्यपि बहुत बढ़ी हैं जो कि सारिणी 28.4 में दर्शाई गई हैं।

सारिणी 28.4 भारतः स्वास्थ्य सेवाएँ एवं सुविधाएँ 1951-2004 तक

क्रमांक	सेवाएं एवं सुविधाएँ	वर्ष 1951	वर्ष 2004
1.	उपकेन्द्र, प्राथमिक स्वास्थ्य चिकित्सा केंद्र	725	1,68,986
2.	अस्पताल एवं औषधालय	9,209	38,031 (2002)*
3.	बिस्तर–शय्या (निजी तथा सार्वजनिक)	1,17,198	9,14,543 (2002)*
4.	नर्स एवं सहयोगी कर्मचारी	18,054	8,36,000
5.	डाक्टर (आधुनिक शिक्षा समूह के)	61,800	6,25,131

स्रोत– आर्थिक सर्वेक्षण–2005-2006 वित्त मंत्रालय भारत सरकार पेज–212 * तारांकि कोष्टक में दिये गए वर्ष के आँकड़े सारिणी में दिये गए आकड़ो से भिन्न पाए गए।

पिछले 50 वर्षों (1951-2001) में भारत की जनसंख्या में काफी वृद्धि हुई तथा यह 36.10 करोड़ से बढ़कर 102.70 करोड़ तक हो गई। इसी के साथ बीमार लोगों की संख्या, तथा जन्म के समय विशेषतः नवजात शिशुओं एवं जच्चा (जन्म देने वाली महिलाएं) लोगों के लिए उचित एवं त्वरित स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराने की समस्याओं में वृद्धि भी बहुत अधिक हुई हैं। इस प्रकार स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करने वाली संस्थाए चरमरा गई हैं क्योंकि सेवाओं की माँग एवं उनकी आपूर्ति के बीच की खाई और बढ़ गई है। जहाँ तक चिकित्सा सुविधाओं के वितरण का मुद्दा है तो देखा यह जा रहा है कि ये सारी सहूलियतें बड़े शहरों एवम कस्बो में ही केंद्रित है जबकि सुदूर ग्रामीण अँचल आज भी इन सुविधाओं से वंचित हैं। इस असन्तुलन को कम करने के लिए भारत सरकार ने एक बहुत ही महत्वाकांक्षी परियोजना, जिसे ''राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन'' (एन.आर.एच.एम) कहते हैं को 12 अप्रैल 2005 में 7 वर्षो की अवधि के लिए प्रारंभ किया। इस परियोजना के उद्देश्यों एवं निर्दिष्ट लक्ष्य सारिणी 28.5 में दिया जा रहा है। इस परियोजना के अलावा भारत सरकार ने कई अन्य कार्यक्रमो को प्रारंभ किया है। ये हैं ''जननी सुरक्षा'' योजना (जे. एस. वाई.), 'बालिका समृद्धि योजना' (बी.एस. वाई.), एवं 'किशोरी शक्ति योजना' (के.एस.वाय) इत्यादि।

टिप्पणी

सारिणी 28.5 राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एन.आर.एच.एम.) दृष्टि, निर्दिष्ट लक्ष्य एवं परिणाम

एन.आर.एच.एम. की दृष्टि	निर्दिष्ट लक्ष्य परिणामों के साथ
● पूरे देश में इसे लागू करना विशेषकर उन 18 राज्यों में जहाँ लोक–स्वास्थ्य संकेतक और अवस्थापना कमजोर है।	● नवजात शिशु मृत्युदर (प्रति एक हजार जीवित नवजात शिशुओं पर) को शून्य स्तर पर लाना।
● स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार एवं आम लोगों की पहुँच में लाना।	● 2012 तक आइ.एम.आर. (नवजात शिशुओं की मृत्युदर को) प्रति दस लाख संख्या में 100 तक लाने का प्रयास करना।
● स्वास्थ्य सेवाओं एवं अच्छे स्वास्थ्य को निर्धारित करने वाले घटकों जैसे पोषक तत्व, सफाई और स्वच्छता एवं निरापद पेयजल के बीच सहक्रियात्मक संबंध बनाना।	● 2012 के अन्त तक सकल प्रजनन शीलता की दर को 2.1 तक तक नीचे लाना
● भारतीय चिकित्सा तंत्र को सही रास्ते में लाकर उसे इतना व्यापक बनाना कि स्वास्थ्य सेवाएँ सुलभ, सरल एवं सभी की पहुँच में हो जायें।	● 2010 तक मलेरिया से मृत्यु को 50 प्रतिशत तक तथा 2012 तक 60 प्रतिशत घटाना।
● स्वास्थ्य प्रदान करने वाली सेवाओं को व्यापक बनाना ताकि बढ़ाए जाने वाले विनियोजित आवंटन को अच्छी तरह उपयोग में ला सकें।	● काला जार से होने वाली मृत्यु को 2010 तक समूल समाप्त करना।
● योजना प्रक्रिया में समुदाय को शामिल कर उनकी भागीदारी सुनिश्चित करना।	● फाइलेरिया रोग को 2010 तक 70 प्रतिशत, 2012 तक 80 प्रतिशत घटाना और 2015 तक समूल समाप्त करना।
● आधारभूत संरचनाओं को प्रोन्नत करना	● डेंगू की बीमारी से मृत्युदर को 2010 तक 50 प्रतिशत तक घटाना तथा इसी स्तर पर 2012 लगातार रखना।
● क्षमता विकास का संवर्धन करने में सहायता करना	● मोतियाबिन्दु का आपरेशन बढ़ाकर 46 लाख प्रति वर्ष करना

टिप्पणी

● स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए निधि–आवंटन में बढ़ोत्तरी	● कुष्ठ रोग के फैलाव को 2005 तक 1.8 व्यक्ति प्रति 10 हजार, तत्पश्चात् 1 व्यक्ति प्रति 10,000 तक लाने का लक्ष्य। ● क्षयरोग–डाट्स मिशन काल में 85 प्रतिशत लोगों को रोगमुक्त करना।

स्रोत– आर्थिक सर्वेक्षण 2005-06, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार पृष्ठ 217

ज्ञान सूचक

सुविज्ञता एवं ज्ञान ऐसी शक्ति है जो मानव को कई प्रकार से शक्तिमान बना देती हैं। सुविज्ञ व्यक्ति आर्थिक रूप से स्वतंत्र रहकर कई विकल्पों के बीच चुनाव कर अपनी प्रगति एवं विकास को गति एवं दिशा दे सकता है। आज का मानव समाज तीव्रता से ज्ञानमय समाज की ओर बढ़ रहा है। इसलिये समाज के अधिक से अधिक लोग आज अपना जीवनयापन ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था पर कर रहे हैं। इन्ही सब कारकों की वजह से ज्ञान को मानव विकास का एक अभिन्न अँग माना गया तथा मानव विकास के महत्वपूर्ण निदर्शक के रूप में इसे प्रतिष्ठित किया गया। चूँकि ज्ञान एवं सुविज्ञता मानव विकास में गुणात्मक उत्थान लाता है इसलिए इसके बहुत से आयाम होते हैं। मानव विकास सूचकांक में इसके दो आयामों पर ही विचार किया जाता है। ये हैं– (क) प्रौढ़ साक्षरता दर (ख) प्राथमिक, माध्यमिक एवं तृतीय स्तर पर सकल प्रवेशार्थियों का अनुपात।

इसलिये इस पाठ में साक्षरता के क्षेत्रीय विस्तार एवं प्रतिमानो पर चर्चा न करते हुए सीधे–सीधे प्रौढ़ साक्षरता पर ही चर्चा करेंगे। मानव विकास के घटकों में ज्ञान प्रमुख घटक होता है और इसके मापन में साक्षरता एक महत्वपूर्ण सूचक के रूप में प्रयुक्त होता है। राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे संगठन (एन.एस.एस.ओ.) के 52वीं पारी में (1995-96) तथा कुछ चुने हुए शिक्षा से संबंधित सांख्यिकीय आकड़े (1997-98) इस तथ्य को उजागर करते हैं कि भारत में कुल जनसंख्या के 54.38 प्रतिशत प्रौढ़ व्यक्ति साक्षर हैं। 2005 में प्रकाशित मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार सन 2003 तक 61 प्रतिशत प्रौढ़ भारत में साक्षर हो गए हैं। यदि इस प्रकार के आँकड़ों को राज्यस्तर पर विश्लेषण करें तो प्रौढ़ साक्षरता के प्रतिरूप में कोई खास बदलाव नहीं आया है।

प्रौढ़ साक्षरता के क्षेत्रीय प्रतिरूपों में बहुत भिन्नताएँ हैं। बिहार (झारखंड मिलाकर), राजस्थान, उत्तर प्रदेश (उत्तराखंड सहित), अरूणाचल प्रदेश, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश (छत्तीसगढ़ सहित) जम्मू–कश्मीर तथा उड़ीसा राज्यों में प्रौढ़ साक्षरता राष्ट्रीय औसत से कम है। अतः इन राज्यों प्रौढ़। साक्षरता के अभियान को सशक्त एवं गतिमान बनाने की आवश्यकता है।

सकल नामाँकन अनुपात (जी.ई.आर)

यह किसी खास आयु वर्ग के शिक्षार्थियों की कुल संख्या जो किसी कक्षा में नामाँकन

होने चाहिए तथा कुल शिक्षार्थियों की नामंकिन संख्या जो उस कक्षा के लिए नामाँकित हुई है का अनुपात होता है। कभी–कभी सकल नामांकिन अनुपात 100 प्रतिशत से ज्यादा भी हो जाता है। इसका मुख्य कारण उस निर्धारित आयु वर्ग से कम या ज्यादा आयु के लोगों का भी उस कक्षा में दाखिला या प्रवेश दर्शा दिया जाना है। मानव विकास सूचकांक में इसीलिए प्राथमिक, माध्यमिक तथा तृतीयक स्तरों पर हुए सकल नामांकन को गिना जाता है। यहाँ पर हम इस अनुपात को केवल प्राथमिक स्तर पर ही (पहली से पांचवी कक्षा तक) विश्लेषण करेंगे।

2005-06 के आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार सकल नामांकन अनुपात में क्रमिक रूप में वृद्धि हुई है। जैसे 6-14 वर्ष के आयु वर्ग (पहली कक्षा से पांचवी कक्षा तक) में यह अनुपात 1950-51 में 32.1 प्रतिशत था जो बढ़कर 2003-04 में 84.91 प्रतिशत तक हो गया। इसके साथ ही साथ बीच में ही पढ़ाई छोड़ने वालों की संख्या प्राथमिक स्तर पर 2001-02 में 39.0 प्रतिशत से घटकर 2003-04 में 31.4 प्रतिशत हो गई। विभिन्न राज्यों तथा केन्द्र शासित संघीय राज्यों से प्राप्त रिपोर्टो के अनसुार स्कूल छोड़े हुए छात्रों की (2001 से 2005 तक) संख्या 2005 में 3 करोड़ 20 लाख से घट कर 95 लाख हो गई। परन्तु 95 लाख स्कूल छोड़े छात्रों की संख्या वह भी प्राथमिक स्तर पर काफी चौकाने वाली एवं चिन्ता का विषय है। राज्य स्तर पर जब इस अनुपात के आँकड़ो का विश्लेषण करते हैं तो पता चलता है कि मणिपुर में 16.77 प्रतिशत से लेकर 55.82 प्रतिशत बिहार में भिन्नता है। जिन राज्यों में राष्ट्रीय औसत से कम अनुपात है वे हैं उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, असम, हरियाणा, पंजाब, जम्मू–कश्मीर, झारखण्ड एवं नागालैंड। शिक्षा में नामांकन की संख्या विशेष रूप से निचले स्तर पर सुधारने के लिए तथा प्रौढ़ व्यक्तियों की अशिक्षित रहने की संख्या को घटाने के लिए भारत सरकार ने कई नए कार्यक्रमों को प्रारंभ किया है साथ ही साथ मौजूदा कार्यक्रमों को और अधिक सशक्त एवं क्रियाशील करने की पहल की है।

आर्थिक सूचक

मानव विकास की अवधारणा में आर्थिक वृद्धि एवं उत्पादकता को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। आर्थिक विकास मानव के विकास में शिक्षा तथा स्वास्थ्य के अलावा प्रगति के सोपान में चढ़ने का एक माध्यम भी है। आर्थिक समृद्धि के सूचकों में सकल घरेलू उत्पादन, सकल राष्ट्रीय उत्पादन, प्रति व्यक्ति आय इत्यादि आते हैं। यहाँ हम केवल प्रति व्यक्ति आय सूचक पर ही चर्चा केंद्रित रखेंगे।

2005-06 के आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार प्रति व्यक्ति आय जो 1950-51 में 3,687/- रूपये थी वह बढ़कर 2004-05 में 19,649/- रूपये हो गई। यद्यपि यह वृद्धि महत्वपूर्ण एवं मनभावन है, परन्तु इसमें क्षेत्रीय एवं स्थानीय स्तर पर काफी असमानताएँ हैं। इतना ही नहीं शहरी तथा ग्रामीण इलाकों में भी प्रति व्यक्ति आय में असमानता झलकती है। यहाँ तक कि गरीबी रेखा से नीचे के तबकों में प्रति व्यक्ति आय में भी बहुत भिन्नता एवं असमानता मिलती है।

गरीबी न केवल आर्थिक प्रतिभास घटना है अपितु सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक वंचना भी है। यह निम्न जीवन स्तर, कुपोषण, निम्न मानवीय विकास इत्यादि से प्रतिबिम्बित होता है। योजना आयोग के एक अनुमान के अनुसार 1999-2000 में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले देश की जनसंख्या के 26.10 प्रतिशत थे। इसमें से 27.09 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों से तथा 23.62 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों से थे। जहाँ ग्रामीण क्षेत्रों की गरीबी का मुख्य कारण लोगों का भूमिहीन एवं सीमान्त किसान होना बताया जाता है। वहीं शहरी क्षेत्रों में गरीबी मलिन बस्तियों में रहने वाले लोगों में दृष्टिगत होता है। उड़ीसा, बिहार (झारखंड सहित), मध्य प्रदेश (छत्तीसगढ़ सहित), उत्तर प्रदेश (उत्तराखण्ड सहित), भारत के उत्तर–पूर्व के सभी राज्य (सिवाय मिजोरम) तथा पश्चिम बंगाल ऐसे राज्य हैं जहां गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों का प्रतिशत राष्ट्रीय औसत से नीचे है।

पाठगत प्रश्न 28.2

1. उन तीन सूचकों के नाम बताइए जिनकी आवश्यकता वांछित परिणामों को प्राप्त करने में होती हैं।

   (क) _____(ख)_____(ग) _____

2. भारत सरकार द्वारा प्रारंभ किये गए किन्ही तीन स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रमों को बताइए जिनका संबंध महिलाओं एवं बच्चों से है।

   (क) _____

   (ख) _____

   (ग) _____

3. सकल नामांकन अनुपात को परिभाषित कीजिये।

   _____

4. किन्ही तीन राज्यों के नाम बताइये जहाँ के लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन–यापन करते हैं।

   (क) _____(ख)_____(ग) _____

28.5 मानव विकास सूचकांक-राज्य स्तरीय विश्लेषण

यू.एन.डी.पी. द्वारा तैयार मानव विकास रिपोर्ट के समान भारत के योजना आयोग द्वारा भी वैसी ही एक रिपोर्ट 2001 में तैयार की गई थी। इस रिपोर्ट में भारत के कुछ बड़े राज्यों (जिनमें अविभक्त बिहार राज्य भी शामिल था) में विद्यमान मानव विकास की

स्थितियों का विश्लेषण किया गया था। बिहार के अलावा अविभाजित मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश भी शामिल किए गए थे। इन राज्यों में मानव विकास सूचकांको को निम्नांकित तालिका में दर्शाया गया है:

तालिका 28.6 भारतः मानव विकास सूचकांक (राज्यों के नाम वर्ष 2001)

	राज्यों की स्थिति	मानव विकास सूचकांक
1	आन्ध्र प्रदेश	0.416
2	असम	0.386
3	बिहार	0.367
4	गुजरात	0.47.9
5	हरियाणा	0.509
6.	कर्नाटक	0.638
7	केरल	0.638
8	मध्य प्रदेश	0.394
9	महाराष्ट्र	0.523
10	ओरिसा	0.404
11	पंजाब	0.537
12	राजस्थान	0.424
13	तामिल–नाडु	0.531
14	उत्तर प्रदेश	0.388
15	पश्चिम बंगाल	0.477
	भारत	0.472

तालिका 28.6 में दर्शाए मानव विकास सूचकांक के आंकड़ों का विश्लेषण करेंगे तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि कुछ राज्यों को छोड़ दे तो स्पष्ट रूप से उत्तर–दक्षिण का विभाजक उभर कर दिखाई पड़ता है। आन्ध्र प्रदेश को छोड़कर सभी दक्षिण भारतीय राज्य अच्छा कर रहे हैं। जबकि पंजाब एवं हरियाणा के अतिरिक्त उत्तर भारतीय राज्य मानव विकास सूचकांक के हिसाब से असफल रहे हैं। इन राज्यों को मिला कर एक परिवर्णी शब्द ''बिमारू'' बनता है (बि= बिहार, म = मध्य प्रदेश, र = राजस्थान उ = उत्तर प्रदेश) जो बीमार शब्द का पर्यायवाची हो सकता है। अर्थात इन राज्यों की स्थिति बीमार व्यक्ति जैसी है। उत्तर–दक्षिण विभाजक रेखा जैसी पूर्व–पश्चिम विभाजिका भी स्पष्ट है। पश्चिम स्थित राज्य हैं– गुजरात, महाराष्ट्र

टिप्पणी

अपेक्षाकृत बड़ी सजगता से मानव विकास के कार्यक्रमों को संचालित कर रहे हैं जबकि पूर्व स्थित राज्य जैसे उड़ीसा तथा असम के बहुत अच्छा नहीं कर रहे हैं। इसलिए इन दोनों राज्यों में मानव विकास सूचकांक राष्ट्रीय सूचकांक के औसत से नीचे हैं। पश्चिम बंगाल में यह राष्ट्रीय औसत के ठीक बराबर की स्थिति में है। अतः जिन राज्यों में मानव विकास सूचकांक की स्थिति बहुत कम या नीचे है उन राज्यों के प्रति अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। और अधिक तथा कठोर प्रयास इन राज्यों में करने होंगे ताकि मानव विकास सूचकांक में सुधार हो सके।

अधोलिखित अनुच्छेदो में भारत के राज्यों के स्तर पर विस्तृत चर्चा की जायेगी। चर्चा की जानकारी भारत के योजना आयोग द्वारा प्रस्तावित ''विकास–राडार'' जिसका जिक्र राष्ट्रीय मानव विकास रिपोर्ट 2001 में किया गया है से उपलब्ध की जायेगी। कुल आठ भिन्न सामाजिक सूचकों के आधार पर ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों का दो अलग अलग समय यानि सन् 1980 एवं 1990 के लिए विकास राडार बनाया जाता है, जो मानव विकास सूचकांक में समय के साथ विकास का आरेखीय प्रदर्शन है। ''विकास–राडार'' सभी राज्यों के लिए बनाए गये थे। सूचकांको का चयन प्रमुख तीन आयामों में प्राप्त उपलब्धियों को विभक्त कर किया जाता है। ये तीनो नाजुक आयाम हैं– दीर्घायु, शिक्षा एवं प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण।

उपरोक्त तीनो आयामों के साथ–साथ मानव की आधारभूत आवश्यकताओं–जैसे पेयजल तथा मकान की उपलब्धता आदि को विकास राडार में उल्लेखित किया जाता है।

'विकास–राडार' निर्माण में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख आठ सामाजिक सूचक निम्नलिखित हैं:

(i) प्रति–व्यक्ति उपभोक्ता खर्च

(ii) प्रति व्यक्ति अनुपात के आधार पर गरीबी का विस्तार

(iii) शुद्ध पेयजल की पहुँच

(iv) पक्का मकान युक्त परिवारों का अनुपात

(v) सात वर्ष एवं इससे ऊपर आयु वर्ग में साक्षरता की दर

(vi) औपचारिक शिक्षा की तीव्रता, उत्तरोतर क्रमिक कक्षाओं में नामांकित बच्चों का उन बच्चो के जिनकी आयु 6-18 वर्ष के बीच है तथा जिनका नामांकन नहीं हुआ है, को भी समायोजित करते हुए, बनाए गये सूचक।

(vii) एक वर्ष की उम्र तक प्रत्याशित आयु

(viii) नवजात शिशुओं में मृत्युदर।

इन उपरोक्त सूचकों का शून्य से पाँच अँकों के बीच मूल्य का आँकलन करते हैं। यहाँ शून्य अँक से आशय होता है उस सूचक के तहत किये गए प्रयासों की उपलब्धि सब से कम तथा पाँच अँक देने का मतलब सर्वाधिक उपलब्धि।

पाठगत प्रश्न 28.3

1. उत्तर भारत के किन्ही तीन राज्यों के नाम लिखिये जहाँ के मानव–विकास सूचकांक राष्ट्रीय औसत से नीचे हैं।

_____

2. विकास–राडार क्या है?

_____

3. ऐसे कौन से दो सूचक हैं जिनके बीच काफी रिक्त अन्तराल है खासकर शहरी एवं ग्रामीण भिन्नता के अन्तर के मुद्दे पर।

_____

आपने क्या सीखा

मानव–विकास के सूचकांक की अवधारणा को प्रोफेसर मेहबूब अल हक तथा प्रोफेसर अमर्त्य सेन ने सन् 1990 में प्रस्तुत किया। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू.एन.डी.पी.) सन् 1990 से उत्तरोत्तर मानव विकास पर रिपोर्ट प्रकाशित करते आ रहे हैं। इस रिपोर्ट में विश्व के प्रायः सभी देशों में हो रहे मानव विकास की स्थितियों को दर्शाया जाता है। मानव विकास सूचकांक (एच.डी.आई.) एक ऐसा संयुक्त सूचकांक है जिसके अन्तर्गत किसी भी देश में मानव विकास में प्रमुख तीन आयामों में किए गए औसत उपलब्धि का मापन किया जाता है। ये प्रमुख आयाम हैं:

लम्बी आयु एवं स्वस्थ जीवन, ज्ञान तथा शालीन जीवन स्तर। आर्थिक विकास एवं मानव विकास में आधारभूत मौलिक अन्तर है। जहाँ आर्थिक विकास पूर्णरूप से आय में वृद्धि पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है वहीं मानव विकास मानव जीवन को अधिक से अधिक विस्तृत एवं व्यापक करने पर जोर देता है। यद्यपि मानव विकास के कथित सूचकांकों में आर्थिक दशा एक महत्वपूर्ण तत्व है। मानव विकास सूचकांकों के अलावा अन्य और भी सूचकांक हैं, जिनको यू.एन.डी.पी. बनाता एवं प्रकाशित करता है। ये हैं– मानव गरीबी सूचकांक (एच.पी.आई.), लिंग विकास सूचकांक (जी.डी.आई.), लिंग सशक्तिकरण मापक सूचकांक (जी.ई.एम.आई) इत्यादि।

सन 2005 के मानव–विकास रिपोर्ट के अनुसार भारत का दर्जा 127वाँ जो कि

टिप्पणी

मध्यम स्तर के विकासशील देशों की सूची के लगभग सबसे निचले स्थान पर है। इस स्थिति में होने के मुख्य कारण हैं जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि, अनपढ़ और निरक्षर प्रौढ़ों की बड़ी संख्या, शिक्षा एवं स्वास्थ्य के मद में असंतुलित शासकीय खर्च, कम वजन के कुपोषित बच्चे तथा निम्न पोषण पाने वाले लोगों की ज्यादा संख्या, निम्न दर्जे की साफ–सफाई की सुविधाएँ तथा जीवनरक्षक औषधियों का सरलता से तथा समीप में न मिल पाना इत्यादि। इसलिए स्वास्थ्य, शिक्षा, गरीबी उन्मूलन एवं लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाने की अत्यन्त आवश्यकता है। यह ठीक है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ले कर आज तक मानव विकास परिस्थितियों में काफी कुछ सुधार हुए हैं परन्तु इसके साथ ही देश में एच.आई.वी./एड्स जैसी जानलेवा बीमारियों से ग्रसित लोगों की संख्या में भी तेजी से वृद्धि हुई है। नवजवानों में जीवन कौशल को और विकसित करने का सुझाव दिया जाता है। इस विभीषिका से निजात पाने के उद्देश्य से भारत सरकार की ओर से कई कार्यक्रमों की शुरूवात की गई है। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना आदि।

यू.एन.डी.पी. की मानव विकास रिपोर्ट के समान ही भारत सरकार के योजना आयोग द्वारा रिपोर्ट तैयार की जाती है जिसका नाम ''राष्ट्रीय मानव–विकास रिपोर्ट'' होता है। इस राष्ट्रीय रिपोर्ट में देश के 15 बड़े राज्यों की स्थितियों का ब्यौरेबार जिक्र होता है। रिपोर्ट के अनुसार बिहार राज्य का मानव विकास सूचकांक सबसे कम तथा केरल राज्य सर्वोपरि है। इसके अलावा योजना आयोग ने ''विकास–राडार'' का निर्माण किया है। यह राडार सम्पूर्ण राज्य में मानव–विकास के प्रयासों द्वारा प्राप्त उपलब्धियों को नौ सामाजिक सूचकों के ढाँचे में डालकर प्रत्येक सूचकों का मूल्याँकन 0-5 अँको के बीच करता है। अँको के वितरण के प्रयासों से उस सूचक के तहत कितनी कम या अधिक उपलब्धि हुई है, इसका अनुमान लगाया जाता है। 'विकास राडार' द्वारा पूरे राज्य की स्थिति के साथ–साथ ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के भी अलग से मानव विकास सूचकांक की स्थितियों की प्रगति का समय के अंतराल में मूल्यांकन किया जाता है।

पाठान्त प्रश्न

1. मानव विकास सूचकांक, मानव गरीबी सूचकांक तथा लिंग विकास सूचकांक के बीच के अन्तर को स्पष्ट करिए।

2. मानव विकास की आवश्यकता के पक्ष में किन्ही चार कारणों को सविस्तार समझाइए।

3. भारत सरकार द्वारा संचालित राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन में विचारार्थ लिए गए किन्ही चार दृष्टिकोणों की चर्चा कीजिये।

4. मानव विकास सूचकांक की तालिका में भारत की स्थिति को बहुत नीचे लाने में किन्ही चार कारकों का उल्लेख कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

28.1

1. मानव विकास सूचकांक एक संयुक्त सूची है जो किसी देश में हुए विकास के प्रयासों द्वारा औसत उपलब्धि को मानव विकास के तीन प्रमुख आयामों के सन्दर्भ में (जैसे दीर्घायु एवं स्वस्थ जीवन, ज्ञान तथा शालीन जीवन स्तर) आँकलन कर स्थिति का प्रबोधन करता है।

2. (क) दीर्घायु तथा स्वस्थ जीवन का मापन जन्म के समय प्रत्याशित आयु से किया जाता है।

   (ख) ज्ञान का अनुमापन प्रौढ़–शिक्षा की दर से किया जाता है तथा प्राथमिक, माध्यमिक एवं तृतीयक स्तरों पर सकल नामाँकन के मिश्रित अनुपात को भी शामिल किया जाता है।

   (ग) शालीन जीवन स्तर का अनुमान सकल घरेलू उत्पादन की प्रति व्यक्ति क्रय करने की क्षमता का अमेरिकी डालर में मूल्यांकन किया जाता है।

3. आर्थिक विकास का संपूर्ण ध्यान आय की वृद्धि पर ही केन्द्रित रहता है जबकि मानव विकास में मानवीय जीवन के सभी पहलुओं पर ध्यान देते हुए उन आयामों में व्यापक प्रसार को अधिक से अधिक बढ़ाना ही प्रमुख उद्देश्य रहता है।

4. (क) जन्म के समय 40 वर्ष की आयु पर सुख–पूर्वक न रह पाने की संभावना

   (ख) प्रौढ साक्षरता दर

टिप्पणी

(ग) ऐसे लोगों का प्रतिशत जिनकी पहुँच के दायरे में स्थाई शुद्ध पेयजल के स्रोत न हों।

5. कुल 174 देशों में से 127वाँ स्थान। पड़ोसी देश जो मानव विकास में भारत से अच्छा कार्य कर रहे हैं वे है चीन, श्रीलंका, तथा मालदीव (कोई भी दो)

28.2

1. (क) जन्मदर (ख) नवजात शिशु मृत्युदर (ग) सकल प्रजनन की दर

2. (क) राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (ख) जननी सुरक्षा योजना (ग) बालिका समृद्धि योजना (घ) किशोरी शक्ति योजना (कोई तीन)

3 सकल प्रवेश नामांकन उस अनुपात को बताता है जो एक विशेष आयुवर्ग के कुल शिक्षार्थियों की किसी कक्षा में वास्तविक उपस्थिति रहने तथा अनुमानित शिक्षार्थी की संख्या जो उस उम्र के तथा कक्षा के लिए नामांकित किये गए है के बीच बनता हैं।

4. (i) बिहार (झारखंड सहित), (ii) उड़ीसा, (iii) मध्य प्रदेश (छत्तीसगढ़ सहित), (iv) उत्तर प्रदेश (उत्तराखण्ड सहित), (v) असाम, (vi) पश्चिम बंगाल, (vii) मेघालय, (viii) मणिपुर (ix) नागालैंड, (x) त्रिपुरा, (xi) सिक्किम, (xii) अरूणाचल प्रदेश (कोई तीन)

28.3

1. (i) बिहार, (ii) मध्य प्रदेश, (iii) उत्तर प्रदेश, (iv) राजस्थान (कोई भी तीन)

2. 'विकास–राडार' एक प्रकार के रैखिक–आरेख के रूप में विभिन्न राज्यों में मानव विकास कार्यक्रमों के तहत होने वाली प्रगति को व्यक्त करता है और इसकी विशिष्टता है कि यह राज्य की समग्र प्रगति के साथ–साथ ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों की प्रगति भी अलग–अलग व्यक्त कर सकता है। विकास राडार समय के दो छोर जैसे 1980 एवं 1990 के लिये आठ सामाजिक सूचकों के मापदण्ड के मुताबिक प्रगति को रेखाचित्र के रूप में व्यक्त कर सकता है।

3. (i) प्रति–व्यक्ति खर्च (ii) गरीबी

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. सैद्धान्तिक रूप में इन तीनों सूचकांको का आँकलन मानव विकास के तीन प्रमुख आयामों में किया जाता है, ये तीन आयाम हैं– दीर्घायु एवं स्वस्थ जीवन, ज्ञान एवं शालीन जीवन स्तर। फिर भी इन सूचकांकों में आपस में कुछ भेद हो सकते हैं, जैसे मानव विकास सूचकांक एक संयुक्त सूचकांक है जो निम्न तथ्यों की स्थितियों को उजागर करता है– जन्म के समय प्रत्याशित आयु, प्रौढ शिक्षा की दर तथा सकल घरेलू उत्पादन में प्रति व्यक्ति आय। एच.पी.आई भी संयुक्त रूप से प्राथमिक, माध्यमिक एवं त्रितीयक विद्यार्थियों का नामांकन सूचकांक है जिसमें तीन कारकों का मूल्यांकन होता है– साक्षरता दर, शुद्ध जल की उपलब्धता का प्रतिशत तथा कुपोषित बच्चों का प्रतिशत। इसी प्रकार लिंग आधारित विकास के सूचकांक एच.पी.आई. से थोड़ा भिन्न हैं। स्त्रियों का कुल जनसंख्या में घटता प्रतिशत जो पुरूष तथा स्त्री के बीच के अनुपात को असंतुलित करता है। प्रति हजार पुरुषों में महिला का प्रतिशत बहुत घटा है। महिलाएँ पुरुष की अपेक्षा कुपोषण की अधिक शिकार बनती हैं। प्रजनन एवं प्रसव की आवृतियाँ बढ़ना इत्यादि।

2. अनुच्छेद 28.2 देखिए।

3. सारिणी 28.5 देखिए।

4. अनुच्छेद 28.3 देखिए।

टिप्पणी

चिंतन के बिन्दु

किशोरावस्था में पोषक आहार

किशोरावस्था में लड़के–लड़की दोनों को पौष्टिक आहार की बहुत आवश्यकता होती है। क्योंकि इस अवस्था में शरीर के अँग–प्रत्यंग में कई प्रकार के आकस्मिक परिवर्तन होने लगते हैं। इस प्रकार के परिर्वतन के होते रहने से कैल्शियम एवं आयरन जैसे पोषक तत्वों का भोजन के साथ सेवन किशोरावस्था के दौरान विकास में सहायक होता है।

चूँकि बालिकाएँ बहुधा मासिक रक्त स्त्राव के कारण लौह–तत्व की कमी से ''एनीमिया'' (रक्ताल्पता) जैसी शारीरिक दुर्बलता से जल्द ग्रसित होती हैं। अतः उनके पौष्टिक आहार में आयरन तत्व का समावेश आवश्यक है। एनीमिया से बचने या इसे दूर करने के लिए लड़कियों को उपयुक्त भोजन जैसे माँस, लीवर, हरी ताजी पत्तियों वाली सब्जियाँ एवं अन्य का सेवन करना चाहिए। यदा–कदा डाक्टर की सलाह पर आयरन टेबलेट भी ली जा सकती है।

एनीमिया और अधिक चिन्ताजनक हो जाती है जब किशोरावस्था में ही गर्भ–धारण होता है। इसके बाद यदि सावधानी न बरती गई तो आगे चलकर और भी अधिक गंभीर परिणाम आने की संभावना बन जाती है।

29

मानव अधिवास

पिछले पाठ में हम जनसंख्या के संगठन, कुल जनसंख्या, ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या, जनसंख्या वृद्धि इत्यादि विषयों पर विस्तृत रूप से चर्चा कर चुके हैं। इस पाठ में हमारा ध्यान मानव अधिवास पर केन्द्रित रहेगा। इसलिए चर्चा का केन्द्र बिन्दु मानव अधिवास की अवधारणा, अर्थ एवं प्रकृति तथा भारत में ग्रामीण तथा नगरीय अधिवासों के विकास तथा वर्गीकरण के इर्द–गिर्द परिसीमित होंगी।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- अधिवास के अर्थ की व्याख्या कर सकेंगे;
- ग्रामीण अधिवासों के विभिन्न प्रकारों को पहचान सकेंगे;
- भारत के विभिन्न स्वरूपों के मकानों का वर्णन कर सकेंगे;
- मकानों के स्वरूपों का भू–आकृतियों, जलवायु और मकान बनाने की आवश्यक वस्तुओं से संबंध स्थापित कर सकेंगे;
- भारत की जनगणना में दर्शाए गए नगरीय क्षेत्रों को परिभाषित कर सकेंगे;
- ग्रामीण एवं नगरीय बस्तियों के प्रतिरूपों के वितरण का विश्लेषण कर सकेंगे;
- भारत की जनगणना में उल्लेखित नगरीय अधिवासों के क्रियात्मक वर्गीकरण को समझा सकेंगे।

29.1 अधिवास क्या है

हम बहुधा अधिवास शब्द का प्रयोग करते रहते हैं, परन्तु जब इसको परिभाषित करना होता है तब हमें उसकी सुस्पष्ट परिभाषा देने में कठिनाई होती है। सीधे–सादे शब्दों में

टिप्पणी

यदि परिभाषित करें तो अधिवास मानवीय बसाहट का एक स्वरूप है जो एक मकान से लेकर नगर तक हो सकता है। अधिवास से एक और पर्याय का बोध होता है–क्योंकि अधिवास में बसाहट एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत पूर्व में वीरान पड़े हुए क्षेत्र में मकान बना कर लोगों की बसाहट शुरू हो जाना आता है। भूगोल में यह प्रक्रिया अधिग्रहण भी कही जाती है।

इसलिए हम कह सकते हैं कि अधिवास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्तियों के समूह का निर्माण तथा किसी क्षेत्र का चयन मकान बनाने के साथ उनकी आर्थिक सहायता के लिए किया जाता है। अधिवास मुख्य रूप से दो प्रकारों में विभक्त किये जा सकते हैं– ग्रामीण अधिवास और नगरीय अधिवास। इसके पहले कि भारत में ग्रामीण एवं नगरीय अधिवास के अर्थ एवं प्रकार पर चर्चा करें हमें आमतौर पर ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों के बीच के कुछ मौलिक अंतर को समझ लेना चाहिए।

(i) ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों के बीच सबसे बड़ा अन्तर दोनो के बीच क्रियात्मक गति विधियों से है। ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ लोगों के कार्यकलापों में प्राथमिक क्रियाएँ प्रमुख होती हैं वहीं नगरीय क्षेत्रो में द्वितीयक एवं तृतीयक क्रियाएँ प्रमुख हैं।

(ii) ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा कम होता है।

29.2 ग्रामीण अधिवासों के प्रकार एवं प्रतिरूप

इसके पहले कि हम ग्रामीण अधिवासों के प्रकार एवं प्रतिरूपों पर विस्तृत चर्चा करें, आइये सबसे पहले प्रकार एवं प्रतिरूप जैसे शब्दों के बारे में विचार कर लें। प्रकार शब्द से एक श्रेणी में वर्गीकृत वस्तुओं के बारे में जानकारी मिलती है, जिनमें कुछ समानता होती हैं, जबकि प्रतिरूप शब्द से किसी निश्चित आकृति या उनके क्रमबद्धता में जमावट का बोध होता है। जब हम अधिवासों के प्रतिरूप का जिक्र करते हैं तो उससे दिए क्षेत्र में अधिवासों के स्थानिक जमावट या वितरण का बोध होता है। यह अधिवासों के प्रकार से अलग है। क्योंकि अधिवासों के प्रकार में हमें उसके स्थानिक बसाहट के गुणों का बोध होता है अर्थात अधिवास की प्रत्येक इकाई के आवासीय गुणों के बारे में जानकारी मिलती है। यद्यपि कई बार प्रकार एवं प्रतिरूप को एक दूसरे के अर्थों में प्रयोग किया जाता है। लेकिन यहां हम केवल प्रतिरूपों पर ही चर्चा करेंगे। जहाँ तक ग्रामीण अधिवासों के प्रकार का संबंध है, यह आवासों के वितरण के अंश को दर्शाता है।

ग्रामीण अधिवासों के प्रकार

भूगोलवेत्ताओं ने अधिवासों को वर्गीकृत करने के लिए अनेकों युक्तियाँ सुझाई हैं। यदि देश में विद्यमान सभी प्रकार के अधिवासों को वर्गीकृत करना चाहें तो इन्हें चार श्रेणियों में बाँटा जा सकता है–

(क) सघन/संहत केन्द्रित अधिवास

(ख) अर्धसघन/अर्धसंहत/विखंडित अधिवास

(ग) पल्ली–पुरवा अधिवास

(घ) प्रकीर्ण या परिक्षिप्त अधिवास

आइए इन प्रकारों का इनसे जुड़े प्रमुख प्रतिरूपों के साथ अध्ययन करें:

(क) सघन अधिवास

जैसे कि नाम से ही स्पष्ट है कि इन अधिवासों में मकान पास–पास सट कर बने होते हैं। इसलिए ऐसे अधिवासों में सारे आवास किसी एक केन्द्रीय स्थल पर संकेन्द्रित हो जाते हैं और आवासीय क्षेत्र खेतों व चारागाहों से अलग होते हैं। हमारे देश के अधिकांश आवास इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। ऐसे अधिवास देश के प्रत्येक भाग में मिलते हैं। इन अधिवासों का वितरण समस्त उत्तरी गंगा–सिंध मैदान (उत्तर–पश्चिम में पंजाब से लेकर पूर्व में पश्चिम बंगाल तक), उड़ीसा तट, छत्तीसगढ़ राज्य के महानदी घाटी क्षेत्र, आन्ध्र प्रदेश के तटवर्ती क्षेत्र, कावेरी डेल्टा क्षेत्र (तमिलनाडु), कर्नाटक के मैदानी क्षेत्र, असाम और त्रिपुरा के निचले क्षेत्र तथा शिवालिक घाटियों में है। कभी–कभी लोग सघन अधिवास में अपनी सुरक्षा या प्रतिरक्षा के उद्देश्य से रहते हैं। ऐसे अधिवासों के बड़े ही सुन्दर उदाहरण मध्यप्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मिलते हैं। राजस्थान में भी लोग सघन अधिवास में कृषि योग्य भूमि की उपलब्धता तथा पेयजल की कमी के कारण रहते हैं, ताकि वे उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम उपयोग कर सकें।

इस प्रकार के अधिवासों में 30 से लेकर कई सौ मकानों की संहति होती है, जिनके कार्य, आकृति एवं आकार भी भिन्न–भिन्न होते हैं। औसतन इन अधिवासों में राजस्थान के विरल बसे क्षेत्रों में 500 से 2500 व्यक्तियों से लेकर सघन बसे गंगा मैदान में 10,000 व्यक्तियों से अधिक रहते हैं। अक्सर ऐसे सघन अधिवासों में आवासीय इकाइयों की बनावट एव बसाहट तथा इनके बीच गली एवं सड़कों के विन्यास में एक निश्चित प्रतिरूप होता है। ऐसे प्रतिरूपों की संख्या लगभग 11 चिन्हित की जा चुकी है। परन्तु हम यहाँ उनके 5 प्रमुख प्रतिरूपों की चर्चा करेंगे।

(i) रैखिक प्रतिरूप,

(ii) आयाताकार प्रतिरूप,

(iii) वर्गाकार प्रतिरूप,

(iv) वृताकार प्रतिरूप,

(v) अरीय प्रतिरूप।

(i) रैखिय प्रतिरूप– इस प्रकार के अधिवास बहुधा मुख्य मार्गो, रेल मार्गों, नदियों इत्यादि के किनारे बन जाते हैं। इसमें मुख्य रेखा के सहारे एक श्रृंखला में श्रेणीबद्ध मकान हो सकते हैं। उदाहरण के लिए ऐसे ग्रामीण अधिवास सागर तट, नदी घाटियों या पर्वत श्रृंखला के सहारे पाये जाते हैं।

टिप्पणी

(ii) आयताकार प्रतिरूप– यह एक बहुत ही सामान्य प्रकार है, जो कृषि जोतों के चारों ओर विकसित होता है। वर्गाकार खण्डों पर आधारित भूमि–बन्दोबस्त पर भी यह आधारित होता है। इसमें सड़कें आयताकार होती हैं जो एक दूसरे को समकोण पर काटती हैं। गाँव के अन्दर की सड़के भी आयताकार क्षेत्र के अनुरूप उत्तर–दक्षिण और पूर्व–पश्चिम दिशाओं में आती जाती है। महाराष्ट्र एवं आन्ध्र प्रदेश के तटवर्ती क्षेत्रों में तथा अरावली पहाड़ियों में ऐसे अधिवासों के उदाहरण मिलते हैं।

(iii) वर्गाकार प्रतिरूप– यह आयताकार प्रतिरूप का ही एक भिन्न प्रकार है। ऐसे अधिवास मुख्यतः पगडंडियों या सड़कों के मिलन स्थल से संबंद्ध होते हैं। ऐसे अधिवासों का संबंध कभी–कभी गाँवों का विस्तार उपलब्ध चौकोर वर्गाकार क्षेत्र में ही करने की बाध्यता से भी होता है।

(iv) वृत्ताकार प्रतिरूप– यमुना के ऊपरी दोआब क्षेत्र तथा यमुना–पार के जिलो में, मालवा क्षेत्र, पंजाब, गुजरात राज्यों के अन्तर्गत बड़े ग्रामों में सघन आबादी के कारण आवासीय इकाइयाँ बहुत अधिक सट कर बनी रहती हैं। मकानों की बाहरी दीवारें आपस में सटी होने से यह एक श्रृँखलाबद्ध सघन इकाई जैसा लगता है। इस प्रकार का वृत्ताकार स्वरूप भूतकाल में सुरक्षा की दृष्टि से मकानों के अधिकतम संकेन्द्रण का परिणाम है।

(v) अरीय त्रिज्या प्रतिरूप– इस प्रकार के प्रतिरूप में कई सड़कें या गलियां किसी केन्द्रीय स्थान जैसे जल का स्रोत (तालाब, कुआँ), मन्दिर, मस्जिद, व्यावसायिक गतिविधि के केन्द्र, या केवल खुली जगह की ओर अभिमुख होती हैं। इसलिए गलियां एक सामान्य केन्द्र से विकरित लगती हैं। इस प्रकार के अधिवासों के उदाहरण हैं– गुरू शिखर के पास माउन्ट आबू में (राजस्थान), विन्ध्याचल (उत्तर प्रदेश)।

(ख) अर्ध-सघन अधिवास

जैसे कि शीर्षक से स्पष्ट है कि आवास पूरी तरह संगठित नहीं होते। इस प्रकार के अधिवास में नाभिकीय रूप से सघन छोटी बसाहट होती है, जिसके चारो ओर पल्ली–पुरवा प्रकीर्ण रूप से बसे रहते हैं। ये संहत अधिवासों की तुलना में ज्यादा स्थान घेरते हैं। ऐसे अधिवास मैदानी एवं पठारी भागो में, स्थानिक पर्यावरणीय स्थितियों के आधार पर पाए जाते हैं।

ऐसे अधिवास मणिपुर में नदियों के सहारे, मध्य प्रदेश के मण्डला एवं बालाघाट जिलों तथा छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिले में मिलते हैं। विभिन्न जनजातियाँ छोटा नागपुर क्षेत्र में ऐसे अधिवास बनाकर रहती हैं।

सघन अधिवासों के समान अर्ध–सघन अधिवासों के भी कई भिन्न प्रतिरूप होते हैं। कुछ प्रतिरूप हैं– (i) चौक–पट्टी प्रतिरूप, (ii) बढ़ी हुई आयताकार प्रतिरूप, (iii) पंखाकार प्रतिरूप।

(i) चेकर बोर्ड या चौक-पट्टी प्रतिरूप– अधिवास का यह एक प्रकार है, जो सामान्यतः दो मार्गों के मिलन स्थल पर मिलता है। गाँवों की गलियाँ, एक दूसरे के साथ मेल खाती हुई, आयताकार प्रतिरूप में बनने लगती हैं जो परस्पर लम्बवत् होती हैं।

(ii) बढी हुई आयताकार प्रतिरूप (इलोंगेटेड प्रतिरूप)– स्थानीय कारणों से आयताकार अधिवास की लम्बाई में वृद्धि ऐसे प्रतिरूप को आकार देती है। उदाहरण के तौर पर गंगा के मैदानी इलाकों में जहाँ बाढ़ ग्रस्त स्थितियाँ बनती रहती हैं, वहाँ आयताकार अधिवास का विस्तार लम्बाई में उपरी ऊँचाई वाले भागों की ओर होता है। इसके अलावा नदी के किनारे की स्थितियों के लाभ भी इस प्रतिरूप को प्रोत्साहित करते हैं।

(iii) पंखनुमा प्रतिरूप – अधिवास का ऐसा प्रतिरूप तब होता है, जब कोई महत्वपूर्ण केन्द्र या कतार ग्राम के किसी एक छोर पर बना होता है। ऐसा केंद्रिक बिन्दु कोई तालाब, नदी तट, बगीचा, कुआं अथवा पूजा का स्थल हो सकता है। ऐसे प्रतिरूप के उदाहरण नदी के मुहाने (डेल्टा) क्षेत्र में भी बन जाते हैं, क्योंकि यहाँ मकान डेल्टा की पँखनुमा आकृति का अनुसरण करते हैं। महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि नदियों के मुहानों पर ऐसे अधिवास मिलते हैं। हिमालय पाद प्रदेश में भी ऐसे अधिवास सामान्य रूप में पाये जाते हैं।

(ग) पल्ली-पुरवा अधिवास

इस प्रकार के अधिवास कई छोटी इकाइयों में प्रकीर्ण रूप से बसे रहते हैं। मुख्य अधिवास का अन्य अधिवासों पर कोई ज्यादा प्रभाव नहीं होता है। अधिवास का वास्तविक स्थान अन्तर करने योग्य नहीं होता तथा मकान एक बड़े क्षेत्र में बिखरे होते हैं, जिनके बीच–बीच में खेत होते हैं। यह विभाजन सामान्यतः सामाजिक व जातीय कारकों द्वारा प्रभावित होता है। इन मकानों को स्थानीय तौर पर फलिया, पारा, धाना, धानी, नांगलेई आदि कहते हैं। ये अधिवास सामान्यतः पश्चिम बंगाल, पूर्वी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और तटीय मैदानों में पाये जाते हैं। भौगोलिक रूप से इसके अंतर्गत निचला गंगा मैदान, हिमालय की निचली घाटियाँ तथा केन्द्रीय पठार या देश की उच्च भूमियां आती हैं।

(घ) परिक्षिप्त या प्रकीर्ण अधिवास

इन अधिवासों को एकाकी अधिवास भी कहते हैं। इन बस्तियों की एक विशेषता होती है। इन अधिवासों की इकाइयाँ छोटी–छोटी होती है अर्थात आवासीय घर या घरों का समूह भी छोटा होता है। इनकी संख्या दो से सात मकानों की हो सकती है। ऐसे अधिवास एक बड़े क्षेत्र में बिखरे होते हैं तथा इनका कोई स्पष्ट प्रतिरूप नहीं बन पाता है। ऐसे अधिवास भारत के जनजाति बहुल मध्य क्षेत्र में पाये जाते हैं, जिसके अन्तर्गत छोटा नागपुर का पठार, मध्य प्रदेश, राजस्थान आदि आते हैं। इसके अतिरिक्त उत्तरी बंगाल, जम्मू–कश्मीर, तमिलनाडु एवं केरल राज्यों में भी ऐसे अधिवास मिलते हैं।

पाठगत प्रश्न 29.1

नीचे दिए गए प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य में दीजिए–

(क) अधिवास क्या है?

_____

(ख) वे कौन से दो आधार हैं जिनसे हम शहरी और ग्रामीण अधिवासों के बीच के अन्तर को बता सकते हैं?

(i) _____ (ii) _____

(ग) उन चार प्रमुख श्रेणियों के नाम बताइए जिनके आधार पर भारत के ग्रामीण अधिवासों को वर्गीकृत किया जाता है।

(i) _____ (ii) _____ (iii) _____ (iv) _____

(घ) किस प्रकार के अधिवास का क्षेत्रीय प्रसार भारत में सबसे ज्यादा है?

_____

(ङ) पल्ली–पुरवा अधिवास का वर्णन कीजिए।

_____

(च) परिक्षिप्त अधिवास कहाँ पाए जाते हैं? दो उदाहरण दीजिए।

(i) _____ (ii) _____

29.3 ग्रामीण अधिवासों के प्रकार को प्रभावित करने वाले कारक

ग्रामीण अधिवासों को प्रभावित करने वाले तीन प्रमुख कारक हैं– (क) भौतिक, (ख) जातीय या सांस्कृतिक तथा (ग) ऐतिहासिक अथवा प्रतिरक्षात्मक। आइये, तीनों कारकों की एक–एक करके चर्चा करें।

(क) प्राकृतिक कारक– इन कारकों में शामिल हैं– भूमि की बनावट, जलवायु, ढाल की दिशा, मृदा की सामर्थ्य, जलवायु, अपवाह, भू–जल स्तर आदि। इन कारकों का प्रभाव आवासीय मकानो के बीच की दूरियों तथा उनके प्रकार इत्यादि पर पड़ता है। राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में पानी की उपलब्धता निर्णायक कारक है। इसलिए वहाँ मकान किसी तालाब या कुँए के आस–पास संकेन्द्रित हैं।

(ख) जातीय और सांस्कृतिक कारक– इनमें शामिल हैं– जाति, समुदाय, जातीयता,

धार्मिक विश्वास इत्यादि। भारत में यह सामान्य रूप से पाया जाता है कि प्रमुख भूमि स्वामी जातियाँ गाँव के नाभिक क्षेत्र में बसती हैं और अन्य सेवा प्रदान करने वाली जातियां ग्राम की परिधि में बसती हैं। इस का परिणाम सामाजिक पृथक्कता तथा अधिवासों का छोटी–छोटी इकाइयों में टूटना है।

(ग) ऐतिहासिक या प्रतिरक्षात्मक कारक– ऐतिहासिक काल में भारत के उत्तर–पश्चिम मैदानी भागों के अधिकांश भागों में कई बार आक्रान्ताओं ने आक्रमण किया तथा कुछ भागों को कब्जे में भी लिया। इसके पश्चात् एक लम्बे समय तक बाहरी ताकतों के हमलों के अलावा देश के इस भाग में प्रमुख राज्य व साम्राज्य आपस में लड़ते–झगड़ते रहे। इसलिए नाभिकीय प्रारूप के अधिवास सुरक्षा को ध्यान में रखकर बनते रहे।

29.4 भारत में मकानों के प्रकार

मकानों या आवासों के प्रकारों में भिन्नता के पीछे आवास निर्माण में प्रयुक्त सामग्रियों की सहज उपलब्धता मुख्य कारक रही है। इसके अलावा यह भूमि की बनावट तथा जलवायविक दशाओं पर भी आधारित है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों या जहाँ हिमपात होता है, दोनों स्थानों में मकानो की छतें ढालूनुमा बनाई जाती हैं। पर जहाँ वर्षा कम होती है, वहां छत सपाट रहती हैं।

जहाँ तक मकान बनाने की वस्तुओं का सवाल है, इन्हें दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

(क) मकान की दीवार बनाने की सामग्रियाँ

(ख) मकान की छतों के निर्माण में प्रयुक्त सामग्रियाँ

तथापि निर्माण तकनीक के विकास तथा वित्तीय सहायता की उपलब्धि ने ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों के घरों की संरचना के प्रकारों को परिवर्तित कर दिया है।

आइए इनकी एक–एक करके चर्चा करें–

(क) दीवार निर्माण में प्रयुक्त सामग्रियाँ

भारत में दीवार निर्माण में प्रयुक्त सामग्रियों को मुख्यतः पाँच वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है। ये हैं–

1. मिट्टी,
2. पत्थर,
3. ईंटें,

टिप्पणी

4. इमारती लकड़ियाँ तथा
5. नरकुल

1. मिट्टी का गारा सबसे अधिक और आमतौर पर उपयोग में लाया जाता है और यह सभी प्रकार की मृदाओं में पाया जाता है, जिनका रंग, गठन और संरचना भी अलग अलग होता है। पुरातन सभ्यताओं में इसका सबसे अधिक उपयोग हुआ है। मिट्टी से बने देसी नुमा मकान प्रायः देश के सभी भागों में मिलते हैं। ये मकान पारिवारिक सदस्यों एवं पड़ोसियों के सहयोग द्वारा आसानी से बनाए जाते हैं।

2. पत्थर या बेसाल्ट पत्थर अथवा अच्छे ढंग से तराशे गए पत्थरों का प्रयोग उन स्थानों पर व्यापक रूप में होता है, जहाँ ये निकट व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं तथा इनका परिवहन भी आसान होता है। बलुआ पत्थर वाले पहाड़ी क्षेत्रों, ज्वालामुखी पठारी क्षेत्रों में ऐसे मकानों के उदाहरण बहुतायत से उपलब्ध हैं।

3. ईटों से बनी दीवारें आजकल बहुत प्रचलित हैं। आज पूरे देश के करीब करीब सभी ग्रामीण इलाकों में इसका प्रचलन हो गया है। आज ईटों की भट्टियाँ प्रायः सभी ग्रामीण क्षेत्रों में मौजूद हैं। इन भट्टियों में कच्चे ईंटो को पकाने के लिए ईंधन के रूप में कोयले का इस्तेमाल ज्यादा होता है। गाँवों में बहुत आसानी से ईंटें उपलब्ध हैं। ईटों का अधिक प्रयोग होने के पीछे मुख्य कारण लागत में बचत, चिरस्थायित्व तथा कम जगह में दीवारों का अधिक से अधिक आकारों में बनाया जा सकना है। सबसे अधिक पुरातन प्रमाण सिन्धु–घाटी सभ्यता के कई स्थानों में मिले, जहाँ खुदाई करने पर मकानों के अवशेष मिले जिनमें ईंटो का प्रयोग हुआ है।

   ईटों के प्रयोग में इन्हे जोड़ने के लिए मिट्टी का गारा ज्यादातर प्रयुक्त होता है। आजकल सीमेन्ट का गारा ज्यादा प्रयोग में आता है। कम ऊँचाई की दीवारों के लिए तथा लागत–खर्च कम करने के लिए गरीब लोग कच्ची–ईटों का प्रयोग करते हैं।

4. वन्य प्रदेशों में तथा वनो से सटे इलाकों में इमारती लकड़ियों से बनी दीवारों वाले घर काफी मात्रा में मिलते हैं। इसका प्रमुख कारण इनका निकट उपलब्ध होना है। केन्द्रीय भारत में भील जनजातियों के क्षेत्र में ये बहुतायत में मिलते हैं।

5. टट्टर या ठाठर का प्रयोग मैदानी या वन क्षेत्रों में झोपड़ीनुमा मकान बनाने में किया जाता है। यह बिना किसी लागत मूल्य के मिल जाता है तथा इसके बनाने में किसी विशेष तकनीकी जानकारी की जरूरत नहीं पड़ती। इससे मकान पहाड़ों की ढलान में या शिखर में भी बनाए जा सकते हैं। विन्ध्य और सतपुड़ा श्रेणी में बसने वाले आदिवासी मुख्यतः गोंड़, भील जनजातियाँ इसी प्रकार की सामग्रियों से अपना आवास बनाते हैं।

टिप्पणी

(ख) छत के निर्माण में प्रयुक्त वस्तुएँ

इन सामग्रियों को सात मुख्य वर्गो में बाँटा जा सकता है। ये हैं– (i) खपरा, (ii) छप्पर या छाजन, (iii) चिकनी मिट्टी और अन्य, (iv) टिन, (v) पत्थर की फर्शी, (vi) लकड़ी और (vii) ईटें तथा अन्य

(i) खपरैली छाजन पूरे देश में सर्वसामान्य रूप से प्रचलित हैं। खपरे भी या तो नालीनुमा अर्धचन्द्राकार या फिर सपाट होते हैं। इनके आकार तथा रूप भी अलग अलग होते हैं। छाजन में प्रयुक्त खपरैलों का आकार भारत के उत्तरी मैदानी भागो में बड़े जबकि पठारी तथा पहाड़ी क्षेत्रो में छोटे होते हैं।

(ii) यह कुटिया बनाने की सबसे पुरानी और मौलिक विधा है। यह तरीका आज भी गरीब परिवारों द्वारा अपनाया जाता है। हर प्रकार की दीवार छाजन या फूस से ढँक दी जाती है, चाहे ये दीवार लकड़ी, पत्थर, मिट्टी या टट्टर किसी भी सामग्री से बनी हो।

(iii) चिकनी मिट्टी में गोबर मिलाकर छत का निर्माण भारत के पश्चिमी भागों में बहुत ही सामान्य है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में यह तरीका काफी प्रचलित है। प्रत्येक बसाहट में ऐसे घरों को सीमांकन के रूप में पहचाना जाता है। समयानुसार वर्षा ऋतु आने के पहले गोबर–मिट्टीयुक्त छाजन से पलस्तर चढ़ा देने से बारिश से घरों की सुरक्षा बढ़ जाती है।

(iv) पर्वतीय, पहाड़ी तथा पठारी क्षेत्रो में पत्थर की फर्शी का प्रयोग प्राचीन काल से चला आ रहा है। आवश्यकता के अनुरूप छाजन के लिए बलुआ पत्थर या स्लेट पत्थर को काँट–छाँट कर दीवारों के ऊपर बिछाया जाता है। इस प्रकार के छाजन मजबूत तथा ज्यादा समय के लिए स्थाई रहते हैं।

(v) मकान की छत के लिए लकड़ी का प्रयोग भी काफी प्रचलित है, खासकर भारत के उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों में। इसके भी दो प्रकार हैं– जैसे कि भारत के उत्तर–पूर्वी राज्यों में प्रचलन है– जिसमें लकड़ी के चौड़े टुकड़ों को गोलाकार रूप में ऐसा जोड़ा जाता है कि उनके गोलाई वाले किनारे छतों पर इस प्रकार से आच्छादित हों। ताकि घरों को बरसात तथा बर्फ से सुरक्षित रख सकें। उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू–कश्मीर राज्यो के भागो में जो अपेक्षाकृत कम ऊँचाई वाले होते हैं, घरों की छतो को टीन या जल सह पदार्थ से ढँक दिया जाता है।

(vi) दीवारों के लेन्टर के ऊपर लोहे की छड़ो की जाली बिछाकर उसके ऊपर ईंटों की परत बिछाई जाती है, जिस पर सीमेन्ट का गारा बनाकर उसकी परत आच्छादित की जाती है। आजकल ग्रामीण इलाको में ग्रामीण विपणन केन्द्र के घर तथा ग्रामीण–धनवानों के घरों की छतें ऐसी ही बनती हैं।

भवन निर्माण की पारंपरिक सामग्रियों का प्रयोग कम हो रहा है और इसके स्थान पर अन्य पदार्थों जैसे– लोहा, टिन चादरें, सीमेंन्ट आदि का प्रयोग हो रहा है।

पाठगत प्रश्न 29.2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए–

(क) वे कौन से तीन कारक हैं, जो भारत में ग्रामीण अधिवासों के प्रकार को प्रभावित करते हैं?

(i)_____(ii)_____(iii)_____

(ख) मानव जाति एव संस्कृति के कारकों के किन्हीं तीन पहलुओं के नाम बताइये जो ग्रामीण बस्तियों को प्रभावित करते हैं।

(i)_____(ii)_____(iii)_____

(ग) सबसे अधिक सामान्य एवं पुरानी कौन सी सामग्री है, जिसका उपयोग भारत में दीवार बनाने में होता है?

_____

(घ) भारत में इमारती लकड़ियाँ कहाँ मिलती है, जिनका उपयोग मकान निर्माण में खासकर दीवार बनाने में होता है?

_____

(ङ) हमारे देश के किस भाग में पत्थर की फर्शियों का उपयोग मकान की छत बनाने में होता है?

_____

29.5 नगरीय अधिवास

भारत की जनगणना के अनुसार शहरी या नगरीय क्षेत्र वे हैं जिनमें निम्नलिखित स्थितियाँ मिलती हैं–

(क) नगरीय क्षेत्रों में या तो नगरपालिका अथवा निगम या फिर छावनी बोर्ड होगा अथवा अधिसूचित शहरी क्षेत्र समिति मौजूद होनी चाहिए।

(ख) अन्य सभी क्षेत्र जो इन मानकों को पूरा करते हैं–

(i) कम से कम 5000 जनसंख्या,

टिप्पणी

(ii) कार्यशील पुरुष जनसंख्या का कम से कम 75 प्रतिशत अकृषि क्षेत्र में लगे हों और

(iii) जनसंख्या का घनत्व कम से कम 4000 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. हो।

इसके अतिरिक्त जनगणना कार्य में निर्दिष्ट निर्देशों के अन्तर्गत जब भारत के राज्यों अथवा केन्द्र शासित संघीय राज्यों की सरकारों के सहयोग एवं परामर्श पर तथा भारत के जनगणना आयुक्त के अनुमोदन से कुछ ऐसी भी बसाहटों को जिनके गुण नगरीय क्षेत्रों जैसे होते हैं, किन्तु नगरीय बस्ती की मूलभूत शर्तें जिनका वर्णन अनुच्छेद 29.5 की कण्डिका (ख) में वर्णित है पूर्णतः लागू नहीं होता हो तो भी उन बसाहटों को नगरीय क्षेत्र में गिना जाता है। उदाहरण के लिए किसी परियोजना की कालोनी के क्षेत्र या फिर पर्यटन विकास के केन्द्र स्थल इत्यादि।

इस प्रकार से, शहरों अथवा नगरीय अधिवासों के दो बड़े वर्ग होते हैं। वे स्थानीय क्षेत्र जो अनुच्छेद 29.5 की कण्डिका (क) में वर्णित शर्तो के अनुरूप हैं, उन्हें वैधानिक शहर कहा जाता है। दूसरे वर्ग में आने वाले वे नगरीय क्षेत्र हैं जो कण्डिका (ख) में दी गई शर्तों का पूर्णतः पालन करते हैं, इन्हें जनगणना शहर कहा जाता है।

नगरीय बसाहट के समूहों में नीचे दिए गए तीन गुणों में से कोई एक गुण हो सकते हैं–

(i) मुख्य नगर एवं उससे जुड़े शहरी अपवृद्धि वाले क्षेत्र;

(ii) दो या दो से अधिक संलग्न मुख्य नगर (उनके अपवृद्धि क्षेत्र सहित या उसके बिना);

(iii) एक बड़ा शहर और उससे संलग्न एक या एक से अधिक शहरों के अपवृद्धि क्षेत्र इतने सानिध्य में विकसित हो जाते हैं कि कोई लम्बा सा जनसंख्या का वितान फैल गया हो।

नगरीय अपवृद्धि क्षेत्र के उदाहरण हैं– विश्वविद्यालय परिसर, छावनी परिसर, समुद्रतट पर बसे शहरों से सटे बन्दरगाह के परिसर या फिर उड्डयन परिसर, रेलवे कालोनी के परिसर आदि। पर एक बात ध्यान देने योग्य है कि ऐसे शहर कभी भी स्थाई नहीं होते हैं। प्रत्येक जनगणना में इनमें कमोबेश उतार–चढ़ाव होता है, जिससे इन शहरों का अवर्गीकरण या पुनर्वर्गीकरण किया जाता है, क्योंकि जनगणना के समय विद्यमान परिस्थितियाँ निर्णायक होती हैं।

29.6 नगरीय अधिवासों के प्रकार

ग्रामीण अधिवासों के सामान नगरीय अधिवासों को कई आधारों पर भिन्न प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है। सबसे प्रचलित एवं सर्वसाधरण वर्गीकरण का आधार नगरीय अधिवासों के आकार तथा सम्पादित कार्य होते हैं। आइये इस पर चर्चा करें।

टिप्पणी

जनसंख्या के आकार पर आधारित वर्गीकरण

जनसंख्या के आकार को आधार मानकर भारतीय जनगणना, नगरीय क्षेत्रों को 6 वर्गो में विभक्त करता है जिसे निम्न सारिणी में दर्शाया गया है–

सारिणी 29.1 नगरीय अधिवासों का वर्गीकरण

वर्ग	जनसंख्या
वर्ग I	1,00,000 या इससे अधिक
वर्ग II	50,000–99,999
वर्ग III	20,000–49,999
वर्ग IV	10,000–19,999
वर्ग V	5000–9,999
वर्ग VI	5000 से कम

नगरीय अधिवासों का एक और वर्गीकरण है, जो इस प्रकार है–

नगर – ऐसे स्थान जिनकी जनसंख्या एक लाख से कम होती है,

शहर – नगरीय स्थान जहाँ की जनसंख्या एक से 10 लाख के बीच हो,

महानगर – बड़े नगर जहाँ की जनसंख्या 10 लाख से 50 लाख के बीच हो तथा

वृहद महानगर – महानगर जहाँ की जनसंख्या 50 लाख से ऊपर हो।

व्यवसाय मूलक वर्गीकरण

यह देश में शहरी स्थानों के वर्गीकरण का सबसे अधिक प्रचलित एवं सर्वमान्य तरीका है। यह तरीका विश्व के अन्य देशों में भी प्रचलित है। भारत में बहुत से विद्वानों ने नगरीय केन्द्रो को विभिन्न व्यावसायिक वृत्तियों के कार्यकलापों को ध्यान में रखते हुए वर्गीकरण के कई तरीके प्रस्तावित किये। पर इनमें सबसे लोकप्रिय और सबसे अधिक स्वीकृत तरीका अशोक मित्रा द्वारा दिया गया था। जोकि एक प्रसिद्ध जनांकिकी विशेषज्ञ तथा भारत के तत्कालीन महापंजीयक थे।

भारत के शहरों का अशोक मित्रा की व्यवसाय मूलक विधि द्वारा वर्गीकरण

अशोक मित्रा द्वारा प्रस्तावित वर्गीकरण श्रमिकों की श्रेणियों पर आधारित है। यह श्रमिक श्रेणियाँ जनगणना वर्ष 1961 और जनगणना वर्ष 1971 के आँकड़ो से उपलब्ध की गई थी। परन्तु 1981 की जनगणना में दर्शाए गए व्यवसाय मूलक शहरों एवं नगरों के वर्गीकरण को उपयोग में नहीं लाया जा सकता क्योंकि शहरी स्तर पर औद्योगिक श्रमिकों को 9 औद्योगिक वर्गो में पूरी तरह विभक्त नहीं किया गया था। फिर भी 1991

में एक अभिनव प्रयास किया गया जिसके अन्तर्गत औद्योगिक श्रेणियों को 5 समूहों में बाँटते हुए भारत के सभी शहरों को उनकी व्यावसायिक कार्यशीलता के आधार पर 5 आर्थिक खण्डों में बाँट दिया गया। अन्तिम वर्गीकरण इस प्रकार है–

सारिणी 29.2 नगरीय स्थानों का व्यवसाय मूलक वर्गीकरण

आर्थिक खण्ड	औद्योगिक श्रेणी
1. प्राथमिक क्रियाकलाप	I कृषि कार्य
	II कृषि श्रमिक
	III पशु–पालन, वानिकी, मछली पकड़ना, शिकार करना, बागवानी, उद्यानिकी तथा अन्य संबंधित क्रियाकलाप
	IV खनन एवं उत्खनन इत्यादि
2. उद्योग–धंधे (व्यवसाय)	V निर्माण, संसाधन तैयारी, सेवाएँ, सुधार एवं मरम्मत सेवाएँ।
	(अ) घरेलू उपयोग की वस्तुएँ बनाने की औद्योगिक इकाइयाँ
	(ब) घरेलू उपयोग की वस्तुएं बनाने के अलावा उद्योग भी।
	VI निर्माण कार्य में लगे मजदूर
3. व्यापार	VII व्यापार एवं वाणिज्य
4. यातायात	VIII परिवहन, गोदाम में संग्रहण, भण्डारण एवं संचार–व्यवस्था।
5. सेवाएँ	IX विविध सेवाएँ

1991 जनगणना में अपनाई गई कार्य–प्रणाली जिसके द्वारा शहरों को व्यवसाय मूलक आधार पर वर्गीकृत किया गया था, वह इस प्रकार है–

(क) प्रत्येक शहरी बसाहट के समूहों के या शहर से सटे कस्बों की बसाहटो में कुल प्रमुख कार्यशील व्यवसाइयों का प्रतिशत 5 आर्थिक खण्डो में कितना–कितना है, यह गणना द्वारा तय कर लिया जाता है।

(ख) व्यवसाय आधारित श्रेणी क्रम को प्रत्येक शहरी बसाहट के समूह के लिए इस प्रकार से तय किया गया था–

टिप्पणी

(i) यदि किसी एक औद्योगिक खण्ड में कार्यरत व्यक्तियों की संख्या 40 प्रतिशत या इससे अधिक है तो ऐसे शहरी बसाहट के समूह को उसी औद्योगिक खण्ड के एकल–क्रियाशील श्रेणी में वर्गीकृत किया जाता है।

(ii) यदि किसी एक औद्योगिक खण्ड में कार्यरत व्यक्तियों की संख्या 40 प्रतिशत से कम है तो दो अन्य इकाइयों में मौजूद संख्या को जोड़ दिया जाता है यदि दोनों का योग 60 प्रतिशत से अधिक है तो ऐसे शहरी बसाहट के समूहो को द्वि–क्रियाशील की श्रेणी में वर्गीकृत किया जाता है।

(iii) यदि दो इकाइयों में कार्यरत व्यक्तियों की संख्या तब भी 60 प्रतिशत या अधिक नहीं होती तब तीन अधिकतम प्रतिशत वाली इकाइयों में कार्यरत लोगों की संख्याओं को जोड़ दिया जाता है और फिर ऐसे शहरी बसाहट के समूह को बहु कार्यशील श्रेणी में वर्गीकृत किया जाता है।

(ग) यदि किसी विशेष परिस्थिति में किसी बाह्य शहरी समूह की बसाहट में एक चौथाई कार्यशील व्यक्तियों का व्यवसाय किन्ही चार कार्यो में अर्थात (अ) वानिकी, मात्स्यिकी (पौध–रोपण, पशुपालन इत्यादि सहित), (ब) खनन एवं उत्खनन, (स) वस्तु निर्माण वाले घरेलू उद्योग और (द) निर्माण कार्यो में कार्यरत हो तो प्रत्येक शहरी बसाहट की कार्यशील श्रेणी का वर्गीकरण उनके संबंधित व्यवसाय कार्यशीलता के आधार पर उपश्रेणियों में किया जाता है बशर्ते कि उपश्रेणी की व्यावसायिक कार्यशीलता प्रथम या द्वितीय कोटि की हो।

उपरोक्त वर्णित विभाजन प्रणाली का आश्रय लेते हुए भारत के सभी 3,697 शहरी बसाहटों के समूहों (जम्मू–कश्मीर के अलावा) को विभिन्न कार्यशील श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया था। इस प्रयास के परिणाम इस प्रकार प्राप्त हुए–

(i) भारत की कुल शहरी बसाहट समूह के लगभग आधे अर्थात 1756 इकाइयों को प्रथम श्रेणी में वर्गीकृत किया गया है, जहाँ के व्यवसाय प्राथमिक दर्जे के हैं। परन्तु इनकी जनसंख्या भारत की कुल शहरी जनसंख्या के 15.85 प्रतिशत के बराबर होती है। इस श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले अधिकांश शहर काफी छोटे आकार के होते हैं। इन शहरो के दो तिहाई स्थानों में एकल व्यवसाय प्रधान कार्यशील व्यक्ति होते है बाकी एक तिहाई कार्यशील लोग बहु–धंधी अर्थात विविध व्यवसाय से संबंध रखने वाले होते हैं। ऐसे शहरों की संख्या उत्तर प्रदेश में सबसे ज्यादा (371) थी।

(ii) देश में 723 ऐसे शहरी बसाहट के समूह हैं जहाँ के लोगों का मुख्य व्यवसाय उद्योगों से जुड़ा है। खासबात यह है कि इन स्थानो की बसाहट की जनसंख्या का आधे से अधिक भाग नगरीय है। इनमें उन स्थानों की संख्या एक तिहाई से ज्यादा है, जिनकी जनसंख्या 1 लाख या इससे अधिक है। औद्योगिक श्रेणी के

अन्तर्गत वर्गीकृत शहरी बसाहटों की 4/5 जनसंख्या इन्ही शहरी बसाहटो में रहती है। आधे से कुछ कम ऐसे स्थानों में एकल व्यवसाय प्रधान कार्यशील लोग रहते हैं। परंतु बहु कार्यशील श्रेणी वाले स्थानों की संख्या काफी कम है। तमिलनाडु राज्य में सबसे अधिक (101) इकाइयाँ औद्योगिक शहरी बसाहटों की श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं। इसके बाद उत्तर प्रदेश (91) तथा गुजरात (87) इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

(iii) शहरी बसाहट/नगर की उन इकाइयों की संख्या 460 थी जिन्हें व्यापार की श्रेणी के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया था। इनकी जनसंख्या देश की शहरी जनसंख्या के 7 प्रतिशत के बराबर थी। इनमें से अधिकांश व्यापारिक नगरों/शहरी बसाहटो के समूह में कार्य की प्रकृति बहु कार्यशील होती है, जबकि शेष बचे नगर द्वि–कार्यशील प्रकृति के होते हैं। ऐसे शहरों की सबसे ज्यादा संख्या (121) उत्तर प्रदेश में थी जबकि बाकी के राज्यों में व्यापार से संबद्ध ऐसे शहरों की संख्या बहुत ही कम है।

(iv) परिवहन से संबद्ध श्रेणी में केवल 23 नगर वर्गीकृत किए गए जिनका देश की नगरीय जनसंख्या में योगदान 1 प्रतिशत से भी कम है। इनमें से अधिकांश शहरी स्थानों का आकार छोटा होता है यद्यपि कुछ बड़े आकार के भी होते हैं, जैसे– पश्चिमी बंगाल का खड़गपुर, उत्तर प्रदेश में मुगलसराय आदि। जहाँ तक कार्यशील व्यवसाय का संबंध है, इन 23 में से 10 शहरी बसाहटों में एकल व्यावसायिक लोग रहते हैं। बाकी 10 में विविध व्यावसायिक कार्यो वाले लोग रहते हैं।

(v) करीब 736 ऐसे शहरी बसाहट वाली इकाइयाँ देश में हैं जिनमें विविध सेवाएँ ही प्रमुख व्यवसाय के साधन होते हैं। इनमें बसने वाले लोगों की जनसंख्या देश की कुल नगरीय जनसंख्या के एक चौथाई के बराबर है। इनमें से अधिकांश जनसंख्या (70 प्रतिशत) प्रथम श्रेणी के शहरों में रहती है। जहाँ तक उनकी व्यावसायिक कार्यशीलता का सम्बन्ध है, अधिकांश शहरों के निवासियों का व्यवसाय बहु कार्यशील या द्वि–कार्यशील होते हैं। उत्तर प्रदेश में ऐसे शहरों की संख्या 114 तथा मध्य प्रदेश में 82 है।

सारिणी 29.3 भारत : कार्य-वृत्तियों पर आधारित शहरों का वर्गीकरण

	कार्य-वृत्तियाँ	शहरों के नाम
1.	प्रशासनिक	नई दिल्ली, चण्डीगढ़, भुबनेश्वर, गांधीनगर, थिरूअनन्तपुरम, इम्फाल इत्यादि।
2.	औद्योगिक	जमशेदपुर, भिलाई, सालेम, कोयम्बटूर, मोदीनगर, सूरत इत्यादि।

टिप्पणी

3.	परिवहन	समुद्री तटों के बन्दरगाह जैसे कान्दला, कोचीन, विशाखापट्टनम इत्यादि, सड़क एवं रेलमार्गो के जंक्शन जैसे मुगलसराय, इटारसी, कटनी, खड़गपुर, आगरा इत्यादि।
4.	वाणिज्यिक नगर	कोलकाता, मुम्बई, सहारनपुर, इन्दौर, चेन्नई इत्यादि।
5.	खनन नगर	रानीगंज, झरिया, धनबाद, डिग्बोई, अँकलेश्वर, सिंगरौली इत्यादि।
6.	छावनी	मेरठ, अम्बाला, जालंधर, महू, पठानकोठ इत्यादि।
7.	शैक्षणिक	रूड़की, पिलानी, मनिपाल, अलीगढ़, वाराणसी इत्यादि।
8.	धार्मिक	पुरी, मथुरा, मदुरै, तिरुपति, कटरा, अमृतसर, इलाहाबाद, वाराणसी इत्यादि।
9.	पर्यटन	नैनीताल, मसूरी, शिमला, पंचमढ़ी, उदगमण्डलम (ऊटी) माउंट आबू, गँगटोक इत्यादि।

पाठगत प्रश्न 29.3

नीचे दिए गए प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दीजिए।

(क) शहरी बसाहट किसे कहते हैं?

_____

(ख) भारत की जनगणना के अनुसार दो प्रकार के शहर कौन–से हैं?

_____

(ग) वृहद–महानगरों को परिभाषित कीजिए।

_____

(घ) भारत की जनगणना 1991 के अनुसार कौन से कार्य–वृत्ति मूलक शहरों की संख्या देश में सबसे अधिक है।

_____

(ङ) किन्ही दो शैक्षणिक कार्य–वृत्ति वाले शहरों के नाम बताइए।

_____

आपने क्या सीखा

अधिवास को एकाकी घर से लेकर बड़े शहर तक किसी भी रूप में मानव के लिए आवास के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। अधिवास को मोटे तौर पर दो बड़े वर्गों में बाँट सकते हैं– ग्रामीण और नगरीय। इन दोनों में मूलभूत अन्तर इन अधिवासों के लोगों की कार्य–वृत्तियों के आधार पर किया जाता है। भारत में ग्रामीण अधिवासों को चार श्रेणियों में विभक्त किया गया है। ये श्रेणियाँ हैं– सघन/संहत, अर्धसघन, पल्ली–पुरवा तथा परिक्षिप्त या प्रकीर्ण।

सघन या संहत अधिवास में मकानों के निर्माण क्षेत्र एक दूसरे से सटे हुए रहते हैं तथा समस्त मकान एक केन्द्रीय भाग में संकेन्द्रित रहते हैं। हमारे देश में अधिकांश ग्रामीण अधिवास इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं तथा भौगोलिक वितरण की दृष्टि से देश के सभी भागों में पाए जाते हैं। सघन अधिवास के अंतर्गत लगभग 11 प्रकार के प्रतिरूप पाए जाते हैं। अर्धसघन अधिवास की विशेषता यह होती है कि छोटे सघन आवासीय घरों की सन्निकटता नाभिक का काम करती है, जिसके चारों ओर पल्ली–पुरवा की बसाहट बिखरे रूप में रहती है। अर्धसघन अधिवासों के कुछ प्रतिरूपों में चौक–पट्टी प्रतिरूप, बढ़ी हुई लम्बाई वाले आयताकार प्रतिरूप तथा पँखनुमा प्रतिरूप शामिल हैं। इस प्रकार के प्रतिरूप वाले अधिवासों के नमूने जनजातीय क्षेत्रों जैसे छोटा नागपुर क्षेत्र तथा उत्तर–पूर्वी भारत के नागालैन्ड में मिलते हैं। पल्ली–पुरवा प्रकार के अधिवास उन्हें कहते है जिनमें केन्द्र की बसाहट या तो होती ही नहीं अथवा होती भी है तो उसका प्रभाव उसके चारो ओर के क्षेत्र में जरा भी नहीं होता। परिक्षिप्त या प्रकीर्ण अधिवासों की विशेषता यह है कि इसमें एक घर से लेकर कुछ घरों के समूह होते हैं। ग्रामीण अधिवासों के प्रकार एवं बनावट को प्राकृतिक भूमि संरचना, जातीय या सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक या फिर सुरक्षा इत्यादि बहुत से कारक प्रभावित करते हैं। घरों की बनावट में भी इन्ही कारणों से भिन्नता आ जाती है। इसके अलावा अन्य कारण भी हैं, जैसे स्थलाकृति, जलवायु, भवन निर्माण की सामग्रियों की उपलब्धता इत्यादि। जहाँ तक भवन–निर्माण की आवश्यक सामग्रियाँ है, इन्हें भी दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। ये हैं– (i) दीवारों के निर्माण में प्रयुक्त भवन सामग्रियाँ तथा (ii) छत बनाने में प्रयुक्त भवन सामग्रियाँ। दीवार बनाने में प्रयुक्त सामग्रियाँ मुख्यतः गीली मिट्टी, पत्थर, ईटें, इमारती लकड़ियाँ तथा घास–फूस की छाजन होती हैं। छत बनाने वाली सामग्रियाँ हैं– छप्पर, मिट्टी के साथ घास–फूस मिला छाजन, खपरा, टीन की चद्दर, पत्थर की फर्शी, लकड़ी के पटिये, ईटें आदि।

भारत की जनगणना के अनुसार नगरीय अधिवास के विशेष गुण हैं– (i) सभी नगरों में या तो नगरपालिका, नगर–निगम छावनी बोर्ड या फिर अधिसूचित नगरीय क्षेत्र समिति होंगे। (ii) वे सभी क्षेत्र नगरीय अधिवास के रूप में जाने जाते है जहाँ–

टिप्पणी

(क) कम से कम जनसंख्या 5000 व्यक्तियों की है।

(ख) क्षेत्र में बसे पुरूष वर्ग के कार्यशील व्यक्तियों का 75 प्रतिशत भाग अकृषि–कार्यो में लगे रहते हैं।

(ग) क्षेत्र में जनसंख्या का घनत्व कम से कम 4000 व्यक्ति प्रति वर्ग किलो मीटर हो।

कण्डिका 29.5 में वर्णित खण्ड (क) की शर्ते जिस किसी क्षेत्र में लागू हो रही हों उन्हें वैधानिक शहर कहा जाता हैं। इसी प्रकार कण्डिका (ख) की शर्ते जिस क्षेत्र में लागू हो रही हों उन्हें जनगणना शहर कहा जाता है। जैसे ग्रामीण अधिवास का किन्ही खास आधारों पर वर्गीकरण किया जाता है, उसी प्रकार नगरीय अधिवासों को भी विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया जाता है। परन्तु अधिवासों का आकार एवं कार्य वृत्तियों का आधार सबसे अधिक प्रचलित हैं। जनसंख्या के आकार के आधार पर नगरीय अधिवास नगर, शहर, महानगर अथवा वृहद महानगर हो सकते हैं। इसी प्रकार अधिवास के लोगों की व्यावसायिक क्रियाशीलता पर भी नगरीय अधिवासों को वर्गीकृत किया जाता है। ये वर्ग हैं प्रशासनिक, औद्योगिक, परिवहन, वाणिज्य, खनन, छावनी, शैक्षणिक, धार्मिक तथा पर्यटन।

पाठान्त प्रश्न

1. अधिवास किसे कहते हैं? भारत में ग्रामीण अधिवासों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।

2. भारत में विभिन्न प्रकार के सघन अधिवासों के प्रतिरूपों की बनावटों को उदाहरण सहित समझाइए।

3. भारत में अधिवासों के प्रकारों की भिन्नता को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों का वर्णन कीजिए।

4. भारत में भवन निर्माण में प्रयुक्त होने वाली उन सामग्रियों का वर्णन कीजिए जिनका उपयोग दीवार और छत बनाने में होता है।

5. भारत की जनगणना–2001 के सन्दर्भ में नगरीय क्षेत्र का वर्णन कीजिए। 1991 जनगणना के आधार पर शहरों का कार्य वृत्ति मूलक वर्गीकरण करने की प्रणाली को समझाइए।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

29.1

(क) मानवीय आवास का कोई भी रूप जो एकाकी घर से एक बड़े शहर तक हो सकता है, अधिवास कहलाता है।

(ख) (i) कार्य वृत्तियाँ, (ii) जनसंख्या

(ग) (i) सघन, (ii) अर्ध सघन, (iii) पल्ली–पुरवा, (iv) परिक्षिप्त या प्रकीर्ण

(घ) सघन अधिवास

(ङ) पल्ली–पुरवा अधिवास छोटी–छोटी इकाइयों में बिखरे रहते हैं। इस प्रकार के अधिवासों में या तो केन्द्रक होता ही नहीं और यदि हुआ भी तो इसका आस–पास की इकाइयों पर कोई प्रभाव नहीं होता।

(च) (i) भारत के मध्यवर्ती क्षेत्र के जनजातीय क्षेत्र,

(ii) पश्चिम बंगाल के उत्तरी पहाड़ी इलाके, जम्मू–कश्मीर, तमिलनाडु एवं केरल

29.2

(क) (i) प्राकृतिक, (ii) जातीय एवं सांस्कृतिक, (iii) ऐतिहासिक या सुरक्षा

(ख) (i) जाति, (ii) समुदाय, (iii) जातीय, (iv) धार्मिक (कोई भी तीन)

(ग) चिकनी गाढ़ी और गीली मिट्टी

(घ) (i) वन प्रदेश (ii) देश के पहाड़ी क्षेत्र जहाँ इमारती लकड़ियाँ बहुतायत में मिलती हैं

(ङ) (i) पहाड़ी इलाके (ii) पर्वतीय एवं पठारी क्षेत्र

29.3

(क) शहरी बसाहट इनमें से किन्ही तीनों के सम्मिश्रण से कोई एक हो सकता है–

(i) एक शहर तथा उसके सन्निकट क्षेत्र में जनसंख्या की अपवृद्धि,

(ii) दो या दो से अधिक संलग्न शहर, उनके अपवृद्धि क्षेत्र सहित या उसके बिना,

(iii) कोई एक शहर और उसके सन्निकट एक या दो शहरी क्षेत्रों के साथ

टिप्पणी

उनके जनसंख्या के अपवृद्धि क्षेत्रों को मिला कर एक विस्तार युक्त वितान बन जाता है।

(ख) (i) वैधानिक शहर (ii) जनगणना शहर

(ग) वृहद महानगर वे शहर हैं जिनकी जनसंख्या 50 लाख से ऊपर है।

(घ) 1991 की जनगणना के अनुसार ऐसे शहर जहाँ की कार्य–वृत्ति प्राथमिक दर्जे की होती है, उनकी संख्या देश में सबसे ज्यादा (1756) है।

(ङ) (i) रूड़की (ii) पिलानी (iii) मनिपाल (iv) अलीगढ़ (v) वाराणसी (कोई दो)

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. अनुच्छेद 29.1 एवं 29.2 देखिए।
2. अनुच्छेद 29.2 देखिए।
3. अनुच्छेद 29.3 देखिए।
4. अनुच्छेद 29.4 का (क) व (ख) देखिए।
5. अनुच्छेद 29.5 देखिए, कार्य–वृत्ति मूलक वर्गीकरण के लिए अनुच्छेद 29.6 देखिए।